प्राचीन शास्त्रार्थों का संग्रह-

निर्णय के तट पर

(भाग-चार)

संकलनकर्ता
अमर स्वामी सरस्वती
लाजपत राय अग्रवाल

प्रकाशक:-
अमर स्वामी प्रकाशन विभाग
(गाजियाबाद)

निर्णय के तट पर

(शास्त्रार्थ संग्रह)

[चतुर्थ भाग]

★

★

★

प्रकाशक :—

अमर स्वामी प्रकाशन विभाग

१०५८, विवेकानन्द नगर, गाजियाबाद (उ० प्र०)-२०१००१

भारत

द्वितीय संस्करण
५०० प्रतियां

अक्टूबर सन् १९९२

मूल्य : भारत में—३००-००
विदेशों में—४० पौंड

प्रकाशन	:	अमर स्वामी प्रकाशम विभाग, गाजियाबाद (उत्तर-प्रदेश)
सम्पादक एवं संकलनकर्त्ता	:	(१) अमर स्वामी सरस्वती (२) लाजपत राय अग्रवाल
मूल्य	:	भारत में, तीन सौ रुपये विदेशों में, चालीस पौंड
मुद्रक	:	कला प्रिन्टर्स, बी-४०/४, कान्ती नगर एक्सटेन्शन, कृष्ण नगर, दिल्ली-५१
संस्करण	:	द्वितीय — पांच सौ प्रतियां
पुस्तक प्राप्ती स्थान	:	१, अमर स्वामी प्रकाशन विभाग, १०५८, विवेकानन्द नगर, गाजियाबाद (उ०प्र०)

२. गोविन्दराम सासानन्द, ४४०८, नई सड़क, दिल्ली-६
३. पाणिनी कन्या महाविद्यालय, पो० तुलसीपुर, वाराणसी (उ० प्र०)
४. राजपाल एण्ड सन्स, कश्मीरी गेट, दिल्ली-६
५. चौखम्बा ओरियेन्टला, चौक वाराणसी (उ०प्र०)
६. चौखम्बा विश्वभारती, चौक वाराणसी (प्र० प्र०)
७. चौखम्बा विद्याभवन, चौक वाराणसी (उ० प्र०)
८. सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, दयानन्द भवन रामलीला मैदान नई दिल्ली-२
९. मुंशीराम मनोहर लाल, नई सड़क, दिल्ली-६
१०. मोतीलाल, बनारसीदास, बैंग्लों रोड, जवाहर नगर, दिल्ली-७
११. मधुर प्रकाशन, बाजार सीताराम, गली आर्य समाज, दिल्ली-६
१२. आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा, मन्दिर मार्ग, नई दिल्ली-१
१३. वैदिक साहित्य प्रकाशन, आर्य समाज सुलतान बाजार, हैदराबाद (आन्ध्र प्रदेश)
१४. आर्य समाज बड़ा बाजार, पुस्तक विक्रय विभाग, मुंशी सद्रूद्दीन लैन कलकत्ता-७
१५. आर्य समाज, १९ विधान सरणी, पुस्तक विक्रय विभाग, कलकत्ता-७
१६. स्टार पाकेट बुक्स. आसफ अली रोड, नई दिल्ली-२
१७. मेहरचन्द लक्षमणदास, अन्सारी रोड, दिल्ली-६
१८. भारती साहित्य सदन सैल्स, मद्रास होटल, ३०/९०, कनाट सर्कस, नई दिल्ली
१९. विश्वेश्वरानन्द बुक एजेन्सी, होशियारपुर (पंजाब)
२०. सूर्य प्रकाशन, नई सड़क, दिल्ली-६
२१. आर्य समाज, पुस्तक विक्रय विभाग, कांकरिया रोड, अहमदाबाद (गुजरात)

NIRNAY KE TAT PER

Published By :

LAJPAT RAI AGGARWAL (Proprietor)
AMAR SWAMI PRAKASHAN VIBHAG
1058, VIVEKANAND NAGAR. GHAZIABAD–201001 (U.P.) INDIA

प्रस्तुत पुस्तक में निम्न शास्त्रार्थ महारथियों के शास्त्रार्थ संग्रहीत हैं-

(१) आर्य समाज की ओर से—

(१) "सर्व श्री" प्रो० राजाराम जी शास्त्री, (२) पण्डित विश्वबन्धु जी शास्त्री एम० ए० (३) पण्डित चारुदेव जी शास्त्री एम० ए०, (४) पण्डित भगवद्दत्त जी रिसर्चस्कालर, (५) पण्डित ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु, (६) पण्डित बुद्धदेव जी मीरपुरी, (७) पण्डित ठाकुर अमर सिंह जी शास्त्रार्थ केशरी (अमर स्वामी सरस्वती), (८) पण्डित गुरुदत्त जी शास्त्री (अध्यापक), (९) महामहोपाध्याय पण्डित आर्यमुनि जी, (१०) पण्डित शंकर देव जी व्याकरणाचार्य, (११) पण्डित प्रियरत्न जी आर्ष (स्वामी ब्रह्ममुनि), (१२) महता रामचन्द्र जी शास्त्री, (१३) स्वामी अच्युतानन्द जी, (१४) महात्मा नारायण स्वामी जी, (१५) स्वामी नित्यानन्द जी तीर्थ (पण्डित रलाराम जी), (१६) प्रिंसिपल देवी चन्द जी, (१७) स्वामी सर्वदानन्द जी महाराज, (१८) प्रिंसिपल बहादुर मल जी, (१९) पण्डित वैध रामगोपाल जी शास्त्री, (२०) पण्डित राम लाल जी शास्त्री, (आचार्य पण्डित विश्वश्रवा जी) (२१) पण्डित तुलसीराम जी शर्मा (२२) पण्डित कुमार सैन जी शर्मा, (२३) पण्डित शिव शर्मा जी, (२४) पण्डित ज्वालादत्त जी शर्मा (अजमेर), (२५) पण्डित रुद्रदत्त जी शर्मा; (२६) पण्डित शिवशंकर जी चौधरी काव्यतीर्थ, (२७) पण्डित मंगल दत्त जी शास्त्री, (२८) स्वामी लक्षमणानन्द जी, (२९) पण्डित देवेन्द्रनाथ जी सांख्यतीर्थ, (३०) पण्डित बाल कृष्ण जी शर्मा (बम्बई), (३१) अमर स्वामी जी सरस्वती, (३२) पण्डित गंगा प्रसाद जी उपाध्याय एम० ए०, (३३) पण्डित रामावतार जी शर्मा पञ्चतीर्थ (३४) पण्डित गंगा प्रसाद जी वानप्रस्थ (चीफ़ जज), (३५) पण्डित लोकनाथ जी तर्क वाचस्पति, (३६) स्वामी कर्मानन्द जी महाराज, (३७) महर्षि श्री स्वामी दयानंन्द जी सरस्वती, (३८) ब्रह्मचारी वेदव्रत जी मिमांसक, (३९) पण्डित ओमप्रकाश जी शास्त्री विद्याभास्कर, (खतौली) उ० प्र० ॥

(२) सनातन धर्म की ओर से—

(१) "सर्व श्री" पण्डित त्रिवेणी दत्त जी, (२) पण्डित हजारी दत्त जी शर्मा, (३) पण्डित कृष्णानन्द जी, (४) साधु ईश्वरानन्द जी सरस्वती, (५) पण्डित चन्द्रशेखर भट्ट जी, (६) पण्डित गोविन्दाचारी जी महाराज, (७) पण्डित कालूराम जी शास्त्री, (८) पण्डित अखिलानन्द जी कविरत्न, (९) पण्डित छोटु जी महाराज (बड़ोदा), (१०) पण्डित प्रेमाचार्य जी शास्त्री, (११) पण्डित श्रीकृष्ण शास्त्री, (१२) स्वामी विशुद्धानन्द जी सरस्वती, (१३) पण्डित बाल शास्त्री जी, ॥

(३) ईसाईयों की ओर से—

(१) श्रीयुत् पादरी अब्दुल हक जी, ॥

सम्पादकीय

पाठक वृन्द !

परम् पिता परमात्मा की असीम कृपा से इस निर्णय के तट पर ग्रन्थ का चौथा भाग छप कर आपके हाथों में है, इस श्रंखला का पांचवा भाग और छपना है, जिसमें उपलब्ध बकाया सभी शास्त्रार्थों का समावेश कर दिया जावेगा ! पूज्य श्री महात्मा अमर स्वामी जी महाराज की अन्तिम इच्छा थी कि सभी अप्रकाशित अथवा प्रकाशित शास्त्रार्थों का संग्रह इस शृंखला में हो जावे, हमें इस बात का हर्ष है कि, आप लोगों के सहयोग से हम उनकी अन्तिम इच्छा पूर्ति में सफल हो रहे हैं।

इस कार्य में अनेकों कठिनाईयां है, मुझे ग्रन्थ छपाने में कोई परेशानी नहीं है। परेशानी अगर है तो इस बात की है कि कोई भी विद्वान अनुवाद एवं सम्पादन कार्य के लिए नहीं मिल पाता, जब कि में उचित पारिश्रमिक भी देने को तैयार हूँ। तथा दूसरी समस्या है कि ग्रन्थ छपवा कर कहां रक्खू ? पुस्तकें जितनी मात्रा में बिकनी चाहिये उतनी मात्रा में बिकती ही नही हैं, जबकि में नाम मात्र लाभ पर ही प्रचारार्थ साहित्य वितरण करना चाहता हूं। लाखों रुपया इस प्रकाशन में लगा हुआ है तथा लग रहा है। पैसा लगता ही चला जावे और उसकी वापसी न हो तो समस्या ही है, अतः मेरा अनुरोध है कि सभी आर्य भाई इन अनुपम एवं अनुपलब्ध ग्रन्थों को मंगा-२ कर अध्ययन करें।

मुझे आर्थिक रूप से कोई चिन्ता नहीं है, अतः कोई भी विद्वान उपरोक्त कार्य के लिए तैयार हो तो मुझसे सम्पर्क करे, मैं यथा शक्ति हर सम्भव उनकी सेवा करूंगा जिससे इस प्रकाशन का कार्य सुचारू रूप से चलता रहे। मैं चाहता हूं कि हमारा जो भी प्राचीन मूल साहित्य निरन्तर समाप्त होता जा रहा है उसे प्रकाशित कर पुनः प्रकाश में ला सकूं, मेरा यह संकल्प आप लोगों के सहयोग पर ही आधारित है। यह मेरा सौभाग्य ही होगा अगर इस संस्था द्वारा प्रकाशित साहित्य देश विदेश के कोने-२ में पहुंचे, जिस निमित्त इस संस्था को स्थापित् किया गया था उसके लिए यह संस्था अपने उद्देश्यों में पूर्ण सफल हो।

पूज्य महात्मा अमर स्वामी जी महाराज द्वारा दी गई प्रेरणा आज भी मेरे मस्तिष्क में कार्य कर रही है, तथा जीवन भर करती रहेगी, मैं उनके ऋण से कभी भी उऋण नहीं हो सकता, परमेश्वर से प्रार्थना है कि मेरी यह भावना सदा बनी रहे, और जितना भी अधिक से अधिक हो इस तरह के सामाजिक कार्यो में, तथा साहित्य के प्रचार एवं प्रसार में मेरा योगदान सदा बना रहे।

किमधिकम् लेखेन् !!

—विदुषामनुचरः
"लाजपत राय अग्रवाल"

अगली प्रकाशन योजना

निर्णय के तट पर (पांचवा भाग)
(शास्त्रार्थ संग्रह)

हमारे द्वारा पूर्ण प्रयास के बावजूद भी जो जो शास्त्रार्थ अप्रकाशित रह गये हैं, उनका समावेश इस शास्त्रार्थ ग्रन्थ की शृंखला के पांचवे भाग में किया जावेगा। कुल पांच भागों में इस शृंखला को समाप्त कर दिया जावेगा इस पांचवे भाग में भी बहुत ही प्रामाणिक एवं अद्भुत सामग्री आ सकेगी।

इस पांचवे भाग की प्रकाशन योजना भी निश्चित हो चुकी है, पूर्ण, जानकारी के लिए आप प्रकाशन से निम्न पते पर सम्पर्क कर सकते हैं।

"सम्पादक"
अमर स्वामी प्रकाशन विभाग
१०५८, विवेकानन्द नगर-गाजियाबाद
(उ०प्र०)-२०१००१

समर्पण

आर्य जगत के महान संन्यासी महर्षि दयानन्द की सेना के महान सेनानी,
ब्राह्मण समाज के पूज्य, क्षत्रीय समाज में अग्रणी, महात्मा, स्वनामधन्य
जिन्होंने अपना सर्वस्व आर्य समाज के सिद्धान्तों के प्रचार एवं प्रसार
में समर्पित कर दिया। प्रमाण महार्णव, रामायण, गीता, महाभारत,
के महान व्याख्याता वेद शास्त्र-उपनिषद मर्मज्ञ, पुराण, कुरान आदि
अवैदिक मतों के मानमर्दन करने वाले, अद्वितीय वक्ता शास्त्रार्थ केशरी,
जिन्होंने दिग्दिगान्तरों में वैदिक सिद्धान्तों की विजय वैजन्ती फहराई। उन

महात्मा अमर स्वामी जी महाराज के प्रति

जिस दिव्य गुरु ने "अग्निना अग्नि समिध्यते" को जीवन में चरितार्थ
कर हजारों शिष्यों को व्याख्याता, संगीतज्ञ, राजनीतिज्ञ, प्रोफेसर,
डाक्टर, और न जाने क्या-क्या उच्च पदों के योग्य बना उन्हें दलित व
पीड़ितजनों के लिए उनमें हितैषी भावना भर कर समाज को समर्पित
किया। इसी "अजेय योद्धा" जिन्होंने ४ सितम्बर सन् १९८७ ई० को
सायं पांच बजे अपने जीवन के ९६ वर्ष पूरे कर इस नश्वर देह का त्याग
किया, उनकी पुण्य स्मृति में यह ग्रन्थ सादर समर्पित है।

समर्पणकर्त्ता—

"लाजपतराय अग्रवाल"

॥ ओ३म् ॥

पोल खुलते ही पुराणों का, महातम घट गया ।
"बुद्ध" की बुद्धि बंध गई, मद जैन मत का घट गया ॥
दम घुटा तौरेत का, छल बल जबूरी कट गया ।
जी जला इंञ्जील का, दिल बाईबिल का फट गया ॥
सामने कुरआन के ले, वेद चारों अड़ गये ।
मार, मन्त्रों की पड़ी, पर आयतों के झड़ गये ॥
डूब कर गहरे दलायल में, गपोड़े सड़ गये ।
कुल हदीसों के हवाले भी, भंवर में पड़ गये ॥

महाकवि श्री पण्डित नाथूराम शंकर शर्मा "शंकर"

॥ आवश्यक दृष्टव्य ॥

इस विशाल ग्रंथ के विषय में "सम्मति रूप" हजारों पत्र प्राप्त हुए जिनमें से हमने मुख्य-मुख्य पत्रों की सम्मतियों को इसी ग्रंथ के प्रथम भाग के अन्त में प्रकाशित करा दिया है। पाठकगण वहां देख सकते हैं।

हम कष्ट के लिए क्षमा चाहते हैं।

निवेदक—
"लाजपत राय अग्रवाल"

—अमर स्वामी सरस्वती"

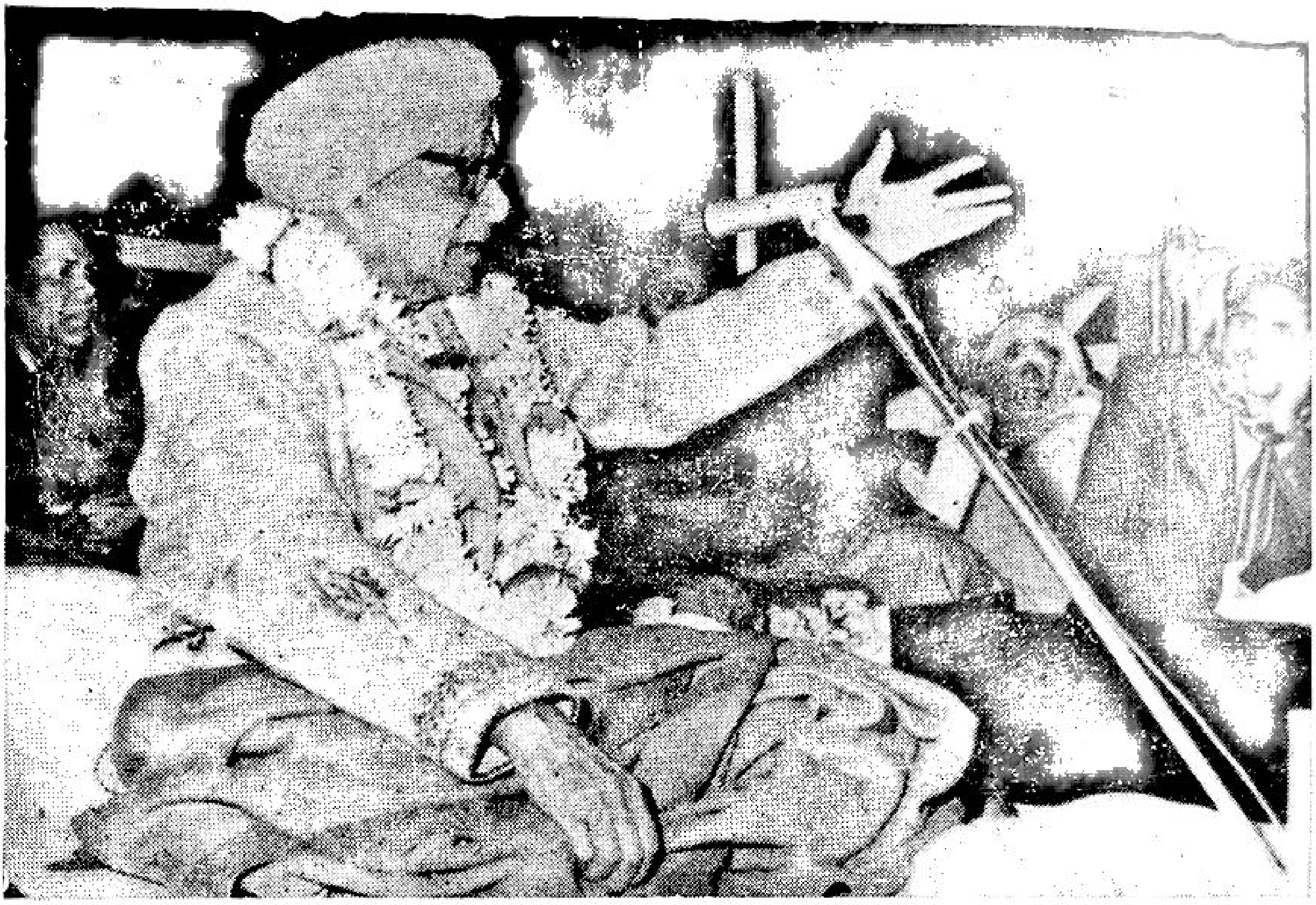


निगाहें कामिलों पर पड़ ही जाती हैं जमाने की।
कहीं छिपता है "अकबर" फूल पत्तों में निहां होकर ॥

परिचय—भारत की उर्वर वसुन्धरा ने विश्व को ज्ञान और ज्ञानी दिये हैं, कर्मवीर देश-भक्त दिये हैं। आदिकाल से अब तक विद्वानों और सद्विवेकियों की परम्परा ने अपने ज्ञान के आलोक से अविद्या अन्धकार को छिन्न-भिन्न किया। आर्य समाज ने अक्षपाद गौतम न्यायदर्शनकार के विद्यालय में दीक्षित रूढ़िग्रस्त धारणाओं पर कठोर प्रहार करने वाले तार्किक एवं शास्त्रार्थ महारथी उत्पन्न किये। स्वनाम धन्य स्वामी दर्शनानन्द पण्डित प्रवर गणपति शर्मा, आर्य पथिक पण्डित लेखराम, पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी जैसे शास्त्रार्थ महारथियों की शृंखला में आर्य जगत के विख्यातनामा "श्री अमर स्वामी जी महाराज" हैं आपका जन्म वि० सं० १६५१ चैत्र शुक्ल प्रतिपदा को ग्राम अरनियां, जिला बुलन्दशहर में हुआ था, आपके पिता का नाम श्री ठाकुर टीकम सिंह जी तथा माता का नाम श्रीमती राजकुमारी देवी था। आपने अनेकों सम्प्रदायों से विभिन्न विषयों पर शास्त्रार्थ किये। शास्त्रार्थ समर में आपकी चहुंमुखी तलवार चलती है। आपकी प्रतिभा की प्रशंसा विरधी भी करते हैं। यह कम गौरव की बात नहीं है। आपने अपने जीवन में सैकड़ों युवक तैयार किये जो आज देश के कौने-कौने में वैदिक धर्म का प्रचार कर रहे हैं। आप इस ६२ वर्ष की आयु में अब भी वैदिक धम के प्रचार में संलग्न है। वर्तमान समय में आर्य समाज के अन्दर आपकी सानी का अन्य कोई सन्यासी नहीं है। स्वामी जी में प्रकाण्ड पाण्डित्य, पैनी तर्क शक्ति के दर्शन आज भी इनके साहित्य से किये जा सकते हैं। स्वामी जी के बारे में लिखना सूर्य को दीपक दिखाने के समान है।

"शिव कुमार शास्त्री"
(भू० पू० संसद सदस्य)

इस वृद्धावस्था में भी श्री अमर स्वामी जी महाराज का शास्त्रार्थ गर्जन—



"आये कोई माई का लाल मैदान में"

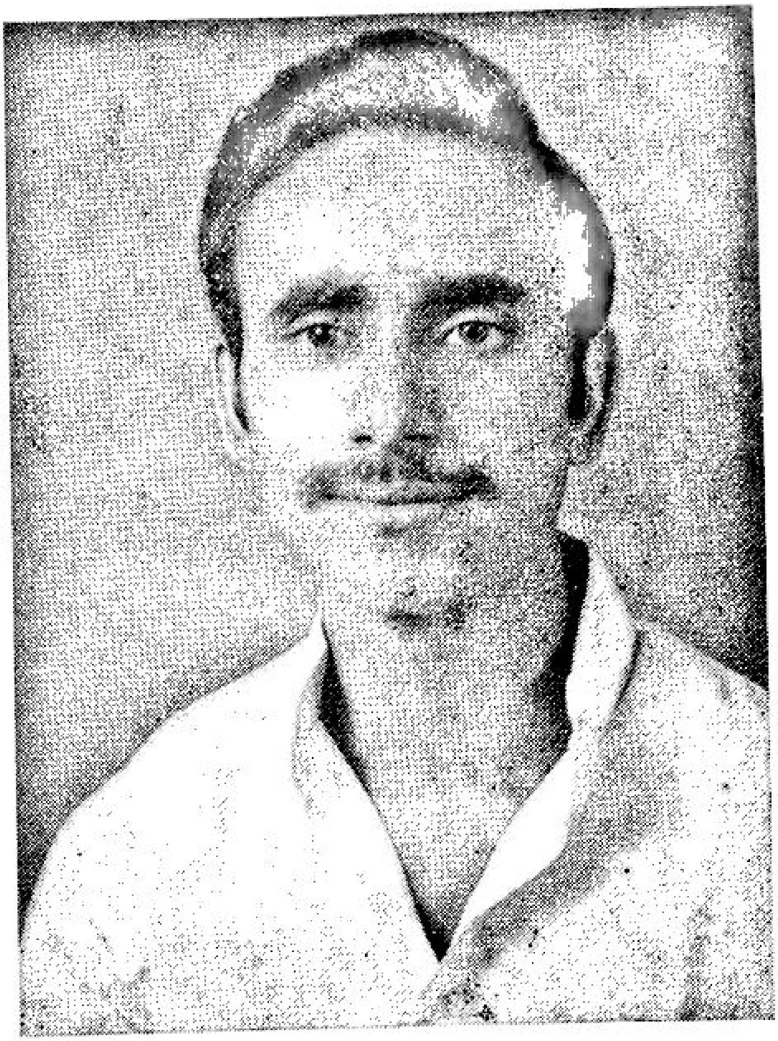
यह विरक्त, यह वीर पुरुष, यह अमर स्वामी सन्यासी। पाखंडों का सदा सदा विद्रोही, ईश विश्वासी ॥
जीवन भर जो रहा पूजता वैदिक आदर्शों को। सदा सदा आमन्त्रित करता आया संघर्षो को ॥
वेद ज्योति से अपने जीवन को ज्योतित कर डाला। निज वाणी से लेखनी से, जग अलौकिक कर डाला ॥
शास्त्र समर में यह योद्धा जिस जां पर अड़ जाता है। कौन हिला पाये अंगद का पांव गड़ जाता है ॥
दयानन्द का सैनिक यह सेनानी यह आर्य सेना का। बढ़ा जिधर को ॐ ध्वजा ले, फहरी विजय पताका ॥
तर्क बाण, जब यह प्रमाण का वेत्ता बरसाता है। पाखंडों का दुर्ग धराशाही हो गिर जाता है ॥
क्या साहस ले, साम्प्रदायवादी विवाद की ठाने। हैं पुराण, कुरआन, बाईबिल सब जाने पहचाने ॥
इसी मनस्वी, ज्ञान वारिधि का यह अभिनन्दन है। इस विरक्त के स्वागत में पुलकित हर्षित जन मन है ॥
जुग जुग जिये, सदा चमके तेजस्वी! तेरा जीवन। यही कामना है ईश्वर से, "शरर" यही अभिनन्दन ॥

"प्रो० उत्तम चन्द शरर" एम० ए०
(पानीपत)

प्रस्तुत पुस्तक के प्रकाशक एवं संग्रहकर्त्ता व सम्पादक—

परिचय—प्रिय लाजपत राय जी एक अच्छे योग्य एवं होनहार युवक है। इनकी कार्य करने की लगन अद्भुत हैं, इनका जन्म एक प्रसिद्ध सम्पन्न अग्रवाल वंश में हुआ एवं ये भी अपने पूर्वजों की भांति रात-दिन वैदिक धर्म के प्रचार एवं प्रसार में संलग्न है। इनके परिवार को मैं अच्छी तरह जानता हूं। इनके परिवार में से ही इनके तायरे भाई **"श्री कृष्ण चन्द जी" जो दिल्ली राज्य के उप-राज्यपाल भी रहे**। जिला सहारनपुर में इनके यहां अच्छी-खासी जमींदारी है। श्री लाजपत राय जी के बाबा "श्री लाला महताबराय जी" आदि कट्टर ऋषि भक्त थे बड़े-बड़े विद्वानों का इनके यहां आना-जाना रहता था।

आर्य जगत के मूर्धन्य विद्वान श्री अमर स्वामी जी ने सैंकड़ों इतने बड़े-बड़े विद्वान, अपने पास रखकर तैयार किये हैं जो सारे देश में वैदिक धर्म का प्रचार एवं प्रसार कर रहे हैं, श्री लाजपत राय जी भी उन्हीं में से एक हैं।



"LAJ PAT RAI AGGARWAL" (Govt. Contractor)

श्री लाजपत राय जी के स्तुत्य प्रयास से ही यह शास्त्रार्थों का संग्रह तैयार हो सका, परमेश्वर इनको दीर्घायु प्रदान करें एवं ये हमेशा अपने कार्यों में सफलता प्रदान करें। इसके साथ-साथ श्री अमर स्वामी जी भी धन्यवाद के पात्र है जिन्होंने अपने कठिन तप व त्याग से ऐसे अद्भुत लगनशील रत्न तैयार किये हैं।

श्री लाजपत राय जी एक अच्छे राजकीय ठेकेदार भी हैं, जो इस समय विद्युत् विभाग व जल निगम आदि अन्य सम्मानित सरकारी विभागों में कार्यरत हैं, इनको सभी सिविल के निर्माण कार्यों का एक अच्छा अनुभव है। बल्कि यों कहिए जो एक अच्छे कान्ट्रेक्टर (ठेकेदार) के अन्दर अपनी स्वयं की प्रतिभा होनी चाहिए, वो इनमें मौजूद है। इतने व्यस्त कार्यों में से भी समय निकाल कर वैदिक धर्म के प्रचार हेतु प्रकाशन विभाग को चलाना, इनकी लग्न का एक नमूना है।

वैदिक धर्म का—
"बिहारीलाल शास्त्री काव्यतीर्थ"
(बरेली)

॥ ओ३म् ॥

भारत के शुभ नभ मण्डल में,
हुए अनेकों पथगामी ।
एक उन्ही में थे उज्जवल तारा,
श्री श्रद्धेय अमर स्वामी ॥

—"सम्पादक"

विषयानुक्रमणिका

क्र० सं०	स्थान	शास्त्रार्थ कर्त्ता	सन्	विषय	पृष्ठ संख्या
१.	लाहौर (वर्तमान पाकिस्तान)	श्री पण्डित विश्वबन्धु जी शास्त्री एवं अन्य विद्वान तथा श्री पण्डित भगवद्दत्त जी रिसर्चस्कालर एवं अन्य विद्वान	१९३१ ई०	"यास्क" वेद में इतिहास मानते थे या नहीं ?	२१
२.	खुर्जा (बुलन्दशहर) उत्तर प्रदेश	श्री पण्डित तुलसीराम शर्मा तथा श्री पण्डित त्रिवेणीदत्त शर्मा	१८९० ई०	क्या मूर्ति पूजा वेदानुकूल है ?	११९
३.	सेहोर (अलीगढ़) उत्तर प्रदेश	श्री पादरी अब्दुल हक साहिब तथा श्री पण्डित शिवशर्मा जी	१९३३ ई०	ईश्वरीय ज्ञान बाइबिल है या वेद ?	१४०
४.	"नीमच" छावनी मध्य प्रदेश	श्री साधु ईश्वरानन्द जी सरस्वती तथा श्रीयुत् पण्डित ज्वालादत्त जी शर्मा	१८९५ ई०	क्या मूर्तिपूजा एवं मृतक श्राद्ध वेदानुकूल हैं ?	१५६

क्र० सं०	स्थान	शास्त्रार्थ कर्त्ता	सन्	विषय	पृष्ठ संख्या
५.	लोहानीपुर (बांकीपुर) पटना (बिहार)	श्री पण्डित चन्द्रशेखर जी भट्ट तथा श्री पण्डित शिवशंकर जी चौधरी काव्यतीर्थ	१८९७ ई०	क्या मूर्तिपूजा वेदानुकूल है ?	१६७
६.	सुजानगढ़ (चुरु) राजस्थान	श्री पण्डित मंगल दत्त जी शास्त्री तथा श्री पण्डित कालूराम जी शास्त्री	१९२९ ई०	परमेश्वर निराकार है या साकार ?	१८६
७.	चन्दौसी (उ० प्र०)	श्री पण्डित अखिलानन्द जी कविरत्न तथा श्री पण्डित देवेन्द्र नाथ जी सांख्यतीर्थ	१९३३ ई०	क्या शूद्रों को शिक्षा, पूजन, पाठ, एवं मन्दिरों में प्रवेश करना वेदानुकूल है ?	२०१
८.	अमलसाड़ (सूरत) गुजरात	श्री पण्डित बाल कृष्ण जी शर्मा तथा श्री पण्डित छोटू जी महाराज	१९०६ ई०	पुराणादि ग्रन्थ, वेद और सृष्टी क्रम के विरुद्ध हैं	२१८
९.	आर्यपुरा (सब्जीमण्डी) दिल्ली	श्री अमर स्वामी जी सरस्वती तथा श्री पण्डित प्रेमाचार्य जी शास्त्री	१९७५ ई०	वर्ण व्यवस्था जन्म से है या कर्म से ?	२६४

क्र० सं०	स्थान	शास्त्रार्थ कर्त्ता	सन्	विषय	पृष्ठ संख्या
१०.	प्राचीन समाचार पत्रों से	श्री पण्डित गंगा प्रसाद जी उपाध्याय तथा- श्री अमर स्वामी जी सरस्वती	१८८४ ई०	क्या संस्कार विधि की "यज्ञ विधि" वेदानुकूल है ?	३०८
११.	जाखलमण्डी (हिसार) हरियाणा	श्री पण्डित लोक नाथ जी तर्क वाचस्पति तथा श्री पण्डित श्री कृष्ण शास्त्री	१९१४ ई०	स्वामी दयानन्द कृत ग्रन्थ वेद विरुद्ध हैं या अष्टादश पुराण ?	३४३
१२.	पानीपत (हरियाणा)	श्री स्वामी कर्मानन्द जी महाराज तथा बनारस के अनेकों दिग्गज पण्डित	१९३३ ई०	क्या ईश्वर सृष्टिकर्त्ता है ?	३८५
१३.	काशी (उत्तर प्रदेश)	श्री स्वामी दयानन्द जी सरस्वती तथा श्री स्वामी विशुद्धानन्द जी सरस्वती	१८६९ ई०	क्या मूर्ति पूजा वेदोक्त है ?	४१५
१४.	गांधी मैदान (दिल्ली)	श्री ब्रह्मचारी वेदव्रत जी मिमांसक तथा श्री पण्डित ओमप्रकाश जी शास्त्री विद्याभास्कर	१९७४ ई०	क्या मृत्यु का समय निश्चित है ?	४३६

क्र० सं०	स्थान	शास्त्रार्थ कर्त्ता	सन्	विषय	पृष्ठ संख्या
१५.	जम्मू (कश्मीर) राज दरबार	महात्मा हंसराज जी, स्वामी अच्युतानन्द जी तथा बाबा ब्रह्मानन्द सरस्वती एवं श्री कृष्ण शास्त्री	१८९० ई०	क्या मूर्ति पूजा वेदोक्त है ?	५६७
१६.	—	—	—	अगले प्रकाशन के सम्बन्ध में आवश्यक घोषणा	५७२

आवश्यक द्रष्टव्य

निर्णय के तट पर (प्राचीन शास्त्रार्थों का संग्रह) ग्रन्थ का यह चौथा खण्ड आपके हाथों में है, इसके पांचवें खण्ड के प्रकाशन की तैयारी भी की जा रही है। जिसमें अत्यन्त प्रामाणिक एवं प्राचीन शास्त्रार्थों का समावेश किया जावेगा, जो इस श्रंखला का अन्तिम खण्ड होगा ! पूर्ण जानकारी के लिए प्रकाशन से सम्पर्क स्थापित करें !!

॥।

पूर्व छपे तीनों खण्डों में ९७ शास्त्रार्थों का समावेश हो चुका है। अब इस चौथे खण्ड में ९८वे शास्त्रार्थ से आरम्भ करके इसका समापन ११२वें शास्त्रार्थ पर किया जाता है। अब पांचवें भाग में ११३वें शास्त्रार्थसे आरम्भ किया जावेगा !

—निवेदक
"लाजपत राय अग्रवाल"

प्रस्तुत ग्रन्थ के विषय में

ज्ञान मिला तो सब मिला, सकल शास्त्र का भेद ।
ज्ञान बिना सब नरक है, पढ़ा न जिसने वेद ।।

पूज्यपाद अमर स्वामी जी महाराज के विषय में समस्त आर्य जनता भली भांति जानती है कि वे तार्किक शास्त्रार्थ महारथी थे । आर्ष ग्रन्थों व वेदों का स्वाध्याय कर पूज्य स्वामी जी ने विरोधी मतावलम्बियों से कभी हार नहीं मानी थी । उन्हीं की अन्तिम इच्छा के अनुसार श्रद्धेय भाई श्री लाजपत राय जी अग्रवाल (प्रबन्धक) अमर स्वामी प्रकाशन विभाग, गाजियाबाद ने अनेकों परेशानियों के बावजूद प्रस्तुत ग्रन्थ निर्णय के तट पर (भाग ४) का जो सफल प्रकाशन किया है उसे देखकर अनायास ही ऐसे कर्मशील व्यक्तित्व के प्रति श्रद्धा उत्पन्न होती है जो कार्य आर्य समाज की बड़ी-बड़ी संस्थायें भी नहीं कर पा रही हैं । एक व्यक्ति अविचलित भाव से लगातार कर रहा है । यह उनकी निष्ठा व लगन तथा पूज्य स्वामी जी के प्रति अगाध श्रद्धा का परिचायक है । ग्रन्थ की सामग्री को इकट्ठा करने व छपाने में अधिक समय लगा है । जिससे इन्तजार की घड़ियों में बैठे सज्जनों का अधीर होना स्वाभाविक ही है । लेकिन ग्रन्थ में उपलब्ध सामग्री की उपादेयता को देखते हुए पाठक गण प्रकाशन में हुए विलम्ब को नजर अन्दाज कर स्वाध्याय शील व्यक्ति इस ग्रन्थ से पूरा ज्ञान लाभ उठायेंगे ।

—निवेदक
रामभूल शर्मा
(पूर्व लेखाधिकारी) सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा
नई दिल्ली

अट्ठानवेवां शास्त्रार्थ आरम्भ

शास्त्रार्थ प्रेमियों से निवेदन

मेरा निवेदन मात्र यह है कि, इस तरह की खण्डन-मण्डनात्मक सामग्री हर व्यक्ति को पसन्द नहीं आती, परन्तु कुछ व्यक्तियों को बहुत पसन्द आती है, क्योंकि इससे प्रत्येक बात के वास्तविक रूप का पता चल जाता है। मेरा उनसे निवेदन है कि, अगर उनको कोई ऐसी शास्त्रार्थ सम्बन्धी सामग्री प्राप्त हो जो इस ग्रन्थ निर्णय के तट पर के पूर्व छपे चारों भागों में न आ पाई हो, मुझे अविलम्ब सूचित करें। ताकि मैं उसे प्राप्त कर इस श्रृंखला के पांचवें (अन्तिम) भाग में उसका समावेश करा सकूं।

मैं उन सज्जनों का हृदय से आभार मानूंगा। पांचवें भाग के सम्बन्ध मे पूर्ण जानकारी हेतु प्रकाशन से सम्बन्ध स्थापित् करें।

—निवेदक

"लाजपत राय अग्रवाल"

अट्ठानवेवां शास्त्रार्थ--

[आर्य समाज के दिग्गज विद्वानों का शास्त्रार्थ]

स्थान : लाहौर (प्रि० श्री लाला साईदास जी की कोठी) वर्तमान पाकिस्तान

दिनांक : १८ मई से २२ मई सन् १९३१ ई०

विषय : निरुक्तकार "यास्क" वेद में इतिहास मानते थे या नहीं ?

"वेद में इतिहास है" इस पक्ष के शास्त्रार्थकर्त्ता : श्री प्रो० पण्डित राजाराम जी शास्त्री,
श्री पण्डित विश्वबन्धु जी शास्त्री, एम० ए०
श्री पण्डित चारुदेव जी शास्त्री एम० ए०,

"वेद में इतिहास नहीं है" इस पक्ष के शास्त्रार्थकर्त्ता : श्री पण्डित भगवद्दत्त जी रिसर्च-स्कालर
श्री पण्डित ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु
श्री पण्डित बुद्धदेव जी मीरपुरी
श्री पण्डित ठाकुर अमरसिंह जी शास्त्रार्थ-केसरी (अमरस्वामी सरस्वती)
श्री पण्डित गुरुदत्त जी शास्त्री (अध्यापक)

शास्त्रार्थ में उपस्थित अन्य विद्वान : १. सर्व श्री महामहोपाध्याय पण्डित आर्यमुनि जी, २. पण्डित शंकरदेव जी व्याकरणाचार्य, ३. पण्डित प्रियरत्न जी आर्य (स्वामी ब्रह्ममुनि) ४. महता रामचन्द्र जी शास्त्री, ५. स्वामी अच्युतानन्द जी, ६. महात्मा नारायण स्वामी जी, ७. स्वामी नित्यानन्द जी तीर्थ (पण्डित रलाराम जी) ८. प्रिंसीपल देवीचन्द जी, ९. स्वामी सर्वदानन्द जी महाराज, १०. प्रिंसीपल बहादुर मल्ल जी, ११. पण्डित वैद्य रामगोपाल जी शास्त्री (वैदिक रिसर्च-स्कालर), १२. पण्डित रामलाल जी शास्त्री (आचार्य पण्डित विश्वश्रवा जी)

शास्त्रार्थ के लेखक : १. सर्वश्री लाला खुशहालचन्द जी खुर्सन्द (आनन्द स्वामी) २. ब्रह्मचारी याज्ञवल्क्य, ३. ब्रह्मचारी यशःपाल, ४. पण्डित रघुनन्दन, जी ५. पण्डित वाचस्पति जी

शास्त्रार्थ के प्रधान : श्री महात्मा हंसराज जी

नोट : यह शास्त्रार्थ-सामग्री पूज्य अमर स्वामी जी महाराज के विशाल पुस्तकालय में "रामलाल कपूर ट्रस्ट द्वारा फरवरी सन् १९७५ की छपी" पुस्तिका रूप में मिली, जिस पर पृष्ठभूमि पूज्य अमर स्वामी जी महाराज ने स्वयं लिखी है। क्योंकि स्वामी जी महाराज इस शास्त्रार्थ में स्वयं "शास्त्रार्थकर्त्ता" के रूप में विद्यमान थे।

निवेदक—
"लाजपतराय अग्रवाल"

शास्त्रार्थ से पहले

—"अमर स्वामी सरस्वती"

श्री पण्डित विश्वबन्धु जी शास्त्री एम० ए० :—

सन् १६१६ ई० में पण्डित विश्वबन्धु जी ने ओरियन्टल कालिज लाहौर से संस्कृत द्वारा एम० ए० परीक्षा उत्तीर्ण की। वह आर्य समाजी युवक थे, आर्य समाज अनार कली लाहौर के सत्संगों में आया करते थे, श्री महात्मा हंसराज जी के निकट भी उनका जाना-आना होता रहता था। श्री महात्मा हंसराज जी ने उनको होनहार युवक समझकर "दयानन्द एंग्लो वैदिक मैनेजिंग कमेटी" द्वारा उनको लाइफ मेम्बर (आजीवन सदस्य) बनवा दिया था, उस समय १२५ रु० मासिक वेतन लाइफ मेम्बर को मिलता था, २० हजार रुपये की लाइफ़ इन्श्योरेंस कम्पनी लाइफ़ इन्श्योर करा दी जाती थी और एक आना प्रति रुपया के हिसाब से मासिक वेतन में बोनस काटा जाता था, कालिज कमेटी उस कटे हुए धन को दो गुणा करके बैंक में जमा करा देती थी, रिटायर (कार्यमुक्त) होने पर ब्याज सहित बोनस का रुपया मिल जाता था तथा इन्श्योरेंस का पैसा भी मिल जाता था, पेन्शन नहीं मिलती थी, न ही होती थी।

पण्डित विश्वबन्धु पहली बार लाइफ़ मेम्बर बन कर, आर्य समाज लोहगढ़ (अमृतसर) के उत्सव पर श्री महात्मा हंसराज जी के साथ तथा आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा की ओर से मैं (अमर सिंह) भी उस उत्सव पर उपस्थित था, श्री महात्मा जी ने मेरा उनको और उनका मुझ (ठाकुर अमर सिंह आर्य पथिक) का आपस में परिचय कराया, उत्सव में पण्डित विश्वबन्धु जी की प्रशंसा की गई। सभी ने प्रसन्नता व्यक्त की। पण्डित विश्वबन्धु जी को कहा गया कि—आप दयानन्द ऐंग्लोवैदिक कालिज के प्रोफ़ेसर बन जाइये, पण्डित विश्वबन्धु जी ने कहा कि—मुझको तो संस्कृत महाविद्यालय का आचार्य (प्रिंसिपल) बना दीजिये। श्री महात्मा जी ने यह स्वीकार कर लिया और कालिज कमेटी से स्वीकार भी करा दिया। जो कापी मेरे सामने राम लाल कपूर ट्रस्ट द्वारा छपी हुई रखी हैं, इसमें बहुत-सी बातें नहीं आ पाईं[1]। इस कालिज कमेटी के आधीन संस्कृत महाविद्यालय—"**वैदिक आश्रम**" नाम से लाहौर में ही स्थित था। उसके आचार्य (प्रिंसिपल) श्री पण्डित भक्तराम जी शास्त्री वेदतीर्थ थे, उनको इस विद्यालय से रिटायर कर दिया गया और पण्डित विश्वबन्धु जी को इस ही विद्यालय का आचार्य बनाया गया और श्री पण्डित विश्वबन्धु जी ने इस—"**वैदिक आश्रम**" का नाम "**श्री मद्दयानन्द ब्राह्म महाविद्यालय**" रखा, जिसे डी० ए० वी० कालिज कमेटी ने स्वीकार कर लिया, विद्यालय बहुत

टिप्पणी :—

[1]छपी हुई पुस्तक की पृष्ठभूमि में तथा उपरोक्त पृष्ठभूमि में कितना अन्तर है? आप स्वयं पढ़ लीजिये, नीचे हम उस छपी हुई पुस्तक जो सन् १९७५ ई० में **श्री पण्डित युधिष्ठिर जी मीमांसक** द्वारा दी गई है, उद्धृतकरते हैं।

॥ ओ३म् ॥

(आर्य समाज के दिग्गज विद्वानों का शास्त्रार्थ)

विषय :— "निरुक्तकार यास्क" "वेद में इतिहास मानते थे या नहीं ?"

—प्रस्तावना—

—"युधिष्ठिर मीमांसक"

आज से लगभग ४२ वर्ष पूर्व श्री महात्मा हंसराज जी की अध्यक्षता में आर्य समाज के कतिपय दिग्गज वैदिक विद्वानों के मध्य यह शास्त्रार्थ १८ मई से २२ मई सन् १६३१ ई० तक लाहौर में श्री प्रिंसिपल साईंदास जी की कोठी (क्रमशः)

ही अच्छा चला, पढ़ाई बहुत ही अच्छी होती थी, विद्यार्थी सारे भारतवर्ष से ही नहीं बल्कि—मारीशस तक से प्रविष्ट होने लगे, "विद्यारत्न" तथा "विद्यानिधि" व "विद्या वाचस्पति" की परीक्षाएं होने लगीं और पंजाब विश्वविद्यालय (युनिवर्सिटी) से स्वीकृत करा लिया कि यहां का विद्यावाचस्पति परीक्षोत्तीर्ण विद्यार्थी विश्वविद्यालय की शास्त्री परीक्षा दे सकेगा, अर्थात् शास्त्री तक इस विद्यालय में पढ़ाई होती थी और यहां के विद्यार्थी बहुत ही योग्य होते थे, सारे देश में, दयानन्द ब्राह्म महाविद्यालय का नाम प्रसिद्ध हो गया।

दुर्भाग्योदय—

सन् १९२८ ई० के बाद हम लोगों को यह पता लगा कि पण्डित विश्वबन्धु जी विद्यार्थियों को यह पढ़ाते हैं कि—"**सृष्टि के आरम्भ में ईश्वर ने योगी-ऋषियों को समाधि अवस्था में वेद का ज्ञान दिया, ऋषियों ने समाधि खुलने पर उस ईश्वर प्रदत्त ज्ञान को अपनी भाषा में छन्दोबद्ध किया।**" समाधि अवस्था में जो ज्ञान ऋषियों को मिला था, वह समाधि उठने पर पूरा स्मरण नहीं रहा, कम हो गया, फिर भाषा में व्यक्त करने में भी वह कुछ बदल गया, ऋषियों ने छन्द

टिप्पणी—

पर हुआ था। इस शास्त्रार्थ को उसी समय लिपिबद्ध किया गया था। इनमें श्री लाला खुशहाल चन्द जी (वर्तमान में श्री पूज्य आनन्द स्वामी जी), श्री पण्डित वाचस्पति जी एम० ए० तथा पण्डित रघुनन्दन शास्त्री, आर्य प्रादेशिक सभा से सम्बद्ध व्यक्ति थे। तथा ब्रह्मचारी याज्ञवल्क्य और ब्रह्मचारी यशःपाल, श्री पण्डित ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु, ये विरजानन्द आश्रम के छात्र थे। यह शास्त्रचर्चा दिनांक १८, १९ व २१ मई को सायं और प्रातः दोनों समय और २०, २२ मई को प्रातःकाल हुई थी। इन अधिवेशनों की कार्यवाही जिन व्यक्तियों ने लिखी उसका विवरण इस प्रकार है—१८ मई १९३१ को प्रातः,—१. लाला खुशहालचन्द, २. ब्र० याज्ञवल्क्य, ३. ब्र० यशःपाल जी तथा १८ मई को सायं तथा १९ मई को प्रातः,—१. पण्डित रघुनन्दन, २. ब्र० याज्ञवल्क्य, ३. ब्र० यशःपाल जी तथा १९ मई को सायं व २० तारीख को प्रातः,—१. पण्डित रघुनन्दन, २. पण्डित वाचस्पति, ३. ब्र० याज्ञवल्क्य, ४. ब्र० यशःपालजी तथा २१ तारीख को प्रातः एवं सायं और २२ मई सन् १९३१ ई० को प्रातः,—१. पण्डित वाचस्पति, २. ब्र० याज्ञवल्क्य, ३. ब्र० यशःपाल जी लेखक रूप में रहे। इन लेखकों के अनुसार लिखी गई सामग्री के आधार पर आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा के साहित्य विभाग के अध्यक्ष, पण्डित वाचस्पति जी एम० ए० ने एक प्रामाणिक कापी तैयार की, इससे दो कापियां तैयार की गईं, एक सभा के कार्यालय में रखी गई, दूसरी कापी को श्री पण्डित ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु ने अपने पास रखा, जिसे पाकिस्तान बनने पर लाहौर से अपने साथ ले आये।

यह शास्त्रार्थ विद्वानों के मध्य में शास्त्र-तत्त्व-निर्णय के लिए हुआ था, सार्वजनिक नहीं था। अतः इसे उस समय प्रकाशित नहीं किया गया। इस शास्त्र-चर्चा में प्रमुख रूप से भाग लेने वाले प्रायः "**सभी विद्वान इस समय यशःकाय-परिनिष्ठ (दिवंगत) हो गये हैं**" अतः यह शास्त्र-चर्चा अत्यन्त महत्त्वपूर्ण थी, अतः "**हम इसे सुरक्षित करने की दृष्टि से प्रकाशित कर रहे हैं**"स्व० श्री पण्डित ब्रह्मदत्त जी के संग्रह में हमें जो कापी मिली है उसे हम सर्वथा उसी रूप में छाप रहे हैं, लेखक प्रमादजन्य साधारण अशुद्धियां तो ठीक कर दी हैं, परन्तु कहीं पर कुछ भी घटाया-बढ़ाया नहीं है। अतः "**आर्य समाज के इस १०० वर्ष के इतिहास की यह एक महत्वपूर्ण घटना है**" इसलिए हम आर्य समाज स्थापना शताब्दी के उपलक्ष्य में इसे पुस्तक रूप में प्रकाशित कर रहे हैं, आशा है, स्वाध्याय-प्रेमी आर्यजनों के लिए यह अवश्य उपयोगी होगा। (छपी कापी से उद्धृत)

—संकलनकर्त्ता,

"लाजपतराय अग्रवाल"

बनाये, छन्दों के बन्धन और अलंकारों के बन्धनों से कुछ गड़बड़ हुआ, अच्छा भी बहुत रह गया, कुछ मिल भी गया, कुछ बुरा भी आ गया। वेदों की रचना ऋषियों ने की और उसमें अपने समय और अपने से पहले लोगों का इतिहास भी जो ऋषियों के मन्त्रों से मेल खाता था, वह डाल दिया, इतने पाठ से यह सार निकला कि—"**१. वेद ऋषियों ने बनाये, २. मन्त्र ऋषियों के बनाये हुए हैं, ३. मन्त्र बनाने वालों के नाम उन मन्त्रों के साथ जुड़े हैं, ४. वेद में इतिहास भी है, ५. वेदों में पशु-हिंसा, मांस, भक्षण आदि की बातें भी मिल गई हैं, आदि-आदि।**" ऋषि दयानन्द जी के वेद भाष्य के विषय में वह यह कहते हैं कि—"**ऐसा और इससे अच्छा भाष्य तो मैं कुछ लेखक रखकर बना सकता हूं।**" मेरी (ठाकुर अमरसिंह आर्य पथिक) तथा पण्डित विश्वबन्धु जी शास्त्री के बीच प्रगाढ़ मैत्री थी। पण्डित वाचस्पति जी एम० ए० उस विद्यालय में विद्यार्थी थे, विद्यावाचस्पति परीक्षा उन्होंने वहीं से पास की थी, वह भी मेरे गहरे मित्रों में से थे, उनसे इन बातों की पुष्टि हुई, श्री रामगोपाल जी शास्त्री (वैद्य और रिसर्च-स्कालर) उस विद्यालय में अध्यापक थे। उन्होंने भी बताया कि पण्डित विश्वबन्धु जी ऐसा ही पढ़ाते हैं, हम लोग उनके मन्तव्यों को मानते नहीं हैं, हम लोग तो ऋषि दयानन्द जी के मन्तव्यों को मानते हैं। इस कारण हमारा विरोध भी चलता है। मैंने मित्रता के नाते उनको क्वेटा-बिलोचिस्तान से पत्र लिखा कि—मित्रवर पण्डित विश्वबन्धु जी! मैं यह सुन रहा हूं कि—"आप विद्यार्थियों को ऐसा-ऐसा पढ़ाते हैं (विस्तार से लिखो।) यह अच्छी बात नहीं है, आप ऐसी शिक्षा विद्यार्थियों को न दीजिये," इसके उत्तर में उन्होंने लिखा कि—"मित्रवर ठाकुर जी! मैं जैसा मानता हूं वैसा ही विद्यार्थियों को पढ़ाता हूं, वैसा न पढ़ाऊं तो यह उनके साथ विश्वासघात होगा और आप हम सब युवकों को अपना क्षेत्र भी बनाना चाहिये, इसलिए आप भी मेरे साथ होवें, मैंने पुनः पत्रोत्तर दिया कि—"**डी० ए० वी० कालिज कमेटी ने आपको और ऋषि दयानन्द के मन्तव्यों को पढ़ाने के लिए उस विद्यालय का आचार्य बनाया है, उन सिद्धान्तों को न पढ़ाकर उसके विरुद्ध अपने मन्तव्यों को पढ़ाकर आप डी० ए० वी० कालेज कमेटी और समस्त आर्य समाज के साथ विश्वासघात कर रहे हैं।**" इस पत्र का उत्तर पण्डित विश्वबन्धु जी ने नहीं दिया। अब मेरी तथा पण्डित वाचस्पति जी एम० ए०, श्री पण्डित भगवद्दत्त जी रिसर्च-स्कालर आदि दयानन्द के भक्तों की विश्वबन्धु जी के विरुद्ध नित्य विचार की सभा श्री पण्डित वजीरचन्द जी शर्मा (पुस्तक प्रकाशक और विक्रेता) की दुकान "**वैदिक पुस्तकालय**" पर होने लगी। आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा का आर्योपदेशक मण्डल था, सभा के महोपदेशक श्री महता रामचन्द्र जी शास्त्री उसके प्रधान थे और मैं (अमर सिंह आर्य पथिक) उस मण्डल का मन्त्री था, सारे उपदेशक मण्डल को साथ लेकर मैंने पण्डित विश्वबन्धु जी के विरुद्ध आन्दोलन आरम्भ कर दिया, मेरे द्वारा होते हुए इस आन्दोलन को सुनकर पण्डित विश्वबन्धु जी ने आर्य समाज-अनारकली में, मेरी शिकायत की। आर्य समाज अनारकली में उनका बड़ा प्रभाव था, आर्य समाज-अनारकली की अन्तरंग सभा में श्री विशम्भर दयाल सेठी नामक एक वकील सज्जन ने मेरे विरुद्ध एक प्रस्ताव रखा—"ठाकुर अमरसिंह उपदेशक, आचार्य विश्वबन्धु जी के विरुद्ध आन्दोलन करते हैं आर्य प्रादेशिक सभा को यह प्रस्ताव भेजा जाय कि—सभा उनको "**डिसमिस**" कर दे" पण्डित वाचस्पति जी भी अन्तरंग सदस्य थे, उन्होंने "डिसमिस" शब्द को अपमानजनक और अशिष्टतापूर्ण बताया, अन्त में प्रस्ताव बहुमत से पास हुआ कि—"**ठाकुर अमरसिंह उपदेशक, आचार्य विश्वबन्धु जी के विरुद्ध आन्दोलन करते हैं, सभा उनके विरुद्ध उचित कार्यवाही करे**" यह प्रस्ताव सभा के पास भेज दिया गया। श्री लाला खुशहालचन्द जी सभा मन्त्री थे, श्री महात्मा हंसराज जी के पास यह बात पहुंची तो उन्होंने मुझको अपने पास बुलाया और यह कहा कि—"**पण्डित जी! आप जो आन्दोलन कर रहे हैं, वह महर्षि दयानन्द और आर्य समाज के सिद्धान्तों के अनुकूल है, इसमें सन्देह नहीं है, परन्तु आर्य समाजों में आप विश्वबन्धु जी के लिए—वेदी बन्द कराने में सफल हो जायेंगे, इसमें मुझको सन्देह है। विश्वबन्धु जी के व्यक्तित्व का आर्य समाजों में बहुत प्रभाव है। आपका इस विषय में क्या विचार है? क्या आपको सफलता की आशा है?**" मैंने इतना सुनकर उनको निवेदन किया कि—"महात्मा जी! मुझको आशा ही नहीं बल्कि पूर्ण विश्वास है कि—विश्वबन्धु जी के लिए, आर्य समाज की वेदी अवश्य बन्द होगी, उन्हें आर्य समाज की वेदी को ऋषि दयानन्द के मन्तव्यों के विरुद्ध अपने मन्तव्यों का प्रचार करने के लिए आर्य समाज की वेदी का कदापि प्रयोग नहीं करने दिया जायेगा, दयानन्द ब्राह्म महाविद्यालय के आचार्य पद से हटाना या न हटाना आपके अधिकार में है, वेदी बन्द कराना हमारे अधिकार में है, हमारा प्रभाव आर्य समाजों में पर्याप्त है।"

मेरे इस कथन पर श्री महात्मा जी ने कहा—"पण्डित जी ! मेरा हृदय आपके साथ है"। मैंने कहा—महात्मा जी ! आपका हृदय हमारी अथाह सम्पत्ति है।

शास्त्रार्थ की योजना—

महात्मा हंसराज जी ने इस विषय पर शास्त्रार्थ कराने की योजना बना ली कि—"**क्या वेदों में (राजाओं, ऋषियों आदि का अनित्य) इतिहास है ?**" श्री पण्डित राजाराम शास्त्री बड़े विद्वान तथा बड़े ही व्यवहारकुशल, बुद्धिमान व्यक्ति थे। उन्होंने विश्वबन्धु जी को कहा कि—आप यह कदापि मत कहना कि—**"मैं वेदों में इतिहास मानता हूं।"** यदि आपने यह कह दिया—तो सारा आर्य समाज आपके विरुद्ध हो जायेगा। आप केवल यह कहें कि—"**निरुक्त का कर्त्ता—"यास्क" वेदों में इतिहास मानता है, ऐसा मुझको सन्देह है**"। विश्वबन्धु जी ने कहा कि—इसमें आप मेरा साथ देंगे ? पण्डित राजाराम जी ने कहा कि यदि यही सन्देह वाला पक्ष रहेगा तो मैं आपका साथ दूंगा, परन्तु यदि **"वेद में इतिहास है"** नामक विषय होगा, तो मैं साथ देने में असमर्थ होऊंगा। मित्रता के नाते श्री पण्डित चारुदेव जी शास्त्री एम० ए० को भी साथ ले लिया, इस प्रकार उस पक्ष में तीन पण्डित हो गये—१. श्री पण्डित राजाराम जी शास्त्री, २. श्री पण्डित विश्वबन्धु जी शास्त्री एम०ए०, ३. श्री पण्डित चारुदेव जी शास्त्री एम० ए०, तथा इसके विरुद्ध अर्थात् **"वेदों में इतिहास नहीं है"** चार विद्वान रखे गये। १. श्री पण्डित भगवद्दत्त जी रिसर्चस्कालर, २. श्री पण्डित ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु, ३. श्री पण्डित बुद्धदेव जी मीरपुरी, ४. मैं (अमरसिंह आर्य पथिक) शास्त्रार्थकर्त्ता यह दोनों पक्ष के कुल सात ही नियत हुए थे, परन्तु श्री पण्डित गुरुदत्त जी शास्त्री, (अध्यापक डी० ए०वी० हाई स्कूल बटाला, जिला गुरदासपुर) ने श्री पण्डित शिवशंकर जी काव्यतीर्थ को **"वैदिक इतिहासार्थ निर्णय"** नामक ग्रन्थ के आधार पर शास्त्रार्थकर्त्ताओं में सम्मिलित होने का बहुत आग्रह किया तो हमने उनको भी अपनी ओर साथ ले लिया। यह शास्त्रार्थ सार्वजनिक और खुले क्षेत्र में नहीं था, बल्कि श्री लाला साईंदास जी (प्रिंसिपल डी० ए० वी० कालेज) के घर पर हुआ। अन्य विद्वान जो इस शास्त्रार्थ में बुलाये गये थे वह इस प्रकार थे, १. श्री महामहोपाध्याय पण्डित आर्यमुनि जी, २. श्री पण्डित शंकरदेव जी व्याकरणाचार्य, ३. श्री पण्डित प्रियरत्न जी आर्य (जो बाद में स्वामी ब्रह्ममुनि जी बन गये थे) ४. श्री महता रामचन्द्र जी शास्त्री (महोपदेशक, आर्य प्रादेशिक सभा), ५. श्री स्वामी अच्युतानन्द जी, ६. श्री महात्मा नारायण स्वामी जी, ७. श्री स्वामी नित्यानन्द जी तीर्थ (पं० रलाराम जी), ८. श्री प्रिंसिपल देवीचन्द जी (होशियारपुर), ९. श्री स्वामी सर्वदानन्द जी महाराज, १०. श्री प्रिंसिपल पण्डित बहादुरमल जी, ११. श्री पण्डित रामगोपाल जी शास्त्री (वैद्य, वैदिक रिसर्च-स्कालर), १२. श्री पण्डित रामलाल जी शास्त्री (आचार्य पण्डित विश्वश्रवा जी), १३. श्री पण्डित देवप्रकाश जी (अरबी, फ़ाज़िल अमृतसरी), तथा शास्त्रार्थ के अध्यक्ष रूप में श्री महात्मा हंसराज जी को नियत किया गया। इस शास्त्रार्थ में श्री पण्डित बुद्धदेव जी विद्यालंकार (जो बाद में स्वामी समर्पणानन्द जी हो गये थे) की प्रबल इच्छा थी कि मैं भी इस शास्त्रार्थ में उपस्थित रहूं, परन्तु श्री महात्मा हंसराज जी ने उनको प्रविष्ट भी न होने दिया।

वर्तमान छपा हुआ यह शास्त्रार्थ का वर्णन—

क्या यह सम्वाद पूरा है ? जो रामलाल कपूर ट्रस्ट की ओर से माघ सं० २०३१ विक्रमी, फरवरी सन् १९७५ ई० में प्रकाशित हुआ ? नहीं ! बल्कि वास्तविकता यह है कि—श्री पण्डित ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु और श्री पण्डित भगवद्दत्त जी अपना-अपना वक्तव्य लिखकर लाते थे, पण्डित गुरुदत्त जी भी लिखकर लाते थे, पण्डित विश्वबन्धु जी भी लिखकर लाते थे, मैं (अमरसिंह आर्य पथिक) और पण्डित बुद्धदेवजी मीरपुरी लिखकर कभी नहीं लाते थे, जो-जो पण्डित लिखकर लाते

थे, उनका पूरा वक्तव्य इसमें विद्यमान है, श्री पण्डित बुद्धदेव जी मीरपुरी तथा मेरा वक्तव्य [१]चतुर्थांश भी इसमें नहीं आया है। इस शास्त्रार्थ को लेखबद्ध करने हुतु पांच लेखकों को नियुक्त किया गया था, जो नित्य प्रति बैठक में अदल-बदल कर आते रहे। जिनके नाम इस प्रकार हैं—१. श्री लाला खुशहालचन्द जी खुर्सन्द (आनन्दस्वामी), २. ब्रह्मचारी याज्ञवल्क्य, ३. ब्रह्मचारी यश:पाल जी, ४. श्री पण्डित रघुनन्दन जी, ५. श्री पण्डित वाचस्पति जी, कोई भी लेखक, वक्ता के वक्तृत्व को पूरा कभी साथ-साथ लिख नहीं सकता था, बिना शार्ट हैण्ड राईटिंग (सांकेतिक लिपि) के, उसका कोई प्रबन्ध वहां था नहीं।

शास्त्रार्थकर्त्ताओं में से केवल—"**मैं**" (**अमरसिंह आर्य पथिक जो सन्यासी होने पर अब अमर स्वामी के रूप में**) जीवित[२] हूं, और श्रोताओं में केवल "**श्री आचार्य विश्वश्रवा जी**" जीवित हैं।

आंधी ऊपर-ऊपर ही चली गई—

वास्तविकता यह थी कि पण्डित विश्वबन्धु जी, "**वेद में इतिहास मानते थे**" और इस पर बहुत ही दृढ़ थे, आर्य समाज—लोहगढ़, अमृतसर के उत्सव में मेरा व्याख्यान इस विषय पर विशेष रूप से कराया गया कि—"**क्या वेद में राजाओं और ऋषियों का इतिहास है ?**" व्याख्यान बहुत ही प्रभावशाली हुआ, प्रमाणों का बाहुल्य, व दृढ़ युक्तियां व दलीलें और बहुत ही अकाट्य प्रश्न उस व्याख्यान में मौजूद थे। किसी ने श्री पण्डित विश्वबन्धु जी को मेरे व्याख्यान की सूचना दी तो वह बहुत ही क्रोधित हुए। महात्मा नारायण स्वामी जी ने शास्त्रार्थ के अन्तिम दिन अपने भाषण में स्पष्ट कहा था कि—"इतने विचार से पता लगा कि पण्डित विश्वबन्धु जी का निश्चित पक्ष है कि—"**वेदों में इतिहास है**"···यदि पहले से ही इस बात को उनका पक्ष मानकर चलाया जाता, तब अच्छा होता, और साथ में यह भी पता लगता है कि—"उनको जिज्ञासा भी नहीं है।"

पण्डित सभा की छठी बैठक, दिनांक २०-५-३१ सायंकाल वाली सभा में पण्डित विश्वबन्धु जी ने बड़े आवेश में कहा था कि—"**आज विश्वबन्धु को दबा दोगे**" ? **तथा क्या आज ही मुझे ब्राह्ममहाविद्यालय से निकलवा दोगे**" ? इस विचार से ही स्पष्ट हो गया था कि वह "**वेद में राजाओं आदि के इतिहास को अवश्य मानते थे**" इस ही कारण शास्त्रार्थ की योजना बनी थी, पर श्री पण्डित राजाराम जी की चतुराई और पण्डित विश्वबन्धु जी की आत्मिक दुर्बलता ने शास्त्रार्थ उस विषय पर न होने दिया, जिस पर होना अत्यावश्यक था, तथा जिसके लिए यह सारा आयोजन हुआ था। "**आंधी आई, पर ऊपर ही ऊपर चली गई**" कुछ बना नहीं।

टिप्पणी—

[१]इस सम्पूर्ण शास्त्रार्थ पर टिप्पणी रूप में तथा अपना व श्री पण्डित बुद्धदेव जी मीरपुरी जी का वक्तव्य पूज्य अमर स्वामी जी महाराज लिखना चाहते थे, आरम्भ भी कर दिया था, परन्तु वे शास्त्रार्थ की पृष्ठभूमि ही लिखकर रह गये, बाद में वह कैंसर से पीड़ित हो गये, परिणामस्वरूप वह पुन: स्वस्थ न हो सके, और मन में यह इच्छा लिए हुए ही चल बसे।

[२]रामलाल कपूर ट्रस्ट द्वारा छपी कापी में जो भूमिका दी गई, उसे भी हमने इसी में (टिप्पणी रूप) में उद्धृत किया है, उसमें सभी शास्त्रार्थकर्त्ताओं आदि को "**दिवंगत**" घोषित कर दिया है। (जिसमें अब पूज्य अमर स्वामी जी महाराज भी शामिल हो गये हैं।)

—"**सम्पादक**"

श्री पण्डित विश्वबन्धु जी के सम्बन्ध में कुछ विशेष—

पण्डित विश्वबन्धु जी की पुस्तकें—"वेद-सन्देश (तीनों भाग), देव-यज्ञ प्रदीपिका, आर्योदय, तथा वेदसार को मैंने आद्योपान्त बहुत विचारपूर्वक पढ़ा और उसमें से उनके विचार पुस्तकों के पृष्ठांकन और पंक्तियों सहित लिखकर एक पुस्तक उर्दू में लिखी—"**पण्डित विश्वबन्धु जी के विचार**" यह मेरे द्वारा लिखित पुस्तक श्री पण्डित वाचस्पति जी के नाम से छपी। इसके बाद श्री पण्डित विश्वबन्धु जी ने एक पुस्तक उर्दू में छपाई उसका नाम था—"**मेरे विचार**"। उस पुस्तक में उन्होंने चालीस बातें लिखी थीं कि—मैं इन सबको मानता हूं। उनमें यह भी थी कि—मैं वेद को ईश्वरीय ज्ञान मानता हूं। सन् १९३१ के नवम्बर मास के अन्तिम सप्ताह वाले शुक्र, शनि और रविवार को लाहौर की दोनों बड़ी आर्य समाजों (आर्य समाज बच्छोवाली तथा आर्य समाज अनारकली) का वार्षिकोत्सव था, शुक्रवार को भारी नगर कीर्तन था, जिसमें पंजाब, सिन्ध, बलोचिस्तान, फ्राण्टियर, जम्मू और कश्मीर के सहस्रों आर्य पुरुष आये हुए थे, उस नगर कीर्तन में पण्डित विश्वबन्धु जी ने वह उर्दू पुस्तक "**मेरे विचार**" बंटवायी। उससे उनका यह उद्देश्य था कि—आर्य लोग यह समझ लें कि विश्वबन्धु जी तो आर्य समाज के सारे सिद्धान्तों को मानते हैं, इनके विरुद्ध आन्दोलन व्यर्थ ही किया जा रहा है। मैं उस पुस्तक को नगर कीर्तन में से ले आया, उसको पढ़ा और उसी समय मैंने उसके खण्डन में एक पुस्तक लिख दी—"**पण्डित विश्वबन्धु जी का चालीसा**[1]" रात्रि में ही कातिब से उसको लिखवाकर छपने को दे दिया, शनिवार की दोपहर से पहले वह पुस्तक छपकर आ गयी, और दोनों समाजों के उत्सवों में उसको बंटवा दिया। उसको पढ़ते ही पण्डित विश्वबन्धु जी का बनाया हुआ किला ढह कर छिन्न- भिन्न हो गया। श्री पण्डित भगवद्दत्त जी आकर मुझसे चिपट गये और मुझे कौली में भरकर नाचने लगे और बार-बार कहने लगे—ठाकुर जी! आपने कमाल कर दिया, विश्वबन्धु जी का बना-बनाया दुर्ग आपने मिट्टी में मिला दिया।

हम लोगों ने "**सिद्धान्त रक्षक मण्डल**" बना लिया, उसका प्रधान श्री पण्डित भगवद्दत्त जी रिसर्च स्कालर जी को बनाया तथा उपप्रधान में स्वयं था, तथा मन्त्री श्री वाचस्पति जी एम० ए० नियत हुए। अगले वर्ष निर्वाचन में श्री पण्डित वाचस्पति जी उपप्रधान तथा मैं मन्त्री बन गया, प्रधान वही पूर्व वाले ही रहे। सन् १९३३ के अक्तुबर मास में अजमेर में ऋषि बलिदान अर्द्धशताब्दी हुई। उसमें हमने "**आर्य सिद्धान्त रक्षक मण्डल**" का विशाल सम्मेलन किया। श्री मास्टर आत्माराम जी अमृतसरी (बड़ौदा राज्य के डाइरेक्टर आफ एजूकेशन पद से रिटायर तथा बड़ौदा राज्य से "**राज्य-रत्न**" की उपाधि-प्राप्त) को उस सम्मेलन का अध्यक्ष बनाया।

श्री पण्डित विश्वबन्धु जी का "बड़ा और अन्तिम" अस्त्र प्रयोग—

अजमेर की ऋषि-बलिदान अर्द्धशताब्दी में पण्डित विश्वबन्धु जी ने अपनी लिखी पुस्तक "**दस प्रश्नी**" बंटवा दी, जो कई हजार छपवाई गई थी, "सिद्धान्त रक्षक मण्डल" के स्वयंसेवक उस समारोह में यत्र-तत्र भ्रमण करते हुए घूमते थे, उनको वह "**दस प्रश्नी**" पुस्तक मिली, वह मेरे पास लाये, हम लोगों ने श्री बाबू शालिग्राम जी वकील (आगरा) जो उस महा मेले के प्रबन्ध अधिष्ठाता थे, को सारी बात बताई, उन्होंने हमारे स्वयंसेवकों को यह अधिकार दिया कि—इस पुस्तक को बांटने वालों से छीन लें, बस ! वह पुस्तक छीन ली गयी, उस पुस्तक को बांटने वाले श्री पण्डित विश्वबन्धु जी के शिष्य थे। उनके डेरे में एक बड़ा बक्स उन पुस्तकों से भरा हुआ रखा था, जब उसकी चाबी पण्डित विश्वबन्धु जी के शिष्यों से

टिप्पणी—

[1]यह पुस्तक पूज्य अमर स्वामी जी महाराज के विशाल पुस्तकालय में थी, जिसे मैंने स्वामी जी महाराज के कहने पर श्री पण्डित भवानीलाल जी भारतीय—चण्डीगढ़ को भेज दिया, कि वह उसका उर्दू से हिन्दी में अनुवाद करके कुछ लिखेंगे, अब मैंने उनको पत्र लिखा है कि उसकी एक प्रति फोटो कराकर भिजवा दें। प्राप्त होने पर अगले भागों में उसे भी देने का विचार रखता हूं

विदुषामनुचरः

"**लाजपत राय अग्रवाल**"

मांगी गई तो उन्होंने कहा कि चाबी हमारे पास नहीं है। तब बाबू शालिग्राम जी की आज्ञा से वह बक्स वहां से उठवाकर (जिसमें "दस प्रश्नी" नामक पुस्तकें भरी हुई थीं) महा मेले के प्रबन्धक श्री बाबू शालिग्राम जी के डेरे में रख दिया और दस प्रश्नी की कुछ प्रतियां लेकर मैंने श्री महात्मा हंसराज जी को दिखलाई, तथा पुस्तकें छीन लेने और सन्दूक को श्री प्रबन्धक जी के पास रख देने की बात सुनाई, सारा वृत्त सुनकर महात्मा जी बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने मुझको कहा— **"यहआपने बहुत ही अच्छा किया**[1] **।"**

हमारा आन्दोलन सबल आन्दोलन था, निर्बल नहीं था, क्योंकि वह किसी व्यक्ति विशेष के लिए द्वेष या पार्टी-बाजी आदि पर आधारित नहीं था, सत्य सिद्धान्तों पर आधारित था। आर्य समाजी छोटा हो या बड़ा ! निर्बल हो या बलवान !!—सिद्धान्तों की हत्या होती देख या सुनकर हाथ पर हाथ धर कर बैठा नहीं रह सकता, अतः हमारा आन्दोलन सबके हृदयों को पकड़ता था, तो भी प्रश्न था कि—श्री महात्मा हंसराज जी स्पष्ट रूप से इसमें सम्मिलित क्यों नहीं हैं ? अजमेर से लाहौर आकर श्री महात्मा हंसराज जी ने **"दस प्रश्नी की समीक्षा"** नाम से पुस्तक लिखी, उसको पढ़कर सर्वसाधारण जनों तथा विशिष्टों पर भी पूरा प्रभाव पड़ा कि—महात्मा जी भी सिद्धान्त-रक्षा से कदापि दूर नहीं, सर्वथा उसके साथ हैं, इससे हमारे आन्दोलन को और भी बल मिला। अब प्रश्न उठा कि—जब यह स्पष्ट है कि—पंडित विश्वबन्धु जी आर्य सिद्धान्तों के विरुद्ध हैं तो इनके लेखों, पुस्तकों और व्याख्यानों पर प्रतिबन्ध क्यों न लगाया जाये ? यह चर्चा चल ही रही थी कि—श्रीस्वामी सर्वदानन्द जी महाराज लाहौर आये और पण्डित देव प्रकाश जी (अरबी फ़ाज़िल) अमृतसरी को साथ लेकर मुझसे उन्होंने कहा कि—विश्वबन्धु जी के लिए वेदी बन्द कराने से पहले एक बार उनको समझा अवश्य लिया जावे। मुझसे कहा—आप और देवप्रकाश जी मेरे साथ चलें। मैंने कहा—चलिए मैं तैयार हूं। श्री पण्डित ब्रह्मदत्त जिज्ञासु भी वहीं थे, उन्होंने कहा—मैं भी चलूं—श्री स्वामी जी ने कहा कि—आप न चलिए। आपके चलने से उद्देश्य समझाना नहीं रहेगा बल्कि लड़ना हो जायेगा। जिज्ञासु जी ने कहा—मैं सर्वथा चुप बैठा रहूंगा, बोलूंगा नहीं, स्वामी जी ने कहा ऐसा होना कठिन है। आपका स्वभाव उग्र है। आप चुप भी नहीं बैठ सकेंगे और शान्ति व प्रेम से बोल भी नहीं सकेंगे, हमारा उद्देश्य नष्ट हो जायेगा। पण्डित ब्रह्मदत्त जी ने फिर कहा कि—**"मैं सर्वथा चुप रहूंगा।"**

टिप्पणी—

[1]आप लोगों ने देख लिया कि हमारे पूर्वज लोग सिद्धान्तों के कितने पोषक थे ? सिद्धान्त-विरुद्ध पुस्तक को कैसे बन्द कर दिया ? आजकल आर्य समाज के उत्सवों व बड़े-बड़े सम्मेलनों में घोर सिद्धान्त विरोधी साहित्य बिकता है, हमें उपरोक्त बात से सबक लेना चाहिए, तथा सिद्धान्त-विरोधी साहित्य का बहिष्कार करना चाहिए।

सिद्धान्तों पर छपे हुए साहित्य की बिक्री में बाधाएं—

प्राचीन समय में लोग ग्रन्थों का अध्ययन करते थे, उनको सिद्धान्तों की जानकारी रहती थी, आजकल स्वाध्याय न करने की वजह से सिद्धान्तों की जानकारी दिन-प्रतिदिन कम होती जा रही है। सिद्धान्तों पर छपे ग्रन्थ लोगों की समझ में नहीं आते। क्योंकि उनकी दिलचस्पी सैद्धान्तिक साहित्य के स्वाध्याय में है ही नहीं कुछ लोग धार्मिक- सैद्धान्तिक ग्रन्थों को महंगा बताते हैं, जबकि ऐसा नहीं है। आदमी आजकल के युग में तीन सौ रुपये का जूता खुशी से खरीदकर पहनता है, उसे वह महंगा नहीं लगता, पचास-सौ रुपए की पुस्तकें उसे महंगी लगती हैं। कारण कि वह उनकी उतनी जरूरत महसूस नहीं करता। "मैं आपको एक बहुत ही दिलचस्प सच्चा वाकया सुनाता हूं कि—मैं जब साहित्य प्रचार का कार्य घूम-घूमकर करता था, उस समय प्रकाशन के अन्तर्गत २-४ सेलसमैन भी रहते थे, हमारा एक सेलसमैन जिसका नाम············था वह साहित्य लेकर बीकानेर गया। वहां परमानन्द बस्ती आर्य समाज बीकानेर का वार्षिकोत्सव था। उत्सव में पुस्तकें **(क्रमशः)**

हम तीनों स्वामी जी के साथ दयानन्द ब्राह्म महाविद्यालय गये, और पण्डित विश्वबन्धु जी से मिलकर उनसे कहा कि—"आप ऐसा मार्ग पकड़ लें जिससे आर्य समाज में विरोध उत्पन्न न हो।" उन्होंने कहा कि—आप हीऐसा मार्ग बताइये ? श्री स्वामी जी ने कहा कि—आपने वैदिक कोष का १६ पृष्ठ का एक नमूना छपाया है, उसमें स्वामी दयानन्द जी की सबसे अधिक अशुद्धियां वेदार्थ विषय में बताई हैं, यह अधिक बिगाड़ का मार्ग है, आप ऐसा करें कि—आर्य पण्डितों को अपने लेख दिखला लिया करें, उनकी सम्मति से भी काम ले लिया करें। पण्डित विश्वबन्धु जी ने कहा—मैं आर्य समाज में केवल पण्डित राजाराम जी को ही वेद का पण्डित मानता हूं और किसी को नहीं। सो पण्डित राजाराम जी को दिखला लेता हूं। दूसरी बात यह है कि मैं जिस बात को सत्य मानता हूं उसके विरुद्ध पचास पण्डित भी कहें तो मैं नहीं मानूंगा, क्योंकि स्वामी दयानन्द जी अकेले नहीं, संसार में किसी भी मनुष्य को निर्भ्रान्त नहीं मानता हूं। मैंने (अमरसिंह आर्य पथिक) पूछा कि—पण्डित जी ! यह आपकी भ्रान्ति है, या यह आपका निर्भ्रान्त मत है ? वह समझ गये कि—यह (अमरसिंह) मुझको "उभय पाशारज्जु" में बांधना चाहता है, उनका ऐसा समझना ठीक ही था। यदि वह यह कहते कि मुझको भी भ्रान्ति है, तो मैं कहता कि—आप अपनी भ्रान्ति मिटाइये, हमको भ्रान्ति में क्यों डालते हैं ? और यदि वह यह कहते कि—मैं इस विषय में निर्भ्रान्त हूं, तो मैं कहता कि—"फिर आपका यह कहना असत्य हुआ कि मैं किसी मनुष्य को निर्भ्रान्त मानता हूं।" आप एक तो निर्भान्त है और मनुष्य हैं ?

भाइयो ! उन्होंने ऐसा समय ही नहीं आने दिया और तत्काल कह दिया कि—मैंने न्याय (दर्शन) नहीं पढ़ा है। मैंने कहा—पण्डित जी ! यह मेरा या किसी और का दोष नहीं है। इस पर हम सब हंस लिये।

टिप्पणी—

कुछ कम बिकीं तो हमारे सेल्समैन ने समाज के मन्त्री से प्रार्थना की कि आप कुछ साहित्य ले लीजिये, मैं इतनी दूर से आया हूं, साहित्य कम बिकने की वजह से मेरा तो मार्ग-व्यय भी नहीं निकला। मन्त्री जी ने कुछ साहित्य ले लिया, सेल्समैन ने जो हो सका कमीशन भी दे दिया। उत्सव समाप्त हो गया था। वहां उत्सव में जहां अनेकों विद्वान पधारे थे, वहां **"प्रोफेसर रतन सिंह"** भी विद्यमान थे, उन्होंने उस मन्त्री को कहा कि आपने ये पुस्तकें क्यों ले लीं ? इन पर मूल्य काटकर बढ़ाये गये हैं, तथा जिन पर नहीं बढ़ाये गये वह खुद ही बहुत महंगी हैं, इन्हें वापिस कर दो, मैं गाजियाबाद से भिजवा दूंगा। हमारा सेल्समैन समाज से स्टेशन पर आ गया था, क्योंकि उसकी गाड़ी का समय हो गया था। मन्त्री जी ने कहा कि वह तो चला गया, अब छोड़ो। रतनसिंहजी उस मन्त्री को तथा उन किताबों को साथ लेकर स्टेशन पर आये। और जबर्दस्ती उन्हें वापिस कराया सेल्समैन ने कहा कि मेरे पास एक टिकट के हिसाब से वजन ज्यादा है, उसे मैंने बुक करा लिया है। अब मैं कैसे करूं ? रतन सिंहजी ने कहा—दिल्ली तक यह वजन मैं स्वयं लेकर चलूंगा परन्तु इन्हें वापिस लो। आखिर दिल्ली तक स्वयं लाये और पुस्तकें वापिस करा दीं, जिनमें यह अमूल्य ग्रन्थ **"निर्णय के तट पर"** प्रथम भाग भी था। अब रतनसिंहजी से कोई पूछे कि क्या उन्होंने यह कार्य समाज के हित में किया ? स्वयं तो उत्सवों में जहां पैसा मिलता है वहां जाते हैं। अगर ऋषि दयानन्द जी का इतना दर्द उनके हृदय में है तो क्यों नहीं फ्री प्रचार करते ? वहां भी जो व्याख्यान दिये क्या जनता उनको चिरकाल तक याद रख सकेगी ? कदापि नहीं, साहित्य हमारी आधारशिला है। हमें साहित्य का प्रचार व प्रसार अधिक से अधिक मात्रा में करना चाहिये।

यह सब वार्तालाप उस सेल्समैन ने आकर अमर स्वामी जी को बताया, तो वह दंग रह गये कि—जिस समाज के ऐसे प्रचारक होंगे वह कहां तक उन्नति करेगा ? रही पुस्तकों पर मूल्य-वृद्धि की बात ? जो पुस्तक १० वर्ष पहले छपी है, उस पर अब मूल्य बढ़ना स्वाभाविक है। इस पर भी अगर रतनसिंहजी हमारे सेल्समैन को कहते कि—भाई थोड़ी छूट और कर दो, समाज में पुस्तकें जानी हैं। तो शायद हमारा सेल्समैन मना नहीं करता। इस प्रकार का द्वेष भाव जब तक हमारे मनों में रहेगा, समाज का उद्धार होना तथा पण्डित लेखराम जी का कथन (तहरीर व तकरीर का कार्य) पूरा होना असम्भव है। सच तो यह है कि आजकल के उपदेशक पक्के व्यापारी बनकर रह गये हैं। तो समाज का प्रचार कौन करे ? स्वर्गीय पूज्य अमर स्वामी जी महाराज ने **"बारह अमर सूत्र"** बनाये हैं, जिनमें से एक यहां उद्धृत करता हूं—**"पुराने आर्य समाजियों ने (क्रमशः)**

पण्डित श्री जिज्ञासु जी आवेश में आकर बोले कि—वैदिक स्वर-प्रक्रिया में, मैं आपसे ऐसे प्रश्न पूछ सकता हूं कि जिनके उत्तर आप जीवन भर नहीं दे सकेंगे। विश्वबन्धु जी ने कहा—स्वामी जी महाराज ! देख लिया मुझको समझाने का ढंग ! आप तो मुझको समझाने आये थे, चैलेंज करने को नहीं ! स्वामी जी ने कहा—अच्छा चलिए ! बस ! हम सभी उठकर चले आये। इस ही का संकेत श्री जिज्ञासु जी ने किया है।

अन्तिम निर्णय—

आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा ने अपने साथ सम्बन्ध रखने वाले समाजों के सभी निर्वाचित प्रतिनिधियों तथा उन्हीं से सम्बन्ध रखने वाले विद्वानों तथा प्रतिष्ठित आर्य पुरुषों को लाहौर में बुलाया, तथा श्री पण्डित विश्वबन्धु जी को भी बुलाया। भरी सभा में श्री महात्मा हंसराज जी ने कहा—"**पण्डित विश्वबन्धु जी ! आप क्या मानते हैं और क्या नहीं मानते हैं ? यह आपके बताये बिना कोई नहीं जान सकता है। आर्य समाज के जो-जो सिद्धान्त आपको सत्य प्रतीत होते हैं उन उन का प्रचार करिये वह ही विद्यार्थियों को पढ़ाइये। हम भी सर्वज्ञ नहीं हैं। जो हमने सब कुछ समझ लिया हो, जिन-जिन बातों को समझ लिया है उनका प्रचार करते हैं। जो अभी समझ में नहीं आये हैं उन पर विचार करते रहते हैं। आप आयु में मेरे पुत्र के समान हैं, पर मैं आर्य समाज में फूट न पड़े इसलिए आपसे यह निवेदन करता हूं, यह कहते हुए "श्री महात्मा जी ने अपनी पगड़ी उतारकर विश्वबन्धु जी के पैरों की ओर बढ़ाई, तब पास बैठे आर्यों ने महात्मा जी के हाथों को उधर बढ़ने से रोक लिया। इस पर श्री स्वामी सर्वदानन्द जी महाराज ने कहा—विश्वबन्धु जी ! ऐसा शुभ अवसर फिर न आयेगा, घोषणा कर दीजिए कि—"आगे ऐसा ही होगा" विश्वबन्धु जी ने कहा—मैं जो कुछ जानता हूं और मानता हूँ वह ही कहूंगा उसके विरुद्ध नहीं।"**

इस पर सर्व सम्मति से यह प्रस्ताव पारित हुआ कि—आज से विश्वबन्धु जी के लिए आर्य समाज की वेदी बन्द हो गई। कोई भी समाज इनको व्याख्यान के लिए न बुलावे और आर्य समाज की किसी वेदी पर इनका व्याख्यान न हो। तथा यह भी पास हुआ कि—दयानन्द ब्राह्ममहा विद्यालय का आचार्य इनको न रहने दिया जाये।

एक भूल—

श्री महात्मा हंसराज जी—किसी मनुष्य को सर्वथा निकाल देने के पक्ष में नहीं थे, इसलिए वह चाहते थे कि—विश्वबन्धु जी के लिए वेदी का बन्द होना ठीक है तथा दयानन्द ब्राह्म महाविद्यालय के आचार्य पद से भी उनको हटाना ठीक

टिप्पणी—

अपने घरों को उजाड़कर आर्य समाज को बनाया था, आजकल के आर्य समाजी आर्य समाज को उजाड़कर अपने घरों को बना रहे हैं।" जब तक इस प्रकार की मनोवृत्ति में परिवर्तन नहीं होगा तब तक हम ऋषि के स्वप्नों को साकार नहीं कर सकते। हो सकता है रतनसिंह जी को मेरी यह बात बुरी लगे, क्योंकि सच सभी को कड़वा लगता है। मुझे सत्य कहने में कोई संकोच नहीं। न किसी आर्य को होना चाहिए। मैं भविष्य में "**आर्य समाज के—बुकसेलर ! प्रचारक !! अधिकारी !!!**" नामक पुस्तिका छपाऊंगा, जिसमें अमर स्वामी जी महाराज के सम्पर्क में आकर तथा सारे देश भर में घूम-घूमकर जो-जो अनुभव मैंने प्राप्त किये, उनका उल्लेख करूँगा। मैंने बहुत ही नजदीक से इन स्थितियों को देखा है। मुझे पूज्य अमर स्वामी जी महाराज के पास लगभग १९ वर्ष रहने का अवसर प्राप्त हुआ है। जिसमें १५ वर्ष तक निरन्तर प्रचार-यात्रा कर-करके पूरे भारत वर्ष का (कश्मीर से कन्याकुमारी तक) अनुमानतः ग्यारह बार भ्रमण किया है। उस पुस्तक के द्वारा आपको बड़े ही कटु अनुभवों का पता चलेगा, वह भी बड़े ही काम की चीज होगी, तथा इन तीनों समुदायों (बुक सेलर ! प्रचारक !! अधिकारी) के लिए तो विशेषकर लाभप्रद सिद्ध होगी।

विदुषामनुचरः

"लाजपतराय अग्रवाल"

है। परन्तु दयानन्द एंग्लो वैदिक कालिज कमेटी के लाइफ़ मेम्बर (आजीवन सदस्य) रहे आवें, अतः कमेटी के आधीन किसी और कार्य में इनको लगा दिया जाए। ऐसी स्थिति में उनको कालिज में संस्कृत का प्रोफेसर नियुक्त किया जा सकता था, पर विश्वबन्धु जी अपने साथ पण्डित भगवद्दत्त जी को भी कष्ट अवश्य पहुंचाना चाहते थे। इसलिए उन्होंने यह मांग रख दी कि—दयानन्द ब्राह्म महाविद्यालय के आचार्य पद से मैं हटने को उद्यत हूं, मुझे डी० ए० वी० कालेज की **"लालचन्द लाइब्रेरी"** के रिसर्च विभाग का अध्यक्ष बना दिया जाए। इस पद पर पण्डित भगवद्दत्त जी रिसर्च-स्कालर थे। श्री महात्मा जी के ज्येष्ठ पुत्र श्री लाला बलराज जी, विश्वबन्धु जी के मित्र थे, उन्होंने महात्मा जी से यह स्वीकार करवा दिया। पण्डित भगवद्दत्त जी को वहां से हटाकर कालिज का धर्म शिक्षक नियुक्त कर दिया गया, और उनके स्थान पर पण्डित विश्वबन्धु जी नियुक्त कर दिए गए। हम लोगों को इन नियुक्तियों से बहुत दुःख हुआ। इस पर पण्डित भगवद्दत्त जी ने त्यागपत्र दे दिया, श्री महात्मा जी ने पण्डित भगवद्दत्त जी तथा उनकी धर्मपत्नी जी को बहुत समझाया, मनाया, पर वह नहीं माने, और अनुसन्धान (रिसर्च) का कार्य यावज्जीवन करते रहे।

एक और भारी भूल—

दयानन्द एंग्लो वैदिक कालिज—लाहौर का **"लालचन्द पुस्तकालय"** एक विशाल पुस्तकालय तो था ही, एक अद्भुत बात उसमें यह थी कि —१५ हजार से ऊपर तो उसमें पुराने से पुराने और अति दुर्लभ हस्त-लिखित ग्रन्थ थे। तथा उनमें कुछ ग्रन्थ क़ागजों पर लिखे हुए थे, और ज्यादातर ग्रन्थ उस समय के थे जब तक कागज की उत्पत्ति हुई ही नहीं थी, इस लिए भोजपत्र तथा ताड़ के पत्तों पर लिखे हुए थे। इनमें अधिक हस्त-लिखित ग्रन्थ ऐसे थे जिनको श्री पण्डित भगवद्दत्त जी ने देश भर के प्राचीन पण्डित घरानों में से बड़ी भारी कठिनाइयों के साथ बहुत धन व्यय करने के बाद प्राप्त किया था। विश्व भर के विख्यात प्रकाशनों से प्रकाशित ऐसे असंख्य ग्रन्थ भी थे जो अत्यावश्वक थे, जिन ग्रन्थों के बड़े-बड़े प्रकाण्ड पण्डितों ने भी दर्शन तक नहीं किये थे। बहुतों ने उन ग्रन्थों के नाम तक भी नहीं सुने थे

श्री पण्डित आचार्य विश्वश्रवा जी ने श्री पण्डित भगवद्दत्त जी की कृपा से बहुत से हस्तलेखों को देखा। मुझे (अमरसिंह आर्य पथिक—वर्तमान अमर स्वामी), श्री महात्मा हंसराज जी, श्री पण्डित भगवद्दत्त जी रिसर्च स्कालर तथा पण्डित हंसराज जी लाइब्रेरियन की कृपा से बड़े-बड़े दुर्लभ ग्रन्थों को उस पुस्तकालय में देखा, व पढ़ा और उनमें से वह असंख्य प्रमाण प्राप्त किए जिन प्रमाणों ने मुझको भारत भर में **"प्रमाण महार्णव"**— **"प्रमाण सागर"**—**"प्रमाण पारां वारीण"** **"चलता फिरता विश्व कोश"**—**"चलता फिरता विशाल पुस्तकालय"** आदि न जाने क्या-क्या कहलवा दिया। मुझको उस ही पुस्तकालय ने देश में **"अद्वितीय शास्त्रार्थ केसरी"** का नाम दिला दिया। वह अद्भुत और अनुपम पुस्तकालय—दयानन्द एंग्लो वैदिक कालिज के पास न रहकर—पण्डित विश्वबन्धु जी के अधिकार में **"साधु आश्रम—होशियार पुर—पंजाब"** में चला गया। वह पुस्तकालय दिल्ली में आता तो देश और विदेश के असंख्य रिसर्च स्कालर उससे लाभ उठाते। पर अब—**"जंगल में मोर नाचा ! किसने देखा?"** यह कहावत चरित्रार्थ हो रही है।

यह सब थी इस शास्त्रार्थ की कहानी, आगे शास्त्रार्थ का भी आनन्द लीजिए। अपनी लेखनी को यहीं विराम देता हूं। अन्त में—मैं लाजपत राय जी को आशीर्वाद देता हूं, जिन्होंने अपने व्यस्त समय में से इस कार्य के लिए समय निकालकर लिखने में मेरी सहायता की।

वैदिक धर्म का सेवक—

"अमर स्वामी परिव्राजक"

शास्त्रार्थ आरम्भ

(पहली बैठक तारीख १८-५-१९३१ ई० प्रातः साढ़े सात बजे से साढ़े दस बजे तक)

नोट—

प्रारम्भ में प्रधान जी ने बाहर से आये हुए सब सज्जनों का धन्यवाद किया, और मन्त्री को पत्र-व्यवहार पढ़ने के लिए कहा। मन्त्री ने उठकर पत्र-व्यवहार सुनाया, तदनन्तर शास्त्रार्थ के अध्यक्ष श्री महात्मा हंसराज जी ने कहा—

शास्त्रार्थ के प्रधान श्री महात्मा हंसराज जी—

इस विषय में ये-ये पक्ष हो सकते हैं। १—निरुक्तकार वेद में इतिहास मानते हैं, २—निरुक्तकार इतिहास पक्ष को देते हैं, पर मानते नहीं, ३—जिसको निरुक्तकार इतिहास कहते हैं वह आम तौर पर जिसे इतिहास समझा जाता है वह नहीं है किन्तु नित्य इतिहास है। क्योंकि आर्य समाज वेदों को स्वतः प्रमाण मानता है। और निरुक्तादि ग्रन्थों को परतः प्रमाण मानता है, इसलिए आर्य समाज की पोजीशन में फ़र्क नहीं पड़ता, निरुक्तादि ग्रन्थों में इतिहास होने पर भी आर्य समाज वेदों में इतिहास नहीं मानता। आर्यसमाजियों का विश्वास है कि वेद सृष्टि के आरम्भ में प्रकट हुए। ऋषि दयानन्द का सिद्धान्त है कि वेद के शब्द, अर्थ और ज्ञान नित्य हैं, वही परम्परा से चला आता है। मैं आप सब सज्जनों से निवेदन करता हूं कि यह सब कार्यवाही प्रेम व मुहब्बत से होनी चाहिए।

नोट—

इसके बाद परस्पर विचार द्वारा निश्चय हुआ कि इस विचार का समय प्रातः सात से दस और सायं साढ़े चार से साढ़े छः बजे का हो।

श्री पण्डित ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु—

विवाद शुरू होने से पहले इस बात का निश्चय होना चाहिए कि इस विचार का स्वरूप क्या होगा? **"वाद"** या **"जल्प"** वा **"वितण्डा"**? विवाद करने वाले का पक्ष निश्चित होना चाहिए, हम महर्षि दयानन्द जी के सिद्धान्तों को मानते हैं, क्योंकि वे हमें यथार्थ प्रतीत होते हैं। अब दूसरे पक्ष वालों को चाहिये कि वह अपना पक्ष पेश करें और बतलायें कि—१—क्या वादी वेद को अपौरुषेय मानता है? यदि पौरुषेय मानता है, तो मन्त्र कब से कब तक बनते रहे? आगे भी कहां तक बनने की सम्भावना है? २—उसके विचार में वेदार्थ आज तक किसी ने समझा भी है या नहीं? यदि समझा है तो किस-किस ने? ३—उसके विचार में यथार्थ वेदार्थ की कसौटी क्या है? ४—वादी के मत में निरुक्तकार के अभिप्राय को किसी ने समझा भी है या नहीं? यदि समझा है तो किस-किस ने? ५—क्या वादी निरुक्त के इन छः स्थलों में ही इतिहास मानता है? या उसका मत यह है कि—"निरुक्तकार वेद में इतिहास मानता है?"

श्री पण्डित भगवद्दत्त जी रिसर्चस्कालर—

मेरा विश्वास है कि स्वामी जी के सब सिद्धान्त सत्य हैं, यह जरूरी नहीं कि मैं सब बातों को सिद्ध भी कर सकूं।

श्री पण्डित गुरुदत्त जी शास्त्री—

जो पत्र अब सुनाये गये हैं वे सन्देह से परे हैं, उनसे तो यह जाहिर होता है कि पण्डित विश्वबन्धु जी (ने) सिर्फ़ विचार के लिए ये स्थल रक्खे हैं, इन पर विचार होना चाहिए।

श्री पण्डित विश्वबन्धु जी शास्त्री एम० ए०—

पक्ष कोई नहीं, पक्ष स्वामी दयानन्द का है, और उसी पर विचार होना है।

श्री प्रोफेसर पण्डित राजाराम जी—

आपने पत्र व्यवहार सब सुन लिया, यह विचार इसलिए उठा है कि लोग प्रश्न करते हैं, समाज का काम है कि स्वामी जी के सिद्धान्त के साथ जो नहीं मिलते उन पर विचार करे, और जो सच्चाई उससे ज़ाहिर हो या जिससे समाज की पुष्टि होती हो उसके अनुसार निर्णय किया जाए। एक आदमी एक विषय में एक उत्तर देता है, दूसरा कुछ और उत्तर देता है। एक कहता है कि—यास्क वेद में इतिहास मानता है, दूसरा कहता है कि वह नहीं मानता इससे समाज को कोई निश्चित उत्तर नहीं मिलता, जो विवादास्पद विषय हैं उनको लापरवाही में नहीं छोड़ना चाहिये, आर्यसमाज का कर्त्तव्य है कि वह विचार करे। प्रधान (अध्यक्ष) जी ने कहा था कि सम्मिलित शक्ति से निर्णय हो सकता है। इसलिए पण्डित विश्वबन्धु जी को यह ड्यूटी दी गई थी कि विचार लिखकर भेज देवें, वे विचार हमारी तरफ से इसलिए पेश किये गये हैं कि—वे विचारणीय हैं, मैंने निरुक्त भाष्य लिखते हुए चेष्टा की, कि ये विषय आर्य समाज के सिद्धान्त के साथ मिल जायें, परन्तु सफलता नहीं हुई, मैंने कई पण्डितों से भी पत्र व्यवहार किया, किन्तु किसी ने कोई सहायता नहीं की, इसलिए मैंने अक्षरशः अर्थ कर दिया। फिलहाल ६ स्थल पेश किये गये हैं, जिनसे ज़ाहिर होता है कि यास्काचार्य वेद में इतिहास मानते हैं, मेरे हृदय में भी सन्देह होता हैं, और भी जो पढ़ेगा उसे भी सन्देह होगा। इसलिये पक्ष बनाकर नहीं, किन्तु विचार को सम्मुख रखकर समाधान होना चाहिये, ऐसा न हो कि जिससे आगे कोई आदमी इन बातों को रखने का साहस ही न करे। हृदय विशाल होना चाहिये, ताकि खुले रूप से विचार हो सके, हम सब निर्णय करने के लिये यहां एकत्रित हुए हैं। जो मुश्किल व सन्देह सामने हैं, उन्हें हम सब मिलकर हल करें। मैं भी बल लगाऊंगा कि यह सब हल हो जाये और समाज के सिद्धान्त के अनुकूल हल हो जाय। इसलिए हमारा कोई पक्ष नहीं। सिर्फ़ समाज के सामने कठिनाई देखकर उसे पेश किया है। मैं विश्वास से कहता हूं कि अगर यह सिद्ध हो जाय कि यास्क वेद में इतिहास नहीं मानता, तो मेरा हृदय खिल जाएगा। और अगर मुझे (इतिहास) पक्ष वाला भी दूसरे समझ लें, अगर मेरा पक्ष गिर जाये और मैं हार जाऊं तो मुझे उसमें ज्यादा खुशी होगी, क्योंकि दरअसल वह हार फ़तह होगी, जिससे समाज का सिद्धान्त सिद्ध होवे।

श्री पण्डित भगवद्दत्त जी रिसर्चस्कालर—

बात बहुत साफ हो गई है, परन्तु DECLA RATION OF FAITN (मन्तव्य की घोषणा) होना जरूरी है, मैं स्वामीजी के सिद्धान्त को मानता हूं, दूसरे भी ऐसा ऐलान कर दें।

शास्त्रार्थ के प्रधान श्री महात्मा हंसराज जी—

पण्डित विश्वबन्धु जी ने कहा था कि सिद्धान्तों के निर्णय के बिना शान्ति नहीं हो सकती। हम तो सब जगह यही कहते हैं, दूसरों का काम उत्तर देने का है।

श्री पण्डित विश्वबन्धु जी शास्त्री एम० ए०—

सिद्धान्तों के मतभेद के विषय में अवश्य निर्णय होना चाहिये, मैंने हरगिज नहीं कहा था कि मैं हर जगह कहता फिरता हूं, किन्तु रावलपिण्डी में मनसा परिक्रमा पर कहा था।

शास्त्रार्थ के प्रधान श्री महात्मा हंसराज जी—

प्रश्न आपकी तरफ से हैं या नहीं ?

श्री पण्डित विश्वबन्धु जी शास्त्री एम० ए०—

जो सन्देह मैंने और पण्डित राजाराम जी ने पेश किये हैं वह सबकी तरफ से हैं, जिसमें मैं भी शामिल हूं, श्री पण्डित भगवद्दत्त जी भी शामिल हैं।

शास्त्रार्थ के प्रधान श्री महात्मा हंसराज जी—

दो बातें हैं, अगर तो यह पोजीशन हो कि समाज के सिद्धान्त दुरुस्त नहीं, तब और तरह से (विचार) होगा, अगर यह हो कि सन्देह आ गया है, तो उस पर विचार किया जाये, अगर विश्वबन्धु जी समाज के सिद्धान्त को मानते हैं, सन्देह दूर कराना है, तब तो और बात है। यदि वे वेद के अन्दर इतिहास को मानते हैं, और वे समाज के सिद्धान्त को बदलना चाहते हैं, तब दूसरे तरीके से विचार होगा।

श्री प्रोफेसर पण्डित राजाराम जी—

मुझे यह प्रतीत है कि जो बात हमसे पूछी गई उसका जवाब दे दिया, हमने निरुक्त के छः स्थल बता दिये। स्थान निर्दिष्ट हो चुका है, अब पहले इन स्थलों पर विचार होना चाहिये, क्योंकि वेद के साथ इसका भी सम्बन्ध है, इसके निर्णय के साथ ही यह भी निर्णय हो जायेगा कि—"**वेद में इतिहास है कि नहीं**" यहां यह पूछना कि समाज के सिद्धान्तों को मानते हैं या नहीं, इससे तो यह अच्छा है कि हम सब समाजों के सभासदों का सर्टीफिकेट ले आयें, यह तो कह देने की बात है कि—स्वामी दयानन्द जी का अक्षर-अक्षर ठीक है, ऐसा मैं मानता हूं यह कह देने वाले बहुत से मनुष्य होंगे, पर जब निर्णय करना होगा, तब केवल इसी से काम चलना कठिन होता है, जब ये स्थल निर्देश कर दिये हैं कि इनसे प्रतीत होता है कि यास्काचार्य वेद में इतिहास मानते हैं, मैं निरुक्त को सर्वथा प्रमाण नहीं मानता, उसी रूप में मानता हूं जैसा कि स्वामी जी ने माना है, मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी यदि यह विषय सिद्ध हो जाये कि यास्क वेद में इतिहास नहीं मानता। अब उन स्थलों पर विचार होना चाहिये।

शास्त्रार्थ के प्रधान श्री महात्मा हंसराज जी—

इस वक्त सिर्फ वेद और इतिहास का विषय है, इसलिए इसके मुताल्लिक पूछा गया है। स्वामी जी के कुल सिद्धान्तों के मुताल्लिक बात नहीं है। वेद मन्त्रों का अर्थ तथा निरुक्त दोनों साथ-साथ चलने चाहिये, इसमें दो बातें हो सकती हैं कि आप कहें कि मैं तो वेद में इतिहास नहीं मानता, पर ये दिक्कतें आती हैं, उन पर विचार होना चाहिये या यह कहिये कि मेरा विश्वास बदल गया है। मुझे संशय है कि वेद में इतिहास है। यदि यह बात साफ शब्दों में प्रकट कर दी जाये कि हम वेदों में इतिहास मानते हैं या नहीं मानते, तब यह विचार आगे अच्छी तरह चल सकता है।

शास्त्रार्थ-महारथी श्री पण्डित बुद्धदेव जी मीरपुरी—

पक्ष की स्थापना तो अवश्य होनी चाहिये, हम तो चाहते हैं कि आप उत्तर पक्ष में रहें क्योंकि आपका स्वाध्याय बहुत है।

श्री प्रोफेसर पण्डित राजाराम जी—

पक्ष मेरी तरफ से नहीं, स्थापन करने के लिए। सिर्फ विचार के लिए मैं इस पक्ष को स्वीकार करता हूं कि—यास्क वेद में इतिहास मानता है।

श्री पण्डित भगवद्दत्त जी रिसर्चस्कालर—

ये प्रश्न आदि से चले आ रहे हैं। हमारा विश्वास है कि वेद में इतिहास नहीं। हम पहले इस सिद्धान्त का निश्चय कर लें कि वेद में इतिहास नहीं, फिर निरुक्त पर विचार आरम्भ हो जायेगा।

श्री पण्डित विश्वबन्धु जी शास्त्री एम० ए०—

पण्डित राजाराम जी ने जो कुछ कहा है, मैं उसका अक्षरशः अनुमोदन करता हूं। महात्मा जी ने नहीं कहा था कि—**"वेद में इतिहास है या नहीं"** ? इस बात का निर्णय होगा। हमने तो निरुक्त को महात्मा जी के कहने पर नियत किया था।

शास्त्रार्थ के प्रधान श्री महात्मा हंसराज जी—

असली सवाल यह है कि—"**वेद में इतिहास है या नहीं**" आपके दिल में यदि यह विचार हो कि—वेद में इतिहास है, तो पूर्व पक्ष लेकर विचार करें। फैसला यह हुआ था कि—"**इस बात पर विचार हो कि वेद में इतिहास है या नहीं ?**" और निरुक्तकार वेद में इतिहास मानता है या नहीं ? तब उस अवस्था में यह प्रश्न सादा हो जाता है, यास्क वेद मन्त्रों के अर्थ नैरुक्त रीति से करता है। मैं सिर्फ इतना कहता हूं कि आप वेदार्थ करके बतावें और उस पर निर्णय हो जावे।

श्री वैद्य रामगोपाल जी शास्त्री वैदिक रिसर्चस्कालर

पहले कोई FUNDAMENTAL (मौलिक) बात निश्चित हो जानी चाहिये, कि आप या हमने ऋषि-मुनियों के आधार पर वेद के अर्थ करने हैं या अपनी मर्जी से ! ऋषियों का आधार वेदार्थ करने में सहायक है। हमने ग्रन्थों के आधार पर फैसला करना है, एक कसौटी निश्चित करनी चाहिये।

श्री पण्डित ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु—

स्पष्ट रूप से पहले यह बात होनी चाहिये कि पहले वादी यह बतलायें कि वह आर्यसमाज के सिद्धान्तों को मानते हैं या नहीं ? जो जैसा मानता है वह वैसा कह देवे। दम्भ से अलग होकर चाहे मैं होऊं या कोई और हो, उसे साफ कह देना चाहिये। पण्डित राजाराम जी वेद में इतिहास मानते हैं और उन्होंने बी० ए० के संस्कृत विषय के विद्यार्थियों को पढ़ाते हुए कहा कि वेद में इतिहास है और निरुक्तकार वेद में इतिहास मानते हैं। और इस विषय में तेरह विद्यार्थियों के हस्ताक्षरों सहित श्री महात्मा हंसराज जी के पास पत्र पहुंचा और मेरे पास भी पत्र पहुंच चुका है। और पण्डित विश्वबन्धु जी ने "**आर्य गजट**" के अपने लेख में वेद विषय में बतलाया कि वेदार्थ शैली का निश्चय होना चाहिये। स्वामी जी की शैली विचारणीय है, परन्तु स्वामी जी की शैली को पौराणिक विद्वानों ने भी माना है, हम ऋषि दयानन्द के सब सिद्धान्तों को मानते हैं, इसलिए नहीं कि उन्हें स्वामी दयानन्द ने लिखा है, बल्कि इसलिए कि वह यथार्थ है, अतः कोई बात हमारी समझ में न आवे तो उसको एकदम गलत कहकर नहीं छोड़ देना चाहिये किन्तु—"**व्याख्यानतो विशेष प्रतिपत्तिर्नहि सन्देहादलक्षणम्**" इस नियम के अनुसार विचार करना चाहिये कि प्रेस आदि की असावधानता से भी कुछ अशुद्धियां हो सकती हैं, जो कि स्वामी दयानन्द जी के नाम नहीं मढ़ी जा सकतीं। और हम उसके जिम्मेवार नहीं। वे पांच बातें, जिनका संकेत मैं पूर्व कर चुका हूं, उनका निर्णय हो जाना चाहिये।

श्री प्रोफेसर पण्डित राजाराम जी—

जिन दिनों मांस का झगड़ा उठा था, उन दिनों एक आदमी ने मुझसे सवाल किया कि क्या मांस खाने से विषय चेष्टा बढ़ जाती है ? मैंने कहा कि—मुझे इस बात का तजुर्बा नहीं है। उसने पूछा कि क्या आप समाज की वेदी पर भी यही कहेंगे ? मैंने कहा, हां ! दूसरे दिन मेरे पास दो-तीन आदमी आये, और पूछने लगे कि—आप मांस खाने से विषयचेष्टा बढ़ना नहीं मानते ? मैं हैरान रह गया। इस तरह यह बात है। मैंने बिल्कुल नहीं कहा कि—"**वेद में इतिहास है।**" पण्डित जी को किसी ने धोखा दिया और वह स्वयं भी धोखे में आना चाहते थे।

शास्त्रार्थ के प्रधान श्री महात्मा हंसराज जी—

लाला खुशहालचन्द (महात्मा आनन्द स्वामी) जी ने पत्र पढ़कर सुनाया, कि निरुक्त के इन छः स्थलों पर

विचार होगा। और यहां पर आये वेदमन्त्रों के वेदार्थ पर विचार होगा। इन सूक्तों के अर्थ करने में मुखालिफ़ों को जवाब देने में दिक्कत होती है, इस दिक्कत को दूर करना है। अब एक पक्ष यह सिद्ध करेगा कि इन मन्त्रों में इतिहास है, और दूसरा पक्ष यह सिद्ध करेगा कि इनमें इतिहास नहीं। मन्त्रों के अर्थ करने के लिए सूक्तों को लेकर अर्थ पर विचार करना चाहिये। अच्छा तो यही है कि आप सब मिलकर यह विचार करें कि उन स्थलों में इतिहास नहीं है, और अगर बहस के दर्मियान में कोई इस बात को ले कि वेद में इतिहास है, तो फिर उसी सूरत से बहस हो जायेगी।

श्री पण्डित विश्वबन्धु जी शास्त्री एम० ए०—

असली लक्ष्य वेदार्थ जानना है, जैसा कि चिट्ठियों में लिखा गया है, परन्तु जिस तरह यह बात चली है, उससे छः स्थलों को सामने रखा गया है। बाकी वेदार्थ किस प्रकार हो? उसके लिए तो बहुत कुछ चाहिये। स्वामी जी ने षड़अंग के आधार पर वेदार्थ करना माना है, आप पहले नं० १ ले लें, निरुक्तकार के अर्थ पढ़ लें, जब उसके मुत्ताल्लिक एक कोटि में शामिल हो जायें, तो फिर मन्त्रों का अर्थ समाज के सिद्धान्त के अनुकूल देख लिया जावे, आखिर वेद तो निरुक्त के सहारे खुलेगा।

श्री पण्डित भगवद्दत्त जी रिसर्चस्कालर—

सिद्धान्त निश्चित है कि वेद में इतिहास नहीं, शक मुझे भी हो सकता है तथा आपको भी, उसका जवाब आज मिल जाये, कल मिल जाये, उसका जवाब तलाश करूंगा। पहले यह पोजीशन साफ हो कि किस IDEA से START करते हैं।

श्री पण्डित विश्वबन्धु जी शास्त्री एम० ए०—

इस IDEA को लेकर START करते हैं कि वेद में इतिहास साबित न हो, वेदार्थ जाना जाये। स्वामी दयानन्द जी ने जो कुछ लिखा है वह सब ठीक है, तो फिर पण्डित भगवद्दत्त जी क्यों कहते हैं कि उन्हें शक़ है? विश्वबन्धु यह दोनों वाक्य एक समय में नहीं कह सकता।

शास्त्रार्थ के प्रधान श्री महात्मा हंसराज जी—

पण्डित विश्वबन्धु जी ने कहा है कि उनके दिल में ख़्वाहिश है कि वेद में इतिहास सिद्ध न हो, यह मुबारिक हो। वेदार्थ के लिए अंग जरूरी है, लेकिन इस मौके पर वेद मन्त्र आपके सामने होंगे, आप व्याकरण, ज्योतिष आदि की बातें पेश कर सकेंगे। इसमें मुझे आपत्ति मालूम नहीं होती। मन्त्र के साथ पूरे सूक्त को ले लें, उस पर विचार हो, साथ में निरुक्त का वह स्थल भी आ जायेगा।

श्री पण्डित विश्वबन्धु जी शास्त्री एम० ए०—

यह बात चिट्ठियों के बख़िलाफ हो जायेगी। निरुक्तकार वेद में इतिहास मानता है, वेद में इतिहास है या नहीं? इस निर्णय में झगड़ा पड़ेगा, शब्द का अर्थ निर्णय करने के लिए बीच में निरुक्त आ पहुंचेगा। इस स्थिति में वेद का अर्थ किस तरह से होना चाहिये, यह निश्चित हो जाना चाहिये।

श्री प्रोफेसर पण्डित राजाराम जी—

नोंक-झोक नहीं होना चाहिये। मैंने छः स्थल तो निर्देश किए हुए हैं, उन पर विचार करना है। यास्काचार्य वेद में इतिहास मानता है या नहीं? इस पर विचार करना है। जैसे पहला स्थल ६-२२ में···बीच में ही रोककर शास्त्रार्थ के अध्यक्ष जी बोले···।

शास्त्रार्थ के प्रधान श्री महात्मा हंसराज जी—

इस बात का निर्णय हो जाने के बाद आप आरम्भ कीजियेगा कि वेदमन्त्र तथा सूक्त तथा निरुक्त साथ-साथ चलेंगे।

श्री वैद्य रामगोपाल जी शास्त्री वैदिक रिसर्चस्कालर—

दरअसल कोई फ़र्क नजर नहीं आता, पण्डित जी एक टुकड़े को लेना चाहते हैं, लेकिन महज टुकड़े से कुछ नहीं बनता। पहले मन्त्र देखा जायेगा, सूक्त देखा जायेगा, देवता देखा जायेगा तथा स्वर देखा जायेगा, तब अर्थ हो सकता है, यह टुकड़ा है—"**स्थूरं राधः शताश्वं कुरुगंस्य दिविष्टिषु**" केवल इतने टुकड़े से तो अर्थ नहीं हो सकता, इसके लिए सूक्त तथा देवता देखना होगा।

श्री महता रामचन्द्र जी शास्त्री महोपदेशक—

मैंने यह समझा था और मुझे यह जानकर खुशी हुई कि आर्यसमाजी विद्वान भी, जिस तरह से मिजई लोग सभायें करके कुरान पर किये गये आक्षेपों का उत्तर देते हैं। उसी तरह यह भी करना चाहते हैं, कि जिससे आर्य समाज की पताका ऊंची हो। निरुक्त में कई जगह—"**इत्यैतिहासिकाः**" "**इति निरुक्ताः**" कहकर अर्थ प्रदर्शित किया है। **निरुक्त** के पहिले एक ऐसा भी दल था, जो निरुक्त में इतिहास मानता था। यह कोई नहीं कह सकता कि जहां उन्होंने "**इति निरुक्ताः**" ऐसा नहीं कहा, वहाँ और कोई भी अर्थ नहीं हो सकता। मैं यह मानता हूँ कि उसका योगिक अर्थ हो सकता है। यदि यह निर्णय हो जाए तो अच्छा है, मैं तो यहां इसलिए आया हूं कि यहां निर्णय होगा और हम डायरी में लिखकर ले जायेंगे तथा जब प्रतिपक्षी प्रश्न करेंगे तब हम उनकी संगति लगा देंगे। मैंने सायण का वेद भाष्य देखा है तथा पढ़ा है। सायण कहता है कि मन्त्रों के तीन प्रकार के अर्थ होते हैं, पर उसने तीन प्रकार के अर्थ इतने मन्त्रों के किए हैं कि मैं उन्हें अंगुलियों पर गिनकर बता सकता हूं, इससे कोई यह नहीं कह सकता कि अन्य मन्त्रों के तीन प्रकार के अर्थ नहीं हो सकते। जैसे निरुक्त में कहा है कि "**कुरुंगो राजा बभूव।**" कुरुंग राजा हुआ था या नहीं, यहां नित्य इतिहास है या नहीं? यह निर्णय होना चाहिए, व्याकरण से इसका अर्थ करना चाहिए।

श्री पण्डित भगवद्दत्त जी रिसर्च स्कालर—

हम यहां आग्रह करने नहीं आए हैं, लीजिए, मैं अब नैरुक्तों का सिद्धान्त स्थापित् करता हूं, हम अपना कपोल कल्पित सिद्धान्त नहीं रखते। स्कन्द स्वामी अपनी निरुक्त की टीका २-१२ में लिखता है—"**एवमाख्यानस्वरूपाणां मन्त्राणां यजमाने नित्येषु च पदार्थेषु योजना कर्त्तव्या। एष शास्त्रे सिद्धान्तः।**'''**औपचारिकोऽयम्मन्त्रेष्वाख्यानसमयः। परमार्थेन तु नित्यपक्ष इति सिद्धम्॥**" यह स्कन्द स्वामी ६३० ई० में हुआ है। दूसरा प्रमाण—वररुचि अर्थात् कात्यायन मुनि भी अपने—"**निरुक्त समुच्चय**-४-१४" में इसी प्रकार लिखता है—"**एवं नैरुक्त पक्षे योजना, औपचारिकोऽयं मन्त्रेष्वाख्यानसमयः नित्यत्व विरोधात्। परमार्थेन तु नित्यपक्ष एवेति नैरुक्तां सिद्धान्तः**"॥ तथा दुर्गाचार्य, जिसने निरुक्त के समझने में बड़ी सरलता कर दी है, वह एक इतिहास पक्ष की व्याख्या करता हुआ लिखता है—"**यः कश्चिद् आध्यात्मिक आधिभौतिक आधिदैविको वा अर्थ आख्यायते दिष्टयुदितार्थाव भासनार्थं स इतिहास इत्युच्यते। स पुनरयमितिहासः सर्वप्रकारो हि नित्यम विवक्षित स्वार्थः**"॥ १०-२६॥ अर्थात् नित्य इतिहास है—आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक तीन तरह का नित्य इतिहास है, निरुक्त के ये तीन बड़े आचार्य जिन्होंने निरुक्त पर अपने जीवन व्यतीत कर दिये इतिहास के मुत्तालिक फतवा देते हैं, अब आप यह मान लीजिए कि निरुक्तकार इतिहास नहीं मानते। हमें अब सन्देह है, आगे मैं इसका उत्तर दूंगा।

शास्त्रार्थ महारथी श्री पण्डित बुद्धदेवजी मीरपुरी—

प्रथम तो आप इतिहास के स्वरूप का निश्चय कीजिए, बताइए कि निरुक्तकार वेद में किस तरह इतिहास मानते

हैं ? दुर्गाचार्य लिखता है कि—"**परकृत्यर्थवाद**" रूपेण इतिहास होता है, न्यायभाष्यकार प्रकृति और इतिहास को अलग मानता है, पहले यह साबित करना चाहिये कि इतिहास क्या होता है ? "**अनिर्दिष्टप्रवक्तृकं प्रवाद पारम्पर्यमैतिह्यम्**" जिसका कोई वक्ता न हो वह इतिहास कहलाता है, यथा—"**देवा होचुः**" वेद का कर्त्ता ईश्वर है इसलिए उसमें इतिहास नहीं हो सकता, लोग उसे प्रकृति मानते हैं···बीच···में···

श्री पण्डित विश्वबन्धु जी शास्त्री एम० ए०—

प्रकृति भी बतला दीजिये क्या होती है ?

शास्त्रार्थ महारथी श्री पण्डित बुद्धदेव जी मीरपुरी—

सुनिए—"**अन्यकर्तृकस्य व्याहतस्य विधेर्वादः परकृतोः**" निरुक्त भाष्यकार दुर्ग लिखते हैं—"**तदर्थं प्रतिपत्तृणामुपदेशपरत्वात्**" अर्थात् अर्थ बताने के लिए वह इतिहास बनाए गए हैं, आपको चाहिए कि आप किसी प्रामाणिक ग्रन्थ से यह साबित करें कि, "**निरुक्त के इतिहास का स्वरूप क्या है ?**"

श्री प्रोफेसर पण्डित राजाराम जी—

शास्त्रार्थ लिखित होना चाहिए, मैं प्रश्न लिखकर दे दूं तथा सुना दूं इसी तरह उनके लिखित उत्तर दें और सुना दें, जिससे कोई प्रकरण विरुद्ध न जा सके। जैसे अभी दर्शनों के विषय में कहा गया था कि वेद में नित्य और अनित्य पक्ष दोनों होते हैं, मीमांसा में नित्यपक्ष के कई भेद होते हैं, दर्शनों का मर्म समझे बिना कोई यह नहीं कह सकता।

शास्त्रार्थ महारथी श्री पण्डित बुद्धदेव जी मीरपुरी—

लिखकर शास्त्रार्थ करने का सभा ने निश्चय नहीं किया, मुझपर हमला किया गया है कि मैं दर्शनों के मर्म को नहीं समझता, स्कन्द कोई मीमांसक नहीं है। तथा···बीच में···

श्री प्रोफेसर पण्डित राजाराम जी—

···मेरा मतलब यह नहीं था कि यह अलग विचार का विषय है। आप निरुक्त के इतिहास का स्वरूप प्रामाणिक ग्रन्थ से बतलावें ?

शास्त्रार्थ के प्रधान श्री महात्मा हंसराज जी—

लिखकर जवाब होने में कोई हानि नहीं, बल्कि अच्छा है। लिखित कागज पत्र प्रादेशिक सभा के दफ्तर में पड़े रहेंगे। परन्तु एक बात है कि अन्य लोग जो यहां दूर-दूर से पधारे हैं, वह खाली रहेंगे और उक्ता जावेंगे। सिर्फ लिखने वाले ही काम करेंगे इसलिए विचार जुबानी (मौखिक) ही होना चाहिए, पहले सूक्त को लेकर यह सिद्ध करना चाहिए कि इसमें इतिहास है या नहीं ?

श्री पण्डित भगवद्दत्त जी रिसर्चस्कालर—

पहले यह बात स्वीकार कर लीजिए कि—"**निरुक्तकर्ता यास्क तथा टीकाकार इतिहास नहीं मानते परन्तु हमें सन्देह है**" फिर विचार आगे चलना चाहिए।

श्री पण्डित ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु—

आपके सामने मूलवेद, ब्राह्मण, आरण्यक स्वयं निरुक्त, निरुक्त समुच्चय, निरुक्त के टीकाकार दुर्ग और स्कन्द स्वामी, शबर स्वामी, कुमारिल भट्ट इत्यादि लगभग बीस भाष्यकारों के प्रमाण पेश करता हूं कि—"**वेद में इतिहास नहीं है**" आप यह स्पष्ट कर दें कि आप इन्हें प्रमाण मानते हैं या नहीं ? आपकी पोजीशन क्या है ?

श्री प्रोफेसर पण्डित राजाराम जी—

मुझे किसी तरह का एतराज नहीं, आप मुझे यह स्थल **"कुरुंगो राजा बभूव"** (निरुक्त ६-२२) किसी भी टीका को लेकर समझा दें, आप किसी भी टीका को प्रमाण मान लीजिए। यह नहीं कि जब हम प्रमाण दें तो इन्कार कर दें, यदि आप प्रमाण दें तो मैं मान लूं, यह कैसे हो? आप किसी भी टीका को पूर्णतया प्रमाण बना लीजिए।

श्री पण्डित भगवद्दत्त जी रिसर्चस्कालर—

टीका को प्रमाण मानना आवश्यक नहीं। निरुक्त पर भी यही बात लागू होगी। निरुक्त को भी पूर्णतया प्रमाण मानिए। जब आप भी यह स्वीकार करते हैं कि निरुक्तकार ने बहुत से स्थलों पर नैरुक्त पक्ष से अर्थ करते हुए नहीं माना, तो आपको वह भी प्रमाण मानने पड़ेंगे। इसलिए जो पक्ष सर्व शास्त्रानुकूल और प्राचीन आचार्यों के अनुकूल होगा वह माना जाएगा।

श्री प्रोफेसर पण्डित राजाराम जी—

मैं निरुक्त को सर्वथा प्रमाण नहीं मानता, मैं वेद को परम् प्रमाण मानता हूं। चाहता हूं कि वेद से इतिहास न निकले। पहले यह सिद्ध हो जाना चाहिए कि निरुक्तकार इतिहास मानता है कि नहीं? मैं मूल वेद से अर्थ करने को तैयार हूं।

शास्त्रार्थ के प्रधान श्री महात्मा हंसराज जी—

निरुक्त के पहले स्थल पर विचार होना चाहिए, जो कुछ अब हुआ है उस पर विचार करके शाम को साढ़े चार बजे आ जायें।

★ ★ ★

(द्वितीय बैठक प्रारम्भ, दिनांक १८-५-१९३१ ई०)

(समय : सायं साढ़े चार बजे)

श्री प्रोफेसर पण्डित राजाराम जी—

निरुक्त के जो छः स्थल नियत किए गए थे उनमें से पहले स्थल में देखिए—यह नियम है—**"स्थूरं राधः शताश्वं कुरुंगस्य दिविष्टिषु"** (ऋक्० -८-४-१९) में **"दिविष्टिषु"** शब्द के निर्वचन के प्रसंग में यास्क ने यह नियम दिया है, आगे यास्क लिखता है—**"कुरुंगों राजा बभूव"** (निरुक्त ६-२२) कुरुंग नाम का राजा हुआ था, इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि यास्क वेद में इतिहास मानता है तथा आगे **"कुरुंग"** की व्युत्पत्ति करके साफ कर देता है—**"कुरुगमनाद्वा, कुलगमनाद्वा"** (निरुक्त ६-२२) कुरुओं में वह गया था, पुत्र होकर या जीतने के लिए।

शास्त्रार्थ के प्रधान श्री महात्मा हंसराज जी—

आप सूक्त की संगति लगाइए, सारे सूक्त का अर्थ कीजिए।

श्री प्रोफेसर पण्डित राजाराम जी—

हां ! मैं मन्त्र की भाषा कर देता हूं किन्तु सूक्त की व्याख्या करना मेरा कर्त्तव्य नहीं है।

शास्त्रार्थ के प्रधान श्री महात्मा हंसराज जी—

आपको कम-से-कम उन तीन मन्त्रों का अर्थ तो करना चाहिए।

श्री प्रोफेसर पण्डित राजाराम जी—

मैं अजमेर का ऋग्वेद लेकर इस सूक्त का देवतादि पढ़ देता हूं और इस मन्त्र का अर्थ कर देता हूं, यह मन्त्र—"ऋग्वेद-८-४-१६ का है, सुनिए—देवातिथिः काण्व ऋषिः" :

श्री पण्डित भगवद्दत्त जी रिसर्चस्कालर—

क्या इसका ऋषि देवातिथि है, निश्चय रूप से कहें।

श्री प्रोफेसर पण्डित राजाराम जी—

अजमेर वाले ऋग्वेद में ऐसा ही पाठ है, इस सूक्त में २१ मन्त्र है, उनके देवता इस प्रकार हैं—"१ से ४ तक इन्द्रः, १५ से १८ तक इन्द्रः तथा पूषा, १६ से २१ तक कुरूंगस्थ दानस्तुतिः।"

शास्त्रार्थ केशरी श्री पण्डित ठाकुर अमरसिंह जी—

"हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे, भूतस्य जातः पतिरेकः आसीत्। मैं इस मन्त्र को बोलकर···बीच में···

श्री प्रोफेसर पण्डित राजाराम जी—

"स्थूरं राधः शताश्वं कुरूंगस्य दिविष्टिषु। राज्ञस्त्वेषस्य सुभगस्य रातिषु तुर्वशेष्वमन्महि" ॥१६॥ अर्थ भी सुनिए—एक मोटा दान, जिसमें सैकड़ों घोड़े थे, दीप्तिमान अच्छे भाग्य वाले कुरूंग राजा के यज्ञों में। तुर्वशों के अन्दर हमने उसका अभ्यास किया है।

महामहोपाध्याय श्री पण्डित आर्यमुनि जी—

यह क्या है ? "वाद" है, "जल्प" है, या "वितण्डा" है ? यदि केवल—"**कुरूंगो राजा बभूव**" इसमें वेद, राजा का वर्णन करता है या आपके कथनानुसार वह व्यक्ति विशेष का नाम है ? यदि व्यक्ति विशेष का नाम है तो आप बतलायें कि किस तरह ? और यह सिलसिला कहां से चला ? या तो आप कहिए कि निरुक्त में लिखा है कि वेद में यह कथा आती है, या इसकी संगति लगाइए। बाद में पक्ष स्थापन करना आवश्यक होता है, आपको पञ्चावयवी वाक्य बनाना पड़ेगा। अनाद्यनन्त आर्य धर्म की फिलासफी यह है कि इस प्रकार से भूतकाल का प्रयोग बहुधा आता है। (१)—यथा—"**सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वम् कल्पयत्**" (ऋग्वेद १०-१६०-२) इसी तरह यास्क ने भी दे दिया है। अब पहले वादी व्यक्ति विशेष का इतिहास सिद्ध करें तो फिर प्रतिवादी उत्तर देगा।

श्री पण्डित ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु—

प्रातःकाल पण्डित भगवद्दत्त जी ने निरुक्त के "**तीन आचार्यों**" के प्रमाण पेश किए थे। देखिए—"**स पुनरयमितिहासः सर्व प्रकारो नित्यम विवक्षित स्वार्थः**" (दुर्ग टीका १०-२६) अब निरुक्त में देखिए—"**औपचारिकोऽयं मन्त्रेष्वाख्यानसमयः नित्यत्व विरोधात्, परमार्थेन तु नित्य पक्ष एवेति नैरुक्तानां सिद्धान्तः**" (निरुक्त समुच्चय ४-१४)

नैरुक्तों का सिद्धान्त है कि वेद में इतिहास नहीं है। यह स्वीकार है या नहीं ? वादी को अपनी ओर से (पञ्चावयवी) वाक्य युक्त पक्ष उपस्थित करना चाहिए या प्रातःकाल वाली बात मानी जाए, या कहा जाए कि हम उन्हें प्रमाण नहीं मानते, या केवल बुद्धि को प्रमाण मानते हैं।

शास्त्रार्थ महारथी श्री पण्डित बुद्धदेव जी मीरपुरी—

कुरुंग राजा था या नहीं ?···बीच में···

शास्त्रार्थ के प्रधान श्री महात्मा हंसराज जी—

आप लोग प्रातःकाल वाली बात मानें। दोनों पण्डित इन तीनों मन्त्रों के अर्थ कर दें फिर आपस में, जवाब—सवाल कर लें, इतिहास पक्ष वाले इतिहास सिद्ध करें तथा दूसरे अपना अर्थ सिद्ध करें, तब निर्णय हो सकता है, सारे निरुक्त के विचार के लिए अलग समय नियत किया जा सकता है।

श्री आचार्य पण्डित विश्वबन्धु जी शास्त्री एम० ए०—

पहले सारा मसाला इकट्ठा किया जावे, फिर थ्योरी घड़ी जाए। इसलिए सबका पक्ष आने दो GENERALIGATION के लिए आवश्यक DATE एकत्र कर लो। निरुक्त का क्या पक्ष है ? वेद का क्या अर्थ है ? यह थ्योरी अभी बनानी है। हम मानते हैं कि दुर्गाचार्य बड़ी सहायता देता है, पर अब बीसवीं सदी में दुर्गाचार्य और स्कन्द स्वामी नहीं बोलेंगे, अब तो हमें बोलना होगा।

शास्त्रार्थ महारथी श्री पण्डित बुद्धदेव जी मीरपुरी—

निरुक्त में "**दिविष्टिषु**" शब्द के पूर्व तीन शब्द आते हैं—"**चोष्कूयते, चोष्कूयमाणः, सुमत्, फिर दिविष्टिषु" है।**···बीच में···

श्री पण्डित भगवद्दत्त जी रिसर्चस्कालर—

हम प्रातःकाल वाली बात पर डटे हुए हैं। या तो उसे माना जाए अन्यथा गलत सिद्ध किया जाए···कोलाहल···

नोट—

बीच में ही काफी शोरोगुल व कोलाहल होने के कारण शास्त्रार्थ महारथी श्री पण्डित बुद्धदेव जी मीरपुरी चुप होकर बैठ गए तब शास्त्रार्थ के प्रधान जी ने कोलाहल शान्त करते हुए कहा—

शास्त्रार्थ के प्रधान श्री महात्मा हंसराज जी—

पण्डित राजाराम जी मन्त्र का अर्थ कर देवें।

श्री प्रोफेसर पण्डित राजाराम जी—

मैंने निरुक्त का स्थल पढ़ दिया तथा उसकी हिन्दी भी कर दी। वहां एक मन्त्र का पूर्वार्द्ध दिया है, देखिए—"**स्थूरं राधः शताश्वं कुरुंगस्य दिविष्टिषु**" (ऋग्वेद ८-४-१९) इस मन्त्र से स्पष्ट है—"**कुरुंगो राजा बभूव**" अर्थात् कुरुंग नाम का राजा हुआ था। कुरुओं में जाने से, कुल में जाने से। इससे यही प्रतीत होता है कि—"**यास्क वेद में इतिहास मानता है।**" मेरा मन्त्र के प्रति कोई अर्थ नहीं है, हां ! अक्षरार्थ कर देता हूं, पर किसी पक्ष को लेकर समर्थन नहीं कर सकता, जब तक उस पर काफी विचार न कर लूं। अक्षरार्थ इस प्रकार से है—"**बड़ा भारी दान, जिसमें घोड़े दीप्तिमान्, अच्छे भाग्य वाले कुरुंग राजा के यज्ञों में, तुर्वशों में हमने उसका अभ्यास किया है।**" (बताया विचारा)

शास्त्रार्थ के प्रधान श्री महात्मा हंसराज जी—

प्रातःकाल जो निर्णय हुआ था, उसके अनुसार दोनों पक्ष करें। दोनों पक्ष वाले अपनी-अपनी ओर से मन्त्र का अर्थ करें, जब मन्त्र समझ में आ जाए तब आगे विचार करें।

श्री प्रोफेसर पण्डित राजाराम जी—

मैंने निरुक्त का यह आशय समझा है कि—"यास्क इतिहास मानता है।" मैं मन्त्रार्थ करने से किसी को रोकता नहीं, पर मैं नहीं कर सकता।

शास्त्रार्थ के प्रधान श्री महात्मा हंसराज जी—

उन तीन मन्त्रों का अर्थ तो अवश्य करना ही चाहिए।

श्री प्रोफेसर पण्डित राजाराम जी—

मैं यहां अपनी विद्वता दिखाने नहीं आया, मेरा कर्त्तव्य इतना ही था कि निरुक्त पढ़ देता और उसका अर्थ कर देता। मैंने आपके कहने से एक मन्त्र का अर्थ भी कर दिया है।

श्री पण्डित भगवद्दत्त जी रिसर्चस्कालर—

क्या विश्वबन्धु जी इस अर्थ को स्वीकार करते है ? क्यों पण्डित विश्वबन्धु जी ! क्या आपकी मोहर भी इस अर्थ पर सबूत है ?

श्री आचार्य विश्वबन्धु जी शास्त्री एम० ए०—

मैं तो यहां श्रोता बनकर आया हूं, मैंने अर्थों पर विचार नहीं किया।

श्री पण्डित शंकर देव जी व्याकरणाचार्य—

यदि विचार ही करना था, तो इतनी जनता की क्या आवश्यकता थी ? मुझे भी इतनी दूर से यहां बुलाया गया है, विचार ही चलाना है तो काफी समय तक चलाना चाहिए, विचार पक्ष-प्रतिपक्ष रूप से होता है।

श्री महामहोपाध्याय श्री पण्डित आर्य मुनि जी—

यह वाद-कथा है। वाद-कथा में उपक्रम-उपसंहार भी होना चाहिए। यदि पण्डित राजाराम जी इतिहास वाला अर्थ करना चाहें तो करें। ऐसे मंत्रों पर स्वामी जी का अर्थ क्यों न स्वीकार किया जावे ? आपको पक्ष स्थापन अवश्य करना चाहिए और मैं यह भी आवश्यक समझता हूं कि वादी अपना अर्थ करे।

श्री प्रोफेसर पण्डित राजाराम जी—

यास्काचार्य वेद में इतिहास मानता है, सुनों प्रमाण—"**कुरुंगो राजा बभूव**" बस ! वादी का पक्ष स्थापन हो गया।

श्री पण्डित भगवद्दत्त जी रिसर्चस्कालर—

प्रातःकाल निरुक्त के तीन बड़े आचार्यों के प्रमाणों सहित नैरुक्तों का सिद्धान्त बताया था, वह स्वीकार है या नहीं ? या केवल बुद्धि को ही प्रामाणिक मानोगे ? मैं फिर प्रमाण पढ़े देता हूं—"**एवमाख्यानस्वरूपाणां मन्त्राणां यजमाने**

नित्येषु च पदार्थेषु योजना कर्त्तव्या। एव शास्त्रे सिद्धान्तः। :औपचारिकोऽयं मन्त्रेस्वाख्यानसमयः, परमार्थेन तु नित्यपक्ष इति सिद्धम्॥" (स्कन्द, निरुक्त टीका २-१२) तथा "एवं नैरुक्त पक्षे योजना, औपचारिकोऽयम्मन्त्रेष्वाख्यानसमयः नित्यत्व विरोधात्। परमार्थेन् तु नित्यपक्ष एवेति नैरुक्तानां सिद्धान्तः" (निरुक्त सम्मुचय ४-१४) तथा "य : कश्चिद् आ-यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिको वा अर्थः आख्यायते विष्टयु वितार्थाविभासनार्थं स इतिहास इत्युच्यते। स पुनरयमिति हासः सर्व प्रकारोहिनित्यमविवक्षित स्वार्थः" (दुर्ग-निरुक्त टीका १०-२६) "कुरुंग" का इतिहास यदि माना जाए तो वेद महाभारत के पीछे हुए हैं, ऐसा मानना पड़ेगा। कुरुंग कौरवों के साथ ताल्लुक रखता है, महाभारत में आप किसी जगह उसका इतिहास दिखलायें। मनुस्मृति में आया है—"सर्वेषां तु स नामानि कर्माणि च प्रथक्-प्रथक्। वेद शब्देभ्य एवादौ पृथक् संस्थाश्च निर्ममे"॥ (मनुस्मृति, १-२१) वेद के शब्दों को लेकर पीछे से नाम रख दिए हैं, वेद में "कुरुंग" शब्द मौजूद था, पीछे से कोई राजा हुआ, उसका भी नाम "कुरुंग" हो गया। यास्क उससे पीछे हुए, उन्होंने यदि लिख दिया तो क्या हुआ? वररुचि "निरुक्त समुच्चय" के ४-१४ में नैरुक्तों का सिद्धान्त लिखता है—"एव नैरुक्त पक्षे योजना, औपचारिकोऽयं मन्त्रेष्वाख्यान समयः, नित्यत्व-विरोधात् : परमार्थेन तु नित्यपक्ष एवेति नैरुक्तानां सिद्धान्तः"॥ इससे स्पष्ट है कि "वह इतिहास नहीं मानता।" इसी प्रकार "दुर्गाचार्य" ने "विश्वकर्मा भौवन" (निरुक्त, १०-२६) पर लिखा है—यः कश्चित् आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिको वा अर्थं आख्यायते विष्टयु वितार्थाव भासनार्थं स इतिहासः इत्युच्यते। स पुनरयमितिहासः सर्व प्रकारो हि नित्यमविवक्षितस्वार्थः"। अर्थात् इतिहास सत्य नहीं है। दुर्ग नित्य इतिहास को मानता है। मन्त्रों के तीन प्रकार के अर्थ होते हैं, आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक। आप इन प्रमाणों को गलत साबित करें या इन्हें स्वीकार करें।

श्री प्रोफेसर पण्डित राजाराम जी—

इन छः स्थलों पर विचार करना चाहिए, नतीजा तभी निकलेगा, जब निरुक्त का निर्णय हो जाएगा, मैंने पण्डित भगवद्दत्त जी को कहा था कि हम अपना सारा पक्ष बतला देते हैं, आप हमें लाइब्रेरी से स्कन्द दिखला दीजिए, पर उन्होंने साफ इन्कार कर दिया।···(बीच में)···

श्री पण्डित भगवद्दत्त जी रिसर्चस्कालर—

···दस वर्ष से ये ग्रन्थ मेरे पास पड़े हैं, तब से पढ़ने के लिए आपने कभी नहीं मांगे, अब शास्त्रार्थ के लिए मांगते थे। इसका मतलब साफ है कि आपको पढ़ने का शौक नहीं है। और···विघ्न···तब (बीच में शास्त्रार्थ के प्रधान जी बोले)···

शास्त्रार्थ के प्रधान श्री महात्मा हंसराज जी—

आप दोनों निरुक्त के स्थल तथा मन्त्र और सूक्त पर विचार करिए। सामान्य निरुक्त के विषय में विचार करने के लिए और समय नियत कर लीजिए।

श्री प्रोफेसर पण्डित राजाराम जी—

पण्डित भगवद्दत्त जी कहते हैं कि ""देवातिथि" अशुद्ध पाठ है, परन्तु स्कन्द भाष्य में तथा अजमेर से छपे वेद में भी "देवातिथेशर्वम्"। छपा है। स्कन्द निरुक्त ६-२२ में पाठ है कि—"स्थूरं स्थूलं परिमाणतः विपुलं सदित्यर्थः।", "कुरुंगस्य कुरुंगनाम्नो राज्ञः। कुरुनसौ पुत्रत्वेन गतवान् कुलीनत्वेन वा कुरुनसौ शत्रुत्वेन गतवान् वा।" इससे भी यही प्रतीत होता है कि—"स्कन्द वेद में इतिहास मानता है।" तथा "तुर्वश" शब्द के विषय में मैंने निश्चय रूप से इसलिए नहीं कहा कि निघण्टु में सामान्य पर्यायवाची तथा विशेष दोनों तरह के शब्द पढ़े हैं। "तुर्वश" शब्द पर बड़ा झगड़ा है।

श्री पण्डित ब्रह्मदत्तजी जिज्ञासु—

आप लोगों को मैं यह बताए देता हूं कि जो स्थल निरुक्त के इन्होंने दिए हैं उनमें जो मन्त्र आते हैं, उन पर

स्वामी जी का भाष्य नहीं है, निरुक्त में—"**कुरुंगो राजा बभूव**" पाठ आ गया है। यहां "**कुरुंग**" शब्द विशेषणवाची है, इसका अर्थ है—"**कुलीन**" जैसा कि व्युत्पत्ति से दिखलाया गया है, "**कुलगमनाढ्ढा**" इसलिए—"**कुरुंगस्य दानस्तुतिः**" इसका अर्थ है—कुलीन राजा की दान स्तुति। (**त्वेषस्य सुभगस्य कुरुंगस्य राज्ञः**) कुलीन दीप्तीमान, उत्तम गुणयुक्त राजा, प्रकाशमान आचार्य, विद्युत्त के (**दिविष्टिषु**) उत्तम क्रियाओं—दानादि व्यवहारों में (**तुर्वशेषु**) धर्मार्थ काम मोक्ष जानने वाले विद्वानों के विषय में अनेकविध अश्वादि शीघ्र गमन करने वाले जितने पदार्थ हैं, ऐसे धनवाले राजा, आचार्य विद्युत्त की स्तुति करते हैं। अर्थात् राजा में यह गुण होना चाहिए। उसके सम्बन्ध में रूपकरूप राजा का नाम "**कुरूंग**" आता है, निरुक्तकार लिखते हैं—"**ऋषेर्दृष्टार्थस्य प्रीतिर्भवत्याख्यान संयुक्ता**" (निरुक्त १०-४६) ऋषि की, जिसने अर्थ देख लिया है, कहने के लिए आख्यान की (प्रिय) कल्पना करते हैं। मथुरा शताब्दी के अवसर पर किसी ने एक लेख—"**मथुरा का अशान्त यात्री**" शीर्षक से लिखा था कि स्वामी विरजानन्द ने कहा है—"**अय आर्य समाजियों तुम्हें मेरी पुरी मथुरा में आने का क्या अधिकार है ? जबकि तुम मेरी व दयानन्द की कही हुई बातों पर आचरण नहीं करते हो, जिन ग्रन्थों पर मैं जूते लगवाया करता था, वही ग्रन्थ आज तुम्हारे गुरुकुलों व पाठशालाओं में पढ़ाए जाते हैं, इसलिए अपना डेरा-डण्डा उठाकर मथुरा से निकल जाओ।**" इस लेख को समाचार पत्र के सम्पादक ने—"**मथुरा में स्वामी दयानन्द और स्वामी विरजानन्द का वार्तालाप**" इस शीर्षक से छापा था। सौ वर्ष पश्चात यदि इतिहास लिखा जाएगा तो उसमें क्या यही लिखा जाएगा कि—"**मथुरा में शताब्दी के अवसर पर स्वामी दयानन्द और स्वामी विरजानन्द का वार्तालाप हुआ था ?** इसलिए—"**कुरूंगो राजा बभूव**" इसका अर्थ है—"**कुरूंगो राजा भवति**" संस्कृत साहित्य में कहीं "**कुरूंग**" का इतिहास बतलाइए ? "**कुत्सऋषिर्भवति**" ऐसा पाठ निरुक्त में आता है, किन्तु "**कुत्स**" ऋषि निरुक्तकार से पहले का है। यहां "**भवति**" शब्द भूतकाल के लिए दिया गया है। "**कुरूंग**" शब्द यहां विशेषण है, आपने "**अमन्महि**" शब्द का अर्थ "**अभ्यास**" बताया है, यह अर्थ यहां नहीं हो सकता, आपको धातु बतलाना चाहिए था।

श्री पण्डित प्रिय रत्न जी आर्ष (स्वामी ब्रह्ममुनि जी)—

यास्क की प्रतिज्ञा है कि—"**नामान्याख्यातजानि शाकटायनो नैरुक्तो समयश्च**" अर्थात् नाम धातुज होते हैं। महाभाष्य में भी कहा हैं—"**नाम च धातुजमाह निरुक्ते व्याकरणे शकटस्य च तोकम्।**" वेद में रूढ़ि शब्द नहीं है, यौगिक व्युत्पत्ति करनी चाहिये—"**इत्यैतिहासिकाः—इतिनैरुक्ताः**" निरुक्त इतिहास पक्ष अलग देता है। "**कुरुंगो राजा बभूव**" यह पाठ निरुक्तकार को असम्मत प्रतीत होता है। स्कन्द स्वामी के निरुक्त में यह पाठ नहीं था, क्योंकि उसने यह प्रतीक दी ही नहीं। दुर्ग वृत्ति में इस प्रतीक का अर्थ नहीं किया है। चाहे नाम-शब्द किसी ने बढ़ा दिया हो, ऐसा प्रतीत होता है। मूल मन्त्रों को लेकर अर्थ करने से वेदार्थ बहुत अच्छा होता है। देखिये—"**अत्र मन्त्रे योऽयं राजा स कुरुगमनाढ्ढा कुलगमनाढ्ढा कुरुंग विशेषण विशिष्टो बभूव**" इस मन्त्र में जो "**राजा**" शब्द पड़ा हुआ है, वह कुरुंग विशेषण विशिष्ठ है। "**कुरू**" का अर्थ है—"**यजमान**" यह निघण्टु ३-१८ में "**ऋत्विग्**" नामों से पड़ा हुआ है—"**कुरून् ऋत्विजो गच्छति स कुरूंगो यजमानः" : त्वेषस्यसुभगस्य**" तेजस्वी और अच्छा धन जिसके पास है। यजमान का दान कितना ऊंचा हो सकता है ? यह इसमें बतलाया गया है। आप कहते हैं कि—"**यह मन्त्र इतिहास मूलक है। मैं कहता हूँ कि यह मन्त्र इतिहास-मूलोन्मूलक है,**" इस मन्त्र के सब शब्दों की व्याख्या यास्क ने नहीं की। किन्तु "**कुरूंग**" में संशय था, इसलिए उसकी व्याख्या इतिहास के खण्डन में कर दी। यह मेरा दूसरा समाधान है। अब लीजिये तीसरा समाधान ! "**बभूव**" का अर्थ "**भवति**" है कवि लोग ऐसा प्रयोग कर देते हैं—"**आलस्यं मानस बुद्धिनाशनं परमंमतं, भवति इत्यर्थः अन्नदाताभयत्राता पञ्चैते पितरः स्मृताः, भवन्तीत्यर्थः**"। भूतकाल की अविवक्षा है, इसी तरह यहां भी हो जायेगा। अब चौथा समाधान लीजिये—"**कुरूंग**" नाम वेद में आया है, और उस नाम का राजा भी हुआ हो। यास्क का यह स्वभाव है कि वह तत्सम्बन्धी अन्य शब्दों का भी निर्वचन कर जाते हैं, और तत्सम्बन्धी बातें भी दर्शाते हैं, जैसे बालकों का स्वभाव होता है कि वह तत्सम्बन्धी बातें भी दर्शाते हैं, जैसे बालकों का स्वभाव होता है कि वे गेंद को ठोकर लगाते हुए मिट्टी के ढ़ेले को भी ठोकर लगा देते हैं,। अब आप मेरा मन्त्रार्थ लिख लीजिए—"**महान धन, असंख्य घोड़े या सैकड़ों प्रकार का बल यजमान का यश की इच्छा करने वालों में,**

राजा के, प्रतापी के, अच्छे कमाई के, धनवाले के, दान देने वाले मनुष्यों में प्राप्त करें हम" । यह तो मन्त्रार्थ हुआ भावार्थ भी नोट कर लें—बहुत आदमी मिलकर प्रार्थना करते हैं कि हम ऐसे गुण वाले राजा यजमान से दान प्राप्त करने की अभिलाषा करते हैं" ॥

श्री पण्डित गुरुदत्त जी शास्त्री

"कुरुङ्गस्य- कुलगमनाद् शत्रुकुलानि जेतुं गच्छतीतिः । अथवा कुरुन् दुर्धर्ष शत्रुनपि जेतुं गच्छतीति कुरुङ्गः । राज्ञः त्वेषस्य तेजस्विनः सुभगस्य शोभनैश्वर्ययुक्तस्य दिविष्टिषु दिव एषणेषु क्षेम प्रदातृषु इत्यर्थः । स्थूरं महत् शताश्वं बह्वश्व संयुक्त राधः धनं तुर्वशेषु मनुष्येषु या रातयः दानानिवयं अमन्महि मन्यामहे ॥ प्रकृत मन्त्रे राज्ञो धर्मः वर्णितः, यद्राजा स्वपराक्रमेण शत्रुकुलं विजित्य यत्किञ्चिद्धनं लभेत तत्सर्वं प्रजायाः कल्याणाय सर्वोपकारिषु कर्मसुनियोजयते । इत्थं करणेन् तस्य यशो वर्धते इति" ॥ इसमें "कुरुङ्गोराजा बभूव" सामान्य नाम है । विशेषणवाची शब्द है, व्यक्ति विशेष नहीं है । "बभूव" का अर्थ "भवति" होता है, "बभूव" परोक्षार्थ का बोधक होने पर राजा अभिप्रेत हो, तो भी कोई हानि नहीं, यह भी एक पक्ष है । परन्तु मैं यह मानता हूं कि "बभूव" वर्तमान का बोधक है । इसके लिए यास्क का ही प्रमाण लीजिये, प्रायः यास्क कई स्थलों में अपने काल से प्राचीन ऋषियों का वर्णन करता हुआ वर्तमान काल का प्रयोग करता है । जैसे—"च्यवनो ऋषिर्भवति, ऋषिः कुत्सो भवति, नोधा ऋषिर्भवति" ॥ देखिये वैदिकी प्रक्रिया—"छन्दसि बहुलम्, व्यत्ययो बहुलम् । "सुप्तिङुपग्रहलिङ्गनराणां काल हलच्स्वरकर्तृ यङां च । व्यत्ययमिच्छति शास्त्रकृदेषां सोऽपि च सिध्यति बाहुलकेन" । परोक्षे लिट्, छन्दसि लिट्, लिटः कानज् वा, क्वसुश्च । कवयस्तु बहुलं प्रयुञ्जते—"तं तस्थिवासं नगरोपकण्ठे" इत्यादि प्रयोग दर्शनात् । छन्दसि लुङ् लङ्ः लिट्ः, धातु सम्बन्धे प्रत्ययाः लकारार्थ प्रक्रियायामपि ॥

श्री पण्डित भगवद्दत्त जी रिसर्चस्कालर—

पण्डित प्रियरत्न जी ने ठीक ही कहा है कि, यह पाठ यास्क का नहीं है । पीछे से किसी ने मिला दिया है । दुर्गाचार्य के समय में जो निरुक्त था, वह उसकी सारी की सारी TEXT को REPRODUSE करता है, यदि यह सिद्ध हो जाये कि वहाँ यह वाक्य मौजूद नहीं था तो मानना पड़ेगा कि-दुर्ग के बाद किसी ने मिला दिया । १- "कुरुङ्गो राजा बभूव" दुर्ग की कई हस्त लिखित पुस्तकों के "नाम" शब्द नहीं हैं, और दुर्ग ने इस वाक्य का अर्थ भी नहीं किया, यदि वह दुर्ग के समय में होता तो वह अवश्य ही उसका अर्थ करता । २- निरुक्त के १०-५ में—"ऋषिर्नाभाको बभूव" दुर्ग ने यह पाठ नहीं दिया, और ना ही इसकी व्याख्या की है । ३. "कुशिको राजा बभूव" दुर्ग ने केवल "कुशिको राजा" पाठ दिया है । "बभूव" पाठ नहीं हैं, सच बात तो यह है कि यह पाठ पीछे से किसी ने मिला दिये हैं, यदि आप लोग यह मान लें तो झगड़ा खतम है ।

श्री पण्डित चारुदेव जी शास्त्री एम० ए०—

यास्क निर्वचन करता है, अर्थ करना उसका मुख्य विषय नहीं । निर्वचन के विषय में बड़े-बड़े विद्वानों को भ्रान्ति है, व्युत्पत्ति तथा अर्थ में भेद होता है । "कुरुङ्ग" के विषय में पाणिनि फेल हो गया है । उसके व्याकरण से यह शब्द सिद्ध नहीं होता । यास्क अपना सारा तर्क निर्वचन में लगा देते हैं, यास्क का काम निर्वचन करना है, अर्थ करना नहीं । जिस तरह मांस की व्युत्पत्ति की है, पर मांस का अर्थ वही है जो प्रचालित है । मैं पण्डित प्रियरत्न जी से पूछना चाहता हूं कि रूढ़ि व्युत्पत्ति क्या चीज होती है ? शब्द लौकिक और वैदिक धातुज हैं, पर योग रूढ़ि अवश्य मानने पड़ेगें । केवल विशेष शब्द यौगिक होते हैं, अन्य शब्द योगरूढ़ि । "मतं" का अर्थ

"**भवति**" नहीं, किन्तु वहाँ पर भाव है—"**अस्तीति शेष:**"। यह "**अस्तीति शेष:**" व्युत्पत्ति अर्थ नहीं होता। नैरुक्त प्रक्रिया को अच्छी तरह समझना चाहिये।

श्री पण्डित रामलाल जी शास्त्री (आचार्य विश्वश्रवा जी व्यास)—

मैं पण्डित चारूदेव जी से पूछता हूं कि, फल के गूदे के लिए संस्कृत साहित्य में मांस के सिवाय और कोई शव्द हो तो दिखलाइये। तथा यौगिक और रूढ़ि के लक्षण कर दीजिये।

शास्त्रार्थ महारथी श्री पण्डित बुद्धदेव जी मीरपुरी—

कवि लोग छान्दस प्रयोग कर दिया करते है। रामायण के सुन्दर काण्ड में—**ददृशे स महाकपि: गमिष्ये यत्र वैदेही: यं त्वं मां पृच्छसे**"। "**सज्जन्ते**" महाभाष्यकार प्रयोग करते हैं, इस तरह वैदिक प्रयोग कवि कर दिया करते हैं, "**बभूव**" का अर्थ भी इसे वैदिक मानकर "**भवति**" है। "**तत्करोति तदाचष्टे**" में "**करोति**" वर्तमान काल में दिया गया है, किन्तु भूत या भविष्य में भी प्रयोग होता है, "**जैसे—अपपठत्**" मैं पहले तीन शब्द इसके साथ जोड़ता हूं—१. "**चोष्कूयते**" २. "**चोष्कूयमाण:** तथा ३. "**सुमत्**"। तीनों शब्द राजा के विषय में हैं। "**चोष्कूयते विश इन्द्रोमनुष्यान्**" (ऋग्वेद् ६-४७-१६) "**चोष्कूयमाण इन्द्रभूरिवामं मा पणिर्भूरस्मदधि प्रवृद्ध**" (ऋग्वेद १-३३-३) "**उपप्रागात् सुमन्मेऽधायि मन्म**" (ऋग्वेद १-१६२-७) ऐसा राजाहो। "**शताश्वं क्षत्रं**" "**क्षत्रं वा अश्व:**" "**महते क्षत्राय ज्येष्ठाय**" राजा शतबल की पुष्टि करने वाला हो, उसकी हम स्तुति करते हैं, परमात्मा का दान सबसे बड़ा है,—"**अहंभूमिदद्दामार्याय**" (ऋग्वेद ४-२६-२) भूमि आदि का दान परमात्मा ने दिया। मन्त्रों का सौन्दर्य सम्पादन करना हम दोनों का काम है, क्योंकि हम दोनों ही वेदों को मानते हैं,। इतिहास पक्ष से अर्थ करने में सौदर्न्य नहीं रहता। वेद का अर्थ खोलकर समझाइये। पहली बात -१- "**कुरुङ्ग**" के माता-पिता का नाम तथा परिचय दीजिये। २. "**कुरुङ्ग**" का नाम पहिले क्या था? क्या उसके माता-पिता ने उसका यह नाम रखा था? अथवा, ३. उसे कोई खास काम करने के कारण यह नाम मिला था? तो वह खास काम कौन सा था? ४. "**अमन्महि-मन्यामहे**" यह फैसला कुरुङ्ग के विषय में किसने दिया था? उसका नाम बतलाइये? यदि ऋषि ने लिख दिया, तो पूरा इतिहास क्यों नहीं दिया? "**कुरुगमन**" क्यों कहा गया? ५. "**कुरुङ्ग**" नाम "**कुरुगमन**" से बना या "**कुलगमन**" से?

श्री महता रामचन्द्र जी शास्त्री महोपदेशक—

इस मन्त्र का अर्थ यह है, "**कुरुङ्गस्य**" उद्योग करनेवाला, कुलों को जीतने वाला, दुश्मनों को काटने वाला, उसको बहुत ऐश्वर्य, सैंकड़ों घोड़े, तोपखाने, खच्चरें मिलती हैं, स्वर्ग में जाने के लिए मनुष्यों में जितने दान हैं उनमें यह दान बढ़ा हुआ है।

श्री पण्डित प्रियरत्न जी आर्ष (स्वामी ब्रह्ममुनी जी)—

जो कोई शब्द मन्त्र में पड़ा हो उसीका निर्वचन करते हैं, यह बात आवश्यक नहीं, बल्कि भाषा-शब्दों का भी निर्वचन करते हैं, "**नेति प्रतिषेधार्थियो भाषायाम्**। "**नै गमरूढ़िभवं हिसुसाधु**"-**नैगमाश्च रुढ़िभवाश्च शब्दा: साधव: भवन्ति**" यहां वैदिक तथा लौकिक शब्द पृथक् २. दर्शाये गये हैं,। रूढ़ि-रीति का नाम है।

नोट—

इसके साथ ही आज की द्वितीय बैठक शान्ति पाठ के पश्चात् समाप्त की गई।

(तृतीय बैठक प्रारम्भ, दिनांक १६-५-१६३१ ई०)

[समय : प्रात:काल]

शास्त्रार्थ के प्रधान श्री महात्मा हंसराज जी—

कल "कुरुङ्ग" विषयक जो मन्त्र था, उसके अर्थ पण्डित राजाराम तथा आप सभी लोगों ने अपने-अपने कर दिये थे। अत: किसी दूसरी बात में जाने से पहले प्रार्थना है कि, दोनों पक्ष अपने-अपने अर्थ लिखकर दे देवें, ताकि आर्य समाज को आवश्यकता के समय वह काम आ सकें। और वह सनद रूप में कायम रहें। पण्डित राजाराम के पक्ष वाले यह अर्थ लिख देवें। और जो वेद में इतिहास नहीं मानते, वह भी अपने मन्त्र का अर्थ लिख कर दे देवें। ताकि यह विषय समाप्त हो। निरुक्त के वाक्य का अर्थ भी लिख दिया जावे। सम्पूर्ण निरुक्त पर विचार करने के लिए दूसरा समय रख लें तो अच्छा हो।

श्री प्रोफेसर पण्डित राजाराम जी—

पण्डित भगवद्दत्त जी भी अपना अर्थ लिखा देवें। तीन मन्त्रों का अर्थ किसी ने भी नहीं किया। मैंने तो एक मन्त्र का अर्थ कर दिया। हाँलाकि मन्त्रों के अर्थ करने की जिम्मेदारी हमारी नहीं है।

शास्त्रार्थ के प्रधान श्री महात्मा हंसराज जी—

आप सब लोग अपना-अपना अर्थ कर देवें।

श्री पण्डित विश्वबन्धु जी शास्त्री एम० ए०—

हमने पण्डित भगवद्दत्त जी को अर्थ लिखवा दिया था, तथा अन्य लोगों के अर्थ भी आपके पास पहुंच चुके हैं, उनसे दस्तख़त करा लिये जावें।

शास्त्रार्थ के प्रधान श्री महात्मा हंसराज जी—

आप लोग मन्त्रार्थ लिखकर देवें, फिर परस्पर निर्णय कर लेवें।

श्री पण्डित विश्वबन्धु जी शास्त्री एम०ए०—

कोई आदमी नहीं कह सकता कि मेरा अर्थ ठीक है। जितने उठे हैं, उन्होंने उतनी ही तरह के भिन्न-भिन्न अर्थ किये हैं। तथा अब निर्णय होना चाहिये। यौगिक प्रक्रिया के आधार पर उस पर बहस होनी चाहिये। जितने अर्थ किये हैं, उन पर दोष आ सकते हैं।

शास्त्रार्थ के प्रधान श्री महात्मा हंसराज जी—

अच्छा अभी आप विचार कर लें। विचार करने के बाद अर्थ दे दिये जावें।

श्री प्रोफेसर पण्डित राजाराम जी—

निरुक्त के विषय में स्वतन्त्र रूप से विचार होता तो ठीक था। किन्तु हमको छ: स्थलों पर विचार

करने के लिए कहा गया था, इसलिए इन पर विचार होना चाहिये मैंने कहा था कि यास्क ने "**कुरुङ्ग**" का अर्थ कुरुङ्ग राजा किया है। इससे सिद्ध है कि—"**वह वेद में इतिहास मानता है**"। इस पर कहा गया है कि—"**बभूव**" पद ही नहीं है। किसी ने कहा कि "**बभूव**" का अर्थ "**भवति**" है। "**बभूव**" का अर्थ बड़ी दिलेरी से किया गया है। यह तो यास्क का वचन है, वेद का नहीं है। जहां "**छन्दसिलुङ्लङ्लिटः**" और "**सुप्तिङुपग्रहलिंग-नराणाम्...**" इत्यादि लगेगा। यहां परोक्षभूत में आया है इसे वर्तमान में कोई नहीं वर्तता। किसी ने उदाहरण नहीं दिया। पण्डित भगवद्दत्त जी ने कहा था कि "**देवातिथेरार्षम्**" पाठ गलत है, इसमें क्या प्रमाण है ? मुझे हर जगह रोकने की कोशिश की जाती है, पण्डित जी कहते हैं कि—"**कुरुङ्गो राजा बभूव**" यह पाठ प्रक्षिप्त है। इसके लिए प्रमाण तो कोई दिया ही नहीं। मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी यदि यह प्रक्षिप्त साबित हो जाये, परन्तु इसके लिए प्रमाण चाहिए। मन्त्रार्थ करने में सारा जोर—"**कुरुगमनाद्वा कुलगमनाद्वा**" इस व्युत्पत्ति पर दिया गया है। एक बात "**भवति**" के विषय में और कह देना चाहता हूं।—"**कुरुङ्गों राजाबभूव**" में "**बभूव**" पद का अर्थ यदि "**भवति**" किया जावे, तो "**राज्ञः**" पद व्यर्थ जाता है। उसका अर्थ होगा कि—"**कुरुङ्ग**" राजा का नाम है। जिस व्युत्पत्ति के आधार पर कुलीन अर्थ किया है, वहां तक मेरी दृष्टि नहीं पहुंची। इसलिए "कुरुङ्ग" को मैंने वैसे ही रहने दिया है। "**स्कन्द स्वामी**" के आधार पर अर्थ करने से उनके पक्ष में ही दोष आता है। क्या वह "**कुल गमनाद्वा**" के आधार पर कुलीन अर्थ करते हैं ? उस अर्थ में भी इतिहास पाया जाता है। "**पण्डित ब्रह्मदत्त जी**" ने "**राज्ञः**" का अर्थ बिजुली किया था, अब कुलीन बिजुली कौन सी होती है ? तथा "**अश्व**" का अर्थ "**वीर्य**" किया था, वह किस आधार पर है ? यह यौगिक प्रक्रिया को न समझते हुए भिन्न-भिन्न असावधान-निराधार अर्थ किए गए हैं। "**पण्डित चारुदेव जी**" ने प्रक्रिया के विषय में बहुत कुछ कह दिया। यास्क का काम निर्वचन करना है, अर्थ शब्दों का नियत होता है। निर्वचन का यह अर्थ नहीं कि जो चाहो वह अर्थ ले लो। यास्क ने सारे अर्थ देकर उनका निर्वचन किया है। "**अन्यद्धिप्रवृत्ति-निमित्तं, अन्यद्धि व्युत्पत्ति-निमित्तम्**" जैसे "**धनपत**" का अर्थ वह लड़का है, जिसका वह नाम है, पर व्युत्पत्ति-निमित्त धन का जो मालिक है। उदाहरण के तौर पर अगर ऐसा कहा जाये कि—"**धनपत को लाओ**" ऐसा कहने पर धन का जो मालिक है उसे नहीं लायेंगे, बल्कि जिसका नाम "**धनपत**" है उसे लाया जायेगा। जैसे "**पंजाब**" शब्द देश-विदेश में प्रवृत्त है। इसका व्युत्पत्ति-निमित्त "**पांच पानी**" भी हो सकते हैं। यदि यहां पांच पानी इकट्टे कर देंगे, तो वह पंजाब नहीं हो जायेगा। यही यास्क का अभिप्राय है। भूल इस प्रक्रिया को न समझने से होती है। जैसे "**श्मशान**" की व्युत्पत्ति यास्क ने की है—"**श्म शरीरं शयनं भवति**" अर्थात् जहां शरीरों का शयन होता है। इस हिसाब से तो बिस्तरे का नाम भी श्मशान होगा, परन्तु श्मशान का अर्थ मसान ही होता है जहां मुर्दे जलाये जाते हैं, इसी प्रकार "**सप्त**" का अर्थ "**सृप्ता**" बढ़ी हुई संख्या है। तो आठ का नाम भी सप्त क्यों नहीं ? इससे आगे जो चीज गई हुई होगी वह सप्त कहलायेगी। इसी प्रकार "**पञ्च प्रक्ता संख्या**" मिला हुआ अर्थ लिया जाये, तो कपड़ा भी मिला होता है तो इससे सिद्ध हुआ कि व्युत्पत्ति-निमित्त और है, और प्रवृत्ति-निमित्त और है। व्युत्पति अर्थ का बोधक नहीं। यदि इसी के सहारे पर अर्थ करना होगा, तो कोई व्यवस्था नहीं रहेगी, कोई नाम नहीं बन सकता। जैसे कन्या का निर्वचन किया है—"**कन्या कमनीया भवति**" इससे तो माता भी कन्या हो गयी परन्तु उसे कन्या नहीं कहते। मूली को भी कन्या नहीं कह सकते, बल्कि कन्या को ही कन्या कहेंगे इस प्रकार करने से तो अर्थ के साथ सम्बन्ध ही नहीं जुड़ता। अतः जो चाहो सो अर्थ नहीं हो सकता। "**हन्तो हन्तेः**" जो मारता है, वह "**हस्त**" होता है। तो क्या तलवार का नाम भी हस्त हो जायेगा ? स्कूलों के मास्टर भी "**हस्त**" हो जायेंगे ? इससे जाना जाता है कि यास्क को व्युत्पत्ति अभिप्रेत है, अर्थ नहीं। जो अर्थ निरुक्त की प्रक्रिया को न समझकर किये गये हैं वह आपस में मिलते नहीं तथा एक बात और महात्मा जी से निवेदन करना चाहता हूं। उन्होंने मुझे यह कहा कि—आपने एक मन्त्र का अर्थ

कर दिया, वह आपकी कृपा है। ऐसा उन्हें नहीं कहना चाहिये क्योंकि कृपा तो उन्हीं की है।

महामहोपाध्याय श्री पण्डित आर्य मुनि जी—

जिसे "**निरुक्त**" कहते हैं यदि उसकी निरुक्ति हमारे किसी काम नहीं आती तो निरुक्त सारा का सारा व्यर्थ जाता है। आप बतलायें कि "**ब्रह्म शब्द का व्युत्पत्ति निमित्त क्या है ? और प्रवृत्ति निमित्त क्या है ?**" संज्ञावाची "**ब्रह्म**" शब्द का प्रयोग यदि आया हो तो वह भी बताइये। अर्थों को विशद करना ही निरुक्त का काम है। यदि ऐसा स्वीकार नहीं किया जाये तो यास्क का निरुक्त हमारे कोई काम नहीं आता।

श्री पण्डित ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु—

पण्डित राजाराम जी ने अर्थ पर दोष दिये हैं। उनका भी उत्तर दिया जायेगा। अब पहले निरुक्त को लीजिये-"**पञ्च सप्तादि**" शब्द जितने भी बोले हैं वे सब एकार्थवाची हैं। "**गौ**" शब्द की व्युत्पत्ति और प्रवृत्ति निमित्त बतलाइये। मैं उससे अधिक बतलाने के लिए तैयार हूं, दूसरी बात मैं यह पूछता हूं कि, "**गोपाल**" शब्द की व्युत्पत्ति तथा प्रवृत्ति (निमित्त) क्या है ? महाभाष्य में लिखा है—"**गोपाल कमानय, कटजकमानयेति। उभयगतिस्तस्य भवति**" (बहुगण···१-१-२३)। आप प्रवृत्ति-निमित तथा व्युत्पत्ति-निमित्त को नहीं जानते। शास्त्र इसका निर्णायक है, क्योंकि महाभाष्य में कहा है—"**सन्ति वै शब्दाः अप्रयुक्ताः**"। तथा "**बृहस्पतिश्च प्रवक्ता इन्द्रश्चाध्येता दिव्यं वर्षसहस्रमध्ययनकालः न चान्तं जगाम**" "**सर्वे देशान्तरे**···" (महाभाष्य, १-१-१-आ०) इत्यादि शब्द का विषय बहुत है। इसको जाने बिना कौन कह सकता है कि मैं "**शब्द**" का अर्थ "**परमात्मा**" सप्रमाण करूंगा। "**कुरुङ्गो राजा बभूव**" इसमें "**बभूव**" का अर्थ "**भवति**" निरुक्तकार ने स्वयं खोल दिया है, जैसा कि—"**कुत्स ऋषिर्भवति, नोधाऋषिर्भवति, च्यवन ऋषिर्भवति**" इत्यादि काल की अविवक्षा से प्रयोग किये हैं, जैसा कि श्री पण्डित गुरुदत्त जी ने बताया है, इसी प्रकार यहां पर भी "**बभूव**" से "**भवति**" अभिप्रेत है। "**भवति अस्ति विद्यते**" में भेद है, यह भी समझ लेना चाहिये। इससे स्पष्ट है कि आचार्य को यहां पर काल-सामान्य अभिप्रेत है। प्रक्षिप्त का उत्तर श्री पण्डित भगवद्दत्त जी देंगे। कल मैंने मन्त्र का अर्थ जल्दी-जल्दी शीघ्रता में किया था, आपको आज बतला देता हूं कि, कुलीन बिजुली कैसे होत्ती है ? मन्त्रार्थ लीजिये, इससे स्पष्ट हो जायेगा—"**स्थूरं राधः शताश्वं कुरुङ्गस्य दिविष्टिषु। राज्ञः त्वेषस्य सुभगस्य रातिषु तुर्वशेष्वमन्महि**"। (ऋग्वेद-८-४-१९) इसका अन्वय भी सुनिये—"**त्वेषस्य सुभगस्य कुरुङ्गस्य राज्ञो दिविष्टिषु रातिषु तुर्वशेषु शताश्वं स्थूरंराधोऽमन्महि**"॥ अब पदार्थ और सुनिये, जिससे पूर्ण स्पष्टीकरण हो सके—

पदार्थः—

(त्वेषस्य) "**त्विष दीप्तौ**" **इत्येतस्माद्धातोः पचाद्यचि त्वेषः**,तस्य त्वेषस्य दीप्तिमत.। "**चितः**" (अ०-६-१-१५७) **इत्यन्तोदात्तत्वम्**। (सुभगस्य) "**भज सेवायाम्**" **इत्येतस्माद्धातोः** "**पुंसि संज्ञायां घः प्रायेण**" (अ० ३-३-११८) इति घप्रत्यये "**चजोः कुः घिण्यतोः**" (अ० ७-३-५२) इति कुत्वे भज्यते सेव्यते मुमुक्षिभिर्धनार्थिभिर्विद्यार्थिभिर्भोगार्थिभिर्वा, सुष्ठु भगोऽस्येति सुभगः, तस्य सुभगस्य। "**क्रत्वादयश्च**" (अ० ६-२-११७) इत्युत्तरपदाद्युदात्त्वं, शोभनैश्वर्यकलाविद्यायुक्तस्य इत्यर्थः (कुरुङ्गस्य) कुरुन् क्रूरान् ऋत्विजो वा गच्छति, प्राप्नोति जगति विनाशयति वा यः स कुरुङ्गः। पाणिनी फेल नहीं होता, देखिये इस तरह से कुरुङ्ग शब्द सिद्ध होता है। "**डोऽयन्त्रापि दृश्यते**" (अ० ३-२-४८) वा० इति गमेर्डः, प्रशोदरादिः। तस्य कुजीास्य दुष्टविनाशकस्य राज्ञः, दुष्टज्ञानविनाशकस्याचार्य्यस्य, विविधक्रियाप्राप्ताया विद्युतः, "**गतिकारकोपपदात्कृत**"(अ० ६-२-१३८) इति प्रकृतिस्वरे प्रत्ययस्वरेण अन्तोदात्तत्वम्, सुपोऽनुदात्तत्वं "**उदात्तादनुदात्तस्य स्वरितः**" (अ० ८-४-६५) इति स्वरितत्वं सम्पन्नम्। (राज्ञः)

"**राजृ दीप्तौ**", यद्वा "**राजति ऐश्वर्यकर्मा अर्चतिकर्मा वा**", राजते दीप्तिमान् भवति सर्वैश्वर्य्ययुक्तो भवति इति वा, राज्यते अर्च्यते पूज्यते इति वा। ऐश्वर्यवतो राज्ञः प्रकाशयुक्तस्य विद्युतः पूज्यस्याचार्य्यस्य। राजतेः "**कनिन् युवृषितक्षिराजिधन्विप्रतिदिवः**" (उणा० १-१५६) इति "कनिन" प्रत्यये आद्युदात्तत्वं च। तत्र प्रमाणानि—"**राजानो वै राष्ट्रभृतस्ते हि राष्ट्राणि बिभ्रति**" (श० ९-४-१-१)। "**कुरुङ्ग**" का वंश तथा कुलादि पूछा गया था, किन्तु उसका कोई उत्तर नहीं दिया गया। यह देखिये, इस सप्ताह के "**पंजाब केसरी**" में "**कुरुङ्ग**" का इतिहास निकला है। सम्भवतः इससे काम बन जायगा। मन्त्रार्थ-प्रक्रिया भी समझ लेनी चाहिये। अच्छा होता आप मेरे प्रश्नों का उत्तर उसी समय दे देते, तो निश्चय हो जाता। इन्द्र का प्रकरण ऊपर से आ रहा है। राजा का इन्द्र के साथ सम्बन्ध है। एक बात भी बतला देता हूं कि आपकी सर्वानुक्रमणी भी अपूर्ण है। "**स्तनयित्नुरिन्द्रः**" (श० ११-६-३-९); "**राजा उरबली भावुकः**"(श० ३-२-२-८); "**इन्द्रो ह भूत्वा असुरांस्ततर्ह**"(अथर्व० १४-७-२); निरुक्त २-२१ में भी आया है—"**उद्यन्नादित्यः सर्वेषां ज्योतिषां राजा भवति। राजा हि कं भुवनानामभिश्रीः**" (ऋक् १-९८-१) परमात्मा-परक अर्थ होता है। (दिविष्टिषु) द्यौर्गम्यते प्राप्यते यया सा, राज्ञ उत्तमक्रियासु विद्युतो विज्ञानयुक्तक्रियासु आचार्य्यस्य विद्यासम्बन्धिक्रियासु, दिवो "**विच**" प्रत्ययः गुणाभावश्च। दिवि शब्दोपपदात् इषेर्गत्यर्थादिच्छार्थाद्वा करणे "**क्तिन्**" प्रत्ययः, दिवः (सम्बन्धि) इष्टि एषणा अस्येति बहुव्रीहौ समासे "**बहुव्रीहौ प्रकृत्या पूर्वपदम्**"(अ० ६-२-१) इति पूर्व-पदाद्युदात्तत्वम्। (रातिषु) "**रातिर्दानकर्मा**" विप्रदानादिषु संसारोपकारकत्वेन विविधैश्वर्यदानक्रियासु विद्यादानक्रियासु वा। "**रा दाने**" यद्वा "**रैशब्दे**" उभाभ्यां "**वसेस्तिः**" [उणा० ४-१८०] इति बाहुलकात् "**ति**" प्रत्ययो भावे, प्रत्ययस्व-रेणान्तोदात्तत्वम्। [तुर्वशेषु] "तूर त्वरणहिंसनयोः अस्मात् "**क्विप**" प्रत्ययः=तूरः। अश्नोतेश्च पचाद्यचि तूर्णमश्नुते, पृशोदरादित्वात् मध्योदात्तत्वं, यद्वा चतुर्षु "**धर्मार्थकाममोक्षेषु**" वश एषामिति चतुर्वशः सन्त चकारलोपेन तुर्वशः। "**तुर्वशः इति मनुष्यनाम**" निघण्टु [२-३] मनुष्येषु मनुष्यव्यवहारेषु वा विद्युतः आचार्य्यस्य च। यह "**तुर्वशेषु**" की व्याख्या देवराजयज्वा ने की है। मेरी सब बात सप्रमाण हैं। (शताश्वं) शतमसंख्याता अश्वा यस्येति तं शताश्वम्। "**वीर्यं वै अश्वः**" [श० २-१-४-२३]; "**अश्नुतेऽध्वानं महाशनो भवतीति वा**" [नि० ४-१३]। "अशूङ् व्याप्तौ" "**अशूप्रुषिलटिकणि०**" [उ० १-१५१] उत्यादिना "**क्वन**" प्रत्ययः। अश्नुते इत्यश्वः तुरङ्गः, उपलक्षणमेतत्, तेन गवादयश्च। व्यापको विद्युतः प्रकाशः तम् "**वीर्यं अश्वः**" [श० २-१-४-२४]। "**बहुव्रीहौ प्रकृत्या पूर्वपदम्**" [अ० ६-२-१] इति पूर्वपदप्रकृति-स्वरे शतशब्दोऽन्तोदात्त इति। "**स्थूरं**"—आपने "**कुरुङ्ग**" शब्द पर कहा था कि पाणिनि फेल हो गया। पाणिनि फेल नहीं हुआ, बल्कि आपने उसे समझा नहीं। "**सर्ववेदपरिषदं हीदं शास्त्रं**" "**स्थूरं**" शब्द को अर्थ व्युत्पत्ति सहित सिद्ध करें। मैं तो इस तरह के चैलेंज आदि देने के ढंग को बुरा समझता हूं, परन्तु जब हमें यह कहा जाता है कि मेरी बात कोई समझ ही नहीं सकता तब हमें इस प्रकार की बात कहनी पड़ती है। "**व्याख्यानतो विशेषप्रतिपत्तिर्नहि सन्देहादलक्षणम्**" व्याख्या से शास्त्रों का तत्त्व समझ में आता है। [स्थूरं] महत् स्थिरं धनं स्थिरं विज्ञानं स्थिरं ज्ञानं वा। श्री पं० विश्वबन्धु जी ने अथर्व प्रातिशाख्य की भूमिका में "**उभे वनस्पत्यादिषु युगपत्**" [अ० ६-२-१३९], "**देवताद्वन्द्वे च**"[अ० ६-२-१४०] "**देवताद्वन्द्वानि चानामन्त्रितानि**", इन सूत्रों को लेकर लिखा है This provision makes up for defficiency even in panini अर्थात् यह बात पाणिनि को समझ में नहीं आई, और पाणिनि की न्यूनता का "**देवताद्वन्द्वानि चानामन्त्रितानि**" [शु० य० प्रा० २-४८] इस प्रातिशाख्य के सूत्र ने पूरा किया है। मैं हजार पण्डितों के बीच में कहने को तैयार हूं कि पाणिनि ठीक है। आप अपना पक्ष स्थापित करें, मैं उसका खण्डन करूंगा। "**अमन्महि**" का धातुनिर्देश भी कर दें, तो अच्छा है। [राधः] "**राध साध संसिद्धो असुन् प्रत्ययः**"। "**राध्नुवन्ति साध्नुवन्ति धर्मादीन् पुरुषार्थान्**" स्कन्द के भाष्य में ऐसा लिखा है, "**ज्ञानरूपं धनं**"। "**ञ्नित्यादिर्नित्यम्**" [अ० ६-१-१९१] इति आद्युदात्तत्वम्। राधः धनं ज्ञानरूपं धनम् [अमन्महि] अर्चामः। तिङ्ङतिङः [अ० ८-१-२८] इति निघातः।

"ईश्वरपक्षेऽपि"—[त्वेषस्व] दीप्तिमतः (सुभगस्य) परमैश्वर्ययुक्तस्य (कुरुङ्गस्य) कुरु कर्मशीलो भक्तस्तं गच्छति प्राप्नोति इति जगदीशस्तस्य (दिविष्टिषु) उत्तमगुणप्रापिकासु क्रियासु (रातिषु) दानविज्ञानदान-क्रियासु (तुर्वशेषु) मनुष्येषु प्राणिमात्रेषु (शताश्वं) विविधैश्वर्यरूपोत्तमं धनं (अमन्महि) याचामः। मेरे पास वैदिक रीति से भी इस मन्त्र का अर्थ था, जो मैं आपको बतलाता, किन्तु समय थोड़ा है।

श्री पण्डित भगवद्दत्त जी रिसर्चस्कालर—

निरुक्त की प्रक्रिया क्या है? इस पर बड़ा जोर दिया गया है। मुझे भी अभिमान है कि मैंने १५ वर्ष निरुक्त का अध्ययन किया है। दो तरह की बात है—(१) जब से वेद-मन्त्र हैं, तब से लौकिक संस्कृत विद्यमान है, या वैदिकभाषा से लौकिकभाषा निकली है? वैदिकभाषा का प्रयोग पहले होता था, हम यह मानते हैं, कि दोनों साथ-साथ चलती हैं? वैदिकभाषा का सृष्टि में कभी प्रयोग नहीं हुआ, अतः लौकिक और वैदिक संस्कृत की प्रवृत्ति तथा व्युत्पत्ति में भेद है। निरुक्त में **"कुरुङ्गो राजा बभूव"** यह पाठ पीछे से डाला है, यास्क के समय में नहीं था। निरुक्त तथा वैयाकरण लौकिक तथा वैदिक शब्दों को पृथक्-पृथक् मानते हैं। **"महाभाष्यकार"** [अ० ३।३।१] लिखते हैं।—**"नैगम [रुढि] भवं हि सुसाधु"** नाम धातुज हैं। व्याख्या करते हुए लिखते हैं—**"नैगमाश्च रूढिभवाश्च शब्दाः"** वैदिक तथा लोक में होने वाले शब्द नैरुक्त तथा वैयाकरण शकटायन के मत से सब नाम धातुज हैं। **"कुरुङ्ग"** भी धातुज है, आग्रह नहीं करना चाहिये। **"तुर्वश"** शब्द के लिये राजाराम जी ने कहा था कि मुझे इसका अर्थ नहीं आता, परन्तु **"तुर्वश"** शब्द **"मनुष्य"** नामों में निघण्टु [२-३] में पढ़ा है, तो मान लेना चाहिये। अब लीजिये निरुक्त की प्रक्रिया! आप कहते हैं—**"यास्क का प्रधान काम निर्वचन करना है"**। देखिये यास्क लिखता है—**"एकार्थमनेकशब्दमित्येतदुक्तम्"** (निरुक्त ४।१) शब्दों के अर्थ मौजूद थे, वेदों से शब्द लेकर नाम रख दिये। आप कहते हैं—निघण्टु में पर्यायवाची भी हैं, विशेष भी, निरुक्तकार लिखते हैं—**"एतावन्त्यस्य सत्वस्य नामधेयानि"** [निरुक्त १।२०], इससे प्रतीत होता है कि निघण्टु में पठित पर्याय शब्द ही हैं, बहुधा विशेष्य-विशेषण हो जाते हैं। एक शब्द एक जगह पर विशेष्य होता है, दूसरी जगह पर विशेषण बन जाता है। जैसे एक स्थान पर आता है—**"उर्वी पृथिवी"** दूसरी जगह पर आता है—**"पृथिवी भूतामुर्वी"**। इसी तरह से **"अग्ने यं यज्ञमध्वरम्"** (ऋ० १।१।४) इसका अर्थ किस तरह से हो सकता है? किसी न किसी को विशेषण अवश्य बनाना पड़ेगा। यह विशेष्य विशेषण की तबदीली वेद में हो जाती है। अमृतसर में स्वरूपदास जी षट्शास्त्री थे। उन्होंने **"अग्नि"** का अर्थ **"गधा"** किया और कहा यह भी अर्थ हो सकता है। मैंने उन्हें सूक्त तथा मन्त्र की संगति लगाने को कहा, तो वह मान गये कि तुम ठीक कहते हो। प्रत्येक शब्द धातुज होकर विशेष अर्थों में लिमिटिड हो जाता है। आप कहते हैं कि अर्थ नियत नहीं, तुमने भी अर्थ को निर्धारित किया है। **"अग्नि"** शब्द **"अञ्चु गतिपूजनयोः"** अर्थों में ही आयेगा। वेद में रूढि शब्द कौनसा है, जरा बताइये? मनुस्मृति में जो कि ब्राह्मण ग्रन्थों से पहिले की है, उसमें लिखा है—**"सर्वेषान्तु स नामानि कर्माणि च पृथक् पृथक्। वेदशब्देभ्य एवादौ पृथक् संस्थाश्च निर्ममे"**॥ (मनु० १।२१) सब नाम वेदों से लेकर पीछे से रखे गये हैं। वेद में सब शब्द पहिले से मौजूद थे, उनसे लेकर ऋषियों के तथा नद्यादि पदार्थों के नाम रखे गये। निघण्टु ब्राह्मण ग्रन्थों के आधार पर बना है। यदि सारे ब्राह्मण ग्रन्थ मिल जायें, तो सारा निघण्टु उनमें से निकाल कर दिखा सकता हूं। ब्राह्मण कोई एक हजार थे, जिनमें से बहुत से नहीं मिलते। **"सर्वे देशान्तरे"** (महा० अ० १ पा० १ आ० १ वा०) महाभाष्य में आया है—**"सप्तद्वीपा वसुमती त्रयो लोकाश्चत्वारो वेदाः साङ्गाः सरहस्या बहुधा भिन्ना एकशतमध्वर्युशाखाः सहस्रवर्त्मा सामवेदः एकविंशतिधा बाह्वृच्यं नवधाथर्वणो वेदो वाकोवाक्यमितिहासः पुराणं वैद्यकमित्येतावाञ्छब्दस्य प्रयोगविषयः"**॥ (महा० अ० १ पा० १ आ० १) शब्द का विषय अनन्त है, सब नहीं जाना जा सकता। हम कल से तीन आचार्यों के प्रमाण पेश कर रहे हैं कि उनका सिद्धान्त

है कि—"वेद में इतिहास नहीं है"—"**औपचारिकोऽयं मन्त्रेष्वाख्यानसमयः परमार्थेन तु नित्यः पक्ष इति सिद्धम्**"। (निरुक्त समु० ४।१४) वह हजम किये जा रहे हैं, उनका उत्तर देना चाहिये। अब पाठ के विषय में लीजिये। इतिहास-सम्बन्धी "**बभूव**" शब्द तीन स्थान पर आया है—"**कुशिको राजा बभूव**" (निरु० २।२५) डॉ० लक्ष्मणस्वरूप, जिन्होंने निरुक्त पर इतना परिश्रम किया, लिखते हैं कि—दुर्ग अपने समय के निरुक्त के हर एक शब्द को लिखकर टीका करता है। अब यदि ठीक निरुक्त न मिल सके, तो दुर्ग के शब्दों से सारा निरुक्त निकाला जा सकता है। सारे भाष्यकार १५वीं शताब्दी से इधर-उधर के हैं; दुर्ग ही पुराना है। दुर्ग की टैक्स्ट में "**बभूव**" शब्द मौजूद नहीं "**कुशिको राजा**" केवल इतना ही पाठ है। आगे चलकर "**ऋषिर्नाभाको बभूव**" (निरु० १०।५) यह पाठ है। यह बल्कि सारा का सारा पाठ दुर्ग टैक्स्ट में नहीं है। तीसरा स्थल है—"**कुरुङ्गो राजा बभूव**" (निरु० ६।२२) यह पाठ दुर्ग में तो है पर स्कन्द में नहीं है। इन बातों को देखकर सहज में ही मेरी बात माननी पड़ जायगी। हां साहब, प्रतीत तो यह ही होता है कि यह पाठ पीछे से मिलाया गया है।

निरुक्तकार स्वयं लिखते हैं—"**ऋषेर्दृष्टार्थस्य प्रीतिर्भवति आख्यान-संयुक्ता**" (निरुक्त १०।१०)। इसका सीधा सा अर्थ है—मन्त्रार्थ द्रष्टा ऋषि की कहने के लिये आख्यान में संयुक्त प्रीति होती है। दूसरे अध्याय में यास्क लिखते हैं—"**तत्को वृत्रः। मेघ इति नैरुक्ताः त्वाष्ट्रोऽसुर इत्यैतिहासिकाः। अपां च ज्योतिषश्च मिश्रीभावकर्मणो वर्षकर्म जायते। तत्रोपमार्थेन युद्धवर्णा भवन्ति।**" (निरु० २।१६)। उपमार्थ यह आख्यान है। महात्मा अरविन्द घोष भी वेद में आध्यात्मिक इतिहास बतलाते हैं। इतिहास तीन प्रकार का है-आध्यात्मिक, आधिभौतिक तथा आधिदैविक। यह इतिहास प्राकृतिक घटना की स्टोरीमात्र है। "**त्वष्टा**"—सूर्य, उसका पुत्र मेघ—"**त्वाष्ट्र**"। कुमारिल और शबर ने वही अर्थ किये हैं, जो स्वामी दयानन्द ने किये हैं। ऋषियों की परिपाटी के विरुद्ध अर्थों को तोड़ सकता हूं। आर्य लोग वेद में इतिहास नहीं मानते। बौद्ध तथा योरोपियन लोग मानते हैं।

श्री स्वामी अच्युतानन्द जी महाराज—

वेद में इतिहास मानने पर स्वामी दयानन्द जी के विरुद्ध होने से आर्यसमाज का सत्यानाश होगा। यह सब नास्तिकता है, वेद को तिलाञ्जलि देना है।

श्री शास्त्रार्थ केशरी पण्डित ठाकुर अमर सिंह जी—

वेद मन्त्र के तो कई अर्थ हो गये हैं। किसी ग्रन्थ को पढ़ते वक्त उसका उपक्रम तथा उपसंहार भी देखना चाहिये। सारे निरुक्त को पढ़ जाने के बाद स्पष्ट प्रतीत होता है कि जहां इतिहास की गंध है, वहां निरुक्तकार कह देते हैं—"**तत्रेतिहासमाचक्षते**" "**इत्यैतिहासिका;**" "**इतिहासपक्षे इति**", इस प्रकार से कह देते हैं, और अपना मत पृथक् भी दिखा देते हैं। इससे प्रतीत होता है कि यास्क को इतिहास कदापि अभीष्ट नहीं। ऐसा उनका अभ्यास है कि वह उनका पक्ष दे जाते हैं। पं० राजा राम जी ने अपने निरुक्त भाष्य में दुर्गाचार्य को Quate करते हुए लिखा है। सरमा और देवशुनी के संवाद में इस प्रकार से लिखा है—इतिहासपक्ष में पणियों (द्वारा) चुराई गौवों का पता लगाने के लिए इन्द्र द्वारा भेजी देवशुनी जब पणियों के पुर में पहुंची, तब पणियों ने उससे पूछा, इस पक्ष में रसा अन्तरिक्ष की एक नदी है। नैरुक्त पक्ष में सरमा वाक् है। देर पीछे मेघ का शब्द सुनकर उससे कहा है (दुर्गाचार्य) पृ० ५००, पं० रा० रा० भाष्य। इसी तरह जान लेना चाहिये कि "इतिहास नहीं है", वैसे ही है जैसे कल्पित कहानी कथा करने वाले उपदेशक कहा करते हैं। उसमें सर्वकालीन क्रियाओं का प्रयोग करते हैं। उनको कोई सत्य नहीं कहता। इसी तरह यहां भी कल्पित ही जानना चाहिये "**कुरुङ्ग**" का इतिहास अन्य किसी ग्रन्थ में से निकालकर दिखलाइये। जितने भी इतिहास ग्रन्थ मिलते हैं, उनमें इसका इतिहास नहीं मिलता। इसलिये यह

कल्पित है। "आर्ष्टिषेणो देवापि" पर लिखा है—"कौरव्यौ भ्रातरौ बभूवतुः", (निरुक्त २।१०), परन्तु महाभारत में जो कथा आई है, वहां पर यह कहीं नहीं लिखा कि देवापि और शान्तनु ऋष्टिषेण के पुत्र थे। साथ ही यह तीन भाई थे, दो नहीं। महाभारत शल्य पर्व में देवापि नाम क्षत्रिय राजा ब्राह्मण हो गया था, वह सतयुग का था। वहां भी यह कथा नहीं है। यह सब इतिहासाभास है, इतिहास नहीं "हस्त" और "श्मशान" का प्रवृत्ति-निमित्त बतलाता हूं—जहां केवल शरीर सोता है, वह "श्मशान" होता है। बिस्तरे पर तो जीवसंयुक्त शरीर सोता है, अतः वह श्मशान नहीं हो सकता। हस्त के बिना तलवार नहीं चल सकती, हस्त ही से मारा जाता है। अतः तलवार का नाम हस्त नहीं। अथर्ववेद का० १८—सू० ३ में एक मन्त्र आया है—"कण्वः कक्षीवान् पुरुमीढो अगस्त्यः श्यावाश्वः सौभर्यर्चनानाः। विश्वामित्रोऽयं जमदग्निरत्रिरवन्तु नः कश्यपो वामदेवः"॥ (अथर्व १८।३।१५) इस मन्त्र में ऋषियों के नाम हैं। राजाराम जी! आपके अनुसार इसका यही अर्थ हुआ कि—"सब ऋषि हमारी रक्षा करें।" हे महाराज! इनका प्रवृत्ति-निमित्त और व्युत्पत्ति-निमित्त क्या है? वह तो सब मर गये, अब इस वक्त हमारी रक्षा किस तरह करेंगे? या यह मानना पड़ेगा कि यह मन्त्र उसी समय के लिये था, इस समय व्यर्थ है।

अथर्ववेद के पांचवें काण्ड में एक मन्त्र आया है "नैतां ते देवा अददुस्तुभ्यं नृपते अत्तवे मा ब्राह्मणस्य राजन्य गां जिघत्सो अनाद्याम्॥ [अथर्व ५।१८।१] इसका भाष्य करते हुए पं० राजाराम जी लिखते हैं—'हे मनुष्यों के मालिक! देवताओं ने तुझे यह खाने के लिये नहीं दी है। हे राजन्य (शासक वंश के)! मत ब्राह्मण की गौ को खाने की इच्छा कर, जो खाने के योग्य नहीं है। अर्थापत्ति से निकलता है कि—"ब्राह्मण की गौवें न मारें, तथा क्षत्रियादि की मारें।" यदि कोई मुसलमान प्रश्न करे, तो इसका जवाब क्या होगा? गौ का अर्थ पृथिवी ही कर देते, तो कुछ अर्थ ठीक भी हो जाता। वेद का गौरव रखना दोनों का कर्तव्य है। आप बतलावें कि आपके अर्थ में कौनसा गौरव है? और सौन्दर्य भी कुछ नहीं। वास्तव में यह "इतिहासाभास" है, इतिहास नहीं।

श्री पंडित चारुदेव जी शास्त्री एम० ए०—

जब तक यह समझ में न आवे कि अर्थ किस तरह होता है, तथा यास्क की शैली क्या है? तब तक भ्रान्ति हो सकती है। "कुरुङ्ग" संज्ञा शब्द की व्युत्पत्ति की है। यास्क अन्य स्थलों में भी संज्ञा शब्दों की व्युत्पत्ति करता है। "शवतिर्गतिकर्मा कम्बोजेष्वेव भाष्यते। कम्बोजाः कम्बलभोजाः कमनीयभोजा वा"। (निरु० २।२) "कम्बोज' देशविशेष की संज्ञा है, फिर भी व्युत्पत्ति की गई है। सायण ने भी इसे कोट (Quate) किया है। किसी पाठ को प्रक्षिप्त कहना वीकेस्ट Weakest युक्ति होती है। पूना के राजवाड़े को भी ऐसी पुस्तक नहीं मिली, जिसमें यह पाठ न हो। निरुक्त का अर्थ समझने के लिये प्रक्रिया समझ लेनी चाहिये। निरुक्ति अर्थ बतलाने के लिये नहीं होती। व्युत्पत्ति-निमित्त तथा प्रवृत्ति-निमित्त पृथक्-पृथक् होता है। निघण्टु में "इत्येकविंशतिः पृथिवीनामधेयानि" आदि कहने से ही अर्थ निश्चित हो गया। यास्क का काम केवल निरुक्ति देना ही है। गौ अश्व आदि के विषय में निरुक्त तथा दुर्गाचार्य भी स्वीकार करते हैं कि इसमें लोक ही कारण है, जो-जो चलेगा उसे गौ नहीं कहते। यास्क कहता है—"लोकं पृच्छ"। हम नहीं कहते कि 'गौः" का एक ही अर्थ है, किन्तु अनेकार्थ भी होते हैं—जैसे "गौरिति पृथिव्या नामधेयम्" पृथिवी अर्थ पूर्व विद्यमान हैं, फिर व्युत्पत्ति करते हैं, कल्पना नहीं करते। यदि इसका ठीक समाधान किया जाय, तो अच्छा है। "अर्थभेदे व्युत्पत्तिभेदः" अर्थ भिन्न होने पर व्युत्पत्ति भिन्न होती है। जैसे—"गच्छतीति गौः" सबको गौ नहीं कहा जाता। "तक्षा"—जो भी लकड़ी काटने लगे, सभी को "तक्षा" (बढ़ई) नहीं कहते। मुझे "तक्षा" नहीं कहते। बढ़ई को ही तक्षा कहते हैं। व्युत्पत्ति अर्थ ही के अनुसार होती है। "अर्थनित्यः परीक्षेतयोऽर्थो यस्य शब्दस्य लोकेऽस्ति, स तस्य प्रवृत्ति-निमितः। रूढित्वं च धातजत्वं च विप्रतिषिद्धम्"। रूढि भी नैरुक्तों

के मत में धातुज है। रूढि प्रसिद्धि को कहते हैं। आप रूढित्व और धातुजत्व को Contradictory समझते हैं, किन्तु एक शब्द रूढि होता हुआ भी धातुज हो सकता है, यह नैरुक्तों का सिद्धान्त है। आपने कहा कि दुर्ग की टैक्स्ट से सारा निरुक्त निकाला जा सकता है। उससे दुर्ग के पास होनेवाले निरुक्त को बना सकते हैं, यास्क के निरुक्त को नहीं। आपने कहा कि दुर्ग अपने समय के हर एक शब्द की टीका करता है, और प्रतीक देता है। परन्तु यह बात नहीं, कई जगह पर वह पाठ नहीं देता और अर्थ दे देता है। जैसे निरुक्त में पाठ आता है—**"पञ्चजना मम होत्रं जुषध्वम्"** (निरु० ३।८)' इस मन्त्र में **"निषादः कस्मात् ? निषदनो भवति निषण्णमस्मिन् पापकमिति नैरुक्ताः"**। दुर्ग ने **"निषदनो भवति"** पाठ नहीं दिया, किन्तु व्याख्या की है—**"निषद्य निषद्य हन्तीति"**। इसी तरह निरुक्त ३।६; ६।२२; ६।३२ में **"दुर्ग"** कई शब्द छोड़ गया है, किन्तु **"यास्क"** देता है। इसलिये दुर्ग एक-एक वर्ण के लिये प्रामाणिक नहीं माना जा सकता। ऐसा कहना केवल साहसमात्र ही है। पाणिनि के फेल होने पर जो कहा गया है कि **"कुरुङ्ग"** की पृषोदरादि से सिद्धि होती है। पृषोदरादि से निरुक्तविद्या प्रारम्भ होती है, जहां आपने यह लक्षण उठाया कि आप निरुक्त की शरण में आते हैं। जहां से आगे लक्षण न बन सके, वहां एक लक्षण बना दिया। कात्यायनादि ने भी तो कई-कई बातों का निरास किया है। पाणिनि हमारे पूज्य हैं। मैं फेल शब्द वापस लेता हूं। निर्वचन व्युत्पत्ति तथा अर्थ विलक्षण है। **"व्युत्पत्तिभेदेऽर्थभेदः"** यह प्रक्रिया समझ लेनी चाहिये। अर्थ के भेद हो जाने पर व्युत्पत्ति भेद भी हो जावे। यास्क का निर्वचन प्रधान है।

शास्त्रार्थ महारथी श्री पंडित बुद्धदेव जी मीरपुरी—

शब्द का प्रधान अर्थ एक ही होता है, यह आपका पक्ष है। आप बतायें "शिरः" शब्द का मुख्य अर्थ क्या है ? (इस पर श्री पं० विश्वबन्धु जी तथा श्री पं० राजाराम जी ने सिर पर हाथ रखकर कहा कि यही मुख्यार्थ है।) निरुक्तकार ने "शिर" का अर्थ क्या किया है ? "शिरः" शब्द का निर्वचन करते हुए यास्क लिखते हैं—**"अपि वा शिर आदित्यो भवति, यदनुशेते सर्वाणि भूतादि, मध्ये चैषां तिष्ठति"** (निरु० ४।१३)। आगे चलकर लिखते हैं —**"इदमपि इतरच्छिर एतस्मादेव, समाश्रितान्येतदिन्द्रियाणि भवन्ति"** (निरु० ४।१३)। इससे यह स्पष्ट है कि यहाँ पर आदित्य अर्थ मुख्य है, और सिर अर्थ गौण है। इसी तरह **"सर्प"** पर लिखते हैं—**"अयमपीतरोऽहिरेतस्मादेव"** (निरु० २।१७)। और **"गौ"** पर लिखते हैं—**"अथापि पशु (नामेह भव) त्येतस्मादेव"** (निरु० २।१७)। क्या मुख्यार्थ यह हुए, या जो प्रसिद्ध हैं ? यह यास्क की शैली है। मनु ने लिखा है कि—**"सर्वेषां तु स नामानि कर्माणि च पृथक् पृथक् वेदशब्देभ्यः एवादौ पृथक् संस्थाश्च निर्ममे"** ॥ (मनु० १।२१) वेद से लेकर ही सब नाम रखे गये हैं। यदि मनु को प्रमाण नहीं मानते, तो वेद का प्रमाण लीजिये—**"देवो देवानां गुह्यानि नामान्याविष्कृणोति बर्हिषि प्रवाचे"** (ऋ० ६।६५।३) यहां बताया है कि तमाम चीजों के नाम परमात्मा ने बताये हैं। मुख्य अर्थ तो वेद में प्रतिपादन किया गया है, लौकिक नाम उससे लेकर रखे गये हैं। निरुक्तकार का यह तरीका है कि वैदिक शब्दों का निर्वचन देकर लौकिक शब्दों पर आते हैं। नैगम काण्ड का प्रयोजन यही (दर्शाना) है कि **"जहां"** (आदि शब्द अनेकार्थ हैं) गौ के कई अर्थ होते है। आप कहते है कि सब चलते हैं, सबको गौ नहीं कहते। विशेषण तथा कार्य को देख कर अर्थ हो जायगा। **"कुरुङ्ग"** विशेषण था, वहां नाम का सन्देह हो सकता है। बतला दिया कि **"कुरुङ्ग राजा"** ही लेना। कल तो आप कहते थे कि यास्क को अर्थ अभिप्रेत नहीं पर आज आप स्वीकार करते हैं कि अर्थभेद होने से व्युत्पत्ति-भेद हो सकता हैं। **"पुरीष"** का अर्थ शतपथ ने दिया है—**"दक्षिणाः वै पुरीषम्"** (श० ८।७।४।१५) **"ज्योतिर्वै पुरीषम्"** लोक में यह शब्द मलवाची प्रसिद्ध है। अब आप बतायें कि कौनसा अर्थ प्रधान है ? **"अश्व"** का अर्थ शतपथ में **"वीर्य"** लिखा है—**"वीर्यं वै अश्वः"** (श० २।१।४।२३); **"क्षत्रं वै अश्वः"** (श० १३।२।२।१५) उमर भर वेद पढ़ पढ़ाकर और इतना स्वाध्याय करने पर भी आपकी **"तुर्वश"** शब्द का अर्थ नहीं आया, जबकि

निघण्टु में स्पष्ट मनुष्य-पर्य्यायों में पढ़ा है। यह तो पण्डित जी ने सिद्ध कर दिया कि "**बभूव**" पाठ ही नहीं है। यदि हो भी, तो जैसे रामायण महाभारत में कवि लोग बहुधा प्रयोग कर देते हैं, वैसे ही यहां पर भी समझ लीजिये जैसे—"**ददृशे**", "**गमिष्ये**", यहां पर "**आत्मनेपद**" तथा "**इट्**" कैसे होगा ? कहना पड़ेगा कि छान्दस प्रयोग है। महाभाष्यकार "**सज्जन्ते**" प्रयोग करते हैं। ऋषि लोग वैदिक शब्दों का प्रयोग करते हुए पुण्य समझते हैं। "**तत्करोति तदाचष्टे**' में वर्तमान का प्रयोग दिया है, किन्तु भूत में भी "**अपपठत्**" बन जाता है, काल अविवक्षित है। "**तस्यापत्यम्**" (अ० ४।१।९२) से स्त्रीलिङ्ग तथा बहुवचन से प्रत्यय किस तरह होगा ? कहा है—"**छन्दोवत्सूत्राणि भवन्ति**" इसी तरह "**बभूव**" भी छान्दस प्रयोग है। आप कहते हैं कि अर्थ प्रधान नहीं, यास्क का निर्वचन प्रधान है। पर यास्क आरम्भ में लिखते हैं कि—"**अर्थनित्यः परीक्षेत**" (नि० २।१) "**कम्बोज**" शब्द की व्युत्पत्ति इसलिये की है कि सर्वत्र ही संज्ञा नहीं होती है। जहां पर संज्ञा न हो, वहां पर व्युत्पत्ति कर लेनी। कम्बोज पहिले सामान्य नाम था, पीछे से रूढ़ हो गया। जैसे गणपति में गण का पति, और लड़के का नाम भी हो सकता है। पं० विश्वबन्धु जी "**देवताद्वन्द्वे च**" (अ० ७।३।२१) वाली बात या तो सिद्ध करें, या गलती स्वीकार करें।

श्री पण्डित प्रियरत्न जी आर्ष (स्वामी ब्रह्ममुनी जी)—

"**कुरुङ्गो राजा बभूव**" पर मैंने चार प्रकार का समाधान कर दिया था। यह पाठ स्कन्द स्वामी ने दिया ही नहीं। पं० चारुदेव जी कहते हैं कि—निघण्टु में भी गौ पशु का वाचक नहीं दिया है। जहां निरुक्तकार को अभीष्ट होता है, वहां पर "**अयमपि पशुरेतस्मादेव**" (निरु० २।५) ऐसा लिख देता है। "**कुरुङ्ग**" के विषय में भी इसी प्रकार लिखना चाहिये था, किन्तु नहीं लिखा। पं० राजाराम जी ने कहा था कि व्युत्पत्ति-निमित्त तथा प्रवृत्ति-निमित्त पृथक् होता है, धनपति उदाहरण दिया था। जहां व्यक्ति का नाम हो वहां व्युत्पत्ति-नहीं करनी चाहिये, परन्तु "**कुरुङ्ग**" की व्युत्पत्ति की है। कुरुङ्ग का व्युत्पत्ति-निमित्त क्या है, यह बतलायें ? इस तरह यास्क मूर्ख सिद्ध होता है। "**राज्ञः**" शब्द वेद में आया है। इसलिये उसका विशेषण बनाने के लिये "**कुरुङ्ग**" शब्द बताने के लिये कुरुङ्ग शब्द लिख दिया है। अर्थ तो है, मैंने कर दिया था। वैदिक शब्द की तरह से "**बभूव**" शब्द न का प्रयोग कर दिया, तो आपत्ति क्या है ? यदि निरुक्त में निर्वचन ही "प्रधान" है तो निरुक्त का प्रयोजन क्या है ? निर्वच की महत्ता तभी है, जब उससे अर्थ निकाला जा सके। "**आलस्यं मानसं मतम्**"। वर्तमान काल का भवति प्रयोग होता है। "**पितरः स्मृताः**" आदि स्थलों पर भूतकाल की अविवक्षा है। इसी तरह से यहां भी भूतकाल अविवक्षित है।

श्री पण्डित गुरुदत्त जी शास्त्री—

मेरे अर्थ पर कोई आक्षेप नहीं किया गया, तो क्या मैं इससे यह समझ लूं कि मेरा अर्थ अभिप्रेत है ?

श्री पण्डित चारुदेव जी शास्त्री एम० ए०—

हां मुझे तो अभिप्रेत है।

श्री प्रोफेसर पण्डित राजाराम जी—

मैं तो प्रकृत विषय पर ही कहूंगा। पं० आर्यमुनि जी ने ब्रह्मा की व्युत्पत्ति और प्रवृत्ति निमित्त के विषय में पूछा था। यह तो आपको दिखलाना चाहिये कि प्रवृत्ति और व्युत्पत्ति पृथक् होने से क्या शंका होती है ? मैंने

व्युत्पत्ति तथा प्रवृत्ति निमित्त का भेद दिखा दिया। अब यह काम आपका है कि आप सिद्ध करें कि यह दोनों एक हैं। मैं यह आवश्यक नहीं समझता कि यह दोनों सर्वथा पृथक्-पृथक् हों। कहीं दोनों भिन्न होते है, कहीं एक भी हो जाते हैं। मैं यह नहीं कहता कि शब्दों से असंख्यात अर्थ हैं। नानार्थ भी नियत होते हैं, उसमें स्वतन्त्रता नहीं होती कि चाहे सो करले। आपने प्रश्न किया है कि कुरुङ्ग के दादा परदादा कौन थे? महाराज! मेरा काम तो वेद में **"कुरुङ्ग"** नाम आ गया, इतने से ही सिद्ध हो गया कि "वेद में इतिहास मौजूद है"। तथा निरुक्तकार ने भी लिख दिया। अब उनसे पूछना चाहिये कि उसके माता-पिता व दादा-परदादा कौन थे? अब स्कन्द स्वामी को लीजिये, वह साफ लिखता है—**"कुरुङ्गनाम्नो राज्ञः"**। व्याख्या तो स्पष्ट कर दी, इससे तो साफ प्रकट होता है कि वह वेद में इतिहास मानता है कि—**"कुरुङ्ग"** राजा हुआ था। संज्ञा शब्द धातुज होने से अर्थ में स्वतन्त्र नहीं हो जाते, अर्थ नियत रहते हैं। पं० चारुदेव जी ने स्पष्ट कर दिया कि रूढ़ि की भी व्युत्पत्ति होती है। पं० भगवद्दत्त जी ने कहा था कि **"सूनृता"** मेरी लड़की का नाम है। कोई पीछे से यह भी कह सकता है कि इसका वेद में इतिहास है। पर महाराज! ऐसा नहीं हो सकता। **"बभूव"** का अर्थ **"भवति"** कैसे है? **"नोधा ऋषिर्भवति"** एक स्थान में है, बभूव अन्यत्र में। यह कैसे सिद्ध हो गया कि **"बभूव"** का अर्थ **"भवति"** है? **"अर्थनित्यः परीक्षेत"** (निरु० २।१) प्रधानतया अर्थ की ही परीक्षा करता है, यह कहा गया था। अश्व शब्द की व्युत्पत्ति है—**"अश्नुते अध्वानं"** जो जो रास्ता चले अश्व नहीं कहा जाता। यास्क कहता है कि **"लोक से पूछो"**। कुरुङ्ग शब्द यौगिक सिद्ध किया गया।

श्री पण्डित प्रियरत्न जी आर्ष (स्वामी ब्रह्ममुनि जी)—

यह आपको भ्रान्ति है। स्कन्द में मन्त्र के टुकड़े का अर्थ है। निरुक्त का पाठ नहीं दिया गया, ना ही उसका अर्थ किया गया है।

श्री पण्डित विश्वबन्धु जी शास्त्री एम० ए०—

आप स्कन्द की टीका के विषय में तब पूछ सकते हैं, जब स्कन्द का मूल निरुक्त छपा हो। टीका में यह शब्द विद्यमान हैं **"कुरुङ्गस्य नाम्नो राज्ञः"** तो फिर और क्या चाहिये? **"बभूव"** का अर्थ भूतकालवाची मान लिया जाये, तो क्या हुआ? जब आप वेदमन्त्र को मानव-सृष्टि के आरम्भ में आविर्भूत हुआ मानते हैं, तो फिर कुरुङ्ग विशेषण विशिष्ट कोई हुआ होगा। यह वेद के शब्दों में कैसे आ गया? यदि ऐसा ही अर्थ किया जाये, तो वेद का कर्त्ता कोई मानना पड़ेगा। **"अथर्ववेद प्रातिशाख्य"** वाली बात के विषय में मैं और पं० भगवद्दत्त जी दोनों मुलजिम हैं। हम इकट्ठे दोनों लाइब्रेरी में बैठकर इस काम को किया करते थे। मैं एक मामला उठाता हूं—यह पं० भगवद्दत्त जी की किताब **"वैदिक वाङ्मय का इतिहास के पृ० ७० कुन्तापसूक्त अथर्व संहितान्तर्गत"** नहीं है। (काण्ड २० सूक्त १२७ से १३६ तक) को प्रक्षिप्त माना है। और कहा है कि ये ऋग्वेद की उस शाखा के सूक्त हैं, जो आजकल नहीं मिलती। परन्तु अजमेर की संहिता में छपे हुए हैं। न तुम्हारा अथर्ववेद सुरक्षित है, न ऋग्वेद!

शास्त्रार्थ केसरी श्री पण्डित ठाकुर अमरसिंह जी—

"देवापि" का इतिहास कहीं नहीं मिलता। मैं यहां बतला देना चाहता हूं कि यहां इतिहास की Conception 20th Century की नहीं, यहां तो केवल प्रोपर नेम Proper Name आ जाय, वह इतिहास है। आप वेद की तरफ क्यों नहीं जाते? ऋग्वेद १०।९८।८ में यह मन्त्र आया है—**"यं त्वा देवापिः शुशुचानो अग्न आर्ष्टिषेणो मनुष्य समीधे"**। इसका शब्दार्थ है—'हे अग्नि! जिस तुझ की उपासना की है मनुष्य ऋष्टिषेण का पुत्र "देवापि"। आर्ष्टिषेण देवापि (के साथ मनुष्य) शब्द पढ़ा है कि आप वृष्टि बरसावें।

अब मैं Pet Theory of Bhagvatdatta विशेष्यविशेषणवाद पर आता हूं। एक जगह वह पृथिवी का अर्थ जमीन तथा दूसरी जगह विस्तृत जो तुम कर रहे हो, वही ठीक है। परन्तु जहां पर थ्यूरी बना कर सिद्धान्त निश्चित करते हैं, वहां पर भूल हो जाती है। भाषाशास्त्र बड़ा गहन है। विशेषणवाचक शब्द यौगिक होता है। किसी भाषा का भेद किसी के वश में नहीं। कोई मनुष्य भाषा का नियम बनाया नहीं करता। दस-दस, पांच-पांच मील पर भाषा बदल जाया करती है। जैसे संस्कृत का "**मत्स्य**" (मच्छ) बन जाता है। "हस्त" हाथ हो जाता है। बच्चा च को ज बोलता है, और ट को ठ, यह क्यों है ? यह हम नहीं जानते ?" We are only rear Keepers as we must be." एक-दो कारण इसके हो सकते हैं। सृष्टि नियम इकट्ठे करो, फिर कोई सिद्धान्त निर्माण करो। "**खट्टा**" सन्तरा, यहां पर खट्टा तुर्श के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। परन्तु खट्टा ले आओ, इसमें खट्टा विशेष्य है। इसी खट्टे का अचार, यह खट्टा बड़ा खट्टा है, इस वाक्य में खट्टा विशेषण भी है और विशेष्य भी। "**मिट्ठा**"—मिट्ठा रायता, यहां मिट्ठा विशेषण है। मिट्ठा मिट्ठा, इसमें मिट्ठा विशेषण भी है विशेष्य भी। "**लाल कपड़ा**"—इसमें लाल विशेषण है, और लाल एक रत्न भी होता है। "**चिट्टा**"—अर्थात् सफेद को कहते हैं, जैसे चिट्टा कपड़ा, और जैसे चिट्टा आंख में पड़ गया और चिट्टा पक्षी विशेष भी होता है, यह विशेष्यवाची है। "**बड़ा**"—बड़ा कम्बल इसमें बड़ा विशेषण है, तथा "**बड़ा**"—बड़ा (दहीवाला) में विशेषण, विशेष्य दोनों हैं। "**काला-नीला**"—शब्द अभी तक विशेषण के रूप में ही हैं, विशेष्य नहीं। "**गौ**" का अर्थ पशु विशेष्य है, परन्तु यह बड़ा गौ है इसमें यह शब्द सरल अर्थ में है। "**शोधा**" शब्द का अर्थ सरल भी है गुण्डा भी। "**बन्द**" शब्द एक भूषण विशेष भी है, और कुश्ती का एक दाव भी होता है। तथा इस प्रकार भी प्रयुक्त होता है, जैसे हवा बन्द है। इससे यह सिद्ध है कि कोई शब्द "**अवनि, मही**" आदि कहीं विशेषण के तौर पर प्रयुक्त हो गया, तो इससे यह नियम नहीं बना सकते कि यह शब्द उस भाषा में विशेष्यपरक नहीं हो सकता। अर्थ नियत है। निरुक्त प्रक्रिया का भेद खूब खुला। मैं पं० चारुदेव जी तथा पं० राजाराम जी से सहमत हूं। किसी के एक अर्थ किसी के ज्यादा अर्थ निकल आये। जितने भी किये गये सब भिन्न-भिन्न हैं, कोई किसी से नहीं मिलते। मैं तो यह कहता हूं कि अनन्त अर्थ नहीं मिलते। मैं तो यह कहता हूं कि अनन्त अर्थ नहीं हो सकते, कोई न कोई नियामक होना चाहिये। अर्थ मर्जी आये जो कर ले, सो हम नहीं मानते। यह गलत है कि जिसमें गमन पाया जाये वह "**गौ**" है। यदि यह माना जाय कि अनन्त अर्थ होते हैं, तो निघण्टु व्यर्थ हो जायगा, क्योंकि उसमें "**ऋत्विङ्**" नाम नियत कर दिये हैं। इसी तरह से "**नदीना-मान्येतानि**" बतलाया है। निघण्टु का होना भी साबित करता है कि निघण्टु के अर्थ नियत हैं, अनियन्त्रित नहीं।

अब ब्राह्मणों के विषय में सुनिये—"**बहुभक्तिवादीनि हि ब्राह्मणानि**" ब्राह्मण तो भक्तिवाद है, इसलिये भी अनन्त अर्थ नहीं हो सकता। पं० प्रियरत्न जी बतलावें कि "**शताश्वं**" का अर्थ सौ घोड़े किस तरह है ? "**शताश्वं**" का स्वर लगावें, बहुव्रीहिसमास में पूर्वपदप्रकृतिस्वर होता है। यौगिक प्रक्रिया के अनुसार तो इस मन्त्र को कुल्हाड़े तथा शराब पर भी लगा सकता हूं। मैं "**कुल्हाड़ापरक**" अर्थ करके बताता हूं। देवता—"**कुरुङ्गस्य दानस्तुतिः**। कुरु तन् गच्छतीति कुरुः परशुङ्ग**"। दानं=काटना, "**दो अवखण्डने**" इस धातु से बना लीजिये। "**स्तुति यथार्थस्वरूप-निरूपणम्**"। कुल्हाड़े के काटने का स्वरूप वर्णन। "**तुर्वशेषु**" शीघ्र वशीभूत करने वालों में। "**रातिषु**"—"**रा दाने**" काटने की क्रियाओं के विषय में। "**दिविष्टिषु दिवः एषणेषु**" जीत की उत्कट इच्छाओं के समय में "**सुभगस्य**" अच्छे प्रकारभाग्यशाली "**राज्ञः**" बड़ा चमकदार "**त्वेषस्य**" लसलस करता हुआ अत्यन्त प्रकाशमान "**कुरुङ्गस्य परशु की राधः**" '**राध हिंसायां: असुन् प्रत्ययः, राधः हिंसा स्थूरं स्थूलं**" बड़ा भारी "**अमन्महि शताश्वं**" शत शातने काटने वाली "**अश्वः**" जो चीरती हुई जाने वाली का "**अमन्महि**" हम उनका ज्ञान प्राप्त कर चुके हैं। यह अर्थ मैंने Reduction absdicion के तौर पर किये हैं। इसी तरह "**शराब का अर्थ**" कर सकता हूं। किसी के सारे अर्थ

गलत नहीं हैं, परन्तु priority of meaning नहीं। कोई नियन्त्रित अर्थ नहीं हो सकते, अनन्त अर्थ हो जायेंगे। इस मन्त्र का अर्थ जो राजाराम जी ने किया है, उसे मैं मानता हूं।

शास्त्रार्थ के प्रधान श्री महात्मा हंसराज जी—

कुरुङ्ग के विषय में हमारी पण्डित सभा अर्थ निश्चित कर दे, जो हम बाहर साफ बता सकें। या पण्डित विचार करके कह देवें कि इस मन्त्र का यह अर्थ है। निरुक्त के इस स्थल पर भी दोनों पक्ष के पण्डित अपना-अपना विचार दे देवें। एक बात आप से कह देता हूं कि आपस की बातों का प्रभाव शास्त्रार्थ में अच्छा नहीं पड़ा करता। पण्डित लोग मिलकर इस मन्त्र तथा निरुक्त के इस स्थल पर विचार करके बतला दें कि कौनसा अर्थ ठीक है, और कौनसा गलत है।

श्री पंडित ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु—

आपके वेदार्थ की कसौटी क्या है? क्या स्वामी जी की कसौटी से वेदार्थ करें, या कसौटी भी अभी निश्चित करनी है? यदि ऐसा है, तो कसौटी का निर्णय आवश्यक है।

श्री पंडित विश्वबन्धु जी शास्त्री एम० ए०—

निरुक्त का स्थल अनुक्रमणी में लिखा है—"**कुरुङ्गस्य दानस्तुतिः**"। वेद मन्त्र में "**कुरुङ्गस्य राज्ञः**" है, निरुक्त में "**कुरुङ्गो राजा बभूव**" है। यदि "**बभूव**" का "**भवति**" अर्थ होगा, तो कुरुङ्ग राजा का पर्यायवाची हो जायेगा। बृहद्देवता ६।४४ में—"**ऐन्द्राणामिह सूक्तानामुत्तमस्योत्तमे तृचे। दानं राज्ञः कुरुङ्गस्य स्थूर राध इति स्तुतम्**"। हमको इतिहास नहीं मिला, किन्तु बृहद्देवताकार शौनक मुनि लिख रहे हैं यदि कहें, तो केवल कथनमात्र से सब प्रक्षिप्त नहीं माना जा सकता। वेद में तो नाम भी आजाये, तो मुश्किल है। "**निरुक्त का अर्थ**···" शब्द धातुज हैं यह प्रायोवाद है। "**अणु**" की सिद्धि "**अनु**" उपसर्ग से प्रत्यय लोप करके यास्क ने की है—"**अणुरनु स्थवीयांसमुपसर्गो लुप्तनामकरणो यथा सम्प्रति**"। (निरु० ६।२२) "**बभूव**" का "**भवति**" अर्थ वेद में हो सकता है। यास्क तो वैदिक भाषा नहीं बोल रहा। इसलिये "**बभूव**" का अर्थ '**भवति**' नहीं हो सकता। "**कुत्स ऋषिर्भवति नोधा ऋषिर्भवति**" आपको इन्हें पुरुष-विशेष मानना पड़ेगा। इससे तो आपके सिर इतिहास आता है। इसी तरह से कुरुङ्ग भी राजा हो चुका है। नाम कैसे रखा? यह तो पता नहीं। "**कृन्ततेः**" मान लो। क्योंकि वह राजा था, ऐसे गुणों से कल्पना कर लो "**कुरुङ्ग और तुर्वश दो शब्द ऐसे हैं, जो इतिहाससूचक हैं।**" अभी तो कुरुङ्ग ही चल रहा है, "**तुर्वश**" तो उठाया ही नहीं। "**तुर्वश**" शब्द पर बड़ा विवाद है। पं० राजाराम जी ने इसीलिये इसका अर्थ नहीं किया। यदि इन दोनों का अर्थ निश्चय हो तो मैं बदल सकता हूं।

शास्त्रार्थ के प्रधान श्री महात्मा हंसराज जी—

अब आप बतायें कि "**कुरुङ्ग**" ऐतिहासिक है या नहीं? और आप मन्त्रार्थ ठीक मानते हैं या नहीं?

श्री पंडित विश्वबन्धु जी शास्त्री एम० ए०—

मैं अभी तक नहीं मानता कि ऐतिहासिक नहीं, ग्रन्थों के आधार पर ऐतिहासिक समझता हूं। मैं तो विचार के लिये उपस्थित हूं। "**तुर्वश**" शब्द पर बड़ा झगड़ा है, अभी तो विचार चलना चाहिये।

नोट—

इसके साथ ही शास्त्रार्थ की यह तृतीय बैठक समाप्त हुई।

(शास्त्रार्थ की चतुर्थ बैठक प्रारम्भ, दिनांक १६-५-३१ ई०)

(समय : सांय काल)

शास्त्रार्थ के प्रधान श्री महात्मा हंसराज जी—

अब इस मन्त्र पर काफी विचार हो चुका है। आप दोनों पक्ष के पण्डित इसका अपना-अपना अर्थ लिख देवें।

श्री पण्डित विश्वबन्धु जी शास्त्री एम ए०—

अब अर्थ लिखने के लिये क्यों मजबूर किया जा रहा है? जबकि पहिले लिखकर शास्त्रार्थ करना स्वीकार नहीं किया गया।

शास्त्रार्थ के प्रधान श्री महात्मा हंसराज जी—

दोनों पक्षों का अर्थ रिकार्ड रूप में रहने के विचार से तथा निश्चय करने में सरलता होगी।

श्री पण्डित विश्वबन्धु जी शास्त्री एम० ए०—

मन्त्रों का अर्थ तभी दिया जा सकता है, जबकि निश्चय हो जावे, और यौगिक प्रक्रिया का भी निश्चय हो जाना चाहिये, point (विषय) यह है कि क्या एक शब्द के एक ही अर्थ होते हैं, या मर्जी के अनुसार? अर्थात् निरुक्त प्रक्रिया को क्या अभिप्रेत है? दूसरा शब्दों में जहां यास्कादि इतिहास मानते हैं, उनका क्या निर्णय है?

शास्त्रार्थ के प्रधान श्री महात्मा हंसराज जी—

मैं मन्त्र का अर्थ आवश्यक समझता हूं।

श्री पण्डित विश्वबन्धु जी शास्त्री एम० ए०—

हम मन्त्र का अर्थ पहले देने को तैयार नहीं है।

शास्त्रार्थ के प्रधान श्री महात्मा हंसराज जी—

फिर आपको, दूसरों के अर्थों को Criticize (खण्डन) करने का अधिकार नहीं होगा।

श्री पण्डित विश्वबन्धु जी शास्त्री एम० ए०—

Criticize (खण्डन) तो हम करेंगे।

शास्त्रार्थ के प्रधान श्री महात्मा हंसराज जी—

यह ठीक नहीं है।

श्री पण्डित विश्वबन्धु जी शास्त्री एम० ए०—

यौगिक प्रक्रिया का रिकार्ड पहले होना चाहिये।

शास्त्रार्थ के प्रधान श्री महात्मा हंसराज जी--

आप मन्त्र का अर्थ लिखकर तथा हस्ताक्षर करके दे देवें, आप इस पर अमल करगें या नहीं ? मेरे पास दूसरे पक्ष वालों का किया हुआ अर्थ पण्डितों के हस्ताक्षर (सहित) आ गया हैं।

श्री पण्डित विश्वबन्धु जी शास्त्री एम० ए०—

मुझे इस पालिसी की समझ नहीं आती। बहुत अच्छा ! हम भी अर्थ बना देते हैं, परन्तु हम हस्ताक्षर करने को तैयार नहीं हैं, जो गन्ध अर्थ की प्रतीत हुई है, वह हम दे देगें।

शास्त्रार्थ के प्रधान श्री महात्मा हंसराज जी—

बहुत अच्छा, बिना ही हस्ताक्षरों के दे देवें। वह आपके पक्ष की ओर से समझ लिया जावेगा। पं० विश्वबन्धु जी ! क्या यह सब की ओर से है ? क्या पं० चारुदेव जी इसे स्वीकार करते है ?

श्री पण्डित चारुदेव जी शास्त्री एम० ए०—

मुझे कुछ पता नहीं।

शास्त्रार्थ के प्रधान श्री महात्मा हंसराज जी—

फिर यह पं० राजाराम जी तथा पं० विश्वबन्धु जी की ओर से है ?

दोनों—

हाँ जी।

श्री महात्मा नारायण स्वामी जी महाराज—

(दोनों पक्षों का अर्थ पढ़कर सुनाते हुए) पहले आप "**श्री पण्डित विश्वबन्धु जी**" के पक्ष का अर्थ सुनिये **मन्त्रार्थ** (ऋ० ८।४।१९)—"स्वर्ग की इच्छा से की जानेवाली क्रियाओं में तुर्वशों में जो दान है, उन दानों में प्रकाशयुक्त उत्तम धनवाले कुरुङ्ग राजा के सैकड़ों घोड़ों वाले धन को हमने बड़ा माना है।" अब आप "**श्री पण्डित ब्रह्मदत्त जी**" का मन्त्रार्थ सुनिये—"**स्थूरं राधः शताश्वं कुरुङ्गस्य दिविष्टिषु। राज्ञस्त्वेषस्य सुभगस्य रातिषु तुर्वशेष्वमन्महि**" (ऋ० ८।४।१९) **अन्वयः**—त्वेषस्य सुभगस्य कुरुङ्गस्य राज्ञो दिविष्टिषु रातिषु तुर्वशेषु शताश्वं स्थूरं राधो अमन्महि। यह तो हुआ इस मन्त्र का अन्वय, अब पदार्थ भी देखिये—**पदार्थः**—(त्वेषस्य) "**त्विष दीप्तौ**" इत्येतस्माद्धातोः पचाद्यचि त्वेषः, तस्य त्वेषष्य दीप्तिमतः। "चितोऽन्तोदात्तः" इत्यन्तोदात्तत्वम्। (सुभगस्य) "**भज सेवायाम्**" इत्येतस्माधातोः "**पुंसि संज्ञायां घः प्रायेण**" (अ० ३।३।११८) इति घ प्रत्यये "**चजोः कुः घिण्ण्यतोः**" (अ० ७।३।५२) इति कुत्वे (=भगः), भज्यते सेव्यते धनार्थिभिः, सुष्ठु भोगो यंस्येति सुभगः, तस्य सुभगस्य। "**क्त्वादयश्च**" (अ० ६।२।११७) इत्युत्तरपदाद्युदात्तत्वम्, शोभनगुणयुक्तस्य इत्यर्थः। (कुरुङ्गस्य) कुरून् क्रूरान् ऋत्विजो वा गच्छति प्राप्नोति जयति विनाशयति वा यः स कुरुङ्ग। "**डोऽन्यत्रापि दृश्यते**" इति गमेर्डः, "**पृषोदरादिः**" दुष्टविनाशकस्य। "**गतिकारकोपपदात् कृत**" (अ० ६।२।१३८) इत्युत्तरपदप्रकृतिस्वरत्वे-नान्तोदात्तत्वम्। सुपोऽनुदात्तत्वे "**उदात्तादनुदात्तस्य स्वरितः**" (अ० ८।४।६५) इत्यन्तस्वरित्वम्। (राज्ञः) "**राज दीप्तौ**" यद्वा "**राजति ऐश्वर्यकर्मा अर्चतिकर्मा वा**" राजते दीप्तिमान् ऐश्वर्ययुत्तो भवति। "**कनिन् युवृषितक्षि**"० (उ० १।५६)। तत्र प्रमाणम्—"**राजानो वै राष्ट्रभृतस्ते हि राष्ट्राणि बिभ्रति**" (श० ९।४।१।१) "**राजा हि कं भुवनानामभि श्रीः** (ऋ० १।९।८।१) "**उद्यन्नादित्यः सर्वेषां ज्योतिषां राजा**"।

नि० २।२१। (दिविष्टिषु) द्यौर्गम्यते यथा सा राज्ञ उत्तमक्रियासु । दिवो "**विच्**" प्रत्ययो गुणाभावश्च । "दिवि" शब्दोपपदादिषेर्गत्यर्थादिच्छार्थाद्वा करणे क्तिन् । दिवः सम्बन्धे इष्टिः ऐषणा यस्येति बहुव्रीहौ समासे "**बहुव्रीहौ प्रकृत्यापूर्वपदम्**" [अ०६।२।१] इत्याद्युदातत्वम् । (रातिषु) "**रातिर्दानकर्मा**" विविधदानक्रियासु । "**वसेस्तिः**" इति वाहुलकात्तिः प्रत्ययो भावे । प्रत्ययस्वरेणान्तोदात्तत्वम् । (तुर्वशेषु) मनुष्येषु । "**तूर त्वरणहिंसनयोः**" अस्मात् क्विप् प्रत्ययः, तूः अश्नोतेश्च पचाद्यचि तूर्णमश्नुते, पृषोदरादित्वात् मध्योदात्तत्वम्, यद्वा चतुर्षु धर्मार्थकाममोक्षेषु वश एषामिति चतुर्वशः, चकारलोपेन "**तुर्वशः**" इति देवराजयज्वा (शताश्वं) असङ्ख्यातं ऐश्वर्यमनन्तबलं वा, असङ्ख्या अश्वा यस्येति तं शताश्वं "**वीर्यं वै अश्वः**" [श० २।१।४।२३] इति ब्राह्मणम् । "**महासनो भवतीति वा**" [नि० ४।२३] । "**बहुव्रीहौ प्रकृत्या पूर्वपदम्**" [अ० ६।२।१] इति पूर्वपदान्तोदात्त्वम् । "**पङ्क्तिविंशति०**" [अ० ५।१।५८] इत्यादिना तप्रत्ययविधानात् । (स्थूरं) महत् । प्रत्ययस्वरेणान्तोदात्तत्वम् । (राधः) धनम् । "**राधसाध संसिद्धौ**" असुन्प्रत्ययः । राध्नुवन्ति साध्नुवन्ति धर्मादिपदार्थान् इति स्कन्दस्वामी । "**ञ्नित्यादिनित्यम्**" [अ० ६।१।१९१] इत्याद्युदात्तत्वम् । (अमन्महि) स्तुमः, "**तिङ्ङतिङः**" [अ० ८।१।२८] इति निघातः। [**अर्थः—**] (क) दीप्तिमान् उत्तम ऐश्वर्ययुक्त दुष्टविनाशक जगदीश्वर की उत्तम क्रियाओं, अनेकविध दानों, तथा अनेकाश्वादियुक्त महान् धन की हम स्तुति करें ।। दीप्तिमतः उत्तमैश्वर्ययुक्त दुष्टविनाशकस्य जगदीश्वरस्योत्तमक्रियासु अनेकाश्वयुक्त महद्धनं वयं स्तुमः ।। (ख) शत्रु-बल पर आक्रमण करनेवाले दीप्तिमान् शोभनैश्वर्ययुक्त राजा की स्वर्गादि क्रियाओं में प्रजा में दिये हुए दान का, जिसमें असङ्ख्य घोड़ों का भी दान किया गया, उसको हम बहुत मानते हैं ।

(Sd,) गुरुदत्त (Sd.) प्रियरत्न (Sd.) बुद्धदेव (Sd.) धर्मेन्द्रनाथ (Sd.) भगवद्दत्त (Sd.) वेदप्रकाश (Sd.) रामलाल (Sd.) आर्यमुनि (Sd.) शंकरदेव (Sd.) ब्रह्मदत्त जिज्ञासु (Sd.) अमरसिंह ।

शास्त्रार्थ के प्रधान श्री महात्मा हंसराज जी—

अब प्रश्न यह है कि मन्त्रार्थ आ गया है। अब निरुक्त के फिकरे का अर्थ भी लिख दिया जाय, तब ठीक है ।

श्री पंडित भगवद्दत्त जी रिसर्चस्कालर—

मैं आठ-दस प्रश्न करता हूं, उनका एक-एक मिनट में उत्तर आ जाय । इसी प्रकार आप भी कर लें, मैं उत्तर दूंगा । फिर मत लिखवा लिया जायगा ।

श्री पंडित विश्वबन्धु जी शास्त्री एम० ए०—

हमें स्वीकार है ।

श्री प्रोफेसर पंडित राजाराम जी—

सब बातें बारी-बारी से आ जायेंगी । अब नये प्रश्नों की क्या आवश्यकता है ? जब निरुक्त-प्रक्रिया का विचार चला हुआ है, तब इस नये ढंग की क्या आवश्यकता है ?

श्री पंडित भगवद्दत्त जी रिसर्चस्कालर—

मैं केवल इतिहास के सम्बन्ध में प्रश्न करूंगा ।

श्री प्रोफेसर पंडित राजाराम जी—

मैं भी इतिहास के सम्बन्ध में करूंगा।

श्री पंडित भगवद्दत्त जी रिसर्चस्कालर—

हां आप करें। यह जो पंडित विश्वबन्धु जी कहते हैं कि मनमाने अर्थ किये जा सकते हैं, वैसे कुल्हाड़ेवाले अर्थ नहीं हो सकते। वेदार्थ केवल निरुक्त के आधार पर ही होता, तो यह बात बलवाली होती। ब्राह्मणों में वाच्यार्थ को छोड़कर दूसरा अर्थ करते हैं। **"कर्मण्यकर्म यः पश्येत्"** में शंकराचार्य ने **"कर्म"** का अर्थ **"संसार"** किया है, और रामानुज ने **"ब्रह्म"** किया है। प्रवृत्ति-निमित्त और व्युत्पत्ति-निमित मैंने पंडित राजाराम जी से पूछा था, उन्होंने उल्टा मेरे ही सिर पर मढ़ दिया। यह नहीं होता कि जितने अर्थ हों, उन्हें बुरा समझा जाय। मेरे पक्ष में तो **"बृंहतीति-ब्रह्म"** व्युत्पत्ति-निमित्त है। इसका अर्थ परमात्मा-प्रवृत्ति-निमित्त है। निरुक्त तथा ऋग्वेद में ब्रह्म का अर्थ क्या है? आपके कुल्हाड़ेवाले अर्थ ऐसे ही हैं, जैसे देवीप्रसाद महामहोपाध्याय ने कहा था कि मैं गीता से मद्यमांस सिद्ध कर देता हूं—**"मद्या जी मां नमस्कुरु"**। यह अर्थ हमारे सिर नहीं मढ़े जा सकते, आपके सिर मढ़े जा सकते हैं। वेदान्त **"अत्ता चराचरग्रहणात्"** [वेदान्त १।२।९] में व्यास ने **"अत्ता ग्रहणात्"** लिखा है, **"न तु भक्षणात्"**। यहां पर व्यास ने तथा शङ्कर ने प्रसिद्धि का परित्याग कर दिया है। आपके कुल्हाड़ेवाले अर्थ में तो दर्शन तथा उपनिषद् सारे छोड़ देने पड़ते हैं। सायण ने भी व्युत्पत्तिवाले अर्थ को मुख्य माना है। जैसे—**"अत्रि न त्रयो यस्य सः"**। **"आ तू न इन्द्र कौशिक"** [ऋग्वेद १।१०।११] पर सायण ने लिखा है कि विश्वामित्र के दादा के मन में ख्याल पैदा हुआ कि मेरे भी इन्द्र के जैसा पुत्र हो। तब इन्द्र उसके यहां पुत्र रूप से पैदा हुआ—**"दीर्घतमा मामतेयो जुजुर्वान् दशमे युगे। अपामर्थं यतीनां ब्रह्मा भवति सारथिः॥"** (ऋग्वेद १।१५८।६) इसमें दीर्घतमा जो ममता का पुत्र था, जो अविद्या से पैदा हुआ था, इसका अर्थ सायण ने किया है कि वह मामतेय दशवें युग में बूढ़ा हुआ, इत्यादि। यदि मामतेय शब्द से सारी दीर्घतमा की कहानी निकाली जा सकती है तो कोई आस्था नहीं रहती।

श्री पण्डित विश्वबन्धु जी शास्त्री एम० ए०—

(बीच में) आप **"अपां"** का अर्थ क्या करते हैं?

श्री पंडित भगवद्दत्त जी रिसर्चस्कालर—

"अपां" का अर्थ है—**"कर्म"**।

श्री पण्डित विश्वबन्धु जी शास्त्री एम० ए०—

दसवें युग का अर्थ आप क्या करते हैं?

श्री पण्डित भगवद्दत्त जी रिसर्चस्कालर—

वाच्यार्थ का परित्याग किये बिना यहां आप का अर्थ नहीं हो सकता। यदि आप यहां पर लक्ष्यार्थ करते हैं, तो **"कुरुङ्ग"** का ऐसा अर्थ करने से क्यों कतराते हैं? आपके अर्थ तो इसी प्रकार के हैं कि **"मदीनाः स्याम शरदः शतम्"** कि मैं मदीने में सौ वर्ष रहूं। आपके ढंग पर सारी शंकर की प्रक्रिया, सारी व्यास की, सारी

आर्य फिलासफी छोड़नी पड़ेगी। पक्षता क्या है? "सन्दिग्धसाध्यवान्" पक्ष की स्थापना वाद-कथा में होती है। आपकी यह विचार-कथा किस शास्त्र की है?

श्री पण्डित विश्वबन्धु जी शास्त्री एम० ए०—

कालिजों की पढ़ाई में यह काकभाषा नहीं पढ़ाई जाती है। जो विचार चला है, वह बड़ा जरूरी है। वेदार्थ करने की मूल प्रक्रिया क्या है? तथा नैरुक्त प्रक्रिया क्या है? पंडित जी ने जो कुछ कहा है; वह बहुत-सा मेरे पक्ष को पुष्ट करता है। यह प्रक्रिया तय होनी चाहिये कि कहां क्या वाच्यार्थ है? **"अत्ता चराचरग्रहणात्"** [वेदान्त···१।२।६] अत्ता ग्रहण से न कि भक्षण से, इसमें कोई नियम होना चाहिये। यह नहीं कि **"अपां"** का अर्थ **"कर्म"** कर दिया, जो कि स्वर के विरुद्ध है। यह सारे वैदिक साहित्य में नहीं आया। कभी देखा भी है? या वैसे ही वेदार्थ करने लग पड़े। **"अकर्म"** शब्द यदि वेद में होता, तब उसके इतने अर्थ न हो सकते। यह गीता में आया है, और भिन्न-भिन्न व्यक्तियों ने भिन्न-भिन्न समयों में अर्थ किये हैं। **"अत्ता"** का अर्थ खानेवाला नहीं होता। शक्यार्थ **"गंगायां घोषः"** के ढंग पर करना चाहिये। यह सारा Interpretation का ढंग Unscientific है। शङ्कर ने किया, स्वामी जी ने किया, औरों ने किया, परन्तु इतने मात्र से प्रमाण नहीं है। मैं इन बातों को Unscientific मानता हूं। मैं इन सबकी Authority को Contest करता हूं। युग-युगान्तर में सबके मुख से एक ही वेदार्थ निकला, यह बात ठीक प्रतीत नहीं होती। **"को नाम समन्वयः श्रूयते"**? ऋषियों के मुख से वेदार्थ एक ही निकला, यह मैं नहीं मानता। मैं मानता हूं कि शब्द का व्यङ्ग्यार्थ भी होता है वाच्यार्थ भी, पर विचार तो वाच्यार्थ पर करने की आवश्यकता है। पदार्थ पर विचार नहीं, पर भावार्थ पर विचार है। **"अश्वमेध"** का वाच्यार्थ क्या है? अश्वमेध का वाच्यार्थ राष्ट्र नहीं। **"यज्ञो वै विष्णुः"** इसमें यज्ञ विष्णु का पर्यायवाची नहीं है। यह जब ऋषि आत्म-जीवन में घुसना चाहता है, तब वह विष्णु के भाव को धारण करता है। **"ब्रह्म"** शब्द का वाच्यार्थ क्या है? हैभी, या नहीं, यह मैं नहीं कह सकता, किन्तु स्तोत्रार्थ में अवश्य आया है। मैं इस विषय में दो-चार दिन विचार कर सकता हूं। ब्रह्म का व्युत्पत्ति के तरीके से बड़ा अर्थ भी हो सकता है, मोटा भी हो सकता है। **"बृह"** धातु से **"ब्रह्म"** शब्द बनता है, परन्तु पीपल या वट के वृक्ष को ब्रह्म नहीं कह सकते। शब्द पहले हैं, अर्थ पहले है, निरुक्तादि व्याकरण की व्युत्पत्तियां बाद में हैं। यही तो हम कहते हैं कि अर्थ अनियन्त्रित नहीं होने चाहियें, कोई नियम होना चाहिये। जहां जो मर्जी आये, वह नहीं लगा सकते। अनन्त अर्थवाद नैरुक्त प्रक्रिया के विरुद्ध है, जैसे ब्रह्म शब्द हिमालय समुद्रादि अर्थों में नहीं हो सकता।

श्री पंडित भगवद्दत्त जी रिसर्चस्कालर—

यहां वितण्डा नहीं होगा, वाद होगा। विचार का सबसे अच्छा तरीका यह है कि मैं एक प्रश्न करके बैठ जाऊंगा। आप उसका उत्तर दे देवें। मैं आपको विश्वास दिला दूंगा कि स्वामी दयानन्द, शङ्कर, कुमारिल, स्कन्दादि, एक अटूट शृंखला है। चाहे सिद्धान्तों की Details में भेद हो। मेरा प्रश्न है कि क्या मन्त्र भी भिन्न-भिन्न समय में बने हैं?

श्री प्रोफेसर पंडित राजाराम जी—

मैं तो पहले ही कहता था कि एक-एक आदमी बोले, और तब विचार चले, वह बात स्वीकार नहीं हुई। अब जो बात चली हुई है, वह आप छोड़ रहे हैं। क्या अब घबराहट होने लगी? मेरा प्रश्न है—"कुरुङ्गो

राजा बभूव'' क्या इससे इतिहास सिद्ध होता है अथवा नहीं ? इसका उत्तर दें। ६ स्थल निश्चित किये थे, उन्हें छोड़ना नहीं चाहिये।

श्री पंडित भगवद्दत्त जी रिसर्चस्कालर—

मेरे प्रश्न का उत्तर दें।

श्री प्रोफेसर पंडित राजाराम जी—

इसका विषय के साथ सम्बन्ध नहीं है।

शास्त्रार्थ के प्रधान श्री महात्मा हंसराज जी—

इसका मन्त्रार्थ के प्रकृत विषय से सम्बन्ध है।

श्री पण्डित विश्वबन्धु जी शास्त्री एम० ए०—

हिस्टारिक Historic तरीके का आज निश्चय करना है। मैंने उपनिषद् के सम्बन्ध में कहा था, मन्त्रों के विषय में नहीं कहा था।

श्री पण्डित भगवद्दत्त जी रिसर्चस्कालर—

मैं Definite Statment करता हूं—मन्त्रों के काल से लौकिक भाषा मौजूद है।

श्री पण्डित विश्वबन्धु जी शास्त्री एम० ए०—

प्रधान जी ! यह प्रकरण से विरुद्ध है। जैसे मैंने प्रातः कहा था कि लौकिक भाषा कहाँ तक जाती है, मैंने खूब विचारा है। मैं यदि उसे पेश करूं, तो निरुक्त का प्रकरण बीच में ही रह जायगा। मैं सिद्ध कर सकता हूं कि वेद में लौकिक भाषा मौजूद है। मुझे इस बात पर चैलेंज न करें। पं० भगवद्दत्त जी ने **नाराशंसी** तथा **गाथा** के आधार पर थ्यूरी बाँधी है। मैं इसके लिये भी तैयार हूं, और उनकी पुस्तक का सफावार खण्डन लिख चुका हूं।

श्री पंडित भगवद्दत्त जी रिसर्चस्कालर—

यदि इस बात का सम्बन्ध नहीं तो सुबह खट्टा मिट्ठा पर इतना समय किसलिये खर्च किया गया था ? प्रधान जी Ruling दें।

श्री प्रोफेसर पंडित राजाराम जी—

मुझे यह विश्वास था कि बड़े शुद्ध हृदय के साथ एक-एक बात का निश्चय होगा। और एक-एक स्थल लेकर विचार चलता रहता, तो भी ठीक था। अगर यह (बात) साबित हो जाती कि क्या यास्काचार्य वेद में इतिहास मानता है या नहीं, तो हम सब आर्यसमाज के लिये एक सिद्धान्त स्थिर कर देते। और इन बातों का आर्य-समाज की तरफ से एक ही उत्तर होता। या यदि इतिहासवाला अर्थ होता, तो भी हम एक ही नतीजे पर पहुंचते। वेदार्थ के लिये कोई नियम है, या नहीं ? उन छः स्थलों में से एक स्थल पर भी विचार समाप्त नहीं हुआ। अब ये नये-नये विषय क्यों छेड़े जा रहे हैं ? यदि प्रधान जी कहें कि उन ६ स्थलों को छोड़ दिया जाये, तब नया विचार चल सकता है।

शास्त्रार्थ के प्रधान श्री महात्मा हंसराज जी—

मेरी कोशिश यह रही है कि दोनों पक्ष निरुक्त के स्थल तथा मन्त्र का अर्थ भी लिख कर दे देवें। परन्तु जब भी आप से कहा गया, आपकी तरफ से यह हुआ कि हम यह अर्थ देने के लिये तैयार नहीं हैं। आप केवल आक्षेप करना चाहते हैं। कल आप दोनों पक्ष चाहते थे कि निरुक्त को (जनरल पालिसी) General Policy का निश्चय हो जाना चाहिये। मैंने कहा कि इसके लिये भी समय दे दिया जायेगा।

श्री पण्डित भगवद्दत्त जी रिसर्चस्कालर—

प्रधान जी ईमानदारी तो यही है कि मैंने निरुक्त के तीन बड़े-बड़े आचार्यों की पंक्तियां पेश की थीं, उनका निश्चय हो जाय।

श्री स्वामी नित्यानन्द जी महाराज—

हां, यह ठीक है।

श्री प्रोफेसर पण्डित राजाराम जी—

प्रधान जी! मैं यह समझना चाहता हूं कि निरुक्तकार (वेद में) इतिहास मानता है, या नहीं?

शास्त्रार्थ के प्रधान श्री महात्मा हंसराज जी—

पण्डित जी! आप उन दोनों आचार्यों की पंक्तियों को पढ़ दें।

श्री पण्डित भगवद्दत्त जी रिसर्चस्कालर—

मैं उन पंक्तियों को पढ़ता हूं—"**एवमाख्यानस्वरूपाणां मन्त्राणां यजमाने नित्येषु च पदार्थेषु योजना कर्तव्या। एष शास्त्रे सिद्धान्तः। तथा च वक्ष्यति—तत्को वृत्रः? मेघ इति नैरुक्ताः, इत्यादि। मध्यमं च माध्यमिकां च वाचमिति नैरुक्ताः। रात्रिरादित्यस्योदयेऽन्तर्धीयते इति। औपचारिकोऽयं मन्त्रेष्वाख्यानसमयः। परमार्थेन नित्यपक्ष इति सिद्धम्।**" (स्कन्द पृष्ठ ७८) ॥ "**एवं नैरुक्तपक्षे योजना। औपचारिकोऽयम्मन्त्रेष्वाख्यान-समयः, नित्यत्व-विरोधात्, परमार्थेन तु नित्यपक्ष एवेति नैरुक्तानां सिद्धान्तः।**" निरुक्त समुच्चय पृष्ठ १४३ हस्तलिखित) ॥ "**यः कश्चिद् आध्यात्मिक आधिदैविक आधिभौतिको वा अर्थ आख्यायते दिष्टयुदितार्था-वभासनार्थ स इतिहास इत्युच्यते। स पुनरयमितिहासः सर्वप्रकारो हि नित्यमविवक्षितस्वार्थः**"। (दुर्ग० पृष्ठ ८५८)।

श्री प्रोफेसर पण्डित राजाराम जी—

"दिष्टयु दितावभासनार्थम्" का आपने क्या अर्थ किया है?

श्री पण्डित भगवद्दत्त जी रिसर्चस्कालर—

आप बाकी दो का उत्तर दे देवें, मैं इसका भी अर्थ लिखवा दूंगा।

श्री प्रोफेसर पण्डित राजाराम जी—

स्कन्द स्वामी क्या कहता है? मैं आरम्भ से लेता हूं—[भाग १] पृष्ठ ६६—"**अगस्त्यो**

हविर्निर्वापकाले इन्द्राय हविर्निरूप्य सम्प्रदानकाले मरुद्भ्यः सम्प्रदित्सांचकार। सम्प्रदित्सा सम्यक् प्रदातुमिच्छा, तया तत्पूर्वकत्वात्सम्प्रदानं लक्ष्यते मरुद्भ्यः सम्प्रददौ इत्यर्थः।" उस वक्त इन्द्र ने वहां आकर विलाप किया। **"यस्यामृचि विचिकित्सार्थोयस्तामुदाहरिष्यन्नर्थाभिव्यक्त्यर्थमत्याः पूर्वं तावदितिहासमाचष्टे—अगस्त्य इन्द्राय इत्यादि"।**

अब इस इतिहास की बाबत पहिले विचार हो जाय। फिर उस पर हो जाय। अपने मतलब की बात कह देना, और शेष को प्रक्षिप्त कहकर छोड़ देना ठीक नहीं है।

श्री प्रिंसिपल लाला देवीचन्द जी एम० ए०—

पहिले पण्डित भगवद्दत्त जी ने स्कन्द ऋषि का प्रमाण दिया था, उसका उत्तर दें।

श्री पण्डित विश्वबन्धु जी शास्त्री एम० ए०—

लाला देवीचन्द क्यों दखल देते हैं ?

श्री प्रिंसिपल लाला देवीचन्द जी एम० ए०—

I have been invited so I am authorised to speak.

शास्त्रार्थ के प्रधान श्री महात्मा हंसराज जी—

इनको भी इन्वाइट (Invite) किया गया है। जैसे आप दखल देते हैं, वैसे ही वह भी कह सकते हैं।

श्री प्रोफेसर पण्डित राजाराम जी—

जो बात मैंने पेश की थी, वह कथा प्रारम्भ में पाई जाती है। क्रम से विचार होना चाहिये।

शास्त्रार्थ के प्रधान श्री महात्मा हंसराज जी—

जो बात पण्डित भगवद्दत्त ने कही है, उसका उत्तर दे देवें।

श्री प्रोफेसर पण्डित राजाराम जी—

जो बात मैंने कही है, वह बात क्योंकि पुस्तक में पहिले आई है, उसका उत्तर पहिले आना चाहिये। आरम्भ से लेते जाइये, सारी पुस्तक को एक क्रम से लेते जाइये। पण्डित भगवद्दत्त जी सारी पुस्तक को मानें, या सर्वथा न मानें।

शास्त्रार्थ के प्रधान श्री महात्मा हंसराज जी—

आपका मतलब है कि या तो सारी पुस्तक को मान कर Discussion हो, नहीं तो न हो ?

श्री पण्डित विश्वबन्धु जी शास्त्री एम० ए०—

हमारे लिये मुख्य साध्य वेद और वेदार्थ हैं। हम सब चाहते हैं कि वेद में लौकिक इतिहास सिद्ध न हो। मध्यकाल के लेखकों ने अर्थ के अनर्थ किये। आज आर्यसमाज की विद्वत्परिषद् में स्कन्द, दुर्ग, वररुचि, जो कि

उसी काल के हैं, उन्हें पेश किया जा रहा है। हम किसी को प्रमाण नहीं मानते, केवल वेद को प्रमाण मानते हैं। स्कन्द की प्रतिज्ञा है कि निरुक्त में जितने इतिहास आये हैं, सब औपचारिक हैं। सायण को भी इसी तरह की प्रतिज्ञा है। इस प्रतिज्ञा को नाहीं स्कन्द स्वामी, नाहीं सायण और नाहीं दुर्गाचार्य निभा सके हैं। इनके कथन में "वदतोव्याघात" दोष है। इसलिये इनको प्रमाण नहीं माना जा सकता।

श्री पण्डित भगवद्दत्त जी रिसर्चस्कालर—

महात्मा जी का धन्यवाद है कि इतनी Fightings के बाद आज मुझे यह उत्तर मिला है कि—"स्कन्दादि की प्रतिज्ञा है, यह उनकी Pious wish थी, परन्तु वह इसे सिद्ध नहीं कर सके। इस प्रतिज्ञा को निभा न सके"। परन्तु स्कन्द केवल दावा ही नहीं करता, बल्कि दलील भी देता है—"**नित्यत्व-विरोधात्**"। उसने Further सबूत दिया है—"**तथा च वक्ष्यति तत्को वृत्रः ? मेघ इति नैरुक्ताः इति। मध्यमं च माध्यमिकां च वाचमिति नैरुक्ताः। रात्रिरादित्यस्योदयेऽन्तर्धीयते, इति औपचारिकौ मन्त्रेष्वाख्यानसमयः, परमार्थेन तु नित्यपक्ष इति सिद्धम्**"। [स्कन्द, निरुक्त पृष्ठ ७८] अब पण्डित राजाराम जी कहते हैं कि स्कन्द को शुरू से लिया जाये। परन्तु अपनी बार निरुक्त के ८ पाठ छोड़ कर नवमी जगह "**कुरुङ्ग**" पर क्यों कूद गये ? "**अगस्त्य इन्द्राय हविर्निरूप्य मरुद्भ्यः सम्प्रदित्साञ्चकार**" [स्कन्द निरुक्त भाग १। (यहां मूल कापी में पाठ गायब है) ६६]—अगस्त्य ने इन्द्र के लिये हवि देने का विचार किया था, पीछे से मरुतों के लिये हवि दे दो। क्या वे आदमी हैं ? ऋ० ८।२६।२१—"**त्वष्टुर्जामातरम्**" अर्थात् "त्वष्टा का जमाई" ऐसा अर्थ किया है। "**अग्नेस्त्रयो ज्यायांसो भ्रातर···ध्यासन्**"। अब पण्डित जी इस बात का उत्तर दे देवें कि "**मरुत**" आदमी भी हैं, तो मेरी हार हो गई।

श्री प्रोफेसर पंडित राजाराम जी—

पण्डित जी ने कहा कि सारा निरुक्त छोड़कर आगे के स्थल क्यों रखें ? उसका उत्तर यह है कि उन स्थलों से बात सरलता से स्पष्ट हो जाती है। जो बात पण्डित जी ने पेश की हैं, वह स्कन्द की प्रतिज्ञा है। यदि उसके आधार पर माना जाये कि वह इतिहास नहीं मानता, तब मानना पड़ेगा कि सायण भी इतिहास नहीं मानता। क्योंकि उसने भी भूमिका में ऐसी ही प्रतिज्ञा की है। मैं शुरू से चलता हूं—"**अगस्त्य इन्द्राय हविर्निरूप्य मरुद्भ्यः संप्रदित्सांचकार**" में यास्क के इतिहास शब्द न लिखने पर भी स्कन्द ने स्वयं लिख दिया—"**इतिहासमाचष्टे**"। आगे वह और कुछ कहे, तो वह "**वदतो व्याघात**" दोष हुआ। इसलिये वह प्रमाण नहीं। स्कन्द मरुतों को क्या मानता है ? देवता मानता है, अधिष्ठातृ मानता है, या परमात्मा मानता है। मैं चाहे कुछ मानूं।

श्री पंडित भगवद्दत्त जी रिसर्चस्कालर—

मैंने पूछा था कि आप बतायें कि क्या "**मरुत्**" मनुष्य हैं ?

श्री प्रोफेसर पंडित राजाराम जी—

मैं इसका अर्थ नहीं करूंगा। "**स्कन्द**" इसको ऐसा मानता है—इन्द्र मध्यमस्थानी देवता है, चेतन है, मरुद् भी एक देवता है, अगस्त्य एक ऋषि है। यहां पर वह इतिहास मान रहा है। आगे चल कर वह यह कह देवे कि इतिहास नहीं, ऐसे आचार्य को हम प्रमाण मानने के लिये तैयार नहीं हैं। वह पिण्डदानादि भी मानता है, ऐसी प्रतिज्ञा तो सायण ने भी की है।

शास्त्रार्थ के प्रधान श्री महात्मा हंसराज जी—

नित्य पक्ष क्या है ?

श्री पण्डित ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु—

इक्कीस जगह स्कन्द स्वामी ने नित्य पक्ष और दस जगह औपचारिक धर्म किया है।

श्री प्रोफेसर पण्डित राजाराम जी—

नित्य पक्ष मीमांसकों का है, यज्ञों के साथ सम्बन्ध भी नित्य हैं। वह ईश्वर को भी नहीं मानते, केवल श्रद्धा को लेकर प्रवृत्त होते हैं। दूसरा नित्य पक्ष यह है कि हर सृष्टि में सब कुछ इसी तरह से होता है, यह वेदान्त का पक्ष है। वेद का गौरव बढ़ाने के लिये वेद में इतिहास न सिद्ध होने से मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी। बहुत से मनुष्य इतिहास मानते हैं। मैं नित्य-पक्ष मानता हूं। ये आचार्य अपनी प्रतिज्ञा में फेल हुए हैं। मैं चाहता हूं कि आर्यसमाज का पक्ष कामयाब पक्ष होना चाहिये।

शास्त्रार्थ के प्रधान श्री महात्मा हंसराज जी—

यह तब हो सकता हैं, जब आप भी कोई बात पेश करें। केवल दूसरों का खण्डन ही करते जायें, तब कैसे हो सकता है ?

श्री पण्डित भगवद्दत्त जी रिसर्चस्कालर—

पण्डित जी ने कहा कि एक मीमांसावालों का नित्य पक्ष है, और वे फेल हुए। स्वामी जी ने प्रक्रिया खोल दी है। ६/७ शब्द मैत्रायणी के हैं, जिनके अर्थ किसी को पता नहीं—"**अरेण्वराट्, वालपितरस्थ, आपतम्तानाम्**" इनका अर्थ किसी कोष में नहीं मिलता। स्वामी जी कहते हैं—हजारों वर्षों से वेद का अर्थ भूल गया था, इसलिये प्रकरण, ब्राह्मण, निर्वचन तथा व्याकरणादि अङ्ग उपाङ्गों की सहायता से अर्थ का निश्चय करना चाहिये। इसी [आधार पर] कुरुङ्गादि शब्दों का अर्थ भी (सेटल) Settle किया जायेगा। यदि यह फर्ज कर लिया जाय कि वह फेल हुए, Material आदि की कमी से शायद वह न निभा सके हों, परन्तु उनका सिद्धान्त वही है। स्वामी जी कहते हैं कि यास्क का सिद्धान्त है कि वेद नित्य हैं। "**कर्मसम्पत्तिर्मन्त्रो वेदे**" [निरुक्त १/२] —"**कर्मणामग्निहोत्राद्यश्वमेधान्तानां शिल्पविद्यासाधनानां च सम्पत्तिः सम्पन्नता संयोगो भवति येन स मन्त्रो वेदे देवताशब्देन गृह्यते**" [ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, वेदविषयविचार प्रकरण]। आपने यह कहा है कि जैमिनी के काल से यह मत चला, परन्तु यह मत सृष्टि के आदि से चला आ रहा है। "**मनु**" ब्राह्मणग्रन्थों से पहिले का है, उसने लिखा है—"**सर्वेषां तु नामानि**···"। [मनु० १।२१] इत्यादि। "**यास्क**" लिखता है "**तत्रोपमार्थेन युद्धवर्णा भवन्ति**"। [निरुक्त २।१६]। तथा शतपथ में भी लिखा है—"**नैतदस्ति यद्दैवासुरमिति**"। हजारों ब्राह्मणग्रन्थ मौजूद थे, जिन्होंने इतिहास का नित्य अर्थ किया॥

शास्त्रार्थ के प्रधान श्री महात्मा हंसराज जी—

नित्य पक्ष क्या है ?

श्री पण्डित ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु—

इक्कीस जगह स्कन्द स्वामी ने नित्य पक्ष और दस जगह औपचारिक धर्म किया है।

श्री प्रोफेसर पण्डित राजाराम जी—

नित्य पक्ष मीमांसकों का है, यज्ञों के साथ सम्बन्ध भी नित्य हैं। वह ईश्वर को भी नहीं मानते, केवल श्रद्धा को लेकर प्रवृत्त होते हैं। दूसरा नित्य पक्ष यह है कि हर सृष्टि में सब कुछ इसी तरह से होता है, यह वेदान्त का पक्ष है। वेद का गौरव बढ़ाने के लिये वेद में इतिहास न सिद्ध होने से मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी। बहुत से मनुष्य इतिहास मानते हैं। मैं नित्य-पक्ष मानता हूं। ये आचार्य अपनी प्रतिज्ञा में फेल हुए हैं। मैं चाहता हूं कि आर्यसमाज का पक्ष कामयाब पक्ष होना चाहिये।

शास्त्रार्थ के प्रधान श्री महात्मा हंसराज जी—

यह तब हो सकता हैं, जब आप भी कोई बात पेश करें। केवल दूसरों का खण्डन ही करते जायें, तब कैसे हो सकता है ?

श्री पण्डित भगवद्दत्त जी रिसर्चस्कालर—

पण्डित जी ने कहा कि एक मीमांसावालों का नित्य पक्ष है, और वे फेल हुए। स्वामी जी ने प्रक्रिया खोल दी है। ६/७ शब्द मैत्रायणी के हैं, जिनके अर्थ किसी को पता नहीं—"**अरेण्वराट्, वालपितरस्थ, आपतन्तानाम्**" इनका अर्थ किसी कोष में नहीं मिलता। स्वामी जी कहते हैं—हजारों वर्षों से वेद का अर्थ भूल गया था, इसलिये प्रकरण, ब्राह्मण, निर्वचन तथा व्याकरणादि अङ्ग उपाङ्गों की सहायता से अर्थ का निश्चय करना चाहिये। इसी [आधार पर] कुरुङ्गादि शब्दों का अर्थ भी (सेटल) Settle किया जायेगा। यदि यह फर्ज कर लिया जाय कि वह फेल हुए, Material आदि की कमी से शायद वह न निभा सके हों, परन्तु उनका सिद्धान्त वही है। स्वामी जी कहते हैं कि यास्क का सिद्धान्त है कि वेद नित्य हैं। "**कर्मसम्पत्तिर्मन्त्रो वेदे**" [निरुक्त १/२] —"**कर्मणामग्निहोत्राघश्वमेधान्तनां शिल्पविद्यासाधनानां च सम्पत्तिः सम्पन्नता संयोगो भवति येन स मन्त्रो वेदे देवताशब्देन ग्रह्यते**" [ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, वेदविषयविचार प्रकरण]। आपने यह कहा है कि जैमिनी के काल से यह मत चला, परन्तु यह मत सृष्टि के आदि से चला आ रहा है। "**मनु**" ब्राह्मणग्रन्थों से पहिले का है, उसने लिखा है—"**सर्वेषां तु नामानि**···"। [मनु० १।२१] इत्यादि। "**यास्क**" लिखता है "**तत्रोपमार्थेन युद्धवर्णा भवन्ति**"। [निरुक्त २।१६]। तथा शतपथ में भी लिखा है—"**नैतदस्ति यद्धं वासुरमिति**"। हजारों ब्राह्मणग्रन्थ मौजूद थे, जिन्होंने इतिहास का नित्य अर्थ किया॥

(शास्त्रार्थ की पांचवी बैठक प्रारम्भ, दिनांक २०-५-१६३१ ई०)

[समय : प्रात:काल]

शास्त्रार्थ के प्रधान श्री महात्मा हंसराज जी—

जो कल मामला प्रकाश में आया है, उस पर बहुत कुछ कहा जा सकता है, इसलिये संक्षेप से चलना चाहिये, अब मन्त्र के विषय में बोलना चाहिये।

श्री महता रामचन्द्र जी शास्त्री महोपदेशक—

दो दिन की कार्यवाही सबने सुनी। हम इसलिये इकट्ठें हुए हैं कि आर्य सिद्धान्तों की बाधाओं का निश्चित उत्तर सोचा जाये। आर्य सिद्धान्तों में वेद में इतिहास नहीं माना जाता। जो यहां इकट्ठे हुए हैं, उनमें से एक खासी तादाद ने यह कहा है कि वेद में इतिहास नहीं है। दूसरों ने भी कहा है कि हमारी भी इच्छा है कि वेद में इतिहास सिद्ध न हो। इस समय "**कुरुङ्ग**" और "**तुर्वश**" शब्द पर झगड़ा है। एक ओर से "**शत्रुओं पर आक्रमण करने वाले**" अर्थ भी किये गये हैं, दूसरी ओर से कहा गया है कि मनमाने और अनियन्त्रित [अर्थ से वेदों का कोई महत्व] नहीं रहता। मेरे जैसे विश्वासी के लिए तो निरुक्त चाहे जो कुछ कहता रहे, पर हमें प्रेमपूर्वक समझना चाहिये। जहां तक तो निरुक्त हमारी सहायता करता है, वहां तक उसे मानना चाहिये। पर यदि निरुक्त वेद और वैदिक सिद्धान्त के विरुद्ध जावे, तो हमें उसे छोड़ देना चाहिए। निरुक्त के विषय में एक पक्ष ने नैरुक्तों के दो-तीन प्रमाण दिये हैं। हम बाहिर फिरने वालों के लिए वे काफी हैं, परन्तु आपस में विचार करने के लिये पूरा आर्यत्व होना चाहिये। दोनों ओर से पुष्ट प्रमाणों को Ignore नहीं करना चाहिये। दोनों पक्षों को ख्याल होना चाहिये कि वे दोनों आर्य हैं। दूसरा अखिलानन्द और राजनारायण नहीं है, किन्तु पण्डित भगवद्दत्त और पण्डित राजाराम हैं।

श्री पण्डित भगवद्दत्त जी रिसर्चस्कालर—

हम स्वीकार करते हैं।

श्री पण्डित गुरुदत्त जी शास्त्री—

मैं किसी को विपक्षी ख्याल करके उत्तर देने के लिए नहीं खड़ा हुआ हूं। जहां-जहां भी हमें इतिहास का आभास नजर आता हो, उस पर विचार करने का यत्न करें। पंडित जी ने तीन बातें कही थीं—(१) अजमेर के छपे वेद में "**कुरुङ्गस्य दानस्तुतिः**" देवता छपा है। (२) अनुक्रमणी में और बृहद्देवता में भी यही है। (३) निरुक्त में "**कुरुङ्गो राजा बभूव**" लिखा हैं। इन सब बातों से सिद्ध है कि वेद में अनित्य इतिहास हैं। हम इस पर "**कात्यायन**" को देखते हैं कि वह क्या सम्मति देता है? क्या वह अनित्य इतिहास मानता हैं या और कुछ? दो ही प्रकार के शब्द हैं कि जिनसे यह ख्याल हो सकता है—वह हैं देवता और ऋषि। ऋग्वेद में जो देवता और ऋषि आते हैं, [उनमें ऋषि] ३५५ हैं, और देवता २०६ के लगभग हैं। इन ऋषियों से यास्कादि को क्या अभिप्रेत है? इस पर प्रकाश डाल देने से अधिक तूल देना आवश्यक न होगा। मेरी लिस्ट में जो देवता दुबारा आये हैं, उनका वर्णन नहीं किया गया है। मुझे यही पता लगा है कि "**कात्यायन**" कहते हैं कि ऋषि तीन प्रकार

के हैं—शर्तचि, मध्यम और क्षुद्रसूक्त महासूक्त। इसका प्रमाण—**ऐतरेय आरण्यक** २।२।१।२], पृष्ठ ८१०—"**एष इमं लोकमभ्यार्चत् पुरुषरूपेण य एष तपति, प्राणो वाव तद् अभ्यार्चत्, प्राणो ह्येष य एष तपति, तं शतं वर्षाण्यभ्यार्चत्, तस्मात् शतं वर्षाणि पुरुषायुषो भवन्ति, तं यच्छतं वर्षाण्यभ्यार्चत् तस्मात् शर्तचिनः तस्माच्छर्तचिनः इत्याचक्षते एतमेव सन्तम्। स इदं सर्वं मध्यतो दधे यदिदं किञ्च, स यदिदं [सर्वं] मध्यतो दधे यदिदं किञ्च तस्मान्माध्यमास्तस्मान् माध्यमा एतमेव सन्तम्। प्राणो वै गृत्सोऽपानो मदः, स यत्प्राणो गृत्सोऽपानो मदः तस्माद् गृत्समदः तस्माद् गृत्समदः इत्याचक्षते, एतमेव सन्तम्। तस्येदं विश्वं मित्रमासीत् यदिदं किञ्च, तद् यस्येदं विश्वं मित्रमासीद् यदिदं किञ्च तस्माद् विश्वामित्रः तस्माद् विश्वमित्र इत्याचक्षते एवमेव सप्तम्। तं देवा अब्रूवन् अयं वै नः सर्वेषां वाम इति तं यद्देवा अब्रुन्नयं न सर्वेषां वाम इति तस्मात् वामदेवस्तस्माद् वामदेवः इत्याचक्षते एतमेव सन्तम्। स इदं सर्वं पाप्मनोऽत्रायत् यदिदं किञ्च, स यदिदं सर्वं पाप्मनोऽत्रायत यदिदं किञ्च तस्मादत्रयस्तस्मादत्रय इत्याचक्षते एतमेव सन्तम्। एष उ एव बिभ्रद्वाजः, प्रजा वै वाजस्ता एष बिभर्त्ति यद् बिभर्त्ति तस्माद् भरद्वाजस्तस्माद् भरद्वाज इत्याचक्षते एतमेव सन्तम्। तं देवा अब्रुवन्नयं वै नः सर्वेषां वसिष्ठ इति, तं यद्देवा अब्रुवन्नयं वै नः सर्वेषां वसिष्ठ इति तस्माद् वसिष्ठस्तस्माद् वसिष्ठ इत्याचक्षते एतमेव सन्तम्। [स इदं सर्वमभि प्रागाद् यदिदं किञ्च, स यदिदं सर्वमभिप्रागाद् यदिदं किञ्च तस्मात् प्रगाथास्तस्मात्प्रगाथा इत्याचक्षते एतमेव सन्तम्।] स इदं सर्वमभ्यपवयत यदिदं किञ्च, स यदिदं सर्वमभ्यपवयत् यदिदं किञ्च तस्मात् पावमानास्तस्मात् पावमाना इत्याचक्षते एतमेव सन्तम्। सोऽब्रवीदहमिदं सर्वमसानि यच्च क्षुद्रं यच्च महदिति, ते क्षुद्रसूक्ताश्चाभवन् महासूक्ताश्च तस्मात्क्षुद्रसूक्तास्तस्मात्क्षुद्रसूक्ता इत्याचक्षते एतमेव सन्तम्।**" तथाश्च **बृहदारण्यक उपनिषद्** १।३।१९—२१ [में कहा है]—"**सोऽयास्य आङ्गिरसोऽङ्गानां हि रसः······प्राणो हि वा अङ्गानां रसः, तस्माद्यस्मात्कस्माच्चाङ्गात् प्राण उत्क्रामति तदेव शुष्यति। एष हि वाङ्गानां रसः। एष उ एव बृहस्पतिः। वाग्वै बृहती तस्या एष पतिस्तस्माद् बृहस्पतिः। एष उ एव ब्रह्मणस्पतिः।**" **वग्वै ब्रह्म तस्या एष पतिस्तस्माद् ब्रह्मणस्पतिः।** फिर **बृहदारण्यकोपनिषद्** [२।२।४] में कहा है—"**इमावेव गोतमभरद्वाजौ, अयमेव गोतमः अयं भरद्वाजः, इमावेव विश्वामित्र-जगदग्नी, अयमेव विश्वामित्र अयं जगदग्निः। इमावेव वसिष्ठकश्यपौ, अयमेव वसिष्ठः अयं कश्यपः। वागेवात्रिर्वाचा ह्यन्नमद्यते, अत्तिर्ह वै नामैतदत्रदत्रिरिति**"। इसी तरह—"**सप्त ऋषयः प्रतिहिताः शरीरे सप्त रक्षन्ति सदमप्रमादम्**"। [नि० १२।३७]॥ **शतपथ के अष्टमकाण्ड के आरम्भ में**—"**प्राणो वै वसिष्ठः, मन्त्रो वै भरद्वाजः ऋषिः, श्रोत्रं वै विश्वामित्र ऋषिः, वाग्वै विश्वकर्मा ऋषिः**"। इन तमाम प्रमाणों से यह नतीजा निकलता है कि वेदमन्त्रों में जहां-जहां पर कोई नाम व्यक्तिविशेष का प्रतीक हो, तो वह प्राणादि का वाचक है। अब प्रश्न यह है कि ऋषियों का मन्त्र-दृष्टृत्व कैसे हुआ ? उदाहरण के लिये—"**हिरण्यगर्भ समवर्ततात्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्। स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम**" [यजु० १३।४] का ऋषि भी "**हिरण्यगर्भ प्राजापत्य**" है। "**स्वस्ति नो मिमीतामश्विना भगः स्वस्ति देव्यदितिरनर्वणः। स्वस्ति पूषा असुरो दधातु नः स्वस्ति द्यावापृथिवी सुचेतुना**" [ऋ० ५।५१।११] इसका ऋषि "**स्वस्ति**" है। "**श्रद्धया अग्निः समिध्यते**" [ऋक् १०।१५१।१] इत्यादि का ऋषि "**श्रद्धा**" है। "**य इमा विश्वा भुवनानि जुह्वत्**" [ऋक् १०।८१।१] इत्यादि का ऋषि "**विश्वकर्मा भौवन**" है। "**यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं०**" [यजु० ३४।१] इत्यादि मन्त्रों का ऋषि भी "**शिवसङ्कल्प**" है। इन उदाहरणों से सिद्ध है कि ये व्यक्तिविशेष नहीं हैं। यास्क भी—"**साक्षात्कृतधर्माणः ऋषयो बभूवुः, ते अवरेभ्योऽसाक्षात्कृतधर्मभ्य उपदेशेन मन्त्रान् सम्प्रादुः**" [निरुक्त १।२०] इत्यादि। इनसे सिद्ध होता है कि या तो ये नाम उपाधिवाचक हैं, या प्राणादि के वाचक हैं। जिस ऋषि ने उन मन्त्रार्थों का साक्षात् किया, उनको यह डिग्री दी गई। उन्होंने सारा जीवन वेदाध्ययन में व्यतीत किया। यह

सम्बन्धबोधक नहीं, अन्वर्थबोधक है। प्रमाण निरुक्त १०।२६—"**तत्रेतिहासमाचक्षते। विश्वकर्मा भौवनः सर्वमेधे सर्वाणि भूतानि जुहवाञ्चकार। स आत्मानमप्यन्ततो जुहवाञ्चकार**"। इस पर दुर्ग लिखता है—"**यः कश्चिदाध्यात्मिक आधिदैविक आधिभौतिको वार्थ आख्यायते विष्टयु दितार्थाविभासनार्थं स इतिहास इत्युच्यते। स पुनरयमितिहासः सर्वप्रकारो हि नित्यमविवक्षितस्वार्थः, तदर्थप्रतिपत्तृणामुपदेशपरत्वात्।**······**यथोदितमिदं वैदिकं कर्म सम्बन्धदर्शनेन यः सर्वं करोति, सर्वात्मकत्वात् सर्वस्य वैश्वकर्मणीमवस्थामात्मन्यून्नीय स यजमानो विश्वकर्मा भुवनानां भूताना [मात्मनि] होता भूतेषु चात्मानम्**"। [दुर्गटीका पृष्ठ ८५८] यहां पर भौवन विश्वकर्मा व्यक्तिविशेष नहीं। आगे चलकर फिर दुर्ग लिखता है—इस विषय में एक और प्रबल प्रमाण है—ऋषियों की सूची में नदी मत्स्य सर्प आदि को ऋषि माना गया है, इनका ऋषित्व कैसे ? अब सवाल "**देवता-प्रकरण**" का है। वेद में जहां अनित्य इतिहास की झलक दीखती है, उसके विषय में प्राचीन आचार्यों की सम्मति है कि साहित्य को अलंकृत करने के लिये रूपक आरोपादि अलङ्कार रचे गये हैं। वहां आरोप है, इतिहास नहीं। "**अरायि काणे विकटे गिरिं गच्छ सदान्वे**" [ऋक् १०।१५५।१]। इसका शिरिम्बिठ ऋषि है। यास्क कहता है—"**शिरिम्बिठो मेघ इति नैरुक्ताः**"। [निरुक्त० ६।३०]। फिर "**मन्युरिन्द्रो मन्युरेवास देवो मन्युर्होता वरुणो जातवेदाः। मन्युं विश ईडते मानुषीर्याः पाहि नो मन्यो तपसा सजोषाः।**" [ऋ० १०।८३।२]। यहां मन्यु का चेतनवत् वर्णन है। इसी प्रकार—"**असुनीते मनो अस्मासु धारय जीवातवे सुप्रतिरा न आयुः। रारन्धि नः सूर्यस्य सन्दृशि घृतेन त्वं तन्वं वर्धयस्व**"॥ [ऋक् १०।५९।५]। इसमें भी असुनीति का चेतनवत् वर्णन किया है। यह आरोप केवल वेद में ही नहीं बल्कि ब्राह्मणग्रन्थों में भी पाया जाता है—"**तं तपोऽब्रवीत्। प्रजापते तपसा वै श्राम्यसि। अहमुवै तपोऽस्मि**"। (तैत्तिरीय ब्राह्मण ३।१२।४)। यहां पर तप का चेतनवत् वर्णन किया गया है। "**तं श्रद्धा अब्रवीत्। प्रजापते श्रद्धया वै श्राम्यसि। अहमु वै श्रद्धास्मि**"। यहां पर श्रद्धा का चेतनवत् वर्णन है। यह आरोप मन्त्र और ब्राह्मणों में ही नहीं है, बल्कि संस्कृत-साहित्य में भी है—"**रे चित्त चिन्तय चिरं चरणौ मुरारेः**"; "**वयं तत्त्वान्वेशान् मधुकर हतास्त्वं खलु कृती**"। इसी प्रकार दूसरे स्थलों पर आरोप और रूपक हैं। देवताओं के विषय में कात्यायन "**सर्वानुक्रमणी**" नामक ग्रन्थ में कहते हैं—"**एकैव वा महानात्मा स सूर्य इत्याचक्षते**······। **तदुक्तमृषिणा—सूर्यात्मा जगतस्तस्थुषश्चेति। तद्विभूतयोऽन्या देवताः। तदप्येतदृचोक्तम्—इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरिति**" [सर्वा० परिभाषा १४—२१]। यास्क कहते हैं—"**यत्काम ऋषिर्यस्यां देवतायामार्थपत्यमिच्छन् स्तुतिं प्रयुङ्क्ते, तद्दैवतः स मन्त्रो भवति**" [निरुक्त ७।१]। "**महाभाग्याद् देवताया एकात्मा बहुधा स्तूयते**" [निरुक्त ७।४]। अब इसको Limit करते हैं। कोई ३३ करोड़ कहता है, कोई कितना। अतः यास्क कहते हैं—"**तिस्र एव देवता इति नैरुक्ताः, अग्निः पृथिवीस्थानः, वायुर्वेन्द्रो वा अन्तरिक्षस्थानः सूर्यो द्युस्थानः**" [निरुक्त ७।५]। अतः वह आगे कहता है—वेद मन्त्रों में रथ, मुद्गर, धनुष्, सारथि, नदी, सर्प, आदि को देवता माना गया है—"**आत्मैवैषां रथो भवत्यात्मा [श्वः, आत्मा] आयुधम्, आत्मेषवः, आत्मा सर्वं देवस्य**"। [निरुक्त ७।४] जिस विषय का मन्त्रों में वर्णन है, वह-वह उसका "**देवता**" है। वह व्यक्तिविशेष नहीं हैं, बल्कि विषय का द्योतन करनेवाले हैं। इस बात पर जोर दिया जाता है कि यास्क अनित्य इतिहास मानता है। पण्डित जी नोट करें। निरुक्त २।१६—तथा "**अतिष्ठन्तीनामनिवेशनानां काष्ठानां मध्ये निहितं शरीरम्। वृत्रस्य निण्यं विचरन्त्यापो दीर्घं तम आशयदिन्द्रशत्रुः**"॥ [ऋक् १।३२।१०] एवं "**अपां च ज्योतिषश्च मिश्रीभावकर्मणो वर्षकर्म जायते। तत्रोपमार्थेन युद्धवर्णा भवन्ति।**" [निरुक्त २।१६]। यहां पर सायण वृत्र से त्वष्टा का लड़का असुर मतलब लेता है। परन्तु यास्क कहता है कि नहीं, यहां "**वृत्र**" बादल हैं। "**उपमार्थेन युद्धवर्णा भवन्ति**"। इसी बात को "**दुर्ग**" और स्पष्ट करता है। वह एक और मन्त्र देता है—"**यदचरस्तन्वा वावृधानो बलानीन्द्र प्रब्रवाणो जनेषु। मायेत्सा ते यानि युद्धान्याहुर्नाद्य शत्रुं ननु पुरा विवित्से।**" [ऋक् १०।५४।२]।

मायेत्सा ते यानि युद्धान्याहुः ।···ऐतिहासिका नानारूपाणि उपप्रदर्शयन्तः सा अपि च तव मायैव ।[1] किं कारणम् ? नाद्य शत्रुस्तवास्ति प्रत्यनीकभूतो न नु पुरा नापि पुरा कश्चिदासीत् । यावद्वीर्यं किञ्चित्क्वचिदस्ति सर्वं तत्त्वमेव ।···ऐवमेतस्मिन्मन्त्रे मायामात्रत्वमेव युद्धमिति श्रूयते । विज्ञायते च तस्माबाहुर्नैतदस्ति यद्देवासुरमिति"। [दुर्ग टीका पृष्ठ १७७—१७८] । वह तो कहता है कि तेरा तो कोई दुश्मन है ही नहीं, सब पराक्रम तेरा ही है । ना ही तेरे साथ कोई युद्ध करनेवाला है । "अहिवत्तु खलु मन्त्रवर्णा ब्राह्मणवादाश्च" [निरु० २।१६] अर्थात् मन्त्रों और ब्राह्मणों में जहां इतिहास की झलक प्रतीत हो, वहां "अहि" अर्थात् वृत्र की तरह ही समझ लेना —"तद्रूप्युपेक्षितव्यम्" [निरुक्त२।१०] । "समुद्रः कस्मात्, समुद्रवन्त्यस्मादापः, समभिद्रवन्त्येनमापः सम्मोदन्तेऽस्मिन् भूतानि समुदको भवति समुन्नत्तीति वा तयोर्विभागः । तत्रेतिहासमाचक्षते—देवापिश्चार्ष्टिषेणश्च शन्तनुश्च कौरव्यौ भ्रातरौ बभूवतुः । स शन्तनुः कानीयानभिषेचयाञ्चक्रे । देवापिस्तपः प्रतिपेदे । ततः शन्तनो राज्ये द्वादशवर्षाणि देवो नव वर्ष । तमूचुर्ब्राह्मणा अधर्मस्त्वया चरितः, ज्येष्ठं भ्रातरमन्तरित्याभिषेचितम्, स्मात्ते देवो न वर्षतीति । स शन्तनुर्देवापि शिशिक्ष राज्येन । तमुवाच देवापिः पुरोहितस्ते असानि याजयानि व त्वेति" । [निरु० २।१०] । इस पर दुर्ग पृष्ठ १६५ पर लिखता है—"मन्त्र-निदानद्वारेण धर्मोऽयमत्र दर्शितः । ज्येष्ठे तिष्ठति कनीयसो राज्य-प्राप्तिर्धर्मातिक्रमः, धर्मातिक्रमे च देवो न वर्षतीति । नैरुक्तपक्षे ऋष्टिषेणो-मध्यमः तदपत्यमयमग्निः पार्थिवः आर्ष्टिषेणो देवापिः स शन्तनवे सर्वस्मै यजमानाय इति योज्यम् । बृहस्पतिर्वाचस्पतिरिति मध्यमः । स्तनयित्नुलक्षणां वाचमित्यर्थः" । [निरुक्त २।१२] । ऐतिहासिक पक्ष को रद्द करते हुए पण्डित राजाराम जी ने अपने निरुक्तानुवाद में लिखा है—"देवापि ही इस सूक्त का द्रष्टा ऋषि अपना निर्देश प्रथम पुरुष से और भूतकाल से कैसे करता है" ? वहां पर भी पण्डित राजाराम जी ने दुर्ग को Quote करते हुए लिखा है—"इसका यथाकथंचित् यह समाधान दुर्गाचार्य ने लिखा है कि जैसे [इस] कल्प में देवापि और शन्तनु हुए, वैसे इससे पूर्व कल्प में भी हुए । उसके अभिप्राय से इस देवापि का वचन है" । प्रतीत होता है कि वह उसके साथ शायद सहमत नहीं । (निरुक्त ३।११) यास्क "कुत्स" के विषय में कहता है—"वज्रनामानि उत्तराणि अष्टादश । ······तत्र कुत्स इत्येतत् कृन्ततेः, ऋषि कुत्सो भवति । कर्त्ता स्तोमानामित्यौपमन्यवः । अत्राप्यस्य वधकर्मैव भवति । तत्सख इन्द्रः शुष्णं जघान" । इस पर "दुर्ग" लिखता है—"अत्रापि एतदृषौ वर्तमानमभिधानमस्य ऋषेर्वधकर्मैव वधार्थसंयुक्तमेव स्यात्" । मैंने यास्क ब्राह्मण-ग्रन्थ और कात्यायन की सम्मति दी । अब औरों की देता हूं—वेदान्त शङ्कर भाष्य १।३।३० में कहा है—"ऋषीणां नामधेयानि याश्च मन्त्रेषु दृष्टयः । शर्वर्यन्ते प्रसूतानां तान्येवैभ्यो ददात्यजः" । [वेदान्तशङ्करभाष्य १।३।२८—"नामरूपे च भूतानां कर्मणां च प्रवर्तनम् । वेदशब्देभ्य एवादौ निर्ममे स महेश्वरः" । [वेदान्तसूत्र १।३।२८—"शब्द इति चेन्नातः प्रभावात् प्रत्यक्षानुमानाभ्याम्" । स्मृतावपि—"स भूरिति व्याहरन् स भूमिमसृजत" ; "अनादि-निधना नित्या वागुत्सृष्टा स्वयम्भुवा । आदौ वेदमयी दिव्या यतः सर्वा प्रवृत्तयः" । वेदान्त-भाष्य सूत्र १।३।३०—"समाननामरूपत्वाच्चावृत्तावप्यविरोधो दर्शनात्स्मृतेश्च" पर शङ्कराचार्य ने निम्न प्रमाण दिये हैं—

सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत् । दिवं च पृथिवीं चान्तरिक्षमथो स्वः ।। [ऋक् १०।१९०।३]
तेषां यानि कर्माणि प्राक् सृष्टया प्रतिपेदिरे । तान्येव ते प्रदिप्रद्यन्ते सृज्यमानाः पुनः पुनः ।।

टिप्पणी—

१. तस्मादेतदृषिणाभ्यनूक्तम् । न त्वं युयुत्से कतमच्चनाहर्न तेऽमित्रो मघवन् कश्चनास्ति । मायेत्सा ते यानि युद्धान्याहुर्नाद्य शत्रुं न नु पुरा युयुत्सऽ इति ।। (शतपथ ११।१।६।१०) ।।

हिंस्राहिंस्रे मृदुक्रूरे धर्माधर्मावृतानृतौ । तद्भाविताः प्रपद्यन्ते तस्मात्तत्तस्य रोचते ॥
यथर्तावृतुलिंगानि नानारूपाणि पर्यये । दृश्यन्ते तानि तान्येव तथाभावा युगादिषु ॥
यथाभिमानिनोऽतीता तुल्यास्ते साम्प्रतैरिह । देवादेवैरतीतैर्हि रूपे नामभिरेव च ॥

जैमिनि [मीमांसा···१।१।२७-३१] चारवाकों के मत का खण्डन करते हुए पूर्वपक्ष में—"**वेदांश्चैके सन्निकर्ष पुरुषाख्याः**" कि वेदों के नाम काठकादि शाखाओं के नाम से, और "**अनित्यदर्शनाच्च**" वानरादि नाम वेद में होने से वेद नित्य कैसे? इसका उत्तर देते हैं—"**उक्तं तु शब्दपूर्वत्वं आख्याप्रवचनात्**", "**परन्तु श्रुतिसामान्यमात्रम्**"। इस प्रकार इतिहास का खण्डन करते हैं। सायण उपोद्धात में कहता है—"**एवमन्यत्राप्यूहनीयम्**"। मनु कहता है—"**सर्वेषां तु स नामानि कर्माणि च पृथक्-पृथक्, वेदशब्देभ्यः एवादौ पृथक् संस्थाश्च निर्ममे**" ॥ [मनु० १।२१]। पाणिनि के दो सूत्र "**कृते ग्रन्थे**" [अष्टा० ४।३।११६], "**तेन प्रोक्तम्**" [अष्टा० ४।३।१०१] हैं। पं० राजाराम जी भी भूमिका में कहते हैं—"**पहले सूत्र से यह** बात सिद्ध होती थी, **दूसरा सूत्र इसलिए दिया कि यह स्पष्ट हो कि ऋषि "कर्ता" नहीं बल्कि "प्रवक्ता"** हैं"। यह प्रमाण नास्तिकों के आगे चट्टान का काम देते हैं।

शास्त्रार्थ महारथी श्री पण्डित बुद्धदेव जी मीरपुरी—

यह प्रकरण इस ढंग का छिड़ गया है। मैंने आरम्भ में ही कहा था—"**पक्षप्रतिपक्षाभ्यामर्थावधारणं निर्णयः।**" आप कहते हैं कि हमारा कोई पक्ष नहीं, परन्तु ऋषि कहते हैं—"**एकाधिकरणे पक्ष-प्रतिपक्ष**······"। आपका पक्ष तो हुआ, आप मानें या न मानें। पक्ष के स्पष्ट न होने से यह सारी गड़बड़ है। उस मन्त्र के अर्थ हमने पेश किये। उन्हें आप काट न सके, तो आपने प्रवृत्तिनिमित्त और व्युत्पत्तिनिमित्त का झगड़ा चलाया है। इसलिए आप प्रतिज्ञान्तर निग्रहस्थान में आ गये। यह शास्त्रार्थ का ढंग नहीं है। इस तरह एक-एक का सम्बन्ध जोड़ने लगें, तो कभी निर्णय हो ही न सके। आप हमारे अर्थ का खण्डन करें, और अपना पक्ष देवें। आप किस भाषा और किस ग्रन्थ को मानते हैं? जब हमने "**बभूव**" का अर्थ "**भवति**" किया था, तब हमने प्रमाण दिये थे कि ऋषि लोग रामायणादि में वैदिक प्रयोग किया करते थे। महाभाष्य में भी कहा है—"**छन्दोवत्सूत्राणि भवन्ति**" इसी तरह हमने निरुक्त के प्रमाण पेश किये। "**ऋषि कुत्सो भवति**", "**च्यवन ऋषिर्भवति**", "**नोधा ऋषिर्भवति**" यहां तीनों स्थलों पर भूतकाल है। हमसे पूछा गया कि यहां भूतकाल कहां है? हमारा उत्तर है कि वहां "**तक्षथुः**" और "**चक्रथुः**" आदि भूतकाल की क्रियायें हैं। जैसे यहां भूतकाल में "**भवति**" लगा सकते हैं, इसी तरह "**बभूव**" भवति के स्थान में कह सकते हैं। यदि उनको इतिहास अपेक्षित होता, तो "**ऋषिश्च्यवनो भवति**" आदि न कहते। इस प्रकार से भूतकाल की क्रियाओं के स्थान पर "**भवति**" का प्रयोग करते हैं। "**नदस्य मा रुधतः काम आगन्**" [ऋक् १।१७९।४]। "**ऋषिर्नदी भवति**" [निरु० ५।२] यह "**दम्पति**" देवता है। यदि यहां इतिहास होता, तो यास्क यहां वर्तमान का प्रयोग क्यों करते? "**तत्सख इन्द्रः शुष्णं जघान**" [निरु० ३।११] यहां वर्तमान काल में भूतकाल की क्रिया का प्रयोग किया है। या यह कहो कि ये सारे ऋषि यास्क के सामने उपस्थित थे। यदि थे, तो यास्क के नद च्यवन आदि की व्युत्पत्ति क्यों की है? फिर जब सामने हैं, तो इतिहास कैसा? आप प्रश्न करते हैं कि आप सारे स्कन्द को मानते हैं या नहीं। यह वैसा ही प्रश्न है जैसा कि पौराणिक कहा करते हैं कि सारे पुराणों को मानें। इसी प्रकार से आप सारे निघण्टु और निरुक्त को मानते हैं, तो "**तुर्वश**" का अर्थ वहां मनुष्य किया है, तो फिर आपको आपत्ति क्यों? आप यौगिक अर्थों के सम्बन्ध में प्रश्न करते हैं। कोई नियन्त्रण होना चाहिये, अनेक अर्थ नहीं होने चाहिये। यह बात वेद में ही नहीं लोक में भी है—"**सर्वे सर्वार्थवाचकाः**"। नियन्त्रण के लिये कहा था, सो नियन्त्रण की ग्यारह-बारह कसौटियां देते हैं। **संयोगो विप्रयोगश्च साहचर्यं विरोधिता। अर्थ-प्रकरणं**

लिङ्गं शब्दस्यान्यस्य सन्निधिः ।। सामर्थ्यमौचिति देशः कालो व्यक्तिस्वरादयः । शब्दार्थस्यानवच्छेदे विशेषस्मृतिहेतवः ।। आप भी एक शब्द के अनेकार्थ मानते हैं, हम भी मानते हैं। हम भी आपसे पूछते हैं कि आप बतायें कि आप नियन्त्रण के लिए क्या नियम मानते हैं? शब्दों की प्रवृत्ति किंजन्य है? घटादि की कम्बुग्रीवादि मान में कैसे प्रवृत्ति हुई? मेरी ओर से प्रमाण लीजिये—"**देवो देवानां गुह्यानि नामान्याविष्क्रणोति बर्हिषि प्रवाचे**" [ऋ० ६।६५।२]। बर्हि शब्द का अर्थ वैदिक कोश में लोक लिखा है—"**बर्हिर्वै लोकः**" [श० १।८।१।११]। भूमि आदि की उत्पत्ति के साथ ही परमात्मा ने नाम भी सारे बताये। आप बतायें कि यह प्रवृत्ति कैसे है? आप तो कहेंगे कि "**लोकं पृच्छ**", किन्तु आपके कथनानुसार लोक का तो कोई ठिकाना ही नहीं। ब्राह्मण और उपनिषदों का भी कोई ठिकाना नहीं। शङ्कर, सायण, दुर्गादि भी अपनी प्रतिज्ञा को पूरा न कर सके, तो प्रवृत्ति कैसे चली? इसका आप सप्रमाण उत्तर दें। जैसे आप कह देते हैं कि हमें पता नहीं। कुरुङ्ग का बाप कौन था? और "**मन्यामहे**" किसने कहा? आपके अनेकार्थ के नियन्त्रण का कारण क्या है? निरुक्तकार ने "**गौः**" शब्द के सात-आठ अर्थ किये हैं, वहां नियन्त्रण क्या है? औपचारिक अर्थों की कितनी मर्यादा होनी चाहिये? आपके मत में इन्द्र मित्र, वरुण, अग्नि आदि का मुख्य अर्थ क्या है? आपने "**वेदसन्देश**" में इन शब्दों का अर्थ परमात्मा किया है। आप बतायें कि सुपर्ण शब्द का मुख्य अर्थ क्या है? आप इसका अर्थ उड़ने वाला जानवर क्यों नहीं करते? तथा "**वेद-सन्देश**" में इसका अर्थ आत्मा और परमात्मा क्यों करते हैं? वृक्ष का मुख्यार्थ क्या है? इसका अर्थ टहनियों वाला क्यों नहीं करते? और प्रकृति क्यों करते हैं? वृक्ष का अर्थ निरुक्त में धनुष किया है—"**वक्षे वृक्षे धनुषि धनुषि**"। "**अनड्वान्**" तथा "**वृषण**" शब्द के मुख्य अर्थ वेद में क्या हैं? अग्नि का मुख्यार्थ महर्षि दयानन्द के अनुसार क्यों नहीं करते? आप इन बातों का सप्रमाण उत्तर दें—"**मा चिदन्यद् वशंसत सखायो मा रिषण्यत। इन्द्रमित् स्तोता वृषणं सचा सुते मुहुरुक्था च शंसत।**" (ऋक् ८।१।१)। अर्थात् पंडित विश्वबन्धु जी इसका अर्थ करते हैं कि मित्रो! अन्य की भक्ति मत करो, इन्द्र की भक्ति करो। मैं इसका ऐतिहासिक हिरण्यकशिपुपरक अर्थ करता हूं। आपके पक्ष में इसका नियन्त्रण क्या है? हमसे कोई पूछे कि यौगिक शब्दों का नियन्त्रण क्या है? तो हम कहेंगे कि (१)—ईश्वर ने स्वयं बताया—"**स भूरिति व्याहरत्, स भूमिमसृजत्**"। [तै० २।२।४।२] (२)—मीमांसाकार कहते हैं—"**श्रुतिलिङ्गवाक्यप्रकरण-स्थानसमाख्यानां समवाये पारदौर्बल्यमथ विप्रकर्षात्**" ।। मी० ३।३।१४ ।। ये छः बातें नियन्त्रण करती हैं। "**श्रुति**" नियन्त्रण करेगी। कैसे? "**गो इति पृथिवीनामधेयम्**" निघण्टु १।१। "**गो चर्म—श्लेष्मा**" इसके लिये प्रमाण यास्क ने वेद का दिया है। इसी प्रकार सारे प्रकरण में "**ज्या**" आदि के लिए भी वेद के प्रमाण दिये हैं। इसी तरह लिङ्ग वचनादि के लिए भी समझ लेना। अब प्रकृत प्रकरण को लीजिये—"**स्थूरं राधः शताश्वं कुरुङ्गस्य दिविष्टिषु। राज्ञस्त्वेषस्य सुभगस्य रातिषु तुर्वशेष्वमन्महि ।।**" [ऋ० ८।४।१९] यहां पर नियन्त्रण ऐसे हैं—मैंने इसका अर्थ राजा और ईश्वरपरक किया था। "**चोष्कूयमाणः**"=दान देनेवाला, और "**चोष्कूयते**"=काटता है, ऐसा अर्थ यास्क ने किया है। आगे शासन करने वाला राजा कैसा हो "**सुमत्**" अर्थात् स्वयं जिसको प्रजा अनुमोदन करे, वह राजा होना चाहिए। "**राजा हि कं भुवनानामभिश्रीः**" [ऋक् १।९८।१] श्रुति में राजा शब्द परमात्मा के लिए आया है। इसलिए मैं परमात्मा अर्थ राजा शब्द का करता हूं। राजा का राजा अर्थ तो श्रुतियों में सैकड़ों बार आता है। आप कुल्हाड़ा अर्थ के लिए श्रुति बतलायें? श्रुति में कुरुङ्ग के लिए कुल्हाड़ा कहां आता है? आप पर क्या नियन्त्रण है? परमात्मा और राजा के लिए ऋषि शब्द वेद में आता है। —"**धीभिः सातानि काण्वस्य वाजिनः प्रियमेधैरभिद्युभिः। षष्टिं सहस्रानु निर्मजामजे निर्यूथानि गवामृषिः।**" [ऋक् ८।४।२०] परमात्मा के लिए ऋषि शब्द का प्रयोग—"**अहं मनुरभवं सूर्यश्चाहं कक्षिवां ऋषिरस्मि विप्रः। अहं कुत्समार्जुनेयंन्यृञ्जेऽहं कविरुशना पश्यत**

मा" ।। [ऋक् ४।२६।१] यदि आप यह कहें कि यह तो वामदेव ऋषि कह रहा है, तो इसके लिए अगला मन्त्र देखिये—"अहं भूमिमददामार्यायाहं वृष्टिं दाशुषे मर्त्याय अहमपो अनयं वावशाना मम देवासो अनु केतमायन्" । [ऋक् ४।२६।२] यह बातें परमात्मा ही कर सकता है । यह सब नाम मुख्य तो परमात्मा के ही हैं, गौणरूप से औरों के भी हैं । आप कुल्हाड़े के लिए ऋषि और राजा शब्द बतलायें । यदि आप दिखा दें, तो हम आपका अर्थ मान लेंगे । परन्तु आपका इतिहास तो उड़ ही जायेगा । हमने वेदमन्त्र ऋषि शब्द और राजा शब्द के लिए पेश कर दिये । आप किसी को वेदान्तमत और मीमांसामत कह कर टाल नहीं सकते । अच्छा वेद से ही सिद्ध करो । ऐतिहासिक पक्ष को मानकर आपको सैकड़ों मन्त्र मन्सूख करने पड़ेंगे । जैसे—"कण्वः कक्षीवान् पुरुमीढो अगस्त्यः श्यावाश्वः सौभर्यर्चनानाः । विश्वामित्रोऽयं जमदग्निरत्रिरवन्तु नः कश्यपो वामदेवः ।। विश्वामित्र जमदग्ने वसिष्ठ भरद्वाज गोतम वामदेव" । (अथर्व १८।३।१५।१६) । हे गौतम वसिष्ठादि ! मेरी रक्षा करो । तो वह ऋषि तो मर गये, वह रक्षा कैसे करेंगे ? कल पंडित जी ने कहा था कि विशेषणवाचक शब्द सब यौगिक हैं, इससे तो सारे शब्द यौगिक हो गये, क्योंकि विशेष्य भी विशेषण बन जाते हैं । यह भी कहा था कि विशेषण विशेष्य भी हो जाते हैं । तब क्या वह यौगिक रहते हैं या नहीं ? तब क्या उनका धात्वादि बदल जाता है ? इस बात का सप्रमाण निरूपण करें ।

शास्त्रार्थ के प्रधान श्री महात्मा हंसराज जी—

अब एक पक्ष के दो वक्ता बोल चुके हैं, अब दूसरे पक्षवाले बोल लें । यदि इसी पक्षवाले बोलना चाहें, तो जो कुछ कहा गया, उसे Repeat न करें । यदि आप उत्तर देना चाहें, तो आपको खुला समय दिया जाय । यही अच्छा मालूम होता है कि अब आप उत्तर दे देवें ।

श्री पण्डित चारुदेव जी शास्त्री एम० ए०—

सब बातों का इकट्ठा खण्डन हो, पहिले इन्हें बोल लेने दीजिये ।

शास्त्रार्थ के प्रधान श्री महात्मा हंसराज जी—

आपको पूरा वक्त मिल जायगा ।

श्री पण्डित चारुदेव जी शास्त्री एम० ए०—

पण्डित भगवद्दत्त जी के बोलने के बाद मैं बोलूंगा ।

शास्त्रार्थ के प्रधान श्री महात्मा हंसराज जी—

आपका और पंडित भगवद्दत्त जी का शास्त्रार्थ हम अलग करा सकते हैं ।

श्री पण्डित विश्वबन्धु जी शास्त्री एम० ए०—

पंडित प्रियरत्न जी को बोलने के लिये समय देना चाहिये ।

श्री पण्डित चारुदेव जी शास्त्री एम० ए०—

यदि कोई एक घण्टा भर अप्रकृत बात करता रहे, तो उससे हमें क्या ? मध्यकालीन प्रयोग अशुद्ध है । हम अशुद्ध प्रयोग [नहीं करेंगे] । मैं प्रकृत का अनुसरण करूंगा । कल बहुत बल दिया गया कि स्कन्द और दुर्ग का यह सिद्धान्त है कि वेद में इतिहास नहीं है । माध्यमिक लोग स्कन्द महेश्वर दुर्गादि अशुद्ध अर्थ करते रहे

हैं। हमें मूल का अनुसरण करना चाहिये। मैं इस समय सारी विद्वत्सभा में कहता हूं कि भगवान् यास्क कहां कहता है कि ऐतिहासिक पक्ष सत्य है? ऐसा वह क्यों नहीं कहता? वह सब मतों का संग्रह [करता] है। जहां पर वह निरुक्तपक्ष देता है, वह भी समुच्चय है। बार-बार नित्यपक्ष कहा जाता है। भगवान् यास्क कहते हैं कि वर्षा होती है। क्या प्रतिक्षण वर्षा होती रहती है? क्या बिजली सदा होती रहती है? और क्या विद्युत् नित्य है? नहीं, प्रकृति, आत्मा और परमात्मा ही नित्य हैं। यह स्थूल सांसारिक पदार्थ कैसे नित्य हो सकते हैं? जिन लोगों ने नित्य माना, उन्होंने वर्षा दिखा दी, तो इसमें महिमा क्या नहीं है? जो बार-बार कहा जाता है कि टीकाकार यह कहते हैं, और वह कहते हैं, [किन्तु]—"**यो जात एव प्रथमो मनस्वान् देवो देवान् ऋतुना पर्यभूषत्। यस्य शुष्माद्रोदसी अभ्यसेतां नृम्णस्य मह्ना स जनास इन्द्रः**"। [ऋ० २।१२।१] इस पर दुर्ग कहता है—"**अतश्च दर्शयति मन्त्राणामैतिहासिकोऽप्यर्थं उपेक्षितव्योऽसावपि तेषां विषय इति**" [नि० १०।१०]। "**औपचारिकोऽयम्मन्त्रेष्वाख्यानसमयः**" इस प्रतिज्ञा को पूरा कहीं नहीं किया गया। आप इस पंक्ति का अर्थ कर देवें। भगवद्दत्त जी! आपका वैदुष्य परीक्षित होगा। यास्क क्यों नहीं इतिहास का खण्डन करता? "**मायेत्सा ते यानि युद्धान्याहः**" [ऋक् १०।५४।२] यहां "**माया**" का अर्थ "**बुद्धि**" कैसे होगा? पूर्वापर विचार का अर्थ करना चाहिये। कहा गया कि न वेदान्तियों को और न मीमाँसकों को मानते हैं। हम क्यों मानें? हम केवल वेद से ही सिद्ध करेंगे। वेदान्त में इतिहास माना गया है—"**युगान्तेऽन्तर्हितान् वेदान् सेतिहासान् महर्षयः। लेभिरे तपसा पूर्वमनुज्ञाता स्वयम्भु वा**"॥ [वेदान्त शाँकरभाष्य]। हम वेदान्तियों को कैसे मानें? वह हमारे पक्ष के विरोधी हैं। मीमांसा का पक्ष भी विलक्षण है। मीमांसक अपने प्रकार का नित्यत्व मानते हैं। अपौरुषेय होते हुए वर्ण तथा वर्णानुपूर्वी को भी नित्य मानते हैं। किन्तु महाभाष्यकार लिखते हैं—"**नहि छन्दांसि क्रियन्ते, योऽसावर्थः स नित्यः, या त्वसौ वर्णानुपूर्वी सानित्या, तद्भेदाच्चेतद्भवति काठकं कालापकं मौदकं पैप्पलादकमिति**"। [महा० ४।३।१०१]। अब बताइये कहां गया मीमांसकों का वर्णानुपूर्वी नित्यत्व पक्ष? यह सिद्धान्त ठहर नहीं सकता। बार-बार कहा जाता है, और मैं भी समझता रहा कि यास्क हमारे मन्तव्यों का पोषक है। मुझे तो यास्क सनातन-धर्मी प्रतीत होता है, वह अधिष्ठातृदेवतावाद को मानता है। उसने कहां माना है कि अग्न्यादि परमात्मा के नाम हैं? सारी द्वादशाध्यायी में कहीं दिखाओ कि अग्न्यादि परमात्मा के नाम हैं। हां Science of Language में परम प्रमाण है, परन्तु सिद्धान्तों में वह मान्य नहीं है। आप कहते कि पण्डित विश्वबन्धु जी ने यह अर्थ किया है, किया होगा, मैं नहीं मानता। "**सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च**" [ऋ० १।११५।१]। यास्क तीन देवता मानता है, फिर उनमें से एक सूर्य को ही प्रधान मानता हैं। इस पर अनुक्रमणी देखिये, वहां भी यही लिखा है कि यह सब सूर्य की ही महिमा हैं। निरुक्त केवल तीन ही प्रकार का अर्थ मानता है, वह हमारे पक्ष का पोषक नहीं।

शास्त्रार्थ महारथी श्री पण्डित बुद्धदेव जी मीरपुरी—

श्रुति से सिद्ध करो। 'आप राजा के सम्बन्ध में बताते हैं। "**न वयं राजानं पृच्छामः, कुरुङ्गं पृच्छामः**" हम राजा के सम्बन्ध में नहीं पूछते, कुरुङ्ग की बात पूछते हैं। आप कहते हैं कि यास्क ने गौ के अनेक अर्थ किये हैं। वहां व्युत्पत्ति के आश्रय से किये हैं, परन्तु वहां यास्क ने सबकी व्युत्पत्ति नहीं की। "**अथापि स्नाव च श्लेष्मा च**" [निरुक्त २।५]। यहां पर व्युत्पत्ति नहीं की। इससे सिद्ध है कि व्युत्पत्ति पीछे और अर्थ पहिले—"**अर्थभेदे व्युत्पत्तिभेदः**"। यास्क मानता है कि वेदके शब्द बोले जाते हैं। कौत्स को उत्तर देता हुआ कहता है—"**अर्थवन्तः शब्दसामान्यात्**" [निरुक्त १।१६]। उस समय आचार्य जिस अर्थ में समझते थे, वही अर्थ यास्क ने कर दिया, यही प्रवृत्ति का निमित्त है। आप "**भूरिति व्याहरन्**" पढ़ कर कह देते हैं कि परमात्मा ने शब्दों के अर्थ बताये। परन्तु यह भी तो बताइये कि कैसे बताये? केवल आप यह मन्त्र "**देवो देवानां गुह्यानि नाम आविष्कृणोति**

र्बहिषि प्रवाचे" [ऋक् ६।६५।२] पढ़ देते हैं, और कह देते हैं कि परमात्मा ने देवताओं के गुह्य नाम प्रकट किये। किन्तु कैसे किये ? यह आप नहीं बताते। यह बार-बार कहा जाता है—"**छन्दसि लुङ्लङ्लिटः**" [अ० ३।४।६] यह पाणिनि ने कहा है कि वेद में ऐसा है। आपको किसने यह अधिकार दिया कि आप इस सूत्र को यास्क पर भी लगायें, और "**बभूव**" का अर्थ "**भवति**" कर देवें ? आप कहते हैं कि ऋषि लोग छान्दस प्रयोग करते है। परन्तु "**बभूव**" तो छान्दस प्रयोग नहीं है। यह तो दोनों में समान प्रयोग है, यह लौकिक प्रयोग भी है। इन सब बातों का सम्यक् विचार करिये। मैं वैदिक लोगों को चैलेंज करता हूं—"**य ईं चकार न सो अस्य वेद य ईं ददर्श हिरुगिन्नु तस्मात्। स मातुर्योना परिवीतो अन्तर्बहुप्रजा निर्ऋतिमा विवेश**" [ऋक् १।१६४।३२]। इस मन्त्र में देवता कौन है ? इसे आज बता करके जायें।

शास्त्रार्थ के प्रधान श्री महात्मा हंसराज जी—

देवतावाची जो निरुक्त में आये हैं, क्या वह देवताविशेष के नाम हैं ?

श्री पण्डित चारुदेव जी शास्त्री एम० ए०—

हां।

श्री पण्डित भगवद्दत्त जी रिसर्चस्कालर—

पण्डित चारुदेवजी बोले, आपने उठते ही बोला कि यदि कोई आदमी एक घण्टा अप्रकृत बात करता रहे, तो उससे हमें क्या ? आपने कोई दलील नहीं दी, आपका दावा बेदलील खारिज। पण्डित गुरुदत्त जी ने बतलाया कि शिवसंकल्प आदि पदवियां हैं, इस तरह से बड़ी अद्‌भुत बातें कहीं। आप कहते हैं कि सारी द्वादशाध्यायी निरुक्त में अग्न्यादि परमात्मा के कहीं नाम नहीं। निरुक्त के विषय में द्वादशाध्यायी नाम कैसे चला ? यह पहली बार दुर्ग ने चलाया है। मैं चैलेंज करता हूं कि दुर्ग चौदह अध्यायों को ही बारह अध्याय में मानता है। क्योंकि दुर्ग ने अगले अध्यायों के प्रमाण दिये हैं। निरुक्त ने अपना मौलिक विषय तीन प्रकार के देवताओं से समाप्त किया है। यास्क ने अग्न्यादि परमात्मा के नाम हैं, इसका खण्डन नहीं किया। यास्क को जहां पर अग्न्यादि परमात्मा के नाम हैं, ऐसे निरूपण की आवश्यकता नहीं पड़ी, वहां नहीं किया। अन्त में वह यास्क परमात्मा अर्थ करता है—"**अथेमा अति स्तुतयः**" नि० अ० १३।१। वहां मन्त्रों के मन्त्रों में ईश्वर का वर्णन है। ठीक इसी प्रकार यास्क की प्रक्रिया का सहारा लेकर स्वामी जी ने अर्थ किया है। सांख्य के अनुसार पुरुष कूटस्थ नित्य हैं, और प्रकृति परिणामिनी नित्य है। हमने जो कहा कि वर्षादि नित्य हैं, हमारा मतलब है कि प्रवाहरूप से नित्य हैं। आप कहते हैं कि वर्षा का वर्णन आने से महत्त्व क्या हुआ ? यह प्रश्न वेद पर है, मुझ पर नहीं। इतना बताये देता हूं कि वहां पर वर्षा के अनेक प्रकार के सिद्धान्तों का वर्णन है। पण्डित बुद्धदेवजी ने वेदमन्त्र से कहा था कि परमात्मा ने गुह्य नामों को प्रकट किया, यह भी आपका एतराज वेद पर है। कठ संहिता में आया है—"**तस्माद् ब्राह्मणा उभयीं वाचं वदन्ति या च देवानां या च मनुष्याणाम्**"। तथा [मै० १।११।५]। आरम्भ से दोनों भाषायें मौजूद थीं। पण्डित जी आगे यह कहते हैं कि यह महाभाष्य में लिखा है। वहां "**तेन प्रोक्तम्**" [अ० ४।३।१०१।] सूत्र पर "**ग्रामे-ग्रामे काठकं कालापकं च प्रोच्यते, नित्यानि छन्दांसि, नहि छन्दांसि क्रियन्ते**" [पाठ है]। सूत्र है—"**दृष्टं साम**" [अ० ४।२।७] मन्त्र दृष्ट हैं प्रोक्त नहीं, शाखायें प्रोक्त हैं। मन्त्र है—"**यस्तित्याज सचिविदं सखायं०**" [ऋक् १०।७१।६], शाखा में इसी जगह "**सखिविदं**" पाठ है। इसी प्रकार भाष्यकार "**मतौ छः सूक्तसाम्नो**" [अ० ५।२।५९] सूत्र पर लिखते हैं कि वर्णानुपूर्वी नित्य है, मन्त्र दृष्ट हैं। शाखायें ब्राह्मण और कल्पसूत्र सब

प्रोक्त हैं। आगे पण्डित जी ने बड़े दावे से कहा कि—"**बभूव**" का अर्थ "**भवति**" नहीं हो सकता। फिर कहते हैं कि "**भवति**" का अर्थ "**अस्ति**" है। कुत्स ऋषि होता है, उस मन्त्र का अर्थ उसने देखा और प्रचार किया, उसने अपना नाम कुत्स रख दिया। आप कहते हैं कि यास्क सनातनधर्मी है। परन्तु मैं पूछता हूं कि क्या रथ, खलूखल मुसलादि चेतन हैं ? यास्क कहता है—"**माहाभाग्याद् देवताया एक आत्मा बहुधा स्तूयते, एकस्यात्मनोऽन्ये देवाः प्रत्यङ्गानि भवन्ति**" [नि० ७।४]। सारे ऋषि-मुनि ब्रह्म को मुख्य देवता मानते हैं। यास्क के मत में और देवताओं का वर्णन करते हुए ब्रह्म अभिप्रेत है। आप कहते हैं कि "**कुरुङ्ग**" को पूछते हैं राजा को नहीं। इसका उत्तर दे दिया गया। जो रही-सही है, वह अब लीजिये। इस समय जितने निरुक्त हस्तलिखित ग्रन्थ मिलते हैं, वह पांच सौ वर्ष तक पुराने हैं। स्कन्द ६३० सन् में हुआ, दुर्ग हम से तेरह-चौदह सौ वर्ष पुराना है। उसके पास भी पुराने कई Mess थे। "**चत्वारो वर्णाः निषादः पञ्चम इत्यौपमन्यवः। निषादः कस्मात् निषदनो भवति, निषण्णमस्मिन् पापकमिति नैरुक्ताः**" [नि० ३।८]। दुर्ग ने जो अर्थ किया वह इस वाक्य का अर्थ नहीं है। दुर्ग का वाक्य है—"**निषद्य-निषद्य हन्तीति**" [नि० दुर्ग टीका पृष्ठ २२३]। यह मेरा सिद्धान्त है कि दुर्ग Text सब से अच्छी है। उसने "**कुरुङ्गो राजा बभूव**" [नि० ६।२२] में "**बभूव**" पाठ नहीं रक्खा। आगे "**ऋषिर्नाभाको बभूव**" [नि० १०।५] पाठ भी दुर्ग की टीका में नहीं मिलता। "**कुशिको राजा बभूव**" [नि० २।२५] में भी "**बभूव**" पाठ नहीं है। ऋग्वेद के अन्दर बहुत-सी दान-स्तुतियां हैं, उनमें एक यह हैं। उनमें सर्वानुक्रमणी की परिभाषा के अनुसार "**प्रायेणैन्द्रे मरुतः राज्ञां च दान-स्तुतयः**" [सर्वा० उपो० २२-२३]। इन्द्र के सूक्तों में ही प्रायः राजा के दान की स्तुति आती है। ऋ० ८।२४। मं० २८-३० इन्द्र देवता, एक ऋषि या राजा की स्तुति लिखा है। आखिर कात्यायन ने अर्थ तो नहीं किया, यही तो लिखा है—"**कुरुङ्गस्य दानस्तुतिः**" देवता है। एक और मन्त्र का [ऋ० ८।२४।२८-३०] देवता सर्वानुक्रमणीकार दानस्तुति लिखता है। बृहद्देवता में उसी मन्त्र का "**उषा**" देवता लिखता है। इसका मतलब यह है कि इन्द्र राजा को कहा जाता था। वेद जो अनादि ग्रन्थ हैं, उनमें पहिले इन सूक्तों का देवता इन्द्र था। पीछे से किसी राजा ने मन्त्र से देखकर अपना नाम कुरुङ्ग रख लिया। पीछे अनुक्रमणी ने "**कुरुङ्गस्य दानस्तुतिः**" ? लिख दिया। मैंने मन्त्र से देखकर अपने पुत्र व पुत्री का नाम क्रमशः सत्यश्रवाः और सूनृता रखा। मन्त्र पहले से मौजुद थे, पीछे से अनुक्रमणी बनी। किन्तु आपका सिद्धान्त यह मालूम होता है कि वेद पीछे से हुआ। मीमांसाकार मानता है कि कोई न कोई रूल अवश्य होना चाहिये। इसको (=वेद को) सेन्द्रिय नहीं बना सकता। इसका बनानेवाला कोई अतीन्द्रिय होना चाहिये। इसीलिये यास्क ने कहा है—"**पुरुषविद्यानित्यत्वात् कर्मसम्पत्तिर्मन्त्रो वेदे**" [नि० १।२]। इससे प्रतीत होता है कि वह भी वेद को नित्य मानता है।

पण्डित चारुदेव जी ने मुझ पर प्रश्न किया था, उसका उत्तर अब वह ले लेवें। यास्क १०।१० में लिखता है—"**ऋषेर्दृष्टार्थस्य प्रीतिर्भवति आख्यान-संयुक्ता**"। इसका सरल अर्थ यह है कि—"ऋषि की, देखा है अर्थ जिसने, प्रसन्नता होती है, जब उसके साथ कथा संयुक्त होती है।" इससे प्रतीत होता है कि मन्त्रों में आख्यान संयुक्त नहीं होता, किन्तु अर्थ में होता है। इस पर **दुर्ग** कहता है—"**ऋषेर्दृष्टार्थस्य" अनुभूतेन्द्रमैत्रस्येन्द्रवयस्यस्य गृत्समदस्य इन्द्रं प्रति "प्रीतिः" तुष्टिः "भवति आख्यान-संयुक्ताः" आख्यान-सम्बन्धात्**"। **अतश्च दर्शयति मन्त्राणामैतिहासिकोऽप्यर्थः उपेक्षितव्योऽसावपि तेषां विषयः**" [दुर्ग टीका पृष्ठ ८३४]। सिद्धात की बात यूं ही नहीं उठानी चाहिये। अगर सिद्धान्त ठीक है, तो हमको लगाना चाहिये। आपकी समझ में स्वामी जी ने इनका अर्थ लगाया है या नहीं ? दुर्ग की टीका में "**अपि**" शब्द लिखा है।

इस प्रकार अब यह शास्त्रार्थ की पांचवीं बैठक समाप्त होती है।

(शास्त्रार्थ की छठी बैठक प्रारम्भ, दिनांक २०-५-१९३१ ई०)

(समय : सायंकाल)

श्री स्वामी सर्वदानन्द जी महाराज—

यह जो विचार हो रहा है, यह वैसे नहीं होना चाहिये, जैसे आर्य समाज और सनातन धर्म का होता है। एक ही विषय पर तीन दिन गुजर गये हैं। परन्तु अभी तक निर्णय नहीं हो पाया। संभव है कि अगला विषय शुरू कर दिया जाय, तो यह भी स्पष्ट हो जाय। आर्यसमाज का सिद्धान्त है कि **"वेद में इतिहास नहीं"**। यदि इतिहास माना जाय, तो वेदों का नित्यत्व नहीं रहता। स्वामी जी ने ऐसे अर्थ अनेक स्थलों पर किये हैं कि जहां संज्ञावाचक शब्द प्रतीत होते हैं, परन्तु वहां अर्थ नित्यत्व विषय के किये हैं। इसी प्रकार से पण्डित बुद्धदेव जी आदि ने भी अर्थ किये है। यदि व्यक्तिविशेषों का इतिहास माना जाय, तो इतिहास अवश्य ही उस पुरुष की मृत्यु के पीछे निर्माण हुआ मानना पड़ेगा। कई जगहों पर लक्षणा से अर्थ किये जाते हैं। स्वामी जी ने—**"यो जागार तमृचः कामयन्ते"** [ऋक् ५।४४।१४], इसके आगे **"अग्निर्जागार०"** [ऋक् ५।४४।१५] इत्यादि मन्त्रों का अर्थ करते हुए अग्नि किसी व्यक्ति विशेष का नाम नही बताया। यदि इतिहासपरक अर्थ हो, तो वेदों का सौन्दर्य नष्ट हो जाता है। आप इनका सौन्दर्य स्थापित करें। ऐसे इतिहास मानने से सौन्दर्य में गड़बड़ हो जाती है। आपको प्राचीन ऋषियों के मत का पोषण करना चाहिये। यदि इतिहास के रहते हुए नित्यत्व में कोई बाधा न हो, तो कोई हर्ज नहीं। अतः जहां मर्यादा बन सकती हो, वहां अव्यवस्था में जाना अच्छा नहीं। तीन दिन गुजर गये, इसलिये इसको कर लो। अधिक बात न कहकर जितनी बात सिद्धान्त से सम्बन्ध रखती है, उतनी ही बात कहकर निर्णय कर लो, और अगले विषय पर चलो।

श्री पण्डित भगवद्दत्त जी रिसर्चस्कालर—

अगर स्वामी जी कोई व्यवस्था बता दें, तो हम वह कर लें। हम तो समाज के भले के लिये ही खड़े हुए हैं।

श्री स्वामी नित्यानन्द जी महाराज—

जो बात स्वामी जी ने कही है, वह मैं भी मानता हूं। अगर इतिहास है भी, तो उससे निपटने का क्या मार्ग है? सभी आर्य हैं, धर्म की इच्छा से आये हैं। जो गृहस्थ हैं, वह बंध जाते हैं। परन्तु जो ब्रह्मचारी हैं, वह ज्यादा काम कर सकते हैं। ब्रह्मदत्त जी छोटी अवस्था से इसी प्रकार लगे हुए हैं। इसी प्रकार विश्वबन्धु जी और भगवद्दत्त जी लगे हुए हैं। इनको मिलकर ऐसा मार्ग निकालना चाहिये कि जिससे आर्यसमाज का कल्याण हो। वाद-विवाद हो, पर उसमें किसी पर जबरदस्ती न हो। दोनों में से किसी के मन पर आघात न हो। मैं प्रेम से यही कहूंगा कि ऐसा मार्ग ढूंढ़ें, जिससे आर्यसमाज का उद्धार हो। विशेषकर विश्वबन्धु जी तथा ब्रह्मदत्त जी, जो कि गृहस्थ नहीं हैं, वह अधिक (कार्य) कर सकते हैं।

शास्त्रार्थ के प्रधान श्री महात्मा हंसराज जी—

दो-तीन पण्डित इधर के और दो-तीन पण्डित उधर के हों, और उनकी एक सब-कमेटी बन जाये, और वह विचार ले। आप मिलकर किसी न किसी नतीजे पर बात को पहुंचा देवें, तो बड़ी अच्छी बात है।

श्री पण्डित भगवद्दत्त जी रिसर्चस्कालर—

परन्तु यह होना चाहिये कि जैसे पहले स्वामी जी में श्रद्धा थी, उन पर मखौल न किया जाय। जो बात समझ में न आवे, उस पर सोच लेवें।

शास्त्रार्थ के प्रधान श्री महात्मा हंसराज जी—

यह हमारी बदकिस्मती होगी, अगर आप जैसे पण्डित बैठकर मखौल करें।

श्री पण्डित भगवद्दत्त जी रिसर्चस्कालर—

मैंने कहा था कि जब समाज बना, तब स्वामी जी पर बड़ी श्रद्धा थी।

श्री पण्डित विश्वबन्धु जी शास्त्री एम० ए०—

मैं डिक्शनरी का काम छः-सात वर्षों से कर रहा हूं। उसकी भूमिका में मैंने स्वामी जी के सम्बन्ध में जो भाव प्रकट किये हैं वह मैं यहां सुनाना नहीं चाहता। मैंने जो लिखा है, अगर मैं उसे सुनाऊं तो पता लगेगा कि किस तरह नास्तिकता के आरोप लगाये जाते हैं। मैंने वहां क्या लिखा है? यहां तो यास्क पर शास्त्रार्थ है कि यास्क क्या मानता है? वह वेद में इतिहास मानता है या नहीं? मेरे "वेद सन्देश" में मेरा सिद्धान्त है, परन्तु सदा बड़े-बड़े आदमी कहते हैं कि ब्राह्म महाविद्यालय नास्तिकों से भरा हुआ है। कोई नारायण स्वामी जी को कहता है, कोई किसी को कहता है। सो यह प्रवाद खामख्वाह फैलाया जा रहा है। इससे प्रेम का मार्ग नहीं निकलता। मैंने "वेद-सन्देश" के चतुर्थ भाग में एकेश्वरवाद को स्थापन करने की चेष्टा की है, चाहे सफल हुआ या नहीं। परन्तु जो उसे पढ़ेगा, उसकी दाद देगा। मैंने आरम्भ में यह श्लोक दिये हैं—

वृत्तं यत्त्रिषु वर्णनं सुकतुकं कायात्मचेतोनुगं, आत्तस्तत्कृपया तवैव भगवन् भागश्चतुर्थोऽप्ययम्।
एतत्पाठविधूतसंशयमला सर्वे सुगुप्ता किल, पूज्येशे त्वयि बद्धपेशलधियस्तत्वे रताः स्युः सदा ॥१॥

अस्तीति प्रवदन्ति केवलगिरा लोके मनुष्याः प्रभुम्, यत् सत्यं न विदुः प्रतीतिविषयं यार्थाथ्य सन्धानतः।
तस्माद्वादविवादकौशलततिः संहारदुक्षाः किल, ज्ञाज्ञानां सममेव दुःखकरणे कोलाहले कारणम् ॥२॥

वेदे केचिदाहुरर्थविलयं मायाविनि ब्रह्मणि, नानादेवविधानवादविधुरा अन्ये भ्रमेयुर्भृसम्।
सत्यासत्यविनिर्णयस्तु कठिनो वादाश्च वादाः किल, वेदाभ्यासततौ रतैव धिषणा वेदान्तसिद्धान्तगाः ॥३॥

विश्वेशो वितनोतु निर्मलधियां भूनायकानां रुचिः, सद्धर्मे विनये स्वकीर्त्तिविततौ विद्याप्रचारे शुभे।
न्याय्याचारविचारसाररुचिरा नीतिः सदा वर्धताम्, त्यक्त्वान्यव्यसनं श्रुतिव्यसनिनो विज्ञाः भवेयुर्जनाः ॥४॥

दस-बारह वर्ष में भी दो मिनट के लिए भी मिलकर विचार क्यों न किया जा सका? आर्य समाज के इतिहास में यह कान्फ्रेंस पहली है। जब शास्त्र का पता लग जावे, तब कमेटी द्वारा निर्णय करावें। यहां पण्डितों को स्वतन्त्रता होनी चाहिए कि वह शास्त्र को बतला सकें। Executive और gudiciary जुदा-जुदा होनी चाहिये। मैंने भी श्री नारायण स्वामी जी से यही कहा था कि प्रबन्ध अलग चीज है। **"आज विश्वबन्धु को दबा दोगे। ब्राह्म महाविद्यालय से निकलवा दोगे"** मुझे ब्राह्ममहाविद्यालय की चारदिवारी से मोह नहीं है। विश्वबन्धु, राजाराम क्या चीज हैं? सत्य नित्य चीज है। स्वामी दयानन्द होता और उसके सामने सत्य और वेद को रखा जाता, तो वह सत्य पर उंगली रखता। वह सत्य और वेद को पर्याय मानता था, इसीलिए वह वेद को मानता है। यदि भेद होता तो ऋषि दयानन्द सत्य को मानता, हमें भी ऐसे ही करना चाहिये। पूर्ण सत्य तो **परमात्मा है,**

"पूर्ण सत्य न किसी को मिला और न किसी को मिलेगा"। हम तो उन ६ अन्धों की तरह हैं। ऋषियों को एक-एक बात का साक्षात्कार हुआ। यदि आर्यों में भेद होता है, तो आंखों में फर्क पड़ जाना है। शास्त्र के सिर पर पालिसी को मत रखो।

शास्त्रार्थ के प्रधान श्री महात्मा हंसराज जी—

आपका मतलब है कि आपका विचार हो जावे, फिर (एक्जीक्यूटिव) Executive बैठे।

श्री पण्डित ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु—

(हठात्)[१] मैं एक विचार रखता हूं कि यदि हम सबका आत्मा से यह अभिप्राय हो कि स्वामी दयानन्द की प्रक्रिया का ढंग ठीक है, और उसमें हमारा विश्वास है, तब उस अवस्था में हमारे मन वचन कर्म से कोई बात हमारे द्वारा ऐसी नहीं होनी चाहिए जिससे आर्य समाज को हानि पहुंचे। परन्तु जैसे मैं यहां प्रायः देखता रहता हूं कि सब छोटे-बड़े के सामने यह बातें घृणित रूप से रखी जाती हैं, जिसका परिणाम बहुत बुरा होता है। यह ठीक है कि मनुष्य सर्वज्ञ नहीं, किन्तु यह बातें अधिकारी को ही कहनी चाहिए, जिससे आर्यसमाज पर लांछन न लगे। हमने जो दो-चार अक्षर पढ़े हैं, उनके अनुसार हम आत्मा से ठीक समझकर मानते हैं कि जो कुछ स्वामी दयानन्द ने लिखा है, वह ठीक लिखा है। वह बात तो समाज के विरुद्ध कहीं भी न कही जावे, तब तो ठीक है। यदि पढ़ाने में विद्यार्थियों में बातचीत में अथवा लेक्चर देने में समाज पर कटाक्ष किये जायें, तो महर्षि दयानन्द में व समाज में अश्रद्धा फैलेगी, और हानि पहुंचेगी। जब ऐसा हो कि स्वामी जी के दखिलाफ अखबारों में लिखा जाये, स्वामी दयानन्द और आर्यसमाज के विषय में खिल्ली उड़ाई जाये, विद्यार्थियों में ये बातें कही जायें, तो यह बात सहन नहीं की जा सकती। ईमानदारी हमारी इस बात में है कि विरुद्ध बात मानने पर हम साफ कह दें, और आर्यसमाज से फिर भी प्रेम करते रहा करें। कोश के सम्बन्ध में लाहौर समाज के उत्सव पर मैंने स्वयं इनके स्थान पर जाकर बड़े प्रेमपूर्वक इनसे निवेदन किया कि आप जरा अपने ढंग को बदल लें। **"आपने सोलह पृष्ठ में स्वामी दयानन्द के अर्थ पर सत्रह चिन्ह लगाये, और महीधर की उतने ही स्थल में केवल एक दो स्थानों पर भूलें सूझी हैं"**। यह बातें यदि मुसलमानों आदि के हाथों पड़ जायें तो वह आर्यसमाज के विरुद्ध शोर मचायेंगे। मैंने यह भी कहा कि उचित बात यह है कि दस पांच विद्वानों के सम्मुख, जिनको आर्यसमाज उचित समझें, वह बातें रख दिया करें। यदि आपको कोई बात नहीं सूझती, तो सम्भव है कि उनको सूझ जायें। यदि उनको भी न सूझें, तो औरों को भी भेजा जा सकता है।

ऋषि दयानन्द हम लोगों की अपेक्षा अधिक विद्वान् थे, उनके मार्ग को दूषित न करें। मैंने यह बात उनसे कही। **श्री स्वामी सर्वदानन्द जी मुझे साथ लेकर उनके पास गये।** उस समय पंडित विश्वबन्धु जी ने कहा कि यदि "**पचास**" में उनन्चास पण्डित कुछ कह दें, तब भी यदि विश्वबन्धु की समझ में नहीं आयेगा तो, वह नहीं मानेगा। मैं यह चाहता हूं अगर कोई ऐसा मार्ग निकल आवे, तो बड़ा अच्छा होवे। यह विचार मिलकर हो,

---

टिप्पणी—

[१] पंडित ब्रह्मदत्त जी को मना किया था कि आप साथ न चलें आप चलेंगे तो झगड़ा हो जायेगा। पंडित ब्रह्मदत्त जी ने प्रतिज्ञा की कि मैं बोलूंगा ही नहीं। पर ऐसा न हुआ उनके कारण झगड़ा हुआ। श्री स्वामी सर्वदानन्द जी अपने साथ पंडित अमर सिह जी (शास्त्रार्थ केशरी) और पंडित देवप्रकाश जी दोनों को हीं लेकर गये थे।

निवेदक—"**अमर स्वामी सरस्वती**"

मगर आचार्य दयानन्द को साथ लेकर चलना होगा यह पहली बात है। विचार चाहे जैसे भी हो। अन्यथा दयानन्द की स्थिति ठीक नहीं रह सकती। किसी बात में समाज पर हर्फ नहीं आना चाहिये। अगर नया मार्ग चलाना चाहें, तो समाज में ऐसे भी व्यक्ति हैं, जो इसको रोकने का प्रयत्न करेंगे।

शास्त्रार्थ के प्रधान श्री महात्मा हंसराज जी—

जिस भाव से यह सम्मेलन हुआ, मैं अन्त में उन बातों का विस्तार से जिक्र करूंगा। इस समय जो स्वामी सर्वदानन्द जी ने कहा, और स्वामी नित्यानन्द जी ने अनुमोदन किया उस विषय में कुछ कहना चाहता हूं। दो पक्ष हैं—एक यह कि बहुत से पण्डित कहते हैं कि—**"वेद में इतिहास नहीं"** किन्तु दूसरे कहते हैं कि **"हमारी Study स्टडी से हमें इतिहास मालूम होता है"**। एक यह पोजीसन है कि निरुक्त इतिहास मानता है। दूसरा पक्ष यह भी है कि वह भी नहीं मानता, परन्तु स्वामी जी निरुक्त को मुख्य नहीं मानते, चाहे वह उसका आदर करते हैं। वेद को वे मानते हैं। ब्राह्मण ग्रन्थों की भी कई बातें स्वामी जी ने नहीं मानी। इसीलिए यह जरूरी नहीं कि वह भी बातें मानी जायें, जो कि समाज के सिद्धान्त के विरुद्ध आती हों।

प्रश्न यह है कि वेद मन्त्रों में इतिहास है कि नहीं? इतिहास मानने पर वेद को नित्य नहीं मान सकते। जिनके नाम हैं, वेद उनके पीछे के मानने पड़ेंगे। वा हमें इन्जील, कुरान और भविष्य पुराण की तरह की पोजीशन लेनी पड़ेगी। इस पहलू में समाज को प्रचार बन्द कर देना पड़ेगा। ऐतराज हर एक के दिल में आते हैं, परन्तु यत्न करने पर उनका समाधान हो जाता है। मैं स्वामी जी का तात्पर्य यह समझा हूं कि दो-दो पण्डित दोनों पक्षों के विचारकों के हों, वह मिलकर विचार करें। बीच में श्री नारायण स्वामी जी वा श्री स्वामी सर्वदानन्द जी हों। यदि वह किसी नतीजे पर पहुंच जावें, तो इससे अधिक खुशकिस्मती नहीं। नहीं तो वह सभा में आकर कह देवें कि हम नतीजे पर नहीं पहुंचे। यदि इस तरह तीन स्थल भी हल हो जावें तब भी ठीक है। नहीं तो समाज भी चलता रहेगा और Individuals भी चलते रहेंगे। आप इसी Proposal पर agree करते हैं, वा नहीं? यदि आप agree करते हैं, तो ऐसा कर लिया जावे।

प्रिंसिपल श्री लाला देवीचन्द जी एम० ए०—

क्या आपका विचार है कि इस विचार को अब समाप्त कर दिया जाये?

शास्त्रार्थ के प्रधान श्री महात्मा हंसराज जी—

मेरा मतलब इन मन्त्रों के सम्बन्ध में है। यह विचार कर लें, और फिर यदि मन्त्र का अर्थ स्पष्ट कर देवें, तो अच्छा है। और बाकी पण्डित निरुक्त पर विचार करते रहें।

प्रिंसिपल श्री लाला देवीचन्द जी एम० ए०—

निर्णय जल्दी नहीं हो सकता। इसके लिए दिन चाहियें।

शास्त्रार्थ के प्रधान श्री महात्मा हंसराज जी—

मन्त्रों का अर्थ निश्चय किया जाय। मैं तो कहता हूं कि सारे पण्डित मिलकर विचार करें, तो अच्छा है।

प्रिंसिपल श्री लाला देवीचन्द जी एम० ए०—

इसके लिए टाइम चाहिए।

श्री महात्मा नारायण स्वामी जी महाराज—

आज का नतीजा अच्छा निकले, तो कल के विचार के लिए बहुत समय दिया जायेगा ।

प्रिंसिपल श्री लाला देवीचन्द जी एम० ए०—

चन्द पण्डितों के बाहर चले जाने पर बाकी के पण्डित क्या करेंगे ?

शास्त्रार्थ के प्रधान श्री महात्मा हंसराज जी—

चारुदेव जी को सबका प्रतिनिधित्व मिल जायेगा । किन्तु यह बतायें कि वेद में इतिहास है या नहीं ?

श्री पण्डित चारुदेव जी शास्त्री एम० ए०—

मेरा यह पक्ष नहीं । मैं वेद में इतिहास नहीं मानता ।

शास्त्रार्थ के प्रधान श्री महात्मा हंसराज जी—

मेरा हृदय गद्गद हो गया ।

प्रिंसिपल श्री लाला देवीचन्द जी एम० ए० —

पंडित विश्वबन्धु जी को सन्देह है । पंडित राजाराम जी ने कह दिया है कि वेद में इतिहास नहीं है ।

शास्त्रार्थ के प्रधान श्री महात्मा हंसराज जी—

मुझे यह जानकर प्रसन्नता है कि वे वेद में इतिहास नहीं मानते ।

प्रिंसिपल श्री लाला देवीचन्द जी एम० ए० —

जब तक सन्देह है, प्रचार नहीं करना चाहिए । हां यदि यह निश्चय हो गया तो फिर प्रचार करें ।

शास्त्रार्थ के प्रधान श्री महात्मा हंसराज जी—

पांच या छः मन्त्रों में इतिहास की झलक आती है । आप दोनों पक्ष के पण्डित लोग मिलकर निरुक्त के सहारे या बिना भी, मन्त्रार्थ निर्णय करके बता दें । निरुक्त के मुत्तालिक भी विचार हो, और वेद के लिए अलग विचार हो जाये । मेरा विचार है कि अब विचार प्रारम्भ किया जाये, तो अच्छा है ।

श्री पण्डित भगवद्दत्त जी रिसर्चस्कालर—

मेरा विचार है कि कल तक तो ऐसे ही विचार चले । कुरुङ्ग का पता चल जाये, तो अच्छा है ।

शास्त्रार्थ के प्रधान श्री महात्मा हंसराज जी—

उस तरह कमेटी करने से लाभ होगा या नहीं ?

श्री पंडित भगवद्दत्त जी रिसर्चस्कालर—

मैं बड़ा फायदा समझता हूं, किन्तु पहले कसौटी तय कर लें।

शास्त्रार्थ के प्रधान श्री महात्मा हंसराज जी—

दोनों पक्ष वाले समझते हैं कि यदि किसी भी स्थल में दोनों का इत्तिफाक हो तो अच्छा है।

श्री पण्डित भगवद्दत्त जी रिसर्चस्कालर—

इसके लिये दो महीने तक पांच-छः पण्डित लोग विचार करें, और रोज चार-पांच घण्टे विचार होना चाहिये, और अपने पास लिखें, फिर रिजल्ट (परिणाम) देवें।

श्री पण्डित ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु—

पहले कसौटी का निर्णय होना चाहिये।

शास्त्रार्थ के प्रधान श्री महात्मा हसंराज जी—

हां कसौटी का निर्णय और कर लिया जाये।

प्रिंसिपल श्री लाला देवीचन्द जी एम० ए०—

मैं पण्डित भगवद्दत्त जी की ताईद करता हूं। यह सवाल बड़ा मुश्किल है, इस पर विचार अवश्य होना चाहिये।

महामहोपाध्याय श्री पण्डित आर्यमुनि जी—

मेरे विचार में जो बात विशद रूप से निश्चित् न हो, जब तक सिद्धान्त का निश्चय न हो, तब तक उस प्रकार के विचार का लाभ कुछ नहीं होगा। ऋग्वेद में ब्रह्म शब्द ईश्वर के मायने (=अर्थ) में स्वामी जी के भाष्य में मिलेगा। दयानन्द के तटस्थ होने पर भी मैं इसलिये मानता हूं कि वेद के लिये शास्त्र शब्द आया है। और शंकर ने ब्रह्म के विषय में "**शास्त्रयोनित्वात्**" [वेदा० १।१।३] सूत्र पेश किया है। फिर इसके लिये Reason (रीजन) दिया है। "**जन्माद्यस्य यतः**" (वेदा० १।१।२) यह खूबी है। इसी प्रकार की खूबियां महर्षि दयानन्द में हैं। उन्होंने निरुक्त के आधार पर ही "**ब्रह्म**" का अर्थ "**ईश्वर**" किया है। एक महाशय ने कहा था कि यास्क सनातनी है, और साथ ही इतना महत्त्व देते हैं कि उसके आश्रय से इतिहास सिद्ध करते हैं। इस सिद्धान्त का निश्चय विशद रूप से हो जाना चाहिये। यदि इतिहास ही मानना है, तो वेद में राम, कण्वादि शब्द मौजूद हैं। मैं आपसे पूछूंगा कि ये रामादि कौन से हैं? कमेटी में यह बातें नहीं हो सकतीं। इसलिये सिद्धान्तों का निश्चय हो जाये, तब कोई कमेटी होनी चाहिये।

श्री पंडित विश्वबन्धु जी शास्त्री एम० ए०—

जो पण्डित ब्रह्मदत्त जी ने डिक्शनरी (कोश) के सम्बन्ध में कहा, उसमें जो पचास पण्डितवाली बात कही, उसके आधार पर चाणक्य की तरह व्रत धारण किया है। यह गलतफहमी पर Based है। मैंने कहा था कि इन चिह्नों का तात्पर्य सब जगह गलती नहीं हैं। बल्कि कहीं न समझ में आना, कहीं सन्देह, कहीं गलती भी है। मैंने उनसे कहा था कि आपकी बात में Practicability नहीं दीखती, क्योंकि आर्यसमाज के विद्वान् समय

नहीं देते, पत्र लिखने पर उत्तर नहीं देते। और साथ ही मेरा भी अधिकार है। यह सार है उस बातचीत का। फिर सर्वदानन्द जी आये, तब भी पण्डितों की लिस्ट के सम्बन्ध में बातचीत हुई। मैंने कहा—जब मैं डिक्शनरी एडिट करता हूं, तब मेरी जिम्मेवारी है। इसलिये प्रधानता मैं अपनी राय को ही दूंगा। मैंने यत्न किया कि और भी मेरे साथ सहयोग करें। पहला एडिशन समालोचना के लिये छपा था। उसको समाजों के पण्डितों के पास भेजा। दूसरे लोगों ने समालोचना भेजी, वह हमारे पास रखी हुई है, परन्तु समाज में ऐसा ख्याल नहीं है। मैंने और कई स्कालर्स के साथ पत्र-व्यवहार किया, उनके तो उत्तर आये। उन्होंने कार्य पर बड़ी प्रसन्नता प्रकट की, और सहायता का वचन दिया। एक आल इण्डिया आनरेरी कमेटी बन चुकी है। "डा० विन्टर्निट्स आर्टियल" आदि उसके मेम्बर हैं।

शास्त्रार्थ के प्रधान श्री महात्मा हंसराज जी—

यह कोष का मामला है, उसे न छेड़ें।

श्री पण्डित विश्वबन्धु जी शास्त्री एम० ए०—

मैं शीघ्र ही समाप्त करूंगा। मैंने पिछले दस वर्ष में कोई प्रोपगण्डा नहीं किया। पिछले ६ मास में मेरे विरुद्ध प्रोपगण्डा किया गया कि विश्वबन्धु घोर नास्तिक हैं। अखबारों में मेरे विरुद्ध लिखा गया। "आर्यवीर" अखबार को इस कार्य के लिये वर्ता गया। उपदेशकों ने मेरे विरुद्ध प्लेटफार्म पर लेक्चर दिये। लाला देवीचन्द जी भी जिम्मेवार हैं, जिन्होंने मेरे विरुद्ध लायलपुर, शिमला, लाहौर आदि स्थानों पर व्याख्यानों में कहा—**"मेरा भाव यह नहीं कि स्वामी दयानन्द विद्वान् नहीं, और यह भी भाव नहीं कि उन्होंने कोई गलती नहीं की।"**

शास्त्रार्थ महारथी श्री पण्डित बुद्धदेव जी मीरपुरी—

आपने कहा है कि मैंने सिद्धान्त-विरुद्ध कहीं नहीं कहा। आपने क्रान्ति-सभा में कहा था कि केवल दो वर्ण हैं—आर्य और दस्यु। आपने राम नाम के विषय में कहा। आपने एमनाबाद आदि स्थानों पर सिद्धान्त के विरुद्ध प्रचार किया, यह में सप्रमाण कह सकता हूं।

श्री पण्डित विश्वबन्धु जी शास्त्री एम० ए०—

यह सब ६ मास के अन्दर-अन्दर की बातें हैं। मेरे विरुद्ध प्रचार का ही यह परिणाम है।

श्री प्रोफेसर पंडित राजाराम जी—

मुझे आर्य समाज में सच्चाई खींचकर लाई है। विरासत में मुझे कट्टर ब्राह्मणपन मिला हैं। मेरे विरुद्ध कई पत्र लिखे गये, परन्तु मैंने सच्चाई को नहीं छोड़ा। जहां तक मुझसे हो सका, समाज के सिद्धान्त को पुष्ट करने का ही यत्न किया। जहां कठिनता प्रतीत हुई, वहां स्पष्ट कह दिया। मैं चाहता हूं कि आर्यसमाज इन कठिनाइयों को महसूस करे, और उनको हल करे। हमें चाहिये कि हम एक नतीजे पर पहुंचें। कठिनाइयों का जवाब हमारी तरफ से एक होना चाहिये। आर्यसमाज के सिद्धान्तों के विषय में किसी को सन्देह नहीं, सिद्धान्त अटल है। हमें विचार में एक-दूसरे की जीत का ख्याल छोड़ देना चाहिये। मित्र होकर कठिनाइयों को सोचें। व्यक्तित्व को लेकर विचार में प्रवृत्त नहीं होना चाहिये। मुझे जीतने या हारने का सवाल नहीं है, पर यदि कोई दूसरा जीतना चाहे, तो उसे जीतने भी नहीं देता। मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी कि जब यह सिद्ध हो जायेगा कि—**"यास्क वेद में इतिहास नहीं मानता"**। मैं सब-कमेटी के हक में हूं। उसे वक्त दिया जाना चाहिये।

शास्त्रार्थ के प्रधान श्री महात्मा हंसराज जी—

मेरा मतलब था कि निरुक्त को छोड़कर मन्त्रों का अर्थ निश्चित हो जाये। अब वह कमेटी यही करे। नैरुक्त रीति से जो अर्थ इतिहास से रहित हो, उससे आर्यसमाज को लाभ हो। जो लाला देवीचन्द जी ने कहा वह भी ठीक है। यदि कमेटी सभा या समाजों के साधन इजाजत देते हों, तो वह हो जाय। अब पंडित भगवद्दत्त जी बोलें।

प्रिंसिपल श्री लाला देवीचन्द जी एम० ए०—

मैं आपसे Requiest करूंगा कि आप Sub-Committee की Scheme को जरूर Workout करें।

श्री पण्डित ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु—

मैं कमेटी में तब भाग लूंगा' यदि कसौटी ऋषि दयानन्द को माना जाय।

प्रिंसिपल श्री लाला देवीचन्द जी एम० ए०—

उसका हम निश्चय करेंगे।

श्री पंडित भगवद्दत्त जी रिसर्चस्कालर—

मैं संक्षेप से कहूंगा। पण्डित चारुदेव जी को व्याकरण का बड़ा जोश है, मुझे नहीं है। मैंने मध्यकालीन प्रयोग ऋषियों के अनुसार किया। महर्षि व्यास ने आदिकालीन प्रयोग किया है। मन्त्र में **"तुर्वश"** शब्द है। मैकडानल ने जहां-जहां यह शब्द आया है, वह स्थल इकट्ठे कर दिये हैं। यह शब्द कहीं द्विवचन में आया, कहीं पञ्चजनों—मनुष्यों के साथ आया है। महाभारत में तुर्वश और यदु आदि जातियां शर्मिष्ठा के विवाह से ययाति की संतानें थीं, परन्तु ययाति से पहिले वेद था, विवाह से पहिले उसने कहा है कि ब्रह्मचर्य से मैंने सारा वेद पढ़ा है—**"ब्रह्मचर्यश्रुतिपथंगतः"** (महा० आदि० अ० ७५)। उस समय तुर्वश आदि उत्पन्न नहीं हुए थे। आप या तो यह कहें कि ये मन्त्र वेद में पीछे से आये हैं या महाभारत में यह श्लोक पीछे से डाले गये हैं। पण्डित राजाराम जी के निरुक्तानुवाद की भूमिका में लिखा है—**"वृषो हि भगवान् धर्मःख्यातो लोकेषु भारत। नैघण्टुक पदाख्याने विद्धि मां वृषमुत्तमम्॥ कपिर्वराहः श्रेष्ठश्च धर्मश्च वृष उच्यते। तस्माद्वृषाकपिं प्राह कश्यपो मां प्रजापतिः"॥** अर्थात् आपके इस पक्ष से यह पक्ष सिद्ध है कि निघण्टु का कर्ता कश्यप है। उसके समय को जानने का साहस नहीं किया गया। उसमें "तुर्वश" शब्द मनुष्य का पर्याय दिया गया है। पण्डित विश्वबन्धु जी ने एक बात कल कही थी कि सायण, कुमारिल, शंकर और जैमिनि, व्यास आदि का Interpretaion का System Unhistoric और Unscientific है और Progressive है, मैं इसे नहीं मानता। जब मन्त्र भूले; फिर उनका जिसने दर्शन किया, उस ऋषि का नाम ऊपर लिख दिया। जो इतिहास मानते हैं, मानेंगे कि उन्होंने मन्त्र बनाये। यह पाराशर ऋग्वेद के कितने ही मन्त्रों का ऋषि है। उसका पुत्र व्यास मन्त्रों को नित्य कहता है। पाराशर बनाये, और उनका लड़का व्यास वेद को नित्य लिखता जाये, यह नहीं हो सकता। क्योंकि वह ऋषि मुनि इतने झूठे नहीं थे। इन्हीं व्यासादि ऋषि-मुनियों के आधार पर वेदार्थ करना है। मैंने **"मैत्रायणी"** के चार शब्द पेश किये थे कि कोई इनका अर्थ करे। यदि आप भी इनका अर्थ करेंगे, तो व्याकरणादि का आश्रय

अवश्य लेना पड़ेगा। स्वामी जी ने इतिहास का खण्डन किया, और वह Most Successful author हुए हैं। उन्होंने जो प्रतिज्ञा की, उसी के अनुसार अर्थ किये।

श्री स्वामी अच्युतानन्द जी महाराज—

आर्यसमाजी नहीं कह सकता कि—"**वेद में इतिहास है**"।

श्री पण्डित ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु—

कमेटी के विषय का विचार बड़ा अच्छा है। पर मैं इतना अवश्य कहूंगा कि पोचापाची Compromise ठीक नहीं। कमेटी यदि ऋषि दयानन्द की कसौटी को मानकर चलेगी, तो मैं उसमें शामिल हो जाऊंगा, अन्यथा नहीं। जहां प्राइवेट केरेक्टर और पब्लिक केरेक्टर अलग-अलग हों, वहां कैसे कार्य चल सकता है? एक तरफ ब्राह्मण की गौ को न मारो, औरों की मार लो, तो कैसे समझौता हो? हां मैं कहता हूं कि, मुझे चाहे चाणक्य कहो या चाहे कुछ और, जो महर्षि दयानन्द के विरुद्ध कहेगा, उसका मैं जोर से खण्डन करूंगा। क्योंकि मैं ऋषि दयानन्द को सत्य मानता हूं।

शास्त्रार्थ केशरी श्री पण्डित ठाकुर अमरसिंह जी—

वैदिक इतिहास के सम्बन्ध में मेरा यह विचार है कि—होना तो यह चाहिये था कि मन्त्रों पर विचार होता। कई लोगों ने निरुक्त पर ही विचार चलाया। मैंने कहा था कि इतिहास में दिखाओ कि देवापि, ऋष्टिषेण का पुत्र था। पण्डित विश्वबन्धु जी ने वेद का प्रमाण दिया। इतिहास से सिद्ध नहीं किया। पण्डित राजाराम जी भी मन्त्रों में इतिहास मानते हैं। **अथर्ववेद** २।३२।३ में कहते हैं कि—"अत्रि की नाईं, कण्व की नाईं, जमदग्नि की नाईं, हे कृमियो! तुम्हें मैं मारता हूं। अगस्त्य के ब्रह्म से सब कृमियों को पीस डालता हूं"। फिर **अथर्ववेद** ४।३७।१ पर भी भाष्य में माना है—"तेरे द्वारा कश्यप ने, तेरे द्वारा कण्व ने, और अगस्त्य ने हनन (=राक्षसों को मारा)- किया। **अथर्ववेद** ४।६।१० पर—"चाहे तू त्रिकूकुत का, चाहे यमुना का कहलाता है, दोनों तेरे भले नाम हैं, उनसे हमारी रक्षा कर। हे आञ्जन?"

इससे सिद्ध है कि वेद में इतिहास माना जाता है। पहिले मूल मन्त्रों पर विचार होना चाहिये। और वेदार्थ की कसौटी भी (निश्चित) होनी चाहिये। पण्डित राजाराम जी ने जो गोवध तथा जूए के अर्थ किये हैं, इससे तो भाष्य न बनाना ही ठीक है। **अथर्ववेद** ४।३७ **मन्त्र** ११।१२ **में**—"एक कुत्ते की नाईं हैं, एक बन्दर की नाईं है, एक सारे बालोंवाला कुमार है। देखने के लिये मानो प्यारा होकर गन्धर्व स्त्रियों को चिमटता है, उसको हम यहां से शक्तिवाले ब्रह्म (मन्त्र बल) के साथ नष्ट करते हैं" ॥११॥ तुम्हारी स्त्रियां निस्सन्देह अप्सरायें हैं। हे गन्धर्वो! तुम उनके पति हो। हे अमर्त्यो (न मरनेवालो)! भाग जाओ, मर्त्यों को मत चिमटो"। यदि यही कसौटी है, तो कमेटियों से क्या लाभ होगा? आगे **अथर्ववेद** ७।५३ पर पण्डित जी शीर्षक देते हैं—**द्यूत में जय के लिये**—"जैसे बिजली वृक्ष को सदा बिना रोक मारती है, इस प्रकार मैं आज बिना रोक सारे जुवारियों को मार करूं (जीत लूं)" ॥१॥ जल्दी करनेवाले न जल्दी करनेवाली (काहले न काहले पंजाबी) न रुकनेवाले लोगों का भाग्य सब ओर से इकट्ठा मुझे आ मिले। कृत मेरे हाथ के अन्दर हो" ॥२॥ कृत मेरे दायें हाथ में है, जय बायें हाथ में रखा है। मैं गऊओं को जीतनेवाला, घोड़ों को जीतनेवाला, धन का जीतनेवाला, और सुवर्ण का जीतनेवाला होऊं ॥३॥ अब भला ये मन्त्र दूसरों के सामने आयेंगे, और यदि हमसे वो लोग पूछेंगे, तो हम क्या जवाब देंगे?

(शास्त्रार्थ की सातवीं बैठक प्रारम्भ, दिनांक २१-५-१९३१ ई०)

[समय : प्रात:काल]

श्री प्रोफेसर पण्डित राजाराम जी—

कल तक छः स्थलों में से एक स्थल पर विचार होता रहा, शेष स्थलों पर भी विचार हो जाये। इसलिये उनका भी निर्देश कर देता हूं। **"इमं मे गङ्गे यमुने सरस्वति शतुद्रि स्तोमं सचता परुष्ण्या। असिक्न्या मरुद्वृधे वितस्तयार्जीकीये शृणुह्या सुषोमया"** [ऋ० १०।७५।५]॥ यास्क इस पर **"विपाट्"** की व्याख्या में कहते हैं—**"आर्जीकीयां विपाडित्याहुः, ऋजूकप्रभवा वर्जुगामिनी वा, विपाट् विपाटनाद्वा विपाशनाद्वा विप्रापणाद्वा, पाशा अस्यां व्यपाश्यन्त वसिष्ठस्य मुमूर्षतः, तस्माद्विपाडित्युच्यते पूर्वमासीदुरिञ्जरा"** [निरुक्त ९।२६]। क्योंकि जब वसिष्ठ मरने लगा था, तब उसने अपने आपको पासों में जकड़कर नदी में फैंक दिया। उस नदी ने क्या किया? उसके पाशों को काटकर किनारे पर रख दिया, तब उसका नाम **"विपाट्"** हुआ। पहले उसका नाम उरञ्जिरा था? इसका मतलब है कि भाषा की दृष्टि से यह नाम था। महाभारत में भी कहा है—**"सोऽपश्यत सरितं पूर्णां प्रावृट्काले नवाम्भसा"** [आदि पर्व अ० १७७।२]। **"अथ छित्त्वा नदी पाशांस्तस्यारिबलसूदन। स्थलस्थं तमृषिं कृत्वा विपाशं समवासृजत्॥ उत्ततार ततः पाशैर्विमुक्तः स महानृषिः। विपाशेति च नामास्या नद्याश्चक्रे महानृषिः"**॥ [आदि पर्व ११७ अ० १७७ श्लो० ५।६]। इससे ख्याल होता है कि वेद में इतिहास है। इसमें कहा है कि पासों के टूटने से वह ऋषि निकल गया। तब उस ऋषि ने यह नाम रखा। एक और प्रमाण है—**"प्र तद्वोचेयं भव्यायेन्दवे हव्यो न य इषवान् मन्म रेजति रक्षोहा मन्म रेजति। स्वयं सो अस्मदा निदो वधैरजेत दुर्मतिम्। अव स्रवेदघशंसोऽवतरमव क्षुद्रमिव स्रवेत्**॥ [ऋ० १।१२९।६]। यहां **"मन्म रेजति"** को दोहराया गया है। यहां यास्क लिखते हैं—**"अभ्यासे भूयांसमर्थं मन्यन्ते"** [नि० १०।४२] अभ्यास में जब अधिक अर्थ को समझते हैं, तब दोहराया जाता है। यथा **"अहो दर्शनीयः, अहो दर्शनीय इति"** [नि० १०।४२]। इसी तरह यहां भी। आगे यास्क कहता है—**"तत्परुच्छेपस्य शीलम"** [नि० १०।४२]। यह परुच्छेप ऋषि का शील है कि वह सूक्तों में पदों को दुहराता है। इससे प्रतीत होता है कि वह इस मन्त्र को परुच्छेपकृत मानता है, ईश्वरकृत नहीं। यह भी एक सिद्धान्त है कि इतिहास होते हुये भी वेद ईश्वरीय है। परन्तु यास्क के ढंग से प्रतीत होता है कि वह वेद को ऋषिकृत मानता है। स्कन्द की बाबत कहा गया है कि वह मानता है कि वेद में इतिहास नहीं, परन्तु यह बात ठीक नहीं है। मैं पहले कह चुका हूं कि वह इतिहास मानता है। जो पक्ष स्थापन किये गये हैं, वह वेद के श्रद्धावान् लोगों ने स्थापित किये हैं। जैसे मीमांसक कुमारिल आदि वेद को ईश्वर का रचा हुआ नहीं मानते, किन्तु अनादि मानते हैं। दार्शनिक भाव बड़े गहरे हैं। उन्होंने पूर्व पक्ष स्थापन किया। जैसे—**"बबरः प्रावाहणिरकामयत्"** प्रवाहण के पुत्र बबर ने कामना की। यह **"तैत्तिरीय ब्राह्मण"** [७।१।१०।२] का प्रमाण है। वह ब्राह्मणों को भी वेद मानते हैं, किन्तु आर्यसमाज ब्राह्मणों को वेद नहीं मानता। इसलिये आर्यसमाज की ओर से यह पक्ष पेश नहीं किया जा सकता।

वह मानते हैं कि—**"विधिना त्वेकवाक्यत्वात्स्तुत्यर्थेन विधीनां स्युः"** [१।२।७] इससे वह अर्थवाद दिखाते हैं। जहां अर्थवाद पाया जाता है, वहां स्तुति या निन्दा के लिये पाया जाता है। मस्लन यज्ञ में दक्षिणा देने के मन्त्र में इतिहास आया, तो वहाँ उसका मतलब उस विधि की स्तुति के लिए ही है, चाहे इतिहास हो या

नहीं। अर्थवाद तीन प्रकार का कहा गया है—बनावटी, प्ररोचनार्थ, भूतार्थवाद। इनमें भूतार्थवाद भी माना गया है। यह बात हुई है, परन्तु किसी बात में रुचि दिलाने के लिये वह इतिहास दिखा दिया जाता है, इतिहास दिखाने के लिये नहीं। जैसे कुरुङ्ग राजा भी मीमांसकों के मत में भूतार्थवाद होगा, इसी प्रकार से नित्य पक्ष माना है। स्कन्द स्वामी भी इन कल्पित और भूतार्थवाद को माननेवाला था। वह कहता है—"**आर्ष्टिषेण इति भविष्यद्वृत्या व्यपदेशो भूतवृत्या च**" (स्क० नि० टीका) अर्थात् वह आगे भी होगा और पिछले कल्प में भी हुआ। इसी प्रकार से "**कुरुङ्ग**" राजा पिछले कल्प में भी हुआ था, उसने दान दिया था और आगे भी होगा। और उसके दान की स्तुति भी होगी। वेद किसी एक कुरुङ्ग के साथ बंधा हुआ नहीं। यथा—"**देवापिश्च शन्तनुश्च कौरव्यौ कुरुवंश-प्रभवौ भीमसेन-पुत्रौ भ्रातरौ बभूवतुः। स शन्तनुः कनीयान् ज्यायसि देवापौ सति आत्मानं राज्ये प्रजाभिरभिषेचितवान्। देवापिस्त्वग्दोषापदेशेन राज्यादवरोपितो वैराग्यात्तपः प्रतिपेदिरे। स च किल च्यवननामापरनाम्नि ऋष्टिषेणे ब्रह्मचर्यमुवास। स गुर्वनुग्रहात्तेनैव शरीरेण "वीतहव्यवद्विश्वामित्रवच्च ब्राह्मणो बभूव"। ततोऽस्मिनन्तरे शन्तनो राज्ये द्वादशवर्षाणि देवो न ववर्ष। तमूचुः मौद्गल्यप्रमुखा ब्राह्मणाः। किमूचुः? अधर्मस्त्वयाऽऽचरितः, ज्येष्ठं भ्रातरन्तरित्यातिक्राम्याभिषेचितम्, अभिषेचनमात्मन कारितमित्यर्थः। तस्मात्ते देवो न वर्षतीति। स शन्तनुरेवमुक्तो देवापिं शिशिक्ष। शिक्षतिर्दानकर्मा तेन चात्र याच्ञ पूर्वकत्वाद्दानस्य स्वकारणभूतायाच्ञ लक्ष्यते सामर्थ्यात्। तेनैतदुक्तं भवति शिशक्ष याचितवान**"। अर्थात् यह दोनों देवापि और शन्तनु कुरुवंशी भीमसेन के पुत्र थे। देवापि को कोई चमड़े का रोग था। उसे राज्य से गिरा दिया गया। वह च्यवन दूसरे नामवाले ऋष्टिषेण के पास तप करता था। वह वीतहव्य और विश्वामित्र के समान ब्राह्मण हो गया। उसके बाद शन्तनु के राज्य में बारह साल तक मेघ नहीं बरसा। उसको मोद्गल्य प्रमुख ब्राह्मणों ने कहा कि बड़े भाई को अतिक्रमण करके तुमने राज्य लिया है, इसलिये मेघ नहीं बरसता। इस पर उसने देवापि के पास जाकर राज्य लेने की प्रार्थना की। तब देवापि ने कहा कि मैं तेरा पुरोहित बन सकता हूं। इसके बाद उसने पुरोहित बन कर यज्ञ कराया। तब राज्य में मेघ बरसा। इससे तात्पर्य निकलता है कि राज्य बड़े भाई को मिलना चाहिये। यदि राजा धर्म का अतिक्रमण करेगा, तो वह अपराधी होगा, पापी बनेगा, और उसे फल अवश्य मिलेगा। इस तात्पर्य को दिखलाने के लिये मन्त्र में यह इतिहास है। इस प्रकार यह नित्यवाद कहता है। इसी प्रकार वेदान्त में माना है देखिये—"**युगान्तेऽन्तर्हितान् वेदान् सेतिहासान् महर्षयः" लेभिरे तपसा पूर्वमनुज्ञाता स्वयम्भुवा**"॥ (वेदा० शां० भा० १।३।३० उन्होंने इतिहास समेत वेदों को पाया। इसके साथ स्मृति भी प्रमाण में दी है—"**तेषां यानि कर्माणि प्राक्सृष्टयां प्रतिपेदेरे।**" "**तान्येव ते प्रतिपद्यन्ते सृज्यमानाः पुनः पुनः**" (वेदान्त शां० भा० १।१।३०)॥

श्री पण्डित भगवद्दत्त जी रिसर्चस्कालर—

बीच में—वेदान्त के किस सूत्र में हैं?

श्री प्रोफेसर पंडित राजाराम जी—

(बीच में)—शकंराचार्य ने "१।३।२९,३० **में वेदान्त में**" यह प्रमाण दिया है।

श्री पण्डित विश्वबन्धु जी शास्त्री एम० ए०—

बीच में—वेदान्त के बनानेवाले हैं शङ्कराचार्य?

श्री प्रोफेसर पण्डित राजाराम जी—

"**ऋषीणां नामधेयानि याश्चवेदेषु दृष्टयः। शर्वर्यन्ते प्रसूतानां तान्येवैभ्यो ददात्यजः**"॥ (वेदा० शा०

भा० १।१।३०) प्रलय के अन्त में वह ब्रह्म ऋषियों के नामादि फिर देता है। इस सारे युग की उत्पत्ति फिर होती है। इनकी दृष्टि में नित्य इतिहास का मतलब यह है। यह ऐसे मानकर वेद को नित्य मानते हैं। सायणादि का तात्पर्य भी इसी नित्य पक्ष से है। वैदिक वाङ्मय का इतिहास भाग २ पृ० ६८ में लिखते हैं—"कि **दुष्यन्त और भरतादि**" शब्दों को हम जातिवाचक भी नहीं मान सकते। क्योंकि "**दुष्यन्त**" से वहां भी वही पौरुषेय की आपत्ति आयगी। जिन नवीन मीमांसकों ने वेदों में विश्वामित्र आदि शब्दों को जातिवाचक माना है, उन्होंने भी अपौरुषेय वेदों में ही माना हैं। और "**हम तो इस कल्पना को भी निराधार मानते हैं।**" इसी प्रकार यास्क के मत में इतिहास वेदों में वर्तमान है। मुझे इसका आशय यह मालूम होता है कि ऋषियों के शब्द अपने हैं, और ज्ञान अपना। यास्क ने कहा है—"**साक्षात्कृद्धर्माण ऋषयो बभूवुः। तेऽवरेभ्योऽसाक्षात्कृतधर्मभ्य उपदेशेन मन्त्रान् संप्रादुः**" (नि० १।२०)। "**ऋषेर्द्रष्टार्थस्य प्रीतिर्भवत्याख्यानसंयुक्ता**" (नि० १०।१०)। अर्थात् यास्क मानता है कि वेदों में शब्द ऋषियों के हैं, अर्थ उनको परमात्मा द्वारा प्रतिभात हुआ। इसी प्रकार "**अनुक्रमणिका**" और **बृहद्देवता**" आदि में मन्त्रों के प्रकट होने के इतिहास दिये हैं। जैसे—"**त्रितं कूपेऽवहितमेतत्सूक्तं प्रतिबभौ**" (नि० ४।६)। त्रित को कुंए में गिरे हुये को यह सूक्त मिला।

जहां-जहां यास्क ने इतिहास दिया है, वह उसे मानता है। इस पक्ष को लेकर भी एक पक्ष यह है कि यास्क अनुक्रमणी और बृहद्देवता में वेदों में से जो धर्म का निषेध तथा विधियों को ऋषियों ने प्राप्त किया है, दूसरों को उन्होंने कल्पित तथा सच्ची घटनाओं द्वारा उपदेश दिया है। यास्क इतिहास तथा नैरुक्त पक्ष में भेद दिखलाने के लिये देते हैं—"**तत्को वृत्रः ? मेघ इति नैरुक्ताः, त्वाष्ट्रोऽसुर इत्यैतिहासिकाः**" (नि० २।१६)। जहाँ उसे भेद अभिप्रेत होता है, वह भेद कर देता है। जहां भेद नहीं दिखाया, वहाँ उसे भी इतिहास अभिप्रेत है। जैसे परिव्राजकों का पक्ष दिखाया। चाहे वहां इतिहास का कोई झगड़ा नहीं। इसी प्रकार याज्ञिकों का पक्ष दिखाया है। जहां अन्यत्र मन्त्रों के अर्थ को अभिव्यक्त करना होता है, वहाँ मन्त्र की उत्पत्ति का इतिहास दिखलाया है। यास्क का यह पक्ष भी "**वह इतिहास को नहीं मानता**" नहीं निकलता, परन्तु फिर भी वह वेद को आर्षज्ञान मानता है। इसी प्रकार अनुक्रमणी आदि भी इतिहास मानते हुये वेद को आर्षज्ञान मानते हैं। यह लोग वेदों में वैसी ही श्रद्धा रखते हैं। मैं समझता हूं कि इतिहास सिद्ध होने पर भी आर्यसमाज और वैदिक धर्म उड़ नहीं जायगा, हमें संकुचित नहीं होना चाहिये। यदि कोई इतिहास मानेगा, तो वह आर्यसमाज से परे नहीं हो जायेगा, घबड़ाना नहीं चाहिये। स्वामी जी ने जैसे वेदों पर बड़ा लिखकर भी नियमों में कहीं नहीं लिखा कि वेद अपौरुषेय हैं। उन्होंने वेदभाष्य करते हुये "**वामदेव्यम्-वामदेवेन दृष्टं**"। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि स्वामी जी को इस पक्ष से द्वेष नहीं है, या उन्हें स्वयं अपौरुषेय अभिप्रेत है। चेष्टा होनी चाहिये कि हम स्वामी जी के इस पक्ष को सिद्ध करें। हमें घबराना नहीं चाहिये। कल मेरे भाष्य के सम्बन्ध में "**श्री पं० अमर सिंह जी के द्वारा**" कहा गया था कि यह मैंने केवल अक्षरार्थ किया है। वह केवल भाषा में पदपाठ है। सिर्फ भेद इतना ही है कि संस्कृत की विभक्तियां हिन्दी में रख दी गई हैं। मेरे सामने कई कठिनाइयां हैं, जिन्हें मैंने वैसे ही छोड़ दिया है। मैंने कई जगह अपनी ऊहा से उत्तम अर्थ किये हैं, जो आर्यसमाज की पुष्टि करते हैं। कल पण्डित गुरुदत्त जी ने कहा था कि "**विश्वामित्र गृत्समद**" आदि प्राण के नाम हैं। इससे इतिहास के साथ ऋषि भी उड़ गये। आर्यसमाज की ओर से एक उत्तर होना चाहिये।

प्रिंसिपल श्री लाला देवीचन्द जी एम० ए०—

अपना पक्ष भी आपको रखना चाहिये।

श्री प्रोफेसर पंडित राजाराम जी—

मेरा पक्ष समाज का पक्ष है। अगर सिद्ध हो जाय, तो दूसरा पक्ष भी मान लूंगा। मैं वैदिक हूं, वेदों में जो बात सिद्ध होगी, उसके सामने सिर झुकाऊंगा।

शास्त्रार्थ के प्रधान श्री महात्मा हंसराज जी—

यह इन्तजामियां पहलू है कि जो इस बात को मानता है, वह समाज में रह सकता है या नहीं ? इस बात का इस परिषद् में निश्चय नहीं करना। पण्डितसभा का यह काम है कि पेश किये हुये विचारों पर राय कायम करे। परन्तु यह जो असली बात थी कि वेद के अन्दर इतिहास है वा नहीं ? पण्डित राजाराम जी ने कहा कि वह स्वीकार करते हैं कि "**वेद में इतिहास नहीं है**"।

श्री प्रोफेसर पंडित राजाराम जी—

मैंने कहा है कि जो आर्यसमाज के सिद्धान्त हैं, उन्हें मैं मानता हूं, वह सत्य है। यदि विचार से कुछ और सत्य सिद्ध हो जाये, तब उसे मैं मान लूंगा। कई कठिनाइयों का हल मैंने किया है। जो सत्य सिद्ध होगा वह मेरा पक्ष होगा, वही आर्यसमाज का होगा। "**संस्कार विधि में मन्त्रों के अर्थों का अनर्थ किया है**।" यद्यपि मैं यह प्रेस की गलतियां समझता हूं परन्तु किसी दिन इनका भार भी हमारे ऊपर पड़ेगा। यदि सत्य सिद्ध हो जाय, तो मैं मानूंगा।

प्रिंसिपल श्री लाला देवीचन्द जी एम० ए०—

पं० राजाराम जी ने फरमाया कि वह आर्यसमाज के सिद्धान्त के साथ सहमत हैं। जैसा स्वामी जी ने कहा है कि जो मैंने अपनी बुद्धि अनुसार वेद से समझा है, वह लिख दिया है। यदि कुछ और सिद्ध हो, तो यह आवश्यक नहीं कि मेरी ही बात मानें। यह बात हम भी मानते हैं कि—"सत्य के ग्रहण करने और असत्य के त्याग करने के लिये सदैव उद्यत रहना चाहिये"। अभी तक तो सब समाज के सिद्धान्तों को ही सत्य मानते हैं। यदि इतिहास सिद्ध हो जाय, तो मान सकता है।

श्री पण्डित विश्वबन्धु जी शास्त्री एम० ए०—

विचार हो ही नहीं सकता, जब तक भेद न हो। यह संशय के आधार पर विचार है। निरुक्त अनुक्रमणी तथा अन्य सब आर्ष ग्रन्थों के आधार पर झलक इतिहास की पड़ती है। इसी के विचार के लिये सभा बैठाई गई है। उनको भी संशय है, उनकी स्टेडी (स्वाध्याय) के अनुसार उनके दिल में भी शंका पैदा हो गई है।

प्रिंसिपल श्री लाला देवीचन्द जी एम० ए०—

शंका होने पर भी सिद्धान्त वही है।

श्री पण्डित विश्वबन्धु जी शास्त्री एम० ए०—

करोड़ों शंकाओं के होते हुये भी सिद्धान्त मानना यह बात विरुद्ध है।

शास्त्रार्थ के प्रधान श्री महात्मा हंसराज जी—

पं० विश्वबन्धु जी का भाषण प्रोफेसर राजाराम जी के आशय के विरुद्ध है। जैसे एक आदमी ईश्वर को मानता है, परन्तु दलीलें दोनों पक्षों की सुनता है। एक गलत दलील है। उसकी गलती को वह हल नहीं कर

सकता। इसका मतलब यह नहीं कि उसका विश्वास ईश्वर से ढीला पड़ गया। निरुक्त का सवाल छोटा पड़ गया, सिद्धान्त का खयाल रखना चाहिये। पं० विश्वबन्धु जी से पूछता हूं।

प्रिंसिपल श्री लाला देवीचन्द जी एम० ए०—

मुझे संशय है कि पं० विश्वबन्धु जी यह स्वीकार कर रहे हैं।

श्री पण्डित विश्वबन्धु जी शास्त्री एम० ए०—

मैं कान्फ्रेंस (सभा) में इसीलिये बैठा हूं।

शास्त्रार्थ के प्रधान श्री महात्मा हंसराज जी—

यह बात ठीक नहीं कि सबको शंकायें नहीं।

श्री पण्डित विश्वबन्धु जी शास्त्री एम० ए०—

मुझे Inrusistency सी प्रतीत होती है। एक ही विषय में शंका और विश्वास नहीं हो सकते। मैं वेद को अपौरुषेय मानता हूं, पर मुझे ईश्वर की सत्ता पर शक है, यह बात कैसे हो सकती है? "पं० **बहादुरमल जी का मांस वाला प्रश्न खड़ा है, आज तक उनके मांस वाले प्रश्न का जवाब नहीं दिया गया**"। धर्म के इतिहास में ऐसी शंकायें रहने से विश्वास टूट जायगा।

श्री पण्डित भगवद्दत्त जी रिसर्चस्कालर—

शास्त्र के विचार से जो मैंने कहा था ठीक है। दिमाग एतराज करता है, पर हृदय नहीं मानता—**"हृदयेनाभ्यनुज्ञातो यो धर्म. तन्निबोधत"** (मनु २।१)॥

श्री पण्डित विश्वबन्धु जी शास्त्री एम० ए०—

मेरा दिल चाहता है कि इतिहास सिद्ध न हो, किन्तु दिमाग में शक (संदेह) है।

शास्त्रार्थ के प्रधान श्री महात्मा हंसराज जी—

यदि आपके दिमाग में शक हैं, तो आर्यसमाज के विद्वानों से मिलकर पूछें। जैसे ब्रह्मदत्त जी ने कहा था कि हम चाहते हैं कि स्वामी जी का पक्ष सिद्ध हो। यदि आप भी चाहते हैं, तो ठीक है। यदि आपको ठीक प्रतीत होता हो, तो अच्छा। यदि आपको ठीक प्रतीत न होता हो, तो न आप आर्यसमाज से बंधे हुये हैं, न आर्यसमाज आपसे बंधा हुआ है। हां, सत्य के विचार में सब बंधे हुये हैं। जो आपने इन्तजामी मामलों का जिकर किया, वह शाया (छपा) नहीं है। हां विचार के लिये आप भी ब्रह्मदत्त जी भी तथा और भी पण्डित इकट्ठे हों, विचार हो जाय। जैसे "पं० **राजाराम जी ने कहा कि वह स्वामी जी के सिद्धान्तों को इस विषय में मानते हैं, आप भी ऐसा ही कह दें**"। मांस खाने पर जो एतराज आपने मेम्बरों से किया, मांस खाने की बात कहां से की, यह बात असंगत है (अगर विश्वबन्धु जी को निकालने का प्रस्ताव होता, तब आप इस विषय में कह सकते थे। यह बात भी यहां करने की आवश्यकता नहीं)।

श्री पण्डित विश्वबन्धु जी शास्त्री एम० ए०—

यह बात ठीक नहीं। मेरा विचार यह नहीं कि आप अन्याय करते हैं।

शास्त्रार्थ के प्रधान श्री महात्मा हंसराज जी—

आप पर टीका टिप्पणी नहीं करते। आप कह दें कि मैं वेद में इतिहास नहीं मानता, पर विचार करना चाहता हूं।

श्री पण्डित विश्वबन्धु जी शास्त्री एम० ए०—

मैंने पहले ही कह दिया कि मेरा दिल चाहता है कि वेद में इतिहास सिद्ध न हो, परन्तु दिमागवाला भाव प्रबल हो रहा है। दिमाग का भेद होना सोसाइटी के जीवन का चिह्न है। मैंने कई जगह पर वेद-सन्देश में स्वामी जी से विरुद्ध अर्थ भी किये हैं, परन्तु उद्देश्य एक ही है। शंकायें सब के अन्दर पैदा हो रही हैं। पं० ब्रह्मदत्त जी के विषय में, मैं कुछ नहीं कहता।

श्री प्रोफेसर पण्डित राजाराम जी—

जब पं० विश्वबन्धु जी कहते हैं कि मेरी इच्छा वही है, वह यत्न कर रहे हैं। उनका सिद्धान्त समाज के साथ है।

शास्त्रार्थ के प्रधान श्री महात्मा हंसराज जी—

जब तक वे स्वयं नहीं कहते, हम कैसे मान लें?

श्री पण्डित विश्वबन्धु जी शास्त्री एम० ए०—

मैं इस बात का अधिकार किसी को नहीं देता। मुझे शंका है, मैं दियानतदारी से कहता हूं।

प्रिंसिपल श्री बहादुरमल्ल जी—

हमें दिल की तरफ नहीं आना चाहिये। सभा विचार के लिये ही है। सेन्टीमेन्ट को अपील करने की आवश्यकता नहीं। शंका तथा निर्णय दोनों परस्पर विरुद्ध हैं।

शास्त्रार्थ के प्रधान श्री महात्मा हंसराज जी—

मैं इस बात को मानने के लिये तैयार नहीं हूं।

शास्त्रार्थ केशरी श्री पण्डित ठाकुर अमरसिंह जी—

पण्डित जी कहते हैं कि मैं किसी को अधिकार देना नहीं चाहता। बल देकर कहलवाने या न कहलवाने का कुछ लाभ नहीं। इस बात को बन्द कर देना चाहिये। एक आदमी युक्ति प्रमाण देता है विरुद्ध, और जुबानी कह देता है कि मैं सब मानता हूं, इसका क्या लाभ? किसी आदमी को इससे अनुचित लाभ नहीं उठाना चाहिये। सिद्धान्त न माननेवाले इसी तरह लाभ उठा सकते हैं।

श्री स्वामी सर्वदानन्द जी महाराज—

यह जो विचार हो रहा है, इससे किसी निश्चय पर नहीं पहुंच सकते। यह विचार पर ही आघात हो रहा है, तो निश्चय कैसे होगा? ऐसा नहीं होना चाहिये।

श्री पंडित ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु—

पं० विश्वबन्धु जी कह रहे हैं कि "**स्पष्टवक्ता न दोषभाक्**"। मैं इसलिये उनकी प्रशंसा करता हूं। जो मन से कुछ और, ऊपर से कुछ और हो, वह मनुष्य हानिकारक होता है। इससे उनके लिये मेरे हृदय में बहुत प्रेम का भाव है। पं० राजाराम जी ने कहा कि नित्य इतिहास का स्वरूप क्या है? उन्होंने स्कन्द को भी पेश किया। पण्डित जी का यह कहना कि वेद को भी नित्य मानें, और इतिहास को भी मानें, तब भी हमारा कुछ नहीं बिगड़ता। यह बात ठीक नहीं है। दुर्गादि ने कहा है कि अर्थ को प्रकट करने के लिये इन आख्यानों को साथ जोड़-कर मन्त्रार्थ बताते हैं। यह केवल स्पष्ट करने के लिये मन्त्रार्थदृष्टा ऋषि ने आख्यान जोड़कर समझाया है।

यास्क लिखता है—"**ऋषेर्दृष्टार्थस्य प्रीतिर्भवत्याख्यान-संयुक्ता**" (नि० १०।४६)। इसी तरह "**तत्रोपमार्थेन युद्धवर्णा भवन्ति**" (नि० २।१६)। इसी प्रकार जैसे मथुरा शताब्दी के उत्सव पर "**मथुरा का अशान्त यात्री**" शीर्षक से एक लेख लिखा था। उसमें लेखक ने लिखा था कि "**शताब्दी के पिण्डाल में स्वामी दयानन्द और स्वामी विरजानन्द का वार्तालाप**"। और स्वामी विरजानन्द ने आर्यसमाजियों को कहा था कि तुम मथुरा से अपने डेरे डण्डे उठाओ। तुम्हारा यहाँ आने का कोई अधिकार नहीं। क्योंकि मैं जिन अनार्ष ग्रन्थों पर जूते लगवाता था, तुम वही पढ़ते-पढ़ाते हो। कई लोग कालान्तर में इसको ऐतिहासिक घटना मानने लग पड़ें, तो, यह सच्चा इतिहास सिद्ध नहीं हो सकता। स्कन्द ने कहा है—"**मुख-प्रतिप्रत्यर्थमितिहासमाचक्षते आचार्याः**" (पृ० ७१)। आगे पृष्ठ ९३ पर लिखा है—"**सर्वे इतिहासाश्चार्थवादमूलभूताः**"। यहाँ कहा है कि सारे इतिहास अर्थवाद मूलभूत हैं। यदि कुरुङ्ग है, तो भी वह कहता है कि अर्थवाद मूलभूत है। पुनः आगे कहता है—"**तस्मादसति युद्धे कल्पनैषा**" (पृ० ९३), और पृ० ३४६ पर भी यही कहा है कि—"**उपचार से यह कल्पना है**"। इसी प्रकार ऋग्वेद में मन्त्र आया है —"**माया इत्सा ते यानि युद्धान्याहुः**" ऋ० १०।५४।२। इसी प्रकार मायारूप में शतपथ में—"**तस्मादाहुर्नैतदस्ति यद्दैवासुरम्**" श० ११।१।६।९। दुर्गादि का भी यही भाव है। तैत्तिरीय आरण्यक अनु० प्रपा० ९ पर "**भट्टभास्कर**" लिखता है—"**ब्राह्मणादीनि कर्मचोदना तच्छेषश्चार्थवादा निन्दा प्रशंसा परकृतिः पुराकल्पश्च ब्राह्मण-ग्रहणेन गृह्यन्ते ···इतिहासाः परकृतयः देवासुराः संयत्ता आसन् इत्यादयः**"। "**दुर्गाचार्य**" लिखते हैं—"**इतिवृत्तं परकृतार्थवादरूपेण···स पुनरयमितिहासः सर्वप्रकारो हि नित्यमविवक्षितस्वार्थः, तदर्थप्रतिपत्तृणा-मुद्देशपरत्वात्**"। (नि० १०।२६ के पृ० ५८)। वदतो व्याघात वहां होता है, जहां वेद में अनित्य व्यक्ति का इतिहास मानें। आप पुस्तकों में गोवध लिखते हैं, और बाहर वेद की महिमा गाते हैं। यह क्या वदतो व्याघात नहीं है? और देखिए निरुक्त २।१६।पृ० १७७ में "**उपमार्थेन रूपकल्पनया युद्धवर्णा भवन्ति, युद्धरूपकाणीत्यर्थः**"। आगे पृ० ३१५ पर दुर्ग लिखता है—"**मन्त्रार्थ-परिज्ञानादेव ह्यग्नेराध्यात्माधिदैवाधिभूताधियज्ञेष्ववस्थानं याथात्म्येन दृश्यते**"। उर्वशी अप्सरा आदि की कथा चला कर विरुद्ध अर्थ किया है। स्कन्द ने भी यही अर्थ किया है। "**शत्रुघ्नाचार्य**" ने "**अप्सरा**" का "**रश्मयः**" अर्थ किया है। (पृ० १५१)। पृ० ३६९ (?) पर लिखा है—"**स्तुत्यादिकमुपचारिकं रूपकमात्रमित्यर्थः**"। इसी प्रकार आगे नैरुक्त याज्ञिक अर्थ करते हुये पृ० ६३२ पर "**दुर्ग**" लिखता है—"**दुर्बला हि समाख्या**"। दुर्ग ११।२५ सरमा और देवशुनी के सम्वाद में लिखता है—**देवशुनी इन्द्रेन प्रहिता इति निदान-प्रख्यापनं मन्त्रार्थाभिव्यक्तये**" "**स्कन्द**" का भी वदतो व्याघात नहीं। उन्होंने भी अनेक जगह पर नित्यपक्ष का समर्थन किया है। निरुक्त के ६ अध्यायों पर जो भाष्य छपा, उसमें २१ जगह पर नित्य पक्ष की योजना की। और अन्त में लिख दिया—"**एवमन्यत्रापि योजना कर्तव्या**"। इसी प्रकार "**वररुचि**" ने भी "**औप-चारिकोऽयं मन्त्रेष्वाख्यानसमयो नित्यत्व-विरोधात्। परमार्थेन तु नित्यपक्ष एव इति नैरुक्तानां सिद्धान्तः**" (४।१४)। स्कन्द ने आठ जगह पर, जहां पर कि मूल निरुक्त ने इतिहास नहीं दिखाया, वहां पर अर्थ स्पष्ट करने के लिये इतिहास बतलाया है। महाभाष्य में कहा है—"**अचेतनवदुपचारः**" अचेतन में चेतनों की तरह से उपचार

होता है। "**वेंकटमाधव**" जो सायण से पहले हुए हैं, कहते हैं—"**ऋषीणां नामगोत्राणि दृष्ट्वा भ्राम्यन्ति लौकिकाः**" ऋ० प्र० ५।प्र० १। "उद्गीथ" ने—"**इमं मे गङ्गे यमुने**" (ऋक् १०।७५।५) इस मन्त्र को इस गंगा यमुना पर नहीं घटाया। "**मीमांसातन्त्रवार्तिक**" पृ० १३४ पर देखिये—"**प्रजापतिस्तावत् प्रजापालनाधिकारात् आदित्य एवोच्यते। स चारुणोदयवेलायामुषसमुघन्नभ्यैत्, स तदागमनादेवोपजायते इति तद्दुहितृत्वेन व्यपदिश्यते। तस्यां चारुणकिरणाख्यबीजनिक्षेपात्, स स्त्री-पुरुषयोगवदुपचारः। एवं समस्ततेजः परमैश्वर्यनिमित्तेन्द्रशब्दवाच्यः सवितैवाहनि बलीयमानतया रात्रिरहल्याशब्दवाच्यायाः क्षयात्मक-जरण-हेतुत्वात् जीर्यत्यस्मादनेनैवोदितेन इत्यादित्य एव अहल्याजार उच्यते, न तु परस्त्री-व्यभिचारात्**"। वेदांगों के जाने बिना वेदार्थ करना अनाधिकार चेष्टा हैं। वास्तव में हममें सम्पूर्ण विद्या नहीं है। जब तक विद्या अपेक्षित है, तब तक ऋषि दयानन्द का बल पकड़ना होगा। जो भाष्यकार सर्वांग नहीं जानते, उनको वेद का भाष्य करने का अधिकार नहीं। इस कार्य से समाज को हानि पहुंचती हैं, पोचापाची अच्छी नहीं। दिमाग अपना दूसरों को दे देना ठीक नहीं है। पं० विश्वबन्धु ने Oriental College Magzine में बुलनर को अपना गुरु माना है। पुस्तक Vadic goes as figiues of Biology में सिद्ध किया है कि इन्द्रवरुण त्वष्टा सावित्री आदि दिमाग के भाग हैं। यह बात वेद के तथा वैद्यक के प्रमाणों से सिद्ध की गई है मैं पूर्णतया इस विषय को नहीं जानता। डा० सत्यकाम जी यहाँ होते, मैं चाहता था कि आपको अच्छी तरह समझाते। ये लोग तो इस ढंग पर यत्न करते हैं। परन्तु हमारे आर्यसमाजी उल्टा यत्न करते हैं। बने हुये को गिराने की चेष्टा करते हैं। आर्यसमाज और ऋषि दयानन्द के मार्ग को हानि नहीं पहुंचनी चाहिये।

दर्शनशास्त्र के विषय में आर्यसमाज को मुकाबला करना होगा। हम शंकाओं को नहीं रोकते, किन्तु व्यवस्थित होनी चाहियें। ज्योतिष की पुस्तक "**ऋषि रहस्य**" में लिखा है—"**तस्मात्ताराारूपाणां वसिष्ठादीनां एवेदं ताराविज्ञानोपयोग्याख्यानविशेषसिद्धमैत्रावरुणियं उर्वशीजन्यत्वं मान्यत्वं वा, न तु ब्रह्मणो मानसपुत्राणां मनुष्यविधानाम्। ताराविषयणी सर्वापीयमाख्यायिका ताराविज्ञानोपोयगिनी बालकरोचनार्था बहूल्पसारामिवैव कल्पिता पूर्वैरिति, नैतावता मनुष्यविर्धाषषु तदाक्षेपः शक्यःकर्तुम्। यत्तु ब्रह्मणो मानसपुत्रस्य वसिष्ठस्य गोतमहोतृके यज्ञे निमिशापदग्धशरीरतया पुनरुर्वश्या द्वितीयं जन्माचक्षते पौराणिकाः, तदपि नामसामान्यादुपसंक्रमिति, तस्य मैत्रावरुणित्वादिधर्मस्य उपपादनार्थः कल्पनामात्रं स्यात्**"। इन रीतियों से मन्त्रार्थ समझना चाहिये। "बृहद्देवता" और "**सर्वानुक्रमणी**" में देवता का भेद हमारी तरफ से कल दिखाया गया था। "**चत्वारि शृङ्गा त्रयोऽस्य पादा द्वे शीर्षे सप्त हस्तासो अस्य। त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति महो देवो मर्त्या आविवेश**"॥ [ऋक् ४।५८।३] इस मन्त्र का "**पतञ्जलि**" ने महाभाष्य में शब्दपरक अर्थ किया है। '**सर्वानुक्रमणी**" और "**बृहद्देवता**" के कौन से देवता के अनुसार यह अर्थ है? क्या आप "**सर्वानुक्रमणी**" और "**बृहद्देवता**" को इस विषय में अन्तिम प्रमाण मानते हैं? यदि आप मनु तथा अन्य ग्रन्थों का प्रमाण नहीं मानते, केवल वेद को ही मानते हैं, तो वेदार्थ की कसौटी क्या है? जो "**श्री ठाकुर अमरसिंह जी द्वारा**" कहा गया था—"**वसिष्ठादय श्रवन्तु नः**" क्या इस मन्त्र को अब वेद से निकाल देना चाहिए? ऋषि दयानन्द के प्रति हमारी श्रद्धा क्यों हैं? ऋग्वेद १।४५।३—"**प्रियमेधवदत्रिबज्जातवेदो विरूपवत्। अङ्गिरस्वन्महिव्रत प्रस्कण्वस्य श्रुधी हवम्**"। इसकी व्याख्या ऋषि दयानन्द ने इस प्रकार की है—"**(प्रियमेधवम्) प्रिया तृप्ता कमनीया प्रदीप्ता मेधा बुद्धिर्यस्य, तेन तुल्यः (अत्रिवत्) न विद्यन्ते त्रय अध्यात्मिकाधिभौतिकादैविकास्तापा यस्य तद्वत् (जातवेदः) यो जातेषु पदार्थेषु विद्यते, सः (विरूपवत्) विविधानि रूपाणि यस्य, तद्वत् (अङ्गिरस्वत्) योऽङ्गानां रसः प्राणः, तद्वत् (महिवत्) महि महद् व्रतं शीलं यस्य [तत्सम्बुद्धौ] (प्रस्कण्वस्य), प्रकृष्टश्चासौ कण्वो मेधावी [तस्य] (श्रुधि) श्रृणु (हवं) प्राह्यं देयं अध्ययनाध्यापनाख्यं व्यवहारम्।**" लोग कहते हैं कि

स्वामी दयानन्द खेंचातानी करते हैं। वह खेंचातानी के प्रवर्तक हैं। औरों का भाष्य मान लेते हैं, परन्तु स्वामी जी का नहीं मानते। "स्कन्द" ने इसी मन्त्र का भाष्य किया है। देखिये—"**सततप्रवृत्तयज्ञः कश्चिद्यजमानः प्रियमेध उच्यते। तथा भृग्वादयोऽपि यजमानविशेषा एव। भृगु-पञ्चतपः प्रभृतिना तपसा भृज्यमानोऽपि न देहे गार्हपत्यो-पायित्वादिना, अङ्गारेण वसतीत्यङ्गिरः, अदनाद्भक्षणात्क्षपणाद्रागादीनां दोषाणामित्यत्रिः, विविधं खननाद्वेदार्थ-वस्तूनां वैखानसः, वैरूप्यात्तपसो विरूपः, यथैतेषां ऋषीणां दर्शनाद्दृष्यः प्रस्कण्वः कण्वस्य मेधातिथिः पुत्रः एकवाक्यता तु पूर्ववद्योजनीयेति**"। भाई अक्षर के ऊपर अक्षर रखने का क्या लाभ? निरुक्त के आशय को दूसरे आचार्यों ने भी खोला है। रात्रि और आपः ब्रह्मवाची शब्द है, मैं बतलाऊंगा। हमने आपसे पूछा था कि व्युत्पत्ति निमित्त और प्रवृत्ति निमित्त के अनुसार वृक्ष और सुवर्ण क्या है? आप गो शब्द को इसके अनुसार बतायें। यास्क ने इतने अर्थ किये, और उनकी व्युत्पत्ति नहीं की। आप बतायें कि आपके निमित्तों के अनुसार यह कैसे? हमारी ओर से !"**नित्ये शब्दार्थसम्बन्धे**" कई बार कहा जा चुका है। शास्त्र की रीति से करना हो तो मैं तैयार हूं। अन्यथा आप बतायें कि "**अश्व**" का अर्थ घोड़ा क्यों है, गधा क्यों नहीं है? हमने पूछा था कि "**कुरुङ्ग**" का इतिहास दिखाओ। आपकी ओर से कोई उत्तर नहीं मिला। आप वेद में जड़ तथा व्यक्तियों (चेतन) का इतिहास मानते हैं। आप बतायें कौन-सा इतिहास जड़ का और कौन-सा व्यक्ति का है? आपके कुल्हाड़ेवाले अर्थ के सम्बन्ध में बतायें कि वह किस कसौटी से किया है? और उसका क्या नियन्त्रण है? पण्डित बुद्धदेव जी (मीरपुरी) ने वेदार्थ करने के लिये "**श्रुतिलिङ्गादि**" सूत्र द्वारा कसौटी बता दी, और इस प्रकार से आपके अर्थ को असङ्गत दिखलाया। आपका वेद ही प्रमाण है। आप परशु और राजा विशेष्य विशेषण रूप से वेद में से दिखायें। राजा की स्तुतियां आपके कथनानुसार वेद में हैं। उनमें परशु कहां है? इसलिये हमारा मन्त्रार्थ ठीक है, आपका नहीं। आपके अर्थ में बेहूदगी है। दोनों अर्थ किसी हिन्दू गंवार पांसुलपाद के सामने रखो, वह भी कह देगा कि हमारा वेदार्थ सही है। आप परशुपरक अर्थ लगायेंगे, तो "**कुरुङ्गो राजा बभूव**" यह प्रतिज्ञा नष्ट हो जायेगी। पण्डित राजाराम जी कहते हैं कि मैंने आर्यसमाज की पुष्टि में अर्थ किये हैं। हमने भी ऐसा किया, तो हम पर दोष क्यों? हमने मन्त्रार्थ व्याकरण की प्रक्रियानुसार किया था। "**स्थूरं**" शब्द का अर्थ व्याकरण से बिना बहुल का आश्रय लिये एक साल में भी करके दिखा दें। क्योंकि वह तो (बहुल का आश्रय) दयानन्द ने बताया है। जो इतने आचार्यों ने औपचारिक प्रक्रिया से इतिहास का हल किया है, उसे आप क्यों छोड़ देते हैं? आपके नित्य का क्या अर्थ है? आप भूतार्थवाद, भविष्यार्थ और अनुवादार्थ को स्पष्ट करें। "**सर्वानुक्रमणी**" के विषय को भी स्पष्ट कर दें।

शास्त्रार्थ के प्रधान श्री महात्मा हंसराज जी—

अब पण्डित विश्वबन्धु जी बोलें।

श्री पण्डित विश्वबन्धु जी शास्त्री एम० ए०—

यदि पण्डित भगवद्दत्त जी को अब समय न दिया जाय, तब बोलता हूं।

शास्त्रार्थ के प्रधान श्री महात्मा हंसराज जी—

आपको जो कहना है कहें, मैं दुबारा समय न दूंगा।

श्री पण्डित विश्वबन्धु जी शास्त्री एम० ए०—

कल प्रातः पण्डित गुरुदत्त जी ने ऋषि, देवता आदि का स्वरूप बताया। मुझे उसमें नई बात नहीं प्रतीत हुई। यह सारा शिवशङ्कर की पुस्तक में है। "**ऋषि**" का स्वरूप वर्णन करते हुये आपने "**ऐतरेयारण्यक**" पढ़ दिया। यह भी मेरे लिये नई बात नहीं थी। इन सब उपनिषदों में प्राण की महिमा है। वह प्रकरण प्राण की उपासना का है, वहां प्राण तथा इन्द्रियों का संवाद आया है। बारी-बारी से सब इन्द्रियां प्राण से पृथक् हो गई, किन्तु इसका कुछ न बिगड़ा। अन्त में जब प्राण निकलने लगा, तब सब इन्द्रियों ने कहा कि महाराज! आपके जाने से हम सब मारी जायेंगी, इसलिये आप यहीं रहें। इस आरण्यक में प्राण की महिमा गाई है। प्राण ऋषि का वाचक नहीं है। "**अयमेव वसिष्ठः, अयमेव भारद्वाजः, अयमेव अत्रिः**" इसका मतलब यह नहीं कि वसिष्ठादि प्राण पर्याय हैं। और जो उन्होंने बोला था अधिक ऋचाओंवाले ऋषि, कोई मध्यम ऋषि, यहां पर केवल ऋषियों की कोटियां बतलाई गई है। यह प्राण की महिमा अलंकार रूप से बतलाई गई है। ऋषियों की सृष्टि में वसिष्ठ है। यह अर्थवाद है, जैसे ऋषियों के वसिष्ठ श्रेष्ठ है, उसी तरह यहां प्राण सबसे उत्तम है। सौन्दर्य को देखने का यत्न करो। इस सौन्दर्य को क्यों खराब करते हो? अगर बात नहीं मानोगे, तो बात उलटी पड़ेगी। जब सूक्त पर लिखा होगा वामदेव ऋषि है, तो प्राण कैसे मन्त्रद्रष्टा होगा, वह तो जड़ है। आगे आपने विश्वकर्मा भौवन के विषय में कहा कि यहां पर कोई व्यक्ति विशेष नहीं है। Historical person ages नहीं है, यह उपाधियां हैं। ऋग्वेद के कई सूक्तों का ऋषि और देवता एक दिया है। जहां विश्वकर्मा भौवन ऋषि दिया है, वह सर्वमेध यज्ञ करनेवाले राजाओं के नामों में से एक विश्वकर्मा भौवन भी है। "**एतेन ह वा ऐन्द्रेण महाभिषेकेण तुरः कावशेयो जनमेजयं पारीक्षितमभिषिषेच। तस्माद् जनमेजयः पारीक्षितः समन्तं सर्वतः पृथिवीं जयन् परीयायाश्वेन च मेध्येनेजे। तदेषाभियज्ञगाथा गीयते, इति। आसन्दीवति धान्यादं रुक्मिणं हरितस्रजम्। अश्वं बबन्ध सारङ्गं देवेभ्यो जनमेजय इति। एतेन ह वा ऐन्द्रेण महाभिषेकेण च्यवनो भार्गवः शार्यातं मानवमभिषिषेच। तस्माद् शार्यातो मानवः समन्तं सर्वतः पृथिवीं जयन् परीयायाश्वेन च मेध्येनेजे, देवानां हापि सत्रे गृहपतिरास। एतेन ह वा ऐन्द्रेण महाभिषेकेण सोमशुष्मा वाजरत्नायनः शतानीकं सात्राजितमभिषिषेव। तस्माद् शतानीकः सात्राजितः समन्तं सर्वतः पृथिवीं जयन् परीयायाश्वेन च मेध्येनेजे। एतेन ह वा ऐन्द्रेण महाभिषेकेण पर्वतनारदावाम्बाष्ठ्यमभिषिषिचतुस्तस्मादाम्बाष्ठ्यः समन्तं सर्वतः पृथिवीं जयन् परीयायाश्वेन च मेध्येनेजे। एतेन ह वा ऐन्द्रेण महाभिषेकेण पर्वतनारदो युधांश्रौष्ठिमौग्रसैन्यमभिषिषिचतुस्तस्माद् युधांश्रौष्टिरौग्रसैन्यः समन्तं सर्वतः पृथिवीं जयन् परीयायाश्वेन च मेध्येनेजे। एतेन ह वा ऐन्द्रेण महाभिषेकेण कश्यपो विश्वकर्माणं भौवनमभिषिषेच। तस्माद् विश्वकर्मा भौवनः समन्तं सर्वतः पृथिवीं जयन् परीयायाश्वेन च मेध्येनेजे**"। [ऐतरेय ब्राह्मण ८।२१]। इसी प्रकार यहां "**आम्बाष्ठ्य**" का वर्णन है, ऐसे ही और राजाओं का वर्णन है। आगे कश्यप ऋषि ने विश्वकर्मा भौवन को यज्ञ कराया। उसने ख्याल किया कि मैं पृथिवी दान में दे दूं। भूमि बोली—"**कोई मनुष्य मुझे नहीं दे सकता। हे विश्वकर्मन भौवन! मुझे देने की इच्छा करता है? मैं जल में डूब जाऊंगी।**" इन सब राजाओं का वर्णन निरुक्त में भी आता है। शतपथ ब्राह्मण में भी विश्वकर्मा भौवन के बारे में लिखा है—"**भूतेष्वात्मानं जुहवानि भूतानि चात्मनीति, तत्सर्वेषु भूतेष्वात्मानं हुत्वा भूतानि चात्मनि सर्वेषां भूतानां श्रैष्ठ्यं स्वाराज्यमाधिपत्यं पर्यैत्तथैवैतद्यजमानः सर्वमेधे सर्वान् मेधान् हुत्वा सर्वाणि भूतानि श्रैष्ठ्यं स्वाराज्यमाधिपत्यं पर्येति**" [शत० १३।७।१।१]। अर्थात् व आत्मयाजी हो गया। यह मैंने विचार करने की सामग्री दे दी। आप विचार करें। मैंने खण्डन करने का यत्न नहीं किया। विश्वकर्मा व्यक्तिविशेष है या नहीं, यह विचार लेवें। ऋषि व्यक्ति विशेष है। यास्क कहते हैं—"**ऋषि कुत्सो भवति कर्ता स्तोमानामित्यौपमन्यवः**" [नि० १०।३२]। यहां कर्ता कहा है, उसका अपना मत नहीं है। परन्तु औपमन्यव कोई नास्तिक

तो नहीं था। जो मैंने "**श्री ठाकुर अमरसिंह जी का ध्यान दिलाया था**", वहां बल इस बात पर था कि वहां "**देवापि**" मनुष्य था। "**तुर्वश**" शब्द मनुष्य नामों में निघण्टु में पढ़ा है। मनुष्य शब्द "**देवापि**" के साथ समानाधिकरण में आया है। इसी प्रकार ऋषियों के लिये कारु, च्यवन आदि शब्द आये हैं। ऋग्वेद ६।११४।२ में "**ऋषे मन्त्रकृतां स्तोमैः कश्यपोद्वर्धयन् गिरः**" यहां पर "**मन्त्रकृतां**" है, न कि "**मन्त्रदृशां**"। यहां भूतार्थ में कृत प्रत्यय है। मेरे पास तो समाधान है, वेद आदि साहित्य है, उसमें सब प्रकार की रचना है। पोइट Poet (कवि) पात्र बनाते हैं, इसी प्रकार फर्जी आख्यान बनाया गया है। जहां-जहां नदी का नाम आया है, "**वहां पर मन्त्रकर्ता ने=चाहे वह ऋषि था या ईश्वर**", उसने नदी को पात्र बनाया है। जहां पर अपना वर्णन ऋषि करता है, वहां उसका देवता भी वही ऋषि हो गया है। पुरूरवा, उर्वशी और यमयमी की तरह वह जिस मन्त्र की ओर से है, वही उसका "**ऋषि**", और जिसके मुत्तालिक है, वह उसका "**देवता**" है। यास्कादि ऋषियों की परिभाषा में देवता से और भी मतलब है। निरुक्त पृष्ठ ५५—"**तत्र सरस्वती इत्येतस्य नदीवद्देवतावच्च निगमा भवन्ति**"। [नि० २।२३]। सरस्वतीवाले मन्त्रों में नदीवत् और देवतावत् निगम होते हैं। "**अपि ह्यदेवता देवतावत् स्तूयन्ते**" [नि० ७।४]। इसका अर्थ भी कर लेता। मेरा मतलब यह है कि सबजेक्ट मैटर है, Subject Matter ही देवता है, ऐसा नहीं। पण्डित भगवद्दत्त जी के लेक्चर में से १४-१५ पाइंट हैं। पहिले ऋषि का प्रकरण समाप्त कर लूं, फिर उनके विषय में कहूंगा। निरु० १०।५ में कहा है—"**ऋषिर्नाभाको बभूव**", और ऋ० ८।३९ का नाभाक काण्व ऋषि है। अगले ४०वें सूक्त का भी वही ऋषि है। "**अभ्यर्च नभाकवदिन्द्राग्नी यजसा गिरा। ययोर्विश्वमिदं जगदियं द्यौः पृथिवी मह्युपस्थे बिभृतो वसु नभन्तामन्यके समे**"॥ [ऋक् ८।४०।४]। "**नभन्तामन्यके समे**" यह पाठ इस सूक्त के अन्तिम मन्त्र के सिवाय सब मन्त्रों के साथ में आता है। इस मन्त्र का अर्थ है—"पूजा करो नभाक के समान इन्द्राग्नी की।" तथा "**प्र ब्रह्माणि नभाकवदिन्द्राग्निभ्यामिरज्यत। या सप्त-बुध्नमर्णवं जिह्मवारमपोर्णुत इन्द्र ईशान ओजसा नभन्तामन्यके समे**" [८।४०।५]। स्त्रोतों को पहुंचाओ इन्द्राग्नी की तरफ से नभाक के समान। "**नभाकस्यापत्यं नाभाकः**" नभाक बाप का नाम है, और नाभाक पुत्र का नाम है। इसी सूक्त का बारहवां मन्त्र है—"**एवेन्द्राग्निभ्यां पितृवन्नवीयो मन्धातृवदङ्गिरस्वदवाचि। त्रिधातुना शर्मणा पातमस्मान् वयं स्याम पतयो रयीणाम्**" [ऋक् ८।४०।१२]। स्तुति की गई है नये तौर पर इन्द्राग्नी की, अपने पिता के समान, मन्धाता के समान, अङ्गिरस के समान। इससे स्पष्ट है कि यह सब ऋषि व्यक्ति विशेष हैं। निरुक्त [१०।५] में मन्त्र दिया है—"**तमू षु समना गिरा पितॄणां च मन्मभिः। नाभाकस्य प्रशस्तिभिर्यः सिन्धूनामुपोदये सप्तस्वसा स मध्यमो नभन्तामन्यके समे**" [ऋक् ८।४१।२]। यहां पर कहा है—"**ऋषिर्नाभाको बभूव**" [नि० १०।५] "**तथा च हैरण्यस्तूपे स्तुतः। आदित्योऽपि सवितोच्यते**" [नि० १०।३२]। गोया सविता और आदित्य पर्याप्त हुये। आगे [नि० १०।३२] कहते हैं कि हिरण्यस्तूप ऋषि ने ऐसा कहा—"**अर्चन् हिरण्यस्तूप ऋषिरिदं सूक्तं प्रोवाच। [नत्वपश्यत्]। तदभिवादिन्येषर्भवति**"—**हिरण्यस्तूपः सवितर्यथा त्वाङ्गिरसो जुहुवे वाजे अस्मिन्। एवा त्वार्चन् नवसे वन्दमानः सोमस्येवांशुं प्रति जागराहम्** [ऋ० १०।१४९।५]। जिस प्रकार हिरण्यस्तूप ऋषि ने तुम्हारी स्तुति की, इसी प्रकार में तुम्हारी स्तुति करता हुआ···। ऋग्वेद के पहिले मण्डल में कई सूक्त हैं, जो कि हिरण्यस्तूप ऋषि के हैं। जैसे १।३५।१।११ पर सवितृस्तोत्रम्, ऋषि हिरण्यस्तूप, आङ्गिरस, देवता सविता लिखा है। आगे इसकी पुष्टि के लिये ऐतरेय ब्राह्मण ३।२४ में देख लो। वह व्यक्ति विशेष था, उपाधि नहीं।

(शास्त्रार्थ की आठवीं बैठक आरम्भ दिनांक २१-५-१९३१ ई०)

(समय : सायंकाल)

श्री पण्डित विश्वबन्धु जी शास्त्री एम० ए०—

मैं आप पर सवाल नहीं करूंगा। निरुक्त के शेष स्थलों पर अपने विचार प्रकट करूंगा। निरुक्त ९।२३।२४—"**द्रुघणो द्रुममयो घनः। तत्रेतिहासमाचक्षते—मुद्गलो भार्म्यश्व ऋषिर्वृषभं च द्रुघणं च युक्त्वा संग्रामे व्यवहृत्य आजिं जिगाय**"। मुद्गल नाम के ऋषि भृम्यश्व के पुत्र ने द्रुघण को रथ से जोड़कर संग्राम में विजय प्राप्त की। इस वार्ता का अनुमोदन करने वाली ऋचा को नीचे देता है। "**तदभिवादिन्येषर्ग्भवति**" [नि० ९।२३]—"**इमं तं पश्य वृषभस्य युञ्जं काष्ठाया मध्ये द्रुघणं शयानम्। येन जिगाय शतवत्सहस्रं गवां मुद्गलः पृतन्याज्येषु**" [ऋ० १०।१०२।९]॥ इसका अर्थ यास्क ने इस प्रकार किया है—"**इमं तं पश्य वृषभस्य सहयुजं काष्ठाया मध्ये द्रुघणं शयानम्। येन जिगाय शतवत्सहस्रं गवां मुद्गलः प्रतनाज्येषु। पृतनाज्यमिति सङ्ग्रामनाम। पृतनानामजनाद्वा, जयनाद्वा, मुद्गलो मुद्गवान् मुद्गगिलो वा। मदनं गिलतीति वाः, मर्दं गिलो वा, मुदं गिलो वा। भार्म्यश्वो भृम्यश्वस्य पुत्रः। भृम्यश्वो भृमयोऽस्याश्वाः। अश्वभरणाद्वा**" [नि० ९।२४]। "**भार्म्यश्व**" भृम्यश्व का लड़का, क्योंकि वह घोड़े बहुत रखता था। बृहद्देवता ८।११।१२। **प्रेतीतिहाससूक्तं तु मन्यते शाकटायनः। यास्को द्रौघणमैन्द्रं वा वैश्वदेवं तु शौनकः॥ आजावनेन भार्म्यश्व इन्द्रासोमौ त मुद्गलः। अजयद्वृषभं युक्त्वा ऐन्द्रं च द्रुघणं रथे॥**" "**प्रते रथं०**" (ऋ० १०।१०२) इस सूक्त को शाकटायन इतिहास-सूक्त मानता है। यास्क द्रुघण और इन्द्र देवतावाला, और शौनक विश्वदेव देवतावाला मानता है। इस सूक्त से मुद्गल भार्म्यश्व ने एक बैल और इन्द्र के द्रुघण को रथ में जोड़कर युद्ध में विजय प्राप्त की। यह सूक्त तो अस्पष्ट है। यह मुद्गल ऐतिहासिक है या नहीं, यह अनिश्चित् है। यास्क के शब्द स्पष्ट हैं कि मुद्गल ऋषि हुआ है। पण्डित भगवद्दत्त जी के ब्राह्मणों के इतिहास में मौद्गल्य का इतिहास है। मुद्गल भी इसका पिता अवश्य होगा। योरोपियन स्कालर भी अभी निश्चित नहीं कर सके। मित्रावरुण की स्तुति में अथर्ववेद ४।२९।३ देखिये—"**यावङ्गिरसमवथो यवागस्ति मित्रावरुणा जमदग्निमत्रिम्। यौ कश्यपमवथो यौ वसिष्ठं तौ नो मुञ्चतमंहसः**"॥ जिन्होंने अङ्गिरस की रक्षा की, जमदाग्नि की जिन्होंने रक्षा की, जिन्होंने वसिष्ठ वद्ध्रयश्व की रक्षा की, जिन्होंने भारद्वाज-विश्वामित्र की रक्षा की। पाणिनि ने विश्वामित्र, कक्षीवान्, प्रस्कण्व, हरिश्चन्द्र इन सबकी सिद्धि ऋष्यर्थ में मानी है। [यास्क के अनुसार] प्रस्कण्व की सिद्धि कण्व पुत्र अर्थ में है। मेधातिथि और गौतम आदि ऋषि कैसे हैं? इसके लिये अलग मन्त्र देखिये—"**यौ श्यावाश्वमवथो वद्ध्र्यश्वं मित्रावरुणा पुरुमीढमत्रिम्। यौ विमदमवथः सप्तवध्रिं तौ नो मुञ्चतमंहसः**"। [अथर्व ४।२९।४]। मेरी टेर को सुनो। मैं जो "**सप्तवध्रि**" हूं, उसको पाप से छुड़ाओ। मैं बार-बार पुकार रहा हूं इसमें "**सप्तवध्रि**" शब्द ऋषि के लिये आया है। "**यौ भरद्वाजमवथो यौ गविष्ठिरं विश्वामित्रं वरुण मित्र कुत्सम्। यौ कक्षीवन्तमवथः प्रोत कण्वं तौ नो मुञ्चतमंहसः॥ यौ मेधातिथिमवथो यौ त्रिशोकं मित्रावरुणावुशनां काव्यं यौ। यौ गोतममवथः प्रोत मुद्गलं तौ नो मुञ्चतमंहसः**"॥ [अथर्व० ४।२९।५।६]। वह ऋषि थे, इसके लिये ऋग्वेद का भी प्रमाण देता हूं। ऋग्वेद ५।७८ यह अश्वियों का सूक्त है। पहले सूक्त का ऋषि अत्रि है। यह सूक्त उसके पुत्र सप्तवध्रि का है। इसके मन्त्र ५-६ में—"**सप्तवध्रिं च मुञ्चतम्**", और "**ऋषये सप्तवध्रये**"

पाठ आया है। अपने मुंह से ऋषि बन गया। वेद में ऋषि कारु स्तोता विप्रादि शब्द जिस तरह शायर अपनी कविता में अपना उपनाम देते हैं, उसी तरह के हैं। अब "**तुर्वश**" क्या है ? पण्डित जी ने कहा था कि तुर्वशादि के विषय में कोई नई बात भी लाये हो, या जो मैकडानल ने लिख दिया वही है। वह बातें पहली पेश हो रही हैं। निघण्टु में मनुष्यनामों में "**तुर्वश**" शब्द पड़ा है। निघण्टु की शैली ऐसी है, जैसे २२ करोड़ हिन्दुओं में मनुष्यत्व है। इसी प्रकार यहां Genesie Names भी हैं, सामान्य भी। निघण्टु पृष्ठ ११ पर "**गति**" नामों में "**डीयते प्लवते जवति**" **यह सब गतिविशेष के नाम हैं।** निघण्टुकार ने कहा है कि यह सब गतियां हैं। पृष्ठ १५ में "**बहु**" नामों में "**उरू**" और "**शतम्**" दिये हैं। "**उरु**" विस्तारार्थ में है, "**शत**" बहुत होने से बड़े अर्थ में। विशेषता होते हुये भी बहुत का अर्थ Common (कॉमन)। इसी तरह "**अल्प**" शब्द। "**रूप**" नामों में "**अर्जुन ताम्र अरुष**" पढ़े हैं। इन सब में रूप Common हैं, रंग अलग-अलग हैं। इसी तरह मनुष्यों में मनुष्यत्व Common है, परन्तु तुर्वश आदि अलग-अलग प्रकार के मनुष्य हैं। ऋ० १।३६।१७ और १८ में—**कण्व, मेधातिथि, बृहद्रथ** और **तुर्वश** शब्द आये है। "**पञ्चविंश-ब्राह्मण**" और "**तैत्तिरीय ब्राह्मण**" में इनका ऐतिहासिक सम्बन्ध मिल जायेगा। ऋ० १०।४६; ४।१६।६ और १।५४।६ को देख लेवें। १।६८।११ को भी देख लेवें। १।१७४।८ और ८।१६।१४; ८।४५।२७ पर कई शब्द इकट्ठे आये हैं। इनका इतिहास किसी का कहीं और किसी का कहीं मिल जाता है। ऋ० १।१०८।८ में यह शब्द "**यदु द्रुह्यु**" और "**पुरु**" के साथ आया है। ८।४।१।२ पर "**अनु**" न कहकर "**आनव**" कहा है। आनव—अनु का लड़का, इसमें तद्धित डालकर और भी मुश्किल कर दिया है। इसके साथ "**तुर्वश**" का सम्बन्ध भी मिल जाता है। अथर्ववेद कुन्ताप सूक्त २०।१२७।१ में—"**इदं जना उप श्रुत नराशंस स्तविष्यते। षष्टिं सहस्रा नवतिं च कौरम आ रुशमेषु दद्महे**"॥ इसमें नरों की कथा "**कौरम**" की दान-स्तुति आयी है। यास्क भी "**नराशंस**" का अर्थ—"**येनन नरा: प्रशंसन्ते स नराशंसो मन्त्र:**" [नि० ६।६]। अभी आपकी "**अथर्व संहिता**" का भी निश्चय नहीं हुआ। कालेज रिसर्च डिपार्टमेन्ट की तरफ से १८ काण्डयुक्त अथर्ववेद सिद्ध किया गया है। ऋग्वेद की एक शाखा से कुन्ताप सूक्तों का सम्बन्ध दिखाया गया है। पिछले काण्ड न भी हों, तो भी यह तो हैं ही। "**आनव**" के साथ "**यादव**" भी आता है। ऋ० ४।३०।१७ में—"**उतत्या तुर्वशा यदु**" पाठ आया है। यहां पर क्या अर्थ करेंगे ? यदि In genesie करें। यदि "**तुर्वश**" का अर्थ मनुष्य है, और "**यदु**" का भी मनुष्य हो, तो उससे कुछ भी अर्थ नहीं निकलेगा। शतपथ १३।५।४।१६ में "**तौर्वश उदीरत**", उसके साथ "**पांचाल सत्राषाद्**" राजा का वर्णन भी आया है। **कुरुङ्ग, तुर्वश** और **पांचाल** का परस्पर सम्बन्ध भी प्रतीत होता है। इसलिये पण्डित राजाराम जी ने "**तुर्वश**" शब्द का निश्चित अर्थ न करके "**तुर्वश**" ही लिख दिया था। मैं चाहता तो यह था कि मेरे दोस्त को सब Theories की आलोचना करता। तथा··· (बीच में)···

श्री पण्डित भगवद्दत्त जी रिसर्चस्कालर—

पण्डित राजाराम जी ने लिखा है कि निघण्टु कश्यप प्रजापति ने बनाया है, जो कि अत्यन्त प्राचीन है। जब कि यदु आदि जातियां थीं ही नहीं। और यह भी कह देवें कि यह मन्त्र यदु के बाद बना।

श्री पण्डित विश्वबन्धु जी शास्त्री एम० ए०—

इसका उत्तर पण्डित राजाराम जी दें, मैं नहीं देता। महाभारत के प्रमाण में "**तुर्वसू**" पाठ है। "**ययाति**" ने सारा वेद पढ़ा, यदि वेद पहिले मौजूद न था, तो पढ़ा कैसे ? "**कुत्स्न वेद**" का तो भगवद्दत्त जी को पता ही नहीं। अभी तक लिखकर छाप रहे हैं। "**कृत्सन**" शब्द बड़ा Dangerous है। जब "**यदु**" आदि पैदा नहीं हुए

थे, तो वेद में कैसे ? ऋग्वेद में "**ययाति**" का जिक्र आता है। ऋ० १।३१।१७ में—"**ययातिवत्सदने पूर्ववच्छुचे**" यहां वत् का अर्थ समान है। "**तेन तुल्यं क्रिया चेद्वतिः**" [अ० ५।१।११४] ययाति के समान। **ययाति** बहुत जाता होगा, उसके तुल्य ऐसा यौगिक प्रक्रिया से कुछ अर्थ नहीं हो सकता। ऋ० १।४५।३ में "**अङ्गिरस्वत्**" इत्यादि शब्द आये हैं। निरुक्त में स्वयं कहा है—"**अङ्गिरसः ऋषयः**"। अब आप स्वयं विचार लें कि महाभारत को मानेंगे या वेद को ? दोनों में विरोध होने पर वेद माना है। इसका उत्तर सोच लेना। वेदभाषा के सम्बन्ध में पण्डित भगवद्दत्त जी ने viluntion theory को कहा हैं। यह आर्यसमाज के सिद्धान्त के विरुद्ध है। स्वामी जी की थ्यूरी चार ऋषियों की है। पंण्डित भगवद्दत्त जी वेदों को ईश्वरीय नहीं मानते।...(बीच में)...,

श्री पण्डित भगवद्दत्त जी रिसर्चस्कालर—

"मानता हूं"।

श्री पण्डित विश्वबन्धु जी शास्त्री एम० ए०—

पण्डित भगवद्दत्त जी लौकिक भाषा अलग-अलग मानते हैं। और प्रवचन की भाषा अलग-अलग मानते हैं। क्योंकि काठक संहिता, मैत्रायणी संहिता आदि में लौकिक भाषा में पाठ मौजूद हैं। "**अनृतं हि गाथानृतं-नाराशंसीः**" काठ सं० १४।५। "अनृत **मनुष्याः**" श० १।१।१।४। पण्डित जी ने अनृतं का अर्थ मनुष्य किया है, मानव कल्पना गाथा है। "**ब्राह्मण ग्रन्थ मनुष्यों की कृति होने से वेद नहीं हो सकते**"। यह आपकी थ्यूरी है, परन्तु वह गाथा वेद में भी है, इससे वेद भी झूठा सिद्ध होगा, मैं प्रमाण दूंगा। आपने बात उठाई तो सही, किन्तु आपसे यह प्रश्न हल नहीं हुआ। इसलिए आपने कल्पना चलाने का यत्न किया कि ब्राह्मण और वेद की गाथायें अलग-अलग हैं।

श्री पण्डित भगवद्दत्त जी रिसर्चस्कालर—

फिर मुझे समय दीजिये।

शास्त्रार्थ के प्रधान श्री महात्मा हंसराज जी—

उनको बोलने दें।

श्री पंण्डित विश्वबन्धु जी शास्त्री एम० ए०—

आपका रूलिङ्ग था कि मेरी स्पीच अन्त में होगी।

शास्त्रार्थ के प्रधान श्री महात्मा हंसराज जी—

यह नहीं। मैंने यही कहा था और आपने भी डिमाण्ड किया था कि आपके बाद पण्डित भगवद्दत्त जी न बोलेंगे। मैंने यह नहीं कहा कि आपके बाद कोई भी न बोलें। मैं यदि ६॥ के बाद Extand नहीं करूंगा तो पण्डित भगवद्दत्त जी को समय नहीं दूंगा।

श्री पण्डित विश्वबन्धु जी शास्त्री एम० ए०—

मेरी स्पीच लास्ट में हो, तब मैं बोलूंगा, नहीं तो नहीं।

शास्त्रार्थ के प्रधान श्री महात्मा हंसराज जी—

यदि कान्फ्रेंस ६॥ के बाद रात को १०, ११ बजे तक रहे, तब आपको मौका दिया जायगा।

श्री पण्डित विश्वबन्धु जी शास्त्री एम० ए०—

मैं आप सबके व्याख्यान सुनने के लिए तैयार हूं, परन्तु पण्डित लोगों के नहीं। आपने यह कहा था कि किसी को समय नहीं मिलेगा। आप यह कहें कि आपका रूलिङ्ग स्टेण्ड करता है? मैं तब बोलूंगा, [यह कह कर पण्डित विश्वबन्धु जी चुप होकर बैठ गये]।

शास्त्रार्थ के प्रधान श्री महात्मा हंसराज जी—

मैंने यह रूलिङ्ग नहीं दिया था कि आपके बाद किसी को बोलने नहीं दिया जायगा, या आपकी स्पीच अन्तिम होगी। आपने यही कहा था कि पण्डित भगवद्दत्त जी को आपके बाद बोलने का समय न दिया जावे। यदि कान्फ्रेंस को आज साढ़े छः बजे समाप्त कर दिया जायगा, तब उनको भी समय नहीं दिया जायगा।

श्री पण्डित विश्वबन्धु जी शास्त्री एम० ए०—

किसी को प्रतिनिधि रूप में भी समय न दिया जाय। आपका यह Rulling था कि जो-जो एक दल के बोल चुके हैं, उनको दुबारा समय नहीं दिया जायेगा।

शास्त्रार्थ के प्रधान श्री महात्मा हंसराज जी—

बहुत अच्छा, प्रतिनिधि रूप में भी उनको समय नहीं दिया जायगा। और जो एक दल के बोल चुके हैं, उन्हें भी समय नहीं दिया जायगा। परन्तु यदि हम फैसला करें कि यह कान्फ्रेंस रात के १० बजे तक जारी रहेगी, या कल दुपहर तक जारी रहेगी, तो उस अवस्था में उनको भी समय दिया जायेगा, आपको भी समय दिया जायेगा, तथा औरों को भी समय दिया जायेगा।

श्री पण्डित ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु—

आरम्भ में आपने अपनी कोई स्थिति नहीं रखी, न आप वादी बन कर ही हमारे सामने आये, और न शंका के रूप से! अब अन्त में आकर सारे प्रश्न आपने रख दिये हैं। इण्डेक्स का बोझ लाद दिया। अब न्यायोचित यही है कि आप अपने प्रश्नों का उत्तर भी सुनलें। हमें आग्रह नहीं, किन्तु समय न मिलने पर जवाब किस तरह दिया जा सकता है?

श्री प्रोफेसर पण्डित राजाराम जी—

पण्डित चारुदेव जी इसी विश्वास से नाराज होकर चले गये हैं कि अब उन्हें समय नहीं मिलना! (मिलेगा)।

श्री पण्डित विश्वबन्धु जी शास्त्री एम० ए०—

इन्होंने लौकिक भाषा का उदाहरण दिया है—"तद्वै स प्राणोऽभवन् महाभूत्वा प्रजापतिः। भुजो भुजिष्या विस्वैतद यत्प्राणान् प्राणयत् पुरि"॥ श० ७।५।१।२१॥ "अन्तरं मृत्योरमृतं मृत्यावमृतमाहितम्। मृत्युर्विवस्वन्तं वस्ते मृत्योरात्मा विवस्वति"॥ श० १०।५।२।४॥ परन्तु इससे भी आसान मन्त्र वेद में पाये जाते हैं—"यस्मिन्त्सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः। तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः॥ यजु० ४०।७॥ यत्स्वप्ने अन्नमश्नामि न प्रातरधिगम्यते। सर्वं तु तदस्तु मे शिवं नहि त दृश्यते दिवा"॥ अथर्व० ७।१०१।१॥ इससे वेद भी मानवीय सिद्ध हो गये। "त्वं स्त्री त्वं पुमानसि त्वं कुमार उत वा कुमारी। त्वं जीर्णो दण्डेन वञ्चसि

त्वं जातो भवति विश्वतोमुखः" ।। अथर्व० १०।८।२७।। "**बालादेकमणीयस्कमुतैकं नैव दृश्यते । ततः परिष्वजीयसी देवता सा मम प्रिया**" ।। अथर्व १०।८।२५।। मूल वेद में इतने आसान मन्त्र मौजूद हैं। यह भाषा लौकिक भाषा के साथ मिलती-जुलती है। इनका गाथा नाम है, गाथा ऋचाओं को भी कहते हैं, गाथा वेदों में भी मौजूद हैं, ऐसा श्रौत और ब्राह्मण ग्रन्थों के प्रमाण से सिद्ध है। आपकी पुस्तकों में आपने इन्द्र गाथा आदि को माना है। गाथा लौकिक के आधार पर है, यह वाद कहीं नहीं पाया जाता। गाथा और नाराशंसी अनृत हैं, तो वेद में क्यों हैं ? आप अपनी पुस्तक के १ पृ० पर कहते हैं—"**ब्राह्मणों का प्रवचन मन्त्रों के प्रकाश के पीछे हुआ। इसलिए इनका नाम वेद में नहीं होना चाहिए**"। वेद में गाथा नाराशंसी का वर्णन आया है—"**रैभ्यासीदनुदेयो नाराशंसी न्योचनी। सूर्याया भद्रमिद्वासो गाथयैति परिष्कृतम्**" ।। ऋ० १०।८५।६।। "**इतिहासस्य च वै स पुराणस्य च गाथानां च नाराशंसीनां च प्रियं धाम भवति य एवं वेद**" ।। अथर्व० १५।६।१२।। कुन्ताप सूक्त में इन्द्रगाथा आती है। गाथा और नाराशंसी वेद में बड़े आदर से आया है। "**कर्माणि याभिः कथितानि राज्ञां दानानि चोच्चावचमध्यमानि। नाराशंसीरित्यृचस्ताः प्रतीयाद् याभिः स्तुतिर्दाशतयीषु राज्ञाम्**" ।। बृहद्देवता ३।१५४।। **अर्थात् राजाओं की जिससे स्तुति होती है, उन ऋचाओं को** "**नाराशंसी**" कहते हैं, ऐसा शौनक महर्षि प्रणीत पुस्तक में लिखा है। पण्डित भगवद्दत्त जी उन्हें झूठा कहते हैं। शौनक ऋषि उनको ऋचा कहता है। कितनी ही दान-स्तुतियां आई हैं, झूठा शास्त्र वेद में कैसे आया ? मैं चैलेंज करता हूं कि इस प्रमाण का अर्थ गलत किया गया है। दो तरह की ऋचाओं देवता तथा मनुष्यों के भेद में मनुष्यों की हीनता दिखाने के लिए आया है। "**अनृत**" का अर्थ मानवीय नहीं हो सकता। काठक संहिता और मैत्रायणी का भाव यह नहीं है कि नाराशंसी आदि झूठी है। आप ऋषियों का अपमान करते हैं। आप कहते हैं कि मनु बड़ा प्राचीन है। मनु से नाराशंसियों का प्रमाण दिखाऊंगा—"**मनोर्ऋचस्सामधेनीषु अप्यनुब्रूयात् मनुर्वै यत्किञ्चावदत्तद् भेषजमासीत्**" काठक संहिता ११।५।। "**मनोर्ऋचो भवन्ति मनुर्वै यत्किञ्चा-वदत्तद् भेषजमेवावदत्**" ।। मैत्रायणी २।५।। यहां मनु की बनाई ऋचाओं का वर्णन हैं। ऋग्वेद के ऋषियों में मनु का जिक्र है। मेत्रायणी में "**मनोर्ऋचो भवन्ति**" ऐसा लिखा है, और यहां "**अवदत्**" कहा है। "**वेद**" का अर्थ "**व्यक्तायां वाचि**" अर्थात् स्पष्ट कहना है देखना नहीं। प्रातः "**प्रोवाच**" बताया गया था। मैं प्रोक्त और दृष्ट में भेद नहीं मानता हूं। काठकादि संहिताओं के विषय में पण्डित भगवद्दत्तजी ने लिखा है कि इनकी अनुपूर्वी के अनित्य होने से ये संहितायें प्रोक्त हैं, और मूल वेद से नीचे है। मैंने **वेद के निर्णायक शास्त्र बृहद्देवता** से दिखाया कि राजाओं के दान-स्तोत्रों का नाम **नाराशंसी है**। देवताओं के मुकाबले में मनुष्य **गौण** है, इसलिए वहां अनृत का प्रयोग आया है। अतः वहां अनृत का अर्थ झूठा नहीं हो सकता। पण्डित भगवद्दत्त जी ने ब्राह्मण (ग्रन्थ) वेद नहीं हैं, इसके लिए जो प्रमाण दिए हैं, वह भी ठीक नहीं हैं। "**भरद्वाजः क्षुधार्त्तस्तु सपुत्रो विजते वने। बह्वीर्गाः प्रतिजग्राह वृधोस्तक्ष्णोः महातपः**" ।। मनु० १०,१०७।। इसमें "**वृधु**" नामक तरखाण की दान-स्तुति है। इसी प्रकार शांख्यायन और श्रौत में भी यही कथा है। अनुक्रमणी में भी यही है। बृहद्देवता में भी "**अयं य अननवद् वृधस्तुतिः**" ऋग्वेद ६।४५।३१-३५।। तक का "**वृधु तक्षा**" देवता है। कारु ऋषि लोग उनकी स्तुति करते हैं। अगर लौकिक भाषा वेद से पहिले चली जाय, तो वेद उससे पीछे चले जायेंगे। गाथा और नाराशंसी का भी मैंने उत्तर दे दिया है। पण्डित भगवद्दत्त जी के ग्रन्थ पृष्ठ १ पर ब्राह्मण शब्द वेद में नहीं है। तब गाथा आदि का नाम क्यों उसमें आया ? पण्डित भगवद्दत्त जी के ग्रन्थ साहब में पृष्ठ ६८ पर लिखा हैं—"**इस पर हमारा कथन है कि जो गाथायें हमने प्रमाणार्थ उद्धृत की हैं, वह सब पौरुषेय हैं**"। मैंने उनको वेद से सिद्ध कर दिया। मनु बृहद्देवताकार आदि सब ऋषियों की साक्षी भी दे दी। "**मैं वैदिक हूं, परन्तु दयानन्दी नहीं हूं**"। मैं दयानन्द को इस युग का आचार्य मानता हूं परन्तु "**बुलनर को अपना गुरु मानता हूं बुलनर से मैंने पढ़ा है**"। उसने सदा मेरी सहायता की है। कोष के काम के लिए उसने कितना ही मसाला मेरे सुपुर्द कर दिया। ब्राह्म महाविद्यालय को वाचस्पति परीक्षोत्तीर्ण को शास्त्री परीक्षा में बैठने के लिए स्वीकार कराने में बहुत सहायता

की है। इतना होने पर यदि बुलनर को मैंने अपने गुरु कह दिया तो कौनसा बुरा किया ? बुलनर को गुरु कहने से दयानन्द को गुरु नहीं मानना, यह बात नहीं। मैंने **"वेद-सन्देशों"** को महर्षि दयानन्द की पुण्य स्मृति में समर्पण किया है। **"देवयज्ञ-प्रदीपिका"** पण्डित लखपतराय की स्मृति में समर्पण की है। **"आर्योदय"** महात्मा हंसराज जी को समर्पित की है। **"पण्डित भगवद्दत्त जी"** ने शेष शाखाओं के विषय में पृष्ठ १२५ पर लिखा है—"शेष **शाखायें कृत तो नहीं, किन्तु आनुपूर्वी अनित्य होने से प्रोक्त हैं।"** इसके लिए कोई प्रमाण नहीं दिया। कुन्ताप सूक्तों को "**अथर्व-संहितान्तर्गत नहीं हैं**" [ऐसा लिखा]। यह सूक्त अथर्ववेद में छपे हुए हैं, परन्तु आपका यह दावा है कि ये सूक्त अथर्व संहिता में नहीं हैं। आगे आप लिखते हैं कि—"**इन पर पदपाठ भी नहीं है**"। पृष्ठ ११ पर लिखा है—"**इस शतपथ में वेदार्थ की कुञ्जी है**", वैदिक विषयों का भरपूर ज्ञान है, वैदिक ऐतिह्य का प्रामाणिक कथन है। महाभारत के पूर्वोक्त प्रमाण में याज्ञवल्क्य का गर्व अनुचित नहीं। उसका बनाया हुआ ब्राह्मण वस्तुतः अपूर्व है। "**श० ११।५।१।१० में कहा है कि**—पुरूरवा और उर्वशी के आलंकारिक संवाद का यह सूक्त पन्द्रह ऋचाओं का है, ऐसा ऋग्वेदीय कहते हैं। परन्तु **ऋग्वेद १०।९५ में**, जिसके कुछ मन्त्र यहां उद्धृत हैं, १८ ऋचा हैं। शतपथ का संकेत किस शाखा की ओर है, यह ज्ञात नहीं। यह ऋग्वेद पर कटाक्ष है, अब १५ ऋचा हैं। शतपथ के अनुसार वर्तमान ऋग्वेद अप्रमाणित सिद्ध हो गया। "**ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत**" [ऋ० १०।९०।१२] इस मन्त्र में "**उरु तदस्य यद्वैश्यः**" के स्थान पर अथर्ववेद में "**मध्य तदस्य यद्वैश्यः**" [अथ० १९-६।६]। अथर्ववेद तो व्याख्या नहीं। "**अश्मन्वती रीयते सं रभध्वमुतिष्ठत प्रतरता सखायः। अत्रा जहीमोऽशिवा ये असञ्छिवान् वयमुत्तरेमाभि वाजान्**" [यजु० ३५।१०] यजुर्वेद के इस मन्त्र के उत्तरार्ध की जगह ऋग्वेद में "**अत्रा जहाम येऽसन्नशेवाः शिवान् वयमुत्तरेमाभिवाजान्**"। [ऋ० १०।५३।८ पाठ है। आपने जो दलील दी थी कि—"**आनुपूर्वी के अनित्य होने से शाखायें प्रोक्त हैं**", आपके मूलवेदों में भी इसी तरह के पाठभेद हैं, पाठ निश्चित नहीं है। आप इस तरह चार मूल संहिताओं को भी नहीं बचा सकते। कात्यायन ने ऋग्वेद के ८।२४ के २८ से ३० तक तृच को "**सौत्राम्णोऽस्यवरोर्दानस्तुतिः**" कहा है। बृहद्देवता में इसका देवता "**उषा**" कहा है, तो क्या हुआ ? तो क्या इससे यह सिद्ध हो गया कि वेद में दानस्तुतियां नहीं हैं ? अगर एक तृच के सम्बन्ध में भेद हो गया, तो क्या हुआ ? बाकी दानस्तुतियों का क्या होगा ? "**प्रतीतिहाससूक्तं तु मन्यते शाकटायनः। यास्को द्रौघणमैन्द्रं वा वैश्वदेवं तु शौनकः।।** बृह० ८।११।। जब वेद पर विचार होता था, तब सब अपनी-अपनी राय देते थे। तब उन्होंने अपनी-अपनी पृथक्-पृथक् राय भी दे दी हो, तो क्या है ? स्कन्द और दुर्ग कुछ कहें, उनकी ऋषियों के मुकाबले में क्या कदर है ? प्रातः बता दिया गया कि भूतार्थवाद फर्जी भी अर्थवाद होता है। देखिये कहा है—"**आम्नायस्य क्रियार्थत्वादानर्थक्यमतदर्थानाम्। विधिना तु एकवाक्यत्वात् स्तुत्यर्थेन विधीनां स्युः**"।। अर्थवाद झूठा तो नहीं हो सकता। मीमांसकों के मत में वेद क्रियार्थक है। अवयवावयवी भी अनर्थक नहीं। दोनों को मिला कर पढ़ो। विधि के साथ एकवाक्यता हो जाने से विधियां स्तुति के लिए होती हैं। जैसे कोई कहे कि डी० ए० वी० कालेज की एक-एक ईंट में त्यागी पुरुषों का इतिहास भरा हुआ है। यह अर्थवाद होता है। उषा का वर्णन करने के लिए तथा आदित्य के वर्णन के लिए कथायें घड़ी हैं। यास्क ने असली और फर्जी इतिहास में विवेक नहीं किया है। निरुक्तकार कहता है—"**ऋषेर्दृष्टार्थस्य प्रीतिर्भवत्याख्यानसंयुक्ता**" [नि० १०।१०]। इस पर दुर्ग लिखता है—"**अनुभूतेन्द्रमैत्रस्येन्द्रवयस्यस्य गृत्समदस्येन्द्रं प्रति प्रीतिः तुष्टिः भवत्याख्यान-सम्बद्धा**" [पृष्ठ ८३४]। इस सूक्त [ऋ० २।१२] का गृत्समद ऋषि है। इसी के सम्बन्ध में आगे लिखता है—"**अतश्च दर्शयति मन्त्राणामैतिहासिकोऽप्यर्थ उपेक्षितव्योऽसावपि तेषां विषयः**" इति। दुर्ग न भी माने, स्कन्द न भी माने, परन्तु प्राचीन ऋषियों की मोहर जो लग गई, उसे कौन टाल सकता है ? पण्डित भगवद्दत्त ने मेरी Progressive interprettation की Theory के विषय में कहा था। सो अभी तो वेदों के विषय में ही निश्चय नहीं; उपनिषद् और ब्राह्मण ग्रन्थों के विषय में भी अभी निश्चय नहीं हुआ कि वे कब के बने हुए हैं ? उपनिषद् और ब्राह्मण ग्रन्थ

मानवीय हैं। वे सारे के सारे एक समय में नहीं हो सकते। आप मानते हैं कि सारे ऋषि महाभारत काल के आस-पास में हुए हैं। पांच सौ साल के अन्दर सब के मुंह से एक ही बात स्वप्न की तरह निकली, यह Unnatural है। जैसे पीछे अद्वैत, विशिष्टाद्वैत, द्वैतवाद, भिन्न-भिन्न रहे, इसी प्रकार पहले **ऋषियों में मतभेद रहना स्वाभाविक है।** जो अपने अनुकूल होते हैं। वह मुख्य, और शेष गौण हो जाते हैं। शङ्कर ने "**अद्वैतवाद**" का सिद्धान्त बना कर श्वेता-श्वेतर को भी घसीटा, तथा मुख्य और गौण का भेद भी अपने सिद्धान्त के अनुसार किया। जिस श्रुति से अद्वैतवाद की तनिक भी झलक आयेगी वह मुख्य, अन्य सब गौण हैं। दूसरे आचार्यों ने "**विशिष्टाद्वैत**" को मुख्य मान कर बाकियों को गौण कर दिया। माध्वाचार्य भी इसी तरह से हुए। सब के सब स्वतन्त्रतया सिद्धान्त बना कर शास्त्रों में उछेलते हैं, और अपने मत के अनुसार श्रुतियों को इकट्ठा करके मूल बनाते है। यह मेरा मतलव Progressive interPrettation से था। यह मुझको Unhistoric और UnscintiFie Fic प्रतीत होता है।··· (बीच में)···

शास्त्रार्थ के प्रधान श्री महात्मा हंसराज जी—

ऋषि दयानन्द भी इसी श्रेणी में हैं, या नहीं ?

श्री पण्डित विश्वबन्धु जी शास्त्री एम० ए०—

यह बात प्रकरण में नहीं है। भिन्न-भिन्न समयों पर विचारों में भेद होता है। समन्वयं का तरीका ठीक प्रतीत नहीं होता। यह एक असम्भव घटना प्रतीत होती है, मैं इस पर अड़ता नहीं। ऋषियों के सम्बन्ध में मैं अपने विचार बतला चुका। वसिष्ठ विश्वामित्र आदि को व्यक्ति मानना पड़ेगा, क्योंकि वह कर्त्ता नहीं तो द्रष्टा तो थे ही। प्राणों की महिमा बढ़ाने के लिए वसिष्ठादि शब्द आये हैं, किन्तु समाज तो इन्हें व्यक्तिविशेष भी मानता है। मेरा वाद तो यह है कि—**केवल यौगिक अर्थ हमें एक निश्चय पर नहीं पहुंचाता।** यदि अर्थ निश्चित न हो, तो निघण्टु ही कुछ नहीं रहता। मैं तो **ऋग्वेद ऋग्वेद से खुलेगा यह माननेवाला** हूं। मैं तो केवल Entynology के विरुद्ध हूं। जहां-जहां शब्द आया हो, वह प्रतीकें प्रकरण के अनुसार लिखो, और उनको कई बार पढ़ो, फिर एक झलक पड़ेगी। इस प्रकरण में यह शब्द ऐसे आया है, और इस प्रकरण में ऐसे आया है। उस तरह से Comparision करके निघण्टु, निरुक्त, ब्राह्मण ग्रन्थों से सहायता ले लो। यदि एक शब्द एक ही जगह पर आया हो, तो उसका क्या बनेगा ? मेरा विचार है कि जहां वेद नहीं खुल सकता, वहां व्युत्पत्ति का आश्रय कीजिए। संज्ञावाचक शब्द रूढ़ हो चुका है, जैसे अंगुली। जहां अनिश्चित अर्थ हो, जैसे शिरिम्बिठ मेघ और ऋषि का वाचक दर्शाया है, वहां यौगिक प्रक्रिया अर्थ करने में सहायक है, किन्तु प्रकरण देखना आवश्यक है। महज Entynoloist किसी तरह नहीं हो सकता।

शास्त्रार्थ के प्रधान श्री महात्मा हंसराज जी—

कल प्रातः ७ से ११ बजे तक सभा होगी, आज यह आठवीं बैठक शान्तिपाठ के बाद समाप्त होती है, (सभी मिलकर) ओ३म् द्यौ शान्ति·········

(शास्त्रार्थ की नवमी बैठक प्रारम्भ, दिनांक २२-५-१९३१ ई०)

(समय : प्रात:काल)

श्री पण्डित प्रियरत्न जी आर्ष (स्वामी ब्रह्ममुनि जी)—

जो ऋषि दयानन्द ने आर्यसमाज का नियम वेदों के पढ़ने के सम्बन्ध में बनाया है, मेरे ऊपर उसके अनुसार वेद पढ़ने का असर पड़ा। पण्डित विश्वबन्धु जी भी इस नियम का पालन करते हैं। दयानन्द के सामने भी

अनुक्रमणी और ब्राह्मणादि ग्रन्थ थे। उनके होते हुए वेदों को उन्होंने सब विद्याओं का भण्डार और स्वत:प्रमाण माना। दूसरे ग्रन्थ परत:प्रमाण हैं। वेद को उनके पीछे मत लगाओ, वे तो वेदानुकूल होने से प्रमाण हैं। सबसे प्रथम पण्डित विश्वबन्धु जी ने ऋषिवाद का खण्डन किया था उन्होंने कहा था कि **ऋषि मन्त्रकर्त्ता हैं**। ऋषि दयानन्द का मत है कि वह **मन्त्रार्थ द्रष्टा हैं**। उन्होंने कहा कि उपाधिवाद प्रियरत्न का है। मैं दूसरे और तीसरे में कोई भेद नहीं समझता। जिसने दर्शन किया वह "**विश्वामित्र**" था। जो अब भी दर्शन करे, और आगे भी करे, वह "**विश्वामित्र**" हो सकता है। उपाधिवाद के खण्डन में उन्होंने कहा था कि ऐतरेय आरण्यक में जो वचन है, वह प्राण की महिमा है। वहां आत्मा का प्रकरण नहीं, यह कहा गया था। परन्तु अध्ययन से पता चलता है कि वहां आत्मा का नाम प्राण है, अन्य संवाद नहीं। ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के साथ सम्बन्ध रखनेवाले जो विश्वामित्रादि हैं, उनके सम्बन्ध में सायण प्रारम्भ में लिखता है कि विश्वामित्रादि नाम हैं; प्राण की महिमा नहीं कहीं गई। मन्त्र का प्रमाण सायण ने दिया है—"**अपाङ् प्राङेति स्वधया गृभीतोऽमर्त्यो मर्त्येना सयोनिः। ता शश्वन्ता विषूचीना वियन्ता न्यन्यं चिक्युर्ननि चिक्युरन्यम्**"॥ [ऋ० १।१६४।३८] "**एतेन प्राणेन सहेदं सर्वं शरीरजातं समानस्थानकमित्येतत्प्रसिद्धम्। शरीराणि मर्त्यानीत्येतदत्यन्तं प्रसिद्धमिति द्योतयितुं हि शब्दः प्लुतिश्च, प्राण-देवता त्वमृता**"॥ [ऐ० आ० १।८] इसी मन्त्र को पण्डित विश्वबन्धु जी ने "वेद-सन्देश" में देकर "**अमर्त्य**" का अर्थ "**आत्मा**" किया है। मन्त्र के साथ सम्बन्ध रखनेवाली उपाधि उस ऋषि को अवश्य मिलेगी, जो उसके अर्थों का दर्शन करेगा। इसीलिए यह सब आत्मा की उपाधियां हैं।

"**यो ह वा अविदितार्षेयच्छन्दोदैवतब्राह्मणेन मन्त्रेण याजयति वाध्यापयति वा स्थाणुं वर्च्छति गर्त्तं वा पद्यति प्रवा मीयते पापीयान् भवति। यातयामान्यस्य छन्दांसि भवन्ति॥**" [आर्षेय ब्रा० १।१।६] वेद को जानने के लिए छन्द देवता तथा ऋषि को ध्यान में रखकर पढ़ना चाहिए। यहां पर भी यही भाव है। उपाधि को ध्यान में रखना चाहिए। वह ऋषि मन्त्रों को बनानेवाले हैं, इसके सम्बन्ध में आपने कहा—"**कर्त्ता स्तोमानाम्**"। "**ऋषेर्मन्त्रकृतां स्तोमैः**"। यह विचार उनके "**कृञ्**" धातु के अर्थों के भ्रम से हुआ है। "**कृञ्**" धातु का महाभाष्य में बहुत विवेचन है। "**भोजनं कुरु**" में "**कृञ्**" धातु बनाने के अर्थ में नहीं है। इसी प्रकार "**मानव गृह्यसूत्र**" में विवाह-प्रकरण में—"**पश्चादग्नेश्चत्वार्य्यासनानि कल्पयीत,...दक्षिणत उदङ्मुखो मन्त्रकार०**" [मानव गृह्य १।८।१।२]। यहां "**कृञ्**" धातु का अर्थ बनानेवाला नहीं, बल्कि पढ़ना अर्थ स्पष्ट है। इसी प्रकार "**कर्त्ता स्तोमानाम्**" में स्तोमों के पढ़नेवाला अर्थ है। अनुक्रमणी में "**यस्य वाक्यं स ऋषि**" ऐसा लिखा है। यहां बनाने के रूप में अर्थ नहीं लेना चाहिए, किन्तु यहां आधिपत्य में वाक्य है। जैसे "**बुद्धदेवस्य पुस्तकं, न कर्तृरूपेण आपित्वाधिपत्यरूपेज**"। "**इदं पुष्पं भवान् पश्यतु**" इस वाक्य का ऋषि प्रियरत्न, देवता पुष्प। इस वाक्य का बनानेवाला मैं हूं। किसी एक शब्द का बनानेवाला मैं नहीं हूं। "**ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन् मामनुस्मरन्। यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम्**"॥ [गीता ८।१३] इसमें "**ओ३म्**" मन्त्र माना है। तै० आ० १०।२३ में "**ब्रह्मार्पम**" आया है। "**ब्रह्म**" ऋषि है। "**ओ३म्**" के विषय में कोई नहीं मानता कि इसे मनुष्य ने बनाया है। "**ब्रह्म**" भी किसी व्यक्ति विशेष का नाम नहीं। "**मुण्डक**" में कहा है—"**ब्रह्म वेद ब्रह्मैव भवति**" [मुण्डक ६]। अर्थात् ब्रह्म उपाधि को धारण करता है। "**हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्। स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम**"॥ [ऋ० १०।१२१।१] इसका अर्थ कर्तृवाद पक्ष में क्या होगा? यदि कर्त्ता न मानें, तब "**हिरण्यगर्भ**" द्रष्टा की उपाधि होती है। आपके पक्ष के अनुसार सर्प और नदियां ऋषि हैं। यहां उपाधि ही मानना पड़ेगा। आप भी आरोप मानते हैं, आपने कहा था कि ऋग्वेद में "**देवापि**" के साथ मनुष्य विशेष पड़ा हुआ है। वहां "**शन्तनु**" का विशेषण क्यों नहीं, केवल देवापि ही का क्यों है? स्कन्द ने "**देवापि**" का अर्थ "**विद्युत**" स्पष्ट किया है। "**कुरुङ्ग**" अभी निर्णीत नहीं हुआ, आप "**नाभाक**" पर आ गये। '**नाभाक**" जलयुक्त अन्तरिक्ष का नाम है—"**तमू षु समना गिरः पितॄणां च मन्मभिः। नाभाकस्य**

प्रशस्तिभिर्यः सिन्धूनामुपोदये सप्त स्वसा स मध्यमो नभन्तामन्यके समे" ।। **"तं स्वभिष्टौमि समानया गिरा गीत्या स्तुत्या पितृणां च मननीयैं स्तोमैर्नाभाकस्य प्रशस्तिभिः"** ।। [नि० १०।५] यहां जलयुक्त अन्तरिक्ष की "**प्रशस्ति**" अर्थ है। "**पितृ**" शब्द ऋतुओं का वाचक है। "**ऋतयो वै पितरः**" [श० २।६।१।३२]। ऋतुओं की विवेचना करते हुए वृष्टि का प्रकरण है।

श्री पण्डित चारुदेव जी शास्त्री एम० ए०—

"**यास्कीय मतम्**"—मेरा विश्वास है कि निरुक्त के सम्यक् पाठ से यह निश्चय होता है कि उसका निर्वचन का क्या सिद्धान्त है। "**अर्थाधारा व्युत्पत्तिः, व्युत्पत्त्याधारो वा अर्थः**", "**अर्थनित्यः परीक्षेत।** व्युत्पत्ति अर्थ के आश्रित है। वह बता रहा है कि "**गो**" शब्द का अर्थ "**पृथिवी**" क्यों है? Entymology अर्थों को Lead नहीं करती। निरुक्तकार कभी-कभी निरुक्ति नहीं भी करता, और अर्थ कर देता है। अर्थात् अर्थ मुख्य है, व्युत्पत्ति गौण है। प्रकरण के अनुसार सैंकड़ों अर्थ हो सकते हैं। यास्क का सिद्धान्त है कि—"**अग्नि-मित्रादि नाम परमात्मा के नहीं हैं**"। यह द्वादशाध्यायी निरुक्त में कहीं नहीं है। इसमें देवता चेतन माने गए हैं—"**अपि वा पुरुषविधानामेव सतां कर्मात्मान एते स्युः। यथा यज्ञो यजमानस्य, एष चाख्यानसमयः**" [निरु० ७।७] इसका खण्डन नहीं किया। यास्क कहता है कि इन्द्र बिजली उसका कर्मात्मा है। **निरुक्त के अन्दर हमारे मत का पोषण नहीं है।** निरुक्त १३वें अध्याय की पहली पंक्ति से स्पष्ट है कि यह यास्क की कृति नहीं है—"**अथेमा अतिस्तुतय इत्याचक्षते। अपि वा सम्प्रत्यय एव स्यान्माहाभाग्याद्देवतायाः। सोऽग्निमेव प्रथमामह**" [निरु० १३।१]। अर्थात् आचार्य यास्क ने अग्नि को पहले कहा। इससे स्पष्ट है कि इस अध्याय का कर्त्ता कोई अन्य है। दशम अध्याय में यास्क ने कहा—"**वायवा याहि दर्शतेमे सोमा अरङ्कृता। तेषां पाहि श्रुधी हवम्**" ।। [नि० १०।२]। हे दर्शनीय वायो! यहां पर मध्यमस्थानी देवता माना है—"**कमन्यं मध्यमादेवमवक्ष्यत्**"। वरुण भी मध्यमस्थानी देवता माना गया है—"**वरुणो वृणोतीति सतः स मध्यमः**" [नि० १०।३]। निघण्टु में "**वरुण**" का पाठ किया है। "**त्वष्टा**" सूर्य उसका पुत्र मेघ है। यास्क "**त्वष्टा**" को भी माध्यमिक देवता मानता है। "**अग्निरिति शाकपूणिः**" [निरु० ८।१४] ।।

यास्क की प्रतिज्ञा थी कि—"**समाम्नायः समाम्नातः स व्याख्यातव्यः**"। [नि० १।१]। द्वादशाध्यायी में व्याख्या समाप्त हो गई। अब तेरहवें-चौदहवें की क्या आवश्यकता थी? इन अध्यायों में शैली का भेद पाया जाता है। वहां नवीन वेदान्त है, जिसका कि आर्यसमाज खण्डन करता है। चौदहवें अध्याय के अन्त में यास्क लिखता है कि—"**ब्रह्मणः सार्ष्टि सरूपतां सलोकतां गमयति य एवं वेद**"। [नि० १३।४८], **यां कां च देवतां**। सारी द्वादशाध्यायी में हवियां दी हैं। "**य ईं चकार न सोऽस्य वेद य ईं ददर्श हिरुगिन्नु तस्मात्। स मातुर्योना परिवीतो अन्तर्बहुप्रजा निर्ऋतिमाविवेश**" ।। [नि० २।८] वह मध्यस्थानी इन्द्र ही जानता है, वह इन्द्र कौन है? "**ऋषे र्दृष्टार्थस्य प्रीतिर्भवत्याख्यानसंयुक्ता**" [नि० १०।१०] यहां पर आख्यान जोड़नेवाला ऋषि कौन है, और द्रष्टा कौन है? यहां पर भिन्न-कर्तृत्व है। किसी ने कह दिया माया है, वास्तव में युद्ध नहीं। किसी ने कुछ अर्थ किया, और किसी ने कुछ। कहते हैं "**कुरुङ्गो नाम राजा बभूव**" पाठ नहीं है। यह पाठ दुर्ग ने छोड़े हैं। यह प्रायोवाद है कि उसने सारे Text को reproduce किया है। दुर्ग में पाठ है—"**निषद्य-निषद्य हन्तीति [प्राणिवधजीवनः]। अथवा निषण्णम् अस्मिन् पापकमिति नैरुक्ताः**" [नि० दुर्गटीका पृ० २२३] यहां पर दुर्ग ने निरुक्त [३।८] का पाठ नहीं दिया। मैंने दिखा दिया कि व्युत्पत्ति गौण है, और अर्थ मुख्य है।

शास्त्रार्थ महारथी श्री पण्डित बुद्धदेव जी मीरपुरी—

यह कहा गया है कि यास्क मध्यमस्थानी आदि (चेतन) देवता मानता है, किन्तु "**विश्वकर्मा**" शब्द का अर्थ करते हुए जीवात्मा तथा सूर्यपरक अर्थ करता है। द्युस्थानी देवताओं में आत्मा कहां से आया ? यह अर्थ करके कहा है कि "**तत्रेतिहासमाचक्षते**" [नि० १०।२६] इससे स्पष्ट है कि यास्क ने तीनों प्रकार के आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक अर्थ दिखाए हैं। द्युलोक में सूर्यलोक नहीं आता। "**क**" शब्द पर प्रजापति अर्थ किया है। यास्क ने पहिले व्युत्पत्ति कही, फिर कहा—"**अर्थनित्यः परीक्षेत**" [नि० २।१]। आप कहते हैं कि यास्क ने "**गो**" शब्द की व्युत्पत्ति नहीं की। किन्तु वह भी आगे चलकर कर दी है। "**गमयतीषूनिति**"। [नि० २।५]। आपको पौने चार घण्टे का समय मिलने से आपने पांच नये विषय छेड़ दिए। हमारे पास उनका उत्तर देने के लिए समय बहुत कम है। मुद्गलवाले मन्त्र में यास्क इतिहास नहीं मानते। यहां पर उन्होंने खण्डन कर दिया। इससे सिद्ध है कि यास्क इतिहास नहीं मानता। आपने अभी बृहद्देवता का प्रमाण दिया था—"**सवादं मन्यते यास्क इतिहासं तु शौनकः**" इससे भी यही सिद्ध होता है कि यास्क इतिहास नहीं मानता। मुद्गल का अर्थ पहले ११ पदों को जोड़ कर कीजिए। "**मुद्गल**" के प्रकरण में "**मुद्गलानी**" आता है। वहां स्पष्ट है कि स्त्री और पुरुष युद्ध करें। यह सूक्त का सूक्त ही युद्ध के सिद्धान्त का वर्णन करता है। गंगा आदि के विषय में—"**पाशा अस्यां व्यपाश्यन्त वसिष्ठस्य मुमूर्षतः। तस्माद्विपाडुच्यते पूर्वमासीदुरुञ्जिरा**"॥ [नि० ६।२६] उसके बन्धन छूट गये, इससे इसका नाम विपाट् पड़ा, पहिले इसका नाम उरुञ्जिरा था। तो सिद्ध हुआ कि यह मन्त्र वसिष्ठ के बाद बना ? मैं शास्त्र के प्रमाण से अर्थ करता हूं, जिसमें सौन्दर्य भी है। शरीर में दश नाड़ियां होती हैं। अथर्ववेद में—"**शतस्य धमनीनां सहस्रस्य हिराणाम्। अस्थुरिन् मध्यमा इमाः साकमन्ता अरंसत**॥ [अ० १।१७।३] प्रश्नोपनिषद् और योग की पुस्तकों में ७२००० (बहत्तर सहस्र) नाड़ियां बताई हैं। इनमें से दश को मुख्य माना है। इसके अर्थ समानता से नाड़ीपरक होंगे। जैसे—"**चत्वारि शृङ्गा त्रयो अस्य पादा द्वे शीर्षे सप्त हस्तासोऽस्य। त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति महो देवो मर्त्यां आ विवेश**"॥ [ऋग्० ४।५८।३] इस मन्त्र के अर्थ समानता और कल्पना के नहीं हो सकते। "**ये त्रिषप्ताः**" [अथर्व० १।१।१] मन्त्र में त्रिषप्ताः शब्द का अर्थ क्या है ? पण्डित विश्वबन्धु जी ने नदियोंवाले मन्त्र का अर्थ नाड़ीपरक किया है। "**पञ्च नद्यः**" का अर्थ किया है—"**पांच नदियां हमारे शरीर में हैं मन सिन्धु है**"। वसिष्ठ वाले प्रकरण में किसने बन्धन तोड़ दिया ? क्या पानी ने ? और कैसे टूटे ? ऐसे तो वह रुड़के मर जाता। आप यह बतलावें कि यहां व्यपाश्यन्त का कर्त्ता कौन है ? हम इसका अर्थ इस प्रकार से करेंगे—**वसिष्ठ अर्थाद्योगी, वसुषु तिष्ठति, "तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्"**। इस वसिष्ठ के बन्धन इड पिङ्गला आदि में ध्यान लगाने से टूट गये। "**उरुञ्जिरा**" नाम कैसे ? जब तक योगी इसमें ध्यान नहीं जमाता, तब तक यह नाड़ियां आयु की हानि करनेवाली होती हैं। इसमें प्रमाण भी है—"**इडा गङ्गेति विज्ञेया पिङ्गला यमुना नदी। मध्ये सरस्वतीं विद्यात् प्रयागादिसमस्तथा**"। इससे सिद्ध है कि ये गंगादि शब्द नाड़ियों के ही वाचक हैं। श्री पण्डित विश्वबन्धु जी ने भी नाड़ियों परक ही अर्थ किया है। वैदिक साहित्य में कहीं दिखायें कि "**विपाट्**" का पूर्व नाम "**उरुञ्जिरा**" था।

पण्डित विश्वबन्धु जी ने कहा है कि "**मन्धाता**" का क्या अर्थ करोगे ? हमारा उत्तर है कि "**मन्धाता**" मेधावी का नाम है। नभाक और नाभाक एक ही बात है। "**अन्येषामपि दृश्यते**" [अ० ६।३।१३१] से दीर्घ हो गया। "**नभाक**" विद्वान् को कहते हैं। यह तो प्राणों के अन्दर वसिष्ठादि का आरोप है पर्याय नहीं, ऐसा कहा गया था, किन्तु शतपथ ने "**वसिष्ठ ऋषिरिति**" ऐसी मन्त्र की प्रतीक देकर कहा है "**प्राणो वै वसिष्ठ ऋषि**" [श० ८।१।१।६]। "**वाग्वै विश्वकर्मा ऋषिः**" [श० ८।१।२।९]। हम तो कहते हैं कि मन्त्रों में यह नाम व्यक्तिविशेष के नहीं हैं, किन्तु प्राणादि के वाचक हैं। द्रष्टा ऋषि थे, इससे हम इन्कार नहीं करते। आप बतायें

"**राम**" का मुख्यार्थ क्या है ? ऋषियों ने वेद से नाम लेकर रख लिए। भूमि बनाकर "**भूरिति**" [तै० २।२।४।२] ऐसा प्रकाश कर दिया। शिवसंकल्प सूक्त में "**शिवसङ्कल्प**" क्या किसी खास व्यक्ति का नाम है ? "**विश्वकर्मा भौवनः**" का अर्थ ऋषि नहीं, बल्कि परमात्मा है। पण्डित विश्वबन्धु जी ने भी यही अर्थ किया है।

श्री प्रोफेसर पंडित राजाराम जी—

आज पण्डित बुद्धदेव (मीरपुरी) जी ने कहा है कि "**इमं मे गङ्गे यमुने०**" आदि मन्त्र में ये नाड़ियां हैं। पर यह नहीं बताया कि यास्क ने क्या बताया है ? इन्होंने कह दिया कि ऋषि के बन्धन कैसे खुल गये, वह डूब क्यों नहीं गया ? परन्तु निरुक्त का आशय नहीं बताया। महाभारत पढ़कर देख लो कि ऋषि या देवता उसे डुबाना नहीं चाहते थे। उन्होंने पूछा है कि "**व्यपाशयन्त**" का कर्त्ता कौन है ? "**व्यपाशयन्त**" तो यहां पर कर्मकर्त्ता में प्रयोग है, और आप कर्त्ता पूछते हैं। पण्डित जी ने इस पर प्रकाश नहीं डाला—"**तदेतत्परुच्छेपस्य शीलम्**" [नि० १०।४२]। इसका मतलब है कि वह मन्त्र परुच्छेप की कृति है। कल पण्डित ब्रह्मदत्त जी ने कहा था कि वेद में जो इतिहास आते हैं, वह और-और अर्थों में लगाये गये हैं। उन्होंने "**अहल्यायै जारः**" [श० ३।३।४।१८] उदाहरण के रूप में पेश किया। परन्तु यह ब्राह्मण ग्रन्थ का वाक्य है, वेद का नहीं। आर्यसमाज ब्राह्मण ग्रन्थों को वेद नहीं मानता। यह पाठ "**षड्विंश ब्राह्मण**" में आया है। कुमारिल ने ब्राह्मण को वेद मानकर यह पाठ लगाया है। इसी तरह पण्डित जी ने कई स्थलों के विषय में कहा कि यहां भी अर्थवाद माना है। परन्तु यह अर्थवाद भी इतिहास में आ जाता है, मीमांसक ऐसा ही मानते हैं। निरुक्त ३।१७—"**प्रियमेधवदत्रिवज्जातवेदो विरूपवत्। अङ्गिरस्वन् महिव्रत प्रस्कण्वस्य श्रुधी हवम्**"॥ "**प्रियमेधः प्रियास्य मेधा। यथैतेषामृषीणाम् एवं प्रस्कण्वस्य श्रुणु ह्वानम्**"। जिस प्रकार हे देवता ! तूने इन ऋषियों [प्रियमेधवत्, अत्रिवत्, अङ्गिरस्वत्] की सुनी, इसी प्रकार मुझ "**प्रस्कण्व**" की टेर सुन। "**प्रस्कण्वः कण्वस्य पुत्रः**" [नि० ३।१७]। आप देखिए, यास्क इतिहास मानता है। यह प्रमाण आपके विरुद्ध पड़ता है। पण्डित जी ने एक भेद किया था—जड़ इतिहास और व्यक्ति इतिहास। मुझे समझ में नहीं आया कि पण्डित जी का इसमे क्या मतलब था ? जड़ का प्रतिवादी चेतन होता है। पण्डित जी ने कहा कि—"**बुद्धिपूर्वा वाक्यकृतिर्वेदे**"। [वैशे० ६।१।१] यह भी आपके विरुद्ध पड़ता है। आर्यसमाज के सिद्धान्त को जड़ से काटता है। प्रशस्तपाद प्रत्यक्ष और अनुमान यह दो प्रमाण मानता है। शब्द को अनुमानान्तर्गत माना है—"**श्रुतिस्मृतिलक्षणाऽप्याम्नायो वक्तृप्रामाण्यापेक्षः तद्वचनादाम्नायस्य प्रामाण्यम्, लिङ्गाच्चानित्यो, बुद्धिपूर्वा वाक्यकृतिर्वेदे, बुद्धिपूर्वो ददातिरित्युक्तत्वात्**"। [वै० प्रश० पृष्ठ २१३] वाक्य-रचना के होने से वेद नित्य नहीं हैं, किन्तु बनाए हुए हैं। वक्ता के प्रामाण्य की अपेक्षा से आम्नाय का प्रमाण्य होता है। प्रामाण्य तब होता है, जबकि कहनेवाला आप्त होता है। "**लिङ्गाच्चानित्यम्**" यह स्पष्ट कहा है कि आम्नाय अनित्य है। आगे पढ़ा है—"**बुद्धिपूर्वा वाक्यकृतिर्वेदे, बुद्धिपूर्वो ददाति**" फिर प्रश्न है कि उसे प्रमाण कैसे मानें ? तो कहा—"**वक्तृप्रामाण्या-पेक्षः**"। इस पर "**कन्दलीकार**" ने स्पष्ट प्रकाश डाला है—"**प्रामाण्य दोषाभावप्रयुक्तत्वात्**"। नित्यत्व-प्रयुक्त नहीं, मन के नित्य होने पर भी घबराहट के समय उलटे ख्याल पैदा होते हैं, किन्तु चक्षु के अनित्य होने पर भी ज्ञान ठीक होता है, यदि दोष न आये। प्रामाण्याप्रामाण्य दोषाभाव पर निर्भर है। पण्डित भगवद्दत्त जी ने दावा किया था कि हम १२ मिनटों में उड़ा देंगे। आपने प्रमाण दिया—"**दिष्टयुदितार्थावभासनार्थं स इतिहास इत्युच्यते**" [नि० दुर्ग टीका पृष्ठ ८५८]। परन्तु इसका अर्थ नहीं बताया। "**देवातिथि**" को उन्होंने गलत कहा था, अब मैं फिर कहता हूं कि इसे गलत सिद्ध करें। पण्डित जी इन दोनों बातों को निश्चय करके बतायें।

महामहोपाध्याय श्री पण्डित आर्यमुनि जी—

आर्य सिद्धान्त पर बड़ा जोर दिया जाता है। कल आर्य सिद्धान्त की व्याख्या की गई कि जो सत्य सिद्ध हो जाय, वही आर्य सिद्धान्त है। आज हमें जोर दिया जाता है कि आर्यसमाज संहिता को वेद मानता है, ब्राह्मण (ग्रन्थों) को नहीं। आप यदि उन मीमांसकों को पेश करते हैं, तो उनकी सब बातें क्यों नहीं मानते ? यहां चालीस-पचास वर्ष शास्त्रार्थ करते हो गये, सदा यही होता रहा कि एक अंश जो अभिप्रेत हो, वह पेश किया जाता है। आप भी वैसा ही करते हैं। शङ्कर वेद को निरपेक्ष प्रमाण मानता है। जिस अंश में वह मिलता है, उससे कैसे इन्कार कर सकते हैं ? **"बुद्धिपूर्वा वाक्यकृतिर्वेदे"** [वै० ६।१।१]। आप वेद को बनाने का सिद्धान्त क्यों मानते हैं ? क्या यह आर्य सिद्धान्त है ? यदि आप यथाश्रुत ही अर्थ मानते हैं, तब **"मातुर्दिधिषुमब्रवं स्वसुर्जारः शृणोतु नः"** [ऋक्० ६।५५।५] इसका क्या अर्थ करेंगे ? यहां बुद्धिपूर्वक माता=पृथिवी, दिधिषु=सूर्य यह अर्थ करेंगे, तो आप अर्धजरती न्याय करते हैं। वेद सत्य विद्याओं का पुस्तक है। सत्य का अर्थ अस्ति है, आप उनमें से अप्सरा भूत-प्रेत जुआ आदि निकालते हैं। जब ये चीजें हैं, तो सत्य विद्याओं का पुस्तक कैसे है ?

एक आत्माराम है, जिसने गोवध के मन्त्र आपसे अधिक निकाले हैं। **"ये वाजिनं परिपश्यन्ति पक्वं"** [ऋक् १।१६२।१२] इत्यादि मंत्र से जिस तरह मांस का पकाना निकालते हैं, उस तरह बहुत सी बातें निकल सकती हैं। मेरे ख्याल में जैसे इतिहास निकाला जा रहा है, इस प्रकार **"गोवध"** भी निकाला जा सकता है। **"मातुर्दिधिषुमब्रवम्"** [ऋ० ६।५५।५] पिता और पुत्र पर जोर दिया जाता है इसमें अर्थ माता क्यों नहीं किया जाता ? मुझे फिकर है कि जब मैं हरप्रसाद जी के पास गया, तब उन्होंने मुझे एक बात सुनाई कि एक बार एक वैश्य की छाती पर से चूहा निकल गया, तब उसने रोना-पीटना शुरू किया, और कहा कि आज मेरी छाती पर से चूहा निकला, कल गाय, घोड़े, हाथी, भी निकलने लगेंगे। तब तो मेरी छाती एक अच्छी खासी सड़क बन जायगी। इसी प्रकार आप इस आर्य-समाज को भी सड़क बनाते हैं, किन्तु समाज के सिद्धान्तों में आस्था रखते नहीं। अद्वैतवाद और विशिष्टाद्वैत भी इसी तरह से समाज के अन्दर आ जायेगा। आप भाष्य में कहीं सिर नीचे और टांगें ऊपर कर देते हैं, इसका क्या मतलब है ?

श्री पण्डित भगवद्दत्त जी रिसर्चस्कालर—

मुझे अवकाश नहीं मिला कि जो बातें मैंने रखनी हैं, उनको क्रमबद्ध करूं, किन्तु उत्तर सबका दूंगा। पण्डित चारुदेव जी कहते हैं कि अर्थ के आश्रय से व्युत्पत्ति होती है। इसको हम भी मानते हैं, और स्वामी जी भी मानते हैं। वह कहते हैं कि इस प्रकार अर्थ की प्रतीति होती है। जिनका अर्थ भूल गया है, वहां निर्वचन करके अर्थ करना चाहिए। निरुक्त का पाठ है—**"अर्थ नित्यः परीक्षेत"** [नि० २।१], इसे हम भी मानते हैं हम कहते हैं कि **"कुरुङ्ग"** का अर्थ भूल गया है, इसलिए व्युत्पत्ति का आश्रय लेकर प्रकरणानुसार अर्थ करते हैं। आप स्वयं ही सिद्धान्त बनाते हैं, और आप ही फंसते हैं। स्वामी जी पहिले शब्दों का अर्थ नियत कर लेते हैं, फिर वाचक-लुप्तोमालंकार लिखते हैं। दुर्ग से सैकड़ों वर्ष पहिले आनेवाले आचार्य निरुक्त के तेरहवें-चौदहवें अध्याय को निरुक्त का Part मानते हैं। वररुचि भी इसी प्रकार मानते हैं—**"अथेमाः अतिस्तुतयः इत्याचक्षते,"' सोऽग्नित मेव प्रथममन्वाह"** [नि० १३।१]। यह निघण्टु यास्क का बनाया हुआ है, ऐसा पण्डित विश्वबन्धु जी भी मानते हैं। मैंने पुष्ट प्रमाणों से सिद्ध किया है कि यास्क से पहिले भी औपमन्यव शाकपूणि आदि के निघण्टु विद्यमान थे, तथा उन्होंने उनकी व्याख्यायें भी लिखी थीं। उन सब ने अतिस्तुति के देवताओं का संग्रह किया, और अग्नि को ही प्रथम देवता लिखा। उसी का ख्याल करके निरुक्तकार ने कहा है—**"सोऽग्निमेव प्रथम-**

मन्वाह" [नि० १३।१]। दुर्गाचार्य ने भी इसी तरह का अर्थ किया है। यास्क आत्मा का वर्णन तथा ब्रह्म का वर्णन करनेवाले मन्त्र भी देता है। निरुक्त ३।१२ में—"**अथाध्यात्मं यत्र सुपर्णाः सुपतनानि इन्द्रियाणि**" सुपर्ण शब्द का इन्द्रिय अर्थ किया है। यजुर्वेद के एक मन्त्र [अ० १३।५४] का अर्थ करते हुए शतपथ ब्राह्मण में "**प्राणो वै वसिष्ठ ऋषिः**" [श० ८।१।१।६] वसिष्ठ का अर्थ प्राण किया है। जैसे मैं कह चुका हूं कि "**निरुक्त का प्रधान विषय देवतावाद है**", उसका निरूपण करता हुआ अर्थ भी करता है। आपने—"**मायेत्सा ते यानि युद्धान्याहुः**" [श० ११।१।६।१०] पेश किया। मैं चैलेंज करता हूं कि सारे वैदिक लिटरेचर में "**माया**" का वह अर्थ नहीं होता, जो काव्यों में होता है। "**माया**" का अर्थ "**प्रज्ञा**" ही है। पण्डित राजाराम जी ने निरुक्त की भूमिका में लिखा है कि "यह निघण्टु कश्यप प्रजापति का बनाया हुआ है। वह अत्यन्त प्राचीन है, और ययाति तुर्वश आदि पीछे हुए हैं। तो फिर [सामान्य] मनुष्य नाम के सिवाय और किसका आ सकता है? इन बातों को छुआ भी नहीं"। अब पण्डित विश्वबन्धु जी का उत्तर देता हूं। इन्होंने योरोपियन्स के ऐतराज उठा कर रख दिए। आपका कर्त्तव्य था कि आप उनका उत्तर देते।। मैं यत्न कर रहा हूं, परन्तु अकेला आदमी हूं। यदि कुछ जवाब देना था, तो दोनों देते। योरोपियन लोग तो मान भी जायेंगे। परन्तु यहां आग्रह बहुत बढ़ा हुआ है। आपने कहा कि यास्क का यह मत है कि "**मन्त्र बनाये गये हैं**"। पण्डित विश्वबन्धु जी ने कहा—"**तत्परुच्छेपस्य शीलम्**" [नि० १०।४२]; "**कर्ता स्तोमानामित्योपमन्यवः**" [नि० ३।११] आप ईमानदारी से कहें कि क्या यास्क "**मन्त्रद्रष्टा**" नहीं मानता? फर्ज कीजिये कि यह ठीक है कि "**मन्त्रद्रष्टा**" नहीं मानता, तो भी संगति तो लगानी पड़ेगी। पुराने आचार्य समन्वय ही करते रहे। अपने मत को बना कर प्रधानतया अपने मत के अनुकूल वाक्यों को लेकर सिद्धान्त बनाते रहे। आपने दो वाक्य उठाये, और अपना पक्ष बना लिया।

श्री प्रोफेसर पण्डित राजाराम जी—

"**त्रितं कूपेऽवहितमेतत् सूक्तं प्रतिबभौ**" [नि० ४।६]। "**प्रतिबभौ**" का अर्थ है—"**प्रादुर्भूत हुआ**" बनाया नहीं। निरुक्त ने प्रतिज्ञा की "**ऋषिदर्शनात्**" [नि० २।११]। इस प्रतिज्ञा को छोड़ कर आप मन्त्र बनाना मानना गढ़ते हैं। इसके लिए वह ब्राह्मण [तै० आ० २।९] का प्रमाण भी देता है—"**तद् यदेनांस्तपस्यमानान् ब्रह्म स्वयम्भ्वभ्यानर्षत् त ऋषयोऽभवन्, तदृषीणामृषित्वमिति ह विज्ञायते**" [नि० २।११]। "**परुच्छेपस्य शीलम्**" [नि० १०।४२] का अर्थ है कि पुरुच्छेप के देखे सूक्तों में यह शील है, उसके बनाये नहीं। आम तौर पर ऋषि मन्त्रों को Quote करते हुए सूक्तों का स्वभाव बतलाने के लिए कहते हैं कि परुच्छेप के देखे हुऐ सूक्तों में ऐसा आया है।

"**अर्चन् हिरण्यस्तूप ऋषि [रिदं सूक्तं प्रोवाच**"] [नि० १०।३२] के विषय में पण्डित विश्वबन्धु जी कहते हैं कि यह हिरण्यस्तूप का अपना कृत सूक्त है। परन्तु "**आर्षानुक्रमणी**" में लिखा है—"**सविता सूक्तस्य चार्चन् हैरण्यस्तूप एव सः**" [आर्षानु० मं० १० श्लोक ७७]। "**अर्चन्**" मन्त्र में से लेकर नाम रखा गया है। मन्त्रों में शब्दों को देख कर ऋषि लोग अपना नाम रखा करते थे। यह "**अर्चन्**" शब्द वेद में मौजूद है। इसी प्रकार से "**गृत्समद**" आदि नाम। अब भी यदि दुराग्रह दूर हो जाय, तो ठीक है। पण्डित विश्वबन्धु जी ने देखा कि सब लोग पण्डित राजाराम जी की किताबों पर रगड़ा चढ़ा रहे हैं। इसलिए उन्होंने मेरी किताब पर भी कृपादृष्टि करने का यत्न किया। आपने जो प्रमाण गाथा और नाराशंसी के विषय में दिया, वह आपने गलत पढ़ा। "**ओमित्यृचः प्रतिगर एवं तथेति गाथायाः; ओमिति वै दैवं तथेति मानुषम्**" [ऐ० ब्रा० ७।१८] आपने यह पाठ नहीं पढ़ा। इसका अर्थ आपका मैकडानल करता है कि ऋचायें देवी हैं, और गाथायें मनुष्य की बनाई हुई हैं। मैंने जो आगे कहा कि दो प्रकार की गाथायें हैं—लौकिक तथा वैदिक। सरल भाव होने के कारण यह नहीं कहा कि ब्राह्मण की गाथायें

मानवीय, और वेद की गाथायें दैवी हैं। आपने मेरी बात को गलत तौर पर प्रकट किया। वेद की गाथायें वैदिक हैं, वेद की नाराशंसी वैदिक हैं। मनु ने कहा—"**सर्वेषां तु नामानि कर्माणि च पृथक्-पृथक्।** वेदशब्देभ्यः एवादौ **पृथक् संस्थाश्च निर्ममे**॥ [मनु० १।२१] इसको किसी ने नहीं छुआ। आप कहते हैं कि मनुस्मृति में एक "**तक्षा**" ऋषि लिखा है। मनुस्मृति को सब स्कालर्स Scholars प्राचीन मानते हैं। स्वामी जी ने इसे सृष्टि के आदि में माना है। मैंने इसे Chronologically बहुत प्राचीन सिद्ध किया है, उसका खण्डन करें। आप कहते हैं—"**मनोर्ऋचो भवन्ति, यत्किञ्चिन् मनुरवदत्तद्भेषजं भेषजानाम्**" [मैत्रायणी २।५]। मनु कई हुए हैं, क्या आपने निश्चय कर लिया है कि यह कौनसा मनु है? मैंने कहा था कि मनुस्मृति ब्राह्मणग्रन्थों से पहिले है। प्रक्षेपों के होते हुए भी यह मनुस्मृति तीन हजार साल पुरानी जाती है, वह लौकिक भाषा में है। "**कौटिल्य**" ने अपने "**अर्थशास्त्र**" में "**बृहस्पति**" के अर्थशास्त्र के प्रमाण दिये हैं। "**बृहस्पति**" का "**अर्थशास्त्र**" जिसको महाभारत अति प्राचीन मानता है, वह सर्वथा लौकिक भाषा में है। "**पञ्च शिखाचार्य्य**" के सूत्र भी लौकिक भाषा लोक में हैं। उससे पहिले सांख्य के अनेक ग्रन्थ लौकिक भाषा में हैं। यह मानते हैं कि—वैदिक भाषा लोक में बोली जाती थी। ऋषियों ने मन्त्रों को बनाया। ऋषियों के सूक्तों में परस्पर में विरोध है किन्तु स्वामी का सिद्धान्त है कि—"**वेदशब्देभ्यः एवादौ पृथक् संस्थाश्च निर्ममे**" [मनु० १।२१]। वेद से लेकर सब नाम रखे गए, अर्थात् सृष्टि के आरम्भ से ही वैदिक और लौकिक दोनों भाषायें विद्यमान हैं। वेद-भाषा बोली कभी नहीं गई, इसलिए "**तुर्वश**" तथा "**ययाति**" आदि शब्द अति प्राचीन हैं। आप कहते है कि भगवद्दत्त कहता है कि—"**तदेतदुक्त-प्रत्युक्तं पञ्चदशर्चं बह्वृचाः प्राहुः**"। श० ११।५।१।१०। बह्वृच कहते हैं कि यह सूक्त पन्द्रह मन्त्रों का है, यह मैंने लिखा है। यह पन्द्रह मन्त्रोंवाला सूक्त किस शाखा का है, यह मैंने कहा तो कौनसा पाप किया? स्वामी जी वेदों की अनेक शाखायें मानते हैं। "**सप्तद्वीपा वसुमती त्रयो लोकाश्चत्वारो वेदाः साङ्गाः सरहस्या बहुधा भिन्ना एकशतमध्वर्युशाखा सहस्रवर्त्मा सामवेद एकविंशतिधा बाह्वृच्यं नवधाऽथर्वणो वेदः**" [महाभाष्य १।१।१]। ऋग्वेद की इक्कीस शाखायें हैं, जिनमें एक मुख्य है। यह पन्द्रह मन्त्रोंवाला सूक्त किस शाखा में है, यह निश्चित नहीं। परमात्मा ने ही मूल वेदों में इस प्रकार पाठान्तर रखकर अर्थ समझाने की शैली बताई। ऋषियों ने इसी प्रकार किया। जैसे वेदों में "**सर्वतो वृत्वा**" (?) पाठ है शाखा में उसकी जगह "**विश्वतो वृत्वा**" (?) पाठ है। मेरे हृदय में भी कई आक्षेप होते हैं। आक्षेप सच्चाई को ढूंढ़ने के लिए किए जाते हैं। उनसे विश्वास नहीं हिलते। यजुर्वेद में "**अश्वमेध**" के प्रकरण में "**अमुष्य**" आदि शब्द आते हैं, शाखाओं में उनकी जगह "**भरत**" आदि राजाओं के नाम डाल दिए हैं। यह यजुर्वेद की "**माध्यन्दिनी संहिता**" जो सबसे प्राचीन है। वहां—"**मनोजूतिर्जुषतामाज्यस्य**" [यजु० २।१३] इस पाठ की जगह शाखा में "**ज्योतिः**" शब्द मिलता है। "ज्योतिः" पाठ से "**जूति**" पाठ प्राचीन है। आजकल की संहिता में यही पाठ है। महाभारत से लाखों वर्ष पहिले चारों वेद इसी रूप में मौजूद थे। ऋषियों ने वेदों से लेकर अपने नाम रख लिए। "**वेदान्तभाष्य**" में जो शंकर ने—"**युगान्तेऽन्तर्हितान् वेदान् सेतिहासान् महर्षयः। लेभिरे तपसा पूर्वमनुज्ञाता स्वयम्भुवा**"॥ [वेदा० शा० भा० १।३।३०] उद्धृत किया, यहां पर वेदों का इतिहास अर्थ नहीं, किन्तु वेदों के साथ इतिहास प्राप्त किया अर्थ है।

श्री पण्डित विश्वबन्धु जी शास्त्री एम० ए०—

पण्डित प्रियरत्न जी के भाषण को मैं नहीं समझ सका, इसलिए उनका उत्तर आश्रम में चल कर दूंगा। पण्डित ब्रह्मदत्त जी ने जो पढ़ा—"**ऋषीणां नामगोत्राणि दृष्ट्वा भ्राम्यन्ति लौकिकाः**" [ऋ० प्र० ५।प्र० १] यह पाठ पूरा नहीं पढ़ा, यह धोखा है। अगला पाठ गुम है। मैं पहिले पांच श्लोक पढ़ता हूं। ऋषि सूक्तों में अपना नाम देते हैं। इस सूक्त में "**नोधसो नाम दृश्यते**"। इसी प्रकार "**मैत्रावरुण**" आदि नाम आये हैं। झगड़ा बाप के नाम पर है, नाम के विषय में नहीं। ऋ० ६।६२ का ऋषि "**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः**" है। इस सूक्त के पहिले मन्त्र

में "**हुवे जरमाणो अर्कैः**" [ऋ० ६।६२।१] में जब तक भारद्वाज का अर्थ नहीं जोड़ोगे, तब तक अर्थ नहीं बनेगा। पहिले आप "**अतिथि**" शब्द का स्वर सिद्ध कर दें, फिर मैं "**स्थूर**" शब्द का स्वर सिद्ध कर दूंगा। कला Biological Theory के सम्बन्ध में कहा गया, वह थ्यूरी नई है। यदि दिमाग के भाग देवता हैं, तो वेद से आध्यात्मिकवाद उड़ गया। आप कहते हैं कि "जहां अर्थ भूल गया, वहां निरुक्ति की गई है"। पण्डित भगवद्दत्त जी "**यथैतेषा-मृषीणाम्**" निरुक्त [३।१७] के इस वाक्य का अर्थ करें। देवतावाद निरुक्त का अवान्तर विषय है, मुख्य विषय निर्वचन है। महाभारत से ज्यादा प्रमाण ऋग्वेद का है। "**ययाति**" के वक्त में जो वेद था, वह उसने पढ़ा होगा। मैं यह पहले उत्तर दे चुका हूं कि वेद में "**ययाति**" आदि के नाम आये हैं। द्रष्टा और कर्त्ता पर मैं कह चुका हूं। "**प्रतिबभौ**" का अर्थ है फुरा, उसे मन्त्र फुरा। इसके लिए प्रमाण ऋग्वेद १।१०५।१७ "**त्रितः कूपेऽवहितो देवान् हवत ऊतये**"। "**हिरण्यस्तूप**" के साथ अर्चन को Propername मान लो। मैंने आपकी गाथा थ्यूरी को गलत पेश नहीं किया। मैंने कब कहा कि यह वही मन्त्र है। मैंने "**बृहद्देवता**" और "**अमुक्रमणी**" से "**तक्षा**" की दानस्तुति सिद्ध कर दी। "**निर्ममे**" का कर्त्ता कौन है ?

श्री पंडित ब्रह्मदत्त जो जिज्ञासु—

आपने बोला है कि "**ऋषीणां नामगोत्राणि**" में मैंने धोखा दिया है, यह आपने गलत समझा। सारा पाठ पढ़ें, स्पष्ट है धोखा नहीं। हम तो कहते हैं कि वेद से लेकर नाम रक्खे गये। वैद्यक में—"**वैश्वानरः शिरः पातु विष्णुस्तव पराक्रमम्। पौरुषं पुरुषश्रेष्ठो ब्रह्मात्मानं ध्रुवो भ्रुवौ॥ एता देहे विशेषेण तव नित्या हि देवताः**" [सुश्रुत सूत्रस्थान अ० ५।२४।२५] और देखिए—"**यथा खलु ब्राह्मी विभूतिर्लोके यस्त्विन्द्रो लोके पुरुषेऽहंकारः, आदित्यास्त्वादानं, रुद्रो रोषः, सोमः प्रसादः, वसवः सुखम्, अश्विनौ कान्तिः, मरुदुत्साहः, विश्वेदेवाः सर्वेन्द्रियाणि सर्वेन्द्रियार्थाश्च, तमो मोहः ज्योतिर्ज्ञानम्**"।" [चरकशारीरस्थान अ० ५।५]। इस Biological Theory के लिए मैं डा० सत्यकाम जी का धन्यवाद करता हूं, जिन्होंने मुझे यह समझाई है। Vedic Gods "**वैदिक गोड्स**" के लेखक ने भी वैद्यक के इसी प्रकार के प्रमाणों के आधार पर लिखा है। वेद का अर्थ ज्योतिषपरक भी होता है। कल्पना निराधार नहीं है। वह किस प्रकार से हैं ? यह यदि समय मिलता, तो बतलाता। "**प्रस्कण्व**" का अर्थ "**प्रस्कण्वः कण्वस्य पुत्र, मेधाविनः पुत्रः इत्यर्थः**"। "**कण्व**" मेधावी नामों में निघण्टु में पढ़ा है। "**तुर्वश**" के लिए जाति उपजाति आपकी कल्पनामात्र है। निरुक्त में तो यही लिखा हैं—"**एतावन्त्यस्य सत्वस्य नामधेयानि**" [नि० १।२०]। यह कल्पना आपकी निराधार है। "**आहू वदुषा अश्विनौ आदित्येनाभिप्रस्ता तामश्विनौ प्रमुमु-चतुरित्याख्यानम्**" [नि० ५।२१] आदित्य से संयुक्त उषा ने "**अश्विनौ**" को बुलाया। यास्क "**अश्विनौ**" का अर्थ करते हैं—"**तत्कावश्विनौ द्यावापृथिव्यावित्येके, सूर्याचन्द्रमसावित्येके, अहोरात्रावित्येके, राजानौ पुण्यकृतावित्यैति-हासिकाः**"। निरुक्त १२।१। निरुक्तकार के आख्यान का यह स्वरूप है। आपने मुझे कहा कि—"**अहल्यायै जारः**" इसको मैंने वेद की कथा कहा है, परन्तु मैंने ऐसा नहीं कहा। मैंने तो यह कहा था कि ऋषि दयानन्द ने यह कथा "**ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका**" में दी है, और कुमारिल ने वैसा ही अर्थ किया है जैसा कि ऋषि दयानन्द ने। "**कर्त्ता स्तोमानां**" [नि० ६।६] के विषय में "**कृञ्**" धातु के अनेक अर्थ पाणिनि ने दिए हैं। "**गन्धनावक्षेपणसेवनसाहसिक्यप्रतियत्नप्रकथनोपयोगेषु कृञः**"। [अ० १।३।३२] इस सूत्र में "**कृञ्**" का अर्थ "**प्रकथन**" माना है। तो "**कर्त्ता**" का अर्थ हुआ "**कथन करनेवाला**"। "**ऐतरेय ब्राह्मण**" भाष्य में "**सायण**" ने लिखा है—"**ऋषिर्मन्त्रकृत्**"! **ऋषिरतीन्द्रियार्थद्रष्टा मन्त्रकृत् करोति धातुस्तत्र दर्शनार्थः**"। [ए० ब्रा० सायणभाष्य ६।२] भट्ट भास्कर ने—"**मन्त्रकृद्भ्यः मन्त्रद्रष्टृभ्यः**"। [तैत्तिरीय आ० भट्टभाष्य ७।१] "**य ईं चकार न सो अस्य वेद य ईं ददर्श हिरुगिन्नु तस्मात्**" [नि० २।८] में "**इन्द्र**" मध्यस्थानी क्या है ? हमसे पूछा

गया है। निरुक्त में कहा है—"**एक एवात्मा बहुधा स्तूयते**"। [नि० ७।४] "**उभयवासी**" न्याय से परमात्मा भी मध्यमस्थानी देवता में आ जाएगा, क्योंकि परमात्मा सर्वत्र व्यापक है। अथवा—"**अचेतनेषु चेतनवदुपचारः। यथा शृणोत ग्रावाणः**"। [द्र० महा० ३।१।७] इस महाभाष्य के प्रमाण से इस तरह से यहाँ विद्युत् में भी चेतनवत् ज्ञान की कल्पना करली है। आगे कहा है कि "**नदीवद्दैवतावच्च निगमा भवन्ति**" [नि० २।२३]। आगे निरुक्त में कहा है—"**अदेवता देवतावत्स्तूयन्ते**" [नि० ७।४]। यास्क नैघण्टुक तथा प्रधान दो तरह के देवता मानता है। जहां दैवत काण्ड में आयगा वहां प्रधान, अन्यत्र नैघण्टुक। इन्द्र वरुण आदि का "**प्रासादवासी**" न्याय से ग्रहण है। भाष्यकार लिखते हैं—"**तद्यथा केचित् प्रासादवासिनः केचिद् भूमिवासिनः केचिदुभयवासिनः। ये प्रासादवासिनो गृह्यन्ते तेप्रासादवासिग्रहणेन, ये भूमिवासिनो गृह्यन्ते ते भूमिवासिग्रहणेन। य उभयवासिनो गृह्यन्ते ते प्रासादवासिग्रहणेन भूमिवासिग्रहणेन च**"। [महाभाष्य १।१।८।।]

इसी तरह से इन्द्र वरुणादि मध्यमस्थानी हैं, किन्तु परमात्मा सर्वस्थानवासी है। उसका ग्रहण सभी तरह से हो जायगा। विश्वामित्र आदि शब्द वेद में आते हैं, ब्राह्मण उनकी प्रतीकें लेकर "**विश्वामित्र ऋषिरिति, श्रोत्रं वै विश्वामित्र ऋषिः**"। [श० ८।१।२।६] श्रोत्रादि अर्थ करता है। स्वामी दयानन्द ने "**कक्षीवान्**" शब्द की संज्ञा में ही सिद्धि की है, ऐसा कहा गया था। वहां संज्ञा शब्द लोक के लिए आया है। लोक में यदि "**कक्षीवान्**" नाम हो, तो ऋषि का नाम होगा। वेद में "**दृष्टानुविधिश्छन्दसि भवति**" कक्ष्यावान् और कक्षीवान दोनों बन जायेंगे। निरुक्त कहता है—"**कक्षीवान्, कक्ष्यावान्**" [नि० ६।१०], संज्ञा नहीं। "**परुच्छेपस्य शीलम्**" [नि० १०।४२] पर "**परुच्छेपस्य मन्त्रदृशः शीलं**" [दुर्ग टीका पृ० ८७७] यह अर्थ दुर्गाचार्य ने किया है। "**नाभाकस्य प्रशस्तिभिः**" [नि० १६।५] वह तो इस सूक्त का ऋषि है। क्या वह स्वयं अपनी ही स्तुति करता है? भागवत में कहा है—"**भारतव्यपदेशेन ह्याम्नायार्थश्च दर्शितः**" [भाग० १।४।४६] भूतार्थवाद के विषय में आप कहते हैं कि जो बात हो चुकी, उसके विषय में भूतार्थवाद होता है। हम मानते हैं—"**सदाधार पृथिवीं**" [ऋ० १०।१२१।१] उसने धारण किया, करता है और करेगा, भूतार्थवाद ऐसा होता है। "**प्रियमेधवदत्रिवत्**" [ऋक्० १।४५।३] इस मन्त्र के ऋषि दयानन्द के भाष्य की पुष्टि में मैंने स्कन्द का प्रमाण इसलिए दिया था कि स्वामी जी की बुद्धि अगाध थी। उनको यह सब बातें मालूम थीं, और उन्हीं के अनुसार यह अर्थ किए। ऋषि दयानन्द के विषय में यह कहना कि वह इतिहास मानते हैं, महाअन्धेर है। वह स्पष्ट भूमिका में कहते हैं—"**ताः शिष्टैः कदाचिन्नैवाङ्गीकर्त्तव्या**"। आपने वामदेव्य के विषय में जो कहा है, वह किसी का मिलाया हुआ है। आपने हमारी औपचारिक प्रक्रिया को माना, पर पूरी तरह से नहीं। जो आपने कुल्हाड़ेवाला अर्थ किया, वह ठीक नहीं। "**चत्वारि शृङ्गा त्रयोऽस्य पादाः**" [ऋक्० ४।५८।३] इसके अर्थों के सम्बन्ध में हमने जो प्रश्न किया था, उसका उत्तर आपने नहीं दिया।

श्री स्वामी सर्वदानन्द जी महाराज—

यह जो तीन-चार दिन से संवाद आप सुन रहे हैं, इससे लाभ तो हुआ ही है। परन्तु यह उसी प्रकार का है, जैसे सनातन धर्म और आर्यसमाज का होता है। **प्रथम**—चाहिए तो यह था कि एक पक्ष मान लिया जाता। स्वामी जी तो यही मानते हैं कि वेदों में इतिहास जैसे गंगा यमुना सरस्वती आदि नदियों के नाम प्रतीत होते हैं, परन्तु यह नाड़ियों के नाम हैं। वेद में इतिहास विद्या बीज के रूप में होनी चाहिए। परन्तु राजा और ऋषियों का इतिहास नहीं होना चाहिए। **दूसरा**—यह कहा गया है कि स्वामी जी का उपहास किया जाता है, मुझे विश्वास नहीं होता। स्वामी दयानन्द जैसे उपकारी पुरुष का उपहास कौन कर सकता है? यह गलतफहमी प्रतीत होती है। **तीसरी बात है**—लोकव्यवहार में निपुण पुरुष ही वेदार्थ को समझ सकता है "**लोके व्युत्पन्नस्य वेदार्थप्रतीतेः**"

अभ्यास से जो मन्त्र लग चुके हैं यह लग गये, जो नहीं लगे उनके लिए अभ्यास करना चाहिए। समाज ने बहुत से काम किये, परन्तु जिसके लिए इसका जन्म हुआ अर्थात् संस्कृत की रक्षा के लिए इसने कुछ नहीं किया। वेदाभ्यास से ही वेदार्थ प्रतीत होते हैं, जैसे विज्ञान की बातें परस्पर के संघर्ष से निकल आई हैं। यह सन्देह दिमागों से निकल सकते हैं कि आर्यसमाज में आदमी पैदा नहीं होंगे। आज विश्वबन्धु जी आपके सामने सन्देह उपस्थित कर रहे हैं। क्या आपके सामने सन्देह आने नहीं हैं ? आज नहीं, तो कल सही। ऋषि दयानन्द ने आनेवाली शंकाओं का उत्तर दिया था, परन्तु उन्हें यह थोड़े ही पता था कि आर्यसमाज चौकड़ी लगाकर बैठ जाएगा। आर्यसमाज और हिन्दुत्व बहा चला जा रहा है। अंग्रेजी पढ़ने के लिए लाखों रुपया लग रहा है। संस्कृत पढ़ने के लिए लघु-कौमुदी पढ़ लो, वेद अपने आप लग जायगा ? क्या स्वामी जी के पीछे कोई संस्कृत का ग्रन्थ लिखा गया ? **विदेश में प्रचार करने के लिए अहमदियों की तरफ से ख्वाजा कमालउद्दीन गया, और आर्यसमाज की तरफ से मथुराप्रसाद भजनीक** ! आदमियों की कमी ही तो कारण है, इनके बनाने का यत्न करो। जैसे अंग्रेजी के लिए यत्न किया जाता है, वैसे ही संस्कृत के लिए भी करो। संस्कृत बड़ी अच्छी चीज है, किन्तु वह अपने बल से ही चल रही है। प्राचीन मातृ-भाषा का इतना ही गौरव है। आपने गुरुकुल खोले, कालेज खोले, पर इससे कुछ नहीं बनता। आप भी रुपयों को मुर्गी के अण्डे की तरह दबाए बैठे रहेंगे। वेदों के विज्ञान आदि के लिए रुपया खर्च होना चाहिए। रिसर्च के लिए विद्वान् आदमी मिल बैठें तो अच्छा है। **"बनाने का यत्न करो। रुपया इकट्ठा करने से क्या लाभ ?"** विद्याशत्रु समाज को कहना चाहिए। देखो अंग्रेजी विद्या कितनी तरक्की कर गई। अंग्रेज तो काम संभाल लेते हैं, परन्तु हमारे अधीन जो काम है, वह बिगड़ते हैं। अपने को कायदे में लाओ, अपने गुणों से ही उच्च हो सकोगे। तीस-तीस वर्ष नियम पालनेवाले लोग समाज में आकर अनियमित हो जाते हैं। **"स्वामी अच्युतानन्द जी को वेद से बड़ा प्रेम है ? उनके पास चालीस हजार रुपया है, वह वेद के काम में लगा देवें"**।

प्रिंसिपल श्री लाला देवीचन्द जी एम० ए०—

मुझे बड़ी प्रसन्नता है कि ऐसी पण्डितों की कान्फ्रेंस बुलाई गई, जिसमें शास्त्रीय विचार हुआ। परन्तु शौक है कि बहुत से विद्वान्, जो इसमें शामिल हुए, वह बजाय इसके कि ऐसे ढंग पर विचार करें कि जिससे स्वामी जी के सिद्धान्त की पुष्टि हो, वह Personal बातों से ऊपर नहीं उठ सके। यह भी ख्याल हो सकता है कि यहां के विचार सुनकर अश्रद्धा होती या Scholars स्कालर्स में अविश्वास हो। परन्तु इससे बड़ा लाभ हुआ है। सभा को यह कान्फ्रेंस अब समाप्त नहीं कर देनी चाहिए। ऐसी कान्फ्रेंस की लाहौर समाज के उत्सव तथा प्रादेशिक सभा के उत्सव पर मीटिंग हुआ करे। **"मैं चाहता हूं कि पण्डित विश्वबन्धु जी तथा पण्डित राजाराम जी ऐसे मन्त्रों की लिस्ट, जिनमें इतिहास प्रतीत होता है, सभा के पास भेज देवें। सभा पण्डितों के पास भेज देवे। अगली मीटिंग में कुछ हल हो जावे। निरुक्त की ऐसी कोई बात नहीं, हमें सामान्य वेद मन्त्रों पर विचार करना चाहिए"**। यह भी कहा गया है कि क्या हर्ज है कि यदि आर्यसमाज अपनी Position को Modify कर देवे, सिद्धान्तों को Change कर देवे। परन्तु यह इस परिषद् या अन्य किसी सभा को अधिकार नहीं है कि वह आर्य-समाज के सिद्धान्तों को Change कर सके। हमारे Scholars (स्कालर्स) को चाहिए कि दूसरे आचार्यों के अनुयायियों की तरह ऋषि दयानन्द के सिद्धान्तों को पुष्ट करें। विद्वानों का गौरव इसी बात में है। अगर हम Recoriale न हो सकें, तो हमारा प्रेम पण्डित विश्वबन्धु जी तथा पण्डित राजाराम जी के साथ कम नहीं होना चाहिए। उनको समझाने की कोशिश करनी चाहिए, जिससे हठ न बढ़े। परस्पर प्रेम तथा सहानुभूति से ऐसी बैठकें फिर भी होनी चाहियें।

श्री महात्मा नारायण स्वामी जी महाराज —

मैं लाला देवीचन्द जी से सहमत हूं कि इस सभा से लाभ हुआ। शुरू में बताया गया था कि पण्डित विश्वबन्धु जी को तथा राजाराम जी को वेदों के सम्बन्ध में सन्देह है, उनकी निवृत्ति हो जाय। परन्तु इतने "विचार **से पता लगा कि पण्डित विश्वबन्धु जी का निश्चित पक्ष है कि—"वेदों में इतिहास है"। यह** Western Scholars **का पक्ष है। यदि पहले से ही इस बात को उनका पक्ष मानकर चलाया जाता, तब अच्छा होता। और साथ में यह भी पता लगता है कि उनको जिज्ञासा भी नहीं है"।** यदि जिज्ञासा होती, तो इस बात पर क्यों अड़ते कि अमुक मेरे पीछे न बोले। **"उनको जिज्ञासा है ? यह तो वही मान सकता है जिसके दिमाग में बुद्धि का खाना खाली हो"**। यह एक सच्चाई है, चाहे कड़वी है। इसमें पण्डित विश्वबन्धु जी का दोष नहीं। इसमें हमारी शिक्षा-पद्धति का दोष है। परन्तु फिर भी उन्हें गम्भीरता से विचार करना चाहिए। यह परिणाम इस सम्मेलन का अवश्य निकलेगा। जो विषय उपस्थित हुआ **"कुरुङ्ग"** वाले मन्त्र पर ही रहा। यदि वेद में इतिहास मान लिया जाए, तो वेद का बहुत-सा भाग निकम्मा हो जायगा। वेद ऋत् है, ऐसी सच्चाई है जो तीनों कालों में एक जैसी रहने-वाली है। आमतौर पर **"स्वाध्याय"** शब्द वेद के स्वाध्याय के लिए रूढ़ है। अब कल्पना करो यदि कुरुङ्गवाले मन्त्र का अर्थ यह हो कि—कुरुङ्ग राजा था, उसने दान दिया—तो हम उसका स्वाध्याय क्यों करें ? व्यर्थ में भाट क्यों बनें ? यदि दूसरे पक्षवालों का अर्थ, जो कि यौगिक है, मान लिया जाए, तो वह बड़ा गौरवयुक्त है। वेद यदि हमको प्यारे हैं, तो ऐसे ही सुन्दर अर्थ होने चाहियें। नहीं तो चाहे हम कहें कुछ भी, वास्तव में वेद हमको प्यारे नहीं हैं। जिन लोगों ने प्राचीन भाषा पर विचार किया है, वह जानते हैं कि उनके अनेक तरह से अर्थ किए गए हैं। इस तरह से वेद के अनेक अर्थ होने का कारण यही है कि वेद पठन-पाठन नहीं रहा। यजुर्वेद के चालीसवें अध्याय के बीस तरह के अर्थ नहीं हो सकते। नियामक होने की बात तो अभ्यास से ही ठीक होगी। परन्तु बाईस-चौबीस करोड़ आदमी ऐसे मौजूद हैं, जिनकी Treditions आदि से वेद के अर्थ निकल सकते हैं, हमें यत्न करना चाहिए। योरोपियन्स के अनुवाद अब भी वैसे बेहूदा हैं, जैसे सदा से रहे हैं। मैंने ग्रिफिथ के चारों वेदों का भाष्य पढ़ा। मेरे दिल में बहुत बार आया कि मैं उसे फैंक दूं, परन्तु दिल रोक कर पढ़ा। जैसे वेद में **"अज एकपात्"** शब्द आया, उसका अर्थ है परमात्मा के एक अंश में। परन्तु ग्रिफिथ ने अनुवाद किया है One footed goat। उनमें अच्छी बातें भी हैं, परन्तु यह तुकें मिलाते हैं। हमारे साथ Traditions है। हमारा पक्ष प्रबल है। हमें चाहिए कि हम यत्न करें। मैंने कई बातें नोट की हैं, समय मिलने पर विचार करूंगा।

शास्त्रार्थ के प्रधान श्री महात्मा हंसराज जी—

जिस बात पर हमने विचार किया, वह इतनी सादी नहीं जितनी कि समझी जाती है। स्वामी जी कहते हैं कि उन्होंने निरुक्त के आधार पर, ब्राह्मण ग्रन्थों के आधार पर वेदभाष्य किए। किन्तु साथ ही यह भी कहा है कि ये पुस्तकें परतः प्रमाण हैं, स्वतः प्रमाण तो वेद है। जहां कोई ऐसा वचन आया, जो कि वेद-विरुद्ध है, तो उसे उन्होंने प्रामाणिक नहीं माना। मेरी इच्छा थी कि विचार निरुक्त के उन स्थलों पर ही रहता, परन्तु साढ़े तीन दिन विचार केवल मन्त्रों के शब्दों के सम्बन्ध और अर्थों के ढंग के सम्बन्ध में होता रहा, यह भी जरूरी है। इस विषय में नई बात Western Scholars की थी कि आर्य सभ्यता बड़ी साधारण है। जिन ऋषियों के नाम सूक्तों पर लिखे हैं, उन्होंने वह कवितायें बनाईं। वह (पश्चिमी) विद्वान् उन मन्त्रों में इतिहास भी मानते हैं, सारा इतिहास वेदों में से निकालते हैं। सायण वेद को अपौरुषेय मानता है, और अपनी भूमिका में लिखता भी है। और टीकाकार भी ऐसा लिखते हैं। निरुक्त के टीकाकार भी एक सिद्धान्त लिखते हैं कि—**"वेद में इतिहास नहीं है"**। परन्तु सायण अर्थ करते समय फेल होता है। सायण ने निरुक्त या और प्रमाणों से इतिहास भी निकाले। योरोपियन भी उसी

के आधार पर इतिहास निकालते हैं। सायण आदि के भाष्य पढ़ने से उन्हें (पश्चिमी विद्वानों को) यह विचार हुआ कि वेद ऋषियों के बनाये हुए हैं, और वे उन्हें वेद का कर्त्ता मानते हैं। परन्तु सनातनधर्मी यह नहीं बताते कि ऋषि कब हुए ? वह मानते हैं कि ऋषियों ने वेद-सूक्त बनाये।

यहां कहा गया है कि कुमारिल आदि पिछले मीमांसक ईश्वर को न मानते हुए भी वेद के नित्यत्व को मानते थे। और नित्य वेद में इतिहास के विषय में यह माना कि वह बातें और यही ऋषि प्रत्येक कल्प में होते हैं। स्वामी दयानन्द ने उन बातों पर विचार किया, European Theory को रिजक्ट किया। सायण की थ्यूरी को मान लिया, परन्तु उसके अर्थों को Reject किया। **"शुनः शेप"** की कथा को वेद में इतिहास के रूप में मान लिया जाय, तो यह मानना पड़ेगा कि कोई समय था जबकि आर्य लोग यज्ञ में मनुष्य का मांस डाला करते थे। **"अगस्त्य"** ऋषि ने हवन शुरू किया, उसने इन्द्र देवता को हवि न दी, वह रोने लगा, वह सूक्त इन्द्र का रोना है। यदि इस प्रकार के अर्थ मान लिए जायें, तो आर्य लोगों का दूसरों के सामने ठहरना मुश्किल हो जाएगा। आपको वेदों को तिलाञ्जलि देनी होगी। ऋषि के सामने यह प्रश्न आया। स्वामी जी ने तमीज की कि **"ये ऋषि मन्त्र-द्रष्टा हैं, मन्त्र-कर्त्ता नहीं"**। इस पर आक्षेप है कि ऋषियों के नाम मन्त्रों में आते हैं। यदि यह मान लिया जाए कि उन ऋषियों ने वे मन्त्र बनाये, जैसे पाराशर ऋषि जो कि व्यास के पिता थे, ने सूक्त बनाये, तो यह बात कैसे संगत हो सकती है कि व्यास से पहले भी सारा वेद पढ़ा जाता था ? यह मामूली सवाल नहीं है। इस तरह से यह मानना पड़ेगा कि वेद आदि सृष्टि में नहीं हुआ, या विकासवाद को मानना पड़ेगा। इसे मानते हुए वेदों की थ्यूरी छोड़ देनी पड़ेगी। जैसे मुद्गल का सूक्त है। ऋषि कितना हास्यास्पद हो जाता है कि हमने मुद्गल से अपने शत्रुओं तथा बैल आदि को जीत लिया ? यह बुनियादी भेद है, मामूली भेद नहीं। यदि आप इतिहास मानेंगे और सूक्तों पर लिखे ऋषियों को यदि वेद के मन्त्रकर्त्ता मानेंगे, तो यूरोपियन थ्यूरी माननी पड़ेगी। और वेदों की थ्यूरी छोड़नी पड़ेगी। स्वामी जी की थ्यूरी है कि—**"ऋषि मन्त्रद्रष्टा हैं, कर्त्ता नहीं"**। अब यह ठीक है, या गलत ? इस विषय में जिनको दयानन्द पर विश्वास हो, ठीक मानेंगे। यदि दूसरी बात मानेंगे, तो वेदों की पोजीशन इञ्जील की तरह हो जायगी। और इस तरह से मानना पड़ेगा कि वेदों में कई सूक्त मनसूख हो गये, अब यह सूक्त मानने चाहियें। परन्तु कोई प्रमाण इस विषय में नहीं है। अब आपको चाहिए कि तीनों Hypothesis का मुकाबला करके विचारें कि क्या केवल स्वामी दयानन्द की थ्यूरी में दिक्कतें हैं, या दूसरी थ्यूरीज में भी दिक्कतें हैं। स्वामी जी ने कहा है कि ब्रह्मा से लेकर जैमिनिपर्यन्त ऋषि-मुनियों का एक सिद्धान्त रहा। आप इसे भी विचारें, मुमकिन है आप में से कुछ लोग गलत मानते हों। यूरोपियन्स कहते हैं सिद्धान्त भिन्न-भिन्न थे। आप विचारें कि आपको यह थ्यूरी अपील करती है, या नहीं। यदि आप इसे नहीं मानेंगे, तो यूरोपियन थ्यूरी को मानना होगा। इसमें आर्य-समाज की बदकिस्मती है स्वामी जी के जीवन ने स्वामी जी से वफा न की। स्वामी जी चाहते थे—**"वेदों का भाष्य करके फिर थोड़ा-सा आराम करके दर्शनादि पर भी भाष्य करेंगे, किन्तु यह न हो सका"**। सिद्धान्त पर विचार करके नतीजे पर पहुंचे, तो अच्छा है। अगर नतीजे पर न पहुंचे, तो वह थ्यूरी माननी पड़ेगी। मैं इस बात को नहीं मानता कि आर्यसमाज ने कुछ नहीं किया। आर्यसमाज ने सनातन धर्म को बहुत परे फैंक दिया। ईसाई या और लोग इसके प्रभाव को महसूस करते हैं। आर्यसमाज कालेज सेक्शन ने दो इन्स्टीट्यूशन कायम किए। रिसर्च डिपार्टमेण्ट और ब्राह्ममहाविद्यालय खोले। दूसरी पार्टी ने गुरुकुल खोले। गुरुकुल के ब्रह्मचारियों ने **"यमलोक"** वेद से सिद्ध किया। यदि आप स्वामी दयानन्द की थ्यूरी को छोड़ेंगे, तो आपको वेदों को छोड़कर भाग जाना पड़ेगा।

पण्डित जगन्नाथ ने एक किताब लिखी है। उसमें लिखा है कि कक्षीवान् ऋषि काकेकस में रहता था, और वहां उसने सूक्त बनाया। यजुर्वेद को रस्मों पर लगाया गया है। आप यजुर्वेद का मुतआलिया करें, और

विचार कि स्वामी जी का भाष्य अधिक अच्छा है या दूसरे भाष्य ? उदाहरण के रूप में अश्वमेध को लीजिये । स्वामी जी ने बताया कि "**अश्व**" का अर्थ शतपथ में "**राष्ट्र**" है । योरोपियन्स कहते हैं कि सूर्य है । और कई ऐसा कहते हैं कि घोड़े की बलि दी जाती थी, किन्तु वास्तव में यह सीथियन रस्म थी । शंकर आदि ने "**अग्नि**" का आग अर्थ किया, परन्तु स्वामी दयानन्द ने "**परमेश्वर**" अर्थ किया । रिसर्च डिपार्टमेण्ट ने डिक्शनरी निकाली, उससे आपको सहायता मिलती है । मुझे खुशी हुई, जब दो साहिबों ने कहा कि "**वे वेद में इतिहास नहीं मानते**," चाहे निरुक्त के विषय में उनकी राय मुखतलिफ है । आर्यसमाज उनसे पूरा लाभ उठा सकता है ।

जब यह सिद्ध करने का यत्न होता है कि वेद-मन्त्रों में इतिहास है, तब घोर युद्ध करना पड़ेगा । मैं इस बात को बड़ा खराब समझता हूं कि आपस में झगड़ा जाय । मैं तो उन्हें ऊंची जगह बिठाकर उन पर फूल डालूंगा । परन्तु व्यक्तिगत बातों को आप अपने दिल से निकाल दें । स्वामी लोगों ने बड़ी तकलीफ उठाई है कि इतना दुःख उठाकर इतनी दूर-दूर से यहां पधारे हैं । मैं उनका हृदय से धन्यवाद करता हूं । बाहर से आये पण्डितों का भी मैं बड़ा कृतज्ञ हूं, तथा यहां के पण्डितों का भी धन्यवाद करता हूं । परमात्मा करे कि सौमनस्य बना रहे, और स्वामी जी के सिद्धान्त पुष्ट हों ।

।। शास्त्रार्थ समाप्त ।।

निन्यानवेवां शास्त्रार्थ—

स्थान : खुर्जा (बुलन्दशहर) उ० प्र०

दिनांक : ११ से १३ मई सन् १८६० ई०

विषय : क्या मूर्त्ति पूजा वेदानुकूल है ?

आर्यसमाज की ओर से शास्त्रार्थकर्त्ता : १. श्री पण्डित तुलसीराम जी शर्म्मा (कुचेसर) उ० प्र०
२. श्री पण्डित कुमारसेन जी शर्मा

धर्म सभा (पौराणिकों) की ओर से शास्त्रार्थकर्त्ता : १. श्री पण्डित त्रिवेणी दत्त जी,
२. श्री पण्डित हजारी दत्त शर्मा,
३. श्री पण्डित कृष्णानन्द जी,

(धर्म सभा की ओर से)—शास्त्रार्थ के सभापति : श्री बाबू चतुर्भुजदास साहब वकील

मन्त्री-आर्यसमाज की ओर से : श्री ठाकुर महावीर सिंह जी

मन्त्री-धर्म सभा की ओर से : श्री मुन्शी शुकदेव प्रसाद जी

शास्त्रार्थ में उपस्थित मुख्य-मुख्य विद्वान् : १. श्रीयुत् पण्डित भीमसैन जी शर्मा,
२. श्री बाबू शिवदयाल सिंह जी,
(मैनेजर—वैदिक यन्त्रालय-प्रयाग)
३. श्री बाबू गंगाप्रसाद जी बी० ए० (आगरा)

नोट—१. इस शास्त्रार्थ के समय "श्री पण्डित भीमसैन जी शर्मा" आर्यसमाज में ही थे। उन्हीं के द्वारा इस शास्त्रार्थ सामग्री को शोधकर "सरस्वती यन्त्रालय" प्रयाग से सम्वत् १६५० में प्रकाशित कराया गया था।

२ यह शास्त्रार्थ सामग्री "श्री राजाराम जी जिज्ञासु" स्वाध्याय संस्थान (बदायूं) के माध्यम से प्राप्त हुई है। हम उनके हृदय से आभारी हैं, उनके कारण ही यह लुप्त सामग्री प्रकाश में आ सकी।

"लाजपतराय अग्रवाल"

शास्त्रार्थ से पहले

इस शास्त्रार्थ का हेतु प्रथम यह हुआ कि **"सीकरा"** आर्यसमाज के सभासद् **"श्री पण्डित खमानी-राम जी"** से और खुरजे के **"श्री पण्डित कृष्णानन्द जी" से** वैसाख शुक्ल १२ सम्वत् १९४७ विक्रमी को शास्त्रार्थ नियत हुआ था, तदनुसार तहसील खुरजा के ग्राम **"धराऊं"** में जहां शास्त्रार्थ ठहरा था। आर्यसमाज सीकरा के बुलावे पर आर्य पण्डित **"श्री भूमित्र शर्मा"** जी **"कर्णवास"** से, और **"श्री पण्डित तुलसीराम जी शर्मा" "कुचेसर"** से आए तथा धर्म सभा के पक्ष में **"श्री पंडित कृष्णानन्द और त्रिवेणीदत्त"** (धरपा ग्राम निवासी) जी ने भी एक शिवालय पर अपनी इच्छानुसार जंगल में शामियाना खड़ा किया, और कुछ ग्रामीण मनुष्यों में लगे डींग मारने कि—आर्यसमाजी शास्त्रार्थ को नहीं आते और समाज में एक पत्र भेजा कि, यदि तुम लोग शास्त्रार्थ में न आओगे तो तुम्हारी पराजय समझी जाएगी, इसका उत्तर **"श्री ठाकुर महावीर सिंह जी वर्मा"** (चान्दोख निवासी) की सम्मत्यनुसार पण्डित तुलसी राम शर्मा ने लिखा कि—

"श्रीमन्भावत्कक्षान्तशान्तसदसदुदन्तालब्ध गरिष्ठवरिष्ठेषु निजविद्याद्वादशात्मरश्मिभिरति-घोरजगन्मिशानिशीथशयितजनताविदारिताऽसंविदन्धतमसेषु बहुशो नतय आशिषश्च भूयासुस्तसाम्—अथ यदुद्धृतं छदद्वाराश्रीमद्भिरत्रागम्यतांशास्त्रार्थार्थमिति तत्रेद माविष्क्रियतेऽनुयुज्यते चास्माभिः किम् अत्रगमकं यद्वयमेवा-ग्रहेणपाषाणादिकल्पितदेवालयसमीपआहूयन्तेनचयूयमत्राजिगमिषथ किमत्र बाधकं बाधकोद्घाटनमन्तरा न यूयं प्रभवथाग्रहायातः प्रार्थ्यते सभ्यजन रीतिपुरस्सरं नियमान् स्थानं प्रबन्धकर्त्तारञ्च स्थिरीकृत्य प्रेषयन्तु दलमित्यलं बहुज्ञेषु विरम्यतेऽतोऽधिकोक्तया"—

(१ बजे मध्याह्न वैशाख शुक्ल १२, विक्रमी) **"भवत्सुहृत्तुलसीराम शर्म्मा"**

अर्थात्—जो कि आपने लिखा कि यहां शास्त्रार्थ करने को चले आइए, हम आपसे पूछते हैं—आप ही यहां क्यों न चले आएं ? क्योंकि केवल आप ही कल्पित् (फ़र्जी) शिवालय पर बुलाने में प्रभु नहीं हैं, इसलिए प्रार्थना है कि सभ्यतापूर्वक नियम स्थान और प्रबन्धकर्त्ता को नियत करके शास्त्रार्थ का पत्र भेजिए, इति ॥

नोट—

धर्म सभा की ओर से इस पत्र के बाद भी कई पत्र भेजे और शिवालय पर ही शास्त्रार्थ बिना नियमों के करने का आग्रह करते रहे, पाठक गण ! किसी मत (मजहब) सम्बन्धी स्थान पर उस मत के विरुद्ध शास्त्रार्थ को कभी आप शान्तिपूर्वक कार्य पूर्त्ति का साधक मानते हैं ? नहीं ! नहीं !! अपितु बाधक ही होगा, परन्तु तो भी यह समझा गया कि ये लोग ऐसा कोलाहल मचाए बिना न रहेंगे कि—**"आर्य समाजी शास्त्रार्थ से हठ गये"** इसलिए सब आर्य लोग मिलकर श्री ठाकुर जवाहिर सिंह जी के स्थान पर जो हिन्दू धर्म के साथी और शास्त्रार्थ से प्रेरयिता थे, उनके पास गये। और धर्म सभा के पण्डितों और उक्त ठाकुर साहिब को बुलाकर कहा कि आप अपने ही स्थान पर शास्त्रार्थ करा लीजिए, परन्तु इसके बाद भी पण्डितों ने यही लिखा कि—**"शिवालय पर नहीं करते तो बगीचा में जहां किसानों के पैर (खलिहान) पड़े हुए हैं, वहां शास्त्रार्थ कर लो"** किन्तु ग्राम के

भीतर अपने स्थान पर भी करना स्वीकार नहीं किया, उक्त ठाकुर साहिब श्री जवाहिर सिंह जी ने यद्यपि एक बार मान भी लिया कि—अच्छा यह मेरा स्थान है, यहां तो हो जाना ठीक है, परन्तु पण्डितों ने उक्त ठाकुर साहिब (जो उन्हीं के अनुयायी थे) के कथन को भी स्वीकार नहीं किया, और यह कहकर उठ गए कि—**"शास्त्रार्थ करना हो तो उक्त बगीची में कर लो यहां नहीं"** भला ! विचारना चाहिए कि जब उन्होंने अपने स्थान पर भी शास्त्रार्थ होना नहीं माना तो क्या सिवाय दंगे-फिसाद के ! बगीची में उनके कौन-से देवता गड़ रहे थे ? जो शास्त्रार्थ में उनके सहायक बनते, इतने पर भी शास्त्रार्थ स्वयं न करके खुरजे में प्रसिद्ध करने लगे कि—**"आर्य समाजी शास्त्रार्थ से हट गए"** तब तो ठाकुर महावीर सिंह वर्मा ने यही विचारा कि—जिस स्थान का इनको इतना घमण्ड है कि यहां आर्यों की कुछ नहीं चल सकती और न यहां 'आर्यसमाज है, एक बार इनसे वहीं निपट लें, ऐसा निश्चय करके, खुरजे में चले गए, वहाँ जाकर सीकरी के रईस एक ठाकुर साहब की चौपाल पर ठहरे और कस्बे में नोटिस दे दिया कि—**"आर्यसमाज सीकरा आज चार मई को खुरजे में उक्त ठाकुर साहिब की चौपाल पर ठहरा हुआ है और जब तक आप (हिन्दू धर्मी) शास्त्रार्थ न करेंगे, ठहरा रहेगा"** इस नोटिस से तो नगर के लोग हिन्दू पण्डितों से कहने लगे कि तुम तो धराऊं में आर्यों को हटा हुआ बतलाते थे, परन्तु ये आर्य लोग तो तुम्हारे खुरजे ही में शास्त्रार्थ का विज्ञापन देते हैं, अब तुम लोग उनसे शास्त्रार्थ क्यों नहीं करते ? ऐसा कहने पर कुछ मनुष्यों को साथ ले, श्री पण्डित कृष्णानन्द और श्री पण्डित त्रिवेणीदत्त जी आए, जब उनके सन्मुख शास्त्रार्थ के नियम रखे गए तो, उन्हें सुनकर कभी तो कहते हैं कि—**"वेद संहिता मात्र को ही मानेंगे"** कभी यह कि—**"शास्त्रार्थ लिखकर नहीं करेंगे"** कभी यह कि—**"हम ईश्वर के हाथ, नाक, कान, आदि सिद्ध न करेंगे"** निदान इसी प्रकार वह दिन टल गया, अगले दिन फिर आर्यसमाज ने सारे नगर में शास्त्रार्थ का विज्ञापन दिया कि—**"यदि आज भी आप (हिन्दूधर्मी) लोग शास्त्रार्थ न करेंगे तो पलायित (भागे हुए) समझे जायेंगे"**। इस पर मुन्शी शुकदेव प्रसाद साहेब द्वारा निम्नलिखित शास्त्रार्थ के नियम स्थिर हुए—

शास्त्रार्थ के नियम—

(१) आज आर्यसमाज व धर्म सभा के मध्य दोनों पक्षों की इच्छानुसार शास्त्रार्थ होगा। (२) इस शास्त्रार्थ में चार वेद संहितामात्र (मन्त्र भाग) स्वतः प्रमाण और अन्य सब परतः प्रमाण माने जावेंगे। (३) जब किसी मन्त्र के अर्थ पर झगड़ा होगा तो साम, गोपथ, शतपथ, ऐतरेय, अष्टाध्यायी, महाभाष्य, निघण्टु और निरुक्त का प्रमाण लिया जावेगा। (४) शास्त्रार्थ में दोनों पक्ष वालों को, तीस-तीस मिनट दिए जाएंगे। (५) दोनों पक्ष वाले अपने आशय को भाषा में लिखेंगे तथा प्रमाणों को संस्कृत में लिखकर सभा को सुनावेंगे। (६) शास्त्रार्थ केवल मूर्त्ति-पूजन पर होगा, सिद्ध करने वाले को परमेश्वर की मूर्त्ति किसी तरह की आकृति सिद्ध करनी होगी। (७) जो पक्ष असभ्यता से वर्त्तेगा वह सभा से बाहर कर दिया जाएगा। (८) शास्त्रार्थ की तीन कापी तैयार करायी जाएंगी, जिनमें से एक-एक कापी उभय पक्ष और एक प्रबन्धकर्त्री सभा के पास रहेगी, ये तीनों कापी हस्ताक्षर युक्त होंगी।

टिप्पणी—

'इस समय तक खुर्जा में आर्यसमाज नहीं था, इस शास्त्रार्थ का इतना प्रभाव पड़ा था कि खुर्जा में तुरन्त आर्यसमाज की स्थापना हो गयी थी, विस्तृत विवरण इसी शास्त्रार्थ के अन्त में पढ़िए !

—"लाजपतराय अग्रवाल"

(९) मण्डन व खण्डन करने वाला केवल मन्त्र का ही प्रमाण देगा। (१०) यह शास्त्रार्थ ११ मई सन् १८९० ई० आदित्यवार प्रातःकाल ७ बजे से आरम्भ होगा।

उपरोक्त नियमों के अनुसार ११ मई सन् १८९० ई० को शास्त्रार्थ आरम्भ हुआ—यद्यपि आर्यसमाज का पक्ष "प्रतिमा पूजन का निषेध" था, इसलिए प्रतिमापूजकों को अपना पक्ष पुष्ट करने को वेद से विधि दिखलानी चाहिए थी, परन्तु उनके इस आग्रह से कि हम प्रथम विधि नहीं दिखलाते, तुम ही निषेध पर वाक्य दिखलावो तब सर्व सम्मत्यनुसार आर्यसमाज की ओर से लिखित लेख श्री पण्डित तुलसीराम शर्मा ने सभा में सुनाया, पाठकों को स्मरण रहे कि—धर्म सभा के मन्त्री **"मुन्शी शुकदेव प्रसाद जी"** और आर्यसमाज के मन्त्री **"ठाकुर महावीर सिंह जी"** नियत हुए। अब आगे शास्त्रार्थ का विवरण देखिए और पढ़िए !!

निवेदक—
"ठाकुर हुकम सिंह वर्मा"
(सीकरा निवासी)

शास्त्रार्थ आरम्भ

आर्यसमाज की ओर से—

॥ ओ३म् ॥

तारीख—११-५-६०

अन्धन्तमः प्रविशन्ति येऽसम्भूतिमुपासते ।
ततो भूयइव ते तमो य उ सम्भूत्याꣳरताः ॥६॥ (यजुर्वेद मन्त्र ६)

अर्थ—

(ये) जो लोग (असम्भूतिम्) कारणरूप, परमाणुओं की (उपासते) उपासना करते हैं, वे (अन्धन्तमः) निविड़ अन्धकार में (प्रविशन्ति) प्रवेश करते हैं। (उ) और (ये) जो लोग (सम्भूत्याम्) कार्यरूप, परमाणुजन्य पदार्थ में (रताः) प्रीतिपूर्वक उपासना में लिप्त हैं (ते) वे (ततो, भूय, इव) उससे भी अधिक अज्ञानान्धकार में प्रवेश करते हैं। इस मन्त्र से सिद्ध है कि—परमाणु और परमाणुजन्य पदार्थों की उपासना दुःखदायक है।

हस्ताक्षर—

१. (ठाकुर) महावीर सिंह "मन्त्री आर्यसमाज", (फारसी में)
२. (मुन्शी) शुकदेव प्रसाद (मन्त्री धर्म सभा)
३. (बाबु) चतुर्भुज दास (शास्त्रार्थाध्यक्ष तथा प्रधान-धर्म सभा)

१. तुलसीराम शर्म्मणः
२. कुमार सेन शर्म्मणः

नोट—

इसके पश्चात् धर्म सभा की ओर से निम्नलिखित उत्तर आया, जिसको देखकर पाठकगण विचार लेंगे कि हमारे मन्त्र के उत्तर देने में एक अक्षर भी तो नहीं लिखा, अर्थात् बुद्धिमान जन तो इसी से जान सकते हैं कि जब हमारे लिखे मन्त्र से निषिद्ध प्रतिमापूजन का कोई समाधान उस मन्त्र के अर्थ द्वारा नहीं किया तो निषेध का स्वीकार हो चुका। किञ्च प्रतिमापूजन की सिद्धि के लिए उन्होंने निम्नलिखित मन्त्र ४० मिनट में दिया। सबसे प्रथम ३० मिनट वाले नियम का उल्लंघन उन्होंने ही किया, अस्तु ॥

मूर्त्ति पूजकों की ओर से—

नमो ह्रस्वाय च वामनाय च, नमो बृहते च वर्षीयसे च नमो।
बृद्धाय च सबृधे च नमोऽग्र्याय च प्रथमाय च ॥

(यजु० अ० १६ मं० ३०)

अर्थात्—ह्रस्व शरीर परमेश्वर के अर्थ नमस्कार, वामनस्वरूप परमेश्वर के अर्थ नमस्कार, बड़े अंग वाले परमेश्वर के अर्थ नमस्कार, बहुत बड़े परमेश्वर के अर्थ नमस्कार, वृद्ध परमेश्वर के अर्थ नमस्कार, वृद्ध

सहित परमेश्वर के अर्थ नमस्कार, सबसे आगे हुए परमेश्वर के अर्थ नमस्कार, सबमें मुख्य परमेश्वर के अर्थ नमस्कार ॥

[तारीख—११ मध्य १८६० ई० वक्त १० बजकर ५० मिनट]

हस्ताक्षर—

१. (मुन्शी) शुकदेव प्रसाद (मन्त्री—धर्म सभा)
२. (ठाकुर) महावीर सिंह (मन्त्री—आर्यसमाज) "फ़ारसी में"
३. (बाबु) चतुर्भुज दास (शास्त्रार्थाध्यक्ष तथा प्रधान—धर्मसभा)

१. त्रिवेणी दत्त शर्म्मणः
२. हजारी लाल शर्म्मणः

नोट—

इस उत्तर से प्रथम तो पाठकगण यह भी विचारें कि इन्होंने हमारी तरह से जैसे हमने पृथक्-पृथक्, पद-पद का अर्थ लिखा था, ऐसा क्यों नहीं लिखा, सामूहिक रूप से क्यों लिखा ? अरे भाई ! लिखते कहां से ? उसमें तो परमेश्वर शब्द वा उसका पर्याय कहीं है ही नहीं, अस्तु ॥

आर्यसमाज की ओर से—

॥ ओ३म् ॥

प्रथम तो हमारे मन्त्र पर सङ्गति वा असङ्गति का विचारकर इन चालिस मिनटों में कुछ उत्तर नहीं आया, अस्तु ! दूसरे जो मन्त्र—"**नमो ह्रस्वाय च**" इत्यादि कहा, उसमें परमेश्वर का नाम भी नहीं आया, केवल "**ह्रस्वाय**" बालक के लिए, "**वामनाय**" बौने के लिए, "**बृहते**" बड़े के लिए, "**वर्षीयसे**" वृद्धों में अतिवृद्ध के लिए, "**वृद्धाय**" बड़ों के लिए, "**सवृधे**" अपने साथ बढ़ने वालों के लिए, "**अग्र्याय**" ज्येष्ठ वा सत्कर्म में अग्रसर के लिए, "**प्रथमाय**" प्रख्यात के लिए—इन सबों को नमस्कार, अर्थात् सत्कार करना वेद में लिखा है, और यदि ये सब विशेषण परमेश्वर ही के हैं, तो इसी अध्याय में,—"**स्तेनानां पतये नमोनमः**" ऐसा भी लिखा है तो क्या "**स्तेन्**" अर्थात् चोरों का पति (सरगना) भी परमेश्वर ही ठहरेगा ?···हंसी···इसलिए यह अर्थ संगत नहीं है, किन्तु हमारा ही अर्थ सब लोग ठीक प्रतीत करेंगे,—विशेष प्रार्थना यह है कि, आप लोगों को एक मन्त्र की दूसरे मन्त्र से सङ्गति भी मिलानी उचित है, कहां तक लिखें ? उसी अध्याय का २८वां मन्त्र यह है,—"**नमः श्वभ्यः श्वपतिभ्यश्च वो नमोनमः**" अर्थात् कुत्तों और कुत्तों के पालने वालों को भी "**नमः**" अर्थात् नमस्कार लिखी है। (चारों तरफ हंसी······) तो आपके मत में यह विशेषण भी परमेश्वर ही के कहेंगे—फिर यजुर्वेद अध्याय, ४० का मन्त्र ८ इस प्रकार है—"**स पर्य्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरँ शुद्धमपापविद्धम् । कविर्मनीषी परिभूः**·········" इत्यादि-इत्यादि ॥ अर्थात्—वह परमेश्वर पूर्ण हो रहा है, यह अर्थ "**सपर्य्यगात्**" का है. वह "**शुक्रम्**" अर्थात् (आशुकरोतीति शुक्रम्) शीघ्र उत्पन्न करने वाला, "**अकायम्**" शरीरत्रय रहित, "**अव्रणम्**" "**अच्छेद्य**" तथा "**अस्नाविरम्**" अर्थात् नस नाड़ी के बन्धनों से रहित है, इत्यादि विशेषण वाला है तो दूसरे मन्त्र भी इसके अनुकूल होने चाहिए।

[तारीख—११-५-१८६० ई० तथा समय—११ बजकर ५६ मिनट]

हस्ताक्षर—

१. (मुन्शी शुकदेव प्रसाद (मन्त्री—धर्म सभा)
२. (ठाकुर) महावीर सिंह (मन्त्री—आर्यसमाज) "फारसी में"
३. (बाबु) चतुर्भुज दास (शास्त्रार्थाध्यक्ष तथा प्रधान—धर्म सभा)

१. तुलसी राम शर्म्मणः
२. कुमार सेन शर्म्मणः

मूर्त्ति पूजकों की ओर से—

नमस्ते रुद्र मन्यव उतोऽत इषवे नमः ।
बाहुभ्यामुतते नमः ।। (यजु० अध्याय १६, मं० १)

अर्थात्—हे रुद्र परमेश्वर तुम्हारे क्रोध के अर्थ नमस्कार, हे रुद्र परमेश्वर तुम्हारे बाण के अर्थ नमः । हे रुद्र तुम्हारे भुजाओं को नमस्कार । बिना मूर्त्ति, शरीर के क्रोध और बाण तथा भुज नहीं हो सकते हैं, फकत, वेद जो है सिवाय परमेश्वर के अन्य किसी को भी नमस्कार नहीं कर सकता, और सबका पति वही एक परमेश्वर है, और आपके कहने से ही यह बात साबित होती है कि, चोरों का परमेश्वर और है, सौ वेद में ऐसा अनर्थ नहीं हो सकता, और ये वार्त्ता हम भी चाहते हैं, हमारे आपके मन्त्र का भ्रम दूर होए ।

हस्ताक्षर—

१. (मुन्शी) "शुकदेव प्रसाद" (मन्त्री—धर्म सभा)
२. (ठाकुर) "महावीर सिंह" (मन्त्री—आर्यसमाज)
३. (बाबु) "चतुर्भुज दास" (शास्त्रार्थाध्यक्ष तथा प्रधान—धर्म सभा)

१. "त्रिवेणी दत्त शर्म्मणः"
२. "पण्डित कृष्णानन्द शर्म्मणः"

नोट—

इसी उपरोक्त पर्चे के साथ अगला पर्चा भी दिया गया था, जो निम्न प्रकार है ।

मूर्त्ति पूजकों की ओर से—

अन्धंतमः प्रविशन्ति येऽसम्भूर्ति उपासते ।
ततो भूऽयइव ते तमो य ऽ उ सम्भूत्याँरताः ।।६।।

इस मन्त्र का यह अर्थ नहीं है, जो कि तुलसीराम शर्मा ने कहा, इस स्थान में प्रष्टम् है, जो यजुर्वेद मन्त्र है, तिसकी पूर्व मन्त्र अथवा उत्तर मन्त्र से संगति बिना ही कार्य-कारण, उपासना का निषेद्ध करता है, और इस मन्त्र में ब्रह्म के स्थान में यह अर्थ किस पद का है ? मन्त्र के अक्षरों से तो "असम्भूति" अर्थात् उत्पत्तिमत् वस्तु की जो उपासना करता है, सौ नर्क में पड़ता है, यह अर्थ प्रतीत होता है, तब तो यह भी निर्णीतव्य है, जो ब्रह्म असम्भूति शब्दार्थ है, अथवा नहीं, जो ब्रह्म भी उत्पत्ति रहित होने से असम्भूति शब्दार्थ है तो ब्रह्म उपासना से भी नर्क होगा जरूर, असम्भूति शब्दार्थ ब्रह्म नहीं तो सम्भूति शब्द का अर्थ होगा, तो भी इस पक्ष में दोष है, क्योंकि ब्रह्म को कार्यत्वापत्ति और ब्रह्म की उपासना में नर्क होगा ।

हस्ताक्षर—

१. (ठाकुर) "**महावीर सिंह**" (**मन्त्री—आर्यसमाज**) "फारसी में"
२. (मुन्शी) "**शुकदेव प्रसाद**" (**मन्त्री—धर्म सभा**)
३. (बाबु) **चतुर्भुज दास**" (**शास्त्रार्थाध्यक्ष तथा प्रधान—धर्म सभा**)

१. "**त्रिवेणी दत्त शर्मा**"
२. "**हजारी दत्त शर्मा**"

नोट—

पाठकगण ! विचार का स्थान है, "**नमो ह्रस्वाय च**" इस मन्त्र का आपने अर्थानुकूल कुछ भी समाधान नहीं किया, और फिर पूर्व मन्त्र को छोड़ दूसरे मन्त्र "**नमस्ते रुद्र**······" को लिख दिया, और अगले परचे में उसका भी उत्तर लिखा है, क्योंकि यह मन्त्र भी राजापरक है, ईश्वर विषयक नहीं है, अपरंच इनकी व्याकरण निपुणता का भी परिचय लीजिए जो कि "प्रष्टव्य" के स्थान में "प्रष्टम्" तथा "निर्णेतव्य" के स्थान में "निर्णीतव्य" इत्यादि—अनेक अशुद्धियां हैं, जो व्याकरण से भी बड़ा स्थूल सम्बन्ध रखती हैं, और यह भी प्रतीत होता है कि—यह भाषा—"**साधुसिंह जी की पुस्तक—सत्यार्थ विवेक**" से नकल की गई है। क्योंकि, हमने अपने पर्चे में ब्रह्म के स्थान में यह वाक्य नहीं लिखा, फिर ये किससे पूछते हैं कि—"**यह किस पद का अर्थ है**"? सो यह सम्पूर्ण लेख हमारे पर्चे से नहीं, किन्तु "**सत्यार्थ विवेक**" से लिया गया है, अस्तु······चाहे कहीं से भी हो आप उत्तर सुनिए—

आर्यसमाज की ओर से—

आपके दूसरे कथन से भी—"**नमो ह्रस्वाय च**" का अर्थ ईश्वर विषयक सिद्ध नहीं हुआ, और परमेश्वर डाकुओं का रक्षक नहीं नाशक है, और केवल इतना ही नहीं किन्तु उस अध्याय के और भी मन्त्र सुनिए—

(१) "**नमो वञ्चते परिवञ्चते स्तायूनांपतये नमो नमो, निषङ्गिणऽ इषुधिमतेतस्कराणांपतये नमो नमः। सृकायिभ्यो जिघाँसद्भ्योमुष्णतां पतये नमो नमो, ऽसिमद्भ्योनक्तं चरद्भ्योविकृन्तानांपतये नमो नमः॥** [यजु० अ० १६ मं० २१] "**वञ्चते**" ठगते हुए को "**परिवञ्चते**" सब प्रकार कपट से बर्तने वाले को "**नमः**" वज्र का प्रहार "**नमः पविः सृकः वृकः वधः वज्रः**" (निघण्टु अ० २, खं० २०) "**स्तायूनां**" चौर्योपजीवियों के "**पतये**" पति को "**नमः**" वज्र का प्रहार "**निषङ्गिणे**" राज्य रक्षा के लिए निरन्तर उद्यत "**इषुधिमत्ते**" बाणों के धारण करनेवाले को "**नमः**" सत्कार युक्त करो "**तस्कराणाम्**" चोरों के "**पतये**" स्वामी को "**नमः**" वज्र और "**सृकायिभ्योजिघांसद्भ्यः**" सज्जनों के पीड़क मारने की इच्छा करनेवालों को, "**नमः**" वज्र प्रहार हो, "**असिमद्भ्यः**" खड्गवालों को, "**नक्तंचरद्भ्यो**" रात्रि में घूमनेवाले लुटेरों को "**नमः**" शस्त्र प्रहार हो, "**विकृन्तानां पतये**" विविध प्रकार से गांठ काटनेवालों को, मारकर गिरानेवाले रक्षकों का सत्कार करो। और देखिए—(२) "**नम उष्णीषिणे गिरिचराय कुलुञ्चानां पतये नमो नमः इषुमद्भ्योधन्वायिभ्यश्च वो नमो नम आतन्वानेभ्यः प्रतिदधानेभ्यश्च वो नमो नम आयच्छद्भ्योऽस्यद्भ्यश्च वो नमः**"॥ [यजु० अ० १६ मं० २२] अर्थात्—"**उष्णीषिणे गिरिचराय**" श्रेष्ठ पगड़ी के धारण करनेवालों और पर्वतों में विचरनेवालों का "**नमः**" सत्कार करो, "**कुलुञ्चानाम्**" दुष्टता से दूसरों के पदार्थ खोंसने (छीनने) वालों के, "**पतये**" गिरानेवालों का, "**नमः**" सत्कार करो, "**इषुमद्भ्यो नमः**" बहुत बाणोंवालों का भोजनादि से सत्कार करो, "**धन्वायिभ्यो वो नमः**" धनुषों को प्राप्त होनेवाले तुम लोगों का सत्कार हो, "**आतन्वानेभ्यः**" अच्छे प्रकार के सुख फैलानेवालों का,

"**नमः**" सत्कार करो, "**च**" और "**प्रतिदधानेभ्यो वो नमः**" शत्रुओं के प्रति शस्त्र धारण करनेवाले तुमको सत्कार प्राप्त हो, "**आयच्छद्भ्यो वो नमः**" बुरे कर्मों से रोकनेवालों को अन्न दो, "**च**" और "**अस्यद्भ्यो वो नमः**" दुष्टों पर शस्त्र छोड़नेवाले तुम लोगों का सत्कार हो ॥ (३) "**नमो विसृजद्भ्यो विद्ध्यद्भ्यश्च वो नमो नमः स्वपद्भ्यो जाग्रद्भ्यश्च वो नमो नमः शयानेभ्य आसीनेभ्यश्च वो नमो नमस्तिष्ठद्भ्यो धावद्भ्यश्च वो नमः**" ॥ [यजु० अ० १६ मं० २३] अर्थात्—"**विसृजद्भ्यः**" शत्रुओं पर शस्त्र छोड़नेवालों को "**नमः**" अनादि पदार्थ "**च**" और "**विद्ध्यद्भ्यो वो नमः**" शत्रुओं को बींधनेवाले वीर पुरुषों को उत्तम भोजनादि सत्कार, "**स्वपद्भ्योजाग्रद्भ्यश्च वो नमो नमः**" सोते और जागतों का सत्कार करो, "**आसीनेभ्यो वो नमः**" आसन पर बैठनेवाले तुमको सत्कार प्राप्त हो, "**तिष्ठद्भ्योधावद्भ्यश्च वो नमः**" खड़े हुए और भागते हुए तुमको अन्नादि पदार्थ प्राप्त हों ॥ (४) **नमः सभाभ्यः सभापतिभ्यश्च वो नमो नमोऽश्वेभ्योऽश्वपतिभ्यश्च वो नमो नम आव्याधिनीभ्यो विविध्यन्तीभ्यश्च वो नमो नम उगणाभ्यस्तृँहतीभ्यश्च वो नमः**" ॥ [यजु० अ० १६ मं० २४] अर्थात्—सभा और सभापतियों का सत्कार करो, घोड़ों और घोड़ों के रक्षकों का सत्कार करो, शत्रु सेना को बींधनेवाली अपनी सेना को अन्नादि दो, शत्रुवीरों को मारती हुई सेनाओ और युद्ध में मारती हुई सेनाओं को भोजनादि दो, "**उगणाभ्यः**" विविध तर्कवाली स्त्रियों का सत्कार हो, "**तृंहतीभ्यः**" युद्ध में मारती हुई स्त्रियों का यथा योग्य सत्कार हो। अब जो मन्त्र इस वार वादी (मूर्त्ति पूजकों) की ओर से—"**नमस्ते रुद्र**……" इत्यादि दिया गया है उसका भी आशय प्रकरणानुसार राज विषयक ही है, क्योंकि दुष्टों को दण्ड देकर रुलानेवाले राजा का वाचक यहां रुद्र पद है, उसी में क्रोध बाण बाहु अर्थात् भुजा भी हो सकती है। इस अध्याय १६ में लगभग पचास मन्त्र हैं जिनमें वार-वार "**नमो नमः**" आता चला गया है, जिसका अर्थ निघण्टु में यास्क मुनि ने "**वज्र**", "**अन्न**" और "**सत्कार**" लिखा है।

वादी ने जो "**अन्धन्तमः**……" इस मन्त्र पर पूर्वापर असंगति बताई, उसमें यह नहीं लिखा कि, किस पद वा मन्त्र से असंगति है ? और जो वड़े जोर से कहा था कि, "**ब्रह्म के स्थान में**" यह किस पद का अर्थ है ? सौ हमारा लेख देखा जावे, उसमें हमने ऐसा नहीं लिखा, शायद आप पत्रों को देखते ही नहीं और मन्त्र का अर्थ आपने स्वीकार कर लिया। अर्थात् —"**असम्भूति अर्थात् उत्पत्ति रहित और सम्भूति अर्थात् उत्पत्तिमत् वस्तु की जो उपासना करता है वह नरक में पड़ता है, यह अर्थ प्रतीत होता है**"। ऐसा आपने अपने परचे में लिखा है। रही यह बात कि उत्पत्ति रहित ब्रह्म भी है, तो उसकी उपासना से भी नरक होगा सो ऐसा मत आपका होगा। वेद तो ऐसा प्रतिपादन करता है कि—"**नत्वावां अन्यो दिव्यो न पार्थिवो न जातो न जनिष्यते। अश्वायन्तो मघवन्निन्द्र वाजिनो गव्यन्तस्त्वा हवामहे**" ॥ [साम० उत्तरा० १ प्र० १ अ० ११ मं० २]। अर्थ—हे मघवन् इन्द्र परमेश्वर ! "**त्वावान्**" तेरे सदृश "**अन्यः**" और "**दिव्यः**" प्रकाश गुण वाला "**न**" नहीं "**पार्थिवः**" पृथिवी परमाणुजन्य पदार्थ "**न**" नहीं, "**जातः**" उत्पन्न हुआ, और "**न जनिष्यते**" न होगा "**वाजिनः**" आप सर्वशक्तिमान की "**अश्वायन्तः**" व्यापकता जानने की इच्छा करते हुए "**गव्यन्तः**" वेद वाणी की इच्छा करते हुए हम लोग "**त्वा**" आपको "**हवामहे**" बुद्धि में धारण कर सत्कार करें। इस परचे में हमने भी तीसरा मन्त्र ईश्वर के अमूर्त्तिमान् होने में दिया, और उसके साथ असम्भूति पदवाच्य ईश्वर की उपासना में जो दोष दिया था, वह निराकृत हो गया। हमारे निराकार प्रतिपादक तीन मन्त्रों में से एक मन्त्र—"**स पर्यगात्**……" में पण्डित जी ने जुबानी दोष दिया। यदि वह लिखते तो हम भी लिखकर उत्तर देते हम तीन बार तीन मन्त्र दे चुके, और आपने अर्थ का उद्धार नहीं किया, इति।

हस्ताक्षर—

१. (मुन्शी) शुकदेव प्रसाद (मन्त्री—धर्म सभा)
२. (ठाकुर) महावीर सिंह (मन्त्री—आर्यसमाज) "फारसी में"
३. (बाबु) चतुर्भुज दास (शास्त्रार्थाध्यक्ष तथा प्रधान—धर्म सभा)

१. तुलसी राम शर्म्मणः
२. कुमार सेन शर्म्मणः

मूर्त्ति पूजकों की ओर से—

"**अन्धन्तमः प्रविशन्ति येऽसम्भूतिमुपासते**" इस मन्त्र में "सम्भूति" और "असम्भूति" ये दोनों पद हैं। उनका अर्थ उत्पत्ति और उत्पत्तिरहित ये अर्थ हैं, और आर्यसमाज के पण्डित ने ये कहा कि परमाणु की पूजा करनेवाले नरक में जाते हैं। ये ऋचा का अर्थ है, और परमाणुजन्य के पूजा करनेवाला नरक को जाता है। सो असंगत है। क्योंकि "**प्राप्तौ सत्यांनिषेधः**" परमाणु तथा परमाणुजन्य की पूजा प्राप्त थी, और असंगति इस मन्त्र के सम्भूति-असम्भूति ने जाहिर कर दी और आर्यसमाज के पण्डित ने "**नमः**" शब्द का अर्थ "**अन्नादि है**" ऐसा किया है, जो असंगत है। इस जगह पर दो अर्थ निघण्टु के प्रमाण से नहीं लिए जाएंगे, क्यों "**नमः स्वतीति**······" इस सूत्र को करके सब वेद मन्त्रों में चतुर्थी हो रही है। प्रकृति में सो नमः पद अन्नादि वाचक यहां नहीं है, किन्तु अव्यय नमः वाचक है, और आर्यसमाजी पण्डित ने निघण्टु के प्रमाण से ये कहा कि—"**नमस्ते रुद्र**······" इस प्रकरण में कहीं सत्कार तथा कहीं दण्ड करके अन्नादि, इन अर्थों में भाष्यकार ने कहीं चतुर्थी नहीं करी और आर्य समाजी पण्डित "**नमो ह्रस्वाय**······" मन्त्र का अर्थ ईश्वर पर नहीं सो भी असंगत है। क्योंकि द्वितीय मन्त्र अथर्ववेद काण्ड १ तथा मन्त्र संख्या २८, देखिए—"**त्वं स्त्री त्वं पुमानसि**······" इस मन्त्र से उक्त पद सब ईश्वर पर है, और भी ख्याल करना चाहिए। आर्यसमाजी पण्डित ने ये कहा कि—"**न त्वावां अन्यो दिव्यो न**······" [साम० उत्तरा० १ प्र० १ अ० ११ मं० २]। परमेश्वर निराकार है सो बड़े ही सन्देह की वार्ता है। आप बुद्धि धारण कर सत्कार करें। देखो अमूर्त्त वस्तु बुद्धि में नहीं आ सकता है, और प्रकृत में रुद्र पद राजा का वाचक नहीं है। क्योंकि शतपथ गोपथादि प्रमाण माने गए। इस वास्ते कि वेद मन्त्र के झगड़े पर जो शतपथादि प्रकृत में रुद्र पद को राजा वाचक कह देने में तो स्वीकार करना चाहिए। अष्टाध्यायी महाभाष्य से रुद्र का अर्थ धातु के अनुसार होगा, और आपका बड़ा शस्त्र आपने कहा—"**अन्धन्तमः प्रविशन्ति**······" ये मन्त्र, सो आपका मन्त्रार्थ उलटा गया। इसलिए आपको ही उसका उत्तर कहना योग्य है। आपने उसका उत्तर कुछ न किया। "**नमो ह्रस्वाय च वामनाय च**······"॥

हस्ताक्षर—

१. (ठाकुर) महावीर सिंह (मन्त्री—आर्यसमाज) "फारसी में"
२. (मुन्शी शुकदेव प्रसाद (मन्त्री—धर्म सभा)
३. (बाबु) चतुर्भुज दास (शास्त्रार्थाध्यक्ष तथा प्रधान—धर्म सभा)

१. त्रिवेणी दत्त शर्म्मणः
२. हजारी दत्त शर्म्मणः

आर्यसमाज की ओर से—

महाशय ! सम्भूति और असम्भूति पद इस मन्त्र में सहचरित हैं, और—"**सहचरिताऽ सहचरित योर्मध्ये सहचरितस्यैव ग्रहणम्**"। जबकि उत्पत्ति वाले कार्यरूप परमाणुजन्य अर्थ में सम्भूति पद है तो सहचारी होने से असम्भूति पदवाच्य भी उत्पत्ति रहित उपादानकारण। परमाणु ही मन्त्रस्थ असम्भूति पद का अर्थ हुआ,

न कि ब्रह्म ! दूसरे ब्रह्मोपासना तो करना ही चाहिए। हम पूर्व पत्र में मन्त्र दे चुके हैं, और जो पण्डित जी ने—"प्राप्तौ सत्यां निषेधः"। अर्थात् परमाणु और तज्जन्य पदार्थ की उपासना प्राप्त की थी। तभी तो निषेध किया, ऐसा कहा। परन्तु अब पण्डित जी इसको तो सुनिए। आपको पता होना चाहिए कि—वेद में तो ऐसा भी लिखा है कि—"अघन्याः, यजमानस्यपशून् पाहि······"। अर्थात् गौ हिंसा न करनी चाहिए, तथा—"ब्राह्मणो न हन्तव्यः······"। यदि यह निषेध वाक्य पाया जावे तो इसका आशय क्या आप यह निकालेंगे कि—"गौ वा ब्राह्मण की हिंसा प्रचलित थी इसलिए अब भी करनी चाहिए"? और नमः पद के अन्नादि वाचक होने पर क्या चतुर्थी विभक्ति नहीं आती? तथा जो अव्यय होते हैं क्या वे शब्द नहीं रहते? अव्ययों के शब्द न होने में क्या हेतु है? क्योंकि शब्द तो उसे कहते हैं जो—"आकाश वायु प्रभवः"। इत्यादि नाभिस्थान से वायु के उद्गमन के कारण ताल्वादिस्थान विशेष में विभाग को प्राप्त होकर वर्णभाव को प्राप्त होता है। वह शब्द कहाता है, और यह क्या कि नियमों में निघण्टु को मानकर अब कहते हैं कि—निघण्टु का प्रमाण न लिया जावेगा तथा "नमो ह्रस्वाय च" इसमें स्त्री-पुरुष का झगड़ा है, और जो यह कहा कि—निराकार वस्तु बुद्धि में नहीं आ सकती। वाह! वाह!! पण्डित जी महाराज, ऐसी शङ्का तो आपको युक्त न थी, इसका उत्तर तो सर्वसाधारण भी दे सकते हैं कि, आकाश इत्यादि बहुत पदार्थ निराकार हैं तो क्या समझ में नहीं आते? "रुद्र" शब्द का अर्थ—"रोदयते-र्णिलुक् च" के अनुसार दुष्टों को दण्ड देकर रुलाने से राजापरक है। "अन्धन्तमः······" इसका समाधान ऊपर लिखा गया। अब और एक मन्त्र निराकार प्रतिपादक सुनिए—"अनेजदेकं मनसोजवीयो नैनद्देवा आप्नुवन् पूर्वमर्शत्"॥ [यजु० अध्याय ४० मन्त्र ४] इसका अर्थ भी सुनिए—वह परमेश्वर "अनेजत्" अकम्प "एकम्" एक और "मनसो जवीयः" मन से भी अधिक वेगवाला है अर्थात् मन का विषय नहीं। "एनत्" इसको "देवाः" इन्द्रियां "न" नहीं "आप्नुवन्" प्राप्त हो सकतीं यद्यपि वह उनमें "पूर्वम्" पूर्व ही "अर्शत्" विराजमान है। समस्त मूर्त्तिवान् पदार्थ इन्द्रियों के विषय होते हैं। इसलिए वह इन्द्रियगोचर न होने से अमूर्त्तिमान् सिद्ध हुआ। इति॥

(तारीख—११-५-१८६० ई०)

हस्ताक्षर—

१. (ठाकुर) महावीर सिंह (मन्त्री—आर्यसमाज) "फारसी में"
२. (मुन्शी) शुकदेव प्रसाद (मन्त्री—धर्म सभा)
३. (बाबु) चतुर्भुज दास (शास्त्रार्थाध्यक्ष तथा प्रधान—धर्म सभा)

१. तुलसी राम शर्म्मणः
२. कुमार सेन शर्म्मणः

मूर्त्ति पूजकों की ओर से—

आर्यसमाज की ओर से वेद मन्त्र—"अन्धन्तमः प्रविशन्ति येऽ सम्भूति मुपासते······"॥ इस मन्त्र के अर्थ की असंगति दूसरी बार जाहिर करी जाती है। हे सभासद् पुरुषों आपको श्रवण करना चाहिए। देखिए ये वेद के तीन मन्त्र हैं—"यस्तु सर्वाणि भूतानि आत्मन्नेवानु पश्यति। सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विचिकित्सति ॥६॥ यस्मिन्त्सर्वाणि भूतानि, आत्मैवाभिद्विजानतः। तत्र को मोहः कः शोकऽएकत्वमनु-पश्यतः ॥७॥ स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणम्, अस्नाविरꣳशुद्धमपापविद्धम्। कविर्मनीषी परिभूः स्वयंभूर्याथातथ्यतोऽ-र्थान्व्यदधाच्छाश्वतीभ्यसमाभ्यः ॥८॥ [यजु० संहिता अ० ४०, मन्त्र ६, ७, ८]। भावार्थ भी देखिए—जो मोक्ष की इच्छा वाला "सर्वाणि" सब चेतन और अचेतन को आत्मा में ही देखें और मेरे से अलग ये चेतन-अचेतन नहीं है। और मैं परम ब्रह्म हूं। सब जगह व्याप्त हूं। ऐसे ज्ञानी संशय से दूर हैं ॥६॥ जिस अवस्था में सब चेतन में

आत्म-बुद्धि हो जाए इस तरह से कि—"**आत्मवेदं सर्वं खल्विदं ब्रह्म**"। ऐसे देखता हुआ जो ज्ञानी है। उसको उस अवस्था में ध्यान करते कोई मोह नहीं और कोई शोक भी नहीं। क्योंकि संसार निवृत्ति हो गया उसका ॥७॥ (अब उस ज्ञानी के वास्ते वेद कहता है) जो इस तरह से आत्मा को देखे। सो ब्रह्म को प्राप्त हो गया। अब सुनो ब्रह्म कसा है ? शुक्र नाम शुद्ध है, फिर उसका स्वरूप कैसा है ? "**अकाय**" लिङ्ग शरीर रहित है। फोड़ा-फुन्सी जिसके नहीं, सिर नाड़ी इत्यादि जिसके नहीं। ऐसे ब्रह्म को वह ज्ञानी प्राप्त होता है। और ज्ञानी कैसा हो ? आधे मन्त्र से उसका हाल बताया जाता है। क्रान्त दर्शन, पण्डित, बुद्धिमान्, सर्वतः ज्ञानवान्, ब्रह्मस्वरूपेण स्वयं ज्ञानवान् ऐसा ज्ञानवान् यथार्थता करके सब स्वस्वामिभाव सम्बन्ध से पृथक् होकर ब्रह्म प्राप्ति उसकी होती है। देखो—"**अन्धन्तमः**······"। इस मन्त्र से पहले तीन मन्त्र सुनाकर यह कथन है कि आर्यसमाज ने जो कहा कि—"**स पर्यगाच्छुक्रमकायम्**······"। इस मन्त्र को परमेश्वर के निराकारत्व में कहना बड़े ही सन्देह की वार्त्ता है। "**स परमेश्वरः**" यह उक्त मन्त्र में अर्थ नहीं है। तो फिर क्या है ? "**सज्ज्ञानी**" यह अर्थ है। क्योंकि पहले के दो मन्त्रों में "**यद्**" शब्द "**ज्ञानीपरक**" है। उसी रीति से "**सपर्यगात्**" मन्त्र में "**तद्**" शब्द "**ज्ञानीपरक**" है। अब "**अन्धन्तमः**······" इस मन्त्र से पहले तीन मन्त्रों की असङ्गति स्पष्ट जाहिर हो गयी। अब "**अन्धन्तमः**······" इस मन्त्र की अर्थासङ्गति भी सुननी चाहिए। भौ सभासदौ !!

हस्ताक्षर—

१. **(ठाकुर) महावीर सिंह (मन्त्री—आर्यसमाज)** "फारसी में"
२. **(मुन्शी) शुकदेव प्रसाद (मन्त्री—धर्म सभा)**
३. **(बाबु) चतुर्भुज दास (शास्त्रार्थाध्यक्ष तथा प्रधान—धर्म सभा)**

१. **त्रिवेणी दत्त शर्मा**
२. **हजारी दत्त शर्मा**

नोट—

इसी परचे के साथ अगले दो परचे भी आए थे। सो नीचे उद्धृत हैं।

मूर्त्ति पूजकों की ओर से—

॥ श्रीः ॥

विदित होय कि जो "**पण्डित**" आर्यसमाजी लिखते हैं कि—हमारे मन्त्र की "**असङ्गति**" और "**सङ्गति**" का कुछ भी उत्तर नहीं दिया। हम अपने पत्र में यह उत्तर दे चुके हैं कि—"**सम्भूति**" यानी जिसकी पैदाइश न होय उसकी उपासना करनेवाला नरक को जाता है तो ब्रह्म भी जो "**उत्पत्ति रहित**" यानी कभी पैदा न होनेवाला है। उसकी उपासना करनेवाले भी आपके आर्यों के अनुसार नरक में जाने चाहिएं। "**पण्डित**" जी ने "**असम्भूति**" यानी पैदा न होनेवाली चीजों में केवल परमाणु को किस तरह माना ? बाकी औरों को क्यों छोड़ दिया ? देखो "**नाय**" मत्तिक "**अनुशर**" परमाणु आकाश "**काला दिक्**", आत्मा, मन। ये सब बगैर पैदायश ही है,—"**पृथ्वय तजो वय्वाकाश**" "**काला दिक् आत्मा मनांसि नित्य द्रव्येणि**"। ये न्याय का सूत्रार्थ है। (वाह ! वाह !! देखिए एक पंक्ति में ६ अशुद्धियां और उस पर संस्कृत लिखने का घमण्ड ?) दूसरे दयानन्द ने परमाणु को "**उत्पत्ति**" वाला पदार्थ माना है। तुम उनके विरुद्ध—"**न पैदा होनेवाला**" कैसे मानते हो ? क्या उनको झूठे मानते हो ? दूसरे पण्डित जी—"**नमो ह्रस्वाय च वामनाय च नमो बृहते चेत्यादि**······" इस मन्त्र का अर्थ ये आर्य लोग करते हैं कि—"बालक बोले, बूढ़े, अति बूढ़े, आप-आप साथ बढ़नेवाले अग्रयाय ज्येष्ठ वा सत्कर्म में

"**अग्रसर**" प्रथमाय, प्रख्यात इन सबका सत्कार करना वेद में लिखा है। न कि परमेश्वर को ! हम पण्डित जी से पूछते हैं कि—"**त्वम् स्त्री त्वम् पुमानसित्वं** "**कुमारो**" **उतवा कुमारीत्वं** "**जीरणो**" **दण्डेन** "**वंचसि**" **विश्वतो-मुखं**" ॥२८॥ [अथर्ववेद काण्ड १० मन्त्र २८]। अर्थ—सर्वात्मरूप से इति करते हैं। हे भगवन् ! आप ही स्त्री हो, आप ही पुरुष हो, आप ही बालक हो, आप ही लड़की हो, आप (बूढ़े) हो (दण्ड) लेकर चलनेवाले हो। (विराट) रूप आप ही हो। यहां स्त्री रूपादि किसके विशेषण हैं ? देखे आपने, आर्यसमाज के पण्डित जी को इस मन्त्र के अर्थ में क्या शंका बाकी रहती है ? यह मन्त्र जिसका बहुत अच्छी तरह प्रतिपादन करता है। और अपने अर्थ में पण्डित जी ने कैसी गलती खाई है ? कि वो—"**संवृधे**" के अर्थ "**अपने साथ बढ़नेवाले**" लिखते हैं। व्याकरण की रीति से "**सं**" उपसर्ग हैं, और "**वृद्ध**" धातु है, (**स**) के अर्थ (**सम्यक्**) यानी भले प्रकार के हैं, और "**वृद्ध**" धातु का अर्थ "**वृद्धि**" है, यानी वढ़ना है। ये सब आर्य अपने को व्याकरणी भाष्यकार से आदिले (अनोखे) मानते हैं। हमें नहीं मालूम ये आर्य (पण्डित) कौन से व्याकरण से अर्थ किया करते हैं ? जो उन्होंने अपने पत्र में "**संवृधे**" का अर्थ—"**अपने साथ बढ़नेवाले**" किया है। और न्याय की रीति से भी इसका ये अर्थ नहीं हो सकता "**तद्वति**" "**तत**" **प्रकारकोऽनुभवः** "**यथार्थ**" **तथा च शाब्दबोधे चैकपदार्थे अपर पदार्थस्य संसर्गः** "**संसर्गमरिदया-भासते**" **यथा नीलोघटः इत्यादि स्थले संसर्गमर्यादास्ति संवृधे इत्यत्र कास्ति संसर्ग मर्यादा** "**गदनीयं**" **भवद्भिः** ॥

हस्ताक्षर—

१. (**ठाकुर**) **महावीर प्रसाद** (**मन्त्री—आर्यसमाज**) "फारसी"
२. (**मुन्शी**) **शुकदेव प्रसाद** (**मन्त्री—धर्म सभा**)
३. (**बाबु**) **चतुर्भुज दास** (**शास्त्रार्थाध्यक्ष तथा प्रधान—धर्म सभा**)

१. **त्रिवेणी दत्त शर्मा**
२. **हजारी दत्त शर्मा**

नोट—

पाठकवृन्द ! और पत्रों की अशुद्धियों की तो गणना ही नहीं की है। क्योंकि पण्डित जी ने इस उपरोक्त पत्र में कदाचित् परीक्षा के लिए साढ़े तीन पंक्तियां संस्कृत में लिखी हों। इसलिए इस एक (ओरिजनल) पत्र की चार-पांच लाईनें देकर अशुद्धियों को [" "] में प्रदर्शित किया गया है। वैसे तो अनगिन गल्तियां मौजूद थी। इन सभी पदों से इनके पाण्डित्य का पता चलता है। धन्य हो ये पाण्डित्य और व्याकरण तथा न्याय का घमण्ड ! अस्तु !! इससे अगला पत्र (तीसरा) भी उन्हीं का था सो नीचे उद्धृत किया जाता है।

मूर्त्ति पूजकों की ओर से—

महाशय विदित हुए कि—आपने जो लिखा कि निघण्टु को प्रमाण मानकर अब न मानना, ये तो आपको भ्रम है। क्योंकि "**नमः स्वास्ति**" इस सूत्र के अर्थ में—"**नमस्नतो**" ऐसा वैयाकरण लिखते हैं। इससे व्याकरण की जो बात हैं सो व्याकरण के आधीन है, और जो आपने लिखा कि—"**नमो ह्रस्वाय**······" इस मन्त्र में "**त्वं स्त्री त्वं पुमानसि**·········" इसका क्या मतलब है ? कि आपने वहां ये लिखा है कि—"**नमो ह्रस्वाय**······" इस मन्त्र में ईश्वर का कोई भी नाम नहीं। इसकी सिद्धि के लिए दूसरे मन्त्र में ये सब ईश्वर को ही कहते हैं। इसलिए आवश्यकता थी, और जो ब्रह्म को निराकारता मानते हों तो आपको जग्दविषयक, ज्ञानोत्पत्ति, ज्ञानाश्रयत्व न बनेंगे तथा परमाणु क्रिया कारकत्व न बनेगा,—"**कुतः समवायीकारणापरोक्षज्ञानचिकीर्षा-कृतिमत्त्वं कर्तृत्वं**·········" तथा ईश्वर की साकारता सिद्ध करनेवाले—"**चन्द्रमा मनसो जातः नाभ्या आसी-दंतरिक्षथं**······" इत्यादि सम्पूर्ण कर्मकाण्ड हैं।

हस्ताक्षर —

१. (ठाकुर) महावीर सिंह (मन्त्री—आर्यसमाज) "फारसी"
२. (मुन्शी) शुकदेव प्रसाद (मन्त्री—धर्म सभा)
३. (बाबु) चतुर्भुज दास (शास्त्रार्थाध्यक्ष तथा प्रधान—धर्म सभा)

१. त्रिवेणी दत्त शर्मा
२. हजारी दत्त शर्मा

नोट—

पाठकगण ! किंचित् ध्यान तो दीजिए कि आप साकार पदार्थ को ही कर्त्तृत्व सिद्ध करने के लिए—"**समवायी कारण**" इत्यादि न्याय का अशुद्ध संस्कृत प्रमाण में देते हैं। प्रथम तो प्रमाण केवल वेद का माना गया था, खैर ! वेद को छोड़ न्याय पर चले, तो भी किसी न्याय दर्शन के सूत्र को भी तो नहीं लिखा। अब इसका उत्तर देना, मन्तव्य से बाहर होकर व्यर्थ नहीं तो और क्या है ? खैर ! तीनों परचों का उत्तर पढ़िए।

आर्यसमाज की ओर से—

॥ ओ३म् ॥

१२-५-१८९० ई०

श्रीमन् महाशयो !

उत्पत्ति रहित समस्त पदार्थों में से ब्रह्म व्यावर्त्तक मन्त्र तो हम पूर्व लिख चुके हैं। परन्तु आपने उत्पत्ति सहित मूर्त्तिमान् की उपासना से नरक में जाना तो मान ही लिया। और यही हमारी प्रतिज्ञा थी। अब उत्पत्ति रहित ब्रह्म की उपासना से नरक में जाना भी आपका ही मत रहा। हम तो वेद मन्त्र—"**न त्वावां अन्यो दिव्यो न पार्थिवो न जातो न जनिष्यते। अश्वायन्तो मघवन्निन्द्र वाजिनो गव्यन्तस्त्वा हवामहे** ॥ [साम० उत्तरा०-१, प्रपाठक-१, अध्याय-११, मन्त्र-२] का अर्थ तथा पद पहले लिख दिया गया है। तो भी संक्षेप में पुनः सुनिए—हे परमेश्वर ! तेरे समान कोई पृथिवी आदि जन्य पदार्थ नहीं हैं और न होगा। हम तुझको बुद्धि में धारण करें। इससे ब्रह्म की उपासना सिद्ध हुई। दूसरा हेतु यह है कि ब्रह्म चेतन है, उसकी उपासना से नरक नहीं हो सकता, जड़ की पूजा से जड़ता अर्थात् अज्ञानान्धकार रूप नरक होता है। क्योंकि चेतन तो उपासक की भक्ति को जानकर प्रसन्न हो सकता है, जड़ नहीं हो सकता। आपका मन्त्र—"**नमो ह्रस्वाय च**" जिसकी पुष्टि को—"**त्वं स्त्री त्वं पुमानसि**······" यह मन्त्र दिया था। उसका भी अर्थ जीव विषय में है। क्योंकि हम उस पर निरुक्त का प्रमाण देते हैं—"**मातरो विविधा दृष्टाः पितरः सुहृदस्तथा। अवाङ्मुखः पीड्यमानो जन्तुश्चैव समन्वितः**" ॥ इससे यह साक्षी हुई कि जीव ही अनेकों का पुत्र तथा अनेकों का पिता तथा मित्रादि बनता है, परमेश्वर नहीं। और उसमें यह भी तो लिखा है कि—"**त्वं जीर्णो दण्डेन वञ्चसि**" तू बूढ़ा होकर लाठी पकड़कर चलता है। वाह ! वाह !! मूर्त्ति पूजकों का परमेश्वर लाठी पकड़कर चलता है ? महाशयो ! सोचो तो सही यह मन्त्र "**जीव**" विषय में ही संगत होता है। "**परमेश्वर**" विषय में नहीं। और "**संवृधे**" पद के अर्थ में आप ही भूल गए। क्योंकि वहां "**संवृधे**" पाठ ही नहीं है, बल्कि "**स वृधे**" ऐसा पाठ है। जब आपको पाठ का ही निश्चय नहीं है तो अर्थ पर क्या दशा होगी ? वाह ! रे !! पाण्डित्य !!! और संस्कृत तो आपने खूब ही लिखा ? जहां "**मर्यादा**" के स्थान पर "**मरिदया**" लिख मारा। धन्य हो ! फिर जिस आशय "**संवृधे**" पर पंक्ति लिखते हो वह पाठ ही

वैसा नहीं है। और "**अनेजदेकं मनसो जवीयो**······" इससे जो हमने सिद्ध किया कि "ईश्वर इन्द्रियों का विषय **नहीं**" उसको भी आपने मान लिया। क्योंकि उसमें साकार होने का कोई अर्थ नहीं लिखा। यह आपका दूसरा स्वीकार अप्रतिमता में हुआ। तीसरा यह हुआ कि,—"**न त्वावां अन्योदिव्यो न पार्थिवो**······" इसका अर्थ भी आपने स्वयं कुछ न करके हमारे ही अर्थ को मान लिया। और चौथा मन्त्र—"**न तस्य प्रतिमा अस्ति**······" यह साफ-साफ लिख रहे हैं, तथा "**नमस् नतौ**······" यह कौन-सा वैयाकरण लिखता है? इस विषय में पाणिनि और पतञ्जलि ही का अर्थ मान्य होगा अन्य का नहीं,—"**चन्द्रमा मनसो जातः नाभ्या आसीदन्तरिक्षँ शीर्ष्णो**···" इत्यादि का अर्थ आपने कुछ नहीं लिखा—हां! आपने जो लिखा कि ज्ञानी और क्रान्तदर्शन उपासक उस परब्रह्म को शरीर रहित फोड़ा, फुन्सी, जिसके नहीं, ऐसा जानता है। सो हम तो यही चाहते हैं कि सबको ज्ञान हो। जिससे सभी उस निराकार ब्रह्म को जानें। हां! अज्ञानी लोग तो ब्रह्म को लाठी लेकर चलनेवाला, गर्भ में उलटा लटकनेवाला। बूढ़ा होने और मरनेवाला, मान रहे हैं। सो हम अज्ञान (जहालत) को दूर करके ज्ञानी बनाना चाहते हैं। आप स्वयं अज्ञानी और अन्य सबको अज्ञानी रखना चाहते हैं। खैर! ज्ञानी अर्थात् विद्वान् को निराकार ब्रह्म मानना आपने मान लिया, बड़ी दया की। और दूसरी दया यह की कि उससे पहले दो मन्त्र—"**यस्तु सर्वाणि भूतानि आत्मन्नेवानु पश्यति। सर्व भूतेषु चात्मानं ततो न विचिकित्सति**" तथा—"**यस्मिन्त्ससर्वाणि भूतानि आत्मैवाभूद्विजानतः। तत्त को मोहः कः शोक एकत्व मनु पश्यतः**"॥ जो दिए उनमें तो आपने स्वयं प्रतिमा पूजन का खण्डन कर दिया। क्योंकि उनका अर्थ तो यह है—"**यस्तु**"—जो मनुष्य सर्वभूतों में परमात्मा को और परमात्मा में सर्वभूतों को जानता है वह संशय को प्राप्त नहीं होता। जो अपने सदृश सबको मित्र भाव से जानता है वहां शोक और मोह कहां? किन्तु परमेश्वर को सर्वान्तर्यामी जानकर किसी से विरोध का भाव न रखना चाहिए। अब इन दोनों मन्त्रों से आप ही ने प्रतिमा पूजन का खण्डन कर दिया। और सिद्ध कर दिया कि ज्ञानी लोग उस ब्रह्म को निराकार मानते हैं, और जानते हैं। अज्ञानी उसको उलटा मानते हैं।

हस्ताक्षर—

१. (ठाकुर) महावीर सिंह (मन्त्री—आर्यसमाज) "फारसी"
२. (मुन्शी) शुकदेव प्रसाद (मन्त्री—धर्म सभा)
३. (बाबु) चतुर्भुज दास (शास्त्रार्थाध्यक्ष तथा प्रधान—धर्म सभा)

१. तुलसी राम शर्म्मणः
२. कुमार सेन शर्म्मणः

नोट—

इसी उपरोक्त पत्र के साथ निम्न दूसरा परचा भी नत्थी किया हुआ था।

आर्यसमाज की ओर से—

॥ ओ३म् ॥

१२-५-१८९० ई०

अब विचारना चाहिए कि, हमारी ओर से आपके अर्थों में दोष दिखलाए गए। और हर बार एक-एक मन्त्र ईश्वर के अप्रतिम होने में प्रमाण दिया गया। अर्थात् अद्यावधि हम चार मन्त्र उक्त विषय में दे चुके हैं। जिनमें से एक पर भी स्वपक्ष पुष्टि आप लोग न कर सके। अब बहुत ही स्पष्टता से सुनिए—"**न तस्य प्रतिमा**

अस्ति यस्य नाममहद्यशः। हिरण्यगर्भ इत्येष मा-मा हिँसीदित्येषायस्मान्न जात इत्येषः'' ॥३॥ [यजुर्वेद अध्याय ३२ मन्त्र ३]। अर्थ—''**यस्य**'' जिसका (नाम) प्रसिद्ध ''**महद्यशः**'' बड़ा यश है ''**तस्य**'' उसकी ''**प्रतिमा**'' प्रतिमान, तोलन, साधन, प्रतिकृति वा आकृति ''**न अस्ति**'' नहीं है। ''**हिरण्यगर्भइत्येषः**'' वह हिरण्यगर्भ अर्थात् सूर्यादि तेजस्वी पदार्थों का आधार ''**मामहिँसीदित्येषा**'' मुझ जीव को मत दुःख दे यह प्रार्थना है। ''**यस्मासजात इत्येषः**'' जिससे कि वह जन्म नहीं लेता। इसलिए उसकी प्रतिमा नहीं है। इति ॥

हस्ताक्षर—

१. (ठाकुर) महावीर सिंह (मन्त्री—आर्यसमाज) ''फारसी में''
२. (मुन्शी) शुकदेव प्रसाद (मन्त्री—धर्म समाज)
३. (बाबु) चतुर्भुज दास (शास्त्रार्थाध्यक्ष तथा प्रधान—धर्म सभा)

१. तुलसी राम शर्मा
२. कुमार सेन शर्मा

नोट—

बस ! शास्त्रार्थ लिखित (तहरीरी) यहां समाप्त हो चुका। क्योंकि यह परचा आर्यसमाज का १२-५-१८९० ई० सायंकाल को पढ़ा गया। और १३-५-१८९० ई० तारीख को धर्मसभावालों (मूर्त्ति पूजकों) की ओर से होना चाहिए था। परन्तु इस पत्र का उत्तर मूर्त्ति पूजक देते ही क्या ? निदान पत्रोत्तर न देकर यह लिखकर भेजा कि—

मूर्त्ति पूजकों की ओर से—

''पर्चे कल के में कार्यरूप परमाणु को नित्य माना। और परचा शुरू में कारण रूप को नित्य माना। वो लेख दिखलाना चाहिए था।''।

हस्ताक्षर—

१. (ठाकुर) महावीर प्रसाद (मन्त्री—आर्यसमाज) ''फारसी में''
२. (मुन्शी) शुकदेव प्रसाद (मन्त्री—धर्म सभा)
३. (बाबु) चतुर्भुज दास (शास्त्रार्थाध्यक्ष तथा प्रधान—धर्म सभा)

१. त्रिवेणी दत्त शर्मा
२. कृष्ण दत्त शर्मा

नोट—

महाशयो ! कल तो यह लिखा था कि—''**दयानन्द ने परमाणु को अनित्य माना तुम लोग नित्य कैसे मानते हो ?**'' परन्तु जब उक्त बहाने से भी शास्त्रार्थ न टला तो इस झूठे दावे पर कमर बांधी कि कार्यरूप परमाणु को कल के परचे में नित्य माना था। निदान झूठ से कब काम चलता है ? और शास्त्रार्थ से कैसे बच सकते थे ? आर्यों ने तुरन्त उत्तर दिया कि—

आर्यसमाज की ओर से—

हमने किसी परचे में कार्यरूप परमाणु को नित्य नहीं माना। इति ॥ सिर्फ, कारण, परमाणु वा प्रकृति को ही नित्य लिखा है।

हस्ताक्षर—

१. (ठाकुर) महावीर सिंह (मन्त्री—आर्यसमाज) "फारसी में"
२. (मुन्शी) शुकदेव प्रसाद (मन्त्री—धर्म सभा)
३. (बाबु) चतुर्भुज दास (शास्त्रार्थाध्यक्ष तथा प्रधान—धर्म सभा)

१. तुलसी राम शर्म्मणः
२. कुमार सेन शर्म्मणः

नोट—

इस पर भी बहुत बहानेबाजी की। फिर एक कटे हुए परचे को दिखलाने लगे। तिस पर स्पष्ट साफ किया हुआ परचा जिसमें धर्म सभा के मन्त्री के हस्ताक्षर तथा प्रैजीडेण्ट साहब के भी हस्ताक्षर थे। दिखलाया, तो फिर भी कुछ न चली। और इसी टालमटोल में ६ बजने को आए। तब १२ तारीख वाले आर्यों के पत्र का उत्तर तो असम्भव था। लाचार मुन्शी शुकदेव प्रसाद साहब (मन्त्री—मूर्त्ति पूजकों) ने फरमाया कि समय थोड़ा है। इसलिए आज शास्त्रार्थ जुबानी (तकरीरी) हो। तिस पर आर्यों ने यह समझकर कि तहरीरी (लिखित) शास्त्रार्थ में तो थे लोग परास्त हुए। अब इसीलिए अपने आप लेख से इन्कार करते हैं। अस्तु।। जुबानी ही सही। इसके बाद जुबानी स्वीकृति देने पर भी एक अडंगा लगाया गया कि—"**प्रथम आर्य लोग कहें तो फिर हम कहेंगे**" —भला सोचने की बात है। पाठकगण! विचार का स्थल यह है कि प्रथम तो लेख द्वारा उत्तर देने से पीछे हटे, अब जुबानी भी १२ तारीख वाले पत्र का उत्तर नहीं देते और उलटा आर्यों से ही कहते हैं कि—"**प्रथम तुम कहो फिर हम कहेंगे**" यह सब बातें क्या प्रदर्शित करती हैं? परन्तु आर्य लोग भी इतनी आसानी से पीछा छोड़नेवाले नहीं थे। अन्त में श्री ठाकुर महावीर सिंह जी, मन्त्री—आर्यसमाज ने बहुत ही प्रार्थना की कि वे लोग उत्तर दें। परन्तु वहां उत्तर कहां था? वहां तो वे लोग अपना पीछा छुड़ाने में लगे थे। अन्त को आर्य पण्डित श्री तुलसी राम शर्मा ने बीस मिनट में शास्त्रार्थ के पूर्व दिए गए समस्त परचों का निगमन निचोड़ सभा में सुनाया, जिसका सारांश यह था कि—

आर्य पण्डित श्री तुलसीराम जी शर्मा—

अब सब सभासदों को विचारना चाहिये कि—सबसे पहले हमने—"**अन्धन्तम**......" यह मन्त्र दिया था, जिसका अर्थ पण्डित जी ने भी वही मान लिया जो हमने किया था। केवल "**असम्भूति**" पद पर यह शंका की थी कि ब्रह्म भी असम्भूति होने से उपास्य नहीं रहा। सो असम्भूति पद वाक्य ब्रह्म की इस मन्त्र में व्यावृत्ति के ज्ञापक में—"**नत्वावां अन्यो दिव्यो**......" यह मन्त्र दिया जिसमें निराकार ब्रह्म को बुद्धि में धारण कर उपास्यत्व की विधि है। और चेतन होने से ब्रह्मोपासना सफल और जड़ोपासना निष्फल क्या अज्ञान में डालने वाली हमने ही नहीं मानी बल्कि आपने भी मान ली, और मूर्ति पूजा विषयक लिखा मन्त्र "**नमोह्रस्वाय च** ......" और उस पर भी मन्त्र—"**त्वं स्त्री त्वं पुमानसि**......" से भी ईश्वर विषयक सिद्ध नहीं हुआ, निरुक्त प्रमाण—"**मातरो विविधा**..." इत्यादि से यही सिद्ध हुआ कि छोटा, बड़ा, बौना, बूढ़ा, पिता, पुत्र, लड़की, लड़का, मित्र आदि संज्ञा को जीव ही प्राप्त होता है। इसलिए इन मन्त्रों में ईश्वर का नाम न आने से ये मन्त्र जीव विषयक ही सिद्ध हुए। फिर हमारे तीसरे मन्त्र—"**सपर्यगात्**......" का अर्थ भी पण्डित जी ने बिना विवाद स्पष्ट ही मान लिया कि—ज्ञानी उस ब्रह्म को निराकार मानते हैं। अज्ञानियों (जाहिलों) को आर्य समाज ज्ञान सिखलाकर ज्ञानी बनाना चाहता है। चौथा मन्त्र—"**अनेजदेकं मनसो जवीयो**......" का अर्थ भी पण्डित जी (धर्म सभा वालों) ने मान लिया। क्योंकि कोई अर्थ अपनी तरफ से साकार पक्ष में न कर सके। पांचवें मन्त्र—"**न तस्य प्रतिमास्ति**......" पर लेख बद्ध शास्त्रार्थ

ही करने से साफ इन्कार कर दिया, अस्तु। अब देखें पण्डित जी जुबानी इन मन्त्रों का अर्थ क्या करते हैं ? हम आशा करते हैं कि पण्डित जी अन्य कोई नये मन्त्र न पढ़कर इन्हीं मन्त्रों का अर्थ करेंगे। इति।

नोट—

इस पर पण्डित "**कृष्णदत्त**" जी तो चुप हो गये, परन्तु पण्डित "**त्रिवेणी दत्त**" जी चौकी पर चौकड़ी मार कर बैठ गये और एक पन्ना हाथ में लेकर पढ़ने लगे उनसे कहा भी गया कि आपने स्वयं जुबानी (मौखिक) शास्त्रार्थ करना स्वीकार किया था। और अब आप स्वयं लिखा हुआ परचा हाथ में रखकर बोलते हैं। अतः उनसे कहा गया कि आप परचा हाथ में न रखिये जुबानी ही बोलिये। परन्तु जब उन्होंने परचा न छोड़ा तब ठाकुर महावीर सिंह जी (मन्त्री—आर्य समाज) ने कहाकि—"**यदि तुम्हारे कुछ भी याद नहीं हैं, तो परचे ही से कहो**" इस पर भी पर्चा न छोड़ा। और पूर्व कहे गये मन्त्रों का अर्थ न करके दो—चार मन्त्र जहां-तहां के मनमाने मन्त्र पढ़कर कह दिया कि—"**प्रतिमा पूजन सिद्ध भया ! आर्य समाज झूठा !! बोलो सनातन धर्म की जय !!!** इत्यादि—इत्यादि। इस पर आर्य पण्डित श्री बाबु गङ्गाप्रसादजी ने इनके मन्त्रों का अर्थ किया। जिससे स्पष्ट सिद्ध हुआ कि—इन मन्त्रों में "**प्रतिमा पूजन**" तो क्या "**प्रतिमा**" शब्द तक भी नहीं है। इसके पश्चात्त मुंशी शुकदेव प्रसाद साहब (मन्त्री—धर्म सभा) ने फर्माया कि "**प्रतिमा पूजन वेद से क्या हम युक्तियों से भी सिद्ध कर सकते हैं**" इत्यादि—इत्यादि। कह कर बोले—"**बोलो सनातन धर्म की जय**" !! और सभा में कोलाहल मचा दिया। पश्चात्त स्वयं ही आरती भी आरम्भ कर दी। और अंग्रेजी बाजे पर मूर्त्तिपूजा की पराजय के डंके के साथ बाजार की राह निज-निज गृह पधारे।

अब शास्त्रार्थ मण्डप में केवल आर्य समाजी ही शेष रह गये थे। जिनमें श्रीमान "**पण्डित भीमसेन जी शर्मा**" आदि जो इस शास्त्रार्थ में भाग लेने हेतु खुरजा पधारे थे। तो आर्य भद्र पुरुषों की सम्मतिनुसार खुरजे (पोपगढी) में आर्य समाज (जय स्तम्भ) स्थापन करने की ठहरी। इसी बीच शास्त्रार्थ के अध्यक्ष "**श्री बाबु चतुर्भुज दास (वकील)**" जो धर्म सभा के प्रधान भी थे। उन्होंने कहा कि—"**मैं आज से आर्य बन गया" क्योंकि धर्म सभा वालों के पास कोई युक्ति युक्त उत्तर नहीं था, आज वास्तविकता का पता चल गया**"।[1] इतना सुनते ही चारों तरफ तालियों की गड़गड़ाहट से आकाश गूंज उठा। तथा चारों तरफ हर्ष का वातावरण बन गया। और भी अनेकों सज्जन थे जो धर्म सभा से इधर आर्य समाज में आना चाहते थे। सबकी नामावली तैयार की गई। तथा श्रीमान ठाकुर महावीर सिंह जी, जो (मन्त्री—आर्य समाज) थे उन्होंने खड़े होकर एक जोश पूर्ण व्याख्यान दिया, जो इस प्रकार था।

आर्यसमाज के मन्त्री श्री ठाकुर महावीर सिंह जी—

भाइयों ! हमको वैदिक धर्म पर दृढ़ रहना चाहिये, आज मेरे हर्ष की सीमा नहीं है, क्यों कि आज मेंने इस जिले में अपने गत १० वर्षों के परिश्रम को सफल समझा है, और मैंने अपने ऊपर हुई घोर आपत्तियों का बदला पाया है। हमारी मान्यताओं की सच्चाई का सबूत आज मिल गया। जिसका प्रमाण है आज "**वकील साहब**" जो

टिप्पणी :—

[1]इससे पता चलता है कि प्राचीन काल में भी "**शास्त्रार्थों का क्या प्रभाव होता था ?**" हमें प्रयास करना चाहिये कि आज भी वह प्राचीन शास्त्रार्थों का युग पुनः लौट आवे तो वैदिक धर्म की उन्नति दिन दुगनी—रात चौगुनी हो जावे।

"**सम्पादक**"

शास्त्रार्थ के स्वयं अध्यक्ष भी थे। तथा ये अन्य धर्म सभा वाले सज्जन जो आज स्वेच्छा से आर्य बन गये हैं। आदि-२॥

नोट—

फिर श्री बाबू शिवदयाल सिंह (मैनेजर—वैदिक यन्त्रालय, प्रयाग) ने एक मनोहर व्याख्यान से आर्य समाज को दृढ़ता दी, और इसके अनन्तर बाबू गंगाप्रसाद जी बी० ए० (मुकाम—आगरा) ने आर्य समाज के १० नियमों पर सारगर्भित व्याख्यान दिया।

इस शास्त्रार्थ का प्रभाव—

तदनन्तर श्री बाबू शिवदयाल सिंह के प्रस्तावानुसार "**आर्य समाज स्थापित् हुआ**"[१] इस समय उपस्थित सभासद (पच्चीस) के नाम लिखे गये जो निम्न प्रकार थे—१. श्री बाबुचतुर्भुज साहब जी वकील—"**प्रधान**", २. श्री मुंशी नन्दकिशोर साहब—"**मन्त्री**", ३. श्री लाला श्यामलाल साहब कानूनगो—"**उप प्रधान**", ४. मास्टर स्कूल—"**उप मन्त्री**", ५. श्री मुंशी गंगाप्रसाद जी, "**पुस्तकाध्यक्ष**", श्री लाला जी ही, "**कोषाध्यक्ष**" नियत हुए तत्पश्चात् श्री ठाकुर महावीर सिंह वर्मा "**चान्दौल**" ने पांच रुपये नूतन आर्य समाज को भेंट किये, आर्य समाज उक्त ठाकुर साहब को जितना धन्यवाद दें उतना ही थोड़ा है। लगभग २५ सभासद अनुपस्थित थे। जिनको सदस्य सूची में शामिल किया गया। इस कार्यवाही को समाप्त होते-२ अब रात्रि के लगभग ११ बज गये थे। इस कारण सभा विसर्जित हुई। इस शास्त्रार्थ में "**श्री ठाकुर हुवर्मसिंह वर्मा**"—मन्त्री सार्यसमाज (सीकरा निवासी) जी का उत्साह भी धन्यवाद के योग्य था।

अगले दिन १४ तारीख को "**श्री युत् पण्डित भीमसैन जी शर्मा**" आदि समस्त आर्य पुरुष ईश्वर से साम्प्रतिक समाज की चिरस्थायिता की प्रार्थना करते हुए निज-२ धाम को पधारे—ओइम् शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!

महाविद्वान् श्री पण्डित भीमसैन जी शर्मा की ओर से उक्त शास्त्रार्थ के विषय में विशेष वक्तव्य—

"खुर्जा" के शास्त्रार्थ में मुझको भी निमन्त्रण आया था। कारण यह था कि—प्रतिपक्षी लोग नामी पण्डित "**श्री हरियश राय**" जी आदि को बुलाने के लिए भी भागे गए थे। इसीलिए आर्य लोगों ने मुझे बुलाया था। यदि आर्य लोगों को मालूम होता कि यहां मूर्त्ति पूजकों के पक्ष में बाहर से कोई पण्डित न आवेगा तो मुझे बुलाने का परिश्रम ये लोग न करते। क्योंकि खुर्जा में शास्त्रार्थ करने के लिए जैसे धर्म सभा की ओर से पण्डित (शास्त्रार्थ-कर्त्ता) उद्यत्त हुए थे। उनके लिए आर्य पण्डित भी अच्छे वाक्दूत उपस्थित थे, जो मुख्य कर अलीगढ़ व बुलन्द-शहर के समीप ही रहते हैं।

टिप्पणी—

[१]"**खुर्जा आर्यसमाज**" की स्थापना में मुख्य कारण यह शास्त्रार्थ ही था। हमारे प्राचीन बुजुर्गों ने बड़े ही तप व त्याग से इस आर्यसमाज रूपी पौधे को अपने रक्त से सींचा है। हम आज उस पौधे का कितनी जिम्मेवारी से ध्यान रख रहे हैं? इस बात को "**वर्तमान आर्य सज्जन स्वयं सोचें?**" अस्तु!!

"**लाजपतराय अग्रवाल**"

जब मैं नियत समय पर खुर्जा, जिला बुलन्दशहर में पहुंचा। इस समय शास्त्रार्थ के लिए एक स्थान में दोनों पक्षों के लोग उपस्थित पाये। लगी हुई सभा को देखकर चित्त को बड़ी प्रसन्नता और आश्चर्य हुआ। प्रसन्नता इसलिए हुई कि, यहां प्रतिपक्ष में भी लोग उद्यत हैं। मुझको व्यर्थ नहीं पड़ा रहना पड़ेगा। बुलन्दशहर में जहां अच्छे-अच्छे नामी धुरन्धर पण्डित इकट्ठे हुए थे। वहां मैं, शास्त्रार्थ करने हेतु ६ दिन तक व्यर्थ पड़ा रहा तब कहीं जाकर एक दिन केवल तीन घण्टा वह भी बड़ी कठिनता से शास्त्रार्थ' हुआ था। यहां खुर्जा में वैसी दिक्कत नहीं होगी। ऐसा विचार कर पौराणिक लोगों को मैंने अपने चित्त में धन्यवाद दिया। पर प्रस्ताव में—**"अनजान चिड़ियां फंस गई थी"** सो यह प्रसिद्ध वार्ता है कि—**"अल्पज्ञ लोगों को अभिमान व अहङ्कार, विद्वानों से अधिक होता है।"** वे यही समझते हैं कि—**"हमारे तुल्य कोई ज्ञानी नहीं"**—ऐसे लोग समय पर अवश्य दुम दबाते हैं। खुर्जा के जो विद्वान् लोग शास्त्रार्थ कर चुके हैं। उनसे अब कोई पुनः कहे कि अब शास्त्रार्थ कर लो तो वह कदापि सन्नद्ध न होंगे। इसी से उनके हार जाने की भी पूरी परीक्षा हो जाएगी। शास्त्रार्थ में आरम्भ से ही इस बात का विवाद रहा कि—**"शास्त्रार्थ किसकी ओर से आरम्भ हो?"** आर्य लोगों की इच्छा थी कि जब हमारा पक्ष है कि—**"वेद में पाषाणादि मूर्त्तियों की पूजा का विधान नहीं, और पौराणिक लोग होने की प्रतिज्ञा करते हैं, तो प्रथम वे ही सिद्ध करें। हम पहले कुछ क्यों कहें? और पौराणिक लोग डरते थे कि अगर हमने कुछ कहा तो पहिले-पहल ही कहीं ये लोग पकड़ न लेवें?"** इत्यादि विचार से पौराणिक लोग जब किसी प्रकार भी न बोले तो सबकी सम्मत्ति हुई कि—**"आरम्भ आर्यसमाज ही की ओर से हो परन्तु पहला परचा गिनती में न लेकर उससे पूर्व का परचा जो पौराणिकों ने दिया था। उसी से आरम्भ समझा जाएगा"**। परन्तु बाद में जाकर इस प्रतिज्ञा को—**"मुन्शी शुकदेव प्रसाद जी, मन्त्री—धर्म सभा"** ने उलट दिया। अपनी प्रतिज्ञा से विमुख होकर सभा के बीच में ही कह दिया कि—**"शास्त्रार्थ का आरम्भ आर्यों की ओर से हुआ है"**। इस बात से स्पष्ट अन्याय प्रतीत होता है। जब शास्त्रार्थ होने लगा तो मेरे चित्त के अन्दर सभा में भी बोलने की उमंग व इच्छा हुई कि—मैं भी कुछ बोलूं परन्तु वहां उपस्थित आर्य सामाजिक लोगों ने कह दिया कि—**"आपका बोलना ठीक नहीं है। क्योंकि आपकी बराबर की योग्यता का यहां कोई पण्डित विद्यमान नहीं है, हां! अगर पण्डित हरियश राय जी विद्यमान होते, तब तो सभी कुछ आपको ही संभालना था"**। उन लोगों की बात तो यह उचित ही थी, इसलिए निदान मुझे मौन ही रहना पड़ा। जब शास्त्रार्थ के बीच **"मूर्त्ति पूजा निषेध का मन्त्र"** आर्यों ने दिया तो उसका उत्तर मूर्त्ति पूजकों की ओर से देना चाहिए था कि—**"यह तुम्हारा अर्थ व पक्ष इस प्रकार ठीक नहीं"**। परन्तु जब कोई उत्तर न दिया तो **"मूर्त्ति पूजा का खण्डन तो स्वतः ही सिद्ध हो गया"**। फिर अपने पक्ष की सिद्धि का प्रमाण वेद से देना था,

---

टिप्पणी—

'उपरोक्त कथन से पता चलता है कि इस "खुर्जा शास्त्रार्थ" से पहले **"श्री पण्डित भीमसेन शर्मा"** जी का पौराणिकों के साथ कोई शास्त्रार्थ **"बुलन्दशहर"** में भी अवश्य हुआ है। अगर किन्हीं सज्जन के पास उस शास्त्रार्थ का विवरण हो तो अवश्य सूचित करें। हम उनका हृदय से आभार प्रकट करते हुए उस शास्त्रार्थ सामग्री को अगले भाग में प्रकाशित करा देंगे। हमारा अनुमान है कि वह शास्त्रार्थ सामग्री अवश्य ही अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगी।

निवेदक—

"लाजपतराय अग्रवाल"

सो भी नहीं दिया, कि—"**हे परमेश्वर ! तुम छोटे हो व बौने हो**" । ऐसा कहने से—"**मूर्त्ति पूजा कब सिद्ध हो गई ?**" यह कथन तब सार्थक होता कि परमेश्वर कितना लम्बा, चौड़ा, छोटा, बड़ा है ? ऐसा प्रश्न किया जाता । वहां तो यह प्रसंग था कि—"**पाषाणादि मूर्त्तियों के द्वारा उसकी पूजा करनी चाहिए या नहीं ?**" इसकी विधि व निषेध दोनों पक्ष को दिखाना चाहिए था । सो परमेश्वर के बौने होने में कुछ सम्बन्ध नहीं रखता । परमेश्वर कैसा ही हो, सो अपने पक्ष का स्थापन और द्वितीय पक्ष का खण्डन न करने से प्रारम्भ में ही पौराणिकों का पराजय हो गया । तो भी निर्लज्जता से कुछ-कुछ तीन दिन तक रहते रहे । सो सब इस पुस्तक में लिखा गया है । धर्म सभा वाले बीच-बीच में कई स्थलों पर ऐसे गिरे हैं कि—"**जिससे उनकी पराजय स्पष्ट प्रतीत होती है**" । सो पाठक लोग स्वयं अवलोकन कर निश्चय कर ही लेंगे । किमधिकम् लेखेन् ।

हस्ताक्षर—
"**भीमसेन शर्म्मणः**"



सौवां शास्त्रार्थ—

स्थान : सेहोर (अलीगढ़) उ० प्र०

दिनांक : ६ मई सन् १९३३ ई० (दोपहर दो बजकर छः मिनट)

विषय : ईश्वरीय ज्ञान बाइबिल हैं या वेद ?

(वादी) ईसाइयों की ओर से शास्त्रार्थकर्त्ता : श्री पादरी अब्दुल हक साहिब जी

(प्रतिवादी) आर्यसमाज की ओर से शास्त्रार्थकर्त्ता : श्री पण्डित शिव शर्मा जी

शास्त्रार्थ के अध्यक्ष : श्री सेठ ज्वाला प्रसाद जी जिज्ञासु

शास्त्रार्थ के प्रधान : श्री मौलाना इमामबक्स साहब

शास्त्रार्थ के प्रबन्धकर्त्ता : श्री पण्डित हबीबुर्रहमान जी शास्त्री तथा ठाकुर इन्द्र वर्मा जी

शास्त्रार्थ के मुख्य प्रबन्धक : श्री बाबु प्रीतम लाल जी एडवोकेट

दोनों पक्ष के, अन्य उपस्थित मुख्य विद्वत् मण्डल :
१. श्री बाबु विशम्भर सहाय जी वकील
२. श्री पादरी जैकस साहब जी
३. श्री पादरी केदारनाथ जी
४. श्री पादरी डब्ल्यू तिवाड़ी साहब आदि-आदि
५. श्री पण्डित देवेन्द्र नाथ जी सांख्यतीर्थ
६. श्रीमान मौलवी कालीचरण जी, आलिम, फाजिल
७. श्री पण्डित देवदत्त जी टैम्प्रेस्टिचर आदि-आदि

नोट—यह शास्त्रार्थ सामग्री "श्री राजाराम जी जिज्ञासु" स्वाध्याय संस्थान बदायूं द्वारा प्राप्त हुई है। हम उनके हृदय से आभारी हैं।

"सम्पादक"

शास्त्रार्थ से पहले

अलीगढ़ से पूर्व की ओर एटा वाली सड़क पर पनेठी के निकट अलहृदादपुर गांव में मन्त्री आर्यसमाज बोरना का निवास-स्थान है। उस गांव में एक ईसाई मास्टर अलीगढ़ मिशन की ओर से रहता था। जिसको वहां के मुखिया ने मकान देकर सहानुभूति प्रकट की। वहाँ के निकटवर्ती गांव में उस ईसाई मास्टर ने खूब प्रचार किया, और विशेष प्रचार हेतु पादरी केदारनाथ (मिशन अलीगढ़) ने बाग में डेरा डाल दिया। मसीही प्रचार और क्षत्रियों के अत्याचार से लगभग २०-२५ गांवों के चमार ईसाई होने को उद्यत हो गये। इसका पता आर्यसमाज "बोरना" के मन्त्री को चला तब उन्होंने १२ मार्च, १९३३ ई० को "**महाशय आत्मा रामजी (भजनीक) तथा श्री पण्डित शिव शर्मा**" जी द्वारा प्रचार कराया। और अपने अछूत भाइयों को गले लगाकर शान्ति दी तथा बहुत से चमारों ने ईसाई होने से इन्कार कर दिया। प्रचार के समय "**पादरी केदारनाथ**" जी अपने मिशन के साथ वहां मौजूद थे। उन्होंने अपने कैम्प में जाकर विशेष कोशिश की और गांव हकीमगढ़ी में जाकर डेरा जमाया। वहां के चमार सभी ईसाई होने को उद्यत हो गये। इसका पता जलाली (कस्बे) में आर्यसमाज के उत्सव पर २४ मार्च सन् १९३३ ई० को किसी व्यक्ति द्वारा मन्त्री को मिला। वहां से तत्काल ही—जलाली उत्सव पर पधारे हुए उपदेशक, विद्वानों—"श्री ठाकुर इन्द्र वर्मा जी,[1] महाशय आत्माराम जी, महाशय रेवतीराम जी उपदेशक, महाशय सरदार सिंह जी (मन्त्री—आर्यसमाज-मई) तथा आर्य-समाज चौहान गांव के मन्त्री पोदर सिंह, महाशय सरदार सिंह जी[2], अरनियां निवासी, तथा मन्त्री—आर्यसमाज सिकन्दरपुर, पण्डित रामस्वरूप जी सेहोर, ठाकुर हीरालाल जी, ठाकुर भूपसिंह जी, पण्डित टोडीराम जी (मन्त्री अलहादादपुर) को साथ लेकर मन्त्री (आर्य-समाज जलाली) गांव हकीमगढ़ी में "**दुर्गादास चमार**" की चौपाल पर पहुंच गये, वहां पर "**पादरी केदारनाथ जी**" अपने मिशन के साथ सभी सामान जैसे कैंची, बपतिस्मा के तैयार बैठे पाये, और लगभग २०० की संख्या में अन्य चमार भाई भी बैठे मिले। वहां पर इन सभी आर्य विद्वानों के पहुंचते ही—श्री पादरी केदारनाथ जी और श्री पण्डित ठाकुर इन्द्र वर्मा जी में बातचीत आरम्भ हो गयी। पश्चात श्री ठाकुर इन्द्र वर्मा जी का एक व्याख्यान वहीं—"**सच्ची शान्ति किस प्रकार मिलती है ?**" विषय पर हुआ। और महाशय आत्माराम जी, व पण्डित रेवतीराम जी के भजन हुए। और कुछ भाइयों ने चमार भाइयों के हाथ का जल ग्रहण किया। इसी बीच वार्तालाप में ही पादरी केदारनाथ और ठाकुर इन्द्र वर्मा जी में शास्त्रार्थ का निश्चय हो गया। जिसके लिए "**सेहोर**" ग्राम में ही शास्त्रार्थ करना पसन्द किया गया। आर्यजनों ने भी उसको स्वीकार कर लिया। और "**६ मई सन् १९३३ ई० का समय शास्त्रार्थ के लिए निश्चित हो गया**"। इस शास्त्रार्थ की चर्चा चहुं ओर समाचार पत्रों द्वारा दूर-दूर तक फैल गयी, और नियत तारीख पर दूर-दूर से जनता प्रातःकाल

टिप्पणी—

[1]श्री ठाकुर इन्द्र वर्मा जी की बहन, श्री ठाकुर अमरसिंह जी शास्त्रार्थ केशरी जी को विवाही थी।

[2]श्री ठाकुर सरदार सिंह जी, श्री ठाकुर अमरसिंह जी शास्त्रार्थ केशरी जी के भाई थे।

"सम्पादक"

से ही आना शुरू हो गयी । उस दिन प्रातः ६ बजकर २० मिनट पर अनुमानतः पचास हजार से ज्यादा जनता शास्त्रार्थ स्थल पर एकत्रित हो गयी थी । शास्त्रार्थ के प्रबन्ध के लिए चार दिन पहले ही **"श्रीमान् साहब कलक्टर बहादुर-अलीगढ़"** ने दफा १४४ लगाकर पांच-पांच मील तक निशस्त्र आने की घोषणा कर दी । और नियत स्थान पर थानेदार और दो-दो गार्ड पुलिस मय हथकड़ियों और शस्त्रों के नियत कर दिये थे । श्री महाशय आत्माराम जी तथा इन्द्रदत्त शर्मा जी प्रचार का सभी सामान ले आये थे । सभी आगन्तुक महानुभावों का प्रबन्ध—**"मन्त्री आर्यसमाज सिकन्दरपुर"** कर रहे थे । गांव के चारों ओर बेशुमार संख्या में, तांगा, बग्घी, इक्का और न जाने क्या-क्या सवारी ही सवारी नजर आती थी । शास्त्रार्थ-स्थल पर जनसमुदाय का समुद्र-सा दिखायी पड़ता था ।

आर्यसमाज की ओर से **"श्री पण्डित शिव शर्मा जी"** (महोपदेशक आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश), व श्रीमान् **"पण्डित देवेन्द्रनाथ शास्त्री—सांख्यतीर्थ"** व श्रीमान् **"मौलवी कालीचरण जी, आलिम-फाजिम"**[1] तथा **"श्री ठाकुर इन्द्र वर्मा जी"**, **"पण्डित देवदत्त जी"** टैम्प्रैस्टीचर आदि विद्वान एक दिन पूर्व ही सेहोर ग्राम में पधार गये थे । अगले दिन शास्त्रार्थ होना था उस दिन प्रातः ही यज्ञ व नगर कीर्तन के पश्चात ६ बजे पडाल में आ गये । शास्त्रार्थ का समय मसीहों की ओर से १२ बजे मध्याह्न दिया था । और उनके नोटिस में—**"श्री हबीबुर-रहमान खां शास्त्री तथा मौलाना इमाम बक्स जी"** शास्त्रार्थ के **"निर्णयकर्त्ता"** नियुक्त थे । यह बिना आर्यसमाज की स्वीकारी के छापा गया था । इस अड़चन को प्रान्तीय मण्डलाधीश श्रीमान् **"बाबु प्रीतमलाल जी एडवोकेट"** तथा श्रीमान् **"बाबु विशम्भर सहाय जी वकील"** मन्त्री, आर्य जिला प्रतिनिधि सभा अलीगढ़ ने लेख द्वारा पादरी केदार-नाथ जी तथा पादरी जैक्स से निर्णय किया । तदोपरान्त **"पण्डित हबीबुर्रहमान खां तथा मौलवी इमाम बक्स"** जी शास्त्रार्थ के प्रबन्धक एवं समय दाता ठहरे । और उनके सहायतार्थ आर्यसमाज की ओर से **"श्री सेठ ज्वाला प्रसाद जी जिज्ञासु"** नियत किये गये । जिस पर जिज्ञासु जी ठीक दस बजे पण्डाल में पधार गये थे । और कुछ मसीही साहब भी साढ़े ग्यारह बजे तक पण्डाल में आ विराजे । परन्तु जो शास्त्रार्थ का समय नियत था, ठीक १२ बजे तक पादरी केदारनाथ जी, जो कि शास्त्रार्थ के आकांक्षी थे, वह अपने प्रबन्धक एवं समय दाताओं के साथ नहीं पधारे । जनता शास्त्रार्थ की इच्छुक थी, क्योकि एक दिन पहले बड़ी भारी वर्षा हो चुकी थी । आज के दिन मौसम साफ था, परन्तु धूप कड़ी थी, भीड़ को देखते हुए पण्डाल बहुत छोटा था । छाया की कमी थी, जनता घबरा रही थी । जब १२ बजकर २० मिनट तक भी पादरी केदारनाथ जी नहीं आये तो ठाकुर इन्द्र वर्मा जी ने मसीही प्लेट-फार्म की ओर संकेत करके कहा—साहेबान ! पादरी केदारनाथ जी अभी तक भी नहीं आये। इस स्थिति में अब क्या किया जावे ?

श्री पादरी डबल्यु तिवाड़ी साहब—

अभी कुछ प्रतीक्षा करें, वह चल दिये हैं । बस पहुंचने ही वाले हैं ।

श्री पण्डित ठाकुर इन्द्र वर्मा जी—

सज्जनों अब बारह बजकर पच्चीस मिनट हो गये हैं, यह प्रतिज्ञापत्र यानी इकरारनामा जो पादरी

टिप्पणी—

[1]श्री पण्डित कालीचरण जी ने अपने जीवन में कई बड़े ही अद्भुत शास्त्रार्थ किए, परन्तु हमें अभी तक कोई भी विवरण उनका प्राप्त नहीं हुआ । किसी भी सज्जन के पास इनके शास्त्रार्थों का विवरण हो तो अवश्य भेजें।

"लाजपतराय अग्रवाल"

केदारनाथ जी के हाथ का है। सुनो इसमें लिखा है कि—"**जो शास्त्रार्थ में नियत समय पर न आवे वह दूसरे पक्ष वाले को ५०० रु० देगा**"। सो ऐसी हालत में, मैं पांच सौ रुपये लेने का अधिकारी हूं या नहीं ?

जनता—

बिल्कुल हैं। ठाकुर साहब[1] पैसा पाने के पूर्ण अधिकारी हैं।

श्री पण्डित ठाकुर इन्द्र वर्मा जी—

पादरी साहेबान आप भी बतावें कि मैं अब इस इकरारनामे के मुताबिक ५०० रु० पाने का अधिकारी हूं या नहीं ?

श्री पादरी डबल्यु तिवाड़ी जी—

अभी नहीं।

श्री पण्डित ठाकुर इन्द्र वर्मा जी—

इन्जील हाथ में है, उस पर हाथ रखकर कहो।

श्री पादरी डबल्यु तिवाड़ी जी—

ठाकुर साहब ! आपका इकारारनाम श्री केदारनाथ जी के साथ है न कि हमारे साथ ! आप देख लीजिये !! दूसरे उसमें शास्त्रार्थ का कोई नियत समय ही नहीं है।

श्री पण्डित ठाकुर इन्द्र वर्मा जी—

यह—इश्तहार "शास्त्रार्थ मसीही" सुनो इसमें वक्त आपकी ओर से १२ बजे से ६ बजे सायं तक छपा हुआ है।

श्री पादरी डबल्यु तिवाड़ी जी—

ठाकुर साहब ! हम फिर कहते हैं कि—इकरारनामा केवल आपका और केदारनाथ जी के बीच हुआ है। आप उनकी गैर-हाजिरी में फैसला कैसे ले सकते हैं ?

टिप्पणी—

[1]"श्री ठाकुर इन्द्र वर्मा" इनका इस इलाके में अत्याधिक प्रभाव था। बच्चा-बच्चा भी इस इलाके में इनका बड़ा मान करता था। इनका बहुत ही निकट का सम्बन्ध "**श्री ठाकुर अमर सिंह जी शास्त्रार्थ केशरी**" (अमर स्वामी जी महाराज) से भी था। पूर्ण विवरण जानने के लिए देखें—"**निर्णय के तट पर—भाग-३, पृष्ठ संख्या २३७**"॥

निवेदक—

"लाजपतराय अग्रवाल"

श्री पण्डित ठाकुर इन्द्र वर्मा जी—

पादरी साहब ! फैसला नहीं । आप केवल इकरारनामा सुनकर मात्र यह बतलाइये कि मैं अब रुपये लेने का हकदार हूं या नहीं ?

श्री पादरी डबल्यू तिवाड़ी जी—

(मौन हो गये).........

श्री पण्डित ठाकुर इन्द्र वर्मा जी—

अब करीब एक बज गया है। उनके सिर्फ दो घण्टे और हमारे तीन घष्टे बाकी हैं।

श्री पादरी डबल्यू तिवाड़ी जी—

आप इतना क्यों घबरा रहे हैं ? वक्त तो वह आकर आपको दे सकते हैं। एक घण्टा खुद और पांच घण्टा आपको दे देंगे ।

श्री पण्डित ठाकुर इन्द्र वर्मा जी—

भाइयो ! अब समय बहुत अधिक हो गया है। वह नहीं आये तो क्या किया जाये ? मेरी राय में वक्त के इत्मीनान के लिए और जनता को काबू करने के लिए एक रौबदार सभापति चुना जाये । इसके लिए मुझे जिज्ञासु जी अच्छे मालूम पड़ते हैं। (जनता ने करतल ध्वनि के साथ स्वीकारी दी और जिज्ञासु जी सभापति कुर्सी पर आ विराजें) ।

श्री सेठ ज्वाला प्रसाद जी जिज्ञासु (सभापति)—

कोई जयकारा न बोला जावे, न कोई ताली बजाई जावे......

नोट—

इसी बीच श्री पादरी केदारनाथ और जैकप साहब तथा पण्डित हबीबुर्रहमान खां और मौलवी इमाम बक्स जी आ गये ।

श्री पण्डित ठाकुर इन्द्र वर्मा जी—

साहेबान् ! अब बारह बजकर अडतालीस मिनट हैं। अगर पादरी केदारनाथ जी आ गये हों तो ५०० रु० दे दें। क्योंकि नियत समय पर नहीं आए। और पादरी साहेब के साथ इकरारनामे में यह शर्त है कि, जो समय पर न आवे वह ५०० रु० विपक्ष को देगा, अतः पादरी साहब समय पर नहीं आये ।

श्री पादरी केदारनाथ जी—

इकरारनामे में वक्त नहीं है, और फिर मैं वैसे भी ठीक समय पर ही आ जाता। अगर रास्ते में मोटर में पंचर न होता। फिर भी, ठाकुर साहब ! सब काम प्रेम से ही होते हैं, जिससे झगड़ा न होवे ।

श्री पण्डित ठाकुर इन्द्र वर्मा जी—

आर्यसमाज रुपये का भूखा नहीं, धर्म का भूखा है। पादरी केदारनाथ जी कुछ अधीर हैं, इससे मैं रुपया मुआफ करता हूं। अब समय दो घण्टे पादरी साहब के तीन घण्टे मेरे बाकी हैं। अब सिर्फ सवालोजवाब का वक्त बांट लें।

श्री पादरी केदारनाथ जी—

तारीख ५ मई सन् १९३३ ई० का मुआइदा (समझौता) इस मजमून (विषय) का नहीं कि वक्त बांटा जाये। बल्कि यह तय हुआ है कि—मिशनरी सवाल करें और आर्य जवाब दें। (मुआइदा अंग्रेजी में पढ़कर सुनाया गया)।

श्री इमाम बक्स जी प्रधान—

बातचीत प्रधान के फैसले के मुआफिक हो। जोश में बात तय नहीं होती बल्कि शान्ति में ध्यान से तय होगी। हम जज नहीं हैं। सिर्फ वक्त बतानेवाले और आपके इन्तजाम को आये हैं।

श्री सेठ ज्वाला प्रसाद जी जिज्ञासु—

प्रश्नोत्तर का समय और इकरारनामे की शर्त हमारे सामने आप दोनों पक्ष देंगे, तभी हम उन बातों का फैसला और इन्तजाम कर सकेंगे। तथा आर्य भाइयों से प्रार्थना है कि वह शान्ति से काम लें।

श्री बाबु प्रीतम लाल जी एडवोकेट—

मैंने इकरारनामे में यह लिखा और लिखवाया है कि पण्डित हबीबुर्रहमान साहब सदर ही सभा में शान्ति रखें। वह व्याख्यान देंगे ऐसा नहीं, पहले पादरी साहब बोलेंगे। फिर आर्यसमाजी, बाकी बातें इसी प्रकार हैं। "ईश्वरीय ज्ञान बाइबिल हैं या वेद ?" एक-दूसरे पक्ष का खण्डन और अपने पक्ष का मण्डन करेगा।

श्री पादरी जेकप साहब जी—

नहीं, इकरारनामा में ईसाई सवाल करें और आर्य जवाब दें, यह लिखा है।

श्री पण्डित ठाकुर इन्द्र वर्मा जी—

आप हमला करते रहें। हम उत्तर देते रहें। आप बाइबिल को हमले से महफ़ूज (सुरक्षित) रखना चाहते हैं ? पीछे के इकरारनामे में कोई गलती हो वह सुधर सकती है। परन्तु जो पहला इकरारनामा दर्ज है उसमें जो लिखा है उसके मुआफिक करना पड़ेगा।

श्री पादरी जेकप साहब जी—

श्री केदारनाथ और आपके बीच जो इकरारनामा है वह पहिला है, वही जड़ (मूल) है, और बाकी क्या है ?

श्री बाबु प्रीतम लाल जी एडवोकेट—

इस नोटिस में आप छाप चुके हैं, कि बहस "इलहाम" पर होगी। इसलिए अब बहस उसी पर होगी।

उसी पर आप बोलिये। हम उत्तर देगें। मगर उसमें से मजमून (विषय) आधा नहीं काट सकते। इसलिए अब आप समय को बर्बाद न करें तुरन्त बहस आरम्भ करिये।

श्री पादरी जैकप साहब जी—

इस नोटिस को आप मानते हैं, तो फिर पण्डित हबीबुर्रहमान को सालिस (पञ्च) मानना पड़ेगा वही फैसला देंगे, और तय करेगें।

श्री बाबु प्रीतम लाल जी एडवोकेट—

श्री पण्डित हबीबुर्रहमान साहब प्रधान होगें सालिस (निर्णायक) नहीं। क्योंकि पादरी साहब के नोटिस पर ही उत्तर उन बातों का लिखा था जिन बातों से दोनों राजी थे।

श्री पादरी जैकप साहब जी—

बाबु प्रीतम लाल जी का परचा मुआइदा नहीं है। तो पादरी साहब का परचा क्या है?

श्री पण्डित ठाकुर इन्द्र वर्मा जी—

आप अपने इश्तहार को सुनिये (इश्तहार सुनाया गया)।

श्री पादरी जैकप साहब जी—

इश्तहार मुआइदा नहीं है, केवल निमन्त्रण है। वेद और बाइबिल के बीच में तय करना है। पादरी प्रश्न करें। आर्य उत्तर दें।

श्री पण्डित ठाकुर इन्द्र वर्मा जी—

वेद ईश्वर का ज्ञान नहीं है तो क्या बाइबिल है? यह कहना लचर व्यर्थ है। मान लीजिये अगर आप साबित भी करें तो मुसलमान और बौद्ध क्या करेगें?

श्री पादरी जैकप साहब जी—

जब वेद साबित न होगा तब बाइबिल अजखुद (स्वयं अपने आप में) सबूत है।

श्री पण्डित ठाकुर इन्द्र वर्मा जी—

यह दलील नहीं कि देवदत्त का सोना खराब है। तो गंगाराम का सोना बिना रगड़े ही अच्छा है। (जनता में हंसी) भाई! यहां तो दोनों का ही सोना कसौटी पर रगड़ा जायेगा। जिससे खरा-खोटापन स्वयं ही मालूम हो जायेगा।

श्री पादरी जैकप साहब जी—

प्रैसीडैन्ट साहब इसका फैसला देगें।

श्री पण्डित ठाकुर इन्द्र वर्मा जी—

एक मत में प्रैजीडैन्ट का फैसला होता है, परन्तु अलग-अलग मत का फैसला देना प्रैजीडैन्ट का काम नहीं बल्कि जनता स्वयं देती है।

श्री पादरी जैकप साहब जी—

सवाल-जवाब को अलग-अलग वक्त नहीं है, एक साथ होने चाहिये।

श्री पण्डित हबीबुर्रहमान खां शास्त्री—

अब एक बज कर ५८ मिनट हैं। सारा समय व्यर्थ जा रहा है।

श्री पादरी जैकप साहब जी—

यदि एक आदमी प्रश्न करे तो दूसरा उत्तर नहीं देगा, यानी जवाब देने वाला बदलेगा नहीं।

श्री बाबु प्रीतम लाल जी एडवोकेट—

आदमियों पर बहस नहीं बल्कि सिद्धांत पर हैं, इसलिए तीन आदमी महदूद (निश्चित) किये जाते हैं।

श्री पादरी जैकप साहब जी—

नहीं शास्त्रार्थ करने वाला केवल एक ही होगा। उसके अलावा अन्य किसी को बोलने का अधिकार नहीं होगा।

श्री बाबु प्रीतम लाल जी एडवोकेट—

आपने भी अपने नोटिस में दो के नाम दिये हैं।

श्री पादरी जैकप साहब जी—

नहीं बोलने वाला एक ही बोलेगा, बदलेगा नहीं। इससे गड़बड़ हो जायेगी।

श्री पण्डित ठाकुर इन्द्र वर्मा जी—

पहिले बोलने वाले का जिम्मा लेकर ही दूसरा वक्ता बोल सकेगा।

श्री पादरी जैकप साहब जी—

सिर्फ एक ही बोलेगा दूसरा कदापि नहीं।

नोट—

इकरारनामा व इश्तहार आदि प्रधान जी के हवाले किये गये।

शास्त्रार्थ के सभापति श्री सेठ ज्वाला प्रसाद जी जिज्ञासु—

अब शास्त्रार्थ शुरु होता है। जनता को चाहिये कि वह शान्ति से सुनें, जिससे गड़बड़ी न हो, अब २० मिनट पादरी साहब सवाल करेगें, तदोपरान्त २० मिनट तक आर्य विद्वान उसका उत्तर देगें, बाद में दस-दस मिनट दोनों को सवालो जवाब के लिए दिए जायेगें।

शास्त्रार्थ के प्रधान श्री पण्डित हबीबुर्रहमान खां शास्त्री—

बेहत्तर है, एक ही मुनाजिर (शास्त्रार्थ कर्ता) हो। "**श्री पादरी अब्दुल हक साहेब**" ईसाइयों की ओर से प्रश्न कर्त्ता होगें और "**श्री पण्डित शिव शर्मा**" जी आर्यो की ओर से उत्तर दाता होगें। शास्त्रार्थ का विषय होगा कि "**ईश्वरीय ज्ञान बाईबिल है या वेद**" अब शान्ति बना कर शास्त्रार्थ सुनिये—

शास्त्रार्थ आरम्भ

श्री सेठ ज्वाला प्रसाद जी जिज्ञासु (सभापति)—

सज्जनों इस वक्त २ बज कर ६ मिनट हैं, शास्त्रार्थ का काम आरम्भ होता है। पादरी अब्दुल हक साहब अपना वक्तव्य २ बज कर छब्बीस मिनट पर समाप्त करेगें।

नोट—

श्री पादरी अब्दुल हक साहब ने उर्दू में बोलना शुरु किया, परन्तु आवाज इतनी धीमी थी कि थोड़ी दूर तक भी सुनाई नहीं दे रहा था, परिणाम स्वरूप चारों ओर शोर मच गया, जोर से बोलो-जोर से बोलो, इसी बात में सात मिनट समाप्त हो गये। अन्त को पादरी साहेबान ने जोर से बोलना आरम्भ किया—

श्री पादरी अब्दुल हक साहेब जी—

(१) भाईयों! आर्य साहेबान कहते हैं कि—वेदों में आये हुए—"**अग्नि, वरुण, इन्द्र, वायु,**" आदि नाम ईश्वर के हैं, वेदों से साबित कीजियेगा और बतलाइयेगा कि यह नाम मुश्तरक (ईश्वर कहलाने के हकदार) हैं या नहीं? (२) वेद संस्कृत भाषा में ही क्यों नाजिल (प्रकट) हुए? इससे ईश्वर पक्षपाती ठहरता है। (३) वेद के मुलहमानों (वेद के जानने वालों) ने जन्म लिया, यदि हां, तो वह कर्मों से गुमराह कैसे हुए? (४) वेद सारे उलूम (ज्ञान) का मखजन (भण्डार) है, और ईसाई आदि अन्य धर्म वालों को दावत देता है, वेदों से साबित कीजिये। (५) वेदों की तालीम बतदरीज (सिलसिलेवार) नहीं है, और उसमें इब्तदायी (आरम्भिक) तालीम (शिक्षा) नहीं है इसलिए वह "**ईश्वरीय ज्ञान नहीं है**" इन पांचों प्रश्नों का उत्तर दें। टर्न टनटन······

श्री पण्डित शिव शर्मा जी—

(१) भाईयों! सुनो, अग्नि, वरुण, और इन्द्र वगैरा नाम प्रकरण के अनुसार (मौके महल के मुताबिक) परमात्मा के भी हैं, और दूसरी चीजों के भी हैं। जिस तरह "**लार्ड**" गौड, जुहोवा, वगैरा नाम बाइबिल में मौके और महल के मुताबिक ईश्वर के भी आते हैं, और दीगर अशिया (दूसरी चीजों) के भी। जब लार्ड के साथ कर्जन या और किसी इन्सान का इशारा होगा, तो यह समझा जायेगा कि ये नाम इन्सान के लिए हैं, जब "**लार्ड**"-"**गौड**" के साथ आये तो ईश्वर के। पादरी साहब यदि आपने सत्यार्थ प्रकाश को देखा होता, तो प्रथम ही समुल्लास में "अग्नि, इन्द्र, वरुण, वगैरा नाम परमात्मा के भी हैं, इसके हवाले मिल जाते। देखिये—"**इन्द्रं मित्रं वरुणमग्नि माहुरथो दिव्यस्सुपर्णो गरुत्मान। एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुं।** (ऋग्वेद मण्डल २, अनुवाक २२, सूक्त १६४, मन्त्र ४६,) इसी तरह, यजुर्वेद के अध्याय १३, मन्त्र १८ में "पृथ्वी" और "भूमि" वगैरा नाम "**परमेश्वर**" के बताये हैं। और देखिये केवलोपनिषद् में कहा है—"**स ब्रह्मा स विष्णुः स रुद्रस्स शिवस्सो मन्त्र क्षरस्स परमः। स्वराष्ट्र स इन्द्रस्स कालाग्निस्स चन्द्रमा।।**" इसमें कहा है कि वह परमेश्वर सब जगत् का बनाने वाला होने से "**विष्णु**", तथा दुष्टों को दण्ड देने से "**रुद्र**", मंगलमय और कल्याणकर्त्ता होने से—"**शिव**", सर्वत्र व्याप्त अविनाशी, स्वराष्ट्र, प्रलय में सबका काल और काल का भी काल है, इसलिए उसका नाम "**कालाग्नि**" है। (२) वेदों का प्रकाश संसार के आरम्भ में हुआ, उस समय संसार में न कोई भाषा प्रचलित थी,

और न कोई देश आबाद था, संसार में जो सबसे पहले भाषा थी और जिसको मुलैहमान (जिन पर वेद प्रकट हुए) जानते थे, उसी भाषा में वेदों का प्रकाश किया। इसके अलावा "**सामवेद** ४३-८.१६, **अथर्ववेद** ११-२-४-१, **ऋग्वेद** १०-१-१, **मुलाहिजा हों,**" केवल स्वामी जी महाराज ही नहीं, किन्तु "**सायणाचार्य**" और "**मिस्टर ग्रिफिथ**" आदि भी ऐसा ही मानते हैं। देखिये—"**यद्य पोन्दा दयात्तम इयन्ते तथापि परमेश्वर स्यैवेन्द्रादि रूपेण व स्थाना-दविरोध तथा च मित्रं वरुणः इन्द्रः मित्रं वरुण मिग्न माहुरथो दिव्यः स सुपर्णो रुत्मान्**।। (सायण भूमिका) वेद—वैदिक भाषा में हैं, न कि आजकल की संस्कृत में, ! संस्कृत कहते हैं, सुधरी हुई अर्थात् संस्कार की हुई। वैदिक भाषा किसी मुल्क की भाषा न होने से ईश्वर में पक्षपात नहीं। इब्तदायी (प्रारम्भिक) ईश्वरीय भाषा सब के लिए एक सी है। (३) वेदों के मुलैहमान (जिन पर वेद प्रकट हुए) "**मनुष्य विशेष**" थे, उनके नाम—अग्नि, वायु, आदित्य, अंगिरा थे। स्वामी जी के अलावा सायणाचार्य भी ऐसा ही मानते हैं। देखिये—"**अग्नि, वायु, आदित्याक्षः यः जीव विशेषाः**" अग्नि, वायु, आदित्य वगैरा ये हवास (खास) इन्सान अथवा "**जीव विशेष**" थे। वेदों के मुलैहमान (जिन पर वेद प्रकट हुए) मुक्त आत्मा थे, उनका पुण्य सबसे अधिक था, इसलिए उनको गर्भ का दुःख सहना नहीं पड़ा। (४) वेद सब विद्याओं का भण्डार है। उसमें सर्व प्रकार की कला कौशल का सूत्र रूप में विधान है। इसके जरिये से वैदिक समय में, सब प्रकार की इजादे हो चुकी थी, उसमें हर प्रकार की कला कौशल के लिए मन्त्र मौजूद हैं। जो समय आने पर पेश किये जा सकते हैं। वैदिक धर्म तमाम दुनियां को दावत देता है, न कि सिर्फ ईसाइयों को ! देखिये मन्त्र में साफ-साफ लिखा है कि—"**कृण्वन्तोविश्वमार्यम्**" अर्थात् सबको आर्य बनाओ। (५) वेद ज्ञान का भण्डार है, उसमें बच्चे से लेकर एक महान योगी और ममुक्षः (मोक्ष के चाहने वाले) तक के लिए हिदायत है। हस्बलियाकत (बुद्धिनुसार) उनमें से ले लेनी चाहिये। जिस तरह एक हिकमत की किताब में जुकाम से लेकर कोढ़ तक का इलाज मौजूद है हकीम लोग हस्ब जरुरत (आवश्यकतानुसार) उसमें से नुसखे निकाल लें। इसी तरह वेद में सब प्रकार का ज्ञान मौजूद है। जिससे बच्चे से लेकर योगी तक लाभ उठा सकते हैं। पादरी साहब। ईश्वर का ज्ञान मुकम्मिल (पूर्ण) है। उसमें कोई कमी नहीं जिसको पूर्ण किया जावे। इसलिए उसमें तदरीज (तब्दीली) नहीं होती। और यही कारण है कि भगवान ने वेद द्वारा मुकम्मिल ज्ञान का प्रकाश किया। मनुष्य का ज्ञान गैर मुकम्मिल (अपूर्ण) होता है। उसमें कमी होती है। और मनुष्य के ज्ञान को पूरा करने के लिए तदरीज (तब्दीली) की जरुरत होती है। इसीलिए "**तोरेत बाइबिलादि ईश्वरीय ज्ञान नहीं है**" पादरी साहब ! यह भी बतलाइये कि हजरत ईसा मसीह अपने जीवन के १४ वर्ष की आयु से लेकर २५ वर्ष तक की आयु में कहां रहे ?

श्री पादरी अब्दुल हक साहब जी—

(१) पण्डित जी, ईश्वर के नाम मुश्तरक हैं या नहीं ? इसका कोई उत्तर आपने नहीं दिया। (२) स्वामी दयानन्द जी ने ईश्वर के सौ नाम सत्यार्थ प्रकाश में मुसलमानों की देखा-देखी लिखें हैं। (३) वेदों में इब्तदाई (आरम्भिक) तालीम (शिक्षा) नहीं है। (४) चारों ऋषि जिन पर वेद नाजिल (प्रकट) हुए वह कर्म बन्धन में क्यों नहीं आये ? (५) आपका ईश्वर फल देने में स्वतन्त्र नहीं बल्कि परतन्त्र है।

श्री पण्डित शिव शर्मा जी—

(१) लार्ड और गौड के उदाहरण से बतला दिया गया कि ये नाम सिफाती (गुणवाचक) है, प्रकरणानुसार, परमात्मा के और दूसरों के अर्थ होते हैं, लार्ड कर्जन की मिसाल दे दी गयी है। (२) स्वामी दयानन्द जी महाराज ने ईश्वर के सौ नाम लिखते हुए मुसलमानों की नकल नहीं की, इस्लाम के वाणी (भाषा) की पैदायश से

पहले ही हिन्दुओं के विष्णुसहस्त्रनाम और गोपालसहस्त्रनाम लिखे रक्खे हैं, वेदों में अनेक नाम ईश्वर के आये हुए हैं, हस्ब जरुरत (आवश्यकता पड़ने पर) लिये भी जाते हैं। (३) आप इब्तदाई तालीम (प्रारम्भिक शिक्षा) की तारीफ करें, बाइबिल से इब्तदाई तालीम को साबित करें। वेद में इब्तदाई तालीम हैं। देखिए—"**अग्निमीड़े पुरोहितं यज्ञस्यदेव मृत्विजम् होतारं रत्नधातमम् ।।**" [ऋग्वेद १।१।१]। (४) योनियां तीन तरह की होती हैं—१. कर्म योनि, २. भोग योनि, ३. कर्म-भोग योनि। इब्तदाई चार ऋषि कर्म योनि में थे, उनकी योनि कर्मों को भोगने में नहीं, किन्तु कर्म करने के लिए थी, पशु आदि भोग योनि हैं, मनुष्य कर्म और भोग, योनि है। जिस प्रकार जेल का बनाने वाला जेल के बन्धन में नहीं फंसता किन्तु और अपराधियों के लिए जेल का बन्धन तैयार कर देता है, इसी तरह आदि सृष्टि के "**जीव विशेष**" कर्म भोगने को नहीं आते। (५) ईश्वर कर्मों के फल देने में परतन्त्र है, इसका मतलब यह है कि—जैसे न्यायाधीश चोर को सजा जरुर देता है, अगर न दे तो गैर मुंसिफ ठहरता है। इसी प्रकार परमात्मा पापी को कुकर्मों का फल अवश्य ही देता है, न देवे तो न्यायकारी नहीं ठहरता है। पादरी साहब! बाइबिल पर किये गए एतराज का आपने कोई जवाब नहीं दिया, जब कि नोटो बिच (टिप्पणियों में) रूसी ऐतिहासिक तत्ववेत्ता लिखता है कि—"**हजरत मसीह १४ वर्ष की आयु से २५ वर्ष की आयु तक भारतवर्ष में रहे और ब्राह्मणों से वेद पढ़े**" क्या यह कथन ठीक नहीं है?

श्री पादरी अब्दुलहक साहब जी—

लार्ड, खुदा का "लकब" है, इसको "इजाफी" नाम कहते हैं, स्वामी दयानन्द जी के और श्री पण्डित लक्ष्मीनारायण के तर्जुमे (अनुवाद) में बहुत फर्क है, वेदों में देवताओं से सिर्फ दुआएं हैं। अहकाम, आज्ञा, विधि नहीं है, वेदों के अर्थो को किसी ने नहीं जाना, यहां तक की ऋषियों को भी अर्थ मालूम नहीं थे। वो इलहाम (ईश्वरीय ज्ञान) भी क्या हुआ? जिसके बहुत से मायने (अर्थ) हों? वेद में एक ईश्वर की पूजा और ईश्वर सिफात (गुणों) का बयान नहीं है। नोटो बिच कोई मुर्वरिख (नोट) नहीं हम उसके कौल (कथन) को नहीं मानते।

श्री पण्डित शिवशर्मा जी—

इसी तरह परमात्मा का मुख्य नाम "**ओ३म्**" है, शेष नाम जैसे—अग्नि, वरुण, और इन्द्र वगैरा नाम सिफाती (गुणवाची) हैं। स्वामी दयानन्द जी महाराज का तर्जुमा (अनुवाद) पुराने ऋषियों के मुआफिक (अनुसार) है, लक्ष्मीनारायण का तर्जुमा साम्प्रदायिक है, वेदों में देवताओं से दुआ नहीं बल्कि केवल परमात्मा से प्रार्थना है। ऐसा मालूम होता है कि आपने वेदों का कभी मुताअला (स्वाध्याय) नहीं किया, वर्ना जान लेते कि वेदों में अहकाम (कर्त्तव्य) मौजूद हैं। देखिये वेदों में साफ लिखा है कि—"**वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्य वर्णंतमसः परस्तात्। तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय**" यानी परमेश्वर को ही जान कर मनुष्य मुक्ति (मोक्ष) को हासिल (प्राप्त) कर सकता है, और देखिये—"**स पर्य्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरं शुद्धं पाप विद्धम्**" अर्थात् लिखा है कि—यानी वह परमात्मा निराकार कादरेमुतलक (सर्व शक्तिमान) है, उसने हमेशा रहने वाली प्रजा के लिए सच्चे वेद दिये, और देखो—"**अक्षैर्मा दीव्यः**" कहा है कि जुआ मत खेलो, तथा "**कृण्वन्तो विश्वमार्यम्**" सबको आर्य बनाओ। आदि से ऋषियों ने परमात्मा द्वारा वेदों के अर्थों को जाना। उसके बाद बराबर वेदार्थ जानते रहे। वेदार्थ करने के नियम निरुक्त आदि ग्रन्थों में लिखे गए। वेदज्ञ व्यास आदि असंख्य ऋषि और मुनि हुए। जब कि एक साधारण कवि की कविता के भिन्न-भिन्न आशय, विद्वान लोग निकालते हैं तो ईश्वर जैसे कविता करने वाले के वेद रूप कविता के यदि भिन्न-भिन्न सुन्दर और लाभदायक आशय निकाले जायें तो क्या हानि है? **हां मंशा के विरुद्ध न हों।** जो मतवादी लोग अर्थ का अनर्थ करके अपने सम्प्रदाय की वृद्धि

के लिए विरुद्ध अनर्थ करते हैं, वे पापी हैं। जब कि परमात्मा की बनाई हुई, अन्य वस्तुओं में अनेक गुण हैं, तो वेदों में अनेक विद्याएं होने में क्या हानि है ? आपने बाइबिल में इब्तदाई तालीम (आरम्भिक शिक्षा) नहीं बतलाई ?

श्री पादरी अब्दुलहक साहब जी—

आचार्य महिधर ने स्वामी दयानन्द जी के खिलाफ वेदों का तजुर्मा किया है। बिना मां-बाप के शुरु दुनियां में इन्सान कैसे और क्यों पैदा किये ? स्वामी दयादन्द जी का भाष्य गलत हैं। मैं फिर बतलाये देता हूँ कि— लार्ड और गौड वगैरा का नाम इजाफी (कृत्रिम) हैं, "अग्नि" वगैरा नाम खास ईश्वर के वेद ने बतलाये हैं। मोजिजों (चमत्कारों) पर बहस करते तो अच्छा था। मोजिजों की जरुरत क्यों है ? यह हमसे दर्याफ्त (पता) करिये। जब आपने इब्तदा (शुरु दुनियां) में बिना मां-बाप के इन्सान पैदा होना मान लिया तो मौजिजा (चमत्कार) को तसलीम (स्वीकार) कर लिया।

श्री पण्डित शिवशर्मा जी—

महीधर वाममार्गी था, हम उसके तजुर्मे को नहीं मानते, जो आपने स्वामी जी का तर्जुमा पढ़ा वह ठीक है। शुरु दुनियां में बिना मां-बाप के पैदा होने की जरुरत थी। जब दुनियां का सिलसिला जारी हो गया, तो बिना मां-बाप के पैदायश की जरूरत नहीं रही। हजरत मसीह के समय दुनियां का सिलसिला जारी था। आप स्वामी दयानन्द की के भाष्य की कोई गलती साबित कीजिये। जहां पर बाइबिल में सिर्फ गौड और जौड अलफाज (शब्द) आये हैं, वहां पर इजाफी कैसे हुए ? अग्नि, इन्द्र और वरुण वगैरा ईश्वर के सिफाती (गुणवाचक) नाम हैं। यह पहले बताया जा चुका है। मौजिजे (चमत्कार) हम नहीं मानते, यह कानूने कुदरत के खिलाफ अमर हैं। इसलिए गलत है। क्या यह किताब इलहामी हो सकती है ? जिसमें लिखा हो कि—**"ईश्वर का आत्मा पानी पर डोलता था"** बाईबिल से इब्ताई तालीम जनाब ने नहीं बतायी।

श्री पादरी अब्दुलहक साहब जी—

यह मैं जानता हूँ कि महीधर के तर्जुमे से स्वामी दयानन्द जी का तर्जुमा अच्छा है, लेकिन इसमें क्या सबूत है कि—**"महीधर, का गलत और स्वामी दयानन्द जी का तर्जुमा सही है ?"** वेदों में इब्तदाई तालीम होनी चाहिये। ईसायत बतदरीज इलहाम बतलाती है, मौजिजों (चमत्कारों) से तमाम दुनियां कायल (प्रभावित) है। ईश्वर का आत्मा पानी पर नहीं डोलता था बल्कि वह हरकते इरादी थी, जो फेल (कर्म) में तबदील हुई। खुदा की हरकतें इरादी पानी पर असर करती थी, पानी को जुम्बिश (कम्पन) देती थी, स्वामी दयानन्द जी ने इन्द्र के अर्थ कहीं बिजली किये हैं। तथा कहीं देवता किये हैं, कहीं ईश्वर तथा कहीं कुछ ? ऐसे ही बृहस्पति वगैरा के अर्थों में भी गड़बड़ है।

श्री पण्डित शिवशर्मा जी—

महीधर का तर्जुमा इसलिए गलत है कि वह प्राचीन ऋषियों के वैदिक मुहावरे, व्याकरण और प्रकरण के खिलाफ है। स्वामी दयानन्द जी का भाष्य हर तरह से प्राचीन ऋषियों के मुआफिक (अनुकूल) है, तथा कानूने कुदरत के मुताबिक व्याकरण के मुहावरे व प्रकरण के अनुसार है। आप बार-बार इब्तदाई तालीम का जिकर करते हैं। परन्तु अब तक बाइबिल से इब्तदायी तालीम साबित नहीं की ? अब जरा अपनी इब्तदाई तालीम के

नमूने फरमायें—**"ईश्वर की आत्मा पानी पर डोलती थी"** हरकत आत्मा करती थी, न कि पानी ! जो चीज हरकत करती है, वह महदूद (सिमित) होती है। और जो महदूद है, वह सर्वज्ञ नहीं, वह ईश्वर नहीं ! अतः बाइबिल का बनाया हुआ खुदा ईश्वर नहीं हो सकता। और न उसकी दी हुई पुस्तक इलहामी हो सकती है। क्या इब्तदायी तालीम यह है जैसा कि—**"महजे कोल की पुस्तक पर्व-४, आयत-१२,"** पर खुदा कहता है कि—**"ऐ नबी तू अपना वह भोजन, जो रोटियों की नाई (तरह) बनाकर खाया करना और उसको मनुष्य की विष्ठा (पाखाने) से बनाया करना"** या जैसे **"हजरत मसीह ने अपने चेलों से पराये गधे बिना मालिक की आज्ञा के ही मंगवा लिए"** पादरी साहब क्या यह चोरी नहीं है ? (जनता में चारों तरफ थू-थू होने लगी···)" ॥

श्री पादरी अब्दुलहक साहब जी—

खुदा का कोल बतौर पेशीनगोई के है। दुश्मनों को सजा देने का यह तरीका है। अगर दुश्मन इस फैल (कार्य) की नकल करेंगे, तो उनको नुकसान पहुंचेगा, आगे चल कर खुदा-खुद कहता है कि—**"गाय के गोबर से रोटी पका"**। रही जुम्बिश वाली बात ! सौ पण्डित जी, वहां पर ईश्वर को आत्मा लिखा है, अर्थात् ईश्वर की आत्मा का असर सबसे पेश्तर (पहले) पानी पर हुआ। यानी परमात्मा ने सबसे पहले पानी को बनाया। आपने गधों वाली बात कही ? महाराज जी ! वहां पर जरुरत थी, इसलिए सवारी के लिए खुलवा कर मंगवा लिया, इसमें क्या हर्ज है ? अतः गधा मंगवाना चोरी नहीं है···श्रोताओं में चारों तरफ हंसी ही हंसी···॥

श्री पण्डित शिवशर्मा जी—

वहां पर पेशीन गोई का जिकर नहीं है। अगर होगी तो दुश्मनों को सजा देने का कितना भद्दा तरीका है, कि पहले—**"खुदा नबी भ्रष्टाचारी हो लेवे फिर दूसरे को भ्रष्ट करे"** क्या दूसरे को जिनाकारी (व्यभिचार की शिक्षा) सिखाने के लिए पहले खुदा खुद जिना (ब्लातकार) करे ? जनता में चारों तरफ करतलध्वनि···, सुनो पादरी साहब अगली बात भी सुनो—गाय के गोबर से पकाने का हुक्म खुदा ने उस वक्त दिया था जब कि नबी ने खुद इन्सान के पाखाने को बुरा समझ कर एतराज किया। अगर नबी एतराज न करके खुदा की बात को मान लेता तो क्या आज ईसाइयों के घर में इसका अनुकरण (नकल) किया जाता ? (इतना कहना था कि बैठ हुए लोंग उछल पड़े···चारों तरफ···वाह ! वाह !!···की आवाजें साफ सुनाई पड़ रही थी।) पादरी साहब ! सुनों बाइबिल में परस्पर विरोध भी है, बाइबिल में ही एक जगह पर लिखा है कि—**"खुदा पछताता है"** जबकि दूसरी जगह लिखा है कि—**"खुदा कभी नहीं पछताता"** देखिये पुस्तक (बाइबिल) खोलकर **"उत्पत्ति पर्व ६, आयत ७"** तो आपकी पूर्ण सन्तुष्टि हो जावेगी। अन्त में पूछता हूँ कि क्या मालिक की अनुपस्थिति में उसकी बिना इजाजत के कोई चीज ले लेना चोरी नहीं है ? ॥

श्री पादरी अब्दुलहक साहब जी—

खुदा का पछताना, इन्सान के जैसा पछताना नहीं है, पछताने से मतलब दिली अफसोस करना है, जिसको तअस्सुफ कहते हैं। अच्छा जरा यह तो बताइये कि—**"खुदा पछताता है"** यह कलमा मूजिबा (नकली) है या सालिबा (असली) ? क्या ईश्वर में वेदों के बाद इलहाम भेजने की ताकत नहीं रही थी ? पण्डित जी आप मेरे सवालों का जवाब न देकर बाइबिल पर एतराजात व्यर्थ ला रहे हो। (इतना कहने के बाद खामोश होकर बैठ गये)।

श्री पण्डित शिवशर्मा जी—

पादरी साहब क्या इब्तदाई तालीम यह है कि—**"बेटियां बाप से औलाद पैदा करें जैसा कि हजरत लूत की बेटियों ने किया"**। हजरत या खुदा याकूब से कुश्ती लड़े, या खुदा गुब्बार को देखने के लिए आसमान से उतरे, या खुदा, हजरत इब्राहीम से बातें करके आसमान पर चढ़ गये। या बछड़े का जला हुआ खून सूंघ कर खुश होता रहे। क्या गूलर से बेमोसम फल मांगना और न देने पर उसको बद्दुआ (शाप) देना नादानी नहीं है? इसका जवाब दीजिये। रही वेदों के इलहाम के पश्चात् किसी ओर को इलहाम देने की बात? इसका उत्तर पहले दिया जा चुका है। परमात्मा का ज्ञान मुकम्मिल है, और उसमें मुकम्मिल इलहाम वेदों द्वारा संसार के आरम्भ में दे दिया, उसको तदरीज की जरूरत नहीं थी। और न वह तदरीज के फन्दे में अपने बन्दो को डालना चाहता था। तदरीज इन्सानी काम में कभी महदूद व गैर मुकम्मिल ज्ञान के कारण रहती है। यही दलील है कि—**"बाइबिल ईश्वरीय कलाम कदापि नहीं है"**।

श्री पादरी अब्दुलहक साहब जी—

पण्डित जी आप बार-बार पुराने अहदनामें पर एतराज करते हैं, जो हमको मान्य नहीं है, परन्तु अपने गिरेबान में जरा झांक कर तो देखिये कि—आपके यहां नियोग जैसे गन्दे मसले को मानते हैं। आर्यों को तो इसी मसले पर डूब कर मर जाना चाहिये। परन्तु आपको शर्म तक नहीं आती।

नोट—

पादरी साहब का इतना कहना था कि पब्लिक में से आवाजें आई···पादरी अपने शब्द वापिस लें···पादरी साहब ने लज्जित होकर नीचा मुंह करके कहा—**"पण्डित जी आप बाइबिल की इलाहमियात को न जानते हैं और न समझते हैं"** तथा खामोश हो गए, तब ठाकुर इन्द्र वर्मा जी के तथा सभाध्यक्ष के कहने पर पब्लिक में शान्ति स्थापित हो सकी।

श्री पण्डित शिवशर्मा जी—

पादरी साहब ने तो हमको गालियां ही दी हैं, कोई-कोई व्यक्ति तो अपने कपड़े भी फाड़ने लगते हैं, तथा ईंट पत्थर आदि फैंकने लगते हैं···जनता में बेहद हंसी···पादरी साहब नियोग मुसीबत का धर्म है, आपके यहां पर भी भौजाई (भाभी) से नियोग करना लिखा है। नियोग न करने से बुरे नतीजे बाइबिल में मौजूद हैं। सुनिये, **"रूबिन"** ने अपने बाप की सुरैतिन (रखैल), वाल्दा! (माता) से सम्भोग किया। पादरी साहब! ईश्वर ने सूरज और चांद की मानिन्द इब्तदा में मुकम्मिल इलहाम दे दिया। क्या सूरज और चांद को भी बदलेगा? आखिर आप भी मानते हैं कि इन्जील खुदा का आखिरी कलाम है। तो आगे की इन्जील की खुदा में कलाम करने की या इलहाम भेजने की ताकत नहीं रही?

टिप्पणी—

'यह लूत वाले किस्से का विवरण सप्रमाण विस्तार पूर्वक—**"निर्णय के तट पर भाग-२"** में चौबिसवें शास्त्रार्थ के अन्दर पृष्ठ १०९ पर आया है। पाठकगण वहां देख सकते हैं।

"लाजपत राय अग्रवाल"

श्री पादरी अब्दुलहक साहब जी—

यहूदियों की शरह (परम्परा) में बाप की सुरैतिन (रखैल) से भोग कर लेना जायज था। लूत की बेटियां नबियां नहीं थी। खुदा ने लूत की बेटियों के बेटों को खुदा परस्ती से अलहदा कर दिया। पण्डित जी खाविन्द (पति) के मर जाने पर औलाद के लिए हमारे यहां नियोग है परन्तु आपके यहां मजे के लिए है।

श्री पण्डित शिव शर्मा जी—

भाइयो ! हजरत मसीह फरमाते हैं कि—मैं पुरानी शरह (परम्परा) को पूरा कराने को आया हूं, न कि उसको मिटाने। इसलिए यहूदियों की शरह आपकी शरह हुई। वहां पर तो वाकया है, वहां निकाह या नियोग नहीं है। अपनी शैतानी ख्वाहिश पूरा करना लिखा है। क्या यही "शरह" (प्रथा) और "**इब्तदाई तालीम**" है ? क्या यहूदियों और आपकी शरह में यह भी जायज है कि भाई-बहन से कहे कि—"**बहिन मैं तेरे घर में रोटी खाऊंगा, और जब बहिन रोटी तैयार कर ले, तब उसको कोठे (कमरे) में फुलके (रोटी) देने को बुलाये, और ज्योंहि बहन अन्दर जाकर फुलके देवे तो भाई ही अपनी बहन को पकड़ ले, और जबंदस्ती उससे···करे**"। देखो [शमअल पर्व १३, आयत १] (जनता में से चारों तरफ से ईसाइयों पर गालियों की बौछारें) खुदा का घर न होना, राजा के तम्बू में रहना, देखो (पुस्तक ८-१८), मैं पूछता हूं, क्या पादरी साहब ! ऐसी पुस्तक इलहामी हो सकती है ? पादरी साहब इन आपकी शरह वाली बातों पर अगर आजकल कोई चलेगा तो रोज जूते खायेगा। तथा ऐसे व्यक्तियों के लिए सरकार ने दफा ३७७ ताजीरे हिन्द लगा रखी है। (जनता में चारों तरफ हंसी ही हंसी······)।

श्री पादरी अब्दुल हक साहब जी—

ऊपर—चढ़ना, उतरना, फरिश्तों में लिए हैं, खुदा के लिए नहीं। (आखिर में पादरी साहब ने फारसी जुबान में आचार्य महिधर जी का तर्जुमा पढ़ते हुए अपने वक्तव्य को पूरा किया)।

श्री पण्डित शिव शर्मा जी—

वहां पर साफ-साफ लिखा है कि ईश्वर मुफर (करामात) देखने को आसमान से उतरा। इब्राहीम से बातें कर चुकने पर आसमान पर ईश्वर चढ़ गया। वहां पर फरिश्तों का न नाम है न कहीं जिकर जैसा कि पादरी साहब फरमाते हैं। आगे पादरी साहब कहते हैं कि बेटियां नबियां नहीं थी, मैं कब कहता हूं वह नबियां थी ? मैंने तो हजरत लूत की बेटियां कहीं थीं, अरे भाई, हजरत लूत तो नबी थे या नहीं ? गुनाह था हजरत लूत (नबी) का, और उनकी बेटियों को सजा मिलती है तथा लड़कियों के बेटों को ! अजीब न्याय है ? बाइबिल में साफ विरोध है। पछताना अपनी गलती को महसूस कर लेना है। महीधर के तर्जुमे को हम मानते ही नहीं, इसलिए उसको पेश करना व्यर्थ है। नियोग मजे के लिए नहीं है जैसा कि पादरी साहब फरमाते हैं। बल्कि नियोग आपत्तिकाल में औलाद हासिल करने के लिए है। देखो—"**पत्युर्जनित्वमभि सं बभूव**"। ऋग्वेद में कहा है कि औलाद तेरे पति की होगी। अब रही बाइबिल और पाखाने वाली बात ! (जनता में हंसी ही हंसी······), ···अच्छा चलो छोड़ो। मैं अन्त में लोगों का टेस्ट (जायका) खराब नहीं करता।······जनता में से धन्यवाद पण्डित जी ! इसके बाद शान्ति पाठ के बाद सभा विसर्जन हुई।

उक्त शास्त्रार्थ का प्रभाव—

इस प्रान्त में मसीही प्रचार का इतना प्रभाव था कि इस इलाके के बहुत से चमार ईसाई होनेवाले थे, और बहुत से हो चुके थे। शास्त्रार्थ के उपरान्त जो ग्रामीण चमार ईसाई होनेवाले थे, सब बच गये। और ईसाई नहीं हो पाये। उन्होंने पंचायत करके हिन्दू धर्म को न छोड़ने का निश्चय किया। जो "**चमार, भंगी**", ईसाई हो गये थे, उन सभी लोगों ने पुनः शुद्ध होकर चोटी रखवाई, और अपने धर्म में वापिस आए। इस कारण आर्यसमाज की पूर्ण विजय हुई। और ईसाई पादरियों को शर्मिन्दा होकर उटना पड़ा। क्योंकि यह पहिला ही अवसर था जब जनता के सामने बाइविल की भीतरी पोल खुली, ईसाई पादरी लोग सदैव आर्यसमाज के सामने, "**खुदा, रूह और माद्दे की कदामत**" (ईश्वर, जीव और प्रकृति का अनादित्व) पर ही बहस करके अपना पीछा छुड़ाते रहे हैं। इस शास्त्रार्थ से विशेष बात यह हुई कि जितनी विशाल जनता के सामने जो पोल, ईसाईयों की तथा बाइबिल की खुली, उसका उन ईसाई प्रचारकों पर बहुत ही बुरा असर पड़ा। तथा सारे इलाके भर में आर्यसमाज की वैदिक पताका गूंज गयी ।। इतिशम् ।।

निवेदक—
(ठाकुर) "**इन्द्र वर्मा**"
(महोपदेशक)

एकसौएक वां शास्त्रार्थ—

स्थान : नीमच छावनी (मध्य प्रदेश)

दिनांक : २०-४-१८९५ ई०

विषय : क्या मूर्त्ति पूजा एवं मृतक श्राद्ध वेदानुकूल है ?

सनातन धर्म सभा की ओर से शास्त्रार्थकर्त्ता : श्री साधु ईश्वरानन्द जी सरस्वती

आर्यसमाज की ओर से शास्त्रार्थकर्त्ता : श्रीयुत् पण्डित ज्वालादत्त जी शर्मा (अजमेर)

आर्यसमाज के मन्त्री : श्री राम बिलास मूंदड़ा

आर्यसमाज के उपमन्त्री : श्री मास्टर शकुन चन्द जी

आर्यसमाज के प्रधान : श्री सेठ मुलतान मल्ल जी

नोट—

यह शास्त्रार्थ सामग्री "श्री पण्डित राजा राम जी जिज्ञासु" स्वाध्याय संस्थान (बदायुं) के द्वारा प्राप्त हुई, हम उनके हृदय से आभारी हैं, उनके ही द्वारा यह अप्राप्य शास्त्रार्थ सामग्री पुनः प्रकाश में आ सकी।

"लाजपतराय अग्रवाल"

शास्त्रार्थ से पहले

विदित हो कि—वर्तमान समय में आर्य धर्म प्रतिपादक वैदिक सिद्धान्तों को अनेक अच्छे-अच्छे विद्वान विचारते और निज शंकाओं का वेदादि शास्त्रों में समाधान पाते हुए स्वयं प्रसन्न होते हैं। परन्तु जो वेद वाक्यों के विचारने और समझने में असमर्थ साधु ईश्वरानन्द सरस्वती (भूतपूर्व आर्य) जैसे किसी प्रकार अपनी प्रतिष्ठा चाहते हैं, वह व्यर्थ विवाद करते हैं पर उनका भीतरी हाल यह है कि—**"हाथी के दांत दिखाने के और तथा खाने के और हैं"**। कुछ समय से इस नीमच छावनी में साधु ईश्वरानन्द सरस्वती जो कि प्रथम आर्य पक्ष में थे। अब यह विरुद्ध (धर्मसभा) के पक्ष में व्याख्यान देते और आर्यसमाज की मनमानी निन्दा किया करते हैं। यहां भी अपनी प्रकृति (आदत) के अनुसार उक्त साधु जी ने आर्यसमाज के विरुद्ध व्याख्यान देना आर्य सामाजिक सज्जनों और श्री १०८ स्वामी दयानन्द सरस्वती जी को अपने व्याख्यानों के साथ कुवाक्य कहना आरम्भ किया। यह वृत्तान्त सुनकर इस नगर के आर्य सामाजिक सज्जनों की सम्मति से यहां के पुलिस इन्स्पेक्टर **"श्रीयुत् बाबु (पण्डित) नाथू लाल जी"** को निम्नलिखित पत्र मैंने **(श्री राम बिलास मूंदड़ा—मन्त्री आर्यसमाज)** दिया। और शास्त्रार्थ के लिए प्रार्थना की। पत्र इस प्रकार था—

॥ ओ३म् ॥

आर्यसमाज—छावनी नीमच

१८-४-१८६५ ई०

श्रीयुत् बाबु नाथूलाल जी महाशय !

निवेदन यह है कि—इन दिनों साधु ईश्वरानन्द जी ने यहां पधारकर वेदादि सच्छास्त्रों द्वारा मूर्त्तिपूजन तथा मृतक श्राद्ध सिद्ध करने का प्रण किया है किन्तु आर्यसमाज उन उपरोक्त बातों को अवैदिक मानता है। और सत्यासत्य का निष्पक्ष भाव से निर्णय कर सत्य ग्रहण करना अपना परम् कर्त्तव्य समझता है अतः यदि साधु जी उपरोक्त बातों का निर्णय करना स्वीकार करें तो कृपा कर आप उनकी सम्मति से सूचित कर अनुग्रहीत कीजिए ताकि आर्य पण्डितों को बुलाया जावे और तारीख बीस तक वह आ सकते हैं या नहीं ?

भवदीयपत्रोत्तराभिलाषी—

"राम बिलास मूंदड़ा"—मन्त्री

(आर्यसमाज—छावनी नीमच)

पुलिस इन्स्पेक्टर श्रीयुत् बाबु नाथूलाल जी ने उपरोक्त पत्र का निम्नलिखित उत्तर दिया—

श्रीयुत् माननीय मन्त्री जी, आर्यसमाज नीमच !

आपका कृपा पत्र गत रात्रि को बहुत देर हुए पहुंचा। यदि ऐसा पत्र साधू जी ही को भेजा जाता तो ठीक होता, कारण कि मेरा सम्बन्ध ऐसी बातों से बहुत ही कम है। आपके पत्रों को मैंने साधु जी को दे दिया। यदि वह मुझसे कुछ कहेंगे तो आपको निवेदन किया जावेगा। नहीं तो आप यदि ठीक समझें तो उनसे जिस प्रकार उचित हो पूछ लें !!

नीमच, १९-४-९५ ई०]

आपका कृपाकांक्षी—

"नाथू लाल"

नोट—

इस उपरोक्त पत्रोत्तर के मिलने के पश्चात बाबु नाथूलाल जी की मौजुदगी में साधु जी से सेठ मांगीलाल जी आदि आर्य पुरुषों ने वार्त्तालाप किया। प्रथम तो साधु जी ने कहा कि—"**मैं मूर्त्ति पूजनादि विषयों पर नहीं बलिक अन्य विषयों पर शास्त्रार्थ करूंगा**"। परन्तु जब सेठ मांगीलाल जी ने यह कहा कि—"**ऐसा कहने से तो यह साफ पता चलता है कि मूर्त्ति पूजनादि वेद से वैदिक सिद्ध नहीं हो सकती या आप वेद नहीं पढ़े**"। तब बहुत ही झंझट के पश्चात्त कहा कि अच्छा, मूर्त्ति पूजन और श्राद्ध पर बातचीत करूंगा। परन्तु लिखकर उत्तर रूप में देने से असमर्थ रहे जबकि बहुत अधिक सभी ने जोर दिया था। इसके पश्चात—"**मूर्त्ति पूजन विषयक दश प्रश्न**" की प्रति तीन सौ की संख्या में, नीमच नगर में वितरित की गई। जिस पर लिखा गया था कि साधु ईश्वरानन्द जी सरस्वती अवश्य उत्तर दें, वह प्रश्न पत्र इस प्रकार था—

—प्रश्न-पत्र—

१. ईश्वर का पांच भौतिक शरीर वेदों के मन्त्र तथा युक्तियों से सिद्ध करना होगा, क्योंकि मूर्त्ति प्रति-बिम्ब प्रति कृति शरीर रहित की होनी असम्भव है। २. पाषाण आदि से ईश्वर की प्रतिमा बनाकर पूजा करने की विधि वेद में है वा नहीं ? यदि है तो मन्त्र के पदार्थों से सिद्ध करो कि ईश्वर की प्रतिमा कितनी लम्बी कितनी चौड़ी, स्थूल तथा किस मनुष्य, पशु, पक्षी के आकार की बनानी चाहिए या मूर्त्ति का आकार जलचर, थलचर, नभचर किसके समान होना चाहिए ? प्रतिमा का वर्णन वेद में कैसा बनाना लिखा है ? प्रतिमा के हस्त, पादादिकों की संख्या भी वेद से बताइए कितनी होनी चाहिए ? ३. ईश्वर को वेदों में क्लेश सहित लिखा है वा क्लेश रहित ? यदि क्लेश सहित लिखा है तो उसकी मुक्ति किसके उद्देश्य से और कब होगी ? यदि क्लेश रहित लिखा है तो प्रतिदिन उसे भोजनादि से सुख देने की चेष्टा क्यों करते हो ? ४. आकाश रहित पाषाण में प्राण वायु का गमनागमन वेद शास्त्र युक्ति से मन्त्रों के पदार्थ सहित सिद्ध करो। ५. जिन वाक्यों से प्राण प्रतिष्ठा की जाती है उन वाक्यों को प्रत्यक्षादिशास्त्र युक्त प्रमाणों से सिद्ध करना होगा। ६. यदि मूर्त्ति में केवल भावना मात्र है तो वेद मन्त्रों से सिद्ध करो कि वह भावना सच्ची है वा झूठी ? ७. जो लोग ब्राह्मण ग्रन्थों को वेद मानकर प्रमाण देने को उपस्थित होंगे उनको प्रथम यह कह देना होगा कि ऋग्, यजु, साम, अथर्ववेद जो संहिता नाम से प्रकट हैं उनमें कहीं भी मूर्त्ति पूजन नहीं लिखा है। ८. उक्त विषय में प्रमाण केवल चार वेद जो मन्त्र संहिता के नाम से प्रकट हैं उनका ही देना होगा। ९. वेद मन्त्रों के अर्थ का निर्णय निरुक्त, निघण्टु, शतपथ, गोपथ, ऐतरेय, साम, ब्राह्मण, अष्टाध्यायी, महाभाष्य से ही करना होगा। उनसे विरुद्ध अन्य किसी भी ग्रन्थ का प्रमाण न लिया जाएगा। १०. युक्ति प्रमाण में केवल छः शास्त्रों की ही प्रमाणपूर्वक युक्ति भी मानी जावेगी। जो महाशय शास्त्रार्थ के लिए उद्यत्त हों वह प्रथम इन उपरोक्त दस प्रश्नों का उत्तर दे लें। पुनः अन्य विषय को छेड़ें।

विशेष नोट—

जो विज्ञापन श्री साधु ईश्वरानन्द जी को दिया गया था। वह इस प्रकार था। इसमें उपरोक्त दस प्रश्न भी सम्मिलित हैं—

—शास्त्रार्थ विषयकं विज्ञापनम्—

विदि तमस्तु सर्वसज्जन परोपकारिणां महाशयानां समक्षेनिर्णयार्थ गेतत्। जगद्विदित वेदादिशास्त्र-

सिद्धान्त प्रनिपादितार्थ्यसिद्धान्त मार्तण्ड मण्डल प्रखर मरीचिप्रचण्ड प्रताप परितप्तानेकवत्सर संचिताज्ञानतिमिर-ध्वंसन संज्ञातज्ञान परिशुद्ध हृदयोपिभिक्षरेक ईश्वरानन्द नामेश्वरस्यसाकार निराकार स्वपक्ष भ्रान्तिमवलम्ब मानोनिजज्ञान तिमिर निवृत्ति निमित्तमात्र एवन्नार्यसिद्धान्तं निन्दन्निजाज्ञान तिमिर प्रवृत्ति पुनः पुनराकाङ्क्षिन् स्व प्रतिष्ठामभीप्सुमाविर्भावयन् विचरति तं प्रत्येताद्विज्ञापनं द्वारा पुनरपि विज्ञाप्यते।

प्रतिनगर नागरिक विद्वज्जन विचार पथ प्राप्त वेदादिशास्त्र प्रतिपादितार्य्य सिद्धान्तेषु मूर्त्तिपूजन निषेधादि व्यवहारेषु यत्र यत्र तस्य शंकास्ति तेषु तेषु विषयेषु शास्त्रार्थ करणायवय मुद्यताः स्मः। यदि शक्ति-रस्तिचेदागम्यतां पूर्णतया राजकीयादिप्रबन्धेनयत्र विचार शीलानां सम्मतिः स्यातत्रैववयमा गन्तुमुद्यताः स्मः। किं साध्यंगलगर्द्दनेन भवता किं वा कुवाक्यैरथोमिथ्याजल्पकल्पनैः श्रुतिविदांश्रीमद्गुरुणाम्सतान् निन्दामाचरता यदीय कृपयाख्यातः कथं चिद्भुविश्रेयश्चेदसकृत्समिच्छसिपरंभित्रो कुशिक्षाँत्यज ॥१॥ ध्येयोवेद विभेद वाक्यनिचयो नित्यं विमर्शेनयच्चेतः कर्क शतर्क निर्भरमभिभ्रान्तंसमाधीयते। संसृत्युद्भवसंस्थिति प्रहृति कृत्कारुवृतिपुन पुनरा-काङ्क्षिन् स्व प्रतिष्ठामभीप्सु रामपूर्णेत्रभो किंनस्यादमिधे हितत्तु पुरतोभिक्षोकुशिक्षांत्यज ॥२॥

शास्त्रार्थः पुरोर्मूर्त्तिपूजनविषये श्राद्धविषये च भविष्यति। मूर्त्ति पूजन विषये पूर्व कृत प्रश्नोत्तराणि देयानि॥

प्रश्नाश्चते

(१) ईश्वरस्य पाञ्चभौतिक शरीर प्रतिपादनं वेदमन्त्रैर्युक्ति भिश्च संसाध्यंमूर्तिः प्रतिकृतिरसम्भवा शरीर रहितस्य॥ (२) पाषाणादि पदार्थैरीश्वरस्यप्रतिमांनिर्मायार्चन विधानं वेदोस्तिन वा मद्यस्तितर्हि मन्त्र पदार्थैः प्रतिपादमेश्वरस्यप्रतिमा कियल्लम्बनादि प्रमाणवती सा च मनुष्य पशु पक्षया कृतिवती निमातव्येतिल्जलं चरणभश्चर स्थलचरेषुकस्याकृति वन्निर्मे या। वेदे प्रतिमायावर्णः कोनिर्मातुमुक्तः। हस्तपादादि संख्याकास्तीति-वक्तव्या॥ (३) वेदेश्वीश्वरः क्लेश सहितः प्रतिपादितः क्लेश रहितो वा प्रतिपादितः। यदि क्लेश सहितः प्रति-पादितस्तर्हितस्येश्वरस्यमुक्तिः केनोछेशेन कदा वा भविष्यति यदि क्लेश रहितस्तर्हिप्रतिदिनं तस्मै भोजनादि ना सुखदानस्ये हां किमर्थं करोषि॥ (४) आकाश रहित पाषाणे प्राणवायोगमनागमनं वेदशास्त्र युक्तिमिर्वेमन्त्रार्थैः सह संसाध्य॥ (५) यैर्वाक्यैः प्राणप्रतिष्ठा क्रियते तानि वाक्यानि प्रत्यक्षादि प्रमाणैः शास्त्रयुक्तियुक्तैस्संसाध्यानि॥ (६) यदि मूर्त्तौ भावनैवास्तितर्हि वेद मन्त्रैः प्रतिपाद्यमेतत्सा भावना सत्याऽसत्यावेति॥ (७) ये विद्वांसोजना ब्राह्मण ग्रन्थान् वेदंमत्वाप्रमाणंदातु मुद्यता भविष्यन्ति तैरभिधेयं भविष्यति पूर्व ऐतदृग्ययुः सामाथर्व वेदा ये संहितानाम्ना प्रसिद्धाः सन्तितेषु क्वचिदपि मूर्त्ति पूजनं नैव प्रतिपादितमिति॥ (८) उक्त मूर्त्ति पूजन विषये चत्वारो वेदाये मन्त्र संहिता नाम्ना प्रसिद्धाः सन्ति तेषामे व प्रमाणं प्राह्यं भविष्यति॥ (९) वेद मन्त्राणामर्थ निर्णयो निरुक्त निघण्टु, शतपथ, गोपथैतरेयसामब्राह्मणाष्टाध्यायीमहाभाष्यादिभिःकरणीयः॥ (१०) युक्ति प्रमाणेषुकेवलं षट्शास्त्र विषयकाप्रमाणतयायुक्ति रंगी कृता भविष्यति॥

सूचना—

ये विद्वांसः शास्त्रार्थ करणायोद्यता भवन्तु ते पूर्वोक्त प्रश्नोतराणि पुरोदधुरनन्तर मन्य प्रश्नस्याल काशो भविष्यति॥

श्राद्ध विषये मंच प्रश्ना

(१) श्राद्ध विषयो वैदिकोऽवैदिको वा प्रमाणैर्युत्त्यादिभिश्च प्रतिपादनीयः॥ (२) श्राद्धंयदर्थं क्रियते तेन सशरीरेण शरीर रहिते न वा श्राद्ध कर्त्तुः सम्बन्धः सशरीरेण चेच्छरीर रहिते जीवे कथं सम्बन्धः प्रतिपद्यते।

शरीर रहिते न चे द्विनष्टे शरीरे कस्य को जीवः पिता को वा मात्रादि ॥ (३) श्राद्धंकैर्वस्तुभिः कार्य्ययस्मै श्राद्धं क्रियते सजीवः केषुयोनिषु जातोयेषुयोनिषुजातः श्राद्धदत्तानिवस्तूनितत्प्रकृत्यनुकूलानि नस्युर्स्तर्हितानि दत्तानि-वस्तूनिव्यर्थानिभविष्यन्ति न वा ॥ (४) जीवस्य पुर्नजन्म भवति न वा पुनर्जन्म भवति चेत्स्व कृत कर्म फल भोगायतनं शरीरं श्राद्धवस्तुभिः किमन्यथा भविष्यत्यन्यथा भविष्यति चेन्न्यायकारिणो नियन्तुर्न्यायस्य काव्य-वस्था ॥ (५) श्राद्धेनकियत्पुण्यफलानुमानं तच्चजीवकृतमा जन्म कर्म फल वै गुण्याय कथं भविष्यति काव्य-वस्थैतदयुत्तयादिभिः प्रतिपादनीयम् ॥

तारीख—२०-४-१८६५ ई०

पत्रोत्तराभिलाषी—
"ज्वाला दत्त शर्मा"

उपरोक्त विज्ञापनपत्र का भावार्थ—

"शास्त्रार्थ विषयक विज्ञापन"

सर्व सज्जन परोपकारी महाशयों के सामने निर्णयार्थ यह विदित हो कि जगद्विदित वेदादिशास्त्रों के सिद्धान्त से प्रतिपादन किए हुए आर्य सिद्धान्त रूपी सूर्य मण्डल की तीक्ष्ण किरणों के प्रचण्ड प्रताप से अच्छे प्रकार तथा अनेक बरसों का इकट्ठा हुआ जो अज्ञान रूपी अन्धकार उसके नष्ट होने से उत्पन्न हुआ। जो ज्ञान उससे सब प्रकार शुद्ध हृदयवान भी संन्यासी एक ईश्वरानन्द जो कि ईश्वर के साकार निराकारता पक्ष की भ्रान्ति का अवलम्ब लिए और अपने अज्ञान रूपी अन्धकार की निवृत्ति के कारण को छिपाते। आर्य सिद्धान्त की निन्दा करते और अपने अज्ञान रूपी अन्धकार की प्रवृत्ति बारम्बार चाहते हुए निज प्रतिष्ठा की अभिलाषा किए जहां तहां अपने को पण्डित मान धर्मोपदेश करने वाले प्रकाशित करते हुए विचरते हैं। उनके प्रति इस विज्ञापन द्वारा फिर भी विज्ञापित कराया जाता है। (एक बार इन्हीं संन्यासी महानुभाव को "नसीराबाद"[1] (जि० अजमेर) में पहिले शास्त्रार्थ के लिए इनको विज्ञापन दिया गया था परन्तु उस समय भी यह शास्त्रार्थ के लिए नहीं आए थे)।

प्रति नगर-नगरों के रहने वाले उत्तम विद्वानों के विचार मार्ग को प्राप्त वेदादि शास्त्रों से प्रतिपादन किए हुए जो आर्य सिद्धान्त मूर्त्ति पूजन निषेध आदि व्यवहार उनमें जहां-जहां उक्त संन्यासी जी को शंका है उन-उन विषयों में शास्त्रार्थ करने के लिए हम उद्यत्त हैं, जो शक्ति हो तो आना चाहिए। पूरे राज प्रबन्ध के साथ, जहां विचारवान सज्जनों की सम्मति हो वहां हम आने को उद्यत्त हैं।

हे संन्यासिन ! गला फाड़-फाड़कर बकने तथा कुवाक्यों तथा झूठी बकवाद की कल्पनाओं से श्री वेदवेत्ता सद्गुरु श्री १०८ स्वामी दयानन्द सरस्वती जी (जिनकी कृपा से भूमण्डल में किसी प्रकार विख्यात हुए) की निन्दा

टिप्पणी—

[1]उपरोक्त वाक्य से पता चलता है कि "नसीराबाद" में भी इस प्रकार की शास्त्रार्थ सम्बन्धी घटना घटी होगी। अगर किसी सज्जन महानुभाव के पास उस घटना का विवरण हो तो अवश्य भेजें। हम उस विवरण को उन्हीं महानुभाव के नाम से अगले (भाग-५) में प्रकाशित करा देंगे। एवं उनका आभार प्रकट करेंगे॥

निवेदक—
"लाजपतराय अग्रवाल"

करते हुए क्या सिद्ध करना चाहते हो ? यदि बार-बार कल्याण की इच्छा हो तो कुशिक्षा को छोड़ दो ।।१।। हे संन्यासिन वेद के विशेष भेद वाक्यों के समूह का नित्य चिन्तन करना चाहिए। जिसके विचार से कठिन तर्कों से भरा चित्त सब ओर से समाधान पाता है। संसार की उत्पत्ति, स्थिति, और प्रलय करने वाले परमात्मा की करुणा से परिपूर्ण, इस वेद में क्या न हो सो कहो पर पहले कुशिक्षा छोड़ दो ।।२।। शास्त्रार्थ प्रथम "मूर्त्ति पूजन" विषय और "श्राद्ध" विषय पर होगा, मूर्त्ति पूजन विषय में पहिले किए हुए प्रश्नों के उत्तर देना चाहिए।

नोट—

दस प्रश्नों का भाषार्थ आरम्भ में आ चुका है। श्राद्ध सम्बन्धी पांच प्रश्नों का भाषार्थ नीचे दिया जाता है,—

"श्राद्ध विषयक प्रश्नों का भाषार्थ"

(१) श्राद्ध विषय वैदिक है वा अवैदिक ? प्रमाण और युक्ति आदि से प्रतिपादन करना चाहिए। (२) (मृतक) श्राद्ध जिसके लिए किया जाता है उससे शरीर के साथ श्राद्ध करने वाले का सम्बन्ध है वा स्थूल शरीर रहित जीव मात्र से ? यदि शरीर सहित से सम्बन्ध है तो शरीर से रहित जीव में श्राद्धकर्त्ता का सम्बन्ध कैसे सिद्ध होता है ? शरीर रहित से है तो शरीर विनाश होने पर किसका कौन जीव, पिता, वा किसका कौन माता आदि है ? (३) श्राद्ध किन वस्तुओं से करना चाहिए ? जिसके लिए श्राद्ध किया जाता है वह जीव कौन योनियों में उत्पन्न हुआ ? जिन योनियों में उत्पन्न हुआ, श्राद्ध में दी गयी वस्तु अगर उसकी प्रकृति के अनुकूल न हो तो वह दी हुई वस्तु व्यर्थ होगी वा नहीं ? (४) जीव का पुनर्जन्म होता है वा नहीं ? यदि पुनर्जन्म होता है तो अपने किए हुए कर्मों के फल भोगामत शरीर जो जीव को मिलता है क्या श्राद्ध वस्तुओं से अन्यथा हो जाएगा अर्थात् बदल जाएगा (योनि भी वस्तु के अनुसार बदल लेगा) यदि अन्यथा हो जाएगा तो नियमकर्त्ता, न्यायकारी, परमात्मा की न्याय व्यवस्था क्या ? (५) श्राद्ध से कितने पुण्य फल का अनुमान है ? और वह जीव के जन्म भर के किए हुए पाप-पुण्य के विपरीत गुण होने को कैसा होगा ? क्या व्यवस्था है ? यह सब युक्ति-प्रमाणों से प्रतिपादन करना चाहिए।

पत्रोत्राभिलाषी—
"ज्वाला दत्त शर्मा"

उत्तर श्री साधु ईश्वरानन्द जी की ओर से—

सत्यमेव जयते[१] नानृतम श्रीमतां दयानन्द समाजोत्सव[२] दशकानां युष्माकं प्रश्न सन्दर्भ गुंफित[३] पत्रमद्यैव

टिप्पणी—

[१](जयते) यह पद किस व्याकरण से "आत्मने पद" में प्रयोग किया गया ? "जयाते" ऐसा होना चाहिए।

[२]"दयानन्द समाजोत्सव दर्शकानां" यह पद कैसे ? यह तो "दयानन्दीयसमाजोत्सव दर्शकानां" ऐसा होना चाहिए। एक दयानन्द व्यक्ति से समाज नहीं है। समाज भी श्री १०८ स्वामी दयानन्द जी के उपदेश मानने वाले (समूह) का है, यह सोचना चाहिए था।

[३]"सन्दर्भ"—"गुम्फित" दो शब्द एक अर्थ में दो शब्द निर्विशेष देना व्यर्थ है अर्थ वैलक्षण्य कुछ होना चाहिए।

प्राप्तमुदन्तस्तु[1] जातः भवतां यदि श्रद्धास्तिचेत् तर्हि श्रीमद् गोपाल मन्दिरे प्रतिदिनं दीपमानं व्याख्यान मवधार्य्य काचिच्छं कास्ति चेर्तार्हि कुमति[2] निवारणार्थं श्रीमद् गोपाल प्रभोश्चरणारविन्दमकरन्दमाघ्राय सानन्दा भवत[3] ॥

वैशाख कृ० = ११ "स्वामी ईश्वरानन्द सरस्वती"
सम्वत् = १९५२ (छावनी—नीमच)

नोट—

उक्त पत्र देकर ईश्वरानन्द और उनके अनुयायियों ने बाजार में कोलाहल मचवाया कि—**"आज शास्त्रार्थ होगा"** और पण्डित ज्वाला दत्त जी श्री गोपाल जी के मन्दिर में आवेंगे जहां नित्य अपना[4] व्याख्यान होता है। सत्यासत्य विवेकी सज्जन महात्माओं को इन लोगों का पत्र विचारना चाहिए कि—उक्त पत्र में कोई पद क्या ऐसा भी यह लोग लिखते हैं कि—**"पण्डित ज्वालादत्त जी शास्त्रार्थ करने के लिए आवें"**। हम शास्त्रार्थ करने को तैयार हैं। ये तो केवल गोपाल जी के चरणारबिन्दमकरन्द सुंघा कर शास्त्रार्थ समाप्त किया चाहते हैं, शास्त्रार्थ करना तो तभी बनें जब कोई उत्तरदाता हो। श्री पण्डित ज्वालादत्त जी ने सायंकाल बाहर से आते हुए बाजार में शास्त्रार्थ का कोलाहल सुना तो एक आर्य महाशय[5] (परदेशी) जो कि—बाजार में एक दुकान पर ठहरे हुए हैं वहां बैठकर कलम-दवात तथा कागज मंगवाया और वहीं एक पत्र संस्कृत में लिखकर स्वामी ईश्वरानन्द जी के पास भेजा जो इस प्रकार था—

श्री मदीश्वरानन्द सरस्वती स्वामि समीपेषु ॥

भगवन् भवत्पत्रं यन्मम् पत्रोत्तरणायागतंतत्र भवद् बुद्धिवैचित्र्यंदृष्टवामहदाश्चर्य्यमवाप्तम्। यतस्तत्रे-

---

टिप्पणी—

[1]यहां **"तु"** शब्द को व्यर्थ क्यों घसीटा **"पत्र पाया हाल जाना"** इसमें तु की क्या आवश्यकता है? ऐसी मीमांसा असम्बद्ध है जैसे—"पत्र पाया हाल तो जाना"।

[2]......क्या शंका करने वाला बिना समाधान ही पाए आप लोगों के मत में कुमति वाला है? वहां **"कुमति"** शब्द को क्यों घसीटते हो?

[3]श्रीमद् गोपाल जी के चरणारबिन्दमकरन्द सूंघ सानन्द होवो। क्या शंका करने वाले के लिए यही उत्तर आपके यहां है? आप सीधे क्यों नहीं कहते कि हम उत्तर देने योग्य नहीं है। आप जिन गोपाल जी के चरणार-बिन्दमकरन्द को सुंघाना चाहते हो; वह पत्थर की मूर्त्ति बनी हुई है। पत्थर की मूर्त्ति के चरणों को अरविन्द मानना अज्ञों का काम है क्योंकि पत्थर की मूर्त्ति के चरण कठोर और अरविन्द कोमलत्वादि गुण विशेष हैं। अतएव चरण के साथ **"अरविन्द"** और **"मकरन्द"** शब्द जोड़ना अत्यन्त मूर्खता का काम है।

[4]इस नगर में बाजार में एक मन्दिर श्री गोपाल जी के नाम से प्रसिद्ध है। उस मन्दिर में साधु ईश्वरानन्द जी नित्य व्याख्यान देते हैं। तथा पण्डित ज्वालादत्त जी बस्ती के बाहर एक ब्राह्मण का बगीचा था वहां सायंकाल दिशा-मैदान आदि तथा संध्योपासन के निमित्त नित्य ही बाहर जाते थे।

[5]श्रीयुत् पण्डित रामभजन मिश्र वैशवारा देश **"बाजेगांव"** के रहने वाले इस नीमच छावनी के बाजार में एक दुकान पर ठहरे हुए हैं। वह आर्य भी हैं तथा कान्यकुब्ज ब्राह्मण हैं। अतएव श्री पण्डित ज्वालादत्त जी को वहां शिष्टाचार से बैठने का अवकाश था। बाहर नित्य कर्म से लौटकर उक्त पण्डित जी के पास श्री पण्डित ज्वालादत्त जी आए थे।

काक्षरमपि न दृष्टं भवानशास्त्रार्थकरणायोद्यतः समयश्चशास्त्रार्थकोवेत्यादि परंचनगरे यत्र तत्र किंवदन्ती ? श्रुताद्यशास्त्रार्थो भविष्यतीति । युक्तविषयेकः प्रबन्धोस्तीति शीघ्रमुत्तरेणज्ञापय ।।

(२०-४-१८९५ ई०)

पत्रोत्तराभिलाषी—
"ज्वालादत्त शर्माहि"

नोट—

उक्त पत्र के उत्तर में साधु जी का और उत्तर न मिला, तब दूसरे दिन निम्नलिखित विज्ञापन साधु जी के पास भेजा गया तथा बस्ती में भी बांटा गया।

विज्ञापन—

सर्व सज्जन महाशयों को विदित हो कि—श्री साधु ईश्वरानन्द जी आर्यसमाज के विरुद्ध व्याख्यान दे रहे हैं। और उक्त साधु जी से शास्त्रार्थ करने के अर्थ श्रीयुत् पण्डित ज्वालदत्त शर्मा जी आर्य पण्डित अजमेर से पधारे हैं और चाहते हैं कि प्रबन्ध के साथ शास्त्रार्थ हो जावे, परन्तु शास्त्रार्थ का अवसर अब तक नहीं आया और न ही उक्त साधु जी ने कोई पत्र उक्त पण्डित जी को दिया कि—"अमुक स्थान में शास्त्रार्थ होगा आप आइए"। अतएव इस विज्ञापन पत्र द्वारा साधु जी को सूचित किया जाता है कि—"आज तारीख २१-४-९५" को रात्रि के साढ़े सात बजे आर्यसमाज भवन में पधारकर शास्त्रार्थ कर लें।

भवदीय-दर्शनाभिलाषी—
"**रामबिलास मूंदड़ा**"

नोट—

इस उपरोक्त विज्ञापन पत्र के पहुंचने पर तारीख २१-४-१८९५ ई० को साढ़े छः बजे सायं को साधु ईश्वरानन्द सरस्वती जी की ओर से जो उत्तर आया वह इस प्रकार था[१]—

श्री हरिः

।। विज्ञापन पत्रोतरम् ।।

श्रीमान् मन्त्री जी,

आर्यसमाज नीमच ! प्रियवर, आपका निमन्त्रण-पत्र हस्तगत हुआ। आपकी इच्छानुसार हम आर्यसमाज भवन में आने को उद्यत हैं। परन्तु सभ्यता[२] पूर्वक भाषण करना होगा। और राजकीय[३] प्रबन्ध भी आपको कर

टिप्पणी—

[१]पाठक महाशयों को स्मरण रखना चाहिए कि श्री साधु जी ने साढ़े छः बजे जो पत्र दिया और जबकि साढ़े सात बजे का समय शास्त्रार्थ के लिए नियत है। फिर भी आगे कैसी-कैसी चाल साधु जी चलते हैं।

[२]श्री साधु जी ने आर्य सामाजिक जनों में असभ्यतापूर्वक बर्त्ताव कब देखा।

[३]तारीख २१-४-९५ को साढ़े छः बजे के समय श्रीमान् डिप्टी इन्स्पेक्टर पुलिस श्री पण्डित नाथुलाल जी आर्यसमाज में स्वयं पधारकर कह गए थे कि—"साधु ईश्वरानन्द जी श्रीमन् गोपाल जी के मन्दिर में गए हैं। और

लेना आवश्यक होगा। केवल आपके निमन्त्रण-पत्रानुसार हम निर्भयता से आते हैं।

"स्वामी ईश्वरानन्द सरस्वती"
(छावनी—नीमच)

नोट—

उक्त पत्र के उत्तर में जो साधु जी को पत्रोत्तर दिया गया वह इस प्रकार था—

आर्यसमाज भवन
२१-४-१८९५ ई०

श्रीमन् साधु ईश्वरानन्द जी समीपेषु, आपका पत्र अभी साढ़े छः बजे सायंकाल को प्राप्त हुआ। हमारा विज्ञापन केवल आपसे शास्त्रार्थ करने के लिए है। सो यदि आप अपनी सहायता के लिए किन्हीं सत्पुरुषों[1] को अपने साथ लावेंगे उनके विषय में राजकीय प्रबन्ध आप स्वयं कर लेवें। इति॥

आपका—
"रामबिलास मूंदड़ा"
(मन्त्री—आर्यसमाज)

नोट—

उपरोक्त पत्र के उत्तर में श्री साधु जी का निम्नलिखित पत्र आया—

श्री हरिः

श्रीयुत् सभापति वा मन्त्री आर्यसमाज समीपेशु सुप्रिय मित्रगण! पत्र आपका आया उसमें आपने राजकीय प्रबन्ध करने की असम्भावना प्रकट की, शास्त्रार्थ के लिए निमन्त्रण आपकी तरफ से हुआ था। अतः शास्त्रार्थ का सम्पूर्ण प्रबन्ध करना आपको उचित था और है।

(वैशाख कृ०=१२, सम्वत्=१९५२)

आपका—
"स्वामी ईश्वरानन्द सरस्वती"

नोट—

उपरोक्त पत्र के उत्तर में जो पत्र आर्यसमाज की ओर से भेजा गया वह निम्नलिखित था—

श्रीयुत्!

स्वामी ईश्वरानन्द जी समीपेशु महाशय!!

बहुत मनुष्यों का जमघट कर रहे हैं आप लोग जो भी काम करें नीति के साथ करें क्योंकि आप नीतिज्ञ हैं। उधर का दल कुछ और रुख पर दिखाई पड़ रहा है। मेरी समझ में इस काम को यहां के श्रीयुत् मजिस्ट्रेट साहब को इत्तला देकर करना चाहिए। अभी मैं मित्रतापूर्वक आपसे कहता हूं परन्तु बाद में मुझे अपने पद के अनुसार कर्त्तव्य पालन करना उचित होगा"। इतना कहकर उक्त महाशय आर्यसमाज भवन से चले गए।

[1] "सत्पुरुषों" से यहां आशय साफ है कि वे "सत्पुरुष" कौन हो सकते हैं? जिनके लिए राजकीय प्रबन्ध की आवश्यकता पड़ सकती है।

आपका पत्र आया। आपने जो शास्त्रार्थ सम्बन्धी प्रबन्ध के विषय में लिखा है। सो आप जानते हैं कि धर्म का निर्णय शान्तिपूर्वक ही होना सम्भव है। अतः शास्त्रार्थ नियम का एक पत्र आपकी सेवा में भेजा जाता है, कृपा कर इस नियम पत्र पर हस्ताक्षर कर दें। और शास्त्रार्थ करने को पधारें ताकि सभ्यता और शान्तिपूर्वक सत्यासत्य का निर्णय हो जाए। यदि इस नियम पत्र के अनुसार आप विचार करने को प्रस्तुत होंगे तो राजकीय प्रबन्ध की कोई आवश्यकता प्रतीत नहीं होती ॥

हस्ताक्षर—

"रामबिलास मूंदड़ा"

(मन्त्री—आर्यसमाज, नीमच छावनी)

॥ ओ३म् ॥

शास्त्रार्थ के नियम

(१) आज आर्यसमाज वा धर्म सभा मध्य दोनों पक्ष की इच्छानुसार शास्त्रार्थ होगा। (२) इस शास्त्रार्थ में चार वेद संहिता स्वतः प्रमाण और अन्य सब परतः प्रमाण माने जावेंगे। (३) जब किसी मन्त्र के अर्थ पर झगड़ा होगा तो साम, गोपथ, शतपथ ऐतरेय, अष्टाध्यायी, महाभाष्य, निघण्टु और निरुक्त का प्रमाण लिया जावेगा। (४) शास्त्रार्थ में दोनों पक्ष वालों को तीस-तीस मिनट दिये जाएंगे। (५) दोनों पक्ष वाले अपने-अपने आशय को भाषा में लिखेंगे। प्रमाण को संस्कृत में लिखकर सभा को सुनावेंगे। (६) शास्त्रार्थ केवल मूर्त्ति पूजन तथा मृतक श्राद्ध पर होगा सिद्ध करने वालों को जो श्रीयुत् पण्डित ज्वालादत्त जी ने प्रश्न भेजे हैं उन पर विशेष ध्यान देना होगा। (७) जो असभ्यता से बरतेगा वह सभा से बाहर कर दिया जावेगा। (८) दोनों पक्ष के दस-दस प्रतिष्ठित पुरुष शास्त्रार्थ के समय उपस्थित रहेंगे, अधिक नहीं। (९) शास्त्रार्थ की लिखित रूप में तीन कापी होंगी। एक-एक उभय पक्ष की ओर एक प्रबन्धकर्त्ता सभा के पास रहेगी। यह तीन कापी हस्ताक्षरयुक्त होंगी। (१०) मण्डन वा खण्डन करने वाला केवल मन्त्र का ही प्रमाण देगा।

हस्ताक्षर—

"रामबिलास मूंदड़ा"

नोट—

उपरोक्त पत्र और शास्त्रार्थ के नियम दिये पीछे साधु जी का कोई पत्र नहीं आया। श्रीयुत् पण्डित ज्वालादत्त जी जो अजमेर से शास्त्रार्थ करने के लिए श्रीयुत् साधु ईश्वरानन्द जी के आने का एक घण्टे अवसर देखकर उनके न आने पर मूर्त्ति पूजन और मृतक श्राद्ध पर डेढ़ घण्टे व्याख्यान देकर सिद्ध किया कि—वेद में मूर्त्ति पूजन वा मृतक श्राद्ध नहीं है। कितने ही भद्र पुरुष, श्रोतागण उपस्थित थे। वह सुनकर प्रसन्न हुए। उक्त पण्डित जी, दो दिन नीमच में और ठहरे कि—किसी प्रकार साधु जी शास्त्रार्थ नियम वाले परचे पर हस्ताक्षर कर दें। और शास्त्रार्थ करने को उपस्थित हों, परन्तु उक्त साधु जी की ओर से अब तक न कोई पत्र आया न वह शास्त्रार्थ के लिए उद्यत्त हुए।

अब विचारशील पुरुषों के समीप आरम्भ से यह प्रस्ताव निवेदन कर आशा करता हूं कि आप लोग

विचार कीजिए। श्रीयुत् साधु ईश्वरानन्द जी का क्या बर्त्ताव है ? क्या वह अपने व्याख्यानों में कहा करते हैं ? उक्त साधु जी का हाल तो यह है कि—**"हाथी के दांत दिखाने को और खाने को और हैं"** ।

आपका—

"शकुन चन्द"

(उपमन्त्री—आर्यसमाज, नीमच)

धर्म सभा छावनी (नीमच) से प्रार्थना—

इस शास्त्रार्थ विवरण पुस्तिका में मूर्त्ति पूजन पर १० और मृतक श्राद्ध पर ५ प्रश्न छपे हैं। जिनका उत्तर ईश्वरानन्द जी ने तो आज तक नहीं दिया यदि श्रीमती (धर्म सभा—छावनी नीमच) की उत्तर देने की शक्ति हो तो अवश्य देवें। इति ॥

नोट—

सभा की ओर से भी कोई उत्तर नहीं मिला। न बाद में धर्म सभा वालों ने कोई शास्त्रार्थ की चर्चा ही चलाई। इस प्रकार यह कार्यक्रम बिना किसी शास्त्रार्थ हुए ही समाप्त हो गया। सत्यासत्य के जानने के इच्छुक व्यक्तियों के **"मन की मन में ही रह गई"** । अस्तू ॥

—**"सम्पादक"**

उपरोक्त पत्राचार से विशेष मार्गदर्शन—

विपक्ष की ओर से आरम्भ से ही यह प्रयास किया जाता है कि शास्त्रार्थ न हो, और जनता में प्रसिद्ध हो जावे कि आर्य समाजी लोग हार गए या शास्त्रार्थ ही नहीं करना चाहते ! हमें इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिए कि, इस तरह की बात ही न आने पावे ! उसके लिए "निर्णय के तट पर भाग प्रथम में दिए गए **"शास्त्रार्थ सम्बन्धी आवश्यक नियम व निर्देश"** वाले लेख का अवलोकन अवश्य करें।

निवेदक—

"लाजपतराय अग्रवाल"

एक सौदो वां शास्त्रार्थ—

स्थान : लोहानीपुर (बांकीपुर) पटना (बिहार)

दिनांक : ६ जनवरी से १२ जनवरी सन् १८६७ ई०
(शनिवार से मंगलवार तक)

विषय : मूर्त्ति पूजा

सनातन धर्म की ओर से शास्त्रार्थकर्त्ता : १. श्री पण्डित चन्द्रशेखर भट्ट जी
२. श्री पण्डित गोविन्दाचारी जी महाराज एवं अन्य अनेकों विद्वान्

आर्यसमाज की ओर से शास्त्रार्थकर्त्ता : १. श्री पण्डित शिव शङ्कर जी चौधरी, काव्यतीर्थ
२. श्री पण्डित रुद्रदत्त जी शर्मा

आर्यसमाज दानापुर के प्रधान तथा
शास्त्रार्थ के प्रधान : श्री बाबु जनकधारी लाल जी

पौराणिक पक्ष की ओर से प्रधान : श्री राजेन्द्राचारी जी

आर्यसमाज दानापुर के मन्त्री : श्रीयुत् बाबु ठाकुर प्रसाद शाह

नोट—

यह शास्त्रार्थ सामग्री "श्री राजाराम जी जिज्ञासु" स्वाध्याय संस्थान (बदायूं) के द्वारा प्राप्त हुई। हम उनके हृदय से आभारी हैं, उनके माध्यम से यह अप्राप्य शास्त्रार्थ सामग्री प्रकाश में आ सकी।

निवेदक—

"लाजपतराय अग्रवाल"

शास्त्रार्थ से पहले

उस सर्व शक्तिमान जगदीश्वर की क्या ही अपार महिमा है कि जो संसार के किसी पदार्थ को अपने अलौकिक नियम से सदैव एक रस नहीं रहने देता है। प्रत्युत अचिन्तनीय दशाओं में परिणित करता रहता है। वास्तव में इस दृश्य प्रपंच का नाम इस ही कारण जगत् रखा गया है। क्योंकि यह एक अवस्था में स्थिर नहीं रहता वरन् अनेक दशाओं में चलता रहता है,—**"वर्त्तमानेपृषन्महद्वृहजगच्छतृवच्चेत्यनुशासनेन निष्पन्नोजगच्छब्दोगच्छतीत्यर्थंव्यनवित"**। इस हत भाग्य भारतभूमि में जिस समय वैदिक धर्म मार्त्तण्ड अपनी सोलह कलाओं से प्रकाशित था। उस समय पाप और सन्तापरूपी उलूक न मालूम कौन-सी गिरि गह्वर में छिपे पड़े थे ? परन्तु जब से अज्ञान निशा ने यहां के निवासियों को महामोड़ की निद्रा से अचेत करना आरम्भ किया तब से धर्माभासों की चकाचौंध और मिथ्या चमक दमक ने आर्यावर्त्त को अपना निवास-स्थान बना लिया। अब वह उद्दालक और श्वेतकेतु के समान पिता-पुत्री का तथा याज्ञवल्क और गार्गी के सदृश स्त्री-पुरुषों का देवहूति और कपलि के सदृश माता-पुत्र का ब्रह्म विचार स्वप्न में भी कर्णगत नहीं होता है। इस महामोहरूपी निद्रा में सत्य धर्मानुरागी भारत-वासियों को अचेत सोया देखकर अनेक पाखण्डी, गृहस्थों का धन हरण करने की लालसा से स्वार्थ साधन में तत्पर हो गये। और जो देश हितैषी सद्ग्रहस्थों को जगाने वा उनकी रक्षा में तत्पर होते हैं उनको ही यह लोग नास्तिक आदि शब्दों से पुकारने और चिढ़ाने लगते हैं। इस ही कुअवसर में राजर्षि प्रवर बुद्धदेव ने घोर हिंसा प्रवर्त्तक वाम मार्ग का खण्डन करके योग के अनेक अङ्गों का दृढ़तापूर्वक प्रचार किया। परन्तु बुद्धदेव ने उस समय के कुभाष्यों से दूषित हुए वेदों के सत्यार्थ को न समझकर वेदों की भी तर्कवाद से निन्दा की इस कारण सत्यमत के अनेक अङ्ग छिन्न-भिन्न होने लगे और महात्मा बुद्ध के अनुयायी प्रायः हठ और अभिमान में ग्रस्त हो के कुपथगामी होने लगे। इसके अनन्तर स्वामी शंकराचार्य ने बौद्धमत के कुछ अंश का खण्डन करके अद्वैत विज्ञान (Philosophy) का प्रादुर्भाव किया। इस उदाहरण को अनेक लोग जानते हैं कि अत्यन्त पुष्ट काष्ठ वाले शालवृक्ष को काटने से बिना बोये ही (उसके मूल से) आबनूस का वृक्ष और बेंत के वृक्ष के मूल से केले की उत्पत्ति हो जाती है। ऐसे ही शांकर विज्ञान के अनन्तर श्वपचषट्कोप प्रचारित चक्रांकित मत का प्रादुर्भाव इस देश में हो गया। यद्यपि ब्राह्मण वंशज स्वामी रामानुज ने चक्रांकित मत को विज्ञान युक्त करने के अभिप्राय से विशिष्टा द्वैतवाद का प्रादुर्भाव किया परन्तु उस विज्ञान को दाह-क्रिया ने दूषित कर दिया। जगत् में कौन ऐसा बुद्धिमान होगा जो यह शुद्धान्तःकरण के बिना विवाद स्वीकार कर ले कि स्थूल शरीर के दग्ध होने से जीव को मुक्ति प्राप्त हो जायेगी ! अस्तु !!

कुछ काल से बिहार प्रान्त में कतिपय रामानुजीय चक्रांकितों ने आके ऐसा कोलाहल मचाया कि सैकड़ों अबोध किसान इनके जाल में फंस के अपने स्वच्छ शरीर को दगवा के भ्रान्त और पतित हो बैठे। बिहार प्रान्त के ग्रामीण लोगों को अविद्या अन्धकार में फंसे और दुर्दशा के गर्त्त में गिरते देखकर मुस्तफापुर निवासी श्रीयुत् शिवनन्दन मिश्र जी ने ढ़िबरा और हसनपुरा आदि ग्रामों में चक्रांकितों की पोल खोलनी आरम्भ की। और उनके मिथ्या जाल को धर्मरूपी खड्ग से काटना आरम्भ किया। तब तो चक्रांकित लोग घबराये। और एक दिन थोड़े से चक्रांकित ढ़िबरे की सभा में आकर उपस्थित हुए। चक्रांकितों को यही भ्रम था कि इस देश के आर्यसमाजियों में संस्कृत के जानने वाले विद्वान नहीं हैं। अतएव हम अपने वाग्जाल से सबको मोहित कर लेंगे। परन्तु ईश्वर की कृपा से ढ़िबरा ग्राम की सभा में श्रीयुत् पण्डित शिवशंकर चौधरी काव्यतीर्थ, बाबु ब्रह्मानन्द जी, बाबु कृष्णलाल जी उपस्थित थे। अतएव ढ़िबरा ग्राम में चक्रांकितों की खूब पोल खुली। इसके अनन्तर अजवां ग्राम के प्रतिष्ठित

रईस श्रीयुत् बाबु रघुनन्दन प्रसाद सिंह के अनुज श्रीयुत् लाल बाबु के प्रबन्ध से एक सभा हुई। परन्तु उस सभा में कुछ विचार न हुआ, क्योंकि वर्षा के कारण बाबु साहिब के निमन्त्रित पण्डित लोग तथा आर्य पण्डित विज्ञापित समय पर अजवां ग्राम में न पहुंच सके। इसके अनन्तर अगहन मास में फिर ढ़िबरे ग्राम में एक सभा हुई। और इस बार तरेत (पाली) के श्रीयुत् राजेन्द्राचारी जी एक शैव पण्डित को शास्त्रार्थ कराने के निमित्त अपने साथ लेकर आये। और सभा में बड़े आग्रह के साथ खड़े होकर कहा कि जो विचार इस सभा में हो वह केवल संस्कृत भाषा में हो। यद्यपि बाबु ब्रह्मानन्द जी ने उक्ताचारी जी को बहुत समझाया कि संस्कृत में विचार होने से सर्वसाधारण को कुछ लाभ न होगा। परन्तु आचारी जी ने नहीं माना। **(इस शास्त्रार्थ का वृत्तान्त आर्यावर्त्त पत्र—सं० १९५४ के अगहन कृष्ण ११ की फाईल देख लीजिए वहां प्रकाशित' हो चुका है)**। ढ़िबरे की सभा में परास्त होकर राजेन्द्राचारी जी ने सभा के बीच में यह प्रतिज्ञा की थी कि हम दानापुर में सभा करेंगे। परन्तु अपनी प्रतिज्ञा के विरुद्ध बांकीपुर स्टेशन के समीप लुहानीपुर ग्राम में एक बृहद् सभा रची और चार दिन तक मूर्त्ति पूजा विषय पर शास्त्रार्थ होता रहा। जिसका पूरा वृत्तान्त आगे लिखा जाता है। हमको आशा है कि पाठकवृन्द इसको पढ़कर सत्य सिद्धान्त को अवश्य समझ जाएंगे। यह वृत्तान्त इतिहास में "बांकीपुर शास्त्रार्थ" के नाम से प्रसिद्ध है। इतिशम्।।

निवेदक—

"कृष्ण लाल"

प्रधान—आर्यसमाज, बांकीपुर

पटना (बिहार)

टिप्पणी—

'यह **"ढ़िबरे वाले शास्त्रार्थ"** का विस्तृत विवरण जो आर्यावर्त्त के उपरोक्त अंक में छपा है। अगर किसी भी सज्जन को इसका विवरण मिले तो अवश्य भेजें हम उनका आभार प्रकट करते हुए उन्हीं के नाम से अगले भाग में प्रकाशित करा देंगे।

निवेदक—

"लाजपतराय अग्रवाल"

शास्त्रार्थ आरम्भ

पाठकों को बांकीपुर शास्त्रार्थ की भूमिका (शास्त्रार्थ से पहले) के लेख को अवलोकन करने से विदित हो गया होगा कि श्री राजेन्द्राचारी जी ने जिस सभा को दानापुर में करने की प्रतिज्ञा की थी उन्होंने उसका ही अनुष्ठान बाँकीपुर के समीप लोहानीपुर ग्राम में किया सबसे प्रथम आचारी जी की ओर से निम्नलिखित विज्ञापन प्रकाशित कराया गया—

।। विज्ञापनम् ।।

कार्य सम्पादक श्री परमहंस स्वामी राजेन्द्राचारी जी तरेत पाली

सत्ये नास्ति भयं क्वचित्

विदित हो कि स्थान पटना बांकीपुर मुकाम लोहानीपुर बगीचा में सम्वत् १९५४ पौष शुक्ल पूर्णिमा से लेकर मकर संक्रान्ति पर्यन्त पांच दिन सुबह दस बजे से सायं चार बजे तक सनातन धर्म रक्षा की सभा होगी। प्रार्थना है कि साधु, पण्डित, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र कृपा कर इस सभा के उत्साह को वर्हित करें। विषय इस प्रकार होंगे—इस घोर कालिकाल में सनातन धर्म की हानि बहुत हो रही है। इसलिए श्रीमद्भगवद्द्यावतार मूर्त्ति मण्डन पर वेद, धर्मशास्त्र और पुराण की रीती से व्याख्या होगी। इसके सिवाय व्याकरण और न्यायादि के शास्त्र में व्याख्या होगी। श्रीमदम्बिका दत्त व्यास साहित्याचार्य, श्री सुदर्शनाचारी शास्त्री, मथुरा निवासी, श्री पण्डित विश्वेश्वर दत्त शर्मा पटना कालेज के संस्कृत प्रोफेसर, श्री पण्डित सुखवासी त्रिपाठी, श्री पण्डित रामनारायण शर्मा, श्री पण्डित रामप्रकाश शर्मा, श्री पण्डित रामलोचन मिश्र, श्री पण्डित पुष्कर शर्मा, श्री पण्डित चन्द्रदत्त त्रिवेदी, श्री गोविन्दाचारी शास्त्री, श्री धनीराम उपाध्याय, श्री राधावर वाजपेई, श्री पण्डित उमादत्त शर्मा, श्री गणपति मिश्र, श्री हरिवंश दत्त मिश्र, श्री चन्द्रशेखर भट्ट आदि की व्याख्या होगी।

हस्ताक्षर—
"स्वामी राजेन्द्राचारी"
(तरेत—पाली)

नोट—

यह विज्ञापन आर्य लोगों को सभा के कुछ दिन पूर्व ही प्राप्त हुआ, सभा होने के समय से कुछ दिन पूर्व जो राजेन्द्राचारी जी ने आर्यों को सूचित नहीं किया, इसका यही कारण जान पड़ता है कि, पूर्व सूचना भेजने से आर्य सामाजिक विद्वान दूर-दूर से यहां आ जावेगें, फिर उनसे कोई शास्त्रार्थ न कर सकेगा, श्री राजेन्द्राचारी जी अपने पक्ष के पण्डितों को सभा में एकत्रित करने के निमित्त प्रायः एक महीने से भ्रमण कर रहे थे, किन्तु—**"भक्षिते पिलशुने न शान्तोष्याधिः"** इस कहावत के अनुसार आचारी जी का अभीष्ट सिद्ध न हुआ, और उनका विज्ञापन भी मिथ्या हो गया, क्योंकि उनके विज्ञापनानुसार न पण्डित अम्बिका दत्त व्यास के और न श्री सुदर्शनाचारी जी के सभा में दर्शन हुए, क्या राजेन्द्राचारी जी को यह नहीं मालूम है कि, श्री पण्डित अम्बिका दत्त व्यास जी ने

टिप्पणी—

[1]इसका विवरण अगले पृष्ठ संख्या १७१ पर देखिए।

भागलपुर और छपरे में पण्डित रूद्रदत्त जी से शास्त्रार्थ' नहीं किया था, और सन् १८८८ ई० के ब्रह्मोत्सव में (जब भारत धर्म महा मण्डल का वार्षिक अधिवेशन वृन्दावन में हुआ था) तीन दिन तक आर्य पण्डित वृन्दावन में ठहरे रहे थे तो भी सुदर्शनाचारी जी ने उनसे शास्त्रार्थ न किया था, अस्तु ।। राजेन्द्राचारी जी की सभा, विज्ञापनानुसार शुक्रवार से आरम्भ होनी चाहिये थी, परन्तु उस दिन सभा का आरम्भ न हुआ, किन्तु शनिवार प्रतिपदा (माघ कृष्णा-१) से कार्य आरम्भ हुआ । उस दिन श्री पण्डित रूद्रदत्त जी किसी विशेष कार्य के निमित्त दानापुर से बाँकीपुर को गये थे, और वहां सभा के वृत्तान्त को सुनकर श्री पण्डित शिव शंकर चौधरी जी तथा अन्याअन्य पांच-छः आर्य महाशयों के सहित आचारी जी की सभा में पहुँचे, सभा में उस समय टिकारी के एक वृद्ध पण्डित किसी पुराण की कथा कह रहे थे, आर्यों के यथा स्थान बैठने के अनन्तर पौराणिक पण्डित मण्डली के एक महाशय ने संस्कृत भाषा में कहा कि—"अब कथा को बन्द करके शास्त्रार्थ आरम्भ किया जावे । इस पर पं० रूद्रदत्त शर्मा जी ने कहा"—

श्री पण्डित रुद्रदत्त जी शर्मा—

"कथोच्छेदोनकार्य्यः" कथा को बन्द न करना चाहिये, क्योंकि पुराणों में कथोच्छेद को ब्रह्महत्या के समान पाप लिखा है, देखिये—"निद्राभंगः कथोच्छेदोदम्पपत्वोः प्रीतिभेदनं, शिशुमातृविभेदश्च ब्रह्महत्यासमंस्मृतम्" ।। ऐसा देवी भागवत में कहा है ।

श्री पौराणिक पण्डित—

यह सभा कथा सुनने के निमित्त नहीं हुई, वरन् आप लोगों से शास्त्रार्थ करने को हुई है ।

श्री पण्डित शिवशंकर जी काव्यतीर्थ—

हम लोग शास्त्रार्थ करने के निमित्त सदैव कटिबद्ध रहते हैं । आप लोगों में से जिसको जिस (न्याय-व्याकरणादि) शास्त्र में शास्त्रार्थ करना हो वह उसी शास्त्र में शास्त्रार्थ करे ।

श्री पण्डित चन्द्रशेखर जी भट्ट—

यहां मूर्त्ति पूजा विषय पर शास्त्रार्थ होगा, आप लोग सिद्ध करें कि प्रतिमा पूजा न करनी चाहिये, और यह भी कहिये कि आप किन-किन प्रमाणों को अंगीकार करते हैं ?

श्री पण्डित शिवशंकर जी काव्यतीर्थ—

हम लोग शब्द प्रमाण में वेदों को स्वतः प्रमाण और वेदानुकूल ग्रन्थों को परतः प्रमाण मानते हैं ।

श्री पण्डित चन्द्रशेखर जी भट्ट—

आप लोग पुराण ग्रन्थों को क्यों नहीं मानते ?

टिप्पणी—

'उपरोक्त लेख में आये विवरणानुसार, भागलपुर, छपरा, तथा वृन्दावन का विवरण किसी सज्जन के पास हो तो अवश्य भेजें । हम उनका आभार प्रकट करते हुए उनके नाम से ही अगले भाग में प्रकाशित करा देगें । हमारा मुख्य उद्देश्य प्राचीन शास्त्रार्थ सामग्री को प्रकाश में लाने का है ।

निवेदक—

"लाजपतराय अग्रवाल"

श्री पण्डित रुद्रदत्त जी शर्मा—

पुराण ग्रन्थ वेदों के और प्रत्यक्षादि प्रमाणों के प्रतिकूल हैं, इस कारण हम लोग उनको अप्रमाण मानते हैं, क्या आप लोग सम्पूर्ण पुराण ग्रन्थों को वेदानुकूल समझते हैं ?

श्री पण्डित चन्द्रशेखर जी भट्ट—

हां पुराण सब वेदानुकूल हैं।

श्री पण्डित रुद्रदत्त जी शर्मा—

यदि यही बात है तो बतलाइये कि भागवत में राजा सुद्युम्न के स्त्री होने तथा एक महिने तक स्त्री और दूसरे महीने में पुरुष होने की जो कथा लिखी है उसके सत्य होने में कौन सा वेद मन्त्र साक्षी देता है ?

नोट—

इसके उत्तर में मूर्ति पूजकों में से किसी पण्डित ने वैदिक मन्त्र का प्रमाण न दिया, और कोलाहल करने लगे, शान्ति होने के अनन्तर बोले—

श्री पण्डित चन्द्रशेखर जी भट्ट—

आप वेदों में इतिहासों का होना मानते हैं वा नहीं ?

श्री पण्डित रुद्रदत्त जी शर्मा—

आप प्रथम मेरे प्रश्न का उत्तर देकर तब मुझ पर प्रश्न कीजिये, तो मैं उत्तर दूंगा, क्योंकि शास्त्रार्थ की यह रीति नहीं है, कि अपने प्रतिकूल पक्ष का उत्तर न देकर स्वयं प्रश्न किया जावे। (इसे सुनकर पौराणिक मण्डली में सन्नाटा छा गया) ॥

श्री पण्डित चन्द्रशेखर जी भट्ट—

आप लोग जिन पुस्तकों का प्रमाण मानते हैं। उनका नाम लिख दीजिये।

श्री पण्डित शिवशंकर जी काव्यतीर्थ—

"**चत्वारो वेदास्तदधीना अन्ये ग्रन्थाश्चमन्यन्ते**" यह लीजिये, हम लोग चारों वेदों को और उनके अनुकूल अन्य ग्रन्थों को भी मानते हैं।

नोट—

इस वाक्य को पढ़ कर पौराणिक पण्डितों में से कई एक अवैयाकरण पण्डित मानी बोल उठे कि यह संस्कृत अशुद्ध है, उनके उत्तर में श्री पण्डित रुद्रदत्त शर्मा जी ने कहा कि—आप लोग यदि इस संस्कृत को अशुद्ध कहते हैं तो एक पत्र पर लिखिये और व्याकरण में शास्त्रार्थ कीजिये। इसको सुन कर टिकारी के वृद्ध पण्डित जी ने कहा कि यह संस्कृत बहुत शुद्ध है, इसके अनन्तर श्री पण्डित रुद्रदत्त जी के कहने से पौराणिक पण्डित ने भी लिख कर दिया कि—

श्री पण्डित चन्द्रशेखर जी भट्ट—

"**अस्माभिः प्रत्यक्षादी निषट् प्रमाणामिनन्यन्ते शब्द प्रमाणविषये चत्वारोवेदास्तुदनुकूलाग्रन्थाश्च**" अर्थात्

हम लोग प्रत्यक्षादि ६ प्रमाण और शब्द प्रमाण में चारों वेद तथा वेदानुकूल ग्रन्थों को मानते हैं, परन्तु आप लोग सत्यार्थ प्रकाश में लिखे कल्प सूत्रादि को क्यों नहीं मानते ? ।

श्री पण्डित रुद्रदत्त जी शर्मा—

कल्प सूत्र, वेदार्थ के निर्णायक नहीं हैं, इस कारण उनके मानने की शास्त्रार्थ में आवश्यकता ही नहीं है। वेदार्थ के निर्णय करने में निरुक्त और निघण्टु अत्यन्त सहायक हैं, इस कारण उनका प्रमाण मानना आवश्यक है।

श्री पण्डित चन्द्रशेखर जी भट्ट—

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने मीमांसा दर्शन पर वररुचि के भाष्य को प्रमाण माना है, उसे आप क्यों नहीं मानते हैं ?

श्री पण्डित रुद्रदत्त जी शर्मा—

स्वामी दयानन्द जी ने वररुचि का भाष्य नहीं लिखा है, यदि आप दिखा सकें तो हम मान जायेंगे।

नोट—

श्री पण्डित चन्द्रशेखर भट्ट जी ने सत्यार्थ प्रकाश को बहुत लौट-पौट कर देखा, परन्तु कहीं पर भी न दिखा सके, क्योंकि सत्यार्थ प्रकाश में यह बात कहीं भी नहीं लिखी है, इसके अनन्तर श्री पण्डित चन्द्रशेखर जी ने चिढ़ के कहा कि—**"स्वामी दयानन्द जी ने ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका में अशुद्ध संस्कृत भाषा लिखी है"** इस पर श्री पण्डित रुद्रदत्त जी ने इसका यथोचित्त उत्तर देकर बाद में भागवत की अनेक अशुद्धियां दिखलाई, जिसका उत्तर श्री चन्द्र शेखर भट्ट जी कुछ भी न दे सके, प्रत्युत् उनके पक्ष वाले कोलाहल मचाने लगे, उस दिन अन्त में यह बात स्थिर हुई कि आज सन्ध्या हो गई, इस कारण कल १२ बजे से फिर शास्त्रार्थ हो और दोनों पक्ष वाले शास्त्रार्थ के नियम लिखकर सभा में ले आवें। सभा विसर्जन पश्चात् जब पण्डित रुद्रदत्त जी दानापुर को आ रहे थे तो बाँकीपुर रेलवे स्टेशन पर उनको राजेन्द्राचारी जी का भेजा हुआ शास्त्रार्थ का निमन्त्रण पत्र प्राप्त हुआ जो पाठकों के अवलोकनार्थ नीचे प्रकाशित कराया जाता है।

॥ शास्त्रार्थ सम्बन्धी निमन्त्रण पत्र ॥

श्री :

सिद्ध श्री राजेन्द्राचारिस्वामिनो रुद्रदत्त प्रभृतिशर्म्मास्वितोयथोचितम् । चास्तिहनास्तिकानामुक्तिरियम् देवतानाम् प्रतिष्ठा न कर्त्तव्या पुराणस्मृति शास्त्राणिन् मन्तव्यानि आधुनिक कल्पितत्वात् । किन्तु वैदिकम्प्रेयामादिकमेव कर्त्तव्यम् वेदेहि प्रतिष्ठाया अर्थतोनुक्तोरिति तन्नास्ति चेदाग्रहस्तर्हि सप्रमाणं सशिष्यैरागम्यताम् अद्यारभ्य मकरार्क पर्य्यन्त मेकस्मिन्न पिवासरे दर्शनम् एतत्कालपर्य्यन्तं देयमलमति विस्तेरण ॥

ता०—३० पौष सं० १९५४)

हस्ताक्षर—
"स्वामी राजेन्द्राचारी"

नोट—

इसी अभिप्राय का एक पत्र श्रीयुत् बाबु जनकधारी लाल (प्रधान—आर्य समाज, दानापुर) के नाम से भी आया था।

[शास्त्रार्थ का द्वितीय दिन]

नोट—

दूसरे दिन मध्याह्नोत्तर एक बजे से फिर शास्त्रार्थ आरम्भ हुआ, प्रथम मूर्ति पूजक श्री पण्डित चन्द्रशेखर भट्ट जी ने अपने बनाये संस्कृत नियम प्रविष्ठ किये, उनको देखकर श्री पण्डित रुद्रदत्त जी ने कहा कि हमको ये नियम स्वीकृत हैं, नियमों का भावार्थ नीचे दिया जाता है।

नियमों का भावार्थ—

(१) इस शास्त्रार्थ में प्रत्यक्षादि षट् प्रमाण माने जायेंगे और शब्द प्रमाण में चारों वेद और उनके अनुकूल अन्य ग्रन्थ भी माने जागेंगे। (२) वेद मन्त्रों का अर्थ करने में केवल मूल व्याकरण और निरुक्त तथा निघण्टु का ही प्रमाण माना जायेगा। परन्तु किसी भाष्य का प्रमाण न माना जायेगा। (३) प्रत्येक वक्ता संस्कृत में भाषण करेगा, और अपने कथन का भाषार्थ भी सबको सुना देगा। (४) एक समय में एक पण्डित से दूसरे पक्ष का एक ही पण्डित विचार करेगा किसी दूसरे को बीच में बोलने का अधिकार न होगा। (५) इन नियमों से जो विरुद्ध आचरण करेगा उसकी पराजय समझी जायेगी।

—हस्ताक्षर—

"आर्य पक्ष के विद्वान"　　　　"पौराणिक पक्ष के विद्वान"

श्री पण्डित शिवशंकर जी काव्यतीर्थ—

(संस्कृत में) मूर्ति पूजक पण्डित समस्त पुराण ग्रन्थों को वेदानुकूल मानते हैं वा प्रतिकूल ?

श्री पण्डित चन्द्रशेखर जी भट्ट—

हम लोग सभी पुराणों को वेदानुकूल मानते हैं।

श्री पण्डित रुद्रदत्त जी शर्मा—

यदि सब पुराण वेदानुकूल हैं तो बतलाइये कि पद्मपुराण में जो चक्रांकित होने का महात्म्य लिखा है, तथा बृहन्नारदीय पुराण में जो चक्रांकित होने का पाप लिखा है उनमें से कौन सा वेदानुकूल है ? देखिये श्लोक सुनिये पद्म पुराण में कहा है—

"ब्राह्मणः क्षत्रियोवैश्यः, शूद्रोवा यदि वेतरः। विष्णुभक्ति समायुक्तो, ज्ञेयस्सर्वोत्तमञ्चसः ॥१॥
शंखचक्रांकिततनुः, शिर सामं जरीधरः। गोपीचन्दन लिप्तांगो, दृष्टश्चेतत्दधं कुतः ॥२॥

इसके विरुद्ध वृहन्नारदीय पुराण में क्या कहा ? वह भी सुनिये—

तंद्विजं तप्त शंखादि, लिङ्गाकिततनुंहर ! । संभाष्यरौरवयान्ति, यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥१॥
तथाहि तप्तशंखादि, लिङ्गचिन्हतनुर्नरः। स सर्व पातका भोगी, चाडांलो जन्म कोटिभिः ॥२॥

श्री पण्डित चन्द्रशेखर जी भट्ट—

यह पुराणों का परस्पर विरोध जो आप दिखलाते हैं, वह युक्त नहीं है, क्योंकि वेदों में भी परस्पर विरोध है, जैसे—"उदितेजुहुयात्" इसके कहने से अनुदित समय के अग्निहोत्र की निन्दा होती है, और "अनुदितेजुहुयात्"

इसे कहने से सूर्योदय समय के अग्निहोत्र की निन्दा होती है। परन्तु यह दोनों ही वचन सिद्धान्त में माने जाते हैं, और परस्पर विरोध नहीं समझा जाता है, ऐसे ही पुराणों में भी समझिये।

श्री पण्डित रुद्रदत्त जी शर्मा—

वेदों में परस्पर विरोध नहीं है, क्योंकि—**"उदितेजुहुयादनुदितेजुहुयात्समयाध्युषिते जुहुयात्"** इस वचन से अग्निहोत्र की आवश्यकर्त्तव्यता सिद्ध होती है निन्दा नहीं, इसके अतिरिक्त यह भी कहीं नहीं लिखा है कि जो उदित (सूर्योदय के) समय में वा अनुदित समय में अग्निहोत्र करे वह नरकगामी हो, परन्तु पुराण के एक वचन से सिद्ध होता है कि, चक्रांकित मनुष्य नरक में जाता है, और दूसरे से सिद्ध होता है कि—चक्रांकित स्वर्ग में जाता है, इस कारण यह दोनों वचन वेदानुकूल नहीं हो सकते, क्योंकि ये वचन एक-दूसरे के परस्पर विरुद्ध हैं।

श्री पण्डित चन्द्रशेखर जी भट्ट—

यह विषय, तो पांच-सात दिनों में भी समाप्त नहीं होगा।

श्री पण्डित रुद्रदत्त जी शर्मा—

यदि पांच-सात दिन लग कर भी पुराणों का निर्णय हो जाये तो कुछ हानि नहीं है, इसी ही विषय पर शास्त्रार्थ को चलने दीजिये।

श्री पण्डित चन्द्रशेखर जी भट्ट—

इसी झगड़े में काल को टालना उचित नहीं है, इसे छोड़िये।

श्री पण्डित रुद्रदत्त जी शर्मा—

यदि आप लोग अपने मान्य ग्रन्थों को वेदानुकूल सिद्ध नहीं कर सकते हैं और उन्हें वेदानुकूल सिद्ध करना भी नहीं चाहते हैं तो इस विषय को छोड़ दीजिये।

नोट—

इसके अनन्तर श्री पण्डित शिवशंकर काव्यतीर्थ जी ने संस्कृतवाणी में मूर्तिपूजा की अवैदिकता का प्रतिपादन आरम्भ किया, इस अवसर पर (बांकीपुरीय) मूर्तिपूजकों के अग्रगन्ता पूर्ण श्रोता श्री लाला शिवनन्दन सहाय जी पञ्चों में घुसड़पञ्च बनने के निमित्त कुछ कहने को खड़े हुए और उनका उत्तर देने के निमित्त इधर से भी एक सभासद खड़े हुए, परन्तु दोनों ओर के सभ्यों ने बाबू शिवनन्दन सहाय जी की अनाधिकार चेष्टा समझ के उनको बोलने से रोका और नीचे बैठला दिया, तब श्री पण्डित शिवशंकर शर्मा जी के संस्कृत कथन का उत्तर देने के निमित्त श्री पण्डित चन्द्रशेखर भट्ट जी बोलना ही चाहते थे, परन्तु तभी एक हठधर्मी बाबु साहिब झपाके से बोल उठे कि—इधर से भी कोई विद्यार्थी उत्तर देगा, इनकी बात को सुनते ही एक बालक भस्म का त्रिपुण्ड लगाये और पुस्तक हाथ में लिए सभा के मध्य में आ बैठा, और आर्य सिद्धान्तों के विरुद्ध कहने लगा, उसने रामायण का एक श्लोक पढ़ कर कहा कि स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने सत्यार्थ प्रकाश में जो मूर्ति पूजा निषेध का मन्त्र लिखा है वह आधा है, और उसका अर्थ यह है कि—**"ईश्वर की प्रतिमा नहीं है"** परन्तु इस बाल भाषण को मूर्ति-पूजकों ने अपने पक्ष का साधक न समझ करके प्रमाण कोटि में प्रविष्ट न किया, क्योंकि उसने कहा था कि—**"उसकी प्रतिमा नहीं है"** यह बात मूर्ति पूजकों के भी मन्त्रार्थ के विरुद्ध थी। इस कारण मूर्ति पूजकों ने उसके कथन को स्वीकार

न किया, इसही अवसर में श्री पण्डित शिवशंकर जी शर्मा काव्यतीर्थ ने कहा कि—शास्त्रार्थ के नियमों में बाल्मीकिय रामायण का प्रमाण मानना स्वीकृत नहीं हुआ है, इस कारण उस वक्ता ने जो बाल्मीकिय रामायण का श्लोक पढ़ा सौ नियम विरुद्ध हुआ, इसको सुन के एक ऐसा मनुष्य जो सभा में बैठा भी नहीं था, और सभा से बाहर खड़ा हुआ सुनता था, वह बोल उठा कि—"पण्डित शिवशंकर शर्मा जी यहां तो रामायण का प्रमाण नहीं मानते और बाबु गदाधर प्रसाद वकील के यहां उसकी कथा कहते हैं" इसके उत्तर में एक वैसा ही विद्यार्थी बाहर से बोला कि पण्डित जी ने रामायण की कथा कही थी, परन्तु यह नहीं कहा था कि—"**वेदों में मूर्ति पूजा वा अवतार लिखे हैं,**" शास्त्रार्थ की सभा में वेदों का ही प्रमाण मानना स्वीकृत हुआ है। और श्री पण्डित शिवशकर जी शर्मा ने कथा में यह नहीं कहा था कि—"**रामायण ही वेद हैं और रामचन्द्र जी परमेश्वरावतार हैं।**" इसके अनन्तर श्री पण्डित चन्द्रशेखर जी ने बोलना आरम्भ किया—

श्री पण्डित चन्द्रशेखर जी भट्ट—

हम (मूर्तिपूजक) लोग प्रतिमा की पूजा नहीं करते, वरन् शिलावच्छिन्न जो ईश्वर है, उसकी पूजा करते हैं।

श्री पण्डित रुद्रदत्त जी शर्मा—

जो ईश्वर वेद मन्त्रों से सर्वव्यापक सिद्ध है, उसको केवल शिलाव्यापक मानके पूजा करना अज्ञान है।

श्री पण्डित चन्द्रशेखर जी भट्ट—

हम ईश्वर को केवल शिलाव्यापक ही नहीं मानते, किन्तु उसे सर्वव्यापक भी मानते हैं।

श्री पण्डित रुद्रदत्त जी शर्मा—

यदि आप ईश्वर को शिलाव्यापक ही नहीं मानते किन्तु सर्वव्यापक भी मानते हैं, तो मेरी पेन्सिल की पूजा क्यों नहीं करते ? (चारों तरफ हंसी……)

श्री पण्डित चन्द्रशेखर जी भट्ट—

हम लोग सर्वव्यापक परमेश्वर की शिला में वेद मन्त्रों से प्राण प्रतिष्ठा करके तब उसकी पूजा करते हैं। जैसे आकाश सर्व व्यापक है, परन्तु घट के द्वारा परिछिन्न होने से वह घटाकाश कहा जाता है; आप जानते हैं, कि आकाश के बिना कोई वस्तु कहीं नहीं ठहर सकती है, परन्तु केवल आकाश में किसी वस्तु को आप स्थापित् नहीं कर सकते और न केवल घट-घट में किसी अन्नादि वस्तु को रख सकते हैं, वरन् घट विशिष्ट आकाश में ही गेहूँ आदि वस्तु रक्खी जाती है। ऐसे ही केवल जड़-पाषाण की पूजा हो सकती है। किन्तु जड़ विशिष्ट ईश्वर की उपासना करनी उचित है।

श्री पण्डित रुद्रदत्त जी शर्मा—

ईश्वर की प्राण प्रतिष्ठा नहीं हो सकती है, क्योंकि वेदों में ईश्वर को "**अकाय**" और "**अप्राण**" लिखा है, जब कि उसके प्राण ही नहीं हैं तो उसके प्राणों की प्रतिष्ठा कैसे हो सकती हैं ? इसके अतिरिक्त—"**शरीरान्तः सञ्चारीवायुः प्राणः**" शरीर के भीतर घूमने वाली वायु को प्राण कहते हैं, और महर्षि गौतम ने न्याय दर्शन में शरीर का लक्षण यही लिखा है कि—"**चेष्टेन्द्रियार्थाश्रयः शरीरम्**" चेष्टा अर्थात् हस्तपादादि चालनरूप क्रिया, नेत्रादि इन्द्रियां और दर्शनादि इन्द्रियार्थ जिसमें हों उसे शरीर कहते हैं, यदि आप पाषाण में प्राणों की प्रतिष्ठा कर

लेते हैं तो उनमें चेष्टादि क्यों नहीं होती ? इसके अतिरिक्त आपने जो घटाकाश का दृष्टान्त दिया वह भी युक्त नहीं है, क्योंकि प्रथम तो दृष्टान्त के लक्षण इसमें नहीं घटते हैं, देखिये दृष्टान्त किसे कहते हैं ?—"**लौकिकपरीक्षकाणां यस्मिन्नर्थे बुद्धि सभ्यं स दृष्टान्तः**" न्याय दर्शन में कहा है कि—संसारी लोगों की जिस विषय में एक मति हो उसे "**दृष्टान्त**" कहते हैं, अब समझिये कि आकाश से ईश्वर की उपमा देना संसारी जनों की तो क्या शास्त्रकारों को भी अभीष्ट नहीं है। क्योंकि भगवान व्यास ने ही वेदान्त दर्शन में कहा है—"आकाशस्तल्लिङ्गात्" इस सूत्र से ईश्वर में आकाश के दृष्टान्त का खण्डन किया है। यदि आकाश के दृष्टान्त को मान भी लिया जाये तो भी मूर्ति पूजा सिद्ध नहीं होती है। क्योंकि आप लोग (मूर्ति पूजक) मूर्ति में प्राण प्रतिष्ठा करके उसका संहार करते हैं, परन्तु घटाकाश का संहार घट के सद्भाव में नहीं होता है, और आप लोग शालिग्रामादि मूर्ति में प्रतिदिन ईश्वर की प्राणप्रतिष्ठा करते हैं। और प्रतिदिन उसका संहार कर देते हैं। इस कारण आपका दृष्टान्त ठीक नहीं है। इसके अतिरिक्त जब आप ही ईश्वर के प्रतिष्ठापक आप ही प्रतिपालक (भोग लगाने वाले) और आप ही संहारक हुए तो ईश्वर के भी कर्त्ता, हर्त्ता और विधाता आप ही ठहरे (चारों तरफ करतल ध्वनि से आकाश गूंज उठा) मैं पूछता हूँ भाइयों तो फिर उसकी पूजा करने से क्या लाभ है ?

श्री पण्डित चन्द्रशेखर जी भट्ट—

(चकित अवस्था में)…हम (मूर्तिपूजक) लोग ईश्वर के कर्त्ता, हर्त्ता, नहीं बनते, और न ईश्वर की उत्पत्ति वा विनाश होता है, वरन् भक्तों की बुद्धि का ही परिणाम मात्र वा कल्पना मात्र है।

श्री पण्डित रुद्रदत्त जी शर्मा—

(हँसते हुए)…आप स्पष्ट क्यों नहीं कहते कि मूर्ति पूजकों की बुद्धि का भ्रम है, क्योंकि महर्षि पतञ्जली ने योग दर्शन में—"**अनित्याशुचि दुःखानात्म सुनित्यशुचिसुखात्मख्यातिरविद्या**" अर्थात् जड़ को चैतन्य मानना अविद्याजन्य भ्रम लिखा है।

श्री पण्डित चन्द्रशेखर जी भट्ट—

महर्षि पातञ्जल ने योग दर्शन में सूर्यादि जड़ पदार्थों की भी उपासना लिखी है, जैसे—"**भुवन ज्ञानं सूर्य्येसंयमात्**"। अब कहिए इस पर क्या कहना है ?

श्री पण्डित रुद्रदत्त जी शर्मा—

योग शास्त्र में सूर्य में संयम करना लिखा है, सूर्य की उपासना नहीं लिखी है, क्या आप संयम का अर्थ उपासना करते हैं ? महर्षि पतञ्जली ने अपने शास्त्र में उपासना केवल ईश्वर की लिखी है। देखिये—"**तस्य वाचकः प्रणवः। तज्जपस्तदर्थ भावनम्**" अर्थात् ध्यान, धारणा, समाधि के एकत्र होने को संयम कहते हैं, परन्तु इनमें से कोई शब्द उपासनावाचक नहीं है।

श्री पण्डित चन्द्रशेखर जी भट्ट—

(एक दूसरे पण्डित जी से पुस्तक लेते हुए उन्हीं के निर्देश पर बोले)…देखिये यह मन्त्र है अथर्ववेद का सुनिये—"**एह्यश्मानमातिष्ठाश्माभवतु ते तनुः**" यह अथर्ववेद के काण्ड-२, अनुवाक १३ का चौथा मन्त्र है, सुनों शर्मा जी ! मन्त्र में क्या कहा गया है ? ध्यान से सुनों ! मन्त्र में कहा है कि—हे परमेश्वर ! तुम आओ, इस पत्थर

में बैठो, यह पत्थर तुम्हारा शरीर हो। इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि पाषाणमयी प्रतिमा में परमेश्वर की प्राण प्रतिष्ठा होती है।

श्री पण्डित रुद्रदत्त जी शर्मा—

आपने महाराज जी, अथर्व वेद का आधा ही मन्त्र कहा, अथर्ववेद के काण्ड-२ के तेरहवें अनुवाक में ही यह पूरा मन्त्र इस प्रकार लिखा है, देख लें, ध्यान से,—"**एह्यश्मानमतिष्ठा शमाभवतु ते तनुः। कृणवन्तु विश्वेदेवा आयुष्टे शरदश्शतम्** ॥ यह मन्त्र विवाह प्रकरण का है, और इसका अर्थ यह है कि—हे वर ! आ, इस पत्थर पर बैठ, और तेरा शरीर इस पत्थर के सदृश्य दृढ़ हो, यदि चन्द्रशेखर भट्ट जी का अर्थ ठीक माना जाये तो इतने दोष आवेंगे कि प्रथम तो सर्वव्यापक का आह्वान करना, अर्थात् जो परमेश्वर पत्थर में पहले से ही विद्यमान था उसको फिर बुलाना, उन्मत्त प्रलाप के समान है, द्वितीय अशरीरी की शरीर कल्पना असत्य है, फिर जो परमात्मा आद्यन्तरहित और नित्य है, "**सदकारणवन्नित्यम**" है उसकी एक सौ वर्ष की आयु बताना भी वेद और शास्त्रों से तथा युक्ति के भी विरुद्ध है। अतएव इस मन्त्र से मूर्ति पूजा सिद्ध नहीं होती। वरन् यह मन्त्र विवाह विषय का ही है।

श्री पण्डित चन्द्रशेखर जी भट्ट—

विवाह में वर को शिलारोहण नहीं कराया जाता है। वरन् कन्या को शिलारोहण कराया जाता है।

श्री पण्डित रुद्रदत्त जी शर्मा—

इस विषय में हमको कुछ भी आग्रह नहीं है, कि वर को ही शिलारोहण कराया जाता है या नहीं, यदि कन्या का ही शिलारोहण अभीष्ट है तो यह मन्त्र उस ही विषय का है, परन्तु मूर्ति पूजा विषय का नहीं है, क्योंकि वेदानुकूल ग्रन्थों में लिखा है कि—"**दिव्योह्यमूर्त्त पुरूषस्स वाह्याभ्यन्तरोह्यजः। अप्राणोह्यमनाः शुभ्रोह्यक्षरात्परतः परः**" तथा इसके अतिरिक्त यजुर्वेद में भी लिखा है—"**सपर्य्यगाच्छुक्रमकायमव्रणम्** ···" इत्यादि अर्थात् परमेश्वर सर्वव्यापक, शरीर रहित और अखण्ड है, जड़ की उपासना करने का यजुर्वेद के अध्याय ४० में निषेध भी लिखा है देखिये—"**अन्धन्तमःप्रविशन्ति येऽसम्भूति मुपासते। ततोभूय इव ते तमोयऽसंभूत्याᳪरताः**" अर्थात् जो लोग कारण रुप प्रकृति की उपासना करते हैं वह घोर अन्धकार में पड़ते हैं, और जो कार्य्य रूप पृथिवीजड़ पदार्थों की उपासना करते हैं, वह उनसे भी अधिक घोर अन्धकार में पड़ते हैं, आप लोगों के मान्य गीता ग्रन्थ में भी लिखा है—"**भूतानि यान्तिभूते ज्यायान्तिमद्याजिनोपिमाम्**" जो पृथिव्यादि भूतों की पूजा करते हैं वह उन्हीं को प्राप्त होते हैं।

श्री पण्डित चन्द्रशेखर जी भट्ट—

"**अन्धन्तमः प्रविशन्ति**·····" यह यजुर्वेद का मन्त्र मूर्ति पूजा का निषेध करने वाला नहीं है, वरन् इस मन्त्र के पहले भाग में जो असम्भूति पद है उसका अर्थ ईश्वर है, क्योंकि—"**नास्ति सम्भूतिर्जन्म यस्यासावसम्भूतिः**" नहीं है, जन्म जिसका अभिप्राय यह हुआ कि केवल ईश्वर की उपासना न करनी चाहिये, और न केवल कार्य्यरुप जड़ पदार्थ की ही उपासना करनी चाहिये और जो केवल एक की उपासना करता है वह घोर अन्धकार में पड़ता है।

श्री पण्डित रुद्रदत्त जी शर्मा –

आपका यह कहना कि केवल ईश्वर की उपासना करने से घोर अन्धकार में मनुष्य पड़ता है, और यजुर्वेद के उक्त मन्त्र में "**असम्भूति**" पद से ईश्वर का ग्रहण होता है। अयुक्त है, क्योंकि उस ही यजुर्वेद में लिखा है कि—"**वेदाहमेतं पुरुषंमहान्तमादित्यवर्णंतमसः परस्तात् । तमेवविदित्वाति मृत्युमेतिनान्यःपन्थाविद्यतेऽयनाय**" अर्थात् एक परमात्मा को जानने से ही मुक्ति होती है, मुक्ति पाने के लिए और कोई दूसरा उपाय नहीं है, इस मन्त्र से विशिष्ट की उपासना का निषेध स्पष्ट सिद्ध हो गया ॥ इति द्वितीय दिवस ॥

[शास्त्रार्थ का तीसरा दिन]

नोट —

तीसरे दिन आर्य सभासद वेदादि सर्वमान्य ग्रन्थों को लेकर फिर सभा स्थान में पहुँचे और मध्याह्नोत्तर एक बजे से शास्त्रार्थ पुनः उसी विषय पर आरम्भ हुआ।

श्री पण्डित चन्द्रशेखर जी भट्ट—

(संस्कृत में)···कल की सभा में श्री पण्डित रुद्रदत्त जी ने जो यजुर्वेद के चालिसवें अध्याय का मन्त्र कहा था कि—"**अन्धन्तमः प्रविशन्ति**······" उससे मूर्ति पूजा का निषेध सिद्ध होता है, उसी पर आज फिर विचार होना चाहिये।

श्री पण्डित रुद्रदत्त जी शर्मा—

मैंने उक्त मन्त्र को आनुषङ्गिक कहा था, अतएव उस पर अब विचार करना व्यर्थ है, किन्तु—"**एह्यश्मान मातिष्ठ**······" यह जो अथर्ववेदीय मन्त्र शास्त्रार्थ का प्रधान विषय है, उस पर ही विचार होना चाहिये।

नोट—

थोड़ी देर तक इस ही विषय पर वादानुवाद होता रहा, पश्चात मूर्तिपूजकों के अधिक दुराग्रह को देखकर बाबु जनकधारी लाल आदि की सम्मति से श्री पण्डित रुद्रदत्त जी ने कहा—

श्री पण्डित रुद्रदत्त जी शर्मा—

अच्छा मैंने यजुर्वेद के जिस मन्त्र को कल आनुषङ्गिक कहा था उसही पर विचार आरम्भ कीजिए।

नोट—

श्री पण्डित चन्द्रशेखर भट्ट जी ने फिर वही विशिष्टोपासन अर्थ प्रकाशित किया, जिसके उत्तर में पण्डित रुद्रदत्त जी ने कहा—

श्री पण्डित रुद्रदत्त जी शर्मा—

आप स्वयं विशिष्टोपासन का खण्डन करते हैं क्योंकि दूसरे मन्त्र का आप यही अर्थ करते हैं कि—"**अन्यदाहुस्सम्भवा दन्यदाहुरसम्भवादितिशुश्रमधीराणां येनस्तद्विचचक्षिरे**" अर्थात् सम्भव की उपासना का और फल

है। और असम्भव की उपासना का दूसरा ही फल है, यदि विशिष्ट की उपासना वेद विहित होती तो उसका एक फल भी वेद में कहीं पर अवश्य लिखा होता।

श्री पण्डित चन्द्रशेखर जी भट्ट—

यजुर्वेद के चालिसवें अध्याय के इसी प्रकरण में जो तीसरा मन्त्र हैं—यथा—"**सम्भूतिंच विनाशं च यस्तद्वेदोभयंसह विनाशेनमृत्युंतीर्त्वा सम्भूत्यामृतमश्नुते**" अर्थात् जो सम्भूति उत्पत्ति रहित ईश्वर और विनाशशीला प्रकृति को जानकर दोनों की उपासना करता है. वह मृत्यु को तर के मुक्ति को प्राप्त होता है।

नोट—

श्री पण्डित चन्द्रशेखर जी भट्ट ने उपरोक्त वाक्यों को आगे सुनाने के लिए अपनी जेब से लिखा हुआ पर्चा निकाला, और पढ़ने लगे, यह पर्चा वह घर से लिख कर तैयार करके लाये थे। इस पर श्री पण्डित रुद्रदत्त जी ने कहा कि—शास्त्रार्थ के नियमों में यह नहीं लिखा है कि कोई लिख कर लावे और सभा में आके पढ़ दे, इतनी बात को सुनते ही श्री पण्डित चन्द्रशेखर जी गुस्से से लाल-पीले हो गए, और उन लिखे हुए कागजों को हाथ से फेंक कर संस्कृत में अपने पक्ष का प्रतिपादन करने लगे। पश्चात श्री पण्डित रुद्रदत्त जी ने कहा—

श्री पण्डित रुद्रदत्त जी शर्मा—

यजुर्वेदीय अध्याय ३० के उक्त प्रकरणस्थ तीसरे मन्त्र में उपासना नहीं लिखी है, वरन् उसमें लिखा है कि—"**यस्तद्वुभयं वेद**" जो उन दोनों को जानता है, जानने को उपासना नहीं कहते हैं, इसके अतिरिक्त उस मन्त्र में जो यह लिखा है कि—"**विनाशेन मृत्युंतीर्त्वा**" इसमें सह के योग में जो अप्रधान में तृतीया विभक्ति हुई है, वह सूचित करती है कि, कार्यरूप प्रकृति जो अप्रधान है, उसकी उपासना से मृत्यु अर्थात् दुख प्राप्त होता है। मुझे खेद के साथ कहना पड़ रहा है कि श्री पण्डित चन्द्रशेखर जी भट्ट ने यह भी नहीं कहा कि विशिष्ट का क्या अभिप्राय है? अर्थात् विशिष्ट शब्द से वह किसका ग्रहण करते हैं?

श्री पण्डित चन्द्रशेखर जी भट्ट—

विशिष्ट शब्द से हम उसही अर्थ का ग्रहण करते हैं, जिसका वेदान्त दर्शन के—"**प्रकृतिश्च प्रतिज्ञा दृष्टान्तानुपरोधात्**" इस सूत्र से महर्षि व्यास ने ग्रहण किया है।

श्री पण्डित रुद्रदत्त जी शर्मा—

वेदान्त दर्शन के उस सूत्र में तो विशिष्ट का वर्णन नहीं है। वरन् उसका अभिप्राय यही है कि एक कारण के ज्ञान से तज्जन्य सम्पूर्ण कार्यों का ज्ञान हो जाता है, जैसे एक घड़े के ज्ञान से सम्पूर्ण घड़ों का ज्ञान हो जाता है, परन्तु यह नियम उपादान कारण में ही चल सकता है, निमित्त कारण में नहीं आप यह भी बतलाइए कि ईश्वर को आप जगत का उपादान कारण मानते हैं वा निमित्त कारण?

श्री पण्डित चन्द्रशेखर जी भट्ट—

वेदान्त दर्शन के "**जन्माद्यस्ययतः**" इस सूत्र से सिद्ध होता है कि, परमात्मा जगत का "**अभिन्ननिमित्तोपादान**" कारण है।

श्री पण्डित रुद्रदत्त जी शर्मा—

(हंसते हुए……) यदि यही आपका सिद्धान्त है तब तो विशिष्टोपासन के साथ आपका मूर्तिपूजन (साध्य) भी उड़ गया, क्योंकि जब ब्रह्म के अतिरिक्त कोई दूसरा है ही नहीं, तब उपास्य और उपासक भाव भी सिद्ध नहीं हो सकता है, इसके अतिरिक्त वेदान्त दर्शन में "**एकात्म्यवाद**" में यह भी लिखा है—"**अंशोनानाव्य-पदेशादन्यथा चापि दाशकितवादित्वमधीयत एके**" कि जीव ब्रह्म से अत्यन्त तुच्छ है यदि जीव और ब्रह्म को एक रूप माना जाए तो ब्रह्म में दाशता और धूर्त्तता आदि दोष लगेंगे।

श्री पण्डित चन्द्रशेखर जी भट्ट—

भाइयो यह सूत्र वैसा नहीं है जैसा कि श्री पण्डित रुद्रदत्त शर्मा जी ने कहा है, बल्कि इसका पाठ इस प्रकार है कि—"**अंशोनानाव्यपदेशादन्यथा दाशक्तिवादित्वमधीयतएके**"।

नोट—

थोड़ी देर इस उपरोक्त मन्त्र पर ही वार्ता चलती रही, और श्री पण्डित राम नारायण जी, जो बिहार नेशनल कालेज के प्रोफेसर वहां सभा में विद्यमान थे, वह पुस्तक में इसे खोजते रहे, परन्तु काफी खोजने के बाद भी जब श्री चन्द्रशेखर जी भट्ट द्वारा कहा गया पाठ पुस्तक में न निकला तब वह चुप होकर बैठ गये, श्री भट्ट जी की इस प्रकार से परास्तता और मूर्ति पूजा के पक्ष को ध्वंस्त होते देखकर श्री पण्डित गोविन्दाचारी जी ने बीच में ही खड़े होकर कहा—

श्री पण्डित गोविन्दाचारी जी महाराज—

हमारा यह मत नहीं है कि, ब्रह्म ही जगत का उपादान कारण हैं, और न विशिष्टवाद का यह अभिप्राय है।

श्री पण्डित रुद्रदत्त जी शर्मा—

(हंसते हुए……) अच्छा अब आप ही बोलिए विशिष्ट किसे कहते हैं ?

श्री पण्डित गोविन्दाचारी जी महाराज—

हम लोग ईश्वर प्रकृति में विशेष्य-विशेषण भाव मानते हैं।

श्री पण्डित रुद्रदत्त जी शर्मा—

क्या ! विशेष्य विशेषण भाव ?

श्री पण्डित गोविन्दाचारी जी महाराज—

नहीं, अधाराधेय भाव।

श्री पण्डित रुद्रदत्त जी शर्मा—

क्या अधाराधेयभाव सम्बन्ध ?

श्री पण्डित गोविन्दाचारी जी महाराज—

नहीं उपास्योपासकभाव सम्बन्ध ।

श्री पण्डित रुद्रदत्त जी शर्मा—

आश्चर्य का स्थान है कि आप किसी शब्द को समझ कर नहीं बोलते और झट एक सिद्धान्त का छोड़ कर दूसरे पर चले जाते हैं, आपको शब्दों का और सिद्धान्त का ज्ञान नहीं है' तो आप शास्त्रार्थ की सभा में क्यों आए हैं ?

श्री पण्डित गोविन्दाचारी जी महाराज—

(क्रोध में भरे हुए बड़े अभिमान के साथ)···हम नैयायिक हैं, अतएव जगत के समवायी, असमवायी और निमित्त यह तीन कारण मानते हैं ।

श्री पण्डित रुद्रदत्त जी शर्मा—

(नवीन न्याय की रीति से समवायी कारणादि के लक्षण कह कर उसके पश्चात बोले)···कि जैसे घट के प्रति कपालद्वय संयोग को नैयायिक समवायी कारण मानते हैं, इस प्रकार तब सृष्टि का समवायी कारण कौन है ? यदि त्रिस्त्रेणु आदि को मानियेगा तो मूर्तियों के भी वही कारण हुए और प्रतिमादि के निमित्त कारण जो संगतराश आदि हैं, वह उनमें ईश्वर के कर्ता नहीं हो सकते, अतएव आपका विशिष्टोपासन न्याय विरुद्ध है ।

नोट—

पण्डित गोविन्दाचारी जी महाराज, श्री पण्डित रुद्रदत्त शर्मा जी की बातों का कुछ भी उत्तर न दे सके, किंकर्त्तव्यविमूढ़ से होते हुए प्रकरण विरुद्ध भाषा में बोलने लगे, तब, श्री बाबु ब्रह्मानन्द जी ने श्री पण्डित रुद्रदत्त शर्मा जी से कहा कि अब आप चुप रहिए मैं इनसे बात करूंगा । पं० रुद्रदत्त जी ने कहा—ठीक है, आप कर लीजिए ।

श्री बाबू ब्रह्मानन्द जी—

आचारी जी महाराज ! प्रथम आप यह बतलाइये कि आपका मत क्या है ?

श्री पण्डित गोविन्दाचारी जी महाराज—

हम जीव, प्रकृति और ईश्वर को अनादि मानते हैं ।

श्री बाबू ब्रह्मानन्द जी—

यही हम लोग मानते हैं, परन्तु गोंसाई तुलसीदास जी ने रामायण में लिखा है कि—**"ईश्वर अंश जीव अविनाशी"** उसका क्या हाल होगा ?

श्री पण्डित गोविन्दाचारी जी महाराज—

हम रामायण को नहीं मानते हैं, और यह कथन भी तुलसीदास का मिथ्या है, (चारों तरफ······तालियां ही तालियां···तथा रामायणियों का मुख सूख गया) ।

श्री बाबू ब्रह्मानन्द जी—

हम भी इसे नहीं मानते, अब आप अपने मत को आगे कहिए ?

श्री पण्डित गोविन्दाचारी जी महाराज—

(झेंपते हुए बोले) ईश्वर (तत्त्व) पांच प्रकार का है, १. पर, २. व्यूह, ३. विभव, ४. अन्तर्य्यामी, ५. अर्चा, जो सदा वैकुण्ठ में निवास करता है उसे "**पर**" कहते हैं, तथा प्रद्युम्न और अनिरुद्धादि "**व्यूह**" कहलाते हैं, एवं मतस्यादि अवतार "**विभव**" कहलाते हैं, तथा "**अन्तर्यामी**" वह है जो सबके हृदय में साक्षी होकर रहता है, तथा "**अर्चा**" वह है जिसकी पूजा की जाती है । अर्चा के तीन भेद हैं, एक "**स्वयम्**" जैसे जगन्नाथ और रंगादिक, दूसरा "**सिंह**" जो महात्माओं के द्वारा स्थापित की जाती है वह मूर्ति, तीसरा "**मानुष**" जो मनुष्यों के द्वारा स्थापित की जाती है ।

श्री बाबू ब्रह्मानन्द जी—

जब परमात्मा को सर्वगत मानते हैं, तब उसका आवाहन (अन्य जगह से बुलाना) नहीं हो सकता है इत्यादि ।

नोट—

श्री बाबू ब्रह्मानन्द जी की बात को सुनकर श्री पं० गोविन्दाचारी जी महाराज ने चुप्पी साध ली, और कोई भी उत्तर न दिया परन्तु एक महाशय जो अपने को बी० ए० पास बताते थे वे बोल उठे कि—

पौराणिक पक्ष की ओर से श्री बी० ए० महाशय—

सज्जनों मैं साईन्स (विज्ञान) से तीन मिनट में मूर्त्तिपूजा को सिद्ध किए देता हूं, देखो, जैसे विद्युत सर्वत्र व्यापक है, परन्तु अपनी कार्य सिद्धि के लिए किसी यन्त्र से विद्युत को एक स्थान में जाहिर कर लेते हैं, ऐसे ही सर्व व्यापक परमात्मा की उपासना करने के निमित्त वेद मन्त्रों से उसको प्रतिष्ठित कर लेते हैं ।

नोट—

इस अपूर्व युक्ति को सुन कर श्रीयुत् पण्डित धनुर्धारी तिवारी जी बी० ए० (छात्र) ने उत्तर दिया कि—

श्री पण्डित धनुर्धारी तिवारी जी बी० ए०—

प्रथम तो विद्युत के सर्व व्यापक होने में ही शंका है, तथापि आपके कथन को सत्य मान लेने पर भी आपका आशय सिद्ध नहीं होता । विद्युत क्या है ? इस विषय में अनेक कल्पनाएं की गई हैं, परन्तु कोई भी निभ्रान्त सत्य नहीं मानी गई है, सबसे प्रसिद्ध यह है कि विद्युत दो तरह के विरुद्ध गुण रखने वाले अत्यन्त तरल पदार्थ "FLUIDS" है, इन दोनों में से एक के अधिक और दूसरे के न्यून होने से विद्युत प्रकट होती है, परन्तु ईश्वर ऐसा पदार्थ नहीं है जो न्यूनाधिक अथवा, मोटा, पतला हो सके, वह सर्वत्र एक रस व्यापक है । उसका न्यूनाधिक होना ही असम्भव है, उपसंहार में विद्युत का प्रकट होना, आकर्षण विकर्षण, प्रकाश, शब्द, उष्णतादि गुणों से प्रत्यक्ष होता है, परन्तु मूर्ति में ईश्वर के प्रतिष्ठित कर देने के पश्चात कोई भी परिवर्तन नहीं देखा जाता है ।

नोट—

इसके अनन्तर फिर गोविन्दाचारी जी महाराज ने अपने मत की वही पूर्व कही हुई बातें पुनः दोहराई, परन्तु बाबू ब्रह्मानन्द जी जब उनका उत्तर देने को खड़े हुए तब सभी मूर्ति पूजकों ने एक स्वर से कहा कि—अब शास्त्रार्थ का समय व्यतीत हो गया है, यह उत्तर अब कल दीजियेगा, आज की पराजय के चिन्ह सभी मूर्तिपूजकों के चेहरों पर साफ दिखाई दे रहे थे। इस प्रकार यह तृतीय दिन का शास्त्रार्थ समाप्त हुआ।

[शास्त्रार्थ का चौथा दिन]

नोट—

आज चौथे दिन मंगलवार को फिर आर्यवृन्द अपने वेदादि पुस्तकों के सहित सभा में उपस्थित हुए परन्तु उस दिन मूर्तिपूजक दल के प्रधान **"श्री पण्डित चन्द्रशेखर जी भट्ट"** ठीक समय पर न आए, अतएव प्रायः आधे घण्टे तक उनका मार्गावलोकन करके विचार आरम्भ किया गया।

श्री पण्डित रुद्रदत्त जी शर्मा—

कल जो गोविन्दाचारी जी ने अपने मत का प्रतिपादन भाषा में किया था उसका खण्डन बाबू ब्रह्मानन्द जी को करना चाहिए।

श्रीयुत् पण्डित राजेन्द्राचारी जी—

आज की सभा में यह नियम किया गया है कि, भाषा में बिल्कुल न बोला जाये, केवल संस्कृत में ही शास्त्रार्थ हो।

श्री पण्डित रुद्रदत्त जी शर्मा—

प्रथम यह नियम स्वीकृत हो चुका है कि—**"शास्त्रार्थ संस्कृत में होगा और वक्ता लोग अपने-अपने संस्कृत कथन का भाषानुवाद भी श्रोताओं (सभा) में सुना देंगे।"** तब आज आप उस नियम को क्यों तोड़ते हैं ?

श्रीयुत् पण्डित राजेन्द्राचारी जी—

नहीं, आज केवल संस्कृत में ही शास्त्रार्थ होगा, भाषा में किसी को नहीं बोलना होगा।

नोट—

सज्जनों श्री राजेन्द्राचारी जी ने गत दिनों के शास्त्रार्थ के भाषानुवाद सुनाने से समझ लिया था कि—अनेक लोगों का मन मूर्तिपूजा से फिर गया है। इस कारण आज यह हट किया कि—केवल संस्कृत में ही शास्त्रार्थ हो, क्योंकि आज भाषा में शास्त्रार्थ होने से मूर्तिपूजा की रही सही मिट्टी भी खराब हो जायेगी। इस हठ और दुराग्रह की स्थिति को देख कर श्री पण्डित रुद्रदत्त जी ने कहा कि—ठीक है हमें आपकी शर्त भी स्वीकार है, तथा श्री बाबू

ब्रह्मानन्द जी को चुप रहने का आदेश देकर स्वयं संस्कृत' में बोलने खड़े हो गये।

श्री पण्डित रुद्रदत्त जी शर्मा—

श्री गोविन्दाचारी जी अब कहें कि उन्होंने कल जो ईश्वर के पांच भेद कहे थे उनमें वेद का कोई प्रमाण है वा नहीं ?

श्री पण्डित गोविन्दाचारी जी महाराज—

"ब्राह्मणो द्वे रूपे मूर्त्तंचामूर्त्तंचेतिश्रुतेः"।

श्री पण्डित रुद्रदत्त जी शर्मा—

यह कौन से वेद की श्रुति है ? यहां चारों वेद विद्यमान हैं, इनमें से इस वाक्य को दिखलाइये।

नोट—

श्री पण्डित रुद्रदत्त शर्मा जी की इन बातों को सुनकर श्री पण्डित गोविन्दाचारी जी महाराज का मुख बन्द हो गया, और पाव घण्टे (पन्द्रह मिनट) तक चुप बैठे रहे, इसके अनन्तर अपने एक साथी से कहा कि, डेरे पर से हमारी पुस्तकें ले आओ। जब वह मनुष्य कुछ हाथ के लिखे कागज और दो-एक अट्ट-पट्ट पुस्तक ले आया, तब पण्डित गोविन्दाचारी जी महाराज उनमें ढूढ़नें लगे, परन्तु वहाँ "इति श्रुतेः" के अतिरिक्त कुछ लिखा ही नहीं था, अतएव वह फिर भी चुप रहे तब पण्डित रुद्रदत्त जी शर्मा ने कहा कि—आचारी जी यदि आप ईश्वर के पाँच भेद वेद से सिद्ध नहीं कर सकते हैं, तो हठ छोड़ कर कह दीजिये कि हमारा मत वैदिक नहीं है, इतने में ही श्री पण्डित चन्द्रशेखर भट्ट जी भी सभा में आ गये, और चाहते थे कि बीच में बोल कर पण्डित गोविन्दाचारी जी को संकट से छुड़ावें परन्तु श्री पण्डित रुद्रदत्त जी ने कहा कि जब तक श्री पण्डित गोविन्दाचारी जी पराजय "हार" स्वीकार न करेंगे तब तक हम दूसरे किसी भी विद्वान को न बोलने देंगे अतएव पण्डित चन्द्रशेखर भट्ट हँसने लगे, और फिर चुप हो गये,……सभा में पांच मिनट तक मौन रहा……फिर पण्डित रुद्रदत्त जी ने मौन को खण्डित करते हुए पण्डित गोविन्दाचारी जी से कहा कि—दिखलाइये उस "ब्राह्मणो द्वे रूपे……" वाले वाक्य को वह वेदों में कहां अंकित है ? आज आगे बात तभी चलेगी जब आप पहले यह बतायेंगे, श्री पण्डित गोविन्दाचारी जी घबराकर चुप हो गये, अन्य मूर्तिपूजक विद्वानों में भी खलबली सी मच गयी, इतने में पण्डित चन्द्रशेखर जी ने पण्डित गोविन्दाचारी जी के हाथ में एक पुस्तक देते हुए कहा कि देखिये—इस वेद वाक्य से मूर्ति पूजा सिद्ध होती है, पण्डित गोविन्दाचारी जी

टिप्पणी—

'मूल कापी में भाषार्थ ही छपा था, संस्कृत नहीं थी, इसलिए जैसा मूल कापी में विद्यमान था वैसे का वैसा ही पाठ प्रकाशित कर दिया गया है।

नोट—

इस शास्त्रार्थ में कई बातें गड़बड़ हैं, जैसे, "लिखित होना, तथा संस्कृत में होना," आदि-आदि इसलिए जब कहीं भी शास्त्रार्थ हो उसके लिए श्री अमर स्वामी जी महाराज कृत "शास्त्रार्थ के सामान्य नियम" जो निर्णय के तट पर (प्रथम भाग) में प्रकाशित हैं, उनका अवलोकन करें।

निवेदक—

"लाजपतराय अग्रवाल"

के शरीर में चेतना की लहर सी दौड़ गयी और उन्होंने पण्डित चन्द्रशेखर जी के बताये उस वाक्य को ब्रह्मास्त्र मान कर चलाने के लिए खड़े हो गये और कहने लगे।

श्री पण्डित गोविन्दाचारी जी महाराज—

(पुस्तक पढ़ते हुए)···देखिये ! देखिये !! हम वेद वाक्य सुनाते हैं, पण्डित जी बड़ा बल दे रहे थे, वेद वाक्य सुनाओ, तो सुनो—**"देव प्रतिमा हसन्ति गायन्ति रूदन्ति"** यह षडविंश ब्राह्मण के अद्‌भुत शान्ति प्रकरण का मन्त्र है ! क्यों पण्डित जी बस ! अब तो आपकी तसल्ली हो गयी ? (सभा में चारों तरफ सन्नाटा······) ॥

श्री पण्डित रुद्रदत्त जी शर्मा—

(गर्ज कर बोलते हुए)···प्रथम तो आप यह कहिये कि—**"वेदों में मूर्तिपूजा नहीं है"** द्वितीय इस ब्राह्मण वाक्य में जो आपने अभी बोल कर जनता को धोखा देना चाहा है इसमें यह नहीं लिखा कि—**"प्रतिमाः पूज्यन्ते"** यहाँ परमूर्त्तिपूजा का विचार होता है, न कि हँसने और गाने का ! यह ब्राह्मण वाक्य कठपुतलियों के नाच-गान को सिद्ध करता है, न कि मूर्त्ति पूजा को, यदि यह **"रोगवृद्धयादि"** विषयक है तो आजकल महामारी (प्लेग) फैल रही है, अब आपकी प्रनिमा क्यों नहीं नाचती और गाती है ? हममें या आप में से कोई बताये कि कहीं किसी ने देखा हो कि अमुक स्थान में पाषाण की प्रतिमा नाच रही हो। इसके अलावा नाचनादि क्रिया चैतन्य में होती है, और पाषाणादि की प्रतिमा जड़ होती है, इस कारण उनमें हँसना आदि क्रिया नहीं रह सकती है।

नोट—

पण्डित गोविन्दाचारी जी इन प्रश्नों को सुनकर फिर घबड़ाये और फिर जोश रहित हो गये। उनकी इस दशा को देखकर पण्डित चन्द्रशेखर भट्ट जी ने फिर एक पुस्तक उनके हाथ में देकर कहा कि—देखिये यजुर्वेद के १३वें अध्याय के ४१वें मन्त्र से मूर्ति पूजा सिद्ध होती है। पश्चात्त गौविन्दाचारी जी कहने लगे—

श्री पण्डित गोविन्दाचारी जी महाराज—

(पुस्तक हाथ में लेकर पढ़ते हुए)···मैं यह यजुर्वेद का मन्त्र पढ़ रहा हूं सुनिये—जिससे मूर्ति पूजा सिद्ध होती है—**"आदित्यं गर्भं पयसा समङ्‌धि, सहस्त्रस्य प्रतिमां विश्वरूपम्। परिवृङ्‌धि हरसामाभिमंस्थाः, शतायुषं कृणुहि चीयमानः"**। इसमें **"आदित्य गर्भ······"** का अभिप्राय **"सुवर्णमयी"** है और **"सहस्त्र"** शब्द का अर्थ **"ईश्वर"** है।

श्री पण्डित रुद्रदत्त जी शर्मा—

सहस्त्र शब्द से ईश्वर का ग्रहण होता है, इसमें क्या प्रमाण है ?

श्री पण्डित गोविन्दाचारी जी महाराज—

सभी शब्द ईश्वर के वाचक हैं।

श्री पण्डित रुद्रदत्त जी शर्मा—

क्या चाण्डाल, उपानत् और अनीश्वर शब्द भी ईश्वर के ही वाचक हैं ?

श्री पण्डित गोविन्ददाचारी जी महाराज—

हाँ अनीश्वर शब्द भी ईश्वरवाचक है। (चारों तरफ पण्डितमण्डली एवं श्रोताओं में हँसी ही हँसी)॥

श्री पण्डित रुद्रदत्त जी शर्मा—

यदि सब शब्द ईश्वर के वाचक हैं तो आपकी कही श्रुति का यह अर्थ नहीं हो सकता।

श्री पण्डित गोविन्दाचारी जी महाराज—

(चकित होकर) नहीं! नहीं!! प्रत्येक शब्द के दो अर्थ होते हैं, एक "**गौण**" तथा दूसरा "**प्रधान**" उनमें ईश्वरार्थ प्रधान और अन्यार्थ गौण होता है।

श्री पण्डित रुद्रदत्त जी शर्मा—

इन अर्थों का नियामक क्या है?

श्री पण्डित गोविन्दाचारी जी महाराज

देखिये यह श्रुति है, यथा "**सहस्त्र शीर्षा पुरुषः**......" इसमें ईश्वर का नाम "**सहस्त्र**" लिखा है।

श्री पण्डित रुद्रदत्त जी शर्मा—

इसमें तो महाराज जी सहस्त्र उसका नाम नहीं बल्कि सहस्त्र उसके शिर हैं, ये लिखा है न कि उसका नाम! आप लोग अपने अर्थ में कुछ भी प्रमाण न दे सके जिससे यह सिद्ध होता कि—"**मूर्ति पूजा वेदोक्ति है।**" किन्तु अब निश्चय रूप से यह सिद्ध हो गया है कि—"**मूर्ति पूजा वेदोक्त नहीं है**" धर्म सभाओं के परम् मान्य श्री आचार्य महीधर ने भी इस श्रुति का अर्थ सोने की मूर्ति नहीं किया है। और न सहस्त्र शब्द का अर्थ ईश्वर ही किया है।

श्री पण्डित गोविन्दाचारी जी महाराज—

हम महीधर के भाष्य को नहीं मानते।

नोट—

जिस समय श्री गोविन्दाचारी जी से सहस्त्र शब्द के अर्थ वाले विषय में कहा-सुनी हो रही थी, अर्थात् गोविन्दाचारी जी सहस्त्र शब्द का अर्थ ईश्वर करते थे, और पण्डित रुद्रदत्त जी सहस्त्र शब्द का अर्थ अनन्त व असंख्य आदि करते थे, तथा गौविन्दाचारी जी से उनके किये अर्थ में निरुक्त एवं निघण्टु का प्रमाण मांग रहे थे, और गोविन्दाचारी जी यथोचित प्रमाण देने में असमर्थ हो के अण्ड-बण्ड बक रहे थे, और घबड़ा-घबड़ा कर अपने सहायक पण्डितों की ओर देख रहे थे, उसी समय में श्री पण्डित चन्द्रशेखर भट्ट (जो पहले श्री गोविन्दाचारी जी की सहायता के निमित्त नियम विरुद्ध बीच-बीच में बोलना चाहते थे, परन्तु श्री पण्डित रुद्रदत्त जी, श्री राजेन्द्राचारी जी के उस ही दिन के किये हुए नियमानुसार नहीं बोलने देते थे) बीच में उठकर हठात् बोलने लगे—

श्री पण्डित चन्दशेखर जी भट्ट—

यह देखिये स्वामी दयानन्द अपने भाष्य में क्या कहते हैं?

श्री पण्डित रुद्रदत्त जी शर्मा—

(गर्जकर भट्ट जी को बीच में ही रोकते हुए) आप यह शास्त्रार्थ के नियमों को तोड़ रहे हैं। दूसरे हम

इस समय दयानन्द जी के भाष्य-वाष्य को नहीं सुनेंगे वा मानेंगे क्योंकि वह शास्त्रार्थ का विषय नहीं है, इस समय तो—"**सहस्त्र शब्द के अर्थ का पचड़ा पड़ा हुआ है**" और आप ऊपर से ये भाष्य और ले आये, आप बीच-बीच में नियम विरुद्ध कार्य कर रहे हैं, पण्डित गोविन्दाचारी जी को ही बोलने दिया जावे। मैं कहता हूं कि—श्री गोविन्दाचारी जी अपने किये अर्थ का निरुक्त और निघण्टु में प्रमाण दिखलावें।

नोट—

अब तो मूर्ति पूजक पण्डितों के होशोहवास उड़ गये, और उलटे ताली बजा-बजा कर कहने लगे—"**दयानन्द के भाष्य को नहीं मानते**" मूर्ति पूजकों की इस चालाकी को देखकर "**श्री बाबू ठाकुर प्रसाद शाह**" (मन्त्री आर्य समाज—दानापुर) जी ने दोनों भुजा उठाकर उच्च स्वर में कहा—

श्री बाबू ठाकुर प्रसाद जी शाह—

हम लोग ऋषि दयानन्द के भाष्य का प्रत्येक अक्षर मानते हैं, परन्तु यहां उसका कुछ प्रयोजन नहीं था। अब मूर्ति पूजक लोग हार कर, मात्र इसी बहाने से मैदान छोड़कर अगर भागना चाहते हैं तो अलग बात है। (बस चारो ओर हल्ला मचने लगा)॥

नोट—

इसके अनन्तर बाबू जनकधारीलाल जी, श्री राजेन्द्राचारी जी के पास गये और कहा कि आप लोग व्यर्थ कोलाहल क्यों मचाते हैं ? गोविन्दाचारी जी के कहे हुए यजुर्वेद के अध्याय १३ के मन्त्र ४१ से मूर्त्ति पूजा सिद्ध नहीं हुई, अब आगे शास्त्रार्थ को बढ़ाइये अर्थात् आपके पण्डित और कोई प्रमाण दें। इसको सुनकर राजेन्द्राचारी जी बोले कि—"**अब हम लोग शास्त्रार्थ न करेंगे**" आर्य्यों ने कहा कि आपने ही हम लोगों को शास्त्रार्थ के निमित्त बुलाया था, और अब आप लोग ही शास्त्रार्थ से हटते हैं तो हम लोग भी जाते हैं। इस प्रकार यह अन्तिम चौथे दिन का शास्त्रार्थ भी समाप्त हुआ॥

उपसंहार—

उपसंहार में हम पाठकों के ध्यान को उस निमन्त्रण पत्र की ओर आकर्षित करते हैं जो पण्डित रुद्रदत्त जी शर्मा और बाबु जनकधारी लाल जी के पास, राजेन्द्राचारी जी सभा सम्पादक की ओर से भेजा गया था, उस पर लिखा था कि—"**नास्तिक**" (अभिप्राय-आर्य्य सभासदों से है) लोगों का कथन है कि—(१) देवताओं की प्रतिष्ठा न करनी चाहिये। (२) पुराण और स्मृतियों को न मानना चाहिये, (३) केवल वैदिक कर्म यज्ञादिक ही करने चाहिये, (४) यदि इसमें आग्रह हो तो पांच दिन में से एक दिन भी आईये। इस पत्र के अतिरिक्त, सभा के विज्ञापन में भी यह लिखा था कि—"**भगवद्दशावतार और मूर्त्ति मण्डन पर व्याख्या होगी**" आर्य पण्डित तथा आर्य सभासद बराबर चार दिन तक सभा में गये, और शास्त्रार्थ किया, किन्तु मूर्त्तिपूजक किसी विषय को भी वेद और शास्त्रों से सिद्ध न कर सके, पुराणों के विषय में शास्त्रार्थ करना अस्वीकार किया, मूर्त्तिपूजा के विषय में, जिन मन्त्रों का प्रमाण दिया, उनसे प्रतिमा पूजा सिद्ध न हुई, वैदिक कर्म यज्ञादि का खण्डन कुछ भी न कर सके, अवैदिक, कण्ठी—तिलक तथा तप्त मुद्रादि धारण पर शास्त्रार्थ करना अंगीकार न किया, अतएव "**मूर्त्ति पूजकों की बांकीपुर के शास्त्रार्थ में पूरी पराजय सिद्ध हुई**" किन्तु बांकीपुर के किसी अबोध बालक ने एक मिथ्या आडम्बर भरी क्षुद्र पुस्तिका में छपाया है कि—"**बांकीपुर के शास्त्रार्थ में आर्य लोग हार गये**" यदि वह सत्यवादी हो तो बतावे कि किस वेद मन्त्र के स्पष्टार्थ से मूर्त्तिपूजकों ने पाषाण पूजा को सिद्ध किया ? स्मरण रखिये कि परमात्मा की कृपा से सत्य सनातन वैदिक धर्म की दिनों-दिन उन्नति होती जाती है, अब मिथ्या भाषण से कोई भी किसी को भ्रम में नहीं डाल सकता है, वरन् मिथ्या भाषण से जगत में अपना ही उपहास कराता है। अलमति विस्तेरण॥ इस प्रकार यह "**बांकीपुर (पटना) बिहार**" में हुए शास्त्रार्थ का विवरण समाप्त होता है। □

एकसौतीनवां शास्त्रार्थ—

स्थान : सुजानगढ़ (जिला चुरू) राजस्थान

दिनांक : ६-६-१६२६ ई०

विषय : परमेश्वर निराकार है या साकार ?

आर्यसमाज की ओर से शास्त्रार्थकर्त्ता : श्री पण्डित मंगलदत्त जी शास्त्री

सहायक : श्री स्वामी लक्ष्मणानन्द जी

सनातन धर्म की ओर से शास्त्रार्थकर्त्ता : श्री पण्डित कालूराम जी शास्त्री

सनातन धर्म सभा के मन्त्री : श्री महाशय बोदूराम जी शर्मा

आर्यसमाज के प्रधान : श्री पण्डित दिलसुखराय जी वैद्य

आर्यसमाज के मन्त्री : श्री पण्डित गणपति जी मिश्र

नोट—

यह शास्त्रार्थ सर्वप्रथम, अप्रैल सन् १६३० ई० में **"वैदिक यन्त्रालय अजमेर"** द्वारा प्रकाशित हुआ था। उसके बाद अब प्रकाशित किया गया है। इस शास्त्रार्थ की प्रतिलिपि जो मन्त्री आर्यसमाज सुजानगढ़ (राजस्थान) द्वारा सुरक्षित थी। उसे **"श्री देवीदत्त धर्मचन्द सोनी, आथुणा बाजार—सुजानगढ़"** ने उपलब्ध कराया तथा जो पौराणिक विद्वान श्री पण्डित कालूराम जी शास्त्री द्वारा लिखित व प्रकाशित प्रतिलिपि थी उसे **"श्री राजाराम जी जिज्ञासु, स्वाध्याय संस्थान, बदायूं (उ० प्र०)"** ने उपलब्ध कराया, हम इन दोनों ही महानुभावों के कृतज्ञ हैं, जिनके प्रयास से यह लुप्त सामग्री प्रकाश में आ सकी।

निवेदक—

"लाजपतराय अग्रवाल"

शास्त्रार्थ से पहले

३०-८-२९ को पण्डित कालूराम शास्त्री ने पहला पत्र इस आशय का भेजा—"**मैंने सुना है कि तुम्हारी इच्छा विवाद करने की है। यदि ऐसी बात है तो मैं भी उद्यत हूं।**" परन्तु विवाद तो लिपिबद्ध होगा। राजकीय न्यायाध्यक्ष ही अध्यक्ष होगा। हस्ताक्षरों सहित पत्र दो। पत्र आने पर विषय भेजूंगा। नहीं तो मौन रहना अच्छा दीखता है। कालूराम जी का ऐसा पत्र पाते ही १-९-२९ को आर्यसमाज ने उत्तर भेज दिया कि—आर्यसमाज शास्त्रार्थ करने के लिए उद्यत है, आर्यसमाज की ओर से उसके अधिकारी जिम्मेवार होंगे और पण्डित कालूराम जी की ओर से उनकी सभा के मन्त्री जिम्मेवार होंगे, तो आर्य विद्वानों का प्रबन्ध करके फिर शास्त्रार्थ के नियम निर्धारित हो सकते हैं। इस पर आर्यसमाज सुजानगढ़ ने पण्डितों का प्रबन्ध किया और तारीख २-९-२९ को एक पत्र द्वारा सनातन धर्म सभा के पण्डितों को अगले दिन आ जाने की सूचना दे दी गई। और लिख दिया कि पण्डित कालूराम जी को शास्त्रार्थ के लिए ठहरा लिया जावे। जिसके उत्तर में २-९-२९ को ही महाशय "**बोदूराम जी शर्मा**" मन्त्री सनातन धर्म सभा का उत्तर आया कि हमारा उद्देश्य यह नहीं था। आप यदि शान्तिपूर्वक शास्त्री जी के पत्रानुसार शास्त्रार्थ करना चाहें तो कल १० बजे तक सूचित करें।

इसके उत्तर में ३-९-२९ को आर्यसमाज की ओर से उत्तर दिया गया कि—"**शास्त्री जी रंगमंच पर खड़े होकर वेदों से कई विषयों को सिद्ध करने के लिए इनाम रखते थे।**" और जनता भी शास्त्रार्थ के लिए आग्रह कर रही है और आर्यसमाज सत्य के ग्रहण और असत्य के त्याग के लिए सदा उद्यत है। शास्त्रार्थ आधे दिन में नहीं होता। इसमें कई दिन लगेंगे और विषय भी बहुत से हैं। और सम्भवतः नियमों की प्रति आपके पास भी हो तो नियम निश्चय करने के लिए किसी समय भी सूचना दें।

इसके उत्तर में ३-९-२९ को सनातन धर्म सभा के मन्त्री का पत्र इस आशय का मिला कि—जब आपके पण्डित आवें उनको साथ में लेकर आप हमारे यहां पधारें। शास्त्रार्थ के नियम बन जावेंगे। विषय भी निश्चय हो जावेंगे। यहां पर मामला स्टेट का है। शास्त्रार्थ की मंजूरी के लिए निवेदन-पत्र देना होगा।

इसके प्रत्युत्तर में आर्यसमाज की ओर से ४-९-२९ का पत्र इस आशय का गया कि—आप यदि हमें केवल नियम निश्चय के लिए ही बुलाते हैं तो स्थान और समय की सूचना दें। यदि कोई विघ्न बाधा तथा कलह आपकी ओर से हुआ तो उसके जिम्मेदार आप होंगे। अन्यथा आप अपने विद्वानों सहित यहां आ जाइए। नियम निश्चय के लिए उभयपक्ष की सुविधा का समय रखिए।

इसके उत्तर में मन्त्री सनातन धर्म ने अपने पर जिम्मेदारी लेकर श्री बिहारी जी के मन्दिर में ही बुलाया और ४-९-२९ को ही नीचे लिखे रूप से १३ नियम तय हुए—

(१) यह शास्त्रार्थ वर्णव्यवस्था, ईश्वरस्वरूप, विधवा-विवाह और दयानन्द की अवैदिकता, इन ४ विषयों पर होगा।

(२) यह शास्त्रार्थ तारीख ६ से आरम्भ होकर ९ सितम्बर, १९२९ को समाप्त होगा। पानी बरसने

की तारीखें या किसी दूसरे कारण विशेष से रुके हुए दिन गणना में न होंगे।

(३) तारीख ६ को "**ईश्वरस्वरूप**", तथा तारीख ७ को "**वर्णव्यवस्था**" एवं तारीख ८ को "**विधवा-विवाह**" और तारीख ६ को "**दयानन्द मत की अवैदिकता**" पर शास्त्रार्थ होगा।

(४) प्रत्येक शास्त्रार्थ ८ बजे रात्रि को आरम्भ होकर ११ बजे रात्रि में ही समाप्त कर दिया जावेगा।

(५) ईश्वरस्वरूप और वर्णव्यवस्था इन दो विषयों वाले शास्त्रार्थों में पूर्वपक्ष आर्यसमाज का और उत्तर-पक्ष सनातन धर्म का होगा। विधवा-विवाह और दयानन्द मत की अवैदिकता वाले इन दोनों शास्त्रार्थों में पूर्वपक्ष सनातन धर्म का और उत्तरपक्ष आर्यसमाज का होगा।

(६) शास्त्रार्थ में प्रथम पूर्वपक्ष कर्त्ता अपने पूर्वपक्ष को २२ मिनट में लिखकर ८ मिनट में सुना देगा पश्चात् उत्तरदाता भी इसी भांति २२ मिनट में लिखकर ८ मिनट में सुना देगा। इसी पद्धति से ३ घण्टे तक नित्य शास्त्रार्थ होगा।

(७) प्रत्येक वक्ता को सभ्यता का ध्यान रखना होगा। कटुशब्द कहने पर दूसरे पक्ष से क्षमा माँगनी होगी। क्षमा न मांगने पर पराजय समझी जाएगी।

(८) यह शास्त्रार्थ चतुष्ट्य (चारों शास्त्रार्थ) संस्कृत में लिखकर भाषा में समझाने होंगे।

(६) शास्त्रार्थ की तीन कापियें (प्रतियां) लिखी जावेंगी पहली प्रति सभापति को दी जावेगी, दूसरी प्रति विपक्षी को और तीसरी प्रति अपने पास रक्खी जावेगी।

(१०) इन कापियों पर शास्त्रार्थकर्त्ता और सभापति दोनों के हस्ताक्षर होंगे।

(११) इस शास्त्रार्थ को छपवाने का हक दोनों पक्षों को पृथक्-पृथक् होगा, जिसकी इच्छा हो छपवाए; जिसकी इच्छा न हो न छपवाए।

(१२) इस शास्त्रार्थ में कोई मनुष्य किसी पक्ष का भी क्यों न हो, ताली, जयशब्द एवं हंसी अपमान-जनक शब्द या इशारा न कर सकेगा। ऐसा करने वाले को वहां से हटा देने का अधिकार सभापति का होगा।

(१३) सनातन धर्म की ओर से पुराण, न्याय-मीमांसा और याज्ञवल्क्य स्मृति में कही हुई १४ विद्याओं को प्रमाण रूप में माना जावेगा।

उपरोक्त नियमों के साथ-साथ तारीख ५-६-२६ को आर्यसमाज की ओर से शास्त्रार्थ के लिए स्थान निश्चय करने का पत्र दिया गया। इसके उत्तर में सनातन धर्म सभा का पत्र आनाकानी का आया और फिर नियम तय कर लेने की बात उठाई और इसके लिए ३ बजे दिन के समय श्री बिहारी जी के मन्दिर में बुलाया। आर्य-समाज की तरफ से ६-६-२६ का पत्र इस आशय का गया कि आप जिसे चाहें सभापति बनावें, नियम निश्चित हो चुके हैं। ८ से ११ बजे तक रात्रि को ईश्वरस्वरूप विषय पर शास्त्रार्थ करने के लिए चोपड़ाबाजार में जा पहुंचेंगे। इसके उत्तर में सनातन धर्म के मन्त्री "**श्री बोदूराम जी**" का पत्र आया—"**यहां मामला स्टेट का है, इसलिए**

दोनों पक्ष नाजिम साहिब से मंजूरी ले लें। सरकारी आफीसर को अध्यक्ष नियत कर लें, सनातन धर्म वाले किसी बात के जिम्मेवार नहीं हैं।" कालूराम जी के लेखानुसार आप शास्त्रार्थ करें। इसके उत्तर में आर्यसमाज की तरफ से स्पष्ट तौर पर लिख दिया कि कालूराम जी ने स्वयं शास्त्रार्थ के लिए ललकारा था। हमने उसको स्वीकार किया। वे स्वयं राजपुरुष के पास जावें, हाथ पैर जोड़ें, सभापति को बुला लावें। ८ बजे रात्रि को चोपड़ा बाजार में हम तो आ जाएंगे। हम अपने आदमियों के जिम्मेवार हैं। आप अपने आदमियों के जिम्मेवार होवेंगे। तब यदि आपके शास्त्री जी घर में बैठे रहे तो जनता आपसे आप ढोल की पोल जान जाएगी।

इस पर यह समाचार भी मिला कि पण्डित कालूराम जी शास्त्रार्थ से भाग जाना चाहते हैं। उसी समय एक पत्र कालूराम जी को भी दिया कि क्या आप शास्त्रार्थ से भाग जाना चाहते हैं? इत्यादि। बस फिर क्या था। ६-६-२६ को सनातन धर्म सभा की तरफ से पत्र आया कि आज हमारा स्टेज सेठ सुखदेव जी जाजोदिया के नोहरे में लगा है। वहां आप ७॥ बजे रात को सभा में शास्त्रार्थ के लिए आवें।

७-६-२६ को आर्यसमाज ने पत्र द्वारा पूछा कि आप बिना प्रमाणपत्र किसी से वार्तालाप न करें। नियमों के निश्चय न होने से शास्त्रार्थ नहीं किया। क्या सभापति मिल गए? उनका नाम लिखें। सभापति दोनों पक्षों की सम्मति से निश्चित होना चाहिए और पत्र में जिम्मेवारी को भी स्पष्ट नहीं किया। इसका उत्तर आया कि तहसीलदार साहब और सुपरिन्टेन्डेन्ट साहब पुलिस सभापति होंगे तथा शास्त्रार्थ कालूराम जी करेंगे। जिम्मेवारी हमारी होगी। शास्त्रार्थ ३ घण्टे होगा। जब आप कहेंगे तभी शुरू कर दिया जावेगा।

इस पर आर्यसमाज ने उक्त सभापतियों के हस्ताक्षर सहित स्वीकृति-पत्र मांगा। परन्तु इधर ८-६-२६ की शाम को आर्यसमाज के आदमी नियम तय करने के लिए पहुंचे तो पहले ही दिन दूसरी ओर के लोगों ने जोश में आकर **"असभ्यता का व्यवहार"** करना शुरू कर दिया। स्वामी जी और पण्डित जी पर कई बेजा आक्रमण भी हुए, कई लोग तो लाठी लिए खड़े थे। वे असभ्यतापूर्वक गन्दे शब्द बोल-बोलकर अपना परिचय दे रहे थे, परन्तु आर्यसमाज की तरफ से कोई बेजा हरकत नहीं हुई। बड़ी शान्ति से सब कुछ सहा गया। यदि आर्यसमाज शान्ति धारण न करता तो मार-पीट तक की भी नौबत पहुंचती।

इस पर एक पत्र ६-६-२६ को डिस्ट्रिक्ट सुपरिन्टेन्डेन्ट साहब पुलिस को लिखा गया कि वे शान्ति का प्रबन्ध करें और सनातन धर्म को भी पुनः इसी प्रकार शान्ति रखने का पत्र लिखा गया और आखिर ६-६-२६ को लेखबद्ध शास्त्रार्थ आरम्भ हुआ आगे आप उस शास्त्रार्थ का अध्ययन कर लाभ उठाईये।

"मन्त्री"
(आर्य समाज—सुजानगढ़)

शास्त्रार्थ आरम्भ

नोट—

श्री पण्डित मंगलदत्त जी आर्यसमाज की ओर से थे और श्री पण्डित कालूराम जी शास्त्री दूसरी ओर से थे। प्रथम पत्र पण्डित मंगलदत्त जी ने लिखकर सुनाया—

आर्यसमाज की ओर से श्री पण्डित मंगलदत्त जी शास्त्री—

"स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः।" इति श्लोकं रटन्तो भारतकुलावतंसाः सुजानगढ़निवासिनः, ईश्वरस्वरूपं तत्र सच्चिदानन्दात्मकं निराकारनित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभावकञ्च। तत्र श्रुति :—

(१) "सपर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणम्"। इत्यादि यजु० अ० ४०।११। नैवैकः परमाणुरपि तद्व्याप्तया विनाऽस्ति अत्र अकायमिति स्थूलसूक्ष्मकारणशरीरत्रयसम्बन्धरहितम्। (२) "अपाणिपादोजवनो गृहीताः पश्चत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः"। (३) "अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययं तथा रसं नित्यमगन्धवच्च यत्"। (४) "क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः"। (५) "न स्थानतोऽपि परस्योभयं लिङ्गं सर्वत्र हि"। (६) ब्रह्म किं रूपि चारूपि भवेन्नीरूपमेव तत्। द्विविधश्रुतिसद्भावाद् ब्रह्म स्यादुभयात्मकम् ॥१॥ नीरूपमेव वेदान्तैः प्रतिपाद्यमपूर्वतः। रूपं त्वनूद्यते भ्रान्तमुभयत्वं विरुध्यते" ॥२॥ (७) असङ्गोयं पुरुषः। नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभावः। सांख्ये। इत्थं प्रदर्शितञ्च मया वेदादिसच्छास्त्रप्रमाणप्रतिपादितमीश्वरस्वरूपम्। अधुना पौराणिकानां ईश्वरस्वरूपाणि दर्शयामि तानि हेयानि। तद्यथा—

(१) राधाकृष्णस्वरूपं—"प्रत्यङ्गेनैव प्रत्यङ्गं अङ्गेनाङ्गं समाश्लिषत्।" अनेन स्वरूपेण "धर्मसंस्थापनार्थाय" इत्यादि वाक्यस्य व्याघातः। (२) मोहिनीस्वरूपे शिवस्य जितेन्द्रियत्वं न दृश्यते। (३) शिवस्वरूपस्य वेश्यागमनम्। (४) त्रिदेवस्वरूपदर्शनम्। तथा च "लिङ्गहस्तः स्वयंरुद्रः" इत्यादि अश्लीलरूपवर्णनम्। (५) ब्रह्मस्वरूपस्य सतीमुखदर्शनेन वीर्यपात इत्यादि जुगुप्सा जनकवर्णनम्। (६) शिवकृतो दुर्गादिदेवीभ्योऽण्डभक्षणोपदेशो न समीचीनः। व्याख्या तु तत्र तत्र कथायां द्रष्टव्या।

६-६-२६ —मंगलदत्तः

उपरोक्त पत्र का भावार्थ—

"स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः।" अपने धर्म में मरना अच्छा दूसरे का धर्म बड़ा भयानक है। इस श्लोक की रट लगाने वाले हे भारतकुलभूषण सुजानगढ़ वासियो! ईश्वर का स्वरूप सत्‌चित्, आनन्दस्वरूप, निराकार, नित्य, शुद्ध, बुद्ध और मुक्तस्वभाव है। इसमें श्रुति-प्रमाण है। जैसे—

(१) "'सपर्यगात्'...शुक्रमकायमव्रणम्"। इस वेदवाक्य में लिखा है कि "एक भी परमाणु ईश्वर की सत्ता से खाली नहीं है। सर्वत्र ईश्वर व्यापक है।" इसमें "अकायम्" शब्द से ईश्वर को काया रहित कहा है। अर्थात् परमेश्वर स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीर इन तीनों प्रकार के शरीरों के सम्बन्ध में रहित है।

(२) दूसरा प्रमाण यह है—उपनिषद् कहती है कि—"**अपाणिपादो जवनो गृहीतः पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः**"। उस ईश्वर के न हाथ हैं और न पांव, तो भी उसने समस्त ब्रह्माण्ड को वश में कर रखा है। वह बिना आंख के देखता है और बिना कान के सुनता है।

(३) तीसरा प्रमाण योगसूत्र का है कि—"**क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः**"॥ **योगसूत्र**॥ अर्थात् क्लेश, कर्म, कर्मफल और आशय आदि से वह परमेश्वर छू भी नहीं गया है। वह विशेष पुरुष परमेश्वर इन देहधारियों से भिन्न है।

(४) उपनिषद् कहती है कि—"**अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययं तथारसं नित्यमगन्धवच्चयत्**"। अर्थात् वह ईश्वर शब्द, स्पर्श, रूप से रहित, कभी नाश न होने वाला, रस और गन्ध से रहित और नित्य है।

(५) पांचवां प्रमाण—"**न स्थानतोपि परस्य उभयं लिङ्गं सर्वत्र हि**"। **वेदान्तसूत्र** ३।२।११॥ अर्थात् पृथिवी आदि की उपाधि लगकर भी परमेश्वर साकार और निराकार दोनों प्रकार का नहीं हो सकता, क्योंकि सर्वत्र उपनिषदों में और वेदों में उसका निराकार "**अशब्दमस्पर्शम्**"। आदि लिखा गया है।

(६) छठा प्रमाण—वेदान्त में उक्त सूत्र पर दो कारिकाएं हैं। (१) **ब्रह्म किं रूपि चारूपि भवेन्नीरूपमेव तत्। द्विविधश्रुतिसद्भावात् ब्रह्म स्यादुभयात्मकम्॥ नीरूपमेव वेदान्तैः प्रतिपाद्यमपंपूतः। रूपं त्वनूद्यते भ्रान्तमुभयत्वं विरुध्यते**॥ अर्थात् ब्रह्म क्या रूप वाला है या रूपरहित है ? यह संशय है। सिद्धान्त यह है कि ब्रह्म नीरूप है। उसका कोई रूप नहीं है। पूर्वपक्ष यह है कि ब्रह्म दोनों प्रकार का है नीरूप भी और रूपरहित भी है, क्योंकि श्रुति दोनों प्रकार की उपलब्ध होती है। वेदान्त (श्रुति) के वचनों द्वारा रूपरहित ब्रह्म का ही प्रतिपादन किया गया है। जो रूप कहीं-कहीं कहा भी गया है वह भ्रमयुक्त रूप का अनुवाद है। एक ही ब्रह्म में रूप का होना और न होना दोनों घट नहीं सकते।

(७) सातवां प्रमाण—सांख्यसूत्र में लिखा है कि—"**असङ्गोह्ययं पुरुषः स च नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभावः**"। अर्थात् वह पुरुष परमेश्वर संङ्गरहित है। वह नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्तस्वभाव वाला है। इस प्रकार हमने वेद आदि सत्-प्रमाणों से बतलाए गए ईश्वर के स्वरूप को दिखलाया है। अब पौराणिकों के ईश्वर के रूपों को भी दिखलाता हूं वे सब छोड़ देने योग्य हेच हैं।

राधाकृष्ण का स्वरूप पुराणों में

(१) "**प्रत्यङ्गेनैव प्रत्यङ्गमङ्गेनाङ्गं समाश्लिषत्**"। अर्थात् प्रत्येक अङ्ग से प्रत्येक अङ्ग और अंग से अंग लिपट गया। ऐसे स्वरूप से जो कृष्ण ने गीता में लिखा है कि—"**धर्मसंस्थापनार्थाय**···" अर्थात् धर्म की मर्यादा का स्थापन करने के लिए मैं आता हूं यह विपरीत पड़ता है। (२) मोहिनी का रूप देखकर शिवजी भी जितेन्द्रिय नहीं रहे। (३) शिवस्वरूप में वे वेश्या के पास गए। (४) तीन-तीन देवों के रूप हैं। पुराणों में बड़ा अश्लील लिखा है—"**लिङ्गहस्तः स्वयंरुद्रः**"। हाथ में इन्द्रिय लिए रुद्र थे। ऐसा फोश वर्णन किया है। (५) ब्रह्मा का सती को देख वीर्यपात हो गया यह कैसा गन्दा लिखा है। (६) शिव ने दुर्गा आदि को अण्डा खा जाने का उपदेश किया। इन सबकी विस्तार से कथा तो पुराणों में ही जहां-जहां कथा आई हैं, स्वयं देख लें।

—मंगलदत्त

नोट—

इसके उत्तर में पण्डित कालूराम शास्त्री जी का जो लिखित लेख है वह नीचे दिया जाता है—

सनातन धर्म की ओर से श्री पण्डित कालूराम जी शास्त्री—

ईश्वरस्वरूपनिर्णयः।

सनातनधर्मस्य प्रथमं पत्रम्॥

वेदेषु रूपमरूपञ्च द्विविधं भगवतो रूपं तदुक्तं शतपथेन। उभयं वा एतत् प्रजापतिर्निरुक्तञ्चानिरुक्तं च। परिमितञ्चापरिमितञ्च। (चतुर्दशकाण्डे पञ्चमाध्याये) यजुः, साम, ऋग्वेदानां, मन्त्रेषु भगवतश्चतुर्थांशे सृष्टिः। यत्र सृष्टेः प्रादुर्भावः तत्र व्यापकत्वात् सूर्यरूपत्वाच्चेश्वरस्य साकारत्वं। यत्र सृष्टिर्नास्ति तत्रारूपत्वम्।

"पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि" इति मन्त्रे ब्रह्मणश्चतुर्थभागे सृष्टिर्विहिता। तत्र च यः "पृथिव्यां तिष्ठन् पृथिव्यामन्तर्यमयति। पृथिवी यं न वेद। यस्य पृथिवी शरीरम्।" इत्युपनिषच्छ्रुतिषु पृथिव्यग्निवाय्वाकाशा भगवतः शरीराणिविहितानि। "तस्माद्वा एतस्मादाकाशः संभूतः···" इति श्रुत्या सर्वं ब्रह्माण्डमीश्वरात् सम्भूतम्। तस्मादभिन्ननिमित्तोपादानकारणं ब्रह्म। तदुक्तं यजुर्वेदे—

(१) "तदेवाग्निस्तदादित्य···" इत्यादि। श्रीमद्भिर्निराकारप्रतिपादकश्रुतयो दर्शिताः। साकारप्रतिपादकश्रुतयस्तु गोपिताः। एवञ्च भगवतोऽरूपत्वं प्रतिपादितं। एवं न। सपर्यगादिति मन्त्रे यत्र निराकारत्वं विहितं तत्र "परिभू स्वयंभू" शब्दाभ्यां ईश्वरस्य साकारत्वं रूपं च प्रतिपादितम्। अकायमत्र च शुभाशुभकर्मरहितमीश्वरस्वरूपं प्रकटीकृतम्।

(२) अपाणिपादेति श्रुतौ निराकारत्वमीश्वरस्य प्रतिभाति तत्रैवोपनिषदि—"एषो ह देवः प्रदिशोऽनुसर्वा···" इति श्रुतौ ईश्वरस्य रूपं दर्शितम्।

(३) यत्र चासङ्गमस्पृश्यमिति प्रश्नः तत्र साकारत्वेऽपि ईश्वरस्य संगतिर्यथा उपनिषत्सु "ब्रह्मा देवानां प्रथमः संबभूव" इति श्रुतौ ईश्वरस्य साकारत्वं स्पष्टीकृतम्।

(४) ईश्वरशरीरे क्लेशकर्मादयो न भवन्ति। क्लेशकर्मादयस्तु जीवशरीरे वर्त्तन्ते न परमात्मनः कलेवरे। "न स्थानेऽपि···" इति सूत्रे भगवतः साकारत्वं नैव निषिद्धम्।

(५) अरूपवदित्यादिप्रश्ने रूपवत्त्वं ब्रह्मणोऽरूपत्वञ्चो भयात्मकं प्रतिपादितं वेदेषु।

(६) "असङ्गोऽयं पुरुषः" इति प्रश्ने ईश्वरे साकारेऽपि असङ्गत्वमविरुद्धा। पृथिव्यां व्यापक ईश्वरो यथाऽसङ्गस्तथैव साकारत्वेऽपि नित्यादयो धर्मा न विरुध्यन्ते।

(७) पुराणेषु राधाकृष्णयोर्मूर्त्तिने दर्शिता तस्मादुत्तरं न दत्तम्। शंकरस्य मोहिनीस्वरूपेण या कथा सा रूपकप्रतिपादिका।

(८) रुद्रस्य लिङ्गःहस्तेत्यत्र लिङ्गशब्देन न मूत्रेन्द्रियमपि तु ज्योतिर्मयं लिङ्गं यस्य पातेन ब्रह्माण्डं दग्धम् । त्रिदेवस्य या कथा श्रीमद्भिर्दर्शिता सा भविष्यपुराणे विद्यते, इदं भविष्यपुराणं व्यासकृतं न । शिव-स्वरूपस्य दुर्गायाश्च या कथा दर्शिता तत्र प्रमाणं देयम्—

—"कालूराम शास्त्री"

उपरोक्त पत्र का भावार्थ—

(१) वेदों में भगवान् के दो प्रकार के रूप हैं एक रूपी और दूसरा अरूप । जैसा शतपथ में कहा है—**"उभयं वा एतत् प्रजापतिर्निरुक्तञ्चानिरुक्तं च । परिमितञ्चापरिमितञ्च ।"** (का० १४।३।५) अर्थात् प्रजापति दोनों प्रकार का है निरुक्त और अनिरुक्त, परिमित और अपरिमित । यजुर्वेद, सामवेद और ऋग्वेद के तीनों मन्त्रों में लिखा है कि भगवान् के चौथे अंश में सृष्टि है । जहां-जहां सृष्टि का प्रादुर्भाव हुआ है । वहां-वहां व्यापक होने से और ईश्वर का सूर्य रूप होने से ईश्वर साकार है । जहां सृष्टि नहीं है वहां वह अरूप है । **"पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ।** (यजु०) इस मन्त्र में ब्रह्म के चौथे भाग में सृष्टि का विधान किया गया है । और **"यः पृथिव्यां तिष्ठन्** पृथिव्यामन्तर्यमयति यं **पृथिवीं न वेद यस्य पृथिवी शरीरम् ।"** इत्यादि उपनिषत् की श्रुतियों में पृथिवी, अग्नि, वायु और आकाश भगवान् के शरीर बतलाये हैं । **"तस्माद् वा एतस्माद् आकाशः सम्भूतः"** । इस श्रुति से सब ब्रह्माण्ड ईश्वर से उत्पन्न हुआ बतलाया गया है । इसलिए परमेश्वर संसार का **"अभिन्ननिमित्तो-पादान"** कारण भी है अर्थात् वही निमित्त कारण और वही उपादान कारण है । जैसा यजुर्वेद में कहा है—**"तदेवाग्निस्तदादित्यः"** । इत्यादि ।। आपने निराकार बतलाने वाली श्रुतियां तो दिखा दी हैं, परन्तु साकार बतलाने वाली श्रुतियां नहीं दिखाई हैं । इस प्रकार भगवान् की रूपरहितता बतलाई है । ऐसा ठीक नहीं । **"सपर्यगात्···"** इस मन्त्र में निराकार परमेश्वर का आकार और रूप दोनों बतलाये हैं । **"अकायम्"** इस शब्द से यही प्रकट किया है कि ईश्वर का स्वरूप शुभ और अशुभ दोनों कर्मों से रहित है ।

(२) **"अपाणिपादो···"** इस श्रुति में ईश्वर निराकार बतलाया प्रतीत होता है, परन्तु उस ही उपनिषत् में—**"एषो ह देवः प्रदिशोऽनुसर्वाः"** । इस श्रुति में ईश्वर का रूप दिखलाया है ।

(३) जिस स्थान पर **"असङ्गमस्पृश्यम्···"** ऐसा प्रश्न है वहां ईश्वर के साकार होने पर भी संगति ठीक बैठती है जैसा कि उपनिषद् में लिखा है **"ब्रह्मा देवानां प्रथमः संबभूव"** इस श्रुति में ईश्वर को साकार स्पष्टरूप से बतलाया है ।

(४) ईश्वर के शरीर में क्लेश और कर्म आदि नहीं होते हैं । क्लेश और कर्म आदि तो जीव के शरीर में होते हैं, न कि परमात्मा के ! **"न स्थानेऽपि···"** इस वेदान्त सूत्र में भगवान् के साकार होने का निषेध नहीं किया ।

(५) **"अरूपवत्"** इस प्रश्न में उपनिषत् में रूपवान् और अरूपवान् दोनों प्रकार का वेदों में बतलाया है ।

(६) **"असङ्गोह्ययं पुरुषः"** इस सम्बन्ध में हमारा उत्तर यह है कि ईश्वर साकार हो तो भी वह असंग

बना रहता है, पृथिवी में व्यापक होकर भी असंग रहता है। साकार रहने पर उसके नित्य आदि धर्म ज्यों के त्यों बने रहते हैं।

(७) पुराणों में राधाकृष्ण की वैसी मूर्त्ति आपने नहीं दिखाई, इसलिए उसका कोई उत्तर नहीं दिया। शंकर की मोहिनी रूप से जो कथा है वह रूपकमात्र है।

(८) "रुद्रं लिङ्गहस्त" इत्यादि स्थान में लिङ्ग शब्द से मूत्रेन्द्रिय नहीं बल्कि ज्योतिर्मयलिङ्ग है जिसके गिरने से ब्रह्माण्ड जल गया। त्रिदेव की कथा को आपने लिखा नहीं वह भविष्यपुराण में है। भविष्यपुराण व्यास का बनाया हुआ नहीं है।

(९) शिव के स्वरूप और दुर्गा की जो कथा दिखाई है उसमें कोई प्रमाण दो।

आर्यसमाज की ओर से श्री पण्डित मंगलदत्त जी शास्त्री—

(१) साकारप्रतिपादकश्रुतीनां वेदान्तशास्त्रैः खण्डनं कृतं विद्यते। यथा शाङ्करभाष्ये—"न तावत्स्वत एव परस्य ब्रह्मण उभयलिङ्गत्वमुपपद्यते"। नह्येकं वस्तु स्वत एव रूपादिविशेषोपेतं तद्विपरीतं च इत्यवधारयितुं शक्यं विरोधात्। नह्युपाधियोगादन्यादृशो वस्तुस्वभावो भवति। स्फटिकमणिवत्। (२) "पादोस्य विश्वा-भूतानि" इति तु कल्पना। "कतिधाव्यकल्पयन्···" इति (यजुर्वेदे) वचनात्। (३) "तस्माद् वा एतस्माद्···" इत्यत्र न उपादानकारणम्। (४) भगवतो रूपं द्विविधम् न। अपि तु प्रकृतेर्द्विरूपत्वम्। (५) ईश्वरः कदापि साकारो न भवति। साकारे सृष्टिकर्त्तृत्वाभावात्। (६) निराकारत्वं सर्वव्याप्तिमत्त्वम्। आकाशवत्। साकारत्व-मेकदेशित्वं पृथिवीवत्। पौराणिकस्वरूपाणां व्याख्या कथं न क्रियते ?

(१) कृष्णस्य राधा कासीत् ? (२) मोहिनीस्वरूपमवलोक्य शंकरस्य वीर्यपातः ? (३) शिवस्य वेश्यायां गमनम्। (४) जालन्धरस्य पत्न्या वृन्दायाः कृतो विष्णुना सतीत्वनाशः। (५) शिवस्वरूपस्य दुर्गादि-देवीभ्योऽण्डभक्षणोपदेशः। (६) शिवेन अग्निदेवस्वरूपाय वीर्यास्वादनोपदेशः।

ताश्चात्राश्लीलकथास्तासां किं प्रत्युत्तरम् ?

—"मङ्गलदत्तः"

उपरोक्त पत्र का भावार्थ—

(१) साकार बतलाने वाली श्रुतियों का वेदान्तशास्त्र के वचनों से खण्डन किया गया है। जैसा शांकर-भाष्य में लिखा है कि—"न तावत्स्वत··· इत्यादि" अर्थात् स्वयं परब्रह्म दोनों लक्षण वाला नहीं हो सकता। एक ही वस्तु स्वयं रूप आदि से युक्त और उससे विपरीत हो ऐसा निर्णय नहीं किया जा सकता है, क्योंकि दोनों में विरोध है। उपाधि लग जाने से भी वस्तु की अपनी असलियत नहीं बदलती। जैसे स्फटिक स्वच्छ ही रहता है। (२) "पादोऽस्य विश्वा भूतानि···" यह तो कल्पनामात्र है आगे ही इस प्रकरण में "कतिधा व्यकल्पयन्" लिखा है। (३) "तस्माद् वा एतस्मात्···" इत्यादि में ब्रह्म उपादानकारण नहीं बताया। (४) भगवान् के रूप दो प्रकार के नहीं हैं परन्तु वहां प्रकृति के दो रूप बतलाए हैं। ईश्वर कभी साकार नहीं होता। साकार पदार्थ सृष्टि का

कर्त्ता नहीं होता। निराकार पदार्थ ही सर्वव्यापक हो सकता है। साकार पदार्थ एकदेशी होता है? परन्तु ईश्वर के पौराणिक रूपों की व्याख्या आप क्यों नहीं करते? जैसे—

(१) राधा कृष्ण की क्या लगती थी? (२) मोहिनी का रूप देखकर शंकर का वीर्यपात हुआ था। (३) शिव ने वेश्यागमन किया। (४) जालन्धर की पत्नी वृन्दा का विष्णु ने सतीत्व नाश किया। (५) शिव ने दुर्गादि देवियों को अण्डकोष खाने के लिए कहा। (६) शिव ने अग्नि को अपना वीर्य मुख में लेने को कहा। इन सब अश्लील कथाओं का आपके पास क्या उत्तर है?

सनातन धर्म की ओर से श्री पण्डित कालूराम जी शास्त्री—

वेदेषु ब्रह्मावतारो वर्णितः। यथा च—"ब्रह्मज्येष्ठा सम्भृता वीर्याणि ···"। उपनिषदादि च। 'ब्रह्मा देवानां प्रथमः···" इत्यादि मुण्ड० उप०। "तदण्डमभवद् हैमम्" इति मनुस्मृतौ॥ वाराहावतारोऽपि वेदे दृश्यते यथा—"वराहेण पृथिवीं संविदन्ति"। "इयमग्रे पृथिवी आस···" इत्यादि शतपथे। एवं यजुर्वेदे सामवेदे च वामनावतारो दर्शितः यथा "इदं विष्णुर्विचक्रमे···" इति। शतपथे च—"वामनो ह विष्णुरास···" इति। रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव इति मन्त्रे बहवोऽवतारा दर्शिताः। "प्रजापतिश्चरति गर्भे" इति मन्त्रे ईश्वरस्य गर्भागमनं प्रतिपादितम्। ऋग्वेदे कृष्णावतारोऽपि वर्णितः। "कृष्णं त एम रुशतः···" इति मन्त्रे। सामवेदे रामावतारमाह—"भद्रो भद्रया सचमान आगात्···"। इत्यादि। तवलकारोपनिषदि यज्ञावतारः संदृश्यते। यथा ब्रह्म ह देवेभ्यो विजिग्ये···। इत्यादि॥ एवञ्च वेदेषु अवतारधारणं वर्णितं प्रसिद्धम्। तर्हि भवता कथं निराकारत्वं साध्यते। अवतारप्रतिपादकश्रुतयः कथं संगत्ताः स्युरिति स्पष्टीकुरु। प्रत्युत्तरं देयम्। किंताः श्रुतयो वेदात् पृथक्करणीया इति लेख्यम्। गीतायामपि—"परित्राणाय साधूनाम्···" इति प्रतिपादितम् तत्कथम्। वेदान्तसाकारप्रतिपादकश्रुतीनां खण्डनं कृतम्। मया तु "पादोऽस्य विश्वा भूतानि···" इति मन्त्रार्थं गृहीतम्। तत्र तु "एकांशेन स्थितो जगत्···" इति द्वितीया श्रुतिर्विद्यते। "तस्माद्वा···" इत्यत्र उपादानकारणम् तस्य खण्डने कस्यापि शक्तिर्न। (६) ईश्वरस्य साकारत्वेपि सृष्टिरचनायां विरोधः। उभयरूपत्वात्। निराकारत्वं सर्वव्याप्तिमत्त्वमित्यत्रानुमाने हेतोरभावात् व्याप्तिर्नैव सम्भवति। राधाकृष्णयोः कथा व्यासकृतेषु पुराणेषु न कुत्रापि विद्यते। मोहनीस्वरूपे रूपकालंकारः। शंकर, ईश्वरः, पार्वती सा पर्वतश्रेणी। मोहिनीति माया शंकरवीर्यम् पराक्रमः। एभिः सृष्टिरचना। वेश्यागमने रत्नखचितलिङ्गं दृश्यते। तत्र युष्माभिः भोगोविहितः। तत् विस्तरेण लिखितुमुचितम्। वृन्दायाः कथायाम् जालन्धरः पार्वतीपातिव्रतधर्मखण्डनार्थं गतः। तस्मात् जालन्धरस्य पत्न्याः पातिव्रत्यं नाशितम्। दुर्गायाः शंकरस्य श्रीमद्भिः कथा न लिखिता। प्रमाणञ्च न दत्तम्। अथेश्वरस्वरूपविषयस्यावसरे पुराणखण्डने प्रवृत्ता भवन्त इति प्रतिज्ञाभङ्गदोषः समारोप्यते।

—"कालूराम शास्त्री"

उपरोक्त पत्र का भावार्थ—

वेद में ब्रह्मावतार का वर्णन किया है। जैसे—

"ब्रह्मज्येष्ठा संभृता वीर्याणि···"। उपनिषद् में—"ब्रह्मा देवानां प्रथमः···" इत्यादि मुण्डक उपनिषद् में लिखा है। मनुस्मृति में लिखा है—"तदण्डमभवद् हैमम्···" इत्यादि। वेद में वराहावतार भी देखा जाता है।

जैसे—"**वराहेण पृथिवीं संविदन्ति**···" । "**इयमग्रे पृथिवी आस**···" इत्यादि शतपथ में भी लिखा है। इसी प्रकार यजुर्वेद और सामवेद में वामनावतार दर्शाया गया है। जैसे लिखा है—"**इदं विष्णुर्विचक्रमे**···" इत्यादि। शतपथ में लिखा है—"**वामनोह विष्णुरास**···" इत्यादि। "**रूपंरूपं प्रतिरूपो बभूव**···" इस मन्त्र में बहुत से अवतार दिखाए हैं। "**प्रजापतिश्चरति गर्भे**···" इस मन्त्र में ईश्वर का गर्भ में आना बतलाया गया है। ऋग्वेद में कृष्णावतार का भी वर्णन किया गया है—"**कृष्णं त एम रुशतः**" । सामवेद में रामावतार है। "**भद्रो भद्रया सचमान आगात्**···"। तलवकार उपनिषद् में—यक्षावतार है। जैसे—"**ब्रह्म ह देवेभ्यो विजिग्ये** ··"। इत्यादि। इसी प्रकार वेदों में अवतार के धारण करने का वर्णन किया गया है। तब आप ईश्वर को निराकार कैसे सिद्ध कर सकते है ? अवतार बतलाने वाली श्रुतियें तुम्हारे पक्ष में कैसे संगत हैं ? सो बतलाओ। उसका उत्तर दो ? क्या उनको वेद से वाहर कर दिया जाए। लिखो ? गीता में भी—"**परित्राणाय साधूनाम्**···" इत्यादि प्रतिपादन किया है। वहां वेदान्त में साकार बतलाने वाली श्रुतियों का खण्डन किया है। परन्तु मैंने तो—"**पादोस्य विश्वा भूतानि**···" इसका मन्त्रार्थ लिया है। वहां उसमें—"**एकांशेन स्थितो जगत्**···" यह दूसरी श्रुति भी है। "**तस्माद्वा**···" इसमें उपादानकारण ही है, इसका कोई खण्डन नहीं कर सकता। (६) ईश्वर के साकार होने पर सृष्टि की रचना में कोई विरोध नहीं है, क्योंकि ईश्वर साकार और निराकार दोनों प्रकार का है, निराकार पदार्थ सर्वव्यापक ही होता है इस अनुमान में कोई हेतु नहीं है, क्योंकि व्याप्ति नहीं बनती। राधा और कृष्ण की कथा व्यासकृत पुराणों में कहीं नहीं सुनी जाती। मोहिनी की कथा में रूपकालंकार है। शंकर ईश्वर है, पर्वतों की श्रेणी पार्वती है, मोहिनी माया है, शंकर का वीर्य पराक्रम है। इनसे सृष्टि की रचना होती है। वेश्यागमन में शंकर का रत्नखचित लिंग था। वहां भोग किया आपने बतलाया है। आपको यह विस्तार से लिखना उचित था। वृन्दा की कथा में जालन्धर पार्वती के सतीत्व के तोड़ने के लिए गया था, इसलिए जालन्धर की स्त्री का सतीत्व भी विष्णु ने तोड़ दिया। शंकर की कथा आपने स्पष्ट नहीं लिखी, प्रमाण भी नहीं दिया। "**ईश्वर के स्वरूप**" विषय को छोड़कर आप पुराणों के खण्डन में लग गए यह प्रतिज्ञाभङ्ग दोष है।

नोट—

इस प्रकार पण्डित कालूराम शास्त्री के साथ हुआ यह शास्त्रार्थ समाप्त होता है। परन्तु इस आखिरी लेख में श्री पण्डित कालूराम ने अपने हाथों अपने मुंह पर चपतें लगाई हैं और स्वयं सनातन धर्म के सिद्धान्तों को रोंद डाला है। जैसे—(१) "वराह" आदि शब्द देखकर जो श्री पण्डित कालूराम ने अवतारों की कल्पना की है वैसे अण्ड आदि शब्दों से अण्डावतार क्यों नहीं माना ? (२) वराह अवतार को सिद्ध करने के लिए दो प्रमाण दिए हैं। जिनमें प्रथम—"**वराहेण पृथिवीं संविदाना सूकराय विजिहीते मृगाय**"। अथर्व० १२।१।४८॥ अर्थात् इस मन्त्र में वराहावतार बतलाना भारी मूर्खता और वेद की अनभिज्ञता है। उसमें यह पृथ्वी और उपलक्षण से यही पशु सूकर लिया गया है। (३) "**इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम्**"। इस मन्त्र में व्यापक परमेश्वर का ही वर्णन है उसके तीन विक्रमण आकाश, अन्तरिक्ष और पृथ्वी हैं। कोई बौना ब्राह्मण ही यहां अभिप्रेत होता तो वह इतने बड़े चरण नहीं रख सकता। ईश्वर ने व्यापक होकर इन तीनों की रचना की यही मन्त्र का तात्पर्य है। यदि वामन की कथा का भी यहां तात्पर्य अलंकार से हो तो तुम्हारा वामन भी काल्पनिक हो जाता है, सत्य नहीं। (४) "**रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव** ··" इस मन्त्र में कहीं भी अवतार का नाम नहीं। इसमें तो अग्नि के दृष्टान्त से प्रत्येक पदार्थ में परमात्मा को उस पदार्थ में स्थित शक्ति और सत्ता के रूप से विद्यमान बतलाया गया हो। (५) "**प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्तर्जायमानो बहुधा विजायते**।" यहां उस परमेश्वर प्रजापति का वर्णन है जो ब्रह्माण्ड में व्यापक होकर नाना प्रकार की सृष्टियों को उत्पन्न करता है। उसी के परम रूप को धीर विद्वान् पुरुष साक्षात् करते हैं। जिन अर्थों में पण्डित कालूराम "**गर्भ**" शब्द को लेकर ईश्वर का अवतार सिद्ध करने चले हैं। यदि उसी अर्थ में योनि

आदि शब्द लेने लगें तो कालूराम जी के यह अवतार बड़े भ्रष्टस्वरूप के बनते हैं। (६) ऋग्वेद में कृष्णावतार का वर्णन बतलाते हैं सो असंगत है। वहां समस्त संसार को आकर्षण करने वाले प्रभु का वर्णन है। (७) सामवेद में —"**भद्रो भद्रया सचमान आगात्**···" इससे जो रामावतार का वर्णन बतलाया यह उनके ही माने हुए सायण आदि आचार्यों के भाष्यों से खण्डित हो जाता है।(८)तलवकार उपनिषद् में यक्षावतार को बतलाया है पर उपसंहार देखने से वहां उपास्य ब्रह्म का अलंकार वर्णन किया गया प्रतीत होता है। यदि अवतार होता तो क्या वह इतनी जल्दी गायब हो जाता है? (९) "**तस्माद्वा**···" में कालूराम जी उपादान कारण परमात्मा को बतलाते हैं। यदि जड़ संसार का उपादानकारण ब्रह्म होता तो वह ब्रह्म भी जड़ होता। जैसे घड़े का उपादानकारण मट्टी। जैसे मट्टी अपने आप को रोंदकर घड़ा नहीं बनती बल्कि कुम्हार मिट्टी का घड़ा बनाता है। इसी प्रकार प्रकृति से परमात्मा सृष्टि बनाता है। वह स्वयं प्रकृति नहीं है। संसार में ब्रह्म को अभिन्न निमित्त-उपादानकारण बतलाने वाला एक भी दृष्टान्त नहीं है इसलिए व्याप्ति निराश्रय है। (१०) राधा कृष्ण की कथा व्यासकृत पुराणों में नहीं ऐसा कालूराम जी का कहना "**सब पुराण व्यासकृत हैं**" सनातनियों के इस सिद्धान्त का खण्डन करता है। "**कोई पुराण व्यासकृत है**" इसमें भी कोई प्रमाण कालूराम जी के पास नहीं है। (११) वेश्यागमन में शंकर का रत्नखचित लिंग था इसमें अप्रसिद्धता दोष है। ऐसा लिंग किसी का कभी भी नहीं देखा गया। यदि अलंकार है तो स्पष्ट नहीं किया। क्या शंकर ऐसे भ्रष्ट थे? (१२) वृन्दा की कथा में जो पार्वती के सतीत्व के बदले वृन्दा के सतीत्व के नाश के लिए विष्णु की दुश्चेष्टा बतलाई है वह गंवारूपन और नीचता का द्योतक है। विष्णु को चाहिए था कि वह जलन्धर को राजा के समान दण्ड देता। न कि वह स्वयं पाप करता! क्या कोई राजा, चोर को दण्ड देने के लिए उसके घर चोरी करता है या व्याभिचारी को दण्ड देने के लिए उसकी स्त्री से व्यभिचार करता है? यदि कहो कि वह दैत्य जलन्धर अपनी स्त्री के सतीत्व से अदम्य था। यह कहना भी असंगत है। कोई पतिव्रता स्त्री अपने पति को तो इतना अदम्य उद्दण्ड नहीं बना सकती कि वह ईश्वरीय नियम में भी न बंध सके। यदि ऐसा था तो तुम्हारा विष्णु ईश्वर नहीं था। वह तो एक भली औरत और उसके उद्दण्ड पति से भी कमजोर था। और साथ वह विष्णु इतना मन का कच्चा था कि दूसरे को पाप में देखकर ईर्षा से दूसरों की औरतों पर मन चलाता था। ऐसा शरीर, मन और राज्य शक्ति में कच्चा निर्बल पुरुष परमेश्वर नहीं माना जा सकता। यहां पुराणों का खण्डन करने में प्रतिज्ञाभंग दोष नहीं है प्रत्युत तुम्हारे माने हुए साकार ईश्वर की ईश्वरता का खण्डन करना ही उसका उद्देश्य है। यदि ईश्वर मानना होगा तो निराकार ही मानना होगा। उसमें ही पुण्य और पाप का लेश नहीं लग सकता। "**न ह वै सशरीरस्य सतः पुण्य-पापयोरपहतिरस्ति**"। (बृहदा० उपनिषद्)। पुण्य और पाप शरीरधारी से नहीं छूट सकते। इसी कारण पुराणों के सशरीर ईश्वर और उसके अवतार बड़े पापी, नीच, घृणित आचार वाले लिखे गये हैं। मनुष्यों के शरीर और शक्ति छोटे हैं उनके पाप भी थोड़े हैं। देवों और अवतारों के शरीर और शक्ति भी बड़े हैं उनके पाप और नीचता के काम भी बहुत लिखे हैं। इसलिए सबसे सीधा मार्ग ईश्वर को निराकार मानना ही है जिससे ईश्वर का निर्दोष स्वरूप कल्पना किया जा सकता है। उसकी उपासना से ही भक्तों के कर्म, मन, वाणी और आचार व्यवहार पवित्र रह सकते हैं। अन्यथा उस साकारकल्पित ईश्वर की मूर्त्तियों की आड़ में बड़े छल और पाप होते रहेंगे।

विशेष—

हमारे पास दोनों पक्षों द्वारा प्रकाशित प्रतियां मौजूद थी। परन्तु हमें दुःख के साथ लिखना पड़ रहा है कि सनातन धर्म द्वारा प्रकाशित पुस्तक में असल कापी संस्कृत में न देकर केवल भाषा में ही श्री पण्डित कालूराम जी शास्त्री द्वारा स्वयं के बनाए प्रश्नोत्तरों के साथ गालियां ही गालियां लिखी थी। जिसको पढ़कर एक सामान्य व्यक्ति भी समझ सकता है कि यह प्रति असल बात के कितनी निकट है? इसलिए हमने उस प्रति को नहीं लिया। अस्तु॥

निवेदक—
"**लाजपतराय अग्रवाल**"

एकसौचारवां शास्त्रार्थ—

स्थान : चन्दौसी (उत्तर प्रदेश)

दिनांक : ३१-७-१९३३ ई० (सायं ४ बजे से रात्रि ८ बजे तक)

विषय : क्या शूद्रों को—शिक्षा, पूजन-पाठ, मन्दिरों में प्रवेश आदि करना वेदानुकूल है ?

वर्णाश्रम स्वराज्य संघ (सनातनधर्मियों) की ओर से शास्त्रार्थकर्त्ता : श्री पण्डित अखिलानन्द जी कवि रत्न

आर्य कुमार सभा (आर्यसमाज) की ओर से शास्त्रार्थकर्त्ता : श्री पण्डित देवेन्द्र नाथ जी सांख्यतीर्थ

वर्णाश्रम स्वराज्य संघ की ओर से प्रधान : श्री पण्डित भवानी दत्त जोशी (एस० एम० कालिज चन्दौसी)

आर्य कुमार सभा की ओर से प्रधान : शास्त्रार्थ महारथी श्री पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी

आर्य कुमार सभा की ओर से मन्त्री : श्री राम रक्षपाल जी

वर्णाश्रम स्वराज्य संघ की ओर से मन्त्री : श्री विष्णुदत्त जी शर्मा

वर्णाश्रम स्वराज्य संघ की ओर से निर्णायक : श्री पण्डित गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी महामहोपाध्याय (प्रिंसिपल—जयपुर संस्कृत कालेज)

आर्य कुमार सभा की ओर से निर्णायक : महामहोपाध्याय श्री पण्डित आर्य मुनि जी

अन्य उपस्थित विद्वान् : श्री पण्डित शिव शर्मा जी, आदि अनेकों विद्वान् उपस्थित थे ।

नोट—

यह शास्त्रार्थ सामग्री दोनों पक्षों की ओर से सन् १९३३ ई० में ही छपी थी । हमें दोनों ही पक्षों द्वारा प्रकाशित प्रतियां प्राप्त हो गई थी । सनातन धर्म की ओर से छपाई गई पुस्तक में समालोचना भी साथ थी । हमने किसी भी पक्ष की कोई भी समालोचना नहीं छापी । केवल जो मूलरूप में शास्त्रार्थ सामग्री थी, वही प्रकाशित की है । केवल संस्कृत लेख में जो प्रमाण आए हैं । जो अधूरे व बिना पते के थे, उनको पूर्ण कर पूरा पता आदि लिख-कर हमने नीचे टिप्पणियों में पूर्ण कर दिया है । जिससे पाठकगण विशेष लाभ उठा सकें । पाठकगण स्वयं देखें ! पढ़ें !! और निर्णय करें !!! हम निम्न दोनों महानुभावों का हृदय से आभार प्रकट करते हैं । जिनके कारण यह अप्राप्य सामग्री प्रकाशित हो सकी । सनातन धर्म की ओर से छपी प्रति "श्री वैध महेन्द्र नाथ जी वेदालंकार" ए-५, न्यू नैमेषपार्क सोसायटी अहमदाबाद (गुजरात) । तथा आर्य कुमार सभा की ओर से छपी प्रति "श्री राजाराम जी जिज्ञासु" स्वाध्याय संस्थान—बदायुं (उ० प्र०) । द्वारा प्राप्त हुई ।

निवेदक—

"लाजपतराय अग्रवाल"

शास्त्रार्थ से पहले

वैसे तो आर्यसमाज के जन्मकाल से ही हरिजनों अर्थात् दलित जातियों को ऊँचा उठाने का प्रयत्न होता रहा है। परन्तु जब से महात्मागांधी जी ने, हरिजन समस्या को सुलझाने के लिए पूना ऐक्ट के पूर्व महाव्रत धारण किया था। तब से हरिजनों को ऊँचा उठाने और अन्य वर्णों के समान उनको साधारण सामाजिक अधिकार दिलाने के आन्दोलन ने उग्र-रूप धारण कर लिया है। भारतवर्ष के गण्यमान्य नेता धनी मानी विद्वान् सभी कोटि के जनसमुदाय ने अपना-अपना भाग इस समस्या को हल करने के निमित्त समर्पित किया है। सनातनधर्मियों में भी अधिकांश निःस्वार्थी विद्वान् नेताओं ने इस कार्य की प्रगति बढ़ाने में बड़ी सहायता दी है। व्यवस्थापक सभाओं, सरकारी और गैर-सरकारी संस्थाओं, कांग्रेस हिन्दू महासभा आदि संस्थाओं ने जो कार्य इस अवसर पर किया है, वह सभी श्रेयस्कर है। परन्तु इसी काल में कुछ स्वार्थी जनों ने सुधार की बढ़ती हुई गति को रोकने के लिए पुराने सनातन धर्म की संस्थाओं से अलग नवीन एक संस्था जिसका नाम **"वर्णाश्रम स्वराज्य संघ"** है, की स्थापना की। वर्णाश्रम स्वराज्य संघ ने कौन-सा ऐसा उपाय किया जिससे भारतवर्ष को स्वराज्य के निकट लाने वाले प्रयत्नों में गिना जाए। इस संघ का भगीरथ प्रयत्न अछूतोद्धार समस्या के बीच में रोड़े अटकाना है, चन्दौसी भी संघ के इस कुकृत्य से वंचित न रहा। प्रसाद स्वरूप आपने एक बनारसी पण्डित का व्याख्यान चौधरी मूलचन्द जी को दूकान पर कराया। जिसमें, आर्यसमाज, आर्यों और आर्य संस्थाओं के सम्बन्ध में बहुत-सा मिथ्यावाद फैलाया। हरिजनों को ऊपर उठाने के साधनों को बताने के अतिरिक्त आपने कई साधन बताए। जिनसे उनकी गुलामी की जंजीरों को और भी कसकर जकड़ दिया जावे। इस संघ ने—**"ठगों से सावधान"** शीर्षक नामी किताब एक ऐसे सज्जन के नाम से लिखवाकर छपवाई कि जिनके बोध के विषय में हमारा कुछ भी कहना व्यर्थ है। उसमें भी झूठ-सच बातों का समावेश कराया। इन्हीं बातों के उत्तर स्वरूप निज वार्षिकोत्सव के अवसर पर जो निकट ही था। आर्य कुमार सभा ने लिखित पत्र द्वारा संघ को हरिजन समस्या पर शास्त्रार्थ करने को ललकारा। साथ-ही-साथ अन्य मतावलम्बियों को शास्त्रार्थ के निमित्त उत्सव के विज्ञापन में सूचित किया। संघ के अतिरिक्त शास्त्रार्थ करने का एक पत्र **"सनातन धर्म छात्र सभा, चन्दौसी"** से भी आया, परन्तु विषय निर्धारित न होने के कारण शास्त्रार्थ नहीं हो पाया। छात्र सभा चाहती थी कि शास्त्रार्थ का विषय यह हो—**"ऋषि दयानन्द कृत ग्रन्थों की शिक्षा वेदों के विरुद्ध है"** जबकि हमारा शास्त्रार्थ सम्बन्धी विषय यह था कि—**"ऋषि दयानन्द कृत ग्रन्थों की शिक्षा वेदों के विरुद्ध है अथवा अठारह पुराणों की शिक्षा-दीक्षा ?"** इसकी स्वीकृति छात्र सभा ने तिथि रहित पत्र में दे भी दी थी। उक्त विषय को हम मान भी लेते यदि वे पूर्व पक्ष की स्थापना अर्थात् प्रश्न करना स्वीकार करते। परन्तु उन्होंने इसे स्वीकार नहीं किया। इसलिए शास्त्रार्थ स्थगित कर दिया गया। पाठक यह जानकर विस्मित होंगे कि अब सनातन धर्मी भाई कहने को पुराण भक्त बने रहें। परन्तु शास्त्रार्थ में पुराणों पर किए जाने वाले आक्षेपों से पीछा छुड़ाने के लिए उनके उस भाग को ही मान्य बताने लगे हैं कि जो वेद शास्त्रानुकूल हो परन्तु वे इतना नहीं सोचते कि इस कथन से तो एक साधारण मनुष्य भी यह समझ सकता है कि अवश्य ही इन ग्रन्थों में वेद विरुद्ध भी बहुत अंश है। इसका जागरुक प्रमाण यह है कि वर्णाश्रम संघ ने अपने नियमों में यह भी सूचना दी थी कि हमारी ओर से स्वतः प्रमाण वेद, वेदानुकूल धर्मशास्त्र इन दोनों के अनुकूल पुराण एवं इतिहास माननीय ग्रन्थ होगा। वेद के विरोध होने पर कोई इतिहास, पुराण माननीय नहीं होगा। यही सनातन धर्मियों का सर्वमान्य सिद्धान्त है। वर्णाश्रम स्वराज्य संघ से शास्त्रार्थ के नियम इस प्रकार थे।

(१) श्रीमान् सब-इन्स्पेक्टर पुलिस प्रबन्ध निमित्त प्रधान पद पर नियुक्त किए जाएं उनसे पद की स्वीकारी के लिए उभय-पक्ष प्रार्थना करें।

(२) उभयपक्ष को ताली बजाना वा जयकार नाद करने का अधिकार न होगा।

(३) समय चार बजे से आठ बजे (तृतीय पहर) तक होगा।

(४) उभयपक्ष वाले वक्ताओं के प्लेट-फार्म समान ऊंचे (एक बराबर ऊंचे) होंगे।

(५) आर्य कुमार सभा की ओर से शास्त्रार्थ के निर्णायक—"**निखिल तन्त्र स्वतन्त्र महामहोपाध्याय पण्डित आर्य मुनि जी**" होंगे तथा स्वराज्य संघ की ओर से निर्णायक—"**महामहोपाध्याय श्री पण्डित गिरिधर शर्मा जी चतुर्वेदी**" (प्रिंसिपल जयपुर संस्कृत कालेज) होंगे।

(६) प्रत्येक वक्ता को संस्कृत में लिखने-बोलने तथा व्याख्या करने को चालीस मिनट दिये जावेंगे, और प्रत्येक वक्ता तीन बार बोलेगा।

(७) अपशब्दों का प्रयोग किसी ओर से नहीं होगा।

(८) आर्यों की ओर से वेद स्वतः प्रमाण और अन्य ग्रन्थ परतः प्रमाण होंगे, और वेदानुकूल होने से माननीय होंगे।

(९) सभापति जी की सूचना मिलने पर ही सभा भंग हो सकेगी।

(१०) शास्त्रार्थ का विषय इस प्रकार होगा कि—"हरिजनों की शिक्षा, दीक्षा, पूजा, पाठ, धार्मिक मन्दिरों, यज्ञशालाओं वा अन्य धार्मिक स्थानों तथा अन्य सार्वजनिक संस्थाओं यथा कुए, तालाब, घाट, नदी, पाठशालादि के उपयोग का उतना ही अधिकार है जितना अन्य उच्च वर्णों को! उनके बीच में किसी भी प्रकार की रुकावट डालना अवैदिक और आर्य ऋषियों की शिक्षा और आदर्श के सर्वथा विरुद्ध है। इसलिए अमान्य है, क्योंकि वेद विरुद्ध बातों को मानना घोर पाप है"।

रही शास्त्रार्थ वाली कार्यवाही की बात ? उसके लिए यह निश्चित हुआ कि—यह शास्त्रार्थ ३१ जौलाई सन् १९३३ ई० को हुआ था। संघ की ओर से पूर्व पक्ष की स्थापना "**पण्डित अखिलानन्द जी कविरत्न**" ने की थी। जिसका उत्तर "**श्री पण्डित देवेन्द्र नाथ शास्त्री सांख्यतीर्थ**" जी ने वेद, शास्त्र, स्मृति और पुराणो के आधार पर दिया था। प्रत्येक वक्ता को चालीस मिनट संस्कृत में लिखने, सुनाने और निज लेख की व्याख्या हिन्दी में करने को दिए जाते थे। जनता जिसमें, आबाल, वृद्ध, स्त्री-पुरुष, स्वधर्मी, विधर्मी, सभी सम्मिलित थे। जिनकी संख्या लगभग २०,००० के थी, पुलिस का समुचित प्रबन्ध था। संघ की ओर से "**श्री पण्डित भवानी दत्त जोशी**" (संगीत शास्त्री) "MUSIC TEACHER, S. M. COLLEGE, CHANDOSI" प्रधान पद पर नियुक्त थे। और आर्य कुमार सभा की ओर से—"**शास्त्रार्थ महारथी श्री पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी**" प्रधान पद पर आसीन थे, शास्त्रार्थ शान्तिपूर्वक समाप्त हुआ था। केवल पण्डित अखिलानन्द जी द्वारा, "**श्री माननीय पण्डित मदन मोहन जी मालवीय**" जी पर घृणित आक्षेप करने के कारण असन्तुष्ट होकर जनता में से एक बार—शेम! शेम!! वा शर्म! शर्म!! की सामुहिक ध्वनि आई थी, जो आर्य स्वयंसेवकों ने तुरन्त शान्त कर दी थी। संस्कृत में लेखबद्ध शास्त्रार्थ यथातथ्य और उसका भाषान्तर उसी वास्तविक रूप में यहां उद्धृत किया जाता है! इतिशम्!! स्वयं पढ़िए और लाभ उठाइए!!!

निवेदक—
"**रामरक्ष पाल**"
(मन्त्री—आर्य कुमार सभा, चन्दौसी)

नोट—

हमें इस शास्त्रार्थ की प्रतियां दोनों पक्षों द्वारा छपी हुई प्राप्त हो गई थी, जिनका विवरण इस (**शास्त्रार्थ-चन्दौसी**) के मुख पृष्ठ पर दिया गया है। आप वहां देख सकते हैं। हमने मात्र जो भी संस्कृत लेख में पत्र के प्रमाण आए हैं। उनको नीचे टिप्पणी में पूरा करके उनका पूरा पता भी दे दिया है जिससे पाठकों को विशेष लाभ हो सके॥

"**लाजपतराय अग्रवाल**"

शास्त्रार्थ आरम्भ

वर्णाश्रम स्वराज्य संघ (सनातन धर्मियों) की ओर से प्रथम पत्र

॥ श्री हरिः ॥

[शास्त्रार्थे प्रथमं-पत्रम्-पूर्वपक्षः]

नमोऽस्त्व नन्तायेति-मङ्गलम् । मान्यमहाभागाः !! मन्दिरप्रवेशे श्वपाक—चाण्डाल-चर्मकारादीनां-प्रवेशाधिकारो नवेति "विषयमुद्दिश्य" शास्त्रार्थोऽयमारम्यते । कार्याकार्यव्यवस्थितौ शास्त्रमेव प्रमाणम् । तच्च वेदादि धर्म शास्त्ररूपम् । वेदविरुद्धमैतिह्यं-नास्मन्मते प्रमाणम् । दस्यूनां-देवयजनानर्हत्वं, देव पूजानर्हत्वञ्च-वेदैरादिश्यते । तद्यथा—

(१) अयज्वानमदेवयुम्०···,[१] । (२) नवैदेवाः सर्वेण संवदन्ते···,[२] । (३) तस्माच्छूद्रोयज्ञेऽनवक्लृप्तः···,[३] । (४) दैव्यो वै वर्णो ब्राह्मणः-असुर्यः शूद्रः···,[४] । (५) यज्ञेन यज्ञमयजन्तदेवाः···,[५] । इत्यादयो वेदमन्त्राः दासापरपर्यायं "दस्युं" अयज्ञियंमन्यन्ते । दर्शनेष्वपि—

(१) निर्देशाद्वात्रयाणां स्यात्···,[६] । तथाश्च, (२) अपिवा वेदनिर्देशात्···,[७] इत्यादि सूत्रेषु—"अपशूद्राणां" त्रयाणामेव द्विजानां यज्ञार्हत्वम् । नशूद्राणाम् । का कथा पुनरन्त्यजानाम् । "वेद माता-द्विजानां-पाव मानी"[८] न-सूद्राणाम् ।

(१) जपस्तपस्तीर्थयात्रा··[९] [अत्रिः १३३], (२) व्रतंनास्ति तपोनास्ति···[१०] [आप० ५।४], (३) कपिला क्षीरपानेन···[११] [परा० १।७३], इत्यादिषु—"अत्र्यापस्तंव-पराशर" वचनेषु-शूद्रस्य देवपूजनंपतन

टिप्पणी—

[१]अयज्वानमदेवयुम्······[ऋग्वेद ८-८-५६]

[२]न वै देवाः सर्वेण संवदन्ते । ब्राह्मणेनवा क्षत्रियेणवा । वैश्येनवा । तेहियज्ञियाः ॥
[शतपथ ब्राह्मण ३-१-१-१०]

[३]तस्माच्छूद्रो यज्ञेऽनवक्लृप्तः······[तैत्तिरीय संहिता ७-१-१-४-६]

[४]दैव्योवैवर्णो ब्राह्मणः असुर्यः शूद्रः······[तैत्तिरीय संहिता १-२-६-७]

[५]यज्ञेन यज्ञ मयजन्त देवा······[यजुर्वेद ३१-१६]

[६]निर्देशाद्वात्रयाणां स्यादग्न्याधेयेन सम्बन्धः । क्रतुषु ब्राह्मण श्रुतेरित्यात्रेयः ॥ [मीमांसा दर्शन ६-१२६]

[७]अपिवा वेद निर्देशात् अपशूद्राणाम् प्रतीयेत्······[मीमांसा दर्शन १-६-३३]

[८]वेद माता द्विजानां पावमानी······[अथर्ववेद १९-७१-१]

[९]जपस्तपस्तीर्थ यात्रा प्रव्रज्या मन्त्रसाधनम् । दैवताराधनञ्चैव स्त्रीशूद्रपतनानिषट् ॥
[अत्रिस्मृति १-३३]

[१०]व्रतंनास्ति तपोनास्ति होमोनैव च विद्यते । पंचगव्यं न दातव्यं तस्य मन्त्रयिवर्जनात् ॥
[आपस्तम्ब स्मृतिः ५-४]

[११]कपिला क्षीर पानेन ब्राह्मणी गमनेन् च । वेदाक्षर विचारेण शूद्रस्यनरकोध्रुवम् ॥
[पाराशर स्मृतिः १-७३]

कारणम्। नोन्नतिकारणम्। तस्मादयं पक्षो वेदस्मृति विरुद्धः। वेद-धर्मशास्त्रविरुद्धपक्षाश्रयणं-नास्तिकतामूलकम् नास्तिकतानिरवारण-मेवास्तिकानां-परमं कर्तव्यम्। तस्मादस्माभिरेतदधि-क्रियते। मदुक्त मन्त्राणां, दर्शन सूत्राणां, धर्मशास्त्र वचनानाञ्च "यथाक्रमं" भवद्भिः समाधानं विधेयम्॥

हस्ताक्षर
"अखिलानन्दस्य"
३१-७-३३

उपरोक्त प्रथम पत्र (पूर्व पक्ष) का भाषानुवाद—

माननीय सज्जनगण!

मन्दिर के प्रवेश में अन्त्यज, चाण्डाल, चर्मकार आदि के प्रवेश का अधिकार है वा नहीं? इस विषय को लेकर यह शास्त्रार्थ प्रारम्भ किया जाता है। करने योग्य और न करने योग्य की व्यवस्था में शास्त्र ही प्रमाण है, और वह वेदादि धर्मशास्त्र रूप है। वेद के विरुद्ध—इतिहास हमारे मत में प्रमाण नहीं। दस्युओं को देवयजन का और देवपूजन का अधिकार वेद नहीं देते हैं।—"अयज्वानमदेवयुम्···।" तथा "न वै देवाः सर्वेणसंवदन्ते···।" तथा "तस्माच्छूद्रोयज्ञेऽनवक्लृप्तः···।" तथा "दैव्यो वै वर्णो ब्राह्मणः असूर्यः शूद्रः···।" तथा "यज्ञेनयज्ञमयंजन्त देवाः···।" इत्यादि प्रमाणों से यह सिद्ध होता है कि—"दास है दूसरा नाम जिसका" उस दस्यु को मन्त्र का अधिकार नहीं है। दर्शनों में भी—"निर्देशाद्वात्रयाणां स्यात्···।" तथा "अपि वा वेद निर्देशात्···।" इत्यादि सूत्रों में शूद्रों से रहित तीन वर्णों, (द्विजों) को यज्ञ का अधिकार दिया है, शूद्र को नहीं। अन्त्यजों का तो फिर कहना ही क्या है?—"वेद माता द्विजानां पावमानो···" वेद माता द्विजों को पवित्र करने वाली हैं, शूद्रों को नहीं।—"व्रतस्तंस्तीर्थयात्रा···" आदि ऊपर के आपस्तम्ब और पाराशर वचनों से सिद्ध है कि, शूद्र का देवपूजन पतन का कारण है। उन्नति का कारण नहीं। इसलिए यह पक्ष वेद स्मृति विरुद्ध है। वेद और धर्मशास्त्र के विरुद्ध पक्ष का मानना नास्तिकता मूलक है। और नास्तिकता को हटाना ही आस्तिकों का परम् कर्तव्य है। इसलिए यह किया जा रहा है। आपको चाहिए कि हमारे द्वारा दिए गये, मन्त्र, दर्शन सूत्र और धर्मशास्त्र के वचनों का यथाक्रम समाधान करें।

हस्ताक्षर—
"अखिलानन्द"

आर्य कुमार सभा (आर्य समाजियों) की ओर से प्रथम पत्र—

[शास्त्रार्थप्रथमपत्रम्—उत्तर पक्षः]

अद्यतनशास्त्रार्थस्य विषयोऽधोलिखितोस्ति—

तद्यथा—हरिजननाम्ना प्रसिद्धानां शूद्राणां शिक्षायां दीक्षायां पूजने पाठे, धार्मिकमन्दिरेषु यज्ञस्थानेषु तथान्यधार्मिकस्थानेषु सार्वजनिकसंस्थासु कूप तडागादिषु, नद्यादिस्थानेषु पाठालयेषु च तथैवाधिकारोऽस्ति यथोच्चवर्णानां ब्राह्मणादीनाम्। अस्मिन्विषये बाधोत्पादनमवैदिकम्, ऋष्यार्याणाम् आदर्शादपि विरुध्यते, तस्मादमान्यमेतत् यतः श्रुतिविरुद्धाणां विषयाणां स्वीकारः पापमूलमिति।

माननीय सज्जना ! यदुक्तं पं० प्रतिवादिना यच्छूद्राणां यज्ञेऽधिकारो नास्ति तन्नसमञ्जसम् कुतो वेदे स्पष्टं तस्य प्रतिपादनं दृश्यतेतद्यथा—"अग्निर्ऋषिः पवमानः पाञ्चजन्यः पुरोहितः—तमीमहे महागयम्"।

अत्र पाञ्चजन्यशब्देन चतुर्णां वर्णानां तथानिषादस्यापि ग्रहणं दृश्यते, अत्र भगवतो दयानन्दस्य भाष्यं नोद्ध्रियते अपितु भवत्स्वीकृतानां उव्वटमहीधरादीनां भाष्यमेवोद्ध्रियते तथाचात्रोव्वटः पाञ्चजन्यः पञ्चजनेभ्यो हितः चत्वारो वर्णाः निषादपञ्चमाः पञ्चजनाः, तेषांहि यज्ञेऽधिकारोऽस्ति तथा महीधराचार्यः विप्रादयश्चत्वारो वर्णा निषादश्चेति पंचजनाः तेषां यज्ञाधिकारात्। अपि चान्यत्र वेदे यजुषि, "विश्वस्यकेतुर्भवनस्यगर्भः···" इत्यस्मिन्मन्त्रेऽपि भाष्यं कुवन्महीधर आह। यमग्निं पंचजना अयजन्त यजन्ते विप्राद्याश्चत्वारो निषादश्चेति इत्यनेन सन्दर्भेण ज्ञायते यद् वेदे शूद्राणां यज्ञाधिकारः स्पष्टमाभधीयते इति।

अथ च पुनः अथर्ववेदे। "समानो मन्त्रः समितिः समानी···" समानं व्रतं सहचित्तमेषामित्यस्मिन्मन्त्रे साधारणतया सर्वेभ्यो वर्णेभ्यः सर्वेधिकाराः प्रदत्ताः सन्ति—पुनः, अथर्ववेदे "प्रियं मा कृण देवेषु प्रियं राजसु माकृणु प्रियं सर्वस्य पश्यत उतशूद्र उतार्ये"।

अत्रापि शूद्रशब्दः ब्रह्म क्षत्रिय विट्सु सामान्येन पठितो दृश्यते, तस्मादत्रापि वेदे सर्वेषां वर्णानां समानाधिकार एव दृश्यते।

मीमांसायाम् । जैमिनिरप्याह—"चातुर्वर्ण्यमविशेषात्"—इत्यस्मिन्सूत्रे चतुर्णां वर्णानामविशेषेण यज्ञाधिकारः क्लप्तोदृश्यते इतोऽग्रे "निर्देशाद्वात्रयाणामित्यादि" सूत्रं दृश्यते परं पुनरग्रे जैमिनिः समाधत्ते—"निमित्तार्थेन बादरिस्तस्मादत्रापि सर्वाधिकार स्यात्"। अयमिदानीं सिद्धान्तः यद्बादरिमते सर्वेषामेववर्णानां यज्ञाधिकारोऽस्ति तस्माद्भवदुक्तममान्यम्, अथ च ऐतरेयब्राह्मणकर्त्रेव यदा शूद्रोऽभूत्तदा ऐतरेयब्राह्मणमेव कथं रचितवान्। कथंचतेन वेदाध्ययनं कृतमिति समाधेयम्—अत्र प्रश्नाः—

(१) "अयज्वानमदेवयुमित्यत्र" वर्णपराः के शब्दाः पठिताः यैः शूद्रस्य ग्रहणम्।

(२) "शूद्रो यज्ञेऽनवक्लृप्त" इति पूर्वपक्षः विष्णुस्मृतौ।

"पंचयज्ञविधानन्तु शूद्रस्यापि विधीयते, प्रोक्तस्तस्य नमस्कारः कुर्वन्नित्यं न हीयते" इति स्मृतावपि स्पष्टं शूद्रस्य यज्ञविधानं दृश्यते अस्य किमुत्तरम्। "यज्ञेनयज्ञमयन्त···" इति श्रुतेस्तु नायमर्थः यथा भवताभिधीयते, कस्यापि भाष्यमत्र प्रामाणिकं प्रमाणं स्यात्—पुनः समाधीयताम्।

शार्ङ्गधर शास्त्रे—"द्विजानां षोडशैव स्युः शूद्राणां द्वादशैव हि-अत्राप्याधिकारः"। शांखायनश्रौतसूत्रे—"गायत्रीछन्दसो ब्राह्मणाः···" त्रिष्ट ट् छन्दसः क्षत्रियाः, जगतीछन्दसो विशः, अनुष्टुप् छन्दसः शूद्राः, अत्रापि शूद्राधिकारः। एतेषु प्रमाणेषु सत्सु शूद्राणां यज्ञाधिकारो नास्तीति वचनं सर्वथा "वेदशास्त्रस्मृतिविरुद्धम् भवति" बलंचेत् समाधीयताम्। यच्चान्यदप्युक्तमैतिह्यादिकं तत्सर्वंवेदविरोधाद्रुपेक्ष्यमेव—इति सर्वमवदातम्॥

हस्ताक्षर—
"देवेन्द्रनाथ"

उपरोक्त प्रथम पत्र (उत्तरपक्ष) का भाषानुवाद—

आज के शास्त्रार्थ का विषय नीचे लिखा जाता है—

हरिजन नाम से प्रसिद्ध शूद्रों को शिक्षा-दीक्षा पूजन पाठ, धार्मिक मन्दिर, यज्ञस्थान तथा अन्य धार्मिक स्थानों सार्वजनिक संस्थाओं कुए तालाब नदी आदि और पाठालय आदि में ब्राह्मण आदि के समान ही अधिकार हैं।

इस विषय में बाधा डालना अवैदिक और ऋषियों तथा आर्यों के आदर्श से विरुद्ध है इसलिए यह नहीं माना जा सकता क्योंकि वेद विरुद्ध विषयों का मानना पाप का मूल है।

माननीय सज्जनो !

मेरे प्रतिवादी ने जो यह कहा कि शूद्रों को यज्ञ का अधिकार नहीं है वह ठीक नहीं है। क्योंकि वेद में इसका प्रतिपादन साफ दीखता है जैसे कि—"**अग्निर्ऋषिः पवमानः**···" आदि मन्त्र में आये हुए "**पाञ्चजन्य**" शब्द से चारों वर्ण तथा निषाद का भी ग्रहण किया जाता है। मैं भगवान् दयानन्द के भाष्य का उद्धरण नहीं देता बल्कि आप जिन उव्वट और महीधर के भाष्यों को मानते हैं उन्हीं को उद्धृत करता हूं। उव्वट इस मन्त्र में पाञ्चजन्य शब्द का अर्थ—"**जो पांचों मनुष्यों को हितकारी हो**" ऐसा करते हैं अर्थात् चारों वर्ण और पांचवां निषाद, इनका यज्ञ के भीतर अधिकार है यही बात महीधर आचार्य भी कहते हैं। यजुर्वेद के—"**विश्वस्य केतुभुर्वनस्य गर्भः**···" मन्त्र में भी महीधर ने पञ्चजन शब्द का ऊपर वाला ही अर्थ किया है। इसलिए वेद में शूद्र को यज्ञ का अधिकार स्पष्ट है। अथर्ववेद में—"**समानो मन्त्र समितिः समानी**···" इस मन्त्र में सब वर्णों को समान अधिकार दिये हुए हैं। फिर—"**प्रियं मा कृणु देवेषु**···" इस मन्त्र में भी शूद्र शब्द-ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य सबके साथ साधारण रूप से आया हुआ है। मीमांसा में—"**चातुर्वर्ण्यमविशेषात्**···" सूत्र में महर्षि जैमिनि ने चारों वर्णों को यज्ञ का अधिकारी बताया है।

इससे आगे "**निर्देशाद्वा त्रयाणां**" है। परन्तु आचार्य जैमिनि ने—"**निमित्तार्थे न बादरिः तस्मात् सर्वाधिकारः स्यात्**···" इसमें सबको यज्ञ का अधिकारी बताया है। इसलिए आपका कहना युक्ति संगत नहीं हो सकता "**जब ऐतरेय ब्राह्मण का कर्ता ही शूद्र (१) था तब उसने किस तरह तो वेदों को पढ़ा और किस तरह ऐतरेय ब्राह्मण को बनाया ?**" आगे आपके प्रश्नों का उत्तर इस प्रकार है। (१) "**अयज्वानमदेवयुम्**···" इस मन्त्र में वर्ण परक कौन से शब्द हैं ? जिनसे आपने शूद्र का ग्रहण किया। (२) "**शूद्रो यज्ञेऽनवक्लृप्त**" इति इसको पूर्वपक्ष में मानकर ही मीमांसाकार ने विवेचन किया है। विष्णु स्मृति के भीतर यह श्लोक आता है—"**पंच यज्ञ विधानन्तु**···" इत्यादि यह श्लोक शूद्र को पंचयज्ञ का स्पष्ट अधिकार देता है। इसका उत्तर आपके पास क्या है ?—"**यज्ञेन यज्ञमजयन्त देवाः**" इस श्रुति का अर्थ किसी प्रामाणिक भाष्य से कीजिए आपकी कल्पना नहीं मानी जा सकती। शार्ङ्गधर धर्मशास्त्र में द्विजों को १६ संस्कार और शूद्रों को १२ संस्कार बताए हैं। इससे भी सिद्ध है कि शूद्रों के भी संस्कार होते हैं।

शांखायन श्रौत सूत्र में "**गायत्रीछन्दसो ब्राह्मणः**" इत्यादि प्रमाण से गायत्री छन्द से ब्राह्मण, त्रिष्टुप् छन्द से क्षत्रिय, जगती छन्द से वैश्य, अनुष्टुप् छन्द से शूद्र, रचे हुए माने जाते हैं। इन प्रमाणों के रहते हुए यह कहना कि शूद्रों को यज्ञ का अधिकार नहीं है सर्वथा वेदशास्त्र तथा स्मृति विरुद्ध है। यदि आपमें बल हो तो इनका समाधान कीजिए शेष बातें जो आपने मौखिक कही हैं वे वेद विरुद्ध होने से नहीं मानी जा सकती।

हस्ताक्षर—

"देवेन्द्रनाथ"

वर्णाश्रम स्वराज्य संघ (सनातनधर्मियों) की ओर से द्वितीय पत्र—

॥ श्री हरिः ॥

[शास्त्रार्थे-पूर्वपक्षीयं-द्वितीयं-पत्रम्]

देव्यायचेति-मङ्गलम्,

(१) **मान्य महाभागाः !!** वेदे पंचजन शब्दो होतृयजमानादिपरः। "आयुंनयुंनमसेति" (६।११।४)

ऋग्वेदीय मन्त्रे सायणकृतार्थस्य-तथोल्लेखात्। "चत्वारऋत्विजो गृहपतिपंचमाः" इति शतपथ (८।२।६।११) श्रुते। "यदिन्द्रग्नीतिऋग्वेदीयमन्त्रे" (१।१०८।८) यदु-तुर्वशादयः पंचजनाः। "देवाः पितरो-मनुष्या" इति निरूक्तम्।

(२) समानोमन्त्रं-इति; यज्ञ यजमानकथनम् (नेश्वरकथनम्)।

(३) पूर्वपक्षमुपस्थाप्योत्तरपक्षे-मीमांसासूत्रम्। "पिवावेद निर्देशात्" इत्येव।

(४) अनुष्टुप्-छन्दसः शूद्रः-इतिकथनं मन्त्रेजातिविभाग परम्। पिंगलछन्दः सूत्रे-तथा गोत्र दर्शनात्।

(५) "शूद्रस्य पंचयज्ञाः सत्यभाषणादयः" गोतमेनस्मृतौ (१०।४।४) दर्शिता। "प्रोक्तस्तस्यनमस्कारो मन्त्र" इतिस्मृतिमतम्। ब्राह्मणादीनांकृते-पृथक्तया पंचयज्ञ विधानात्।

(६) वाद्यवादिनांप्रवेशस्तु-नगर्भगृहेभवति-किन्तु-गोपुरएव।

(७) "अन्त्यजैः स्वीकृते तीर्थे"—(१८६) इति—संवर्तस्मृति वचनं-तीर्थ-तड़ाग-नदीप्रवेश विरोध-परमन्त्यजानाम्। तस्मान्नतत्र-तेषामधिकारः।

(८) वर्णव्यवस्था प्रसंगे (चाण्डालापेक्षया) यवनोऽधम-उत (यवनापेक्षया) चांडाल-इति-भवद्भिरेव मुच्यताम्।

(९) वेदान्तदर्शने "श्रवणध्ययनार्थ प्रतिषेधात्···१।३।३८" इतिव्यासमतं-पूर्वमीमांसा समर्थकम्।

(१०) "जपस्तप" इत्यत्रिवचनं (भवद्भिः) कुतोनविविच्यते ?

(११) "महीधरभाष्यादतिप्राचीनं (सायणभाष्यं) तथा (यदुक्तं प्रथम पत्रे) सतपथोमं···च-कुतोनविचार्यते ?

(१२) गोचर्मनिर्मितं "चर्मपात्रं" यवनाः कूपे प्रक्षिपन्तीति भवत्कथनमनर्गलम्। प्रमाणाभावात्।

(१३) पूर्व पक्ष प्रसंगं विहाय-तद्विरुद्धं-जनताभिमुखीकरणंशास्त्र-दुर्बलतासूचकम्।

(१४) मालवीयादयः प्राड्विवाकाः। न वेदज्ञाः पण्डिताः।

(१५) अस्मन्मतं-देशकालविरुद्धं-इतियद्भवतांकथनं-(तदपि) न शास्त्रानुकूलम्। बौद्धसमये श्रीशंकराचार्याणां तथाविधकार्य दर्शनात्।

(१६) जनतायाः (बहुमतं) कर्तव्याकर्तव्यविषये न धर्मनिर्णायकम्। किन्तु "शास्त्रमेव"। तस्मादवैदिको भवतांपक्षः।

हस्ताक्षर—
"अखिलानन्दस्य"
३१-७-३३

उपरोक्त द्वितीय पत्र (पूर्व पक्ष) का भाषानुवाद —

मान्य महाभाग ! वेद में पंचजन्य शब्द—"होता" और "यजमान परक" है। क्योंकि—"आयुं नयं नमसा एतहव्या-अंजंतिसुप्रयसं पंचजनाः (६-११-४) ऋग्वेद के इस मन्त्र में सायण ने ऐसा ही माना है। ऋत्विगादि चार और पांचवां गृहपति पंचजन्य कहाते हैं। ऐसा शतपथ में आया है। "यदिद्राग्नि यदुषुतुर्वशेषु, यद्द्रुह्यु-ष्वनुषुपूरूषुस्थः। (ऋग्वेद १-१०८-६) इस मन्त्र में—"यद्दतुर्षशादयः···" पंचजन लिखे हैं। तथा—"देवाः पितरो, मनुष्याः" ऐसा निरुक्त का पाठ है। अर्थात् देव, पितर, मनुष्य, गन्धर्व, अप्सरा, इन पांचों को भी पंचजन कहा है।

तथा—"समानो मन्त्रः···" इस ऋग्वेद के मन्त्र में यज्ञ में बैठा हुआ यज्ञमान कहता है। पूर्व पक्ष रखकर भी मीमांसाकार ने उत्तर पक्ष में—"अपिवा वेद निर्देशादित्येव···" ऐसा कहा है। "अनुष्टुप्" छन्द से शूद्र उत्पन्न हुए यह जाति विभागपरक है। पिंगल सूत्र में गौत्र देखे जाते हैं, ऋषि गौतम ने १०-४-४ में शूद्र के शूद्र से पंच यज्ञ सत्य भाषणादि लिखे हैं। स्मृति का मत यह है कि, शूद्रों को नमस्कारमन्त्र बताया गया है।

नोट—

"आर्य पक्ष की ओर से पूछा गया था कि जब तबले वाले यवनों को आप मन्दिरों में बुलाते हैं। और देवता के पास गाना-बजाना करते हैं, तो शूद्रों को क्यों इस अधिकार से वंचित रखते हैं? इस पर दूसरे पक्ष अर्थात् सनातन धर्म की ओर से श्री पण्डित अखिलानन्द जी ने कहा कि—

बाजे बजाने वालों का प्रवेश गोपुर तक ही होता है, गर्भ गृह तक नहीं। अन्त्यज लोग तीर्थ पर जाकर तालाब, नदी आदि पर जल नहीं पी सकते क्योंकि अन्त्यजों का अधिकार वहां नहीं है। आप बताइये कि क्या मुसलमान, चाण्डाल से भी नीच होते हैं? उनके लिए आपके पास क्या प्रमाण हैं? व्यास जी का मत, जो यह बताता है कि—शूद्र को सुनने व पढ़ने का भी अधिकार नहीं है यह मीमांसा का समर्थक है। क्योंकि सायणचार्य जी महीधर से पहले हुए हैं, इसलिए महीधर का मत नहीं माना जा सकता। आपने जो यह कहा कि—मुसलमान गाय के चमड़े से बने हुए डोल द्वारा पानी खींचते हैं। उनका कुएं पर कैसे अधिकार है? यह आपका कथन सर्वथा झूठा है। मुसलमान कभी ऐसा डोल कुएं में नहीं डालते। आप कहते है कि मालवीय जी आदि हमारे पक्ष के समर्थक हैं, सो ये लोग तो वकील हैं। ये वेदों को क्या जानें? आपका यह कथन कि—आपका कथन, देश और काल के विरुद्ध है। शास्त्रानुकूल नहीं, बौद्धकाल में शंकराचार्य के उस प्रकार के काम दिखाई देते हैं, चाहे जनता का बहुमत भी इस विषय में हो, तो भी धर्म निर्णय में नहीं माना जा सकता। इसलिए आपका पक्ष सर्वथा अवैदिक है।

हस्ताक्षर—
"अखिलानन्द"
३१-७-३३

आर्य कुमार सभा (आर्य समाजियों) की ओर से द्वितीय पत्र—

॥ ओ३म् ॥

[शास्त्रार्थे-उत्तरपक्षीयं-द्वितीयं-पत्रम्]

सज्जनाः !

इदानीं प्रतिवादिमतं तत्स्वीकृतग्रन्थेभ्य एव खण्डयतेभागवत ११ स्कन्धे। एतद्वै सर्ववर्णानामाश्रमाणाञ्च संमतम्, श्रेयसामुत्तमं मन्ये स्त्रीशूद्राणाञ्चमानद। इतोऽग्रे मल्लिगमद्भक्तजनदर्शन स्पर्शनार्चनम्-परिचर्या स्तुतिः।

प्रह्वगुण कर्मानुकीर्त्तिनम् इत्यनेन सन्दर्भेण सर्वैः वर्णैः विष्णोरर्चनं विधेयमिति स्पष्टमुद्घोष्यते भागवतस्य खण्डनं विधेयम्। भगवद् गीतायाम्—"मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः। स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्राः तेऽपि यान्ति परां गतिम्"।

क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं नियच्छति। कौन्तेय ! प्रतिजानीहि नमे भक्तः प्रणश्यति इत्यत्र सर्वेषामसाधारण्येनग्रहणम्। निर्णय सिन्धौ—

यस्तु पूजयते लिङ्गं देवादिं मां जगत्पतिम् । ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रो वा मत्परायणः । तस्य प्रीतः प्रदास्यामि शुभांल्लोका-ननुत्तमान् । तथाच निर्णयसिन्धौ-चतुर्वर्णैस्तथा विष्णु प्रतिष्ठाप्यः सुखार्थिभिः । किं बहूक्तेन मुनयः स्त्रीणामपि तथान्यतः । अधिकारोऽस्ति सर्वासां शिवलिङ्गार्चनं द्विजाः । (महाभारत भीष्म पर्वणि)—

"ब्राह्मणैः सचिवैर्वैश्यैः शूद्रैश्च कृतलक्षणैः । अर्चनीयश्च सेव्यश्च पूजनीयश्च माधवः" ।। एवमत्र भवदभिमतेभ्यो ग्रन्थेभ्यः शूद्राणां शिवार्चनं दर्शनं, पूजनं संसाध्य इदानीं पृच्छ्यते भवान् । किं वैष्णवाणामाचार्याः भक्तिसारकणिकृष्ण मुनि वाहनशठकोपादयः सर्वेपि शूद्रा नाभवन् कथं पुनस्ते आचार्यपदभाज आसन् अत्र किं समाधानम् ? अत्रिस्मृतौ । देवयात्राविवाहेषु यज्ञप्रकरणेषु च, उत्सवेषुच सर्वेषु स्पृष्टास्पष्टं न विद्यते—अत्र स्पर्शास्पर्शयोर्ग्रहणमेव नष्टम् । वेदे यदि पंचजनशब्दः अन्यार्थपरः तदा उव्वटमहीधरभाष्ययोः कोस्त्यभिप्रायः ।

महीधरभाष्यात्प्राचीनं सायणभाष्यमिति चेद् भवन्त स्ततोऽपि नवीनाः तस्माद्भवत्कथनं कथं स्वीकृतं स्यात् । शूद्रोयज्ञेऽनवक्लृप्त इत्यधिकृत्य चातुर्वर्ण्यमविशेषादिति जैमिनिमु नेना समाहितम् । निरुक्ते पंचजनशब्दनिरुक्तिरेवं विधीयते पृष्ठे १८९ चत्वारा वर्णाः निषादः पंचम इत्यौपमन्यवः । ऋग्वेदे । तदद्य वाचः प्रथमं मंसीयं येनासुराअभिदेवा असाम । ऊर्जादवत यज्ञियासः पंच जना मम होत्रं जुषध्वम् (अत्रैवनिरुक्तकारः) तस्माद्भवत्कथनं मिथ्यैवास्ति निषादः प्राणि वध जीवनः ।

न नीचो यवनात्परः इत्यस्मात् शूद्रेभ्यो न केवलं नीचत्वमपि तु धर्म्मविरोधात्ततोप्यधर्मत्वम् पुराणैः स्वीक्रियते भवन्तोऽपि यात्रायां वाष्पयानादिषु तिष्ठन्तः नलयन्त्रेषु जलं पिबन्तः किं स्वात्मानं पृथक् कर्त्तुं शक्ताः ? प्रतिवाद्यपि "शास्त्रि" "आचार्य" पदं न प्राप्तवान् तस्मात् तस्यापि कथनं न समज्जसम् यथा मालवीयस्तथा भवानपि । गवर्नमेण्टस्तु शूद्रेभ्यो सर्वानधिकारान् ददाति इति भवता कर्णेहृत्य निरीक्षणीयम् वयमपि दूषितावस्थायां रजस्वलासु स्त्रीषु असंस्कृतेषु ब्राह्मणेष्वपि भेदं कुर्मः । तथैव दयानन्दर्षिः लिखितवान् । यदि गुरुवयूरमन्दिरं शूद्रेभ्यो नोद्घाटितं, तदा वेदविरुद्धमेवाचरितम् तेऽपि भवत्सदृशा एव । निषादभोजनं भगवता रामचन्द्रेण कुतो न स्वीकृतमित्यत्रोच्यते रामायणे एवं पाठोऽस्ति ।

"सर्वं तदनु जानामि नहि वर्त्ते प्रतिग्रहे । कुशचीराजिनधरं फलमूलाशनंच माम्" ।। अयोध्या काण्डे-अत्रहि रामचन्द्रः फलमूलाशी एवाभवत् तस्माद् निषाद भोजनं न स्वीचक्रे । परं शवर्य्याः स्पृष्टानि फलानि कथं स्वीचक्रे इत्यभिधीयताम् । यदुच्यते समानो-मन्त्रः—इति यजमान कथनम् भवेन्नाम तथा परमस्याः श्रुतेस्त्वयमेवार्थः सायणाचार्य्यसंमतः, अस्य किमुत्तरम् ।

शूद्रस्य पंच यज्ञाः सत्यभाषणादयः स्युः परमनेन विधानेन ब्राह्मणादीनां यज्ञाः कथं खण्डिताः विष्णुस्मृतेरत्र खण्डनं क्वास्ति, पण्डित भीमसेन शर्माणः अत्र प्रमाणम् । यदि शूद्रः पादयोरुद्धर्तनं कुर्यात्तदापि तु स स्पृष्ट एव । तडागादिष्वप्यधिकारं निषेधता भवता शूद्राः कुक्कुरशृगालादिभ्योऽप्यधः पातिता इत्यहो विडम्बना ।

हस्ताक्षर—
"देवेन्द्रनाथ"

उपरोक्त द्वितीय पत्र (उत्तरपक्ष) का भाषानुवाद—

सज्जनो !

सबसे पहले हम अपने प्रतिवादी के मत का उसी के ग्रन्थों से खण्डन करते हैं । भागवत के ११ वे स्कन्ध में "एतद्वै सर्ववर्णानां···" इत्यादि श्लोक आया हुआ है जो स्त्री और शूद्र को भी पूजन और अर्चन का अधिकार देता है । मल्लिङ्ग, मद्भक्त जन दर्शन आदि बहुत लम्बे प्रकरण में पूजा आदि का विधान भागवत में सब के लिये किया गया है । भगवद् गीता में भी भगवान कृष्ण ने "मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य···" इस श्लोक में स्त्री, वैश्य और शूद्र को

मोक्ष का अधिकारी बताया है निर्णय सिन्धु में लिखा है कि जो मेरे लिंग को ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य शूद्र भक्ति से पूजता है मैं उसको शुभ लोक देता हूं। आगे इस ही ग्रन्थ में लिखा है कि विष्णु की मूर्त्ति चारों वर्णों को स्थापित करनी चाहिये। इसी तरह से आगे आता है कि शिव लिंग के पूजन में औरों की तो बात क्या कहें स्त्री को भी पूरा अधिकार है। महाभारत भीष्म पर्व में ऐसा आया है कि चारों वर्णों को माधव की सेवा करनी चाहिये।

इसी तरह आपके माने हुये ग्रन्थों से ही शूद्रों को शिव का अर्चन, दर्शन और पूजन सिद्ध हो जाता है। मैं आप से पूछता हूं कि वैष्णवों के आचार्य भक्तिसार कणिकृष्ण, मुनि वाहन, षटकोप आदि सभी "सारे के सारे" शूद्र थे वा नहीं। फिर उनको आचार्य की पदवी कैसे मिली ? अत्रिस्मृति में लिखा है कि देव यात्रा, विवाह यज्ञप्रकरण और उत्सव इनमें छूत छात नहीं होती। यदि पंचजन शब्द का अर्थ आप और बताते हैं तो महीधर और उव्वट के भाष्य की क्या संगति होगी ? यह कहना कि सायण के भाष्य से महीधर का भाष्य नवीन है इसलिये माननीय नहीं है, तो आप तो बिलकुल नवीन हैं आप का कथन झूठ क्यों नहीं ?

जैमिनि मुनि ने सिद्धान्त में सब वर्णों को यज्ञ का अधिकार ही सिद्ध किया है। पंचजन शब्द का निरुक्तकार क्या अर्थ करते हैं लो आप निरुक्त उठा कर देखिये। पृष्ठ १८६ पर **"चत्वारो वर्णाः निषादः पंचजनः इति औपमन्यवः"** यह मत निरुक्तकार ने दिया है। और निषाद को अन्त्यज माना है आपने जो यह पूछा कि क्या मुसलमान, भंगी और चमारों से भी नीच है ? इस का उत्तर यह है कि वे इनसे न केवल नीच हैं बल्कि हमारे धर्म विरोधी होने से नीचों से भी नीच हैं। और **"न नीचो यवनात्परः"** इस प्रमाण से पुराण भी ऐसा ही मानते हैं। जब आप रेल में नल के पानी में चमार और भंगी से परहेज नहीं करते तब छूआछूत कहां रही ? आपने कहा कि मालवीय जी ने शास्त्री, आचार्य परीक्षा पास नहीं की है वह सिर्फ वकील हैं उनकी बात मानी नहीं जा सकती। उसका उत्तर यह है कि आपने भी तो कोई शास्त्री वा आचार्य्य परीक्षा पास नहीं की फिर आप की बात कैसे मानी जाय ? आप कहते हैं कि स्वामी जी भी चमार भंगियों के हाथ के खाने का निषेध करते हैं। हम भी मानते हैं कि यदि कोई अपवित्र रहता हो तो चमार ही क्या ! अपनी स्त्री रजस्वला और अपवित्र ब्राह्मण के हाथ का भी नहीं खाना चाहिये। ऋषि के लिखने का तात्पर्य यही है।

आपने यह भी कहा कि रामचन्द्र जी ने निषाद का भोजन लेने से मना कर दिया था। यह बिल्कुल झूठ है वहां तो यह लिखा है कि रामचन्द्र जी फल फूल खाकर ही वन में रहने की प्रतिज्ञा कर चुके थे इसलिये उन्होंने निषाद के लाये हुए उत्तमोत्तम पदार्थों का ग्रहण नहीं किया। रामचन्द्र जी ने कहीं नहीं कहा कि तू शूद्र है इसलिये तेरा भोजन नहीं करता। यदि यही बात होती तो शबरी के बेर क्यों खाते ? **"समानो मन्त्रः......"** इस श्रुति का अर्थ सायणाचार्य्य ने भी हमारे अर्थों के अनुकूल ही किया है। पंचयज्ञ का अर्थ सत्यभाषणादि भी हो सकता है परन्तु विष्णुस्मृति में यही अर्थ है जो हमने किया है। पं० भीमसेन शर्म्मा के भाष्य को देखिये। आपने यह भी कहा कि कुए, तालाब, नदी आदि के खास घाटों में अन्त्यज आदि को जल के लेने का अधिकार नहीं है। मैं पूछता हूं कि कुत्ते और गीदड़ तो वहां पानी पी सकते हैं। किन्तु एक अन्त्यज मनुष्य होता हुआ वहां जल नहीं पी सकता ! इस से अधिक और आप का पतन क्या हो सकता है ?

हस्ताक्षर—

"देवेन्द्रनाथ"

वर्णाश्रम स्वराज्य संघ (सनातन धर्मियों) की ओर से तृतीय पत्र—

[शास्त्रार्थे-पूर्वपक्षीयं-तृतीयं-पत्रम्]

मान्य महाभागाः !!! श्रीमद्भागवते—"स्त्रीशूद्रद्विजबंधूनां त्रयी न श्रुतिगोचरा"। (१।४।२)—इति पद्यं—भवत्कथन विरोधे-प्रमाणभूतम्। महाभारतेशूद्रैश्चकृत लक्षणैः (महाभारत भीष्म ६६।३६) इति व्यास वचनं-चाण्डालचर्मकारादिनां न वाचकम्। भगवद्गीतायां—"मांहि पार्थ व्यपाश्रित्येति"—भगवत्कथनं-पापयोनित्वे शूद्राणां विस्पष्टं प्रमाणम्।

"देवयात्राविवाहेषु—" इतिपद्ये-चलमूर्ते-र्वरयात्रायाः-संगतीकरणस्यच-ग्रहणम्। न यज्ञादीनाम्। यज्ञे शूद्र गमन विरोधात्। निरुक्ते-पंचजन-प्रसंगे-निषाद पंचमाश्चत्वारोवर्णाः पंचजना-इत्यौप मन्यवमतं प्राय एक मतम्। तदप्यवैदिकम्। शतपथ श्रुति विरोधात्। सायणाचार्या पेक्षया-येऽर्वाचीना महीधरादय स्ते वेद प्रवक्तारोपि-नतथाविधतत्वज्ञ-समकक्षाः। अथ च—"यदा प्रतिष्ठितं लिंगम्" इति-नारद पुराण वचनं-प्रत्यक्षमेव-शूद्र पूजन निषेध परम्। निर्णयसिंधावपि शूद्र पूजन विषेधोविद्यते। दृश्यताम्।

(१) "चौर चाण्डाल पतित···"। (२) प्रासाद देवहर्म्याणाम्···। (३) चाण्डालैरत्यजैश्चैव···। (४) अन्त्यजातिरविज्ञातः···। (५) रुद्रस्यवाथ विष्णोर्वा···।

इत्यादि वचनानां (सिद्धान्तशेखर, वृहद्धारीतस्मृति, भृगुसंहिता-पस्तंच, कारिकावृत्ति; हयशीर्ष पंचरात्रादि-ग्रन्थगतानां) विस्पष्टं विरोधात्-नमन्दिरे-चाण्डालादीनांप्रवेशः। महाभारते-भवदुक्तं—"पूजनीयश्चमाधवः" इति पद्यं कुत्र चिन्न विद्यते ? वर्ततेचेत्पुस्तकं-प्रदर्श्यताम्। भवत्कृतो-वैष्णवाचार्याणामुपर्याक्षेपोव्यर्थ एव प्रतीयते। तथा विधकर्तव्ये-तेषां-सामर्थ्य विशेष संभवात्। जगन्नाथ पुर्यां सर्वेजना-उच्छिष्टभोजिन-इतिभवत्कथनं प्रत्यक्ष-विरुद्धम्। वहवस्तथा विधास्तत्र विद्यन्ते-महानुभावाः। येस्वयमेवपचन्ति-नभुञ्जते कदापि-परपक्वम्।

पण्डित मदनमोहन मालवीयो-यदि-विश्वविद्यालय गतैर्वेतनभोजिभिः पण्डितैः स्वार्थसाधनायस्तूयते (?) किमात्राश्चर्यम्। परमस्मन्मते न मालवीयो विद्वान्। कथमन्यथा शास्त्रार्थात् पलायते। हरद्वारस्थेऽर्द्धकुम्भी महोत्सवे-तथा विधव्यवहार दर्शनात्। यवनापेक्षया-चर्मकारः कथमुत्तम (?) इति नाद्यावधि प्रतिपादितम्। शक्तिश्चेदत्रविषये-प्रमाणं-प्रदर्श्यताम्। मया द्विवारं-पूर्वपत्रयोर्मध्ये-दत्तानिप्रमाणानि-भवद्भिरद्यावधि न विवेचितानि। प्रत्यक्षमेतद्भवतां-दौर्बल्यम्। मन्मते-वेदधर्मशास्त्र-दर्शनविरोधाद्भवतांपक्षः सर्वथाशास्त्र विरुद्ध इतिमत्वाविरम्यते। तदेतत्सर्वं भवदातम्।

हस्ताक्षर—
"अखिलानन्दस्य"
३१।७।३३

उपरोक्त पूर्व पक्ष (तृतीय पत्र) का भाषानुवाद—

माननीय महाभाग !

श्री मद्भागवत के "स्त्री शूद्र द्विजबन्धूनाम्······"[1] इस श्लोक से यह बात सिद्ध करती है कि, स्त्री, शूद्र और द्विजबन्धु को मन्दिरों में जाने का अधिकार नहीं है, महाभारत का जो आपने प्रमाण दिया, वहां चमार आदि का जिकर नहीं है। "मांहिपार्थं व्यपाश्रित्येति···" यह जो आपने गीता का प्रमाण दिया, इससे ही सिद्ध हो गया कि शूद्र पाप योनि हैं।

नोट—

इसी की व्याख्या करते हुए पण्डित अखिलानन्द जी ने कहा कि—शूद्र, स्त्री और वैश्य सभी पापयोनि हैं, इसलिए उनको मन्दिर प्रवेश का अधिकार नहीं है, जिसको आपने कई बार अपने भाषण में दोहराया, जिसके कारण उपस्थित जनता और नगर की वैश्य जाति में भारी आन्दोलन फैल गया। आगे फिर पण्डित जी का कथन देखिये—

—"देवेन्द्रनाथ"

"देवयात्रा आदि श्लोक से यह सिद्ध होता है कि बारात में और ऐसे-वैसे उत्सवों में अन्त्यज साथ में जा सकते हैं, यज्ञ में नहीं जा सकते, सायण की अपेक्षा उव्वट, महीधर, नवीन होने से मैं उनके अर्थों को नहीं मानता। पञ्चजन का अर्थ जो उपमन्यु ने किया है, वह निरूक्त का मत नहीं है। हारीत स्मृति, भृगुसंहिता, आपस्तम्ब, कारिका वृत्ति, पञ्चरात्र, आदि ग्रन्थों के विरोध होने से चाण्ड़ालादि का मन्दिर में प्रवेश नहीं हो सकता। वैष्णवों के आचार्यों में तेज विशेष था, इसलिए वे आचार्य हो गये।

नोट—

मैं चार बार जगन्नाथपुरी गया हूं। मैंने देखा है कि वहां कोई भी झूठा नहीं खाता। इसी अवसर पर भाषण में आपने फिर कहा कि झूठा खाना आवश्यक नहीं, वह तो यात्री की इच्छा पर निर्भर है। फिर देखिये पण्डित जी क्या कहते हैं ?

—"देवेन्द्रनाथ"

"मालवीय जी के पैर यदि उनके नौकर पूजते हों तो क्या आश्चर्य है ? परन्तु वह कोई विद्वान पुरुष नहीं हैं, अन्यथा कुम्भ के अवसर पर हरिद्वार में शास्त्रार्थ से डर कर क्यों भागे थे ? आप सिद्ध कीजिये कि चमार से मुसलमान कैसे नीच हो सकता है ? वेद विरुद्ध होने से आपका पक्ष सर्वथा कमजोर है।

आर्य कुमार सभा (आर्य समाजियों) की ओर से तृतीय पत्र—

[शास्त्रार्थे-उत्तरपक्षीयं-तृतीयं-पत्रम्]

महाभागाः।

पूर्वं प्रतिवादिनो मतं पूर्वमीमांसया खण्डयित्वा पश्चादुत्तरयिष्यते। जैमिनिराह निमित्तार्थेन वादरिस्तस्मात्सर्वाधिकारः स्यात् इत्यनेन सूत्रेण सर्ववर्णाधिकारः जैमिनिनास्थाप्यते। (१) "समानो मन्त्रः समितिः समानी···"। (२) "समानी प्रपा सहवोऽन्नभागः···"। (३) "अग्निर्ऋषिः पवमानः···"। (४) "विश्वस्य केतुर्भुवनस्य गर्भः···"। (५) तदद्यवाचः प्रथमं मंसीय···"। एतेभ्याम न्त्रेभ्यः, अत्रागतपंचजनशब्देन, पंचजनशब्दस्य निरुक्तकृतनिरुक्तेश्च शूद्राणामपि यज्ञाधिकारः सिद्धः।

स्मृतौ—पंचयज्ञ विधानन्त्विति श्लोकः (विष्णुस्मृति) भागवते—श्रेयसामुत्तमं मन्ये स्त्री शूद्राणांच मानद इत्यनेन, मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः स्त्रियो वैश्यस्तथा शूद्रा इति गीता वाक्येन यस्तु पूजयते लिङ्गं देवादिं मां जगत्पतिम् किं बहूक्तेन मुनयः स्त्रीणामपि तथान्यतः अधिकारोस्ति सर्वासामित्यनेन ब्राह्मणैः क्षत्रियैः वैश्यैः शूद्रैश्च कृतलक्षणैः अर्चनीयश्च सेव्यश्च पूजनीयश्च माधवः इति महाभारतोक्त्या मया शूद्राणां यज्ञे, देवदर्शने, अर्चने सर्वकर्मसु च अधिकारः साध्यते-नास्य केनापि खण्डनं कर्त्तुं पार्यते। (२) वैष्णवाचार्य्याः शूद्रा आसन्। (३) महीधरादयः न वेदज्ञा अभूवन् इति कथनं भवदीयं वैदुष्यं खण्डयति। (४) शास्त्राणां निर्माणसमये

यवना नाभूवन् तस्मात्तेषां नामान्येव कथं स्युः यवनास्तु अर्वाचीना एव। यदि शूद्रः पापयोनिः स्त्रियो वैश्याश्चापि पापयोनयो भविष्यन्तीति विचार्यताम्। औपमन्यवमतं निरुक्तकारेण क्व खण्डितं तस्मात् मान्यं कथं न स्यात्।

प्रतिष्ठिते लिंगे किं स्त्रियः दर्शनार्थं न गच्छन्ति ॥२॥ निर्णयसिन्धोरस्तु खण्डनं भवतापि मन्यताम्। भवेन्नाम नारदे पुराणो किमपि। सिद्धान्तशेखरकारिकावृत्यादयो वेदविरोधादुपेक्ष्या एव। यदि महाभारते साक्षात्कृष्णस्य पूजनमभिधीयते यदा तस्य मूर्त्तेः स्पर्शः केन वारयिन्तुं शक्यः। यदि वैष्णवाचार्य्या विशिष्टतेजसा युक्ता आसन् तथापि ते शूद्रा जन्मना अभूवन् एव। मालवीयस्य प्रतिष्ठां तु न केवलं वेतनभुजः कुर्वते अपितु सर्वेप्याचार्य्यास्तत्रत्याः कुर्वते इति निश्चितम्। यवनेभ्यश्चर्म्मकारादयः सर्वथा उच्चतरा इति पुराणैरुद्घोध्यते, न वयं वदामः। जगन्नाथपुर्य्यां सहस्रशो जना गत्वा दृष्टवन्तः यच्चर्मकारादिभिर्न तत्रभेदोऽस्ति भवद्भिः प्रत्यक्ष-विरोधः क्रियते। भविष्यत् पुराणे च—न वदेद् यावनीं भाषां प्राणैः कण्ठगतैरपि हस्तिना ताड्यमानोऽपि न गच्छेज्जैनमन्दिरम्-यदा यावनीभाषाभाषणमपि पुराणकर्त्तृभिः नस्वीक्रियते तदा तेषामुच्चतरत्वं तु दूरापेतमेव। महा० रामचन्द्रेण निषादभोजनमतएव नादृतम्।

यस्मात्तेन प्रतिज्ञातमभूत् तद्यथा सर्वं तदनुजानामि नहि वर्त्ते प्रतिग्रहे। कुशचीराजिनधरं फलमूलाशनंच माम् इति कारणेन। विष्णुस्मृतौ पंचयज्ञविधानन्तु इत्यस्यार्थः भीमसेनकृतो द्रष्टव्यः। एवं सर्वेषां प्रश्नानामुत्तराणि मया दत्तानीति सर्वमवदातम्।

उपरोक्त तृतीय पत्र (उत्तरपक्ष) का भाषानुवाद—

सज्जनो !

प्रतिवादी के मत का पूर्व मीमांसा से खंडन करके शेष बातों का उत्तर पीछे दूंगा। जैमिनी ने पहले अनेक पक्ष उठाकर फिर **"निमित्तार्थेन बादरिस्तस्मात् सर्वाधिकारः स्यात्"**—इस सूत्र से सारे वर्णों को यज्ञाधिकार दिया है। (१)**"समानो मन्त्रः···"**(२) **"समानी प्रपा···"**(३)**"अग्निर्ऋषिः"**(४)**"विश्वस्य केतुः···"**(५)**"तदद्यवाचः···"** इन मन्त्रों से और इनमें आये हुये पंचजन शब्द से तथा निरुक्त कृत पंचजन शब्द की निरुक्ति से शूद्रों को यज्ञ का अधिकार मैंने सिद्ध किया। विष्णुस्मृति, भागवत भगवद्गीता, महाभारत, निर्णयसिन्धु आदि ग्रन्थों से प्रमाण देकर यह बताया कि शूद्रों को और अन्त्यजों को यज्ञ में, देवदर्शन में, पूजन में सर्वथा अधिकार है। यह ऐसे दृढ़ प्रमाण हैं कि इनका कोई खण्डन नहीं कर सकता। आप पूछते हैं कि शास्त्र से सिद्ध करो कि मुसलमान चमारों से नीचे हैं। मेरा उत्तर यह है कि शास्त्रों के निर्माणसमय से मुसलमान तो बहुत नवीन हैं उनका शास्त्र में नाम ही कैसे आ सकता है ? महीधर और उव्वट को वेदज्ञ न बताना यह आप ही जैसे महापुरुष का काम है। यदि आप शूद्र को पापयोनि कहेंगे तो वैश्य और स्त्री भी पापयोनि मानी जावेंगी तब उनसे भी आप को स्पर्श नहीं करना चाहिये (इस अवसर पर पं० देवेन्द्रनाथ जी ने पापयोनि के वास्तविक अर्थ कर्म्मप्रधान बतलाते हुए पं० अखिलानन्द जी के वक्तव्य की तीव्र आलोचना की)। निरुक्त से भी पहिले उपमन्यु का मत है और उसका खण्डन निरुक्त ने कहीं नहीं किया इसलिये वह निरुक्तकार को अभिप्रेत है। आप कहते हैं कि जब लिंग की प्रतिष्ठा हो जाती है उसके बाद स्त्री और शूद्र को उसके पूजन का अधिकार नहीं। मैं पूछता हूं कि क्या स्त्रियां मन्दिरों में जाकर जल नहीं चढ़ातीं ? आप क्या उनको वहां जाने देते हैं ? निर्णयसिन्धु और महाभारत का खंडन आपसे नहीं हो सका। सिद्धान्त शेखर, कारिका आदि ग्रन्थ वेद विरोधी होने से माननीय नहीं हो सकते। वैष्णवों के आचार्य्य चाहे कितने भी तेज से युक्त थे फिर भी थे तो जन्म से शूद्र ही उनको किस प्रमाण से अधिकार मिला ? मालवीय जी के लिये ऐसे अपशब्दों का उच्चारण करते हुये

आप को शर्म आनी चाहिये। दुःख है कि ऐसे महातमा विद्वान पुरुष के लिये जो भारतवर्ष में एक ही सच्चा ब्राह्मण है आप जैसे क्षुद्र मनुष्य ऐसे गन्दे शब्दों का उपयोग करते हैं। जब पुराण यवन भाषा के बोलने तक का निषेध करते हैं तब यह पूछना कि चमारों से मुसलमान नीच कैसे हैं आपकी पतित अवस्था का द्योतक है। मैं तो चमार और अन्त्यजों को मुसलमानों की अपेक्षा श्रेष्ठ ही नहीं अतिश्रेष्ठ मानता हूं। जगन्नाथपुरी में जाकर हजारों आदमी रोज परस्पर झूठा खाते हैं फिर भी आप सभा में झूंठ बोल रहे हैं कि वहां कोई भी झूठा नहीं खाता। इससे अधिक और लज्जाजनक बात क्या होगी ? इस प्रकार मैंने आपके समस्त प्रश्नों का उत्तर दे दिया। ओम् शमिति ।।

[शास्त्रार्थ के अन्त में निर्णायकों द्वारा फैसला]

(१) श्री महामहोपाध्याय पण्डित गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी :—

।। श्री हरिः ।।

श्रीयुत् मन्त्री जी ! वर्णाश्रम स्वराज्य संघ (चन्दौसी) !!

३१-१०-३३

श्रीयुत्,

प्रिय महोदय ! आपने श्री पण्डित अखिलानन्द जी कविरत्न का और आर्य कुमार सभा के वक्ता श्री पण्डित देवेन्द्र नाथ जी का—"स्पृश्यास्पृश्य व्यवस्था" पर लेखबद्ध शास्त्रार्थ निर्णयार्थ मेरे पास भेजा था, मुझे खेद है कि, अस्वस्थ रहने के कारण मैं शीघ्र निर्णय न भेज सका। जिससे आपको बहुत दिन प्रतीक्षा का कष्ट रहा। इसके लिये आशा है आप मुझे क्षमा करेंगे। निर्णय दो प्रकार का हो सकता है। (१) **"पक्ष किसका शास्त्रानुमत है ?"** तथा दूसरे (२) **"शास्त्रार्थ में प्रतिपादन शैली किसकी उत्तम है ?"** और किसकी ओर से त्रुटि अधिक हुई ? इसमें प्रथम प्रश्न के उत्तर में, मैं क्या कहूं ? क्योंकि सनातन धर्मावलम्बी होने—और श्रुति-स्मृति-पुराण के पूर्ण विश्वासी होने के कारण[1] पण्डित अखिलानन्द जी का और मेरा पक्ष एक ही है जो सिद्धान्त **"स्पृश्यास्पृश्य व्यवस्था"** के सम्बन्ध में उन्होंने स्थापित् किया है कि—(क) "स्पृश्यास्पृश्य व्यवस्था"—वेद शास्त्र सम्मत है। (ख) वेद पढ़ने और यज्ञ करने आदि का अधिकार शूद्र को भी नहीं है, अछूतों की तो कथा ही क्या ? (ग) अछूतों के लिए मन्दिर प्रवेशादि का आन्दोलन सनातन धर्म के मान्य शास्त्रों के विरुद्ध है। यही सिद्धान्त मेरा भी है। सभी सनातन धर्मावलम्बी वेद-शास्त्र पुराणानुगामी विचारशील धर्मप्राण विद्वानों का यही सिद्धान्त है—इस में संदेह का स्थान नहीं है। अब रहा दूसरा प्रश्न (?) कि—**"शास्त्रार्थ में त्रुटि किस की ओर है, और उत्तमता किस की ओर"** (?) इस विषय में मुझे कहना पड़ेगा कि :—

प्रतिवादी के प्रमाणों का पूरा उत्तर देना—शास्त्रार्थ का आवश्यक नियम है। परन्तु इस लेखबद्ध शास्त्रार्थ में एक ओर के प्रमाणों का पूरा-पूरा उत्तर नियमानुसार—दूसरी ओर से नहीं देखा जाता। इस त्रुटि का उत्तर-दायित्व (जिम्मेवारी) आर्यसमाजी वक्ता महाशय पर पड़ता है। क्योंकि प्रथम वार के पं० अखिलानन्द जी के

टिप्पणी—

[1]इस विषय में इस शास्त्रार्थ के निर्णयों सम्बन्धी **"समालोचनात्मक लेख"** देखे।

"सम्पादक"

प्रमाणों का उत्तर न देकर उन्होंने और-और बातें ही अधिक कहीं हैं—जो कि शास्त्रार्थ की शैली के विरुद्ध कही जा सकती है। लेख पढ़ने से यह भी प्रतीत होता है कि उत्तर वक्ता महाशय अपने भाषण में लेख के अतिरिक्त भी कुछ बातें कहते थे। यह भी लेखबद्ध शास्त्रार्थ की प्रणाली के विरुद्ध ही हुआ।

आर्यसमाजियों ओर के पत्रों से यह भी प्रतीत होता है कि वे बहुत अंश में, अपना लेख, समय आरम्भ होने से पूर्व ही तैयार कर लेते थे। क्योंकि कविरत्न अखिलानन्द जी के लेखों के उत्तर देने का उपक्रम उनके लेखों में नहीं देखा जाता। उनका उपक्रम स्वतन्त्र ही रहता है। उत्तर फिर कहीं बीच में जाकर आरम्भ होता है। इससे यही अनुमान हो सकता है कि बहुत सा अंश उनका पहले लिखा हुआ तैयार रहता था। आगे थोड़ा जोड़ कर उत्तर भेज देते थे इसी से आर्यसमाजी वक्ता के पत्र लम्बे हैं। यदि यह मेरा अनुमान ठीक है तो स्पष्ट कहना होगा कि—आर्य-समाज की ओर से यह केवल "नियम व्यतिक्रम" ही नहीं हुआ प्रत्युत एक प्रकार का मिथ्या भाषण रूप "छल" हुआ, क्योंकि नियत समय के भीतर ही लिखना और सुनना शास्त्रार्थ में आवश्यक माना जाता है।

लेखाशुद्धि भी आर्यसमाज की ओर के पत्रों में बहुत है। लिखने की ऐसी अशुद्धियां-साधारण कोटि के संस्कृत पढ़ें-लिखे भी नहीं करते। पं० अखिलानन्द जी की एक यही त्रुटि है कि उन्होंने अपने पत्र में "प्रमाण श्लोक" पूरे नहीं दिए हैं। प्रतीक मात्र देकर छोड़ दिया। संभवतः वाचिक रूप से वे उन प्रमाणों को जनता में सुना देते होंगे। किन्तु शास्त्रार्थ के पत्रों में प्रमाण पूर्ण ही लिखे जाने उचित थे।

यही दोनों ओर की त्रुटि हैं, किन्तु आर्य समाजियों की ओर से त्रुटि बहुत अधिक हैं। इस विचार से— **"वर्णाश्रम स्वराज्य संघ का ही "उत्कर्ष" सिद्ध होता है और पक्ष तो सत्य इनका है ही"। यही मेरा निर्णय है आशा है कि जिज्ञासु जनों को इससे परितोष होगा।**

आपका—

"गिरधर शर्मा चतुर्वेदी"

(संस्कृत कालेज—जयपुर)

३१-१०-३३

(२) श्री महामहोपाध्याय पण्डित आर्य मुनि जी—

॥ ओ३म् ॥

श्रीमान् रामरक्षपाल जी !

मन्त्री, आर्य कुमार सभा (चन्दोसी) !!

३-१२-३३

मैंने "चन्दौसी शास्त्रार्थ" नामक लेखों को पढ़ा, पण्डित अखिलानन्द जी ने जो हरिजनों को दस्युओं में शामिल किया है वह बिलकुल सनातन धर्म विरुद्ध है क्योंकि सनातन धर्म के पुराणों में चमारादि की उत्पत्ति ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्यादि वर्णो से है न कि दस्युओं से। पं० देवेन्द्र नाथ शास्त्री जी ने जो "पांचजन्य:" वाले मन्त्र का प्रमाण देकर इनको कुओं, मन्दिरों में चढ़ने का अधिकार दिया है वह ठीक है जब तक पंडित अखिलानन्द जी यह न सिद्ध करें कि यह दस्यु जाति में से हैं तब तक उनके शास्त्रार्थ का पक्ष बहुत कमजोर है।

इसलिए मैं **"पण्डित अखिलानन्द के विरुद्ध और पण्डित देवेन्द्र नाथ शास्त्री के अनुकूल"** फैसला देता हूं।

निवेदक—
"आर्य मुनि"
(डी० ए० वी० कालेज—लाहौर)

—उपरोक्त निर्णायक लेखों पर संक्षिप्त "समालोचनात्मक" लेख—

॥ ओ३म् ॥

शास्त्रार्थ केशरी श्री अमर स्वामी जी महाराज के निर्देशों पर आधारित—

माननीय !

पाठकगण आपने फैसले सहित इस उपरोक्त शास्त्रार्थ के वर्णन का अवलोकन किया, जो बिना किसी टीका-टिप्पणी के उद्धृत किया गया है। मेरे द्वारा इस लेख को भी लिखने की कोई आवश्यकता नहीं थी, बशर्ते कि इसके अन्त में अगर यह फैसले वाले लेख न होते। इस लेख में भी मेरा अपना कुछ नहीं है। मात्र जो स्वाध्याय व पूज्य अमर स्वामी महाराज के सम्पर्क में पाया, एवं शास्त्रार्थ सम्बन्धी कुछ आवश्यक नियम व निर्देशों सम्बन्धी उनके लेखों का अवलोकन किया तो मैंने आवश्यक समझा कि अपने पाठकों का ध्यान उस ओर अवश्य ले जाया जावे, जो कमियां उपरोक्त शास्त्रार्थ में रही हैं। जैसे—(१) लेखबद्ध शास्त्रार्थ का होना (२) संस्कृत में होना (३) निर्णायकों का होना, आदि-आदि। और आपने दोनों पक्ष के विद्वानों का निर्णय भी देख लिया ? जो शास्त्रार्थ समय से तीन व पांच माह बाद दिया गया है, जबकि दोनों ही निर्णायक शास्त्रार्थ में स्वयं मौजूद थे। इस विषय में **"स्वर्गीय, पूज्य शास्त्रार्थ केशरी श्री अमर स्वामी जी महाराज"** का लेख—**"शास्त्रार्थ के सामान्य नियम व निर्देश"** तथा **"स्व० श्री पण्डित बिहारी लाल जी शास्त्री काव्यतीर्थ"** द्वारा लिखित—**"शास्त्रार्थ के आवश्यक नियम व निर्देश"** अवलोकन करने योग्य हैं। इन दोनों लेखों का समावेश—**"निर्णय के तट पर—प्रथम भाग"** के अन्दर किया गया है।

निवेदक—
विदुषामनुचरः
"लाजपत राय अग्रवाल"

एकसौपांचवां शास्त्रार्थ–

स्थान : अमलसाड़ (सूरत) गुजरात

दिनांक : १७-४-१९०६ ई०

विषय : "पुराणादि" ग्रन्थ वेद और सृष्टि क्रम के विरुद्ध हैं

आर्यसमाज की ओर से शास्त्रार्थकर्त्ता : श्री पण्डित बालकृष्ण जी शर्मा (बम्बई)

पौराणिकों की ओर से शास्त्रार्थकर्त्ता : श्री पण्डित छोटु जी महाराज (बड़ौदा)

अन्य उपस्थित आर्य विद्वान् : १. श्री स्वामी नित्यानन्द जी महाराज,
२. श्री स्वामी शंकरानन्द जी महाराज,
३. श्री पण्डित मणिशंकर जी,
४. श्री पण्डित कृष्णराम जी,
५. श्री जय कृष्ण जी

शास्त्रार्थ के प्रबन्धकर्त्ता : श्री रा० सा० मणीलाल जी,

अन्य उपस्थित पौराणिक विद्वान् : १. द्वारिकापीठाधीश श्री शंकराचार्य माधवतीर्थ जी महाराज,
२. श्री पण्डित भीमसेन जी, (महर्षि दयानन्द के शिष्य)
३. श्री पण्डित रणछोड़ जी,
४. बलसाड़ नगर के अन्य पौराणिक विद्वान् ।

मूल छपी प्रति को गुजराती से हिन्दी भाषा में
अनुवादकर्त्ता : श्री प्रा० दयाल जी आर्य, (जामनगर) गुजरात

नोट—

यह शास्त्रार्थ कापी मूल गुजराती भाषा में छपी हुई थी, जिसका अनुवाद—"श्री प्रा० दयाल जी आर्य" ने कर इस अप्राप्य सामग्री को उपलब्ध कराया । इस पुनीत कार्य के लिए हम उनका हृदय से आभार प्रकट करते हैं ।

—"सम्पादक"

शास्त्रार्थ से पहले

द्वारिकामठ, शारदामठ के शंकराचार्य आज अनेकों महीनों से गुजरात के सूरत जिले में विजय यात्रा के उद्देश्य से घूम रहे हैं, अगर उन्हें कोई यह पूछे कि विरपुर तथा बम्बई आदि स्थानों पर क्या तुमने विजय पाई ? एवं क्या उसी तरह की विजय पाने के लिये भी यहां घूमा जा रहा है ? क्या उस पहली विजय से उनकी पूर्ण तसल्ली नहीं हुई ? जो यहां के लोगों में घूम-घूम कर विजय यात्रा कर रहे हैं। भाइयों गुरु महाराज की सवारी का जिस-जिस स्थान पर जाना होता है उस-उस स्थान पर विजय पत्रिका बांटी जाती है। किसी भी स्थान पर पहुंचने से पहले वहां के प्रतिष्ठित पुरुषों के पास एक संस्कृत भाषा में लिखित पत्र जिस पर मोहर व हस्ताक्षर सभी होते हैं, भेजा जाता है, (इस पत्र को यहां अनावश्यक समझ कर नहीं दिया गया) अब आप उस विजय पत्रिका को पढ़िये, जिसको गुरु महाराज के आगमन पर प्रत्येक स्थान पर बांटा जाता है—

श्री जगत् गुरु श्री मच्छंकराचार्यो विजयते—

श्री जगद् गुरु शंकराचार्य द्वारका मठाधीश्वर उनकी सवारी वर्तमान में विजययात्रा के उद्देश्य से शारदा-मठ के आधीन प्रदेश में घूमती है, अतः उनके दर्शन और उपदेश का लाभ चातुर्वर्ण्य प्रजा को हो सके इसलिए निम्नलिखित व्यवस्था की गई है—

(१) प्रातःकाल साढ़े पांच बजे से श्री चन्द्र मौलेश्वर, श्री द्वारिकानाथ की मंगल आरती का दर्शन, (२) प्रातःकाल साढ़े सात से साढ़े आठ तक श्री जगद्गुरु समेत शतोपचार युक्त देव पूजा के दर्शन, (३) प्रातः काल ९ से १० बजे तक आचार्य श्री का सब प्रजा को दर्शन एवं सामान्य उपदेश, (४) सायंकाल चार से पांच बजे तक स्वधर्मी जिज्ञासु लोगों का शंका समाधान, (५) सायंकाल पांच से छः बजे तक सार्वजनिक धर्मोपदेश ॥ विशेष सूचना दी जाती है कि, वर्तमान में समाजी आदि आधुनिक कपोल कल्पित कुतर्क और दुर्विवाद से भ्रमित कुछ अज्ञानी प्रजा अनादि शास्त्र सिद्ध ऐसा अपने वर्णाश्रम धर्म को त्याग कर आधुनिक मत में प्रवेश करते हैं, इसलिए समाजियों का मन्तव्य वेद शास्त्र विरुद्ध है। और उस मत में प्रवेश करने वाले, वर्णाश्रम धर्म से पतित होते हैं, ऐसा उन्हीं के ग्रन्थों से सिद्ध किया जावेगा, और (१) मूर्त्तिपूजा, (२) ईश्वरावतार, (३) परलोक सिद्धि, (४) श्राद्ध, (५) चातुर्णवर्ण्य आदि वेद प्रमाण सिद्ध है, वह भी सिद्ध किया जावेगा।

(संवत् १९०९—स्वारी स्थल)

निवेदक—
"केशवलाल मगनलाल"
(शारदामठ सर्वाधिकारी)

नोट—

अब इस उपरोक्त "विजय पत्र" पर सवाल पैदा होता है कि, जो सवारी आधीन प्रदेश में "विजय यात्रा" के उद्देश्य से घूमती है परन्तु उसने विजय किसके ऊपर पाई ? विज्ञापनपत्रों का बाहरी रूप तो बड़े आकर्षण का है, जो बड़ा ही भव्य मालूम पड़ता है, सवारी अपने आधीन प्रदेश में घूमती है, सारा राज्य तो अंग्रेजों के आधीन है। यदि उनके आधीन प्रदेश होता तो निवासियों की क्या स्थिति होती ? जहां निमन्त्रण एवम् निवास की कोई व्यवस्था ही नहीं करता वहां विजययात्रा की तो बात ही क्या ? मंचुरीया में जय पाकर जापानी सैना जैसे प्रदेशों में घूमने

निकली है वैसे ही वह सवारी भी घूमती होगी ? अर्थ में अधिक अन्तर नहीं है।

भारतीय सरकार की तरह आडम्बर रखना, वह तो बहुत सरल है, अधिक नहीं केवल दो रुपये के हैन्डबिल (विज्ञापन पत्र) का ही खर्चा है और विशेष रूप में दो-चार धगड़े' रवानगी पुलिस तो क्या पैसा खर्च करने पर तो सरकारी पुलिस भी उपलब्ध हो जाती है। शास्त्रार्थ संग्राम की बात सुनकर श्री आद्य शंकराचार्य के विषय की याद आती है, क्या उनकी विजय यात्रा अब इतने वर्षों बाद निकाल रहे हैं ? एवं क्या लोग अन्धे हो गये हैं जो घृत की मशाल से उन्हें दृष्टिवान बनाना चाहते हैं ? जनता तो पूर्व की अपेक्षा अब वर्तमान में अधिक ज्ञानवान और दृष्टि-वान दिखाई देती है। एवं पोपलीला को अच्छी तरह समझ गई है। महाराज श्री की स्वधर्मी प्रजा कौन सी है ? स्वामी, नारायणी, दादुपन्थी, कबीरपन्थी, जैनी, वैष्णवी, इन सभी को तो अपनी स्वधर्मी प्रजा मानते हैं, क्योंकि वह महाराज की कपोल कल्पित बातों में उनके साथ डुगडुगी बजाने में शामिल होते हैं, परन्तु अन्य लोग जैसे आर्य समाजी आदि जो उनकी पोपलीला का पागलपन प्रकट करते हैं, इसलिए उनको वर्णाश्रित धर्म से पतित हुआ मानते हैं।

परन्तु अगर देखा जाये कि वास्तव में वेद विरुद्ध आचरण अर्थात् दूसरे शब्दों में "पैराणिक पागलपन" कौन चलाता है ? शूद्रवत् कौन बन गये हैं ? जडवाद कौन ग्रहण करता है ? इन सभी बातों को हमारी (आर्य समाजियों की) पुस्तकों से तो सिद्ध करना दूर की बात ! स्वयं वह अपनी ही पुस्तकों से सिद्ध नहीं कर सकते। लेकिन कोई व्यक्ति शंका पूछने खड़ा होता है तो उनको सबसे पहले यही पूछा जाता है कि तुम समाजी हो या कौन हो ? और सुनिये होशियारी की बातें, कि जहां भी सवारी जाती है वहां पहुंचते ही सर्व प्रथम इन बातों की जान-कारी प्राप्त करते हैं, कि यहां समाजियों की संख्या कितनी है ? तथा उनका कितना प्रभाव है ? उनकी कितनी ताकत है ? उसी के अनुसार व्यवहार किया जाता है। अगर कोई जिज्ञासु उनको आर्य समाजी मालूम हो जावे तो उसे कहा जाता है कि—"**अभी फुरसत नहीं है**" तुम अपनी शंकाये कागज पर लिखकर हमारे सिपाही को दे दो, वह हमें मिल जावेगा। पश्चात् हमें योग्य लगने पर उत्तर दे दिया जावेगा ! वाह !! क्या होशियारी है ? उत्तर देने में पलायन का कितना अच्छा रास्ता ढूंढ़ा है ? प्रस्तुत पत्रिका (विजय पत्रिका) बांटी गयी, तब कछोली (अमल-साड़) स्टेशन से ड़ेढ़ कोस की दूरी पर गांव के कुछ अनाविल जाति के आर्य समाजियों ने महाराज श्री की विजय पत्रिका के अनुसार "**समाजियों का मन्तव्य वेद शास्त्र विरुद्ध है जो उन्हीं की पुस्तकों से सिद्ध किया जावेगा।**" के विरुद्ध उसके उत्तर में शास्त्रार्थ हेतु रजिस्ट्रर्ड नोटिस दिया जो इस प्रकार था—

॥ ओ३म् ॥

"शास्त्रार्थ" श्री मद् परमहंस परिव्राजकाचार्य शारदामठाधीश्वर श्री मज्जगद्गुरु महाराज की सेवा में,—

यत् महाराज श्री की पवित्र सेवा में हम निम्न हस्ताक्षरकर्त्ता आपके नम्र सेवक विनय पूर्वक निवेदन करने

टिप्पणी—

"धगड़े"—इसका अर्थ—"कोपीनधारी साधु" अथवा "चपरासी" होता है।

"दयाल"
(अनुवादक)

की आज्ञा चाहते हैं। महाराज श्री को अति विनम्र भाव से विज्ञप्ति दी जाती है कि, आपकी ओर से आपके शारदा-मठ सर्वाधिकारी रा० रा० केशवलाल मगनलाल के हस्ताक्षरयुक्त एवं पत्रिका बाँटने में आई है। उस हस्त पत्रिका में लिखा है कि—**"समाजियों का मन्तव्य वेद शास्त्र विरुद्ध है, और उस मत में प्रवेश करने वाले वर्णाश्रम धर्म से पतित होते हैं, ऐसा उन्हीं के ग्रन्थों से सिद्ध किया जावेगा।"** उस हस्त पत्रिका में "**समाजो**" का स्पष्टार्थ नहीं किया गया है। सम्प्रति में, प्रार्थना समाज, ब्रह्म समाज, आर्य समाज, आदि संस्थाएं हैं, उक्त पत्रिका में लिखित महाराज श्री के आक्षेप यदि आर्य समाज पर हों तो हमारी इच्छा ऐसी है कि, महाराज श्री शास्त्रार्थ करके वह सब बातें वेद और शास्त्रों के विरुद्ध सिद्ध करें। शास्त्रार्थ करने के लिए महाराज श्री कृपा करके यहां (धमबेड़ा) गांव में निवास करें और आर्य समाजियों को शास्त्रार्थ करने की सूचना दें, आर्य समाज के पण्डितों को बुलाने का पूरा अवकाश देकर शास्त्रार्थ करके ठीक निर्णय सिद्ध करके सेवकों की धर्म जिज्ञासा पूर्ण करें। आर्य समाजी शास्त्रार्थ करने को तैयार हैं। परन्तु उनकी शर्तें इस प्रकार हैं।

(१) आपके कोई अनुयायी एक सौ रुपये किसी भी प्रतिष्ठित गृहस्थ के यहां धरोहर रक्खें।

(२) महाराज श्री अगर आर्य समाजी पण्डितों के साथ शास्त्रार्थ करेंगे तो उक्त धरोहर राशी वापिस कर दी जावेगी।

(३) और अगर शास्त्रार्थ नहीं करेंगे और इसके निमित्त हमारे पण्डितों की व्यर्थ में दौड़धूप होगी तो उनके आने जाने (मार्ग व्यय) आदि की रकम को निकाल कर बकाया राशी वापिस कर दी जावेगी।

(४) शास्त्रार्थ करने का प्रतिज्ञा लेख महाराज श्री के हस्ताक्षर सहित यहां के स्थित आर्य समाजियों को मिलना चाहिये।

(५) शास्त्रार्थ लिखित और प्रसिद्ध समाचार पत्रों में प्रकट करना होगा। कृपया इस विज्ञापन पत्र का लिखित उत्तर देने की कृपा करें! (दिनांक २५ मार्च १९०६ ई०)

निवेदक

हस्ताक्षरकर्ता—

(१) नीछा भाई नागर जी पटेल, कछोली, (२) कीका भाई लाल भाई, (३) नारण जी खुशहाल (४) मकन जी कुंवर जी, (५) भीम भाई भगवान जी, (६) वल्लभ भाई अखु भाई, (७) नीछा भाई भगवान जी, (८) रणछोड़ भाई खुशाल भाई, (९) हात्या भाई गाण्डा भाई, (१०) छोटु भाई रणछोड़ जी, (११) भगवान जी मोरार जी, (१२) परागजी दाजी भाई, (१३) वशन जी जगा भाई, (१४) दयालजी ललुभाई (१५) कशनजी पराग जी, (१६) लालभाई ललुभाई, (१७) नागरजी राम भाई, (१८) रणछोडजी गोविन्द जी, (१९) कशनजी नीछा भाई, (२०) नीछा भाई दयाल जी, (२१) खण्डु भाई भीखा भाई: (२२) गोपाल पुरुषोत्तम (२३) वल्लभ भाई गोपाल जी, (२४) मोतीलाल कालीदास, (२५) गुलाब भाई कुंवर जी, (२६) पराग जी अभेराम, (२७) नीछा भाई गाँडा भाई॥

नोट—

उपर्युक्त विज्ञापन पत्र में श्री महाराज को शास्त्रार्थ विषय पर लिखित उत्तर देने हेतु विनती की हैं, तदनुसार लिखित उत्तर न मिलने का क्या कारण है? महाराज श्री का उक्त नोटिस का उत्तर २४ घण्टों में भी न मिलने के कारण तथा **"श्री स्वामी नित्यानन्द जी महाराज"** के पधार जाने पर, पुनः **शास्त्रार्थ के लिए** दूसरा नोटिस

तारीख ३१-१-१९०६ ई० को रजिस्टर्ड डाक से भेजा गया जो निम्न प्रकार था—

॥ ओ३म् ॥

[द्वितीय-शास्त्रार्थोज्ञापन]

आर्य समाज की ओर से शंकराचार्य महाराज माधव तीर्थ जी को शास्त्रार्थ करने को विनती—

सम्पूर्ण भारतवर्ष में विद्वता और वक्तृत्व शक्ति के लिए प्रसिद्ध श्रीमद परमहंस परिव्राजकाचार्य वेद धर्मोद्धारक महात्मा स्वामी श्री नित्यानन्द जी महाराज आर्य समाज की ओर से श्रीमद् शंकराचार्य महाराज श्री माधवतीर्थ जी के साथ शास्त्रार्थ करने के लिए यहां पधारे हुए हैं। इसलिए शंकर स्वामी श्री माधवतीर्थ श्री स्वामी नित्यानन्द जी के साथ संस्कृत में लिखित शास्त्रार्थ कर धर्म का निर्णय करें। और शास्त्रार्थ करने हेतु शंकराचार्य श्री माधवतीर्थ जी स्वयं हस्ताक्षर करें। यदि उनके हस्ताक्षर नहीं होंगे तो हम शास्त्रार्थ नहीं करेंगे तथा यह समझा जावेगा कि शंकराचार्य जी शास्त्रार्थ करना नहीं चाहते। स्वामी श्री निन्यानन्द जी महाराज का आगमन यहाँ रुपये लेने के लिए नहीं हुआ है। बल्कि वह शास्त्रार्थ करने हेतु ही पधारे हैं। इसलिए हमारी विनम्र प्रार्थना है कि श्रीमान् शंकराचार्य श्री माधवतीर्थ जी शास्त्रार्थ करने की स्वीकृति प्रदान करें, शास्त्रार्थ की स्वीकृति के बाद ही उसके नियमादि निश्चित किये जावेंगे।

ग्राम="जलालपोर" तहसील कछोली (गुजरात राज्य) हस्ताक्षर—

दिनांक—३१-३-१९०६ ई० "मुकुन्द जी कुंवर जी"

"लल्लुभाई नागर जी"

(धर्म जिज्ञासु)

नोट—

तत्पश्चात् महाराज श्री ने लोगों की ओर से बहुत दबाव के कारण एक युक्ति निकाली, । **"यदि आर्य समाजी १०,००० रुपये की जमानत दें तो शंकराचार्य जी शास्त्रार्थ करने के लिए आयेंगे"** ऐसी आर्य समाजियों को सूचना भेजी, उनकी युवित ये थी कि ये लोग इतने रुपये की व्यवस्था करने में असमर्थ रहेंगे तो शास्त्रार्थ होगा ही नहीं। इसके बाद भक्तों के अति आग्रह के कारण महाराज श्री ने दिनाँक ९-४-१९०६ ई० को धमडाछा (अमल साड़ से एक मील दूर) ग्राम में सूरत के वकील राजे श्री गुलाब दास भाई दास के मन्त्री पद में एक सभा का आयोजन रक्खा, महाराज का विचार था कि इस सभा में सनातन धर्मियों की संख्या अधिक होनी चाहिये, इसलिए आर्य समाजियों को जाति-बिरादरी से बहिस्कृत करने में सफल हो जावेंगे। इस सभा में लगभग तीन हजार मनुष्य एकत्रित हुए थे, जिसमें आर्य समाजियों की संख्या अनुमानतः मात्र पिचहत्तर थी, वैसे सभा की बाहर गांव में घोषणा नहीं हुई थी, महाराज श्री के पधारने के बाद सभा के नियम का पाठ प्रारम्भ किया।

जिसमें पहला नियम यह था कि, सभा में महाराज श्री से श्रेष्ठ कोई अधिष्ठाता नहीं है इसलिए वह खुद प्रधान पद स्वीकार करें। अन्य किसी को भी सभा में किसी भी विषय पर बोलने का अधिकार नहीं है। यह नियम पढ़ते ही बलसाड़ के वकील "रा० दुर्लभ भाई" खड़े हुए और महाराज को कहा कि जब यहां अन्य किसी को किसी भी विषय पर बोलने का अधिकार ही नहीं है तो फिर हमें (अमुक-२ आर्य समाजियों को शास्त्रार्थ के लिए) क्यों आमन्त्रित किया गया है? हमने क्या वैसे ही स्वामी नित्यानन्द जी महाराज को बुलाया हुआ है? जो इस समय भी

कछोली में है, उनके आने का प्रयोजन सर्वविदित हैं,..............इसी बीच उसी समय एक अनाविल जाति के आर्य समाजी ने श्री महाराज की टेबिल (स्टेज) पर "१०,००० **रुपये के उत्तर**" इस शीर्षक का छपा हुआ विज्ञापन पत्र रक्खा, जो इस प्रकार था—

॥ ओ३म ॥

[श्रीमान् शंकराचार्य श्री माधवतीर्थ जी की १०,००० रुपये की माँग का उत्तर]

(१) शंकराचार्य श्रीमान् माधवतीर्थ जी, रुपये १०,००० बम्बई बैंक में आप भी जमा करावें तो आर्य समाज की ओर से भी रुपये १०,००० जमा करा दिये जावेंगे और यह राशि उसे मिलेगी जो शास्त्रार्थ में जीतेगा। (२) शास्त्रार्थ आर्य समाज की ओर से श्रीमद् परमहंस परिव्राजकाचार्य स्वामी श्री नित्यानन्द जी महाराज और श्रीमान् शंकराचार्य माधव तीर्थ जी के बीच संस्कृत भाषा में लिखित रूप में होगा। तथा शास्त्रार्थ कर्त्ता दोनों अपनी-अपनी लेखनी से लिखेंगे, अन्य किसी दूसरे पण्डित की सहायता नहीं ली जावेगी। शास्त्रार्थ के लेखों का हिन्दी अनुवाद शास्त्रार्थ कर्त्ताओं द्वारा ही किया जावेगा, जिससे सर्व साधारण को लाभ हो सके।(३)शास्त्रार्थ में हार-जीत का निर्णय "**श्रीमन् सरकार एच० एच० ई० ए० महाराज साहब सरंसयाजीराव गायकवाड़**" (सेना खास खेल समशेर बहादुर जी० सी० एच० आई०)हुजूर से होगा(४) श्रीमान् शंकराचार्य जी श्री माधवतीर्थ की रुपये १०,००० की मांग आर्य समाज की ओर से स्वीकृत करने पर भी यदि वह शास्त्रार्थ नहीं करेंगे और दूसरा ही बहाना निकालेंगे तो सर्व साधारण प्रजा समझ लेगी कि—"**श्री शंकराचार्य जी शास्त्रार्थ से पलायन करना चाहते हैं**", (५) श्रीमान् शंकराचार्य माधवतीर्थ से विनती है कि विरपुर, राजकोट और बम्बई आदि स्थलों की तरह यहाँ भी शास्त्रार्थ की बात से पलायन न करने की कृपा करें। (६) शंकर दिग्विजय आदि से ऐसा सिद्ध होता है कि, श्री आद्य शंकराचार्य जी महाराज ने कोई बहाना निकाले बिना शास्त्रार्थ करने हेतु आने वाले प्रत्येक व्यक्ति के साथ शास्त्रार्थ किया, इतना ही नहीं बलिक स्वयं उनके पास जा जाकर शास्त्रार्थ करने के लिए ललकारा। इसलिए आप महाराज श्री को भी उचित है कि श्री आद्य शंकराचार्य जी की तरह अपनी विद्याशक्ति से शास्त्रार्थ करने के लिए स्वयं तैयार हों। (७) इस घोषणा पत्र का उत्तर चौबीस घण्टों के अन्दर ही देने की कृपा करें तथा शास्त्रार्थ के विषय निम्न प्रकार होंगे—

(१) वर्णव्यवस्था, (२)द्वैताद्वैतवाद, विशिष्टाद्वैतवाद, विशुद्धाद्वैतवाद(३)सन्यासधर्म,(४)पौराणिकमत की सत्यता, (५) व्याकरणादि षड़ांग और षट्शास्त्र, (६) धर्म के दूसरे विषयों पर बाद में विचार होगा।

"**कछोली**"—दिनांक—१-४-१९०६ ई०
ता० जलालपुर
[देशी मित्र प्रॅस—(सूरत) में छपा]

निवेदक—
हस्ताक्षर धर्म जिज्ञासु—
"**अम्बा लाल खन्डुभाई देसाई**"
"**बाबा भाई फकीर भाई**"

नोट

उपर्युक्त विज्ञापन पत्र पढ़ कर श्री महाराज क्रोध में लाल पीले हो गये, और अयोग्य आक्षेप करने लगे कि आर्य समाजी बहुत हल्ला मचाने वाले तथा तूफानी हैं, मैं जहां-जहां जाता हूं वहाँ इसी प्रकार तूफान मचाते हैं,......बीच में......श्री रा० दुर्लभ भाई वकील उनके आक्षेपों का उत्तर देने को फिर खड़े हुए तो उनको कहा गया कि.........हमने आपको बुलाया ही नहीं में और इस सभा में बोलने का अधिकार श्री महाराज के अलावा अन्य

किसी को नहीं है। हम आप लोगों के साथ शास्त्रार्थ नहीं करना चाहते। गुरु स्थान की सवारी कोई शास्त्रार्थ के लिए नहीं घूमती फिरती है। बलिक प्रजा को धर्म का उपदेश करने (भेडियों की ऊन काटने) के लिए घूमती है, हमने शास्त्रार्थ करने की माँग नहीं की है, आदि-आदि ॥ इसके तुरन्त बाद महाराज ने रा० गुलाबदास भाई को सभा का संयोजक पद दिया और समाजियों को बोलने न दिया जावे ऐसा निर्देश संयोजक को देते हुए सभा संचालन का आदेश दिया। रा० गुलाब दास भाई ने ऐसा विघ्न पड़ते हुए देखकर समयानुसार विचारा और फिर आधुनिक आचार्यों तथा उनके कल्पित सम्प्रदाय पर लम्बा भाषण देकर बहुत फटकारा तथा देशोद्धारक की ओर ध्यानाकृष्ट कर एक्यता रखने को कहा, उसके बाद महाराज श्री ने कहा कि **"आर्य समाजी, सनातन धर्म से पतित होते हैं"** इसलिए उनको जाति से बहिष्कृत करना चाहिए ऐसा मेरा प्रस्ताव है, इसके बाद रा० गुलाब दास जी ने उनके सामने ही इस पर आपत्ति उठाई और उक्त विषय को रद्द करने के लिए कहा गया। इस पर महाराज ने हठ करके कहा कि—बाद में हो जाएगा। तब रा० गुलाबदास जी **"संयोजक"** पद को छोड़कर बाहर जाने लगे। इस पर श्री महाराज ने अपनी प्रतिष्ठा को जाने का समय देखकर अपना उक्त प्रस्ताव रद्द कर संयोजक जी को वापिस सभा में बुलाया। इस पर थोड़ी देर गड़बड़ चलने के बाद देर हो जाने से सभा विसर्जित कर श्री महाराज की शोक युक्त सवारी जल्दी से पालकी में बैठकर चल दी।

इस प्रतिक्रिया पर सभा में भारी हर्षनाद हुआ, और आर्यसमाज की सत्यता पर लोगों का और भी विश्वास दृढ़ हुआ। लोग शास्त्रार्थ के लिये बहुत ही उत्कण्ठित थे। वे सभी मजबूरन निराश ही लौटे। उक्त सभा की कार्यवाही से आर्य समाजियों को अत्याधिक बल मिला। जब सनातन धर्मियों ने श्री महाराज को किसी प्रकार से भी शास्त्रार्थ करने का आग्रह किया, और उसमें कुछ व्यक्ति ऐसा भी कहने वाले निकले कि—वरना महाराज जी हमने आपकी पधरायणी (पधारने) के जो रुपये दिये हैं उन्हें वापिस किया जावे। ऐसी स्थिति देखकर श्री महाराज ने अन्य कोई उपाय न देखकर शास्त्रार्थ के लिये स्वीकृत दे दी, और विज्ञापन निकाला, परन्तु उस विज्ञापन में भी छल-कपट का सहारा लिया। वह विज्ञापन इस प्रकार था देखिये—

[शास्त्रार्थ का विज्ञापन—आर्य समाजियों को उत्तर]

गांव कछोली में श्री नित्यानन्द जी की सभा में आर्य समाजियों को श्री मद्शंकराचार्य जी महाराज की ओर से उत्तर—

(१) आपकी ओर से दिनांक २५-३-१९०६ ई० के दिन शास्त्रार्थ कर निर्णय करना इस आशय के २७ हस्ताक्षरों वाला प्रार्थना-पत्र गुरु स्थान में सादर हुआ। उनमें **"नीछा भाई नागर जी"** गांव कछोली वालों के सबसे ऊपरी वाले हिस्से पर हस्ताक्षर हैं। वह पत्र दिनांक २६-३-१९०६ ई० के दिन सभा में पढ़ा गया था। पत्र की सच्चाई के लिए नीछा भाई आदि को सूचित किया जाता है, कि—**"२७ में से २५ व्यक्ति हम आर्य समाजी नहीं हैं। हम आपके सेवक हैं।"** हमारे पास ऐसा उत्तर देकर शरणागत हुए हैं, और वसन जी जगा आदि पांच व्यक्ति जिनकी आयु २०-२२ वर्ष से भी न्यून है वह बेसमझ लोग पत्र के उत्तर के लिए सभा में उपस्थित हुए।

(२) बाद में दिनांक २७-३-१९०६ ई० के दिन आपके पत्र दिनांक २५-३-१९०६ ई० वाले विज्ञापन का उत्तर बेसमझ बच्चों के समान अयोग्य मानकर विज्ञापन में प्रधानता रखने वाले नीछा भाई नागर जी को धमड़ाछा के पंच शास्त्री मणीशंकर अम्बाराम, तथा रा० रा० बल्लभदास, डाह्याभाई गोविन्द जी, धेलाशंकर केशवराम, काशीराम फकीरभाई और पराग जी रणछोड़ भाई, इस प्रकार छः पंचों को दिया। उन्होंने अपने हस्ताक्षरों के साथ पत्र कछोली के पंच—गांड़ाभाई कल्याण जी, दुर्लभभाई अखुभाई, रतन जी वाधा और वैध गांड़ाभाई

पुरुषोत्तम के द्वारा नीछाभाई नागर को जी पहुंचाया । नीछाभाई नागर जी ने उत्तर में कहा—मैं तो आचार्य श्री का सेवक हूं और उत्तर आर्य समाजियों को देना चाहिये, और उपरोक्त कछोली के पंच के हस्ताक्षरयुक्त पत्र बिना उत्तर वापिस कर दिया इस प्रकार नीछाभाई ने हमारा पत्र लिया ही नहीं है । तदनन्तर दिनांक ३१-३-१९०६ ई० को कछोली निवासी लल्लुभाई नागर जो और मुकुन्द जी कुंवर जी के हस्ताक्षरयुक्त लिखित विज्ञापन रजिस्टर्ड डाक द्वारा १-४-१९०६ ई० के दिन गुरु स्थान में मिला । उसमें केवल महाशय नित्यानन्द जी के साथ संस्कृत में लिखित शास्त्रार्थ के लिए मांग की गई है ।

बाद में अनाविल गृहस्थ ब्राह्मणों की धमड़ाछा गांव में नागर जी लाला की बाड़ी में दिनांक १-४-१९०६ ई० के दिन सभा हुई, उसमें श्री मच्छकंराचार्य श्री माधवतीर्थ जी को रुपये १०,००० की मांग का उत्तर, इस शीर्षक से एक विज्ञापन अम्बालाल खण्डुभाई देसाई और बाबाभाई फकीर भाई के हस्ताक्षरयुक्त दिनांक १-४-१९०६ ई० को वितरण किया गया । उसमें आपने अयोग्य शर्त रखकर शास्त्रार्थ से पलायन करने का प्रयत्न किया है, यथा "**आर्य समाज की ओर से १०,००० रुपये बम्बई बैंक में जमा किया जावेगा ।**" इस प्रकार लोगों को ठगने के लिए ऐसी अनुचित और झूठी शर्त लिखी है, हम पूछते हैं कि आर्य समाज का वो कौन-सा गृहस्थी है जो बम्बई बैंक में रुपया जमा करेगा ? उसका कोई नाम व पता नहीं है । और "**शंकराचार्य माधवतीर्थ जी ने अपनी लेखनी से नित्यानन्द जी के साथ संस्कृत में लिखित शास्त्रार्थ करें ।**" आदि-आदि लिखा है । इससे साफ पता चलता है कि, आप लोगों को यह पता ही है कि श्री महाराज ऐसा करेंगे ही नहीं तो शास्त्रार्थ से पीछा छुट जावेगा । और आप लोग अपनी विजय का डंका पीटते हुए अज्ञानी प्रजा को भ्रमित करने का प्रयास करेंगे । दूसरे, अपराधी और साक्षी की गवाही जैसा अदालती कार्य शास्त्रार्थ में नहीं होता, और महाशय नित्यानन्द जी कोई अपराधी हैं ? ऐसा हम मानते नहीं कि जिनकी गवाही विशेष आचार्य श्री की लेखनी से ही लिखी जावे ।

उक्त प्रकार से विज्ञापन घोषणा तथा "**१०,००० रुपये की मांग का उत्तर**" इस प्रकार से यह तीन विज्ञापन पत्र आपकी ओर से प्रकट हुए हैं । उन तीनों में अलग-अलग व्यक्तियों के हस्ताक्षर मौजूद हैं । और अलग-अलग शर्तें हैं । विज्ञापन में हस्ताक्षर करने वाले प्रमुख योग्य व्यक्ति आचार्य श्री के सेवक होकर हाथ उठा लेते हैं, और हस्ताक्षर करने वाले अलग-अलग व्यक्तियों में से भी कोई स्वयं दस हजार रुपये की जवाबदारी लेता नहीं है । आर्य समाजियों की ओर से रुपये बम्बई बैंक में रखे जाएंगे ऐसा झूठ लिखकर डूबते को तिनके का सहारा मात्र ही है । इसलिए आपको सूचित किया जाता है कि—

(१) दस हजार रुपये बम्बई बैंक में या अन्य स्थान में हार-जीत की शर्त के अनुसार आर्य समाजियों को जमा करवाना, या उस राशि का चैक विश्वास योग्य पंचों में जमा कराकर सूचना देने के बाद आचार्य श्री की ओर से भी आपकी शर्त के अनुसार दस हजार रुपये बम्बई बैंक में जमा कराने की योग्य व्यवस्था होगी ।

(२) आचार्य श्री की ओर से दस हजार रुपये नकद जमानत रूप में रखा जाये, अथवा विश्वास योग्य लिखित जामिन देने धमड़ाछा के संभावित योग्य गृहस्थ रा० रा० बल्लभराम दाजी भाई ने सर्वसभा समक्ष स्वीकार किया है । आप लोग भी ऐसी योग्यता वाले अर्थात् जो दस हजार रुपये दे सके ऐसे स्थावर जंगम सम्पत्ति वाले गृहस्थी की व्यवस्था करेंगे तो भी आचार्य श्री को स्वीकार होगा ।

(३) शास्त्रार्थ के हार-जीत का निर्णय श्रीमन् महाराजा साहेब गायकवाड़ सरकार की ओर से होगा ऐसा आपका कथन है । इस विषय में निवेदन है कि—श्रीमन् महाराजा गायकवाड़ सरकार की स्वीकृति प्रेषित करना । तदनन्तर ही उनको आचार्य श्री की ओर से शास्त्रार्थ भेजा जावेगा ।

(४) श्री आद्य शंकराचार्य जी सबके साथ शास्त्रार्थ करते थे आदि-आदि भी आप लिखते हो, इस विषय में निवेदन है कि, श्री आद्य शंकराचार्य जी ने जिनके साथ शास्त्रार्थ किये वे लोग सत्यवक्ता एवं प्रामाणिक विद्वान् थे, और हार-जीत खुद ही स्वीकार कर लेते थे। यह बात "**शंकर दिग्विजय**" देखने से प्रतीत होगी। आप उक्त बताए अनुसार भिन्न-भिन्न व्यक्तियों के हस्ताक्षरों से और भिन्न-भिन्न शर्तों से भ्रमित लेखों द्वारा धोखाबाजी करना चाहते हैं। इसलिए आपकी प्रमाणिकता नहीं मान सकते। अत: उपरोक्त शर्तों की व्यवस्था से ही आचार्य श्री शास्त्रार्थ करने को उद्यत्त हैं।

(५) शास्त्रार्थ कैसे हो ? ऐसी आपको जानकारी न होने से आप अनेकों अयोग्य शर्तें लिखते हैं। परन्तु आचार्य श्री के शिष्यवर्ग जब तक शास्त्रार्थ में पराजित न हो जावें तब तक आचार्य श्री को स्वयं शास्त्रार्थ करने की आवश्यकता नहीं है। शिष्यवर्ग के शास्त्रार्थ में पराजित होने पर आचार्य श्री की पराजय मानी जावेगी। क्योंकि सेना की पराजय राजा की पराजय मानी जाती है। जब तक सेना लड़ती है तब तक राजा को स्वयं लड़ाई में जाने की आवश्यकता ही नहीं होती। यदि श्रीमन् गायकवाड़ महाराजा सरकार सरं सियाजी राव स्वयं ही सभा में प्रत्यक्ष अध्यक्ष पद स्वीकार करेंगे तब आचार्य श्री स्वयं भी शास्त्रार्थ करने को तैयार हैं, क्योंकि राजाध्यक्ष की सभा में वर्तमान में आपके व्यवहारानुसार कुछ भी अप्रमाणिक व्यवहार होने वाला नहीं है।

(६) श्री गुरु स्थान के शिष्य वर्ग की ओर से ८२ कोटि के प्रश्नों का संस्कृत लेख आपको भेजा गया है, उसका प्रत्युत्तर उसमें लिखी समय मर्यादा में और संस्कृत भाषा में आप नहीं दे पाये तो "**आर्य समाजी शास्त्रार्थ में हार गये**" ऐसा मानकर आचार्य श्री को हुए व्यय राशि की कटौती करने योग्य कानूनी व्यवस्था का सहारा लेना होगा।

(७) आप लोगों की तरफ से जो पत्र और विज्ञापन प्रकट किये गये हैं, उसमें आचार्य श्री के हस्ताक्षरों का आग्रह रखा गया है। परन्तु महाशय नित्यानन्द को छुपाकर उनके हस्ताक्षर का लेख प्रकट नहीं किया गया है। जब तक महाशय नित्यानन्द जी के हस्ताक्षरों युक्त लेख प्रकट नहीं होगा तब तक वह आपकी लिखी शर्तों पर आधारित शास्त्रार्थ करने को कैसे तैयार हो सकते हैं ?

(८) शास्त्रार्थ कुछ व्यक्तियों से ही होना चाहिए, ऐसा तो कोई नियम नहीं है। केवल निर्णीत विषयों का निर्णय होना आवश्यक है। इसलिए आचार्य श्री की ओर से विद्वान् शिष्यवर्ग शास्त्रार्थ करेंगे। और आप भी एच्छिक विद्वानो को बुला सकते हैं।

(९) आप लिखते हो कि—राजकोट आदि स्थलों की तरह यहां भी शास्त्रार्थ की बात से पलायन करने की कृपा न करें। इस विषय में आप कुछ भी झूठ लिखें, परन्तु राजकोट में रा० रा० बाया जी रामचन्द्र की अध्यक्षता में पण्डित भीमसेन जी शर्मा ने तीन दिन तक शास्त्रार्थ के लिए ललकारा था, उस सभा में आर्य समाजी पण्डितों को उपस्थित होने के लिए पुकारा गया। लेकिन आपकी ओर से मणिराम मुनि[1] राजकोट में होते हुए भी सभा में नहीं आये, तथा बम्बई में पूना के प्रसिद्ध श्रीमन् सरदार बाला साहेब नातु की अध्यक्षता में तीन दिन माधव बाग में पण्डित भीमसेन शर्मा जी ने आर्य समाज विरुद्ध शास्त्रार्थ किया। उसमें नित्यानन्द का नाम पुकारा गया था।

टिप्पणी—

[1]"मणिराम मुनि" नाम से "**महामहोपाध्याय श्री पण्डित आर्य मुनि**" जी की ओर संकेत किया गया है।

"दयाल"

नित्यानन्द ने सभा में उपस्थित रहना स्वीकार करते हुए भी और बम्बई में रहते हुए भी सभा में नहीं आये। क्या वही नित्यानन्द अब भी शास्त्रार्थ करने वाले हैं ? या कोई अन्य नित्यानन्द है ?

(१०) आपके विज्ञापन दिनांक १-४-१९०६ ई० वाले में प्रस्तुत विषय को छोड़कर अन्य दूसरे विषयों में शास्त्रार्थ करने की मांग की है। इससे स्पष्ट पता चलता है कि आपको—मृतकश्राद्ध, मूर्तिपूजा और मोक्षादि अनेकों विवादास्पद विषयों में हमारी मान्यताएं स्वीकार हैं। आपने प्रस्तुत विषय में केवल "**वर्णव्यवस्था**" वाला विषय ही रखा है। मृतक श्राद्ध, मूर्तिपूजा, मोक्षादि विषय प्रमाणित होने से स्वीकार कर लिये गये हैं, तथा द्वैताद्वैत, विशिष्टाद्वैत और विशुद्धाद्वैत इनमें, द्वैताद्वैत और विशुद्धाद्वैत शब्द ही अप्रसिद्ध हैं। परन्तु हम तुम्हारे नित्यानन्द को पूछते हैं कि, इन तीनों शब्दों का अर्थ क्या है ? वह तीनों शब्दों के अर्थ स्पष्ट रूप में लिखें।

(११) "**संन्यास धर्म**" ये आपका तीसरा विषय है—परन्तु शास्त्रार्थ की मांग करने वाले जिज्ञासु सभी ग्रहस्थ हैं, इसलिए उन सबको ग्रहस्थ धर्म बताने की जरूरत है, परन्तु क्या आपको संन्यास धर्म सुनकर संन्यासी बनने की इच्छा है क्या ? आर्य समाजी सभी गुण कर्म से वर्णाश्रम मानते हैं। ऐसा ही सत्यार्थ प्रकाश के पृष्ठ ५०८ पर भी अंकित है, अतः यहां संन्यास धर्म के विचारों का क्या प्रसंग है ?

(१२) आपने व्याकरण, षडंग और षट्शास्त्रादि विषय पर शास्त्रार्थ करने की मांग की है। यह भी अकाण्ड ताण्डव है। आपने गुरु स्थान के सर्वाधिकारी द्वारा प्रकट कार्यक्रम पत्रिका से शास्त्रार्थ की मांग दिनांक २५-३-१९०६ वाले पत्र में की है। उस हस्तलिखित पत्र में जो "**समाजी**" शब्द लिखा है वह यदि "आर्य समाजी को लक्ष्य करके लिखा हो तो हमारी समझ ऐसी है कि महाराज श्री शास्त्रार्थ करके वह बात सिद्ध कर दें" उक्त पत्रिका में आधुनिक समाजियों के मन्तव्य शास्त्र विरुद्ध हैं, और प्रवेश करने वाले वर्णाश्रम धर्म से पतित होते हैं, ऐसा लिखा है। अतः निर्णीत विषय को त्याग कर दूसरे विषय पर शास्त्रार्थ करने की आपकी मांग अनुचित है। इससे विदित होता है कि कार्यक्रम पत्र में लिखित बात आपको स्वीकार्य हैं। दिनांक २५-३-१९०६ के पत्र में बताए विषय पर ही आपको शास्त्रार्थ करना है तो आपके लिखे द्वैताद्वैत आदि गूढ़ विषयों को प्रजा के सामने रखने का प्रसंग कार्यक्रम पत्रिका से पैदा नहीं होता। अतः आपकी बार-बार प्रतिज्ञा हानि होने से आप हार गये हैं, यह तो लोग प्रायः समझ ही लेंगे। इस प्रकार असम्बध लेख न लिखकर शास्त्रार्थ विषयक शर्त के अनुसार दिन निश्चित करना यह प्रमाणिकपने का मार्ग है।

(१३) पुनः आपने संस्कृत में लिखित शास्त्रार्थ करने की मांग की है। इससे सामान्यजन को आपके मन्तव्य से अनभिज्ञ रखने का आपका प्रयोजन लगता है। और सभा में शास्त्रार्थ पद्धति के अनुसार पण्डितों के साथ संस्कृत बोलने में आपकी असमर्थता प्रकट होती है, अतः शास्त्रीय पद्धतिनुसार सब जनसमाज सुन सके ऐसी भाषा में शास्त्रार्थ करने हेतु मैदान में आवें, अगर यह स्वीकार न हो तो हम समझेंगे कि आप शास्त्रार्थ नहीं करना चाहते।

(१४) इस पत्र के अनन्तर शास्त्रार्थ का स्थल, दिन और समय निश्चित करने के लिए सम्भावित पंच भेजकर उभय पक्ष की अनुकूलता और प्रतिकूलता को देखकर निश्चित किया जावेगा।

(१५) इस मन्त्र का उत्तर चौबीस घण्टों के अन्दर-अन्दर मिलना चाहिए, अगर ऐसा न हुआ तो आर्य समाज की हार घोषित कर दी जावेगी, तथा हमारी विजय पत्रिका में लिखे सभी विषय तथा इस पत्र में लिखे सभी विषय आर्यसमाज को मान्य हैं, ऐसा समझा जावेगा।

निवेदक—
"केशवलाल मगनलाल त्रिवेदी"
(सर्वाधिकारी—शारदामठ)

(दिनांक २-४-१९०६ ई०)
सवारी स्थल—"धमड़ाछा"

नोट—

हमारे पत्र का उत्तर चौबीस घण्टे पूरे होने पर भी नहीं आया। उसके बाद जो कुछ आया वह उपरोक्त पत्र आपने पढ़ ही लिया। इस उपरोक्त पत्र के उत्तर में आर्य समाज की ओर से निम्न पत्र भेजा गया—

॥ ओ३म् ॥

वर्तमान में स्वयं को जगद्गुरु शंकराचार्य मानने वाले स्वामी माधवतीर्थ आर्य समाजियों की ओर से उत्तर—

"आर्य समाजियों को उत्तर" इस शीर्षक वाले तथा केशवलाल मगनलाल त्रिवेदी (सर्वाधिकारी) की शारदामठ की निशानी वाल एवं दिनांक २ अप्रैल १६०६ ई० सवारी स्थल धमड़ाछा से काली स्याही के बदले हुए अक्षरों वाला खुले लिफाफे में रक्खा हुआ पत्र कछोली ग्राम की सभा में चल रहे भाषण के समय एक गृहस्थी टेबल पर रख गया। उसमें लिखे उत्तरों को पन्द्रह विषयों में समावेश किया गया है, परन्तु महाराज श्री की ओर से प्रत्येक पत्र नियमानुसार डिस्पैच नं० के साथ मोहर लगाकर भेजे जाते हैं, ऐसा हमने अनुभव किया है तथा विश्वस्त सूत्रों से ज्ञात भी हुआ है। परन्तु हमारे पास इन सभी नियमों के विरुद्ध यह पत्र मिलने पर शंका बनती है कि यह पत्र उन्हीं का है या नहीं ? फिर भी पत्र में लिखे अनुसार उसका उत्तर देना हमें अभीष्ट है, क्योंकि पत्र में लिखा है कि, २४ घण्टे के अन्दर-अन्दर यदि उत्तर नहीं दिया जाएगा तो **"आर्य समाजी शास्त्रार्थ नहीं करना चाहते"** ऐसा मान लिया जावेगा। ऐसा लिखा होने से हमें पत्र का उत्तर देना ही चाहिए। अतः हम उस पत्र का क्रमानुसार उत्तर दे रहे हैं, आप हमारे पत्र पर मनन कर जनता में पढ़ें तथा उसे प्रकाशित भी करें। ऐसी हमारी प्रार्थना है।

(१) जो आवेदन पत्र दिनांक २५-३-०६ के दिन २७ हस्ताक्षरों से युक्त था कि उसका उत्तर उस दिन सभा में उपस्थित समाजियों को देना था, इसलिए समाज के सदस्यों के अतिरिक्त अन्य चौबीस व्यक्ति जिज्ञासु थे। इसलिए उनको हमने **"आर्य समाज के सदस्य नहीं हैं"** ऐसा कहा है, वह ठीक ही था, तथा पांच समाजी व्यक्तियों की आयु २०-२२ वर्ष की अल्पायु है, आपने ऐसा पत्र में लिखा है। आपका यह कथन बिल्कुल झूठ और भ्रम फैलाने वाला है, फिर भी कानूनन् १८ वर्ष से अधिक आयु वाले को योग्य ही माना जाता है, यह बात पत्र लिखवाते समय भूल गए हो, ऐसा मालूम होता है। अतः **"हस्ताक्षरकर्त्ता नासमझ हैं"** ऐसा लिखना आपकी बड़ी भारी भूल का द्योतक है।

(२) बाद में दिनांक २७-३-०६ को जो पत्रोत्तर हमारे पहले पत्र दिनांक २५-३-०६ के प्रयुत्तर में भेजा वह नासमझ बच्चों को देना उन्हें अयोग्य मानकर भी आपने अपना पत्र श्री नीछाभाई नागर जी को धमड़ाछा के पंच समक्ष कछोली के पंचों द्वारा भेजा, वह नीछाभाई नागर जी को पहुंचाया, फिर भी नीछाभाई नागर जी ने—**"यह पत्र आर्य समाजियों को ही देना चाहिए था"** ऐसा कहा जो ठीक ही था। क्योंकि नीछाभाई धर्म जिज्ञासु है और धर्म का निर्णय करवाना वह आर्य समाजियों का कार्यक्रम है, इसलिए पत्र रा० नीछाभाई को भेजना वह ठीक नहीं था। एवं दिनांक ३१-३-०६ में लल्लुभाई नागर जी मकन जी कुंवर जी के हस्ताक्षर युक्त विज्ञापन को रजिस्टर्ड डाक द्वारा दिनांक १-४,०६ के दिन गुरुस्थान में भेजा गया था, उसमें स्वामी श्री नित्यानन्द जी महाराज के साथ संस्कृत में लिखित शास्त्रार्थ के लिए मांग की है उस विषय में आपने जो लिखा है वह अप्रासंगिक है, ऐसी असभ्यता पूर्ण बात हम नहीं लिखना चाहते। इसलिए महाराज श्री से प्रार्थना है कि, लिखित शास्त्रार्थ करने का कारण यह है कि मौखिक शास्त्रार्थ के समय दोनों पक्ष जब अपनी भूल स्वीकार न करें, तो सार्वजनिक प्रजा में भ्रम पैदा होगा कि

दोनों में सच्चा कौन है ? इसलिए लिखित शास्त्रार्थ हो तो कहीं भी भूल होगी तो उसका निर्णय जनता स्वयं देगी। अतः विज्ञापन में लिखित शास्त्रार्थ करने का प्रबन्ध रक्खा जाये, वह ठीक ही लिखा है। तदोपरान्त नागर जी लाला की बाड़ी में दिनांक १-४-०६ के दिन सभा हुई उसमें—"श्रीमद् शंकराचार्य श्री माधवतीर्थ जी को १०,००० रुपये की मांग का उत्तर" इस शीर्षक का एक विज्ञापन अम्बालाल खंडु भाई और बाबा भाई फकीर भाई के हस्ताक्षरों युक्त बांटा गया, उसमें आपने अयोग्य शर्तं लिखकर शास्त्रार्थ से पलायन करने का प्रयत्न किया है। तथा आपने जो पत्र में लिखा है वह भी अयोग्य है क्योंकि शास्त्रार्थ से आर्य समाजियों को पलायन करना होता तो स्वामी श्री नित्यानन्द जी महाराज को कछोली में क्यों ठहराते ? अतः शास्त्रार्थ से पलायन कोन चाहता है ? यह बात रविवार की सभा में शंकराचार्य जी ने स्वयं अपने मुख से उच्चारित की है कि मैं स्वयं शास्त्रार्थ करना नहीं चाहता, मेरे शिष्य शास्त्रार्थ कर रहे हैं, और करेंगे। इसलिए पलायन कौन चाहता है यह सर्वविदित हो चुका है। हमारी ओर से तीन पत्र प्रकट किए गए हैं, उन तीनों में भिन्न-भिन्न व्यक्तियों के हस्ताक्षर और भिन्न-भिन्न शर्तें हैं, जो ठीक ही हैं। क्योंकि आर्य समाज संस्था एक व्यक्ति की गुरुडम पर चलने वाली संस्था नहीं है। बल्कि प्रत्येक सदस्य इस संस्था की सेवा करने में संलग्न है। इसलिए अलग-अलग सदस्यों के हस्ताक्षरों से युक्त निकले विज्ञापन समाज की ओर से ही निकले हैं, यह मानना चाहिए। और उसमें लिखी शर्तें भिन्न नहीं हैं, बल्कि वह शास्त्रार्थ की मूलभूत शर्तें हैं, जो उससे सम्बन्ध रखने वाली हैं, इसलिए उनको भिन्न मानना, सर्वत्र भ्रम फैलाना जैसा अयोग्य कार्य है। आचार्य श्री ने आम सभा में शास्त्रार्थ करने से मना कर दिया है। अतः बम्बई बैंक में १०,०००) रुपये किसके नाम से जमा किया जावे ? उसका स्पष्टीकरण हमने रविवार वाली सभा में नहीं किया था, क्योंकि शास्त्रार्थ करने को आपने स्वयं इन्कार किया है, इसलिए उपरोक्त शर्तें ~~अपने~~ आप समाप्त हो जाती है, ऐसा सभी व्यक्ति जान गए हैं।

(३) शास्त्रार्थ का निर्णय श्रीमन् महाराज साहेब सरं सयाजी राव गायकवाड़ से कराने के लिए लिखा गया है, वह ठीक है, परन्तु उसमें उनकी स्वीकृति मंगवाने वाली बात ठीक नहीं है, क्योंकि महाराज श्री दोनों पक्षों के शास्त्रार्थ का निर्णय स्वयं या अन्य विद्वानों की समिति बनाकर उसमें करें, वह बड़े उत्साही हैं, ऐसा हमें विश्वास है, इसलिए शास्त्रार्थ की प्रतिलिपि श्रीमन् महाराज की सेवा में भेजकर उस पर निर्णायक विचार देने के लिए आग्रह करने की जिम्मेदारी हम दोनों पक्षों की है।

(४) आद्य श्री शंकराचार्य जी महाराज सबके साथ शास्त्रार्थ करते थे, परन्तु वे जिनके साथ शास्त्रार्थ करते थे वह सत्यवक्ता, प्रामाणिक तथा हार-जीत का निर्णय स्वयं स्वीकार कर लेते थे, ऐसा आपने अपने पत्र में उल्लेख किया है, इससे पता चलता है कि, हम आर्य समाजी लोग प्रामाणिक नहीं हैं, और न ही सत्यवक्ता हैं, आदि-आदि अगर आपने इसी भावना से हमारे ऊपर आक्षेप किया है तो हम आपके इस लेख के प्रत्युत्तर में आप पर ऐसी असभ्यतापूर्ण लांछन नहीं लगायेंगे।

(५) शास्त्रार्थ कैसे हो ? यह हमारी जानकारी न होने से हम अधूरी शर्तें लिखते हैं, आदि-आदि बातें आपने हमारे लिए लिखी हैं। जिनका उत्तर हमारी ओर से यह है कि, महाराज श्री के बिना जो शिष्य शास्त्रार्थ करते हैं, वह सभी आचार्य श्री के शिष्य वर्ग ही हों ऐसा हम नहीं मानते। क्योंकि ये पण्डित वर्तमान में भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों के साथ जुड़े हुए हैं, इसलिए वे सभी श्री महाराज के ही शिष्य हों, यह मानना असम्भव है। तथा उसका दूसरा कारण यह भी है कि शिष्य तब कहा जाता है कि जब उन्होंने आपके पास विद्याध्ययन किया हो, परन्तु हमें पता है कि महाराज श्री जिन पण्डितों को शास्त्रार्थ करने के लिए आगे लायेंगे उनको महाराज श्री ने एक दिन भी नहीं पढ़ाया। इसलिए झूठ-मूठ अपना शिष्य बताकर उनका लाभ उठाना वह वर्तमान विद्या के युग में वास्तविक

नहीं माना जा सकता। तथा श्रीमन् महाराजा गायकवाड़ प्रत्यक्ष अध्यक्ष का पद स्वीकार करेंगे तो आचार्य श्री स्वत: शास्त्रार्थ करेंगे ऐसा जो आपने लिखा है वह बिल्कुल भोली-भाली जनता को उलटा समझा कर शास्त्रार्थ से आचार्य श्री ने स्वयं पलायन करने का मार्ग खोज निकाला है, क्योंकि महाराजा गायकवाड़ को ऐसे शास्त्रार्थ में इतना अधिक समय निकालने का अवकाश मिलेगा नहीं, इसलिए यह अच्छा बहाना है कि श्री महाराज को शास्त्रार्थ करना ही न पड़े। और उनकी अपनी विद्वता की पोल खुलने से बच जाए, वाह ! जी वाह !! शास्त्रार्थ न करना पड़े इसके लिए कितनी अच्छी युक्ति खोज निकाली है।

(६) शिष्य वर्ग की ओर से बयासी कोटि के प्रश्न संस्कृत में भेजे हैं, उनके संस्कृत पाठ में ह्रस्व तथा दीर्घ की मात्राओं की अशुद्धियां तथा व्याकरण के दोष भरपूर मात्रा में हैं, इसलिए हस्ताक्षर करने वाले शिष्य वर्ग की विद्वता भी प्रकट होती है। अत: **"प्रथमः ग्रासे भक्षिको पात:"** जैसी स्थिति है, और चार्वाक आदि मतों के प्रश्नों का अनुकरण करके प्रश्न लिखे हुए हैं। जिसका उत्तर तीन दिनों में मांगा है। जिस पर हमें हंसी आती है कि बयासी प्रश्नों में से कुछ नास्तिक और कुछ आस्तिक प्रश्न हैं, जिनके उत्तर हमारे पूर्वज ऋषि-मुनि षड्दर्शन आदि ग्रन्थों में तथा अनेक भाष्यों में दे चुके हैं, क्या उनका उत्तर कोई तीन दिन में दे सकता है ? और उस पर शर्त कितनी बढ़िया रक्खी कि अगर उत्तर तीन दिन में नहीं मिला तो समझा जायेगा कि **"आर्य समाजी हार गए"** वाह ! वाह !! बलिहारी जाएं आपकी युक्ति और बुद्धि पर !!! अत: लेखक से हमारा निवेदन है कि उन बयासी प्रश्नों का उत्तर शास्त्रार्थ के दौरान दिया जावेगा।

(७) आप लिखते हैं कि श्री स्वामी नित्यानन्द जी के लेख को छुपाकर उस पर उनके हस्ताक्षर करा के प्रकट नहीं किया जाता। महोदय निवेदन है कि हमारी ओर से उनको छुपाया नहीं गया है, वे तो सदा सर्वदा प्रजा बीच रहते हैं, यह बात समस्त प्रजा जानती है, लेकिन जब तक शास्त्रार्थ का आयोजन न हो तब तक धमड़ाछा गांव की सभा में उनको लाने की आवश्यकता ही नहीं है। और उनके हस्ताक्षरों युक्त लेख को ही प्रकट करने की आवश्यकता है। क्योंकि शास्त्रार्थ कराने की जिम्मेदारी हमारी हैं न कि श्री स्वामी नित्यानन्द जी महाराज की ! परन्तु अगर श्री शंकराचार्य जी शास्त्रार्थ न करें तो उसका जिम्मेदार कौन होगा ? यह निश्चय न होने से महाराज श्री के हस्ताक्षरों युक्त पत्र की मांग हमारे द्वारा की गई थी, जो उचित ही थी।

(८) शास्त्रार्थ अमुक-अमुक व्यक्तियों से ही होना चाहिए, ऐसा कोई निश्चय नहीं, आदि-आदि जो आपने लिखा है, उसका उत्तर है कि जिस स्थान के जिम्मेदार प्रमुख व्यक्ति हों उन्हें स्वयं ही शास्त्रार्थ करना चाहिए। क्योंकि शिष्यों का ज्ञान उनसे न्यून ही होगा। ऐसा लौकिक नियम है, इसलिए महाराज माधव तीर्थ जी के हाथ से लिखा शास्त्रार्थ बहुत ही गम्भीर और तत्त्व ज्ञान से पूर्ण होना चाहिए, ऐसा आग्रह अगर हमारा है तो वह उचित ही है, महाराज श्री के शिष्य तथा आर्य समाज के पण्डितों का शास्त्रार्थ तो चल ही रहा है, परन्तु प्रधान धर्म गुरु शास्त्रार्थ करें तो कोई अलौकिक प्रकाश हो।

(९) राजकोट-बम्बई आदि स्थलों में महाराज श्री ने तथाकथित शास्त्रार्थ का जो आडम्बर रचा था, उससे सर्व समझदार प्रजा समाचार पत्र द्वारा समझ गई थी, और शोक सागर में गोता खाती रही। इसे अधिक स्पष्ट करने की जरूरत नहीं है कि आपके अनुसार यदि आर्य समाज के साथ शास्त्रार्थ हुआ और सभा में श्री आर्य मुनि जी तथा श्री स्वामी नित्यानन्द जी को उपस्थित होने को पुकारा गया, फिर भी उपस्थित नहीं हुए। हम पूछते हैं कि तीन दिन तक सभा में शास्त्रार्थ चला था तो वह शास्त्रार्थ किसके साथ चला था ? हमारा अनुमान है

कि वह शास्त्रार्थ दिवारों के साथ ही हुआ होगा ? वाह ! कैसा "वदतोव्याघात" है ?

(१०) आप लिखते हैं कि प्रस्तुत विषय छोड़कर दूसरे विषयों पर शास्त्रार्थ करने की माँग की है। और मृतक श्राद्ध, मूर्ति पूजा* और भोली प्रजा को भ्रम में डालने वाला है। द्वैताद्वैत, विशुद्धाद्वैत इनका भी लेखक को ज्ञान नहीं हैं। जिनके कारण इनका अर्थ स्वामी नित्यानन्द जी से पूछा गया है। अतः साफ पता चलता है कि पत्र का लेखक व लिखवाने वाला कितना बड़ा विद्वान है ? वह समस्त प्रजा के सामने प्रकट है।

टिप्पणी—

'शंकराचार्य ने स्वयं राजकोट (सौराष्ट्र) में शास्त्रार्थ नहीं किया था, और श्री पंडित भीमसेन जी (जो उस समय पौराणिक दल में जा मिले थे) को बुलाया। आर्य समाज की ओर से श्री पण्डित आर्य मुनि जी महा-महोपाध्याय जी को बुलाया गया था। श्री पण्डित आर्य मुनि जी का नाम सुनते ही श्री शंकराचार्य जी और श्री पण्डित भीमसैन जी शास्त्रार्थ से पलायन कर गये थे। वास्तव में शास्त्रार्थ हुआ ही नहीं था। उसका विवरण मेरे ग्रन्थ संग्रह में जो ६५ वर्ष पुरानी गुजराती पुस्तक "**भीमभ्रम**" अर्थात् "**पण्डित भीमसैन ने राजकोट यां आपेल भाषणों नो उत्तर**" नामक से प्रकट होती है जिसके सम्पादक "श्री स्वामी शंकरानन्द जी महाराज हैं, और वह पुस्तक "**कुमार श्री हमीर सिंह जी वर्मा**" विरपुर (सौराष्ट्र) की ओर से प्रकाशित हुई है उक्त पुस्तिका से राजकोट के तथाकथित शास्त्रार्थ विषयक अंश का हिन्दी भाष्य भी पाठकों की जानकारी के लिए प्रस्तुत है जो निम्नलिखित है—

*मोक्षादि विवादास्पद विषयों में आर्य समाज आपसे सहमत है आदि-आदि, इस विषय में हमारा कहना यह है कि—पत्र लेखक को यह पता नहीं है कि प्रस्तुत विषय से यावत् विषयों का निर्णय होने वाला है। क्योंकि द्वैताद्वैत आदि जो सम्प्रदाय हैं, उस विषय में शास्त्रीय विचार द्वारा ही मूर्ति पूजा, मृतकश्राद्ध आदि का निर्णय हो सके अतः मूर्ति पूजा आदि विषय हमें मान्य है, यह आपका भ्रमात्मक लेख है।

—भीमभ्रम निवारण—

जब श्री शंकराचार्य जी ने पण्डित आर्य मुनि जी की विद्वता के सामने स्वयं पराङ्मुख होकर पण्डित भीमसैन जी को शास्त्रार्थ के लिए बुलाया, परन्तु पण्डित भीमसैन जी को राजकोट आने पर पता चला कि यहाँ पहले से ही अपने पूर्व परिचित श्री पण्डित आर्य मुनि जी स्वयं विद्यमान हैं, आर्य मुनि जी की प्रशंसा वह स्वयं अपने ग्रन्थों में पहले ही लिख चुके थे, तब उन्होंने अपने प्रवचनों में पण्डित आर्य मुनि जी के किसी भी प्रश्न का उत्तर नहीं दिया और शास्त्रार्थ से भागने का रास्ता खोज लिया कि—शास्त्रार्थ की क्या आवश्यकता है ? आर्य समाजी तो अनेक बार हार चुके हैं, आर्य समाज का तो कोई मत भी नहीं है। अपने प्रवचनों में उन्होंने वही पुरानी बातें जो भारत के विभिन्न स्थलों में बार-बार कहीं हैं, वही राजकोट में भी जनता को सुनाई। जिनका उत्तर आर्य समाज की ओर से अनेकों बार दिया जा चुका था। तथा उनका उत्तर वहीं राजकोट में भी दे दिया गया था। जिसकी प्रतिलिपि "**कठियावाड़ टाईम्स**" के अधिपति को भी भेजी है। परन्तु उन्होंने प्रकाशित नहीं किया। उक्त बातों का राजकोट में पण्डित भीमसैन जी ने कुछ भी उत्तर नहीं दिया है। फिर भी श्री शंकराचार्य जी ने जो नई सनातन धर्म सभा कमेटी की स्थापना की है, उसके सदस्यों द्वारा शास्त्रार्थ की असमर्थता (जो पण्डित भीमसैन जी को बुलाने पर ही प्रकट हो जाती है) छुपाने और उनके आत्मविश्वास की निर्बलता प्रकट न हो इसलिए शास्त्रार्थ

(११) आप लिखते हैं कि सन्यास धर्म यह तीसरा विषय है और शास्त्रार्थ की मांग करने वाले सभी गृहस्थी हैं। उन्हें गृहस्थ धर्म जानने की जरूरत है। फिर भी हम लोग सनातन धर्म सुन कर सन्यासी होने की इच्छा रखते हैं, आदि-२ जो कटाक्ष आपने किया है, उनका उत्तर है कि, हम गृहस्थ हैं, फिर भी ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ और सन्यस्त ये धर्म जानने की आवश्यकता है। उसमें ब्रह्मचर्य तो नष्ट-भ्रष्ट हो चुका है, तथा वानप्रस्थ का भी मूलोच्छेद हो चुका है। परन्तु सन्यास धर्म पालने वाले सन्यासी अभी भी दिखाई देते हैं, उसमें से शंकराचार्य महाराज भी सन्यासी हैं, तथा आद्य श्री शंकराचार्य जी महाराज वर्तमान तथाकथित शंकराचार्यों की तरह, मनुष्य-सवारी, दिन के उजाले में मशाल जगमगाते वस्त्र, चांदी की खड़ाऊँ, रेशम के गद्दे व तकिते तथा पंचायतन देव पूजा रखते थे क्या ? अतः सन्यास धर्म जानने से प्रजा को जानकारी होवे कि सन्यास धर्म में क्या-क्या वर्जित है। और भविष्य में किसी जिज्ञासु गृहस्थी को अगर सन्यास लेने की इच्छा होवे तो "यथा गुरु तथा शिष्य" उपाय के अनुसार उसे सन्यास धर्म का पालन कैसे करना चाहिए ? इसकी पूर्ण जानकारी होवे।

(१२) आर्य समाज गुण कर्मानुसार वर्णाश्रम मानता है। आदि लिखकर सन्यास धर्म की क्या जरूरत है ? ऐसी जो संदिग्ध स्पष्टता दी हैं उनका उत्तर है कि, आर्य समाज नाम का कोई पंथ नहीं है, तथा आर्य समाज नाम का कोई धर्म भी नहीं है। बल्कि आर्य समाज मात्र एक संस्था है जो वेद धर्म को मानती है। इसलिए वेद तथा अन्य आर्ष ग्रन्थों में गुण कर्म स्वभावानुसार वर्ण व्यवस्था का वर्णन मिलता है। तदनुसार आर्य समाज वर्ण व्यवस्था मनाने को कहता है। फिर भी पत्र लिखने वाले को यह बात मान्य नहीं है, ऐसा प्रतीत होता है, और इस कारण ये लोग सन्यास धर्म मानते नहीं होंगे इसलिए ऐसा कुतर्क किया गया है। (पत्र विषय क्रमांक १३-१४ तथा १५ का स्पष्टीकरण उपर्युक्त वर्णन में हो चुका है)।

न करने का कोई कारण नहीं बताया गया। और पण्डित भीमसैन जी के प्रवचन जो "कठियावाड़ टाईम्स" में प्रकट हो चुके हैं, उनको पत्रिका रूप में छपा कर सौराष्ट्र के रेलवे स्टेशन पर बांटकर सन्तोष माना है, भोली जनता उक्त लेख से भ्रमित होकर देश और धर्महित के लिए कार्य करने वाली आर्य समाज के विषय में असत्य बातों से दूर रहे और द्वेष भाव से न देखे, "अतः यह भ्रम निवारण प्रकट किया जाता है"।

श्री पण्डित भीमसैन जी कौन है ?—

श्री पण्डित जी कौन है तथा आर्य समाज से क्यों निकाले गये ? उन्होंने अपनी प्रतिज्ञा भंग कैसे की ? उन सब बातों का हमने "पण्डित भीमसैन की प्रतिज्ञा भंग" और गुजराती भाषा में—"हिन्दु धर्म अने पण्डित भीमसैन नो मन" शीर्षक से लेख प्रकट किए हैं और उन लेखों को पण्डित भीमसैन जी की उपस्थिति में ही राजकोट के अन्दर वितरित किया गया था। जिनका पण्डित भीमसैन जी ने कुछ भी उत्तर नहीं दिया है। "भीमभ्रम पृष्ठ ३, ४" आर्य समाज ने श्रीं शंकराचार्य जी के शास्त्रार्थ का आह्वान स्वीकार किया था। परन्तु खेद की बात है कि, श्री शंकराचार्य जी और उनकी ओर से बुलाये गये पण्डित भीमसैन जी ने शास्त्रार्थ किया ही नहीं। तथा हमने उनकी पत्रिका का जो उत्तर दिया, उसके प्रत्युत्तर में जनता के सम्मुख कोई प्रवचन भी नहीं दिए और ऐसे अनर्थक लेख लिखकर उनके शिष्य केवल उनकी महत्ता बचाने का प्रयत्न कर रहे हैं। अस्तु !! हमने इस पुस्तक में उनके आक्षेपों का पूर्ण उत्तर दिया है देखिये (भीमभ्रम पृष्ठ-६)। उक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि, राजकोट में शास्त्रार्थ हुआ ही नहीं। और शास्त्रार्थ में शंकराचार्य ने आर्य समाज को अपने पत्रोत्तर में झूठ-मूठ लिख मारा कि—"तीन दिन शास्त्रार्थ चला" जय हो सन्तों की !

निवेदक—

"दयाल"

उपरोक्त सारी बातों में अन्तिम स्पष्टीकरण है कि, हमें बड़ी आशा थी कि, अपने को जगद् गुरु कहलाने वाले माधवतीर्थ जी जगत में फैले हुए अन्धकार को हटाने हेतु स्वयं शास्त्रार्थ करके कुछ प्रकाश डालेंगे, परन्तु हमारी यह आशा भी लगता है नष्ट हो गई। पत्र के अन्तिम उत्तर से हम निराश ही हुए हैं। क्योंकि जब शंकराचार्य के शिष्य वर्ग तथा आर्य समाज के पण्डितों के बीच शास्त्रार्थ होगा तो वर्तमान में चल रहे अनेक पन्थों सम्बन्धी निर्णय होने वाला नहीं है। क्योंकि पण्डित लोग तो (पूर्व लिखित) भिन्न-२ सम्प्रदायों के हैं। फिर भी आर्य समाज के पण्डित अनुकूल आग्रह एवं व्यवस्थानुसार शास्त्रार्थ करने को उद्यत हैं। और वैदिक धर्म की, उन्नति के लिए अपना उन्नति के लिए अपना तन-मन धन सभी कुछ अर्पण करने के लिए तैयार हैं। क्योंकि भारत भूमि अवनति अवस्था की ओर गई हुई है। जिसका मुख्य कारण भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों के बीच की खींचातानी ही है। हमें दुःख के साथ यह भी लिखना पड़ रहा है कि जैसे स्वामी श्री नित्यानन्द जी को शंकराचार्य माधव तीर्थ जी में साथ शास्त्रार्थ करने हेतु वचन बद्ध करके यहाँ पधारने का कष्ट दिया है और उनका चार दिन का अमूल्य समय श्री महाराज द्वारा व्यर्थ नष्ट किया गया है। ऐसा अनर्थ नहीं होना चाहिये था। अन्त में निवेदन है कि कृपा करके यह बतायें कि श्री महाराज के शिष्य वर्ग कब और किस समय शास्त्रार्थ करने हेतु पधारेंगे उसकी सूचना हमें चार दिन पूर्व मिलनी चाहिये, ताकि आर्य पण्डितों को बुलाने की व्यवस्था समय पर की जा सके।

हस्ताक्षर—
"मुकुन्द जी कुंवरजी"
(मन्त्री-आर्य समाज मजोगांव)

नोट—

उपर्युक्त क्रमांक ६ के विषय में कुछ बात विशेष स्पष्ट करने की यह है कि, बयासी कोटि वाले प्रश्नों के उत्तर—"आर्य मित्र" पत्र जो आगरा आर्य प्रतिनिधि सभा की ओर से प्रकाशित होता था, उसमें छपे हैं। फिर उत्तर मांगने का कारण लोगों को भ्रमित करने के अतिरिक्त दूसरा कुछ नहीं है, ऐसा प्रतीत होता है, तथा कछोली गांव की सभा में स्वामी माधवतीर्थ जी की ओर से जो पत्र हमें मिला था, उसका उत्तर हमने छमड़ाछा के वल्लभ दाजी आदि पञ्चों के द्वारा भेजा था, परन्तु "वह मिला नहीं है" ऐसा कह दिया, जो एक दुख का विषय है। पत्र रजिस्ट्रर्ड डाक द्वारा भेजे जाने पर भी श्री महाराज ऐसे भ्रम फैलाते हैं कि समाजी लोग उनके पत्रों को छुपा कर शास्त्रार्थ न करने का बहाना निकालते रहते हैं। और शास्त्रार्थ करना ही नहीं चाहते। अतः हमने गणदेवी गाँव के जमींदार श्री देसाई जी हकुमत राय हरराय भाई के द्वारा उनके विश्वासी व्यक्तियों को भेजकर श्री महाराज को विनती पत्र पहुंचाया है, फिर भी उनका उत्तर प्राप्त नहीं हुआ जो इस प्रकार था—

श्री द्वारका मट्ठ के स्वामी श्री शंकराचार्य जी महाराज की पवित्र सेवा में—

(१) सविनय निवेदन है कि, जब से आप श्री इस प्रान्त में पधारे हैं, तब से आप श्री ने विज्ञापन पत्रिका द्वारा आर्य समाजियों को वर्णाश्रम धर्म से पतित लिखा है, और आपके इस प्रकार के उपदेशों से क्रोधित होकर हमारी अनाविल जाति में द्वैष के बीज बोये हैं, इसलिए हमारी जाति को बहुत प्रकार की विपत्तियां सहनी पड़ें ऐसी स्थिति बन गई है। (२) आपको विदित है कि हमें वेदादि शास्त्र पर जो श्रद्धा उत्पन्न हुई और सन्ध्या गायत्री आदि करने लगे, तथा उपनिषदादि ग्रंथों का स्वाध्याय करने लगे हैं, वह सब आर्य धर्मोपदेशकों के पुण्य प्रताप का फल है। (३) हमारे ब्राह्मण लोग जिन्हें हम लोगों को धर्म का उपदेश करना चाहिए, उन्हीं को संस्कृत भाषा का ज्ञान कालेज द्वारा प्राप्त करना पड़ता है। अतः प्रत्येक आचार्य का धर्म है कि, यजमान वाले कुटुम्ब के पल रहे बच्चों को

सन्ध्या आदि सिखलाना। इसलिए आप श्री महाराज से भी विनम्र प्रार्थना है कि, आपके पास जो भी ब्राह्मण आते हैं उन्हें वेदादि शास्त्र पढ़ाना चाहिये, यजमानों को संध्या सिखानी और करानी चाहिये तथा धर्म पुस्तकों का अध्ययन कराना क्या यह सब आपका कर्त्तव्य नहीं है ? और आप इसके विपरीत आचरण करते हैं, इससे जो भी यजमान संस्कृतज्ञ हैं उनके मन में शंका उत्पन्न होती है कि, आप जैसे श्री ज्ञाता, विद्वान, और पवित्र महात्मा द्वारा जो सिद्धान्त बताया जाता हैं, वह सही है या गलत इसका निर्णय तो होना ही चाहिए, अतः आपको स्वयं आर्य समाज के विद्वान स्वामी के साथ शास्त्रार्थ करके हमारे जेसे वैदिक धर्मियों की शंकाओं का निवारण करना चाहिये। जिससे हमारी जाति में सनातनी और आर्य समाजियों के बीच किसी भी प्रकार का द्वेष उत्पन्न न होकर ऐक्यता का वातावरण बनकर आपस में प्रेम भाव बना रहे। हमारी इस विनती को आर्य समाज के स्वामी तथा आप महात्मा भी स्वीकार करेंगे। तथा तदनुसार उपदेश भी करेंगे। सत्य क्या है ? उसको खोज निकालना यह प्रत्येक व्यक्ति का कर्त्तव्य है। ऐसा केवल निष्पक्ष सन्यासी ही कर सकता है, वेतन भोगी व्यक्ति ऐसा निर्णय नहीं कर सकता। क्योंकि उसमें उसका सांसारिक स्वार्थ बना रहता है। यह सर्व विदित है कि, पण्डित भीमसैन जी और पण्डित ज्वाला प्रसाद जी आदि जो पहले आर्यसमाज की ओर से उपदेश करते थे, और तथाकथित सनातन धर्म के सिद्धान्तों का खण्डन करते थे, वे साम्प्रत में न जाने किस कारण से सनातनधर्मी बने हैं, इसलिए हम ऐसे लोगों के द्वारा सत्यासत्य का निर्णय नहीं कराना चाहते।

(४) हमें कुछेक ब्राह्मणों द्वारा ज्ञात हुआ है कि, आप श्री चैत्र कृष्ण अष्टमी के दिन शास्त्रार्थ करने के लिए सभा का आयोजन करने वाले हैं, यदि यह बात सत्य हो तो यह पत्र लाने वाले व्यक्ति के साथ स्वीकृति पत्र आपके हस्ताक्षर और मोहर के साथ हमारे पास शीघ्र भेजने का कष्ट करें। जिससे हम आर्य समाज के उपदेशक और सन्यासियों को उस प्रसंग में बुलाने की व्यवस्था कर सके। क्योंकि यह स्वीकृति आर्य समाज ने स्वीकार की है। और दूसरे हमारे देसाई लोगों को उस प्रसंग में उपस्थित रहने की सूचना दे सकें।

(५) यदि इस पत्र का उत्तर आप श्री की ओर से पत्र लाने वाले के साथ नहीं भेजा गया तो हमें यह मानने पर विवश होना पड़ेगा कि—"आप **श्री शास्त्रार्थ करना ही नहीं चाहते तथा आपके अनुयायी ऐसे ही आपके नाम से शास्त्रार्थ की गप्प हांकते फिरते है।"**

(६) इस पत्र का उत्तर लिखते समय अपने मुख्याधिकारी को सूचित करें कि, पत्राचार में, संदिग्ध असभ्य तथा अनुचित शब्दों का प्रयोग न किया जावे तो आपका बहुत ही धन्यवाद माना जावेगा। आप श्री महाराज के पास सत्य क्या है ? ये जानने हेतु हम जिज्ञासु रूप में यह प्रश्न पत्रिका भेजते हैं, इसलिए उनका स्पष्ट और शीघ्र उत्तर भेजने की कृपा करें। अगर हमारे लिखने में कोई त्रुटि हुई हो तो आप श्री क्षमा करेंगे यह विनती हैं।

प्रश्न पत्रिका—

(१) सभा अमुक दिन तथा अमुक स्थल में होगी।

(२) सभा सीमित नहीं बल्कि सार्वजनिक रूप में होगी।

(३) सभा में शास्त्रार्थी अथवा, श्रोताओं में से किसी को भी अपमानित नहीं किया जावेगा।

(४) शास्त्रार्थ में "**मूर्तिपूजा वेदोक्त है,**" तथा "**श्राद्ध में दिये गये पिण्ड मृतकों को पहुंचते हैं,**" और "**आर्य समाजी वर्णाश्रम से पतित है,**" यह विषय वेद तथा वेदानुकूल शास्त्रों से सिद्ध कर देने का आपका कर्त्तव्य है, और उनका खण्डन आर्य समाज के उपदेशक करेंगे।

(५) अगर किसी कारणवश आप श्री शास्त्रार्थ न कर सकेंगे अथवा न करना चाहेंगे तो आपकी ओर से किसी भी पण्डित को शास्त्रार्थ करने की मनुमति होगी, तथा इसी प्रकार से आर्य समाज को भी छूट होगी कि वह किसी भी विद्वान को शास्त्रार्थ करने के लिए खड़ा करें। परन्तु शास्त्रार्थ में आपके पक्ष वाले शास्त्रार्थ कर्त्ता की हार या जीत, आपकी हार-जीत मानी जाएगी। एवं शास्त्रार्थ लिखित व मौखिक दोनों तरह से करना होगा। जिससे श्रोताओं को पूर्ण लाभ प्राप्त हो सके। और पक्ष-विपक्ष को अपने कथन से मुकर जाने का अवसर न मिल सके।

(६) शास्त्रार्थ में दोनों पक्षों को लिखने तथा बोलने का बराबर समय प्रदान किया जावेगा।

(७) शास्त्रार्थ के समय, ताली बजाने वाले, शोरोगुल करके गड़बड़ मचाने वाले व्यक्तियों को पुलिस द्वारा सभा से निकाल दिया जावेगा।

गणदेवी
[दि० १० अप्रैल सन् १९०६ ई०]

निवेदक—
"हकुमत राय हरराम देसाई"
"आनन्द राय बापु भाई देसाई"

नोट :—

उपर्युक्त "**प्रश्न पत्रिका**" पहुंचने के बाद महाराज श्री ने कुछ दिनों के बाद निम्न पत्रिका प्रकट करके आर्य समाजियों को चैलैञ्ज दिया।

क्योंकि ये महाराज अब विकट परिस्थितियों में फँसने के कारण यहां निर्णय किये बगैर आगे यात्राओं पर नहीं जा सकेंगे, ऐसा प्रतीत होने पर उन्हें चैलैञ्ज देना पड़ा, क्योंकि श्री महाराज शास्त्रार्थ नहीं करना चाहते थे। यह तो स्पष्ट ही है। विरपुर और बम्बई आदि स्थलों से पहले भी विभिन्न स्थितियों में पलायन कर चुके हैं। इसलिए उन्होंने हमें निम्न प्रकार चैलैञ्ज दिया—

॥ श्रीः ॥

शास्त्रार्थ का चैलैञ्ज आर्य समाजियों को

१. (१) नीछा भाई नागर जी भाई पटेल, मु०—कछोली, (२) नारंग जी खुशहाल भाई, (३) भीमा भाई भगवान जी, (४) नीछा भाई भगवान जी, (५) डाह्या भाई गांग जी, (६) भगवान जी मुरार जी, (७) बसन जी जगा भाई, (८) कसन जी पराग जी, (९) नागर जी राम भाई, (१०) कसन जी नीछा भाई, (११) खंडु भाई भीखा भाई, (१२) बल्लभ भाई गोपाल जी, (१३) गुलाब भाई कुंवर जी, (१४) नीछा भाई गांड़ा जी, (१५) कीका भाई लाल जी, (१६) नीछा भाई बसन जी भाई, (१७) मुकन जी कुंवर जी, (१८) गुलाब भाई अख्खु भाई, (१९) रणछोड जी खुशाल भाई, (२०) छोटु भाई रणछोड जी, (२१) नीछा भाई दयाल जी, (२२) पराग जी दाजी भाई, (२३) गोपाल पुरुषोत्तम जी, (२४) दयाल जी लल्लु भाई, (२५) मोतीलाल काली दास, (२६) लाल जी, लल्लु भाई, (२७) पराग जी अभय राम, (२८) रणछोड जी गोपाल जी, (२९) लल्लु भाई नागर जी।

उपर्युक्त नाम वाले व्यक्तियों को सूचित किया जाता है, कि दिनांक २५-३-०६ के दिन इस पत्र की मांग के अनुसार निश्चित किया जाता है कि, दिनांक १६-४-०६ के दिन अमलसाड़ स्टेशन के पास अखिलेश्वर महादेव के मन्दिर वाले स्थान पर सभा का आयोजन प्रारम्भ होगा।

२. आपका पत्र दिनांक १-४-०६ का लल्लु भाई नागर जी और मकन जी कुंवर जी धर्म जिज्ञासुओं के हस्ताक्षर युक्त रजिस्ट्रड डाक द्वारा भेजा विज्ञापन प्राप्त हुआ, जिसमें मांग की गई है। तदनुसार संस्कृत के ६२ प्रश्नों का लिखित शास्त्रार्थ आर्य समाजी महाशय नित्यानन्द ने कछोली गांव की सार्वजनिक सभा में पहुंचाया है।

३. उनके उत्तर के साथ दिनांक १-४-०६ के अम्बा लाल खण्डु भाई देसाई और बाबा भाई फकीर भाई नामक धर्म जिज्ञासुओं के हस्ताक्षर युक्त हस्त पत्रिका में आर्य समाज की ओर से रु० १०,०००) बम्बई बैंक में जमा किया जावेगा, ऐसा स्वीकार किया गया है। तदनुसार रुपये १०,०००) का बम्बई बैंक का चैक या नकद के साथ आर्यसमाजियों को सभा में उपस्थित होना है।

४. उपर्युक्त लेखानुसार संस्कृत शास्त्रार्थ का उत्तर और रुपये १०,०००) की व्यवस्था किये बिना आर्य समाजियों को सभा में प्रवेश करने का या शास्त्रार्थ करने का अधिकार नहीं है। यदि उपर्युक्त व्यवस्था न की गई तो हमारी ओर से प्रसिद्ध हस्त पत्रिका की बात सत्य है, ऐसा मान कर शास्त्रार्थ का निर्णय प्रकट किया जावेगा।

५. सभा आदि का व्यय आप से कानूनी तौर पर लिया जावेगा।

६. ब्राह्मण क्षत्रियादि चातुर्वर्ण्य जनता को सूचित किया जाता है कि, उपर्युक्त लिखे अनुसार धर्म निर्णय का प्रवचन "पण्डित भीम सेन जी शर्मा" आदि द्वारा किया जावेगा। उनको श्रवणार्थ चातुर्वर्ण्य प्रजा सादर आमन्त्रित हैं।

हस्ताक्षर—
"केशवलाल मगनलाल"
(शारदा मठ—सर्वाधिकारी)

प्रथम दिन का शास्त्रार्थ-आरम्भ

नोट :—

आर्य समाज की ओर से श्री पण्डित बाल कृष्ण जी का पक्ष था कि—पुराणों वेद और सृष्टिक्रम आपस में विरुद्ध हैं। तथा श्री महाराज की ओर से श्री छोटू महाराज का उत्तर पक्ष था। एवं शास्त्रार्थ के विषय तथा शर्तें निम्न प्रकार थी। (स्थान अमलसाड दिनांक १६ अप्रैल सन् १६०६ ई०)।

शंकराचार्य महाराज श्री के नोटिसानुसार सभा सोमवार को अमलसाड़ में अन्धेश्वर महोदय के आंगन में बुलाई गयी। "समाजियों का जितना अपमान किया जाये उतना ही कम होगा" ऐसा मन्त्र उनको किसी ने सिखाया हो ऐसा लगता था, क्योंकि सभा के एक कोने में सबसे पीछे दूर समाजियों के बैठने की व्यवस्था की गयी थी। और बीच में रिक्त स्थान छोड़कर वहां पर रस्सीयां बधवां दी गयी थी। अधिक अपमानित करने हेतु सामने बोर्ड लगवा दिया था कि—"समाजियों को यहां बैठना" जबकि घर आये मेहमान का आदर तो और भी ज्यादा होना चाहिये था, अतिथि सत्कार के नाते! परन्तु यहां उस मान के बदले अपमान होगा, ऐसी विचित्र व्यवस्था होगी, यह जानते हुए भी आर्य समाजियों ने सोचा कि अगर नहीं गये तो "ये लोग शोर मचायेंगे कि शास्त्रार्थ से

टिप्पणी—

'यहां "समाजियों" से अर्थ "आर्य समाजियों" से ही लिया गया है।

"दयाल"

डर कर भाग गये" इसलिए अगर अपमान भी होगा तो भी जायेंगे जरूर। यह सोचकर सभा में सम्मलित हो गये। सभा के मण्डप में अव्यवस्था बहुत थी, आर्य समाजी सज्जन सभी निश्चित समय चार बजे से आधा घण्टा पहले ही, पुस्तकों की बैलगाड़ी भर कर सभा मण्डप में पधार गये। वहां किसी भी प्रकार का सम्मान न होने पर भी श्री स्वामी नित्यानन्द जी, श्री स्वामी विश्वेश्वरानन्द जी, स्वामी श्री शंकरानन्द जी, एवं रा० देसाई जी, हकुमत राव जी, तथा उनके चाचा आनन्द राय जी, और बम्बई के सम्मानित तीन-चार सेठों को मण्डप से २५ कदम दूर एक वट वृक्ष के नीचे छाया में मेज-कुर्सी रखवा कर उन पर बैठाया गया।

पण्डित श्री बाल कृष्ण जी एवं शास्त्री श्री मणिशंकर जी भी वहां उपस्थित थे। सनातनी लोग किसी भी प्रकार का बहाना बनाकर भाग न जायें इसलिए बिना निमन्त्रण के ही स्वामी शंकरानन्द जी को सभा मण्डप में भेजा गया, जो वहां से लगभग २५ कदम ही दूर था। उस रोज शास्त्रार्थ का प्रथम दिन होने से शंकराचार्य जी की सवारी भी जल्दी आई। प्रारम्भ में शंकराचार्य का एक कलंक उनकी ओर से छपे हुए विज्ञापन पढ़ गया, उनके पढ़ने में भी चालाकी की गयी। क्योंकि शंकराचार्य के आक्षेपों का जिसमें पूरा-पूरा उत्तर आर्य समाजियों ने दिया था, उसको आग्रह करने के उपरान्त भी पढ़ने में टाल दिया, उन्होंने केवल उसका उत्तर यही दे दिया कि अगर वह सब पढ़ा जावेगा तो—समय बहुत हो जावेगा। इसे सुनते ही सभा के बीच से—शास्त्रार्थ करो! शास्त्रार्थ करो!! की ध्वनि गूंजने लगी। अन्त में महाराज ने वह पाठ पढ़वाना बन्द करके उसकी जगह शास्त्रार्थ के विषय तथा नियम आदि बनाने के लिए दो-दो ग्रहस्थ नियुक्त करने को कहा।

शंकराचार्य की ओर से पोरबन्दर के भूतपूर्व दिवान और वर्तमान में बलसाड़ के तहसीलदार **"श्री मणीराय अजीतराय"** तथा **"बड़ौदा के पण्डित श्री छोटू महाराज"** को शास्त्रार्थकर्त्ता के रूप में नियुक्त किया। और आर्य समाज की ओर से—**"श्री स्वामी शंकरानन्द जी"** तथा बम्बई से पधारे हुए सुप्रसिद्ध पत्रिका **"आर्य प्रकाश"** के सम्पादक **"श्री मोती लाल त्रिभोवनदास दलाल"** को नियुक्त किया गया,।। परन्तु इन सभी की उपेक्षा करते हुए और अपने आपको सभा का अध्यक्ष घोषित करते हुए शंकराचार्य जी अपने वक्तव्य को बखानते थे। स्वयं ही बोलते जाते थे, किसी अन्य को बोलने का अवसर ही नहीं दे रहे थे। आर्य समाजियों को कहते थे कि आप लोग अपना पंच तय करो, परिणाम स्वरूप समाज की ओर से कोई पक्ष स्थापित ही नहीं हो पाया। परन्तु आर्य समाजियों को तो येन-केन प्रकारेण शास्त्रार्थ करना था। इसलिए उनकी ये सब सिद्धान्त विरुद्ध बातें भी माननी पड़ी। सभा में शास्त्रार्थ के विषय निम्न प्रकार तय किये गये—

(१) आर्य समाज का पक्ष यह है कि, **"पुराणों में वेद विरुद्ध तथा सृष्टिक्रम विरुद्ध बहुत सी बातें आती हैं इसलिए पुराण अमान्य हैं"**।

(२) आर्य समाज चर्तुवर्ण, गुण, कर्म और स्वभाव से मानते हैं, जन्म मात्र से नहीं।

(३) आर्य समाज पाषाणादि की प्रतिमा की पूजा नहीं मानता।

आर्य समाज की ओर से जो हैंडबिल छपाये गए थे, उनमें दूसरे विषयों पर भी शास्त्रार्थ करने की मांग की गई थी, लेकिन उक्त तीन ही विषय सबसे अधिक विवादास्पद एवं लोकोपयोगी होने से उन्हीं पर ही अभी शास्त्रार्थ किया जाए, ऐसा समाज द्वारा विराजमान सदस्यों ने बताया था, और रा० सा० मणिलाल ने स्वीकार किया था, लेकिन शंकराचार्य के पक्ष वालों द्वारा ऐसी जय प्रसारित की गई कि—और विषयों में जैसे कि श्राद्ध आदि तो समाजी सनातनियों का मत स्वीकारते हैं इसलिए दूसरे दिन की सभा में समाजियों ने स्पष्ट कहा कि यदि वे लोग ऐसा मानते हैं तो हम दूसरे विषयों पर भी शास्त्रार्थ करने को तैयार हैं। इसी आधार पर—**"शंकराचार्य वर्तमान में**

संन्यास धर्म का पालन नहीं करते हैं'' ऐसा समाज का पक्ष है। यह लिखने को कहा। लेकिन वह व्यक्तिगत आक्षेप होगा, ऐसा तय होने से—**''साम्प्रत में तथा कथित संन्यासियों वेद तथा वेदानुकूल स्मृतियों में बताये संन्यास धर्मानुसार नहीं चलते हैं''** ऐसा समाज का पक्ष है। यह लिखने का निश्चय हुआ दूसरे विषय भी लिखवाने की बात चलती थी, परन्तु बाद में छोटू महाराज ने लिखा कि—**''दूसरे भी जो प्रश्न समाजी लोग पूछेंगे उनका उत्तर भी सनातनियों द्वारा दिया जा सकेगा''** इस तरह समाज के ऊपर से आक्षेप दूर होने पर विषय का विवाद समाप्त हो गया। अब रही नियम की बात? तभी सोमवार को ही पचों ने मिलकर शास्त्रार्थ के नियम भी निम्नलिखित निर्धारित किए।

(१) आर्य समाज के पक्ष में प्रामाणिक ग्रन्थ ऋषि दयानन्द द्वारा लिखित ऋग्वेदादिभाष्य-भूमिका, में जो ग्रन्थों के नाम लिखे हैं, वह प्रमाण रूप में माने जावेंगे। (२) सनातनी लोग जिस पुस्तक को मानते हों उनके नाम लिखवावें और जिस पुस्तक का नाम नहीं लिखा जावेगा तो समझा जावेगा कि वे लोग उनको नहीं मानते तो उनका किसी का भी प्रमाण पेश नहीं कर सकेंगे। केवल जिनके नाम लिखवायेंगे उन्हीं के प्रमाण पेश कर सकेंगे। (३) विपक्ष वाले जिन-जिन ग्रन्थों को मानते हैं, उनके प्रमाण विरुद्ध पक्ष वाले दे सकेंगे और वह विपक्ष वालों को स्वीकार करना पड़ेगा। (४) सभा के प्रबन्धकर्ता दोनों पक्ष की ओर से समान नियत किए जायेंगे, और जो कोई भी गड़बड़ करेगा उसके लिए उन्हीं के पक्ष की जिम्मेदारी रहेगी, और प्रबन्धकर्ताओं को शास्त्रार्थ विषयक अभिप्राय देने का अधिकार नहीं होगा। (५) जब तक शास्त्रार्थ का एक विषय पूर्ण न हो जाए तब तक उसके स्थान पर दूसरे पण्डित को नहीं बिठाया जावेगा। (६) जो भी पण्डित शास्त्रार्थ करेगा वह अन्य किसी दूसरे पण्डित से कोई भी सहायता नहीं ले पायेगा। (७) प्रत्येक पण्डित को पन्द्रह मिनट से अधिक समय लिखने के लिए एक ही समय में नहीं दिया जायेगा। (८) प्रत्येक विषय की अवधि अधिकतम् पन्द्रह दिन रहेगी।

ये उपरोक्त नियम दिनांक १६-४-१६०६ को सोमवार के दिन श्री स्वामी नित्यानन्द जी महाराज जो सभा मण्डप से बाहर दूर जनता के बीच बैठे हुए थे वहां पंचों ने तय किए थे। उसके बाद—

श्री स्वामी नित्यानन्द जी महाराज—

शंकराचार्य जी को शास्त्रार्थ मेरे साथ करना होगा, ऐसी मेरी मांग है।

श्री छोटू महाराज जी—

शिष्यों के होते हुए उनको यह कष्ट उठाने की जरूरत नहीं है।

श्री स्वामी नित्यानन्द जी महाराज—

वह आद्य श्री शंकराचार्य के गद्दीपति हैं, इसलिए उनको उन्हीं का अनुसरण करना चाहिए। श्री आद्य शंकराचार्य जी भी तो स्वयं ही शास्त्रार्थ किया करते थे।

श्री छोटू महाराज जी—

जब शिष्य न हो तब करते थे, जबकि प्रायः उनके शिष्य **''कुमारिल भट्ट''** ही शास्त्रार्थ किया करते थे।

श्री स्वामी नित्यानन्द जी महाराज—

''कुमारिल भट्ट श्री शंकराचार्य के शिष्य थे?'' यह आपने कहाँ से निकाल लिया? मेरा आग्रह है कि

जब तक स्वयं आचार्य जी मौजूद हों तब तक अन्य किसी दूसरे को शास्त्रार्थ करने का अधिकार ही नहीं है। और सत्य निर्णय आश्रित पण्डितों अर्थात् किराये के टट्टुओं से कभी नहीं हो सकता। प्रजा को तो विश्वास और सन्तोष तभी होगा जब कि उभय पक्ष के बड़े-बड़े विद्वान स्वयं ही शास्त्रार्थ करें।

नोट—

इन उपरोक्त बातों का श्री छोटू महाराज ने कोई उत्तर न देकर मौन साध लिया।

आर्य समाज की ओर से श्री मोतीलाल दलाल—

अगर सभा में शंकराचार्य के समान ही स्वामी श्री नित्यानन्द जी को भी उच्च आसन प्रदान किया जावे तो आपकी सभा में भी उनके विरोधियों की संख्या अधिक होने पर भी वह आने को तैयार हैं।

सनातनियों को ओर से श्री रा० सा० तहसीलदार महाशंकर जी—

वह तो आचार्य और जगत्गुरु हैं, तुम्हारे नित्यानन्द जी क्या ऐसे हैं?

आर्यसमाज की ओर से श्री मोतीलाल दलाल—

वह अपने को कुछ भी पदवी दे लेवें। इससे क्या होता है? तुम्हारे मन में जितना मान उनके प्रति है, उससे कहीं ज्यादा मान श्री नित्यानन्द जी के प्रति हम लोग रखते हैं। आपको पता होना चाहिए कि हम लोगों के गुरु तो वेद हैं, स्वामी नित्यानन्द जी उनमें सबसे बड़े और महा महोपदेशक है। इसलिए आसन की समान और निष्पक्ष व्यवस्था होनी चाहिए। और फिर जगत् गुरु होने की बात भी हमें मान्य नहीं है। क्योंकि केवल शैव ब्राह्मणों के अतिरिक्त दूसरे सम्प्रदाय वाले उनको गुरु कहां मानते हैं? मुसलमान भी नहीं मानते। इसलिए जगत् गुरु तो क्या वे तो भारत के हिन्दुओं के भी गुरु नहीं हैं।

नोट—

उपरोक्त कथन को सुन कर सभा में से आवाजें आई कि—**"मुसलमानों का नाम भी मत लेना"** बस! चारों ओर चुप्पी लग गयी। इसके बाद—**"शंकराचार्य भी पाषाणादि की प्रतिमा पूजा नहीं मानते"** यह विषय तथा उपरोक्त नियम सोमवार की सायंकाल को तय हुए फिर शंकराचार्य के पास उन्हें ले जाया गया। उसे पढ़ते ही वे बोल कि—**"इसमें नया क्या है?"** और तीसरा विषय पढ़ते ही बोल उठे कि—**"तब पाषाणादि की प्रतिमा पूजा को हम भी कहां मानते हैं?** यह सुनकर उसके पण्डित लोग चौंक उठे। बाद में वह जोर से बोले कि—**मैं स्वयं स्वामी नित्यानन्द के साथ शास्त्रार्थ करने को उद्यत्त हूं"** इस पर छोटू महाराज ने कहा—"**जब तक आपके शिष्यों** में प्राण हैं तब तक वैसा नहीं होने दिया जावेगा। हम लोग क्या कम है? इसे सुनकर श्री शंकराचार्य जी पहले तो मौन हो गये, फिर तपाक से बोले·········"शिष्यों के इस जुल्म से ही तो मैं लाचार हूँ······और ऐसा कहते हुए शिष्यों के आग्रह पर शास्त्रार्थ की बात को बन्द कर दिया।

जब तक कोई नियम तय न हो तब तक सभा में किसी को भाषण नहीं देना होगा, ऐसा पंचों ने तय किया था। फिर भी पञ्चों में से आपसी विचार विमर्श करने के लिए कुछ व्यक्ति माण्डप से बाहर गये कि तुरन्त ही यहाँ पंच की अनुमति के बिना—**"पण्डित भीमसेन'"** को भाषण देने के लिए खड़े करने की चर्चा करके सभा में उनका परिचय कराने के लिए महाराज ने उनको खड़ा किया।

जैसे ही भीमसैन जी खड़े हुए तो तभी तुरन्त स्वामी श्री शंकरानन्द जी ने खड़े होकर स्वयं प्रकट की हुई उनकी पोल की पत्रिका उनके हाथ में रख दी। जिसका शीर्षक पढ़ते ही भीमसैन जी बैठ गये। और उसका पाठ मन ही मन करने लगे वह क्या था ? आप भी पढ़िये, वह नीचे लिखे जाता हैं।

सत्य वैदिक धर्म के जिज्ञासुओं को एक आवश्यक सूचना—

द्वारिका मट्ठ के अधिपति स्वामी श्री माधव तीर्थ ने आर्य समाज के साथ शास्त्रार्थ करने में असमर्थ होने से अपनी सहायता के लिए राजकोट, बम्बई एवं अपने प्रान्त में बुलाये हुए पण्डित श्री भीमसैन जी का परिचय इस पत्र द्वारा करने के लिए हम आज्ञा चाहते हैं—लोगों में घोषणा की जाती है कि, पण्डित श्री भीमसेन जी ने वेद का ज्ञान बढ़ जाने से एवं स्वामी श्री दयानन्द जी की भूलें जानकर आर्य धर्म की असत्यता समझ कर आर्य समाज को छोड़कर सनातन धर्म ग्रहण किया हुआ है। उनके बारे में यह भी कहने में हैं आता है कि—जब भीमसैन जी जैसे पण्डितों ने समाज छोड़ दी तो दूसरे लोगों को भी छोड़ देना चाहिए।

उनके इस प्रश्न के उत्तर में दु,ख के साथ लिखना हड़ता है कि, यह बात सर्वथा मिथ्या हैं। और भोले लोगों को ठगने के लिए ही ऐसी झूठी बातें प्रसिद्ध करने में आती हैं। बल्कि सत्य क्या है, वह वास्तविकता निम्न है। जिसको पण्डित भीमसैन जी अपने लेखों द्वारा स्वयं स्वीकार करते हैं। जो लेख पण्डित श्री भीमसैन जी ने आर्य समाज से निकाले जाने के बाद आर्य समाज में पुनः प्रवेश की इच्छा से उन्होंने अपनी "आर्य सिद्धान्त" नामक पत्रिका के अंकों में छपा कर प्रसिद्ध किया है।

तदनन्तर भी आर्य समाज में प्रवेश न मिलने पर तथाकथित सनातन धर्म सभा की शरण में गये हैं। पण्डित भीमसैन जी श्री स्वामी दयानन्द जी के पास उनके द्वारा रचित ग्रंथों को लिखने हेतु लिपिक रूप में नौकर थे। उसके साथ-साथ श्री स्वामी दयानन्द जी महाराज उनको व्याकरण आदि शास्त्र भी पढ़ाते थे। स्वामी जी महाराज के निर्वाण के पश्चात् श्री पण्डित भीमसैन जी कुछ वर्ष तक स्वामी दयानन्द जी के विचारों को फैलाने के लिए "आर्य सिद्धान्त" नामक पत्रिका भी निकालते थे। तथा स्थान-स्थान पर जा-जा करके आर्य धर्म का मण्डन और तथाकथित सनातन धर्म का खण्डन करते थे।

पण्डित भीमसैन जी ने कुछेक पुस्तकों की टीका भी लिखी है, तथा उपनिषदों की टीका में भी परिवर्तन किया है। एवं मनुस्मृति की टीका करते समय भी कुछेक महत्वपूर्ण श्लोक अमुक कारण से निकाल दिये हैं, तथा गीता की टीका करते समय भी अनेक महान उत्तम श्लोक ही नहीं बल्कि अध्याय के अध्याय उड़ा दिये, और यह प्रकट किया कि वह वैष्णव लोगों ने गीता में प्रक्षेप किए हुए है। उसी प्रकार कुछेक विषयों पर वर्तमान में चल रही सम्प्रदायों की रीत्यानुसार लेख लिखने लगे हैं। इन सभी बातों को देखकर विद्वान आर्य पुरुषों को उनके प्रति बहुत ही तिरस्कार पैदा हो गया है। परिणामस्वरूप आर्य समाज के समाचार पत्रों में तथा आम भाषणों में, उनके विरुद्ध बोला जाने लगा। उस समय ऐसा हुआ कि श्री सेठ माधव प्रसाद जी के घर पर यज्ञ कराते समय न जाने कौन से गुप्त हेतु से पण्डित भीमसैन जी ने बनावटी बकरे को तलवार दिखला कर पशुवध के मन्त्र का बिनियोग पूरा किया, देखो—"उन्ही के द्वारा प्रकाशित आर्य सिद्धान्त भाग दस, अंक ९ पृष्ठ ४३"।

इसके पूर्व भी जब आर्य समाजियों ने उन पर स्वामी दयानन्द जी के अभिप्राय के विरुद्ध लिखने का आरोप लगाकर नाराजगी प्रकट की थी। उस समय भी आर्य समाजियों को विश्वास दिलाने के लिए उन्होंने अपने—"आर्य सिद्धान्त १०-९-३३ के अंक में" प्रकट किया था कि मैं ईश्वरानन्द की तरह कृतघ्नी नहीं हूं, मेरे गुरु स्वामी

दयानन्द जी को मैं कोई भी दोष नहीं लगाऊँगा, और यदि स्वामी जी के सम्बन्ध में कुछ भी झूठ लिखूं तो मुझे कृतघ्नता का दोष लगे। यज्ञ में बनावटी आटे के बकरे को वध करके उसकी बलि देने के पश्चात् जब समाजियों ने उन्हें सर्वथा समाज से अलग कर दिया, तब उसने तटस्थ रहने की प्रतिज्ञा की, और दिल्ली जाकर समाजियों के पास क्षमा माँगी, उसका विवरण अपने आर्य सिद्धांत १०-१२-५४ में प्रकाशित की। इसके अतिरिक्त अन्य दूसरी पत्रिकाओं में भी प्रकट की थी। उसमें ऐसा लिखा है कि इस समय मेरी भूल हुई है। अब आगे ऐसी भूल नहीं करूँगा, क्षमा की अपील आर्य सिद्धान्त के अंक १०-१२-५४ में निम्न प्रकार प्रकाशित की थी—

"**यदि माम् प्रतिकारम् शस्त्रं शस्त्र प्राणयः। धार्तराष्ट्रा रणे हन्युस्तन्मे क्षमेतरं भवेत्**"॥ जैसे अर्जुन ने कहा था कि—मुझे खाली हाथ और कोई भी बचाव न करते हुए यदि दुर्योधन आदि मार भी डालें तो मेरा कल्याण है। लेकिन मैं उनके सामने हाथ नहीं उठाऊंगा। उसी प्रकार मैं भी कहता हूं कि, आर्य समाजी लोग मुझे चाहे कुछ भी कहें, तथा मुझे कितना भी दुःखी करें, फिर भी मैं अपनी आयु पर्यन्त आर्य समाज का प्रति पक्षी नहीं बनूंगा। बल्कि आवश्यकता पड़ने पर आर्य समाज को सहयोग ही करूंगा। मैं आरम्भ से ही आर्य समाज में रहा हूं, और सभी प्रकार के कार्यों में मुझे सहायता मिली है, और मेरी ओर से भी आर्य समाज को बल मिला है। अब यदि इस स्थिति में, मैं स्वयं आर्य समाज का प्रति पक्षी बन जाऊं अथवा यदि प्रति पक्षियों को सहायता करूं तो मेरे ऊपर कृतघ्नता का दोष लगे। अब रहा यज्ञादि का विचार? वह आर्य लोगों को जैसा उचित लगे वैसा वह विचार करें और मानें। मैं स्वयं इस विषय में प्रतिपक्षी की तरह आगे कुछ भी नहीं लिखूंगा। इसलिए आप लोग अवश्यमेव मेरे द्वारा पूर्व की गई धृष्ट्ता के लिए मुझे क्षमा करें।

हस्ताक्षर—
"भीमसेन शर्मा"

इस उपरोक्त लेख के अतिरिक्त भी अनेकों ऐसे ही कुछ लेख अपने **"आर्य सिद्धान्त"** में प्रकाशित किए, जिनमें साफ लिखा था कि—मैं स्वामी श्री दयानन्द जी को अब भी पूर्ववत् गुरु मानता हूं, और किसी भी समय आर्य धर्म के लिए हानि कारक कृत्य नहीं करूंगा। फिर भी आर्य समाजियों ने उनको क्षमा नहीं किया। तब पण्डित जी को तथाकथित सनातन धर्म में जाना पड़ा है। अब इससे स्पष्ट होता है कि—भीमसेन जी स्वार्थी हैं या आर्य समाजी? अथवा पण्डित भीमसेन जी की ऐसी बातें जानते हुए भी उनकी सहायता लेने वाले, उनके तथाकथित वर्तमान गुरु द्वारका मठ के अधिपति स्वामी श्री माधवतीर्थ जी स्वार्थी हैं? पण्डित भीमसेन जी की सच्ची वास्तविकता जानने के लिए उनके अपने १९०० ई० के छपे **"आर्य सिद्धान्त"** के अंक पढ़ने चाहिए। यहां उनमें से कुछ उदाहरण लिखते हैं। जिससे साफ पता चलता है कि वह कैसे सनातनी हैं? देखिए—आर्य सिद्धान्त भाग-१० अंक ९ पृष्ठ ३१ में—**"स्वामी जी का शिष्य कहलाने में उत्सुकता दिखायी"** तथा आर्य सिद्धान्त भाग-१० के अंक ९ के पृष्ठ ३४ पर—**"स्वामी जी ने स्वप्न में आकर शिक्षा दी—ऐसा लिखना"** तथा आर्य सिद्धान्त भाग-१० अंक ९ में ही उसके पृष्ठ ३६ में लिखा है—**"मूर्तिपूजा, अवतारादि वेद विरुद्ध हैं" ऐसा लेख और वर्तमान में तथाकथित सनातन धर्म को मानने की प्रतिज्ञा**। एवं आर्य सिद्धान्त के भाग १० के अंक ९ पृष्ठ ५० पर **प्रतिनिधि सभा के पास समझौते की अपील करना**" तथा आर्य सिद्धान्त के भाग १० अंक १० के पृष्ठ ९ पर **"वेद विरुद्ध स्मृतियाँ न मानने का लेख,"** तथा आर्य सिद्धान्त भाग-१०, अंक ११ के पृष्ठ २५ पर—**"समाज की हानि वाले लेख वापिस लेना"** तथा आर्य सिद्धांत भाग १०, अंक ११ के ही पृष्ठ २६ पर लिखा है कि—

"समाज विरुद्ध लेख क्रोधवश लिखे गये हैं, ऐसा स्वीकार करना" तथा आर्य सिद्धांत भाग १०, अंक ११

के पृष्ठ ४१ पर लिखा है कि—**"कुछ उपनिषदों को पुराणों के समान मानना"** तथा आर्य सिद्धान्त भाग १०, अंक ११ के पृष्ठ ५२ पर कहा है कि—**"शत्रु के लक्षण······गुण को भी अवगुण माने"** इन लेखों से पण्डित जी के वचन पर कितना विश्वास रखा जा सकता है ? इसका विचार स्वयं पाठक गण ही कर सकते हैं।

ऐसा सुनने में आता है कि, पण्डित जी को समाज में न रहने का घोर पश्चाताप हो रहा है। लेकिन अभी तक हमारे हिन्दु भाइयों ने ऐसा नहीं सुना होगा कि, पण्डित जी ने हिन्दु शास्त्रों के खण्डन करने के वारे में अभी तक प्रायश्चित किया है कि नहीं ? संक्षेप में हमारा कथन यह है कि पण्डित जी का धर्म न आर्य है न सनातन ! उनका धर्म तो केवल टका पैसा है। जब आर्य समाज की ओर से धन की सहायता मिलती थी तब वर्तमान में तथाकथित सनातन धर्म का खण्डन करते थे, और यज्ञादि में पशुहिंसा का निषेध सिद्ध करते थे, जब सेठ माधव प्रसाद की ओर से कुछ धन प्राप्ति की आशा हुई तब नकली पशु वध किया।

जब स्वामी माधवतीर्थ की ओर से स्वार्थ सिद्धि होती दिखाई दी तो उनके शिष्य बनकर उनके गीत गाते फिरते हैं, ऐसे मनुष्यों की बात सुनकर जाति में द्वेष बढ़ाकर हानि उठाना यह समझदार मनुष्यों का काम नहीं है। इसलिए शास्त्रार्थ का आयोजन करके सत्यासत्य का निर्णय किए बिना एक पक्षीय बात सुनकर अधर्मी न होना चाहिए। इत्योम् ॥

निवेदक
"शंकरानंद"

तत्पश्चात् कुछ देर बाद महाराज श्री ने पुनः भीमसैन को भाषण आरम्भ करने की आज्ञा दी। पण्डित भीमसैन को उन्होंने ही पैसे के लालच से आटे के नकली पशु का यज्ञ करने की सम्मति दी थी। इस लिए आर्य समाज ने उनका बहिष्कार किया था। और तदनन्तर गिडगिडाहट और क्षमा मांगने पर भी उनको समाज ने स्वीकार नहीं किया। इस कारण समाज के विरुद्ध सनातनियों के साथ मिलकर गाली बकते फिरते हैं, और समाज के जिन सिद्धान्तों का उन्होंने जीवन पर्यन्त-वृद्धावस्था पर्यन्त मण्डन किया था, उनका ही हृदय विरुद्ध खण्डन करते हुए घूमते हैं। उनको ही समाजियों के विरुद्ध भाषण करने के लिए खड़ा किया गया। जब कि वह नियम विरुद्ध था, फिर भी समाजियों ने हस्ताक्षेप करना उचित न समझा। आज के दिन भी सभा में लगभग दो हजार व्यक्ति एकत्रित थे, जिनमें से अनुमानतः २०० भिक्षुक ब्राह्मण तथा शेष अनाविल ब्राह्मण थे, और उनमें लगभग एक सौ व्यक्ति आर्य समाजी थे।

ऐसा कहा गया था कि—अगर समाजी बड़ी संख्या में आयें तो सभा में उन्हें जाति से बहिस्कृत कर देने का पीछे से ठहराव कर देना। और समाजी न आ सकें उसके लिए शंकराचार्य ने अपने हैन्डबिल में ऐसा लिखा था, कि—**"उन्हें रुपये दस हजार का तैयार चैक बम्बई बैंक के नाम लिखकर लाना होगा एवं स्वयं के द्वारा घोषित ८२ प्रश्नों के उत्तर भी लिखकर लाने होंगे तभी सभा में उनका प्रवेश सम्भव हो सकेगा।"**

महाराज श्री की ओर से नोटिस में बताये गए उनके जामिन गृहस्थ वल्लभभाई दाजी भाई को नित्यानन्द जी के पास बुलाकर पूछा तो उन्होंने कहा कि—मेरे घर पर तो दस हजार खपरैलें भी नहीं हैं, मैं जामिन कैसे बनूं ? उसके बाद शंकराचार्य जी के माँग करने पर सभा में चैक भेजा गया।

इस पर भी चैक मिलने पर शंकराचार्य ने झूठ बोला कि हमने मांग नहीं की थी। जब कोई भी पेश न चल सकी तो मजबूरन सभी शर्तें वापिस लेनी पड़ी और सभी प्रतिबन्ध हटाकर आर्य समाजियों को ऐच्छिक स्थान

पर बैठने की अनुमति देनी पड़ी। आज की सभा सायं सात बजे कल पर डालते हुए समाप्त हुई।

नोट—

वास्तव में प्रथम दिन शास्त्रार्थ हुआ ही नहीं, केवल उपरोक्त कार्यवाही के बाद ही सभा समाप्त कर दी गई थी।

निवेदक—
"दयाल"

दूसरे दिन का शास्त्रार्थ

दूसरे दिन अर्थात् दिनांक १७-४-१९०६ ई० के दिन शास्त्रार्थ हेतु पुनः सभा जुटी। उस समय लगभग १२०० व्यक्ति सभा में मौजूद थे, प्रारम्भ में समाज की ओर से नियुक्त पंच श्री मोतीलाल दलाल ने माँग की कि, शास्त्रार्थ शंकराचार्य जी की ओर से हो, अन्यथा शास्त्री जी जिनको वह शास्त्रार्थ कर्त्ता के रूप में नियुक्त करना चाहते हैं तो उनकी हार जीत की जिम्मेवारी अपने ऊपर लें। ऐसा एक लेख लिखकर उस पर मौहर सहित हस्ताक्षर करके देवें।

जिससे शास्त्री जी की हार-जीत, शंकराचार्य जी की हार-जीत मानी जावे। ऐसा शंकराचार्य जी पहले ही कह चुके हैं। अब लिखकर देना होगा, इस बात में शंकराचार्य जी मुक्त नहीं किए जा सकते। इसी बीच शास्त्रार्थ के नियम निर्धारण का प्रस्ताव हुआ तो सभा में आगे बैठे हुए ब्राह्मणों ने शोर मचाना आरम्भ किया कि—इस प्रकार समय व्यर्थ में बरबाद हुआ जाता है।

सभा के अन्दर से कुछेक आवाजें आई कि ऐसे बहाने बनाकर आर्य समाजी शास्त्रार्थ से पलायन करना चाहते हैं, इसके प्रत्युत्तर में आर्य समाजियों ने कहा कि ऐसी बातें करके तुम खुद ही शास्त्रार्थ से पीछा छुड़ाना चाहते हो।

भला! शास्त्रार्थ के नियम निश्चित किये बिना शास्त्रार्थ कैसे आरम्भ किया जा सकता है? थोड़ा धीरज रखना चाहिए। फिर भी एक क्षण की प्रतीक्षा किए बिना विपक्षियों का प्रलाप चालू रहा, इसी बीच नियमों के प्रस्ताव पर दोनों पक्षों के एक-एक सदस्य ने उस पर हस्ताक्षर किये। उसके बाद आर्य समाज के पण्डित "श्री बाल कृष्ण जी" ने कहा कि नियमानुसार लिखित शास्त्रार्थ होना चाहिए। और वह लेख स्वयं शास्त्रार्थ कर्त्ता का ही होना चाहिए। तथा उसका अनुवाद भी साथ लिखना होगा जिसको सभी व्यक्तियों के समक्ष सभा में सुनाना होगा। जिससे पण्डित वर्ग के अतिरिक्त साधारण व्यक्तियों के पल्ले भी कुछ पड़ सके।··· बीच में···

श्री पण्डित छोटू जी महाराज—

मुझे केवल बोलने का ही अभ्यास है, अगर मेरी ओर से कोई लिखेगा तो उनकी अशुद्धि के लिए मैं जिम्मेवार हूं।

श्री पण्डित बाल कृष्ण जी शर्मा—

यों तो तुम्हारी अशुद्धि को फिर सुधारते फिरे, आप ऐसे व्यक्ति को ही क्यों रखते हो जिसके लेख में अशुद्धि होने की शंका हो? अगर आप ऐसे पण्डित हैं तो स्वयं ही हाथ से क्यों नहीं लिखते? मैं भी स्वयं अपने हाथ से लिखूंगा।

नोट—

लेकिन सनातनी पण्डितों को डर था कि, लिखने पर हम कहीं भी जबाब तक देने लायक नहीं रह पायेंगे। और अपने ही हाथों ऐसे बंध जावेंगे, कि छुटाये से भी पीछा नहीं छूटेगा। इस कारण लिखित शास्त्रार्थ करने से साफ मना कर दिया। परन्तु कहीं इन सनातनियों को कोई बहाना न मिल जावें जिससे जो आयोजन येन-केन-प्रकारेण सम्भव हुआ था उससे पलायन कर बैठें, इसलिए पण्डित बालकृष्ण जी शर्मा ने मौखिक शास्त्रार्थ के लिए ही स्वीकृति दे दी। केवल इतनी ही मांग की कि, मैं संस्कृत में अपने पूर्व पक्ष का मण्डन करूंगा लेकिन उसके बाद सामान्य लोगों के लाभार्थ उनका भाषान्तर भी साराँश रूप में बोलूंगा। इस पर भी विपक्षियों की ओर से आपत्ति उठायी गयी, परन्तु वह आपत्ति उनकी चल नहीं पाई। इस बीच एक आर्य समाजी सज्जन ने कहा—

एक आर्य समाजी सज्जन—

अगर हिन्दी में बोलेंगे तो जो भी सनातनियों के विरुद्ध होगा उसे सम्पूर्ण जनता समझ लेगी, इसी से ये लोग शायद डर रहे हैं।

उपस्थित सभी सनातनी—

(एक आवाज में) ·····बाद में एक साथ भाषान्तर करेंगे,

उपस्थित सभी आर्य समाजी—

बाद में तो सब नौ-दो-ग्यारह हो जावेंगे, यह सब हमें पता है, तुम लोग अपने संस्कृत पाठ का भाषान्तर न करो, परन्तु अगर पण्डित बालकृष्ण जी अपने पाठ का भाषान्तर करें तो इसमें तुम्हारा क्या जाता है ?

श्री पण्डित बालकृष्ण जी शर्मा—

लिखित हो तो संस्कृत की भी जरूरत नहीं है। तब तो मौखिक में हिन्दी का ही काम है। सिर्फ प्रमाण वाला पाठ ही संस्कृत में आवेगा।

नोट—

बहुत वाद-विवाद करने के बाद श्री मणीलाल जी ने स्वीकारा कि मौखिक शास्त्रार्थ संस्कृत में किया जाय परन्तु उसका भाषान्तर भी होना चाहिए। इसे सुन कर सभी विपक्षि भिक्षुकगण नाराज हो गये। इसी वाद-विवाद में लगभग पांच बजे सायं को शास्त्रार्थ आरम्भ हो पाया। दूसरे दिन का शास्त्रार्थ मौखिक होने से सम्पूर्ण बातें नहीं लिखी जा सकी केवल जिस पाठ पर आक्षेप उठाया गया वह ही लेखबद्ध हो सकी है। सम्पूर्ण लिखित सामग्री आगे शास्त्रार्थ के अन्त वाले पाठ में उद्धृत हैं। अब आप देखिये क्या हुआ वह शास्त्रार्थ ?

श्री पण्डित बालकृष्ण जी शर्मा—

श्रूयतां महाराज !

श्री पण्डित छोटू जी महाराज—

महाराजा,

श्री पण्डित बालकृष्ण जी शर्मा—

वाह ! वाह !! क्या पांडित्य है आपका ? बड़ी भारी भूल निकाली ! लेकिन मेहरबानी करके इस प्रकार बीच में न बोलिए। बाद में जब आपके बोलने की बारी आवे तब वे सब भूल निकालना। अभी केवल अपने पास नोट कर लो,।

नोट—

पण्डित बालकृष्ण जी ने अपने कथन के अन्त में संस्कृत भाषा के अन्दर-पुराणों की असत्यता पर कहा, तो बीच में ही छोटू महाराज बोल पड़े—कि तुम्हें यहां हेतु नहीं समझाना है।

श्री पण्डित बालकृष्ण जी शर्मा—

कारण ? तुमको बीच में बोलना नहीं चाहिए।

प्रबन्धक श्री मणीलाल जी—

ये बात ठीक है, महाराज जी आपको बीच में नहीं बोलना चाहिए।

नोट—

फिर पण्डित जी ने "पुराणों की असत्यता" पर संस्कृत में बोलने के बाद उनका अनुवाद करके बताया कि हमारा विषय प्रथम यह सिद्ध करने का है कि—पुराणों में वेद तथा सृष्टि क्रम विरुद्ध बातें बहुत आती हैं, इसलिए पुराण अमान्य हैं। अब मैं उन्हें उदाहरण द्वारा सिद्ध करूंगा। पुराण, सनातन वैदिक धर्म के विरुद्ध वाली बातों से भरा पड़ा है। विष्णु पुराण के तीसरे खण्ड में एक कथा आती है।

श्री शंकराचार्य माधव जी तीर्थ—

ये केवल शास्त्रार्थ हो रहा है, यहाँ किसी व्याख्यान के देने की जरूरत नहीं है।

प्रबन्धक श्री मणीलाल जी—

आप बीच में न बोलिए महाराज ! मैंने उन्हें अनुमति दी है।

नोट—

पण्डित जी ने अपनी बात को आरम्भ करते हुए कहा कि, पुराण में भगवान व्यास जी के साथ सम्वाद है, उनका कथन है कि, कलियुग में पुराण बनाने की आवश्यकता इसलिए है कि, इस समय में लोगों में अज्ञान व्याप्त रहता है। इसलिए उनके उद्धार के लिए पुराणों की रचना आवश्यक है। इस प्रकार कहते हुए आगे पुराण की जो कथा आरम्भ की थी, उसको पूरा करने हेतु बोले—

श्री पण्डित बालकृष्ण जी शर्मा—

भाइयो सुनो मैं शिव पुराण की एक कथा सुनाता हूं जहाँ जहाँ शिव के महाव्यभिचार का वर्णन आता है। सुनिये—एक समय में महादेव जीं दारूवण में गये। तथा वहाँ विहार करते-करते स्वयं मग्न हो गये, उसके

उपरान्त हाथ में अपनी उपेस्थेन्द्रिय को लेकर घूमने लगे, तो मार्ग में उनको ऋषि पत्नियाँ मिलीं, उनके रूप लावण्य को देखकर वे उन पर मोहित हो गये तथा उनसे रमण करने में प्रवृत्त हुए। इतने में ऋषि लोग वापिस आ गये, उन्होंने महादेव के इस कुकृत्य महानिन्दनीय कर्म को देखा। इससे अत्यन्त क्रोध में आकर उन्होंने महादेव को शाप दे दिया, परिणामस्वरूप महादेव जी की उपस्थेन्द्रिय कट कर भूमि पर गिर पड़ी। अब मैं पूछता हूं कि क्या इस प्रकार की कथाओं से विष्णु पुराण में कहा गया वचन पूरा होता है? कि कलियुग में अज्ञान अधिक होने के कारण मनुष्यों के उद्धार के लिए पुराणों की रचना आवश्यक है। इससे किसी का क्या उद्धार हो सकता है? ऐसी महा अश्लील कथा कि जिसे स्वयं मुझे भी कहते हुए लज्जा आ रही है। क्या पौराणिक महादेव नामक परमात्मा, वेद में वर्णित ईश्वर के लक्षण से विरुद्ध नहीं हैं? यह कथा धर्म विरुद्ध है। तथा यह कथा ब्रह्मचर्य पालन एवं एक पत्नि-गामी होने की वेद की जो आज्ञा है उसके भी विरुद्ध है। यह कथा परमात्मा को मनुष्यरूप बताने वाली तथा उन्हें कलंक लगाने वाली है। ऐसी अन्य भी हजारों बातें पुराणों में विद्यमान हैं। इसलिए ये—"पुराण वेद के विरुद्ध होने से अमान्य ही हैं"।

श्री पण्डित छोटू जी महाराज—

(प्रथम संस्कृत में ही बोले, पश्चात भाषान्तर करते समय मूल से अलग-अलग नई-नई बातें बोलने लगे तो श्री रा० सा० मणीलाल जी का ध्यान, श्री पण्डित बालकृष्ण जी शर्मा ने उधर आकृष्ट कराया, तो श्री मणीलाल जी व श्री शंकराचार्य जी ने उन्हें ऐसा प्रकरण विरुद्ध बोलने से मना किया) तो छोटू महाराज बोले—

इस प्रकार पण्डित बालकृष्ण जी शर्मा का व्यवहार कोई इष्ट रीति नहीं है। फिर भी मैं कर्तव्य पालन हेतु अपने कथन को कहता हूं—यदि पुराण झूठे सिद्ध हो जावें तो हम उन्हें फेंक देते व अपने सन्दूक जो उनसे भरे हुए हैं, उन्हें खाली करने को तैयार हैं, लेकिन प्रथम तो तुम्हारे ही प्रमाणों से यह सिद्ध होना चाहिए। आप कहते हो कि ये बात वेद विरुद्ध है। लेकिन आपने उनके लिए विरोध में वेद के मन्त्र तो दिये ही नहीं। कथा (दृष्टान्त) पर बाद में विचार होगा, क्योंकि वह ही अन्त के दाल भात हैं, इसलिए उन दृष्टान्तों पर तो बाद में विचार होगा, पहले तो लड्डू ही खाने चाहिए, इसलिए मूल बात मन्त्र रूपी लड्डुओं की पहले समाधान करनी होगी। यह वेद का ही प्रमाण है, ऐसा कैसे जानें? जब तक उसका नाम-पता साथ न हो? क्या बिना नाम पते के उस पर सींग लगे हुए हैं, जिससे पता चल सके कि यह वेद मन्त्र हैं। मैंने यह भी सुना हुआ है कि आप लोग व आपके स्वामी दयानन्द जी भी नास्तिक नहीं हैं। इसलिए आपको वेद मान्य होने ही चाहिए, ऐसा मैं मानता हूं। इसलिए आपसे उत्तर लेने हेतु तीन प्रश्न करता हूं। (१) वेद के कौन-२ से प्रमाण जो हमारी बात के विरोध में हैं, वे वेद में कहाँ-२ पर मौजूद हैं? (२) प्रमाण स्वरूप वेद के मन्त्र आते हैं कि नहीं? (३) प्रमाण का स्वरूप क्या है?। प्रमाण के लक्षण का तुम्हें प्रथम निर्वचन करना होगा, क्योंकि न्याय शास्त्र में लिखा है कि—"लक्षण प्रमाणाभ्यां वस्तु सिद्धिः"॥

श्री पण्डित बालकृष्ण जी शर्मा—

(प्रथम संस्कृत में बोलने के बाद पुनः भाषान्तर करते हुए)—श्री माननीय छोटू जी महाराज के सामने मैंने उदाहरणार्थ पुराण की कथा पेश की, जो अवाच्य रीति से अश्लील है, ऐसा उन्हें स्वीकारना पड़ा है। क्योंकि उसका उत्तर देना तो दूर उसे छुआ तक भी नहीं।

नोट—

यहाँ बीच में "नारायण" नामक व्यक्ति जो शंकराचार्य जी का क्लर्क था, वह बीच में बोलने लगा तो श्री मणीलाल जी बोले—

प्रबन्धक श्री मणीलाल जी—

यदि तुम लोग ऐसे ही बीच में बोल-२ कर विघ्न डालोगे तो मैं उठकर चला जाऊँगा। (उसके बाद सभा में शान्ति हुई) पश्चात पण्डित बालकृष्ण जी ने अपना वक्तव्य आरम्भ किया—

श्री पण्डित बालकृष्ण जी शर्मा—

भाइयो ! श्री छोटू जी महाराज यह तो स्वीकारते हैं कि पुराणों में ऐसी कथा तो अवश्य मौजूद है, परन्तु वह कथा वेद विरुद्ध नहीं है, ऐसा सिद्ध नहीं कर सकते। वह उलटा मुझी से पूछते हैं कि—इस कथा के वेद विरुद्ध होने में मैं ही उन्हें स्वयं प्रमाण दूं। लेकिन भाइयों यह बिल्कुल नई प्रथा है। मैं पूछता हूं—क्या वेद में परदारा गमन है ? क्या आप लोग ऐसा मानते हो ? (मन्त्र प्रस्तुत करते हुए······) भाइयों वेद में अनेक मन्त्र आते हैं, जिनमें साफ कहा है कि—"पति को चाहिए कि वह अपनी स्त्री के सिवाय पर स्त्री से कभी भी रमण न करे" और एक मन्त्र विवाह संस्कार के प्रकरण में "सप्तपदी" के समय आता है, जहाँ पति प्रतिज्ञा करता हुआ—उपरोक्त भावार्थ वाला मन्त्र उच्चारण करता है। इसलिए मैं पूछता हूं कि—पुराण के कल्पित महादेव का पराक्रम क्या वेद के मन्त्रों के साथ ठीक युक्त होता है ? कभी नहीं। इसलिए साफ पता चला कि, ये कथा वेद विरुद्ध है। परन्तु ये इसे मानेंगे नहीं इसलिए कभी प्रमाण के लक्षण मांगते हैं, कभी न्यायशास्त्र की बात करते हैं, कभी कुछ तो कभी कुछ ! (सभा में सन्नाटा·········) भाइयों इस प्रकार के भिन्न-२ विषयक प्रश्न निकालते हैं जो प्रस्तुत विषय के विरुद्ध हैं, इसलिए विषयान्तर होने पर वितण्डावाद में प्रवेश करना इनकी हार का लक्षण है। परन्तु मैं इन्हें इस प्रकार पलायन करने नहीं दूंगा।

प्रबन्धक श्री मणीलाल जी—

अब संस्कृत में बोलना छोड़ दो, भाषा में ठीक चलता है, सभी समझते भी हैं, तथा संस्कृत के उपरान्त तब भी भाषा बोलनी ही पड़ती है। इसलिए आगे शास्त्रार्थ भाषा में ही चलने दो।

श्री छोटू जी महाराज—

मैं संस्कृत बोलने से डरता नहीं हूं।

श्री पण्डित बालकृष्ण जी शर्मा—

हँसते हुए·········लेकिन मैं तो डरता हूं न महाराज ! मैं तो सिर्फ आपकी ही हिम्मत से काम ले रहा हूं······जनता में हँसी·········

श्री छोटू जी महाराज—

केवल नाम मात्र प्रमाण देने से काम नहीं चलेगा। मिताक्षर में प्रत्यक्षादि प्रमाण के लक्षण बतलाने चाहिए। "प्रमाण कि लक्षणं" सिर्फ इस प्रश्न का पहले उत्तर दो, बाकी सब बाद में देखा जावेगा।

श्री पण्डित बालकृष्ण जी शर्मा—

आप पहले यह सिद्ध करो कि, मेरे द्वारा कही गई पुराण की कथा-वेदानुकूल है। क्योंकि समाज का पक्ष है कि, वह कथा वेद विरुद्ध है। तो आप उसे पहले वेदानुकूल सिद्ध करो। बाद में प्रमाण के लक्षणों की बात आएगी। अगर इस विषय पर बिल्कुल अलग से भी आप चाहेंगे तो हम शास्त्रार्थ करने को तैयार हैं। क्योंकि

महाराज जी ये समझते हैं कि इस विषय में, मैं निर्बल हूं, उनका विषय बहुत गहन है। सो अलग से शास्त्रार्थ करने पर सब ज्ञात हो जावेगा। जैसा कि छोटू जी महाराज ने अपने वक्तव्य में कहा है कि—"**चरम खादति, कोर्ट चलति, वकीलानं च बरिस्ट्रान् फायदा भवति**" आदि-२, महाराज की यह भाषा वास्तव में गहन भाषा है। इस सभा में जो भी संस्कृतज्ञ बैठे हैं, वह जान गए हैं। ······जनता में हँसी······। भाइयों शायद संस्कृत में मेरा ऐसा ज्ञान नहीं होगा, कि जिससे "फायदा" आदि शब्द संस्कृत साहित्य में जो छोटू जी महाराज ने प्रयोग किया वह मैं जान सकूं! क्योंकि आज तक मुझे तो किसी शास्त्र या कोष में यह शब्द मिला नहीं, महाराज का अध्ययन गहन है। उन्होंने मुझसे अधिक ग्रन्थों को पढ़ा होगा जिनमें यह शब्द होगा,······सभा में चारों तरफ तालियाँ······मैं पूछता हूं कि जब हमारी ओर से सर्वप्रथम ही हमने यह—"**प्रमाणाप्रमाण्य का न्याय शास्त्र वाला**" विषय लिया था तो तब क्यों मना कर दिया था? तब इनकी यह विलक्षण बुद्धि कहाँ गयी थी? तब प्रमाण के लक्षण निरूपण का यह विषय लेने का आग्रह क्यों नहीं किया था? यदि दार्शनिक शास्त्रीय विषय ही लेना था तो विषय क्रम पर हस्ताक्षर क्यों किए थे?

श्री छोटू जी महाराज—

भाइयों, पण्डित बालकृष्ण जी ने मात्र हरदाश की कथा कही है। लेकिन मैंने कोई पुराण नहीं बल्कि न्याय और वेदान्त भी पढ़े हैं, उनके प्रमाण दो, उनके प्रमाण कहां हैं? मैं कैसे जानूं? में कोई पिशाच या बैताल तो हूं नहीं जो दूसरे के उदर (हृदय) की बात जान सकूं। पुराण की यह बात वेद विरुद्ध सिद्ध करने से पहले तो वेदों का ही निर्णय करना होगा कि कौन से वेदों के विरुद्ध सिद्ध करें? इसलिए पहले वेदों का प्रामाण्य समझाना होगा। तब बाद में हम विरोध समझायेंगे। तुम केवल खाली घोड़े पर बैठ कर आये हो। मेरा प्रश्न यह है कि वेद प्रमाण सही है कि नहीं? लेकिन वह तो बोलता ही नहीं। तब तक विरोध कैसे सिद्ध हो? पण्डित जी का प्वाइन्ट कोई बिल्कुल बेमतलब नहीं है, लेकिन दाहिने के बदले बायां पैर पहले रखते हैं, इसलिए पहले शास्त्र की बात होगी बाद में पुराण की कथा वाली बात आवेगी। मैं अवधि देता हूं कि कल प्रमाण के लक्षण लिख लाना और मैं बाद में उनका खण्डन करूंगा।

शास्त्री श्री रणछोड़ जी (बम्बई निवासी)—

(बीच में)······शास्त्रार्थ में केवल एक या दो पण्डित ही क्यों बोलें? सभी पण्डितों को बोलने का अवसर मिलना चाहिए, मुझे भी कुछ बोलना है।

श्री शंकराचार्य माधवजी तीर्थ—

मत बोलो! मैं फैसला देता हूं, शास्त्रीय नियम यह है कि, प्रथम शास्त्रीय विषय को सिद्ध करना और तुम्हारे द्वारा लगाए गए आक्षेपों का परिहार भी करना चाहिए। तुम पहले हाथ उठाओ कि प्रमाण-प्रमेय के विषय में शास्त्रार्थ नहीं करना है। तब उससे सम्बन्धित लैक्चर करने हेतु किसी दूसरे पण्डित को समय देंगे।

नोट—

श्री पण्डित बालकृष्ण जी को यहाँ बोलने की अनुमति बहुत मुश्किल से भिक्षा माँगने के समान ही मिल पाई थी, तब उन्होंने कहा—

श्री पण्डित बालकृष्ण जी शास्त्री—

छोटू महाराज तो कहते हैं कि, वह तो पुराण जानते ही नहीं, तब पुराण जैसे विषय पर शास्त्रार्थ करने

का बीड़ा उन्होंने क्यों उठाया ? जब वह इस विषय में अनभिज्ञ थे तो क्यों नहीं उनकी जगह पर किसी विज्ञ पण्डित को खड़ा किया ? परन्तु जो खूबी छोटू महाराज में हैं शायद वह उस दूसरे पण्डित में न होगी जैसे, खूब जोर से उच्च स्वर में बोलना, तथा अपनी ही अपनी कहते जाना दूसरे की बिल्कुल नहीं सुनना ।

श्री छोटू जी महाराज—

मेरे कहने का गूढ़ अभिप्राय यह था कि मैं पौराणिक नहीं बल्कि शास्त्री हूं । पुराण तो शास्त्र के बच्चे हैं, मैं वेदवक्ता हूं इसीलिए वेद पर ही तुम भी चलो, "**अघ्रात व्याकरणं: न शास्त्रार्थो कुर्यात्**" अर्थात् जिन्हें व्याकरण की गन्ध भी नहीं उन्हें शास्त्रार्थ नहीं करना चाहिए ।

श्री स्वामी शंकरानन्द जी महाराज—

इस विषय में, मैं सख्त विरोधी हूं, क्योंकि पण्डित बालकृष्ण जी संस्कृत में इतना सब कुछ बोले उसमें एक भी व्याकरण की अशुद्धि नहीं देखी गई, परन्तु छोटू महाराज ने अनेकों अशुद्धियाँ की हैं । तथा एक बार तो अपने वक्तव्य में अंग्रेजी भी बोल गए, उनसे तो पण्डित बालकृष्ण जी अवश्य ही बड़े पण्डित हैं, जब आपसे पण्डित बालकृष्ण जी के प्रश्नों का उत्तर नहीं बन पड़ता तो आप इस प्रकार के व्यक्तिगत आक्षेप करने लगते हैं जो कदाचित उचित नहीं हैं ।

श्री छोटू जी महाराज—

जब तक कोई अच्छा विद्वान पण्डित विपक्ष की ओर से नहीं आयेगा तो मैं शास्त्रार्थ नहीं करूँगा । ये कोई शास्त्रार्थ है ? मेरा कहना है कि—प्रथम प्रमाण के लक्षण पर शास्त्रार्थ करो, बस ! बाद में अन्य कोई दूसरी बात का जिकर होगा, इसमें चाहे भले ही नित्यानन्द जी स्वयं आवें ।

श्री पण्डित बालकृष्ण जी शर्मा—

अब निर्णय साफ हुआ, कि शास्त्रार्थ होगा ही नहीं । क्योंकि छोटू जी महाराज न्यायशास्त्र में मेरी विद्वता की परीक्षा लेने बैठे हैं । उनका प्रस्तुत विषय से क्या सम्बन्ध है ? मुझे वे दर्शन शास्त्र भी स्वीकार हैं, और यदि उनके विरुद्ध बोलूं तो मेरे पास स्पष्टता माँगने का अधिकार है, परन्तु ये तो वितण्डावाद करके शास्त्रार्थ से पलायन करना चाहते हैं ।

नोट—

इसके बाद श्री पण्डित भीमसैन जी बोलने को खड़े हुए तो तुरन्त शंकराचार्य जी ने कहा—

श्री शंकराचार्य माधव जी तीर्थ—

तुम न बोलो, बैठ जाओ । पण्डित बालकृष्ण जी का ही फर्ज है कि वह उनका भी उत्तर दें, लेकिन पहले प्रमाण के विषय में तय होना चाहिए ।

श्री पण्डित बालकृष्ण जी शर्मा—

तब तो महाराज ! आप ही उनकी वेद से स्तुति सिद्ध कर दो, । तथा······बीच में······

श्री पण्डित भीमसेन जी शर्मा—

पण्डित जी आप······(बीच में)······

श्री पण्डित बालकृष्ण जी शर्मा—

आप बैठ जाइये, अन्य किसी दूसरे को बोलने का अधिकार नहीं है ।

श्री शंकराचार्य माधव जी तीर्थ—

तब तो शास्त्रार्थ कल पर रक्खो ।

श्री छोटू जी महाराज—

पण्डित बालकृष्ण जी को तो सिर्फ संस्कृत और इतिहास आता है, उनकी जगह पर अन्य कोई शास्त्रीय विद्वान होना चाहिए ।

श्री पण्डित बालकृष्ण जी शर्मा—

तुम न्याय शास्त्र का विषय रक्खोगे तो उस विषय पर भी मैं ही शास्त्रार्थ करूँगा । लेकिन पहले जो विषय चल रहा है, उससे बहाना बना कर सामने वाले पण्डित को अविद्वान आदि गाली समान वाक्य कह कर शास्त्रार्थ से पलायन मत करो । पहले तो कहते थे कि संस्कृत भी नहीं आती, परन्तु चलो अब संस्कृत आने का सर्टिफिकेट तो दिया इसके लिए आपका धन्यवाद करता हूं ।

श्री शंकराचार्य माधव जी तीर्थ—

वेद से क्या विरोध हुआ ? पण्डित बालकृष्ण जी प्रथम यह सिद्ध करें ।

श्री पण्डित बालकृष्ण जी शर्मा—

वह वेद मन्त्र जो मैंने बोला था, वह सप्तपदी में बोला जाता है । यदि आप प्रस्तुत विषय पर शास्त्रार्थ करने में असमर्थता जाहिर करें तो मैं प्रमाण के लक्षण वाले विषय पर भी शास्त्रार्थ करने को तैयार हूं

श्री पण्डित भीमसेन जी शर्मा—

समाजियों का व्यवहार वेद से सोलह आने विरुद्ध है । इसलिए उन्हें—"वेद विरुद्ध क्या है" ? इस विषय

पर बोलने का कोई अधिकार नहीं है। अतः लिखित शास्त्रार्थ करना व्यर्थ है, क्योंकि मैं, स्वयं अपनी "ब्राह्मण सर्वस्व" नाम से पत्रिका निकालता हूं, इसलिए जिनको लिखित शास्त्रार्थ पढ़ने हों वे उस पत्रिका के ग्राहक बनें।

श्री पण्डित बालकृष्ण जी शर्मा—

आप लिखित शास्त्रार्थ करने को मना करते हो, परन्तु आपकी पत्रिका के प्रत्युत्तर में आर्य समाज की कौन सी पत्रिका निकलती है जिसमें शास्त्रार्थ का विवरण छपता है ?

नोट—

श्री पण्डित भीमसैन ने, श्री पण्डित बालकृष्ण जी शर्मा की बातों को अनसुनी करते हुए श्री महाराज श्री को तथा अन्य भक्तों को उस पत्रिका के ग्राहक बनने की सूचना दी। ये भी पण्डित भीमसैन जी की कैसी खूबी रही ? साथ में पण्डित जी ने पचास-सौ रुपये की पुस्तकें भी बेच डाली। ये भी अच्छा लाभ कमाया। आर्य समाज की पत्रिका का नाम तक नहीं लिया ताकि कोई उसका ग्राहक न बन जावे। पण्डित भीमसैन को वेतन भी मिलता था, ग्राहक भी बनाये, तथा पुस्तकें भी बेच डाली, अतः हमें यहां लिखना पड़ता है कि— महाराज श्री अपने शिष्यों से कहते हैं कि शास्त्रार्थ करो। लेकिन उन्हें पता नहीं है कि शिष्य उनकी जेब खाली करना तो क्या तन के कपड़े तक उतारने को तैयार रहते हैं। इसके कुछ समय बाद तक विवेचन हुआ पश्चात शास्त्रार्थ सभा का आयोजन अगले दिन पर स्थगित कर दिया गया। तत्पश्चात "रा० सा० मणीलाल जी वहां से "श्री स्वामी नित्यानन्द" जी के पास आये, और उनको बताया कि व्यवहारिक रीति से तथा अंग्रेजी रीति से देखकर तो सनातनियों को प्रमाण के लक्षणालक्षण पर जाने का दुराग्रह झूठा है। लेकिन हो सकता है कि पुरानी पद्धति वही हो, मैं संस्कृत जानने का दावा तो नहीं करता परन्तु मेरा झुकाव उस ओर होने में यह एक कारण स्वाभाविक सा लगता है। इस पर स्वामी नित्यानन्द जी ने उनको कहा कि शास्त्रार्थ करने की यह पद्यति न पुरानी है न नई है, न संस्कृत न प्राकृत ! अगर उनकी शास्त्रार्थ पद्यति यही हो तब तो बिना किसी दर्शन आदि के सूत्रों पर विवाद किए बिना किसी भी विषय का निर्णय ही न हो। जब तक शास्त्र स्वीकृत प्रमाण का शास्त्रार्थ अस्वीकार न करे तब तक प्रस्तुत विषय पर से उस शास्त्र पर स्वयं उतरना वह स्पष्ट विषयान्तर और वितण्डावाद है। पुराण का वेदों में विरोध दिखाने के लिए प्रमाण का लक्षण मांगना यह सरासर बेवकूफी ही है। हम यहां यह और बताना चाहते हैं कि—आर्य समाज की ओर से—स्वामी श्री नित्यानन्द जी, स्वामी श्री शंकरानन्द जी तथा बम्बई के पण्डित श्री बालकृष्ण जी शर्मा, गणदेवी के पण्डित श्री मशीशंकर जी, खरशाड़ के पण्डित श्री कृष्णराम (बम्बई आर्य प्रतिनिधि सभा के तीनों उपदेशक) तथा नवसारी के पण्डित जयकृष्ण जी विद्यमान थे। तथा सामने विपक्ष की ओर के विद्वान—श्री पण्डित भीमसैन जी शर्मा इटावा निवासी, एवं बड़ौदा के श्री पण्डित छोटू राम जी महाराज, व बम्बई के श्री पण्डित रणछोड़ जी तथा बलसाड के भी एक दो पण्डित उपस्थित थे। उनके बीच—"**श्री शंकराचार्य जी के पण्डितों ने प्रचलित लिङ्ग पूजा का किया हुआ खण्डन और पुराणोंसृष्टोक्रम तथा नीति विरुद्ध होने के बारे में शास्त्रार्थ का सत्तावार वृतान्त एव शंकर के तथाकथित व्यभिचार का चमत्कारिक आध्यात्मिक अर्थ व शंकराचार्य द्वारा शोरोगुल मचा कर शास्त्रार्थ से पलायन करना**"—

दिनांक १८-४-१९०६ ई० दिन बुधवार को यह शास्त्रार्थ का तीसरा तथा अन्तिम दिन था, क्योंकि इस तारीख तक ही शास्त्रार्थ करने की स्वीकृति श्री शंकराचार्य जी की ओर से है, ऐसा हमें अन्य व्यक्तियों से मालूम हुआ था। और यह भी पता चला था कि आज ही उनकी ओर से शास्त्रार्थ से पलायन करने की युक्तियां निकाली जावेगी। इसलिए विचार किया गया कि हमारी ओर से ऐसी कोई बात पैदा न हो जिससे उन्हें शास्त्रार्थ से पलायन

करने का मौका मिल सके। परिणामस्वरूप सभी आर्य समाजी पूर्व दिनों की अपेक्षा आज नियत समय से एक घण्टा पूर्व ही शास्त्रार्थ स्थल पर पहुंच गये। शंकराचार्य जी प्रतिदिन पौने चार बजे आते थे, परन्तु आज पौने पाँच बजे आए, आते ही शास्त्रार्थ करने की आज्ञा दी, तुरन्त सारी सभा में शान्ती छा गई, और छोटू महाराज जी अपने लेख को पढ़ने के लिए खड़े हुए जिसको उन्होंने पूरी रात लगाकर दस-बारह पन्नों में लिखा था, इसी बीच·· ······

श्री पण्डित बालकृष्ण जी शर्मा—

आज प्रथम बोलने की बारी मेरी है, तथा गत शाम के प्रश्नों का जो श्री छोटू जी महाराज द्वारा किए गए थे, उनका उत्तर भी देना शेष है।

नोट—

इसको सुनकर श्री शंकराचार्य जी ने श्री पं० बालकृष्ण जी को अपने लेख पढ़ने का आदेश दे दिया—

श्री पण्डित बालकृष्ण जी शर्मा—

प्रथम आप लोग मेरा "वेद प्रमाण विषयक" उत्तर सुनिए !

श्रीयुत छोटुमहाराज शर्मभ्यो नमः। ह्यो वेदः कः कानि च शास्त्राणि, प्रमाणानि कानि कानिच तेषां लक्षणानी, त्यहं भवद्भिः पृष्टः। तत्र वयं ब्रुमः। वेदः कः कानि च शास्त्राणीत्यादिकं पूर्वमेव शास्त्रार्थनियम-निर्णयावसरे निरणायि। ऋग्वेदादि भाष्यभूमिकां दृष्ट्वा तत्र ये चास्माकं प्रमाणीभूतंग्रन्थास्ताज्ज्ञात्वा शास्त्रार्थ नियमानामधस्तात्स्वहस्ताक्षराणि कृतानि भवद्भिरतो ऽत्राप्रासाङ्गिक एवायं प्रश्नः। एतद्विषयान्तरं विहाया प्रकृतमनुस्रियतां भवाद्भिः। प्रकृतविषयाद्विषयान्तरगमनं निग्रहस्थानं, निग्रहस्थानं खलु पराजयप्राप्तिः। ह्यः शिवकथाया वेद विरूद्धत्वे किं प्रमाणमित्यु तम। तत्र श्रूयतां प्रमाणम्। **"सप्तं मर्यादाः कवयस्ततक्षुस्ता-सामेकाभिदभ्यहु रोगात"**। (ऋग्वेदे अ. ७ अ. पूर्वं. ३३ म. ६.) अर्थः—कवयो मेधाविनं ऋषयः सप्त मर्यादाः कामजेभ्यः क्रोध जेभ्यस्चवधृिताः पानमक्षाः स्त्रियो मृगय दण्डः पारुष्यमन्यद्रुषणमिति सप्त मर्यादास्ततक्षुः सुष्ठु लङ्धनीयाश्चकुः। त्यक्तवन्त इत्यर्थः। तासां मर्यादानमिकामिदेकामेवाहुरः पापवान्पुरुषोऽभ्यगात् अभिगच्छति। यस्त्वेवं करोति स पापवान्भवतीत्यर्थः सायणभाष्यम्। **"पुराणानां वेदविरुद्भत्वे श्रुयतां द्वितीयं प्रकरणम्। कदाचित्सुरतस्यान्ते दष्ट्वा विष्णुं तमेव हि"** ।।२५।।

"वृन्दोवाच" धिक्त्वदीयं हरे शीलं परदाराभिगामिनः। ज्ञातोऽसि त्वं मया सम्यग्मायी प्रत्यक्षतापसः।। (पद्मपुराणे) इत्याद्यनेका लोकोत्पथप्रवर्तिन्यः कथाः सन्ति पुराणेष्वत एवादौ पुराणानां त्याज्यत्वे प्रतिज्ञात-मस्माभिः।।

हस्ताक्षर :—

"बालकृष्णशर्मणः"

भावान्तर—

श्रीयुत् छोटू महाराज शर्मा जी नमस्ते ! वेद क्या ? शास्त्र क्या ? प्रमाण कितने और उनके लक्षण क्या? ऐसा आपने कल पूछा था। उस विषय में हमारा कहना है कि, इन सब बातों का तो शास्त्रार्थ के नियम निश्चित करते समय ही निर्णय हो गया था। उस समय ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका को देखकर उसमें लिखे हमारे प्रमाणभूत ग्रन्थों को देखकर आपने शास्त्रार्थ नियमों के नीचे अपने हस्ताक्षर भी किए हुए हैं। इसलिए प्रमाण कितने हैं ? ये

प्रश्न तो नियम बनाते समय ही करना चाहिए था। नियम बनाते समय आपने हमारे द्वारा बताये गये सभी प्रमाणादि स्वीकार कर लिए थे। इस कारण वह प्रश्न आपका प्रसंगानुकूल नहीं है। अत: आप विषयान्तर में जा रहे हैं इसलिए इसे छोड़ दो। यदि प्राकृत विषय को छोड़कर विषयान्तर करोगे तो यह निग्रह स्थान होगा, और निग्रह स्थान में आने पर पराजय समझी जाती है। कल हमने जो शिव की वीभत्स कथा पुराणों के अनुसार वर्णन की थी वह वेद विरुद्ध कैसे हैं ? ऐसा आपने प्रश्न किया था, उसके उत्तर में वेद का मन्त्र प्रमाण रूप में सुनिए—ऋग्वेद के सातवें अष्टक में सप्तपदी का ऐसा मन्त्र है, उसका सायण भाष्यानुसार अर्थ भी यह है कि—काम और क्रोध से उत्पन्न होने वाले, मद्यपान, द्यूत, परस्त्रीगमन, मृगया, दण्ड, कठोर भाषण और निष्कारण किसी को दोष लगाना, इन सात दुर्गुणों को विद्वान लोग त्याग देते हैं, इनमें से अगर एक कर्म भी यदि कोई करता है तो वह पापी समझा जाता है, इस प्रकार शिव भी ऋषि पत्नियों के साथ गमन करने से पापी हो गए। शिव को ईश्वर मान कर उन पर इस प्रकार की परस्त्रीगमन का कलंक लगाना यह कितना पुराणों का विरोधीपना है ? क्योंकि ईश्वर तो निष्पाप हैं। पुराणों की वेद के विरोध में अब दूसरी कथा सुनिए—विष्णु जी कपट वेश धारण करके वृन्दा के साथ व्यभिचार किया करते थे। एक दिन मैथुन के बाद विष्णु को वृन्दा ने पहचान लिया और तब बोली कि—हे विष्णु ! तुम्हारे इस स्वभाव को धिक्कार है, तुम बहुत कपटी हो, ऐसा मैंने आज जान लिया,। ऐसी-ऐसी कथाएं जो व्यक्ति को पाप में प्रवृत्त कराती है, पुराणों में विद्यमान हैं, इसलिए हमने चेलेन्ज किया था, कि इन सभी कारणों से पुराण त्याज्य हैं।

नोट—

श्री पण्डित बालकृष्ण जी शर्मा ने भाषान्तर करके अपने हस्ताक्षरयुक्त पत्र को श्री छोटू जी महाराज को दिया। जिसका उत्तर अगले दिन का संकेत भी कर दिया था। तत्पश्चात श्री छोटू जी महाराज उत्तर देने को खड़े हुए—

श्री छोटू जी महाराज—

यँत्तुपर: पुराणानां वेदविरुद्धार्थत्वं प्रतिज्ञाय लोक विरुद्धार्थं * प्रतिपादनेन प्रत्यवस्थानं कृतं तत्र प्रतिज्ञा हानिरेकं निग्रहस्थानं, प्रतिज्ञान्तरमिति द्वितीयं, प्रसंगा संगतिरिति तृतीयं, असम्बद्ध प्रलापश्चतुर्थम्। एकेनैव निग्रहस्थानेन * पराज्य इति शास्त्रमर्यादा। लोकेऽत्यपत्यर्थेनोर्ध्यबहारे प्रतिज्ञा भंग एव पराजयहेतुरिति सर्वंलोक विख्यातमितिनास्माभिरुत्तरितम प्रस्तुत प्रसं * गस्या प्रति विधानत्वान्नि ग्रहस्थानमजानद्भिरपि पूर्वपक्षिभि: पुराणानां लोकविरुद्धार्थत्वंमापादितं तथापि लोकोपकारार्थं प्रतिविद्यातव्यमित्यात्चार्य चरणै राज्ञप्तावयमस्तु तमपि प्रतिविधास्याम:। तत्रोपोदघात संगत्या वाक्यार्थ ज्ञान प्रकारं सम्प्रदर्श्य पूर्व पक्षिभिरापादितं दोषं लं * डयिष्याम:। तत्र, सप्रसंग उपोद्‌घातो हेतुतावसरस्तथा।। षोढा सं * गतिरिष्यते।। संगतिश्चानन्त×र्थाभिधान प्रयोजक जिज्ञासा जनक ज्ञान विषयत्वम्। एवंच संगति ज्ञानमपि वादिना मस्ति नवेति विवेचनीयं विद्वद्भि:। यथातथा वास्तु प्रकृतमनुसराम:।। वाक्यार्थ ज्ञाने आकांक्षा योग्यतासत्तयस्तात्पर्य ज्ञानं चेतिचत्वारि कारणानि। तत्र तात्पर्य

नोट—

उपरोक्त संस्कृत लेख में जहाँ २—*, ×, इस प्रकार के चिन्ह हैं, वहाँ-२ संस्कृत लेख में कुछ न कुछ अशुद्धियां मौजूद है—यह समझना चाहिए।

"सम्पादक"

ज्ञानस्यैव प्रकृतोपयोपयोगित्वेन तदेवनिरूप्यते। तत्र तदितर प्रतीति धियानुचरितत्वेसति तदर्थ प्रतीति जनन योग्यत्वं तात्पर्यम् तच्चवेदे मीमांसा परिशोधित न्यायादेवा वधार्यते। लोकेतु प्रकरणादिना। तथा चेत्थमत्र प्रकरणम्। शिवार्चनं प्रस्तुत्य, ब्रह्मचारी गृहस्थश्च वानप्रस्थश्च सुव्रतः। एवं दिने दिने देवं पुजयेदविकापतिम्।। सन्यासी देवं देवेशं प्रणवेनैव पूजयेत्। नमोन्तेन शिवेनैवस्त्रीणां पूजा प्रकीर्तिता।। विरक्तोनांच शूद्राणां मेवं पूजा प्रकीर्तिता।। इत्यादिकमुक्तम्। तत्रोपास्य स्वरूपं ज्ञान मंत्रोपासनां कर्तुंभ शक्यत्वा दुपासस्य शिवस्य किंस्वरूपमिति पृष्टः सूत। सच्चिदानन्दरूपोऽसौ सर्वात्मा सर्वभावनः। इत्यादिना शिवस्वरूपमुक्तम्। सर्वात्मनः शिवस्य कुत्र पूजा कर्तव्येतिष्टः। सर्वत्र संस्थितः पूज्यः सर्वाधारेषु सर्वदा तथापि लिंगे भगवान्पूजां गृहणाति धूर्जटिः।। सर्वाधारावस्थित शिवस्य कथं तत्वं जानीयादिति पृष्टे वेद प्रमाणेनेति प्रतिविधाय नमो वृक्षेभ्यो हरिकेशेभ्यः। नमः शविपञ्जराय। नमः सिकताभ्यः।

अवट्यायच। कुल्यायच। इत्यादि रुद्राध्याय प्रक्रियया शिवस्य सर्वत्रावस्थानं प्रतिपादितं सर्वत्रावस्थितस्य शिवस्य पूजा करणम शक्यमा शक्य। सर्वोपकार करणं सर्वानुग्रहणं तथा। सर्वाभयप्रदानंच शम्भोराराधनं विदुरित्यादिना, सर्वत्रावस्थितः पूज्यः सर्वाधारेषु सर्वदेति श्लोकार्धोक्त सर्व व्यापकस्य शिवस्य सामान्योपासनां विधाय। तथापि लोके भगवान् पूजां गृहणाति धूर्जटेरिति श्लोकार्धोक्त विषेशोपासनां विधातु किंलिंग मित्युपास्य लिंगस्वरूप विषये प्रश्नः।। लीयन्ते यत्रभूतानि, निर्गच्छन्ति यतः पुनः। तेन लिंगंपरं व्योमनिष्कलः परमः शिवः।। लिंग्यते चिन्त्यते येन भावेन भगवान् शिवः योगिभिस्त त्रिधालिंगं व्यक्ता व्यक्तो भयात्मकम्। व्यक्तं तत्सकलं ज्ञेयं अव्यक्तं निष्फलंमतम्।। ज्ञानज्योतिर्भयं लिङ्गव्यक्ता व्यक्तमिति स्मृतम्। इत्यादिना लिङ्गत्रैविध्यं प्रतिपाद्य पुनरपि दिव्य मार्ष स्वयम्भू मनुषंचेति लिङ्गस्य चातुर्विध्यं प्रतिपाद्य तेषामुत्पत्ति मुपासना प्रकारंच प्रदश्य वरं प्राणपरित्यागः शिरसो वापिकर्तनं * नचैवापूज्य भुञ्जीत शिवलिंगे महेश्वरमित्यादिना शिवं पूजा नित्यत्व मुक्त्वा तदकरणे प्रत्यवायित्वमुक्तम्। तत्रदारूवनस्था ऋषयः केवलम् विष्णुभक्ताः कार्यरुद्रेण शिक्षिताः शिवभक्ताः मुजाता इत्येतम * र्थस्य प्रतिपादनार्थमियमाख्यायिका प्रवृता तत्र तस्या*ख्यायिकायाः कार्यरुद्र चरित प्रतिपादनाय प्रवृत तया स्वार्थे तात्पया योगेनातत्परत्वात्। तात्पर्य विषयतयाव्याख्येयम्। यत्परः शब्द शब्दार्थइति न्यायात्। तथा दारुवने कार्यं रुद्र उन्मत्तमानुषवेशं धृत्वा प्रविश्य ऋष्याश्रमे भिक्षाचर्यमाचरितम् तमुनमत्तं दृष्टवा देवोयमित्य-जानन्त्य ऋषिपत्नेयाऽत्युच्चै जहसुः तथाच पुरुषं हसन्तीनां तासां पतिव्रत्यपरीक्षार्थं देवस्त्रैलोक्य सुन्दररूपमास्थितः। तदृष्वा ऋषिपत्न्यस्तमालिंगितवत्यः। ऋषयोऽपिदेवो यमित्यज्ञात्वा दुर्वृत्तस्य लिंगंपतत्विति शेपुः। देवो(*)ऽपि स्वमाहात्म्य प्रकटनार्थमृषिशापं निमित्त (*) कृत्यलिंगं पृथिव्यां पातितं। पतितेन लिङ्गेन ब्रह्मांडे दंदह्यमाने देवाः किमितिविचिन्त्य तत्वंज्ञाता ब्रह्माणं शरणमृयुः। ब्रह्माच स्तुत्या रुद्रम्प्रसाद्य ब्रह्माण्डरक्षणमभ्यर्थयत्। देवोऽपि शिवाच न विमुखानृषीन् प्रशासि तुं मयेदमाचरितम्। भवद्भिश्चाम्बिकां प्रसाद्य लिङ्गपूजा प्रवर्तयितव्या तेनशांन्ति-र्भविष्यति तीयुक्त्वा अर्न्तदधे तत्रमहादेवोयम।। तत्र महादेवो यमितिज्ञात्वा त्वयावेद विरधाचारण कृतमित्युत्वा शशापे वादिनां त्युक्ति महतीं प्रतारणा देवोयमित्यज्ञात्वा ऋषयः शेपुरिति प्रत्यक्षोल्लेख दृर्शनात।। दवेन कथ-मश्लीला चारणं कृतीमतिदेवैः पृष्टो ब्रह्मा नायमश्लीला चार इति प्रतिपादितं तदित्थम्।। अन्तरिच्छन्ति तन्जने रुद्र वशे मनीषया रुद्रसु गृह्णाति जिह्वयाससम्।। अयमर्थः जनेषु जनष्यन्तर्यामि रूपेणा वास्थे त रुद्रं येमनीषया इच्छन्ति

नोट—

उपरोक्त संस्कृत लेख में जहाँ-जहाँ २—*, ×, इस प्रकार के चिन्ह हैं, वहाँ-वहाँ संस्कृत लेख में कुछ न कुछ अशुद्धियाँ मौजूद हैं, ऐसा समझना चाहिए।

"सम्पादक"

ध्यायन्ति तसस्वविकार भूतमन्नं जिह्वया गृहणन्तीतिमत्र वाच्योर्थः। तथाच सर्वान्तियामा कारण रुद्रः तस्यकार्य-महंकारः कार्यरुद्र ऋषिपत्नी शब्देनेन्द्रियाणां वृतयो गृह्यन्ते ऋषि शब्दस्य गत्यर्थत्वात् गत्यर्थानां ज्ञानार्थत्वात् ज्ञान साधनभूता अन्तः करणवृत्तयोऽत्र ऋषिपत्न्याः नाश्चाहंकारात्मकस्य * रुद्रस्य त्रैलोक्यं सुन्दर रूपं शब्द स्पर्श रूपरसगंधादिनामभिमानरूपं स्वरूपं वीक्ष्य पातिव्रत्यंजहुः। पातिव्रत्य नाम अन्तर्यामि कारण रुद्र ध्यानरूपम। तद्विहायाहंकारं विषयं भोगार्थमालिङ्गितवत्यः। तंदृष्टवा शमदमादिरूपा ऋषयस्त महंकाररूप रुद्रंशेषुः। तवलिंगं शब्दस्पर्शादि विषयाभिध्यानरूपं पतत्विति। अहंकारे विलीयमाने योगाग्नोच विवर्धमाने पृथ्वीरूपं देहंदं दह्यमानं दृष्टवा इन्द्रियाधिष्टातारोदेवा ब्राह्मणं चिताधिष्टातारं शरणंययुः सोऽपि स्वकारणमहंकाररूपं रुद्रं स्तुत्या आत्मानात्म विवचन रूपेण वचनेन प्रसाद्य ब्रह्माण्डरूपस्य देहस्य रक्षामभ्यर्थितवान्। सोप्यहंकारो रुद्रोऽम्बिकां ब्रह्म विषयिणीं व्यवस्त्रायात्मिकां बुद्धि यमनियमादिना साध्या तत्रास्मालिङ्गं पूर्वोक्त संस्थाप्य पूजयन्तु तेन शान्तिर्भविष्यती त्युक्तवान्। अयंतात्पर्यार्थः। उक्तानंगीकारे याथाश्रुतार्थ परिग्रहे सहस्त्रशीर्षा पादो-स्य विश्वा भूतानि, मूखकिमस्य, कौबाहू, ब्राह्मणोऽस्य मूखम-चन्द्रमा मनसो-नाभ्याआसीत्-श्रीश्चते लक्ष्मीश्च पत्न्यौ इत्यादिनां मन्त्राणां यथा श्रुतार्थः स्वीकर्तव्य एवस्यात्। तथाच परमेश्वरस्य करचरणादि मत्वं सशीर्षत्यं शांशत्वं सचक्षुष्टवं सश्रोत्रत्वं सनाभित्वं पत्नी द्वयोपेतत्वं पार्श्वद्वयत्वत्वंच रूपवत्वंच प्राप्तस्यात् तदेतत् वात्याविवर्तित्तो तारियात् श्रोणीदुकूलेन शिरोवष्टेन न्याय आपतेत्। येमनि षया रुद्रनं ध्यायन्ति तेपुरीषमेवगच्छन्तीनिमन्त्रागभ्योऽर्थः। धन्याःखलु वन वातायेपश्यन्तिममात्मजोमीत दशरथाऊक्ता विवां प्र ।। स्तुतप्रशंसागम्येर्थेकटाक्षः। तथाचोपबृहितं सूतसंहितायाम्। अन्तरिच्घन्तियेरुद्रं सदावंन्धमनीषयागृहणन्तिजिहवा तेवैऽरसं पूर्णामृतोपमम् ।। अन्तर्ने च्छन्तिये-रुद्रंभवनी सहितंभवं पुरिषमेष गृहणन्तिजिव्हयातेनसंशयः। इत्येवं शिवभक्ति विरहानां गर्हण प्रतिपादितं ।।

।। श्री ।।

किंचपूर्वपक्षिभिः प्रदर्शिता आख्यायिका उन्मत चरित इतिनाम्ना तत्रैव प्रसिद्धा उन्मत्ताचारस्य प्रमाण कोटाव प्रवेशत्वं सर्व लौकिक पारीक्षिक सम्मतं। तथाच उन्मत्त चरिताख्य यिकामवष्टभ्यप्रत्यवस्थानमतो वक्षुद्रतरम् ।। तथाच यत्किंचित् कल्पयित्वा वदतो वादित्वं प्रतिवादित्वं वानसंभतोति प्रेक्षा वद्भिरुपेक्षणीय एवस्यात् ।। तथाच श्रुतिः। यान्यस्माकं सुचरितानी तानि त्वयोपास्यानि नोइतराणि। यथोक्ता ख्यायिका शिष्टा-चारत्वेन प्रमाण मत्पाद्येत आचार मात्रत्वाद्वा। नाद्यः पूर्वोक्त श्रुत्यनुसारेण शिष्टैर्धर्मबुध्या अनुष्टीयमान स्यधर्मस्यवाशिष्ठा चारत्वात् ।। नद्वितीयः। निष्ठीवनादेरपि तत् प्रसक्तेः ।। अन्यच्च पुराणानां प्रामाण्य मंगीकृत्य अप्रमाणत्वं आपाद्यते अनंगीकृत्यवा। आद्ये अप्रसिद्धान्तः ।। द्वितीये अप्रमाणेन पुराणवाक्येन पुराणस्य अप्रमाणत्वं ब्रह्मणापि न साधितुंशक्यं। किंच पुराणस्याप्रमाण त्वे देव नर तिर्यक पक्षि सरीसृप वृक्ष वीरुध लता गुल्मादीनाम् उत्पत्तिः तेषाँ वंशः वंशजानाँ चरितं मन्वंतरादि कालश्चके न ज्ञायते तत्रार्थे वेदप्रमाणं वक्तव्यं जगतः प्रलयश्च। किंच पुराणानाँ वेदप्रतिपाद्यत्वेन अप्रामाण्य नवक्तुं शक्यं। तथाच श्रुतिः। अस्यमहतो भूतस्यनिश्वसि तमेवैतत् ऋग्वेदो यजुर्वेदो* । सामवेदोऽथर्वणः* इतिहास पुराण* इतिश्रुत्या पुराणस्यापिप्रतिपादनात् ।। पुराणशब्दस्य अर्थान्तर कल्पेन सर्व त्रयनाश्वासप्रसंगात् ।।

उपरोक्त पत्र का भाषानुवाद—

जो कि प्रतिपक्ष की ओर से पुराणों को वेद विरुद्ध होने की प्रतिज्ञा करके लोक विरुद्ध विषय का भाषण करने से प्रतिपक्षो बनकर भाषण किया उसमें "प्रतिज्ञा हानि" यह एक निग्रह स्थान हुआ। दूसरी प्रतिज्ञा करना वह दूसरा, प्रसंगानुसार संगति न लगाना यह तीसरा और निष्प्रयोजन भाषण करना यह चौथा "निग्रह स्थान"

है। एक ही निग्रह स्थान हो जाने पर पराजय हो जाता है। परन्तु यहां तो चार-चार हैं। जगत में वादी-प्रतिवादियों के व्यवहार में प्रतिज्ञा का भंग करना यही पराजय का कारण होता है। जो सर्वत्र प्रसिद्ध है। इसलिए हमने उनका उत्तर दिया ही नहीं है, क्योंकि प्रकरण विरुद्ध विषय का निवारण नहीं करना चाहिए। निग्रह स्थान की अनभिज्ञता के कारण पूर्व पक्षकार ने पुराणों को वेद विरुद्ध कहा। लोकोपकार के लिए पूर्व पक्षकार के द्वारा वर्णित दोषों का निवारण होना चाहिए ऐसी मुझे आचार्य के पांव' की आज्ञा हुई। इससे पूर्व पक्षकार के विभिन्न प्रकरण विरुद्ध विषयों का भी मैं निवारण करता हूं इसमें उपोद्घात की संगति से वाक्यार्थ ज्ञान का क्रम दिखला कर, पूर्व पक्षी के द्वारा कहे गये दोषों का खण्डन भी करूंगा। उसमें प्रासंगिक उपोद्घात तथा हेतु कहने चाहिए। संगति छः प्रकार की होती है, संगति से मनुष्य को विषय का ज्ञान ठीक-ठीक होता है। परन्तु संगति का ज्ञान भी पूर्व पक्षी को है या नहीं? इस पर विद्वानों को विचार करना चाहिए। वादी का ज्ञान जैसा भी हो, अब मैं प्रकरण को कहता हूं, वाक्यार्थ ज्ञान की आकांक्षा, योग्यता, आसक्ति और तात्पर्यज्ञान ये चार कारण हैं, उनमें से तात्पर्यज्ञान ही प्रकरण में उपयोगी होने से उसका वर्णन करता हूं, अन्यथा ज्ञान को बुद्धि से अनुगत होने पर भी उस विषय का ज्ञान उत्पन्न करने में जो योग्य हो, उसे तात्पर्य कहते हैं, वह तात्पर्य वेद में मीमांसा शोधित न्याय से भी निश्चित करने में आता है। और लोक में उनका निश्चय प्रकरणादि से करने में आता है। शिव पुराण में उस कथा का वर्णन इस प्रकार है कि—ब्रह्मचारी, ग्रहस्थ और अच्छे आचरण वाले वानप्रस्थ ये सभी इस प्रकार से अम्बिका के पति का पूजन करें। संन्यासी शिव की पूजा प्रणव से ही करें। विरक्त, शूद्र और स्त्रियां शिव की पूजा **"ओ३म् नमः शिवाय"** इस प्रकार बोलकर करें। उपास्य ईश्वर के स्वरूप का ज्ञान प्राप्त किये बिना उपासना करनी अशक्य है, इस प्रकार से ऋषियों ने सूत जी से पूछा कि उनका स्वरूप कैसा है? तो उन्होंने कहा—वह सच्चिदानन्द स्वरूप, सर्वात्मा और सर्वभावना स्वरूप है। तब ऋषियों ने पूछा कि—उस सर्वात्मा शिव की पूजा कहां करनी चाहिए? तब सूत जी बोले—सर्वाधार और सर्वत्र स्थित की पूजा करनी चाहिए तथा लिंग द्वारा की गई पूजा को ही शंकर जी ग्रहण करते हैं, तब ऋषियों ने पूछा कि महाराज! सर्वत्र स्थित शिव का तत्व कैसे जानना चाहिए? तो उत्तर मिला कि—वेद प्रमाण से ऐसा प्रतिकार करके **"नमो वृक्षेभ्यः"** इत्यादि रुद्राध्याय में वर्णित शिवजी सब जगह विराजमान है, ऐसे ही सर्वस्थित शिव की उपासना (पूजा) करना असक्य है। ऐसा वर्णन प्रश्नोत्तर रूप में पुराण के अन्दर आता है। सब पर उपकार करना, सब पर दया करना और सबको अभयदान देना ये सब उस सर्वव्यापक शिव की सामान्य पूजा है। तथापि उनके लिंग की पूजा को ही शिवजी ग्रहण करते हैं, अर्थात् वह उनकी विशेष पूजा है। अब उस उपास्य लिंग का स्वरूप क्या है? इस प्रश्न का उत्तर आगे दिया है जिसमें सब प्राणियों का लय होता है। और पुनः सब भूत निकलते हैं उसको शिव कहते हैं। जिस भावना से भगवान शिव योगियों के द्वारा पहचाना और चिन्तन किया जाता है वह लिंग, व्यक्त, अव्यक्त और उभयात्मक भेद से तीन प्रकार के हैं, इनमें ज्ञेय को **"व्यक्त"** तथा निरव्यय निराकार को **"अव्यक्त"** और ज्ञान ज्योतिमय को **"उभयात्मक"** लिंग कहते हैं। इस प्रकार त्रिविध लिंग का प्रतिपादन कर पुनः चौथा दिव्य, आर्ष और स्वयंभू ऐसा मनुष्याकृति शिव का लिंग कहा है। उनकी उत्पत्ति और उपासना के प्रकार दिखला कर इस मानुषी लिंग की पूजा किये बिना भोजन नहीं करना चाहिए। इत्यादि कथन के द्वारा शिव पूजा नित्य करनी चाहिए, ऐसा कहा है। इस प्रकार प्रतिदिन पूजा न करने से पाप लगता है। दारुवन में रहने वाले केवल विष्णु भक्त ऋषि कार्य रुद्र से शिक्षा लेकर शिव भक्त बने थे। इस विषय को कहने के लिए यह आख्यायिका प्रवृत्त हुई है। इस आख्यायिका

टिप्पणी—

'कहीं आचार्य के पांव भी आज्ञा देते हैं? **"दयाल"**

के द्वारा कार्यरुद्र का प्रतिपादन ही इसका तात्पर्य है। दारुवन में कार्यरुद्र उन्मत्त मनुष्य वेश धारण कर भिक्षा मांगने गया। उन्मत्त देखकर ऋषि पत्नियां उसे बिना पहचाने ही देखकर हंसने लगी, इनको हंसती देख शिव ने त्रिलोक्य सुन्दर रूप धारण किया। उसके सुन्दर रूप को देखकर ऋषि पत्नियां उसको आलिगन करने लगी। ऋषियों ने भी ऐसा देखा, तो उसे शाप दे दिया कि हे दुराचारी तेरा लिंग कट कर गिर पड़े। शिव ने भी अपने महात्म्य को प्रकट करने के लिए ऋषियों के शाप को निमित्त मानकर स्वलिंग को पृथ्वी पर गिरा दिया, परिणाम-स्वरूप सारा ब्रह्माण्ड जलने लगा तदोपरान्त सभी ऋषियों ने जाना कि ये तो शिव है, तो वे ब्रह्मदेव की शरण में गये, ब्रह्मा ने स्तुति के द्वारा शिव को प्रसन्न कर जगत की रक्षा के लिए प्रार्थना की। तब शिवजी बोले कि मुझसे विमुख हुए ऋषियों को दण्ड देने के लिए मैंने ऐसा आचरण किया था अतः तुम सब लोग अम्बिका देव को प्रसन्न कर लिंग पूजा का प्रचार करो इसी से ब्रह्माण्ड में शान्ति स्थापित हो जावेगी। यह कहकर शिवजी अर्न्तध्यान हो गये। इस कथा में यह शिव "देव" है ऐसा जानकर ऋषियों ने शाप दिया, **"यह प्रतिपक्षी का कहना अत्यन्त धोखेबाजी है"**। यहां देव समझकर ऋषियों ने शाप नहीं दिया, यह स्पष्ट उल्लेख है। देवों ने ब्रह्मा को पूछा कि शिव ने इस तरह का व्यभिचार क्यों किया? तब ब्रह्मा ने उत्तर दिया कि यह व्यभिचार नहीं है। सुनो जो सर्वान्तर्यामी रुद्र का बुद्धि से ध्यान नहीं करते हैं, वे स्वविकारभूत, विकार रूप अन्न को जीभ से ग्रहण करता है। सर्वान्तर्यामी होने के कारण रुद्र का कार्यरुद्र अहंकार है और इन्द्रियों की वृत्तियां ये ऋषि पत्नियां हैं, ऋषि शब्द गत्यर्थक होने से और गत्यर्थक शब्द ज्ञानार्थक होने से ज्ञान साधनभूत अन्तःकरण की वृत्तियां ही ऋषि पत्नियां समझनी चाहिए। ये ऋषि पत्नियां अहंकाराख्य रुद्र के शब्द, स्पर्श आदि रूप को देखकर पतिव्रत धर्म को त्याग दिया। अन्तर्यामी कारण रुद्र का ध्यान उनका पतिव्रत धर्म है, उसको छोड़ विषय भोग के लिए अहंकार का आलिगन करने लगी। यह देखकर शमदमादि रूप ऋषियों ने अहंकार रूप रुद्र को शाप दिया कि तेरा शब्दादि विषय ध्यान रूप लिंग गिर जाये। अहंकारलीन होने से तथा योगाग्नि बढ़ने से पृथ्वी रूप देह को जलता देखकर इन्द्रियों का अधिष्ठाता देव चित्त अपने अधिष्ठाता देव ब्रह्मा के पास गया। ब्रह्मा भी अपने कारण अहंकार रूप रुद्र की स्तुति से प्रसन्न करके पृथ्वी रूप शरीर की रक्षा के लिए इसकी प्रार्थना करने लगे। तब अहंकार रुद्र अम्बिका अर्थात् ब्रह्मविषयणी व्यवसायत्मिका बुद्धि को यमनियम आदि के द्वारा सिद्ध कर वह बुद्धि में मेरा विषय ध्यान रूप लिंग की स्थापना करके इसकी पूजा करो, इसी से शान्ति हो जायेगी। यह इस कथा का तात्पर्य है। यदि आप यह कथा स्वीकार न करें तो वेद में लिखा मन्त्र—"**सहस्त्रशीर्षा**......" आदि से कि इसका मुंह क्या है? इसके हाथ क्या हैं? का क्या होगा? श्री और लक्ष्मी तेरी पत्नियां हैं, इत्यादि जैसा सुना है उसके अनुसार स्वीकार करना पड़ेगा, इसे स्वीकार करने से ईश्वर हाथ-पैर वाला और दो स्त्रियों वाला इत्यादि सिद्ध हो जायेगा। सूत संहिता में लिखा है कि जो मनुष्य बुद्धि से रुद्र का अर्न्तरात्मा में ध्यान करता है, वह मानो रस पूर्ण अमृत का पान अपनी रसना से ग्रहण करता है। और जो उपर्न्तरात्मा में भवानी के साथ शिव का ध्यान नहीं करता है वह अपने जिह्वा से मल्ल को ग्रहण करता है। इस प्रकार शिव की भक्ति न करने वाले की निन्दा की गई है।

श्री प्रा० दयाल जी आर्य (अनुवादक)—

पूर्व पक्षियों के द्वारा उपरोक्त सुनाई गई कथा शिव पुराण में "**उन्मत्त चरित्र**" के नाम से ही प्रसिद्ध है। उन्मत्त का आचरण प्रमाण कोटि में आ ही नहीं सकता। यह सबको स्वीकृत होगा। उन्मत्त चरित्र आरम्भ करके उसके विरुद्ध कथन करना यह बहुत ही क्षुद्र कार्य है। यत्किंचित कल्पना करके बोलने वाला मनुष्य वादी अथवा प्रतिवादी नहीं हो सकता हो। इस बात का विचार करके मनुष्यों को उनका त्याग कर देना चाहिए। इस प्रकार की श्रुति भी हैं कि जो हमारे अच्छे आचरण हैं, उन्हें ग्रहण करना चाहिए, बुरो को नहीं। यह आख्यायिका

शिष्टाचार होने से प्रमाण है अथवा आचरण मात्र से ? इसका उत्तर यह है कि दोनों प्रकार से यह आख्यायिका प्रमाण नहीं हो सकती, क्योंकि प्रथम कही हुई श्रुति के अनुसार "शिष्ट" लोक धर्म बुद्धि से जो धर्म का अनुष्ठान करता है वह धर्म प्रमाण हो सकता है। परन्तु शिव ने पाप बुद्धि से किया। यह आचरण प्रमाण नहीं हो सकता। अब कहो कि शिव भी शिष्ट थे और उनके इस प्रकार के सभी आचरण प्रमाण हो सकते हैं, तो फिर शिष्ट का थूकना, शौच जाना अर्थात् शिष्टता से भी किये गए सभी अभद्र आचरण प्रमाणस्वरूप सिद्ध हो जावेंगे। इस आख्यायिका में कथित आचरण शिव ने अधर्म से किया। इसलिए यह प्रमाण नहीं हो सकता। और प्रतिपक्षी पुराणों का प्रामाण्य स्वीकार करके इसका अप्रमाण सिद्ध करता है। अथवा पुराणों को प्रमाण न मानकर उसके विरुद्ध स्वीकार करता हैं। अब पूर्व पक्ष स्वीकार करें तो सिद्धान्त हानि होगी। और यदि उत्तर पक्ष माने तो फिर ब्रह्मा भी इसे सिद्ध न कर सकेगा। अब पुराणों का प्रमाण न माने तो देव, मनुष्य, पशु, पक्षी, वृक्ष विरुद्ध लता गुल्यादि की उत्पत्ति इनका वंश और वंशजों का चरित्र किस प्रकार जाना जाये ? इसमें कुछ वेद प्रमाण होना चाहिए। पुराणों को वेद भी कहा गया है। इसलिए उनका प्रमाण माना जावेगा, और ऐसी श्रुति भी मौजूद है कि त्यक् आदि वेद, इतिहास, पुराण ये सब ईश्वर के श्वास हैं, इसमें वेद के साथ पुराणों की भी गिनती है। पुराण शब्द का अन्य अर्थ करने से सब व्यवस्था में गड़बड़ी होगी। उपर्युक्त भाषानुवाद हमने अपनी ओर से लिखा है परन्तु छोटु महाराज ने जो अर्थ किया था वह अत्यन्त हास्यास्पद होने से उनका हमने जो सम्पूर्ण रिपोर्ट लिया था, उसे (विस्तार भय से) लिखा नहीं है। परन्तु उसमें से कुछ ज्ञातव्य बातें निम्न प्रकार हैं।

छोटु महाराज ने उत्तर देने हेतु खड़े होते ही अपने स्वभावानुसार कथा प्रारम्भ कर दी कि—**"मैं दिलगीर हूं कि मेरे साथ शास्त्रार्थ करने हेतु ऐसा पण्डित मिला"** यह बात भी सत्य है कि जब छोटु महाराज संस्कृत बोलते थे तब बार-बार भूल करते थे, और पण्डित बालकृष्ण जी एक भी भूल किए बिना धारा प्रवाह बोलते जाते थे। श्री पण्डित बालकृष्ण जी ने कहा—**"जब शरीर के देव जीवरूप ब्रह्मा के पास गये तब"** उन्होंने कहा कि आप लोग बुद्धि रूप पार्वती को प्रसन्न करके उनके द्वारा इस इन्द्रिय को शान्त करो अर्थात् मन रूप गुह्येन्द्रिय की शान्ति होने से मोक्ष मिलेगा। और संसार में इसके बिना किसी का जन्मादि व्यवहार भी नहीं चलता इसलिए लिंग की पूजा ही सबको करनी चाहिए, क्या सब नपुंसक ही बनकर रहे ? इस पर छोटु जी महाराज ने कहा कि वाह ! वाह !! शास्त्री जी के शब्द ? यह तो स्पष्ट रूप में अपने हाथों से अपना खण्डन कर दिया, उनके पांव उनके ही गले में पड़ गये। **"नमो वृक्षभे···"** और **"सहस्त्रशीर्षा······"** आदि मन्त्रों में वेद विद्या के ज्ञाता स्वामी दयानन्द ने भी मूर्त्ति को स्वीकार किया है। इस कथन से साफ पता चलता है कि—उन्होंने स्वामी दयानन्द का नाम मात्र ही सुना है उनके ग्रन्थों का किंचित मात्र भी अध्ययन नहीं किया है। इस कथा से शिव ने जन समूह के बोधार्थ नाटक मात्र किया था, और यह भी दर्शाया है कि पतिव्रता में कितना बल होता है ? पतिव्रता के शाप से शिवलिंग का पतन हुआ, इसलिए कोई दोष नहीं लगता। यहां ऐसा समझना श्री छोटु जी महाराज की बड़ी भारी भूल है, क्योंकि शिव को शाप पतिव्रता ऋषि पत्नियों ने नहीं बल्कि ऋषियों ने दिया था। सनातनी बन्धु मानेंगे कि इससे पुराणों का मण्डन हुआ, परन्तु यहां तो जिसका मण्डन करना था, उसका खण्डन अपने आप हो गया। छोटु महाराज कभी आध्यात्मिक अर्थ करते हैं तो कभी साकारवाद की बातें करते हैं, जब कि दोनों एक दूसरे के विरुद्ध हैं। शिव जैसे त्रिकाल ज्ञानी देव क्या यह नहीं जानते थे कि स्त्रियों का पत्नी व्रत धर्म भंग होगा या नहीं ? और बलात्कार के अलावा क्या उसका अन्य कोई रास्ता नहीं था ? परन्तु छोटु जी महाराज के न्याय शास्त्र में सब कुछ उचित है। वे कहते हैं कि हमने तो उसमें पत्नीव्रत धर्म को देखा, बिल्कुल ठीक ! आप सनातनियों के यहां ऐसा होगा परन्तु आर्य भाईयों के बीच ऐसा नहीं चलेगा। और छोटु महाराज की भाषा का नमूना भी देखिए—**"बिना कांटा से कांटा**

नहीं निकलता'' तथा **"पशुनां लगुड़ोयथा''** पशु को तो लाठी ही चाहिए, इसमें पशु कौन है ? उनसे कोई पूछे ! उपर्युक्त संस्कृत उत्तर और भाषान्तर के लिए छोटु महाराज ने पूरे दो घण्टे लगाए। मानो सभा केवल उन्हीं के लिए ही बैठी हो। एक बार बीच में स्वामी शंकरानन्द जी ने शास्त्रार्थ के नियम सात की स्मृति दिलाकर श्री मणिलाल जी को संकेत से श्री छोटु महाराज को बन्द कराने को कहा। परन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया और भाषण लगातार चलने दिया। और जब तक लिखा हुआ पाठ सुना नहीं लिया वह बन्द नहीं हुए जिसमें पूरे तीन घन्टे लगे। छोटु महाराज ने अपने ऊटपटांग भाषण में पण्डित बालकृष्ण जी को निग्रह स्थान में लाने हेतु एक उदाहरण अपने पास से पेश किया—एक श्रेष्ठ भवन है उसमें अनेक हिस्से हैं जैसे, दिवान खाना, पुस्तकालय, रसोईघर, स्नानघर आदि-आदि, इसके साथ एक कौने में शौचालय भी है, कोई नया-नया अतिथि जब आवे तो उसे भवन का सभी श्रेष्ठ भाग दिखाना शिष्टाचार है, परन्तु शौचालय का दिखलाना अनुचित ही होगा। इसी प्रकार श्री पण्डित बालकृष्ण जी ने लिंग पुराण का सभी श्रेष्ठ भाग छोड़कर बाकी भाग कि—**"शिव ऋषि पत्नियों को देखकर कामासक्त हो भोगेच्छा से उनकी ओर दौड़े······''** आदि-आदि अश्लील पाठ शास्त्रार्थ के आरम्भ में ही लिंग पुराण रूप भवन से पेश किया था। सज्जनों इस वाक्य से साफ पता चलता है कि छोटु महाराज के कथनानुसार लिंग पुराण रूपी भवन में शौचालय रूप घृणित स्थान भी है। श्री छोटु महाराज के लगातार बोलने पर सभा में से आक्षेप उठाये गए कि यह सरासर अन्याय है, दूसरे पण्डित को भी बोलने दिया जावे। लाचार हो छोटु महाराज को अपना भाषण बन्द करना पड़ा तब तक सवा सात बज चुके थे। शंकराचार्य ने शास्त्रार्थ बन्द करने की घोषणा कर दी, तदोपरान्त श्री पण्डित बालकृष्ण जी ने कहा—

श्री पण्डित बालकृष्ण जी—

मैं केवल दस मिनट लेना चाहता हूं, ताकि महाराज जी के कथन पर प्रकाश डाल सकूं, इसलिए मात्र दस मिनट सभा और लगी रहनी चाहिए।

श्री शंकराचार्य जी—

अब स्वीकृति नहीं मिलेगी, शास्त्रार्थ पूर्ण हुआ, अब समय नहीं है, और स्वीकृति भी नहीं मिलेगी···। सभी श्रोतागण खड़े हो गये···।

श्री नारायण जी (क्लर्क)—

अब बोलना क्या शेष है ? शास्त्रार्थ समाप्त हो गया है।

श्री पण्डित बालकृष्ण जी—

पंचको ! शास्त्रार्थ के लिए जो नियम बनाकर हस्ताक्षर किए हैं, उनमें एक नियम यह है कि जब तक शास्त्रार्थ का एक विषय पूर्ण न हो तब तक दूसरा विषय न लिया जावे। और विषयान्तर भी नहीं बोलना होगा। इसलिए मुझे मात्र दस मिनट बोलने दो मुझे उत्तर देना है।

नोट—

खेद है कि पण्डित बालकृष्ण जी को दस मिनट भी नहीं दिए गये। हमें अफसोस है कि ऐसे धर्माचार्य ने धर्म में अधर्म किया। और पंचों ने भी पक्षपात किया, यदि ऐसा ही करना था तो शंकराचार्य जैसे व्यक्ति ने प्रथम दिन

ऐसा प्रसिद्ध नहीं करना था कि—"हम लोग शास्त्रार्थ को छः महीने तक चलायेंगे, परन्तु इन आर्य समाजियों को छोड़ा नहीं जावेगा। इन्होंने मुझे बहुत परेशान किया है और बलसाड़ से मेरे पीछे लगे हुए हैं," अस्तु !! सभा विसर्जन के बाद जब सभी आर्य समाजी भी सभा से उठकर बाहर निकले तो महाराज ने स्वयं के विजय की स्वयं ही जयकार करवाई। और बाद में दैनिक समाचार पत्रों में भी अपनी विजय के समाचार को प्रकाशित कराने हेतु भेजा गया। परन्तु किसी भी समाचार पत्र ने उसको प्रकाशित नहीं किया। अन्य तीसरे दिन के शास्त्रार्थ के समय श्री पण्डित बालकृष्ण जी ने अपने उत्तर की लिखित कापी में हस्ताक्षर करके प्रतिपक्षी को दे दी थी। परन्तु उनके उत्तर वाली कापी प्रतिपक्षी द्वारा समाज को नहीं दी गई। श्री रा० सा० मणिलाल जी जमानत में थे, इसलिए उसके मिलने की कुछ आशा रखी गई। बम्बई आर्य प्रतिनिधि सभा की ओर से उस प्रति के लिए बार-बार पत्र लिखने पर भी कोई उत्तर प्राप्त नहीं हुआ। पण्डित बालकृष्ण जी विरपुर उत्सव में जाते समय बलसाड़ ठहरे और उनको मिलकर प्रति लेने के लिए आग्रह किया गया तब कहीं जाकर शंकराचार्य ने वह प्रति लौटाई। उनका जौलाई मास में प्रवास से बम्बई लौटने पर उनका उत्तर दिया वह इस प्रकार था—

श्री पण्डित बालकृष्ण जी शर्मा द्वारा अन्तिम उत्तर—

आम्रान्पृष्टः कोबिदारानाचष्ट, इति जनश्रुते छोटुमहाराजे चरितार्थत्वात्तस्य निग्रहस्थानासम्बद्धप्रलापादिदोषदूषितं लेखबाहुल्यमनादृत्य तत्र यत्प्रकृततंदेवानुसरामः। तस्य शुद्धसंस्कृतलेखानभिज्ञत्वं चिह्नीकृताभिस्तल्लेखान्तर्वर्तिनीभिरशुद्धिभिः स्वयं ज्ञास्यन्ति विद्वांसः। एकस्मिन्नेवाधिकरणे पक्षप्रतिपक्षाभ्यां यो वादः प्रवर्तते स शास्त्रार्थः। पुराणानि त्याज्यानीत्यार्यसामाजिका नेत्याधुनिकपौराणिकाः। एतदेव वादस्याधिकरणमावयोः। तत्रादौ मौखिकशास्त्रार्थे पुराणानि त्याज्यानी, ति साध्यं निर्दिश्य, वेदविरुद्धत्वादि, त्युदाहरणसाधर्म्यात्साध्यसाधनीभूतो हेतुरप्युक्तः तथाच पुराणत्याज्यत्वे सोदाहरणं कथाद्वयोपेतं प्रकरणम प्युपन्यस्तमस्माभिः। एवं सत्यपि स्वयमनधीतन्याय व्याकरण छोटुमहाराजो मदीयं प्रतिज्ञादिक्रमानुकूलं लेखमसम्बद्धतादिदोषदुषितं दर्शयति तच्चिन्त्यम्। संस्कृत लेखपुरःसरेण शास्त्रार्थेन भाव्यमिति पूर्वं प्रतिज्ञाय स्वकीयसंस्कृतलेखचुञ्चुत्वं लोका ज्ञास्यन्तीति भिया छोटुमहाराजो मौखिकशास्त्रार्थतत्परोऽभूदियं तस्य प्रतिज्ञाहानिः प्रथमा। एकैकविषयसमाप्त्यर्थमेकैकपक्षं विवदिष्यामहे वयमित्युभाभ्यामुररीकृतेपि विपक्षज्यायस्त्वाच्छोटुमहाराजेन तृतीयदिवसान्त एव मौनमवालम्बीति द्वितीया। सत्यस्यापि निष्प्रयोजनं वर्णनमसम्बद्धप्रलापः, सतु तल्लेखे सर्वत्रव वरीवर्ति।

स्थालीपुलाकन्यायेन शिवपद्मादिपुराणामश्लीलत्वं विष्णुशिवयोः कथाद्वयपूर्वकं प्रदर्शितमस्माभि। तत्परिहारस्योपायान्तरासाध्यात्वात्तद्रूपकामिति प्रदर्श्य यदुक्तं छोटुमहाराजेन तदपि तस्य वदतो व्याघातमिवाभूत्। कार्यकारणभेदाद्रुद्रो द्विविधस्तत्र कार्यरुद्रो मानुषवेशं धृत्वा, ऋषि पत्नीनां पातिव्रत्यपरीक्षार्थं दारुवनमागत्योन्मत्तवृत्तमाचरितवांस्तदा तद्विरुद्धाचारक्रुद्धानामृषीणां शापेन मानुषरूपस्य शिवस्य लिङ्ग पपातेति छोटुमहाराजस्य प्रथमा संमतिः। न कश्चिद्विग्रहवान् रुद्रो, नर्षयो न पत्पत्यो, न पातिव्रत्यं, न शापो नच लिङ्गपतनं वास्तवं किंतु सर्वमेवालङ्कारिकमेतदिति द्वितीया। तत्र प्रथमानुसारेण मनुष्यवेशधारीणः शिवस्य मानुषलिङ्गाभ्युपगमादृषिपत्न्यादिकं सर्वमेव वास्तवमित्यापन्नम्। आधुनिकशिवभक्तानां सयोनिलिङ्गपूजापि तद्भावप्रतिपादिकैव। तथा सति प्रतिपक्षद्रोषानुद्धरणं निग्रहस्थानं छोटुमहाराजस्य। द्वितीयैव ग्राह्येति चेन्न शिवपुराणस्य वैयर्थ्यापत्तेः। तत्र सशरीरस्यैव प्राधान्येन वर्णनाच्छिवस्यपरदाराभिगामित्वमृषिशापाद्वास्तवं लिङ्गपतनं च न निराकर्तुं शक्यं छोटुमहाराजशतैरपि। न ह्येकं वस्तु स्वत एव रूपादिविशेषोपेतं, रूपकेण तद्विपरीत चेत्यभ्युपगन्तुं शक्यं विरोधात्। ब्रह्मणो निराकारत्वाद्विभुत्वाच्च सहस्रशीर्षत्वं, चतुष्पादात्मकं परिच्छिन्नत्वं पत्नीद्वयोपेतत्वं च न

वास्तवमिति स्वीक्रियते छोदुमहाराजेनापि। "मानुवेशं धृत्वे, ति पूर्वमेव स्वीकृतं छोदुमहाराजेन चेत्तर्हि" हस्ते लिङ्ग च धारयन्नि, त्येतस्मिन्वाक्ये लिंग शब्दस्यार्थान्तरकल्पनेन तस्य वाक्यार्थसंगतिज्ञानराहित्यमाविर्भूतम्। यदि लिंग शब्दस्य वास्तवार्थ कथनेन लज्जते छोदुमहाराजस्तर्हि त्यज्यतां तेन शिवपुराणम्। छोदुमहाराजेन व्यक्ताव्यक्तादिलिंगत्रयं व्याख्याय चतुर्थे मानुषलिंगं स्वरूपतो न व्याख्यातं तत्रापि लज्जैव कारणम्। ऋषिपत्नीनां पातिव्रत्यपरीक्षार्थमाचरितमेतच्छिवेन न तु व्यभिचारार्थमिति छोदुमहाराजः। अहह ! कियन्मनोहारि समाधानमेतत्। इदानीमपि कश्चिद्भिक्षुः परदारानभिगम्य केनचिदाक्षिप्तः संवदेन्नाहं व्यभिचारार्थमभिगतः किंतु पातिव्रत्यपरीक्षार्थमिति तद्भिक्षोः कथनं शिवपुराणानुकूलं स्यान्नवेत्यत्र प्रष्टव्य* छोदुमहाराजः। नायम* लीलत्वपरिहारोपायः किंतु साक्षात्पश्यतां नेत्रे धूलिप्रक्षेपः। तद्विरुद्धं पश्यन्तोप्यृषयो यदि साधु साधु, यथेष्टं क्रियतामित्यवक्ष्यंस्तर्हि तल्लिगं त्रैलोक्यं नाधक्ष्यत्। शिवं पापान्निवर्तयद्भिऋर्षिभिः किं दुष्कृतं कृतम्। दुजन-तोषन्यायेन कृतमिति चेद्दषयो लिंगं नाद्रियन्तातस्त एव प्रायश्चित्तार्हा न त्रैलोक्यम्। ननु परकीयदुष्कृतस्य कथं परत्र संक्रांतिः। जगत्परितापोपजनितकृपो भगवाञ्छंकरस्तल्लेलिहानिर्लिंगप्रशमनार्थं पार्वतीयोनिनिवेंचछत्किमत्र रहस्यम्।

सत्यमेव जयते !

पुराणानाम* लीलत्वपरिहाराय यतमान* छोदुमहाराज उपसंहारे पुनस्तदेव स्वीकुर्वञ्श्रोणीदुकूलं शिर-सिनिधाय नृत्यतीति नाटयं दृश्यतां विचक्षणैः। "यान्यस्माकं सुचरितानि तानि त्वयोपास्यानि नो इतराणी" तिश्रुत्यनुसारेण शिष्टेनापि शिवेनाधर्मबुद्धया कृतमाचरणं प्रमाणकोटावग्राह्यमिति स्पष्टमेव स्वीकृतं छोदुमहाराजेनातः पुनः कथयामो वयं "सत्यमेव जयते" इति। अत्र वस्तुतः कथायाअश्लीलत्वस्वीकारादहंकार एव रुद्रश्चित्तवृत्तय एर्वाषपत्न्य इत्यादि सर्वमवास्तवमिति सिद्धम्। प्रमाणत्वेन पुराणानामनभ्युपगमात्सृष्टिप्रलयवंशानुचरितादिकं कथं ज्ञायेतेत्युक्तं तन्न महाभारतेन पुराणपदवाच्यैः शतपथादिभिरेव तल्लाभात्। एमस्याः कथाया अप्रामाण्य स्वीक्रियमाणेऽपि तत्रत्यगर्हितं सयोनिर्लिंगं पूजयन्त्येव लोका अतो धिक्तान्वेदप्रतिकूलकर्मनिरतान। पद्मपुराणा-न्तर्गतं वृन्दाभिगमनात्मकं हरेराचरणमुपन्यस्तमस्माभिः प्रथमपत्रे परंतु तस्मिन्विषये न किमपि व्यलेखि छोदु-महाराजेनात एतदपि प्रतिपक्षदत्तदोषानुद्धरणंनिग्रह स्थानं तस्य। इदानि लेखविस्तारभियात्रैवधिरभ्यतेऽस्माभिः।

हस्ताक्षर—

"बालकृष्णशर्मणः"

उपरोक्त पत्र का भाषानुवाद—

आम्रफल मांगने पर कोविदार का फल दिया जावे अर्थात् प्रश्न कुछ और उत्तर कुछ मिले तो उस पर यह संस्कृत उक्ति—"आम्रान्पृष्ट कोविदारानष्ट इति" श्री छोटु महाराज पर ठीक बैठती है। उनका विषया-न्तरादि दोषपूर्ण लेख का अनादर करके विषय से सम्बन्धित लेख का उत्तर यहां दिया जाता है। छोटु महाराज का संस्कृत ज्ञान कितना है ? वह हमने पूर्व पृष्ठों में पाठकों को (संस्कृत वाक्यों में तारे के चिन्ह लगाकर) अशुद्धियों से अवगत कराया है। एक ही विषय में दो पक्ष बनकर जहां वाद होता है उसको शास्त्रार्थ कहते हैं। शिवादि पुराण त्याज्य हैं, ऐसा आर्य समाजी कहते हैं। आधुनिक पौराणिक उनको प्रामाणिक मानते हैं, यह छोटु महाराज से हमारा वाद (शास्त्रार्थ) का विषय निश्चित था। उस विषय में प्रथम मौखिक शास्त्रार्थ हुआ। उसमें हमने—"पुराण त्याज्य हैं" इस प्रकार साध्य का प्रतिपादन करके वेद विरुद्ध होने से हमें उदाहरण के साधर्म्य से साध्य में उपयोगी हेतु भी बताया इस प्रकार पुराण त्याज्य हैं, इस विषय में शिव-विष्णु की कथा उदाहरण स्वरूप

रखी। न्याय और व्याकरण से अनभिज्ञ छोटु महाराज मेरी प्रतिज्ञा हेतु आदि के क्रम से युक्त लेख को असम्बद्धता आदि दोष युक्त बताते हैं, यह विचारणीय बात है। संस्कृत में लिखित शास्त्रार्थ होना चाहिए। ऐसा शास्त्रार्थ के नियमों में लेखबद्ध प्रतिज्ञा करने के बाद अपने संस्कृत ज्ञान की पोल लोगों में खुल जायेगी इस भय से प्रतिज्ञा भंग करके मौखिक शास्त्रार्थ करने लगे। यह उनकी प्रथम प्रतिज्ञा हानि हुई। प्रत्येक विषय पर पन्द्रह दिन शास्त्रार्थ होगा, ऐसा दोनों पक्षों ने स्वीकार किया था, फिर भी छोटु महाराज प्रतिपक्षी की शक्ति देखकर तीसरे दिन मौन धारण करके चौथे दिन आचार्य के साथ धमछाड़ा ग्राम में चले गये। यह दूसरी प्रतिज्ञा हानि हुई। विषय सत्य हो परन्तु इनका निष्प्रयोजन वर्णन करना असम्बद्ध प्रलाप कहा जाता है, उनके लेख में यह दोष पूर्ण रूप से भरा पड़ा है। हमने पुराणों की अश्लीलता का नमूना स्थालीपुलाक न्याय से विष्णु और शिव की कथा से प्रस्तुत किया। इस अश्लीलता से निपटने का कोई उपाय न मिलने पर शिव की कथा को रूपकालंकार बताकर अपने कथन का स्वयं ही खण्डन कर दिया।

छोटू महाराज लिखते हैं कारण और कार्य भेद से रुद्र दो प्रकार के हैं, इसमें कार्यरुद्र ने मनुष्य का रूप धारण कर ऋषि पत्नियों का पतिव्रत्य कितना हैं? इसकी परीक्षा हेतु जब ऐसा अश्लील रूप आचरण किया तब उस आचरण से क्रोधित हो ऋषियों ने शाप दिया, और मनुष्य रूपधारी शिव के लिंग का पतन हुआ। यह छोटू महाराज की सम्मति है। यहां अहंकार, रुद्र, चित्तवृत्तियां, ऋषि पत्नियां और विषय का ध्यान यह लिंग है। वास्तव में शिव, ऋषि या पतन्यादि कोई नहीं है। यह उनकी दूसरी सम्मति है। अब उनकी प्रथम सम्मत्यनुसार मनुष्य रूपधारी शिव का ग्रहण किया जाए तो ऋषि पत्नियां भी मनुष्य रूपधारी और लिंग पूजा भी मनुष्य का ही सिद्ध हुआ। साम्प्रति शिव भक्तों की सयोनि लिंग पूजा भी इस अभिप्राय को व्यक्त कर रही है। इस सम्मति अनुसार हमने जो दोष बताए उनका उत्तर तो दिया ही नहीं परन्तु छोटू महाराज ने उनको स्वीकार अवश्य कर लिया। अब उनकी दूसरी सम्मति पर विचार किया जावे तो शिव पुराण व्यर्थ हो जावेगा। क्योंकि इस शरीरधारी शिव का परदाराभिगमन और लिंगापतनादि दोषों का निराकरण एक छोटू महाराज तो क्या सो महाराज भी नहीं कर सकते। क्योंकि एक ही रूप युक्त वस्तु को अलंकारों से रूप रहित बताना यह बात कदापि स्वीकार्य नहीं है। क्योंकि उसमें परस्पर विरोध आता है। जिसको छोटू महाराज भी स्वीकार करते हैं। वह लिखते हैं—जैसे ब्रह्म निराकार और सर्वव्यापक होने से वेद में लिखे अनुसार उनके हजार सिर, दो पत्नियां और उनके चार हिस्से करना इत्यादि यह इनका वास्तविक स्वरूप नहीं बनता, इसी प्रकार मनुष्य रूपधारी की बात आपने प्रथम ही स्वीकार कर ली है। फिर शरीरधारी शिवलिंग के वास्तविक अर्थ करने में छोटू महाराज को क्यों लज्जा आती है? यहां लिंग शब्द का दूसरा अर्थ करने से छोटू महाराज को वाक्यार्थ संगति का ज्ञान नहीं है ऐसा प्रकट होता है। यदि लिंग शब्द का वास्तविक अर्थ करने में लज्जा आती है तो शिव पुराण के अध्ययन से भी लज्जा आती होगी। व्यक्त, अव्यक्त और उभयात्मक, इन तीनों लिंगों की लम्बी चौड़ी विस्तारपूर्वक व्याख्या की, परन्तु चौथे प्रकार के मनुष्य लिंग की व्याख्या और स्वरूप के विषय में कुछ नहीं कहा? कारण यही है, लज्जा आती होगी। ऋषि पत्नियों के पतिव्रत धर्म की परीक्षा हेतु शिव ने यह आचरण किया, व्यभिचार हेतु नहीं, ऐसा छोटू महाराज का कथन है। वाह जी वाह!! क्या सुन्दर समाधान किया? साम्प्रति में कोई साधु कहेगा कि मैं व्यभिचार नहीं बल्कि स्त्री के पतिव्रत धर्म की परीक्षा करता हूँ, तो यह कथन शिव पुराण के अनुसार न्याय युक्त माना जावेगा। इस विषय में छोटू महाराज को पूछना चाहिए कि शिव पुराण में लिखा है कि, ऋषियों ने शिव को अपने कार्य में सफल नहीं होने दिया, जिससे शिव ने अपना अपमान समझ सारे भूमण्डल को जलाना आरम्भ कर दिया, मेरी समझ में, इस विरुद्ध आचरण को देखकर यदि ऋषियों ने शिव को वाह! वाह!! बहुत अच्छा कार्य कर रहे हो, चलने दो इस कार्यक्रम को ल···चलने दो।

ऐसा कहा होता तो वह लिंग त्रिलोक को जलाता ही नही। भला! ऋषियों ने शिव को पापाचरण करने से रोका, तो इसमें उन्होंने कौन-सा बुरा कार्य किया? अगर न्यायानुसार ऋषियों ने बुरा किया, मान लिया जाए तो भी उसका प्रायश्चित्त ऋषियों को मिलना चाहिए बेचारे त्रिलोक्य का क्या अपराध? बुरा करें ऋषि दण्ड मिले त्रिलोक को! वाह रे न्याय? अन्त में जगत को दुखी देखकर दयालु भगवान शंकर ने ब्रह्माण्ड को दग्ध करने वाले अपने लिंग को शान्ति हेतु पार्वती की इच्छा की। क्या मैं पूछ सकता हूं इस बात में क्या रहस्य है? अन्त में सत्य की ही विजय होती है। जिस शिव कथा की अश्लीलता को निकाल देने के लिए अमलसाड़ गांव में श्री शंकराचार्य ने सैंकड़ों रुपये मिट्टी में मिलाकर दूर-दूर से पण्डितों को बुलाया तथा सैंकड़ों मनुष्यों की सभा में छोटू महाराज को कमर कसकर खड़ा किया, उस शिव कथा की अश्लीलता को दूर करने का प्रयत्न करने वाले छोटू महाराज ने अन्त में अपनी लेखनी से ही अश्लीलता का स्वीकार स्वयं ही कर लिया। अहाहा···सत्य का कैसा प्रभाव होता है? जिससे छोटू महाराज को परवश होकर सत्य लिखना ही पड़ा। अतः अगर यह बात उन्होंने आरम्भ में ही मान ली होती तो इतना विवाद क्यों पैदा होता? छोटू महाराज लिखते हैं कि—"**जो हमारे अच्छे आचरण हैं, उनका ग्रहण और बुरे आचरणों का त्याग करो यही श्रुति है**" एतदानुसार शिव द्वारा किया गया बुरा आचरण मानने योग्य नहीं है। बस! यही आर्य समाज का कथन व मान्यता है कि शिव कथा अत्यन्त अश्लील है। इस प्रकार स्वीकार करने से अहंकार रुद्र है, चित्त वृत्तियां-ऋषि पत्नियां हैं. इत्यादि यह सब मिथ्या प्रतिपादित हो गया। अतः शिव कथा अप्रामाणिक सिद्ध हुई। यह वेद विरुद्ध कार्य करना लोगों का अज्ञान है। अब पुराणों को अप्रामाणिक मानने से सृष्टि, प्रलय, राजवंशों के चरित्रादि कैसे जाने जा सकते हैं? इसका उत्तर यह है कि, यह सब विषय, महाभारत और शतपथादि से जाने जा सकते हैं। हमने प्रथम पत्र में वृन्दा और विष्णु का अश्लील आचरण लिखा था, उनका छोटू महाराज ने कोई उत्तर नहीं दिया। अस्तु लेख विस्तार भय से यहीं विराम लेते हैं॥

नोट—

यह उपरोक्त उत्तर पत्र श्री पण्डित बालकृष्ण शर्मा जी को सभा में देने का अवसर ही प्रदान नहीं किया गया, और बहाना बनाकर सभा भी विर्सजित कर दी गई थी। इस कारण अन्य विषय तो क्या प्रथम विषय भी अपूर्ण ही रहा, परन्तु पाठकों की जानकारी हेतु यह पत्र हमने यहां उद्धृत कर दिया है। गुजराती भाषा में प्रकाशित शास्त्रार्थ की मूल प्रति के अन्त में सम्पादक ने दो पृष्ठों में पुनरावृत्ति की है। हमने उसे अनावश्यक समझकर यहां उद्धृत नहीं किया। अन्त में, इस शास्त्रार्थ के अनुवाद करने हेतु—"**श्री अशोक जी आर्य (टंकारा)**" तथा उसकी प्रतिलिपि करने हेतु मेरे विद्यालय की छात्रा "**कु० सद्गुणा यादव**" ने जो सहयोग प्रदान किया है उसके लिए उनको धन्यवाद व आशीर्वाद देना मेरा परम् कर्तव्य बन जाता है। अतः ये दोनों ही बधाई एवं प्रशंसा के पात्र हैं। अस्तु!!

निवेदक—
"प्रा० दयाल आर्य"
(अनुवादक)
"जाम नगर"—गुजरात

एकसौछः वां शास्त्रार्थ—

स्थान : आर्य पुरा (सब्जी मण्डी) दिल्ली

दिनांक : २२ सितम्बर सन् १९७५ ई०
विषय : वर्ण व्यवस्था जन्म से है या कर्म से ?
आर्य समाज की ओर से शास्त्रार्थकर्त्ता : श्री अमर स्वामी सरस्वती (भूतपूर्व श्री ठाकुर अमर सिंह जी शास्त्रार्थ केशरी)
ग्रन्थ एवं प्रमाणों को उपस्थित कराने में सहायक : श्री लाजपत राय अग्रवाल
सनातन धर्म की ओर से शास्त्रार्थकर्त्ता : श्री पण्डित प्रेमाचार्य जी शास्त्री,
सहायक : श्री पण्डित रामेश्वराचार्य जी,
सनातन धर्म की ओर से शास्त्रार्थ के प्रधान : श्री पण्डित बालकृष्ण जी धर्मालंकार
आर्य समाज की ओर से शास्त्रार्थ के प्रधान : श्री स्वामी ओमानन्द जी सरस्वती
अन्य उपस्थित विद्वान् : १. श्री पण्डित ओम प्रकाश जी शास्त्री विद्याभास्कर,
२. श्री पण्डित राजवीर जी शास्त्री
३. श्री पण्डित राम दयालु जी शास्त्री तर्क शिरोमणी आदि-आदि एवं सनातन धर्मी अनेकों विद्वान,

शास्त्रार्थ से पहले

सन् १९७५ ई० में आर्य समाज की ओर से शास्त्रार्थ शताब्दी मनाई जा रही थी, जिसके कारण सारे भारत वर्ष में जगह-२ पर शास्त्रार्थ के आयोजनों हेतु चैलैन्ज किये जा रहे थे, स्व० श्री लाला दीप चन्द जी ने भी आर्य समाज आर्य पुरा (सब्जी मन्डी) की ओर से शास्त्रार्थ का आयोजन रक्खा, यह आयोजन लगातार तीन दिन तक रहा, प्रथम दिन श्री ओम प्रकाश जी शास्त्री, विद्या भास्कर (खतौली) निवासी जी के साथ "मूर्ति पूजा" विषय पर, द्वितीय दिन "मृतक श्राद्ध" विषय पर श्री पण्डित राम दयालु जी शास्त्री जी के साथ हुआ तृतीय दिन अर्थात् अन्तिम शास्त्रार्थ श्री पूज्य महात्मा अमर स्वामी जी महाराज के साथ "वर्ण व्यवस्था" पर हुआ, विपक्ष की ओर से तीनों दिन शास्त्रार्थ कर्त्ता के रूप में श्री पण्डित प्रेमाचार्य जी शास्त्री ही मौजूद रहे। मैं (लाजपत राय अग्रवाल) भी इन तीनों शास्त्रार्थों में मौजूद था, मुझे स्टेज पर प्रमाण प्रस्तुत करने हेतु ग्रन्थ ढूंढ़-२ कर देने के लिए पूज्य स्वामी जी महाराज ने अपने पास बैठाया था। सभी वृतान्त तीनों दिन का मुझे सुनने तथा देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

जो आनन्द व सिद्धान्तों की जानकारी अन्तिम दिन पूज्य अमर स्वामी जी महाराज के साथ हुए शास्त्रार्थ में मिली, उसका पूर्व के दोनों दिनों में प्रायः अभाव सा ही रहा। उन दोनों दिनों का वृतान्त भी इस शास्त्रार्थ श्रृंखला की कड़ी में अवश्य प्रकाशित होगा? इस वृतान्त को तभी टेप कर लिया गया था, बाद में टाईप कराया गया, पुनः प्रेस कापी बनाकर अब पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करते हुए मुझे महान हर्ष हो रहा है। आप भी प्रस्तुत शास्त्रार्थ को पढ़िये और लाभ उठाईये। पूज्य अमर स्वामी जी महाराज आज इस असार संसार में नहीं हैं। परन्तु उनकी वाक् पटुता तथा योग्यता व तर्क शैली के नमूने हमेशा जिवित रहेंगे। आने वाली पीढ़ी हमेशा उनसे अपना मार्ग दर्शन लेती रहेगी। रही स्वामी जी की बात?.......**तू भी गया तेरे चाहने वाले भी गये**......अब न कोई वैसा शास्त्रार्थों का आयोजन कराने वाला है न कोई शास्त्रार्थ कर्त्ता ही है। अस्तु!!

निवेदक—
"लाजपत राय अग्रवाल"

शास्त्रार्थ के अध्यक्ष श्री स्वामी ओमानन्द जी सरस्वती—

बन्धुवर्य! प्रसन्नता की बात है कि, त्रिदिवसीय शास्त्रार्थ का आज वर्ण व्यवस्था के शास्त्रार्थ विषय पर सम्पन्न हो रहा है। अति प्रसन्नता की बात तो यह है कि, दोनों ओर से दोनों दिवस शान्त प्रियता के साथ विचार विनमय हुआ है। और दोनों ही वक्ता बधाई के पात्र हैं। इसके साथ-साथ जनता ने भी, यह ठीक है कि कभी-कभी थोड़ा बहुत हर्ष उल्लास में ताली भी बजती है। कुछ हुआ है, और स्वाभाविक भी होता है। मैं तो आर्य समाज और सनातन धर्म दोनों को, मूल आधार जिनका वेद है, एक ही समझता हूं। दोनों सनातन धर्म और आर्य समाज में भेद नहीं समझते, वहां दूसरे व्यक्ति सनातन धर्मियों और आर्य समाजियों को देखते हैं कि शास्त्रार्थ करते हैं, यह शास्त्रार्थ नहीं है, यह तो विचार विनिमय है, यह हम परस्पर इसके द्वारा वेद का अध्ययन होता है, शास्त्रों का

अध्ययन होता है। मनन होता है। चिन्तन होता है। और हम डरते हैं दोनों, ये जो कैंची के दो फलकें हैं, जो चलते हुए दिखाई देते हैं, तो हम आर्य समाजी व सनातन धर्मी लड़ते हैं, जैसे कैंची के फलके में कील लगी है। आर्य समाजी और सनातन धर्मी, ये दोनों कैंची के फलके हैं। इनके मध्य में जो कील हैं वेदों की वह हमें जुदा नहीं होने देगी। हमें जो समझता है कि अलग-अलग हैं यह गलत है, अलग कहने वाला जो हमारे मध्य में आयेगा, कट जायेगा, कतर दिया जायेगा। इसलिए शान्ति, ! शास्त्रार्थ आज का वर्ण व्यवस्था पर है। वर्ण व्यवस्था कुछ लोगों ने आज यह कहा कि यह समयानुकूल नहीं है।

चूंकि आज तो जाति-पाँति की विच्छिन्नता हो रही है। और कई देशों ने तो निश्चय कर लिया है कि जाति-पाँति को तोड़-ताड़ करके जो विवाह किये जायें वह पृथक किया जाये। मैंने कहा यह तो आर्य समाज के विरुद्ध है। सनातन धर्म के विरुद्ध है। इससे तो वर्ण संकरता का प्रचार होता है। इसलिए इसका मुकाबला तो आर्य समाज और सनातन धर्म दोनों मिलकर करेंगे। लेकिन आज का विषय बड़ा सुन्दर है। वर्ण व्यवस्था जन्म से है, अथवा कर्म से है ? आर्य समाज का कथन है कि, जन्म से नहीं केवल कर्म से। और सनातन धर्म का कथन होगा वर्ण व्यवस्था जन्म और कर्म दोनों से हैं। ये आज का विषय है। बड़ी सुन्दर बात है कि **"श्री अमर स्वामी जी महाराज"** आज भी वक्ता हैं, जो वयोवृद्ध हैं, जिन्होंने अपने अतीत काल में बड़े-बड़े दिग्गज शास्त्रार्थ कर्त्ताओं के साथ शास्त्रार्थ किये हुए हैं। और श्री प्रेमाचार्य जी शास्त्रार्थ वाचस्पति आज अग्रवक्ता होंगे ! अब आप लोग शान्ति प्रियता से ध्यान पूर्वक शास्त्रार्थ सुनिये, अब शास्त्रार्थ आरम्भ होता है।

निवेदक—
"स्वामी ओमानन्द सरस्वती"
(पूर्व-आचार्य भगवान देव जी, गुरुकुल झज्जर)

शास्त्रार्थ आरम्भ

श्री पण्डित प्रेमाचार्य जी शास्त्री—

मूकम् करोति वाचालं पंगुं लध्यते गिरिम् । यत् कृपा तमहम् वन्दे परमानन्द माध्वम् ।। माननीय ! सभापति युगल !! आदरणीय विद्वत मण्डली, धर्मानुरागी सज्जनों, एवं देवियो ! तीन दिनों से जो त्रिदिविसीय शास्त्रार्थ सम्मेलन आप श्रवण करते आ रहे हैं, आज जैसा कि आपने सुना इस शास्त्रार्थ सभा का परिसमाप्ति का दिवस है। आज शास्त्रार्थ का विषय—"**वर्ण व्यवस्था**" अभी आपने अध्यक्ष महोदय के द्वारा श्रवण किया। मैं अपना पक्ष प्रारम्भ करने से पहले आप सबसे निवेदन कर देना चाहता हूं कि, वर्ण व्यवस्था का जो विषय है, वह आज समस्त राष्ट्र से प्रेम रखने वाले हिन्दुओं के लिए बहुत महत्वपूर्ण विषय है। वर्ण व्यवस्था का सम्बन्ध जहां धार्मिक परम्परा हमारे धार्मिक विश्वास के साथ है, वहां वर्ण व्यवस्था का सम्बन्ध हमारे राष्ट्र के साथ भी है। वर्ण व्यवस्था ही एक ऐसा हिन्दू जाति का सिद्धान्त है जो प्रत्येक हिन्दू के मन में राष्ट्र के प्रति हमारा क्या कर्त्तव्य है, राष्ट्र के प्रति मेरा क्या, मुझे क्या करना चाहिये ? राष्ट्र के लिए, यह बात हमें वर्ण व्यवस्था का सिद्धान्त बताता है। देखो, जैसे भगवान ने इस अनन्त कोटि बृह्माण्ड की रचना की, संसार का निर्माण किया, वही भगवान इस पृथ्वी पर किस प्रकार आनन्द और कल्याण के साथ रहना चाहिये, उसकी नियमावली भी बनाते हैं। वही नियमावली वेद नाम से, धर्म नाम से, आप हम सब जानते हैं।

इसलिए हिन्दुओं का सब कुछ करना-धरना वेद पर आधारित है। वेद हमें जो आज्ञा देते हैं, वह हम करते हैं, वेद हमें जो आज्ञा नहीं देते वह हम नहीं करते। तो हमारे सब सिद्धान्त वेदों पर आधारित हैं। भगवान ने भी ये सारा मनुष्य समाज व सारा हिन्दु समाज समस्त राष्ट्र एक कैसे रह सके ? राष्ट्रीय एकता किस प्रकार बनी रह सके ? किस प्रकार हम भावनात्मक दृष्टि से एक हो सकते हैं। यह स्वरूप समझाने के लिए वर्ण व्यवस्था का आदर्श हमारे सामने रक्खा। और प्रत्येक हिन्दु को जन्म से लेकर अर्थात् पैदा होने से पहले ही नवजात बालक के ऊपर ही राष्ट्र की कौन-कौन सेवा करने का भार है, कौन सी जिम्मेदारी निभानी है। ये बात बताने के लिए यह वर्ण विभाजन का वर्ण व्यवस्था का सिद्धान्त है। जिससे प्रत्येक बालक अन्धेरे में न रहे। नौ जवान हो जाये, और यह भी न जान सके कि मुझे क्या करना है। मैं क्या करूंगा। राष्ट्र की किस रूप में सेवा करूंगा। ये न जान पाये ऐसा न हो। बल्कि प्रत्येक बालक को पता हो कि मुझे क्या करना है। इसलिए यह वर्ण व्यवस्था का सिद्धान्त हमारे यहां माना गया, और आप इस सिद्धान्त को जैसे आपका शरीर है, हमारे शब्दों पर ध्यान देना, आपका शरीर है। आपके शरीर में पांच अंग हैं, जो पांच कार्य करते हैं, पांचों अंग अपना-अपना काम करते हैं, और अपना-अपना कार्य करते हुए इस शरीर को सुव्यवस्थित रखते हैं।

आप शरीर को समझ लो राष्ट्र ! ये शरीर नहीं है अपितु देश है, राष्ट्र है। तो जैसे शरीर में अलग-अलग अंग है वे अलग-अलग काम करते हैं, परन्तु वे सब काम करते हैं शरीर के लिए। इसी प्रकार हम भिन्न-भिन्न कार्य करने वाले प्राणी हैं, मनुष्य हैं। परन्तु हमारी प्रत्येक क्रिया का उद्देश्य है राष्ट्र रक्षा। राष्ट्र में एकता की भावना रखना। आप अपनी गर्दन के ऊपर। शरीर में गर्दन से ऊपर जितने भी काम हैं, ज्ञान का सारा केन्द्र है

गर्दन से ऊपर। देखना, सुनना, समझाना, बोलना ये सब काम गर्दन के ऊपर ज्ञान केन्द्र प्रधानतया आप देखते हैं, ऊपर हैं, अब आंख जो है, आंख का देखना केवल अपने लिए नहीं है बल्कि सारे शरीर के लिए है। आंख जब देखेगी सारे शरीर के निमित्त ! अच्छा बुरा जो परिणाम है उसे सचेत करेगी। और कान सुनेगा तो सारे शरीर के लिए सुनेगा। परन्तु सुनेगा केवल कान ! शरीर का और कोई अंग कार्य सुनने का काम नहीं कर सकता। ये काम कान ही करेगा। देखने का काम भी केवल आंख ही करेंगी। और कोई अंग देखने का काम नहीं कर सकता। तो ज्ञान का काम गर्दन से ऊपर है। हमारी भुजाएं, इनके ऊपर शरीर की रक्षा का भार है, शरीर पर कहीं भी चोट हो, कहीं भी नुकसान पहुंचता हो, शरीर में किसी भी प्रकार की आपत्ति की सम्भावना हो तो हाथ हमारे बचाते हैं शरीर को। सब प्रकार की देखभाल, सब प्रकार की सुरक्षा हाथ करते हैं।

इसी प्रकार हमारा उदर ये जो भोजन का रस है, सब अंगो तक पहुंचाने वाला यह विभाजन, विभाजन का महकमा सारा पेट के पास है। और हमारे ये चरण जिनके ऊपर सारा शरीर टिका है। शरीर का दारोमदार चरणों के ऊपर। पांव पर सारा शरीर टिका है। ये हमारे सब प्रकार से शरीर की सुरक्षा रखता है। और भईया एक अंग है जो मल सूत्र का विसर्जन करता है। तो इस प्रकार जैसे हम अपने शरीर में देखते हैं अंग भिन्न-भिन्न हैं। परन्तु वे सब अपना-अपना काम करते हैं शरीर की सुरक्षा के लिए। मैं ये बात जो आपको बता रहा हूं, यह मेरी कोई कल्पित बात नहीं है। अपितु सुप्रसिद्ध वेद मन्त्र सुना रहा हूं। ये वेद मन्त्र केवल किसी एक वेद में हों सो बात नहीं है, अपितु सभी वेदों में प्राय: ये मन्त्र किसी न किसी रूप में प्राय: प्राप्त होता है। यह मन्त्र इस रूप में प्राप्त होता है आप सभी लोग पूर्ण रूप से जानते हैं, और वह मन्त्र हैं—**"ब्राह्मणोस्यमुखमासीत् बाहु राजन्य कृत:। उरु तदस्ययत् वैश्य: पदभ्यां शूद्रो अजायत:"** इस मन्त्र में जो हमने अभी आपको हिन्दी भाषा में अर्थ सुनाया, वही भाव प्रकट किया गया है। ये चारों अंग इसी प्रकार, ब्राह्मण, क्षत्रीय, वैश्य और शूद्र अपने-अपने कर्मानुसार जो शास्त्र उनको कर्म बताता है वह ड्यूटी निभाता हुआ राष्ट्र में अपने कर्त्तव्यों को विचारे, राष्ट्र के प्रति अपने कर्त्तव्य को सोचे। और सावधान व जागरुक रहे। इसलिए सनातन धर्म के अनुसार सुनो। वर्ण व्यवस्था माने जाति, चार चीजों से मानी जाती है भाई ! चार चीजें हों तो सोलह आने जाति ! और कौन चार चीजें ? जन्म हो, कर्म हो, गुण हो, स्वभाव हो। जन्म, कर्म, गुण, स्वभाव से उपलक्षित-अर्थात् ब्राह्मण माता पिता से जन्म भी हो, क्षत्रिय माता-पिता से जन्म भी हो और गुण-गुण से तात्पर्य यहां पर यह नहीं है कि, ज्यादा पढ़ लिख जाना या योग्यता अधिकतम होना, गुण से अभिप्राय है—सत्, रज, तम, आदि तीन गुण हैं, इन गुणों के तारतम्य हों। और कर्म-कर्म का तात्पर्य यह है कि हमने जो जैसे अच्छे बुरे कर्म किये, जन्म जन्मान्तरों में जो हमारे प्रारब्ध संचित कर्म हैं वो कर्म ! क्योंकि शास्त्र बोलता है—**"ये रमणियाचवमांरमणियाम् योनिम्-आपत्तेरम्"** जो अच्छा काम करने वाले हैं, अच्छे कर्म करने वाले हैं, वो अच्छी योनियों को प्राप्त होते हैं। बुरा कर्म करने वाले बुरी योनियों को प्राप्त होते हैं। तो वो कर्म और स्वभाव ? आप जानते हैं कि स्वभाव एक ऐसी चीज है कि, जो मनुष्य में जीवन भर नहीं बदलती, जन्म से जिसकी जो आदत, जो स्वभाव लेकर वह पैदा हुआ वह जीवन भर नहीं बदलता, इसलिए कहा गया है—**"स्वभावोदुरतिकर्मा"** स्वभाव कभी बदला नहीं जा सकता।

तो भईया चार चीजें हों ! जन्म भी हो, कर्म भी हो, गुण भी हो, स्वभाव भी हो, जिसमें चारों चीजें मिल जायें यह सोलह आने, अगर उसमें वह क्षत्रीय माता-पिता से पैदा है, और वैसे गुण, कर्म और स्वभाव भी है, तो वह पूरा क्षत्रीय ! सोलह आने क्षत्रीय !! और अगर किसी अन्य में कमी है, चारों में से, नहीं है कोई अंग, कम पड़ता है, तब उसका उतना सम्मान नहीं होगा। उतनी उसकी प्रशंसा नहीं होगी। उतना उसको अच्छा नहीं माना

जायेगा। वह अपनी जाति में होता हुआ भी निन्दनीय माना जावेगा। मैं आपको एक उदाहरण दूं। जैसे मान लीजिये कि एक सिक्का है, टकसाल में वह अठन्नी या रुपया। टकसाल से ढ़ला हुआ अठन्नी, आठ आना है, पर खोटा है। बाजार में ले जाओ तो एक अधेले में नहीं चलता। तो दुकानदार तुमसे कहेगा—ये तुम्हारी खोटी अठन्नी ! सम्भालो !! खोटी अठन्नी ? है खोटी, पर तो भी है तो अठन्नी। ऐसा नहीं कि वह अगर चलती नहीं तो उसको अधेला कह देते हों या पाई कह देते हों। या वह कुछ न रहता हो। तो खोटा रहने पर भी उसको बोलते अठन्नी ही हैं। तो अगर इसी प्रकार ब्राह्मण खोटा है ब्राह्मण अपने गुण, कर्म, और स्वाभावानुसार, गुणानुसार ठीक नहीं है, विद्वान नहीं है तो उसका अपमान होगा। लोग कहेंगे भाई वह बेकार का ब्राह्मण है। नाम भर का ब्राह्मण है। इसलिए और क्षत्रिय अगर उसमें चारों चीजें नहीं है, नाम तो हो शेर सिंह ! और भईया चूहे को देखकर आते हों पसीनें, तो उसको क्योंकि उसमें क्षत्रीयोचित् वीरता शौर्य आदि गुण नहीं हैं, इसलिए उसको निन्दनीय, उस दृष्टि से सम्मानीय नहीं माना जायेगा।

इसलिए चारों वर्ण जो हैं, भगवान कहते हैं, सुनो······सुनों, शोर मत करो शान्ति से बैठो······हाँ ! तो मैं कह रहा था कि भगवान कहते हैं श्री मद्‌भगवद्‌गीता में, इसी बात को कहा—भगवान बोले,—"चातुर्वर्णम् मयाश्रष्टम्" ? "मयाश्रष्टम्" ये शब्द ध्यान देने के योग्य हैं। ये चारों वर्ण किसने बनाये ? भगवान कहते हैं—मैंने बनाये, और किसी मनुष्य के द्वारा कल्पित् नहीं, बल्कि "मयाश्रष्टम्" मैंने बनाये, और इसी बात को श्री स्वामी दयानन्द जी महाराज ने सत्यार्थ प्रकाश में भी लिखा,······ब्राह्मण, क्षत्रीय, वैश्य, शूद्र, ये जो जाति हैं, वे ईश्वर कृत हैं। ये स्वामी जी के सत्यार्थ प्रकाश के शब्द हैं। माने भगवान बनाने वाले हैं। भगवान ने बनाई। तो ये सारी चीजें जो हैं, चूंकि भगवान के द्वारा बनाई हुई वस्तु हैं। हम किसी का स्वभाव वह सब बदल नहीं पाते, इसलिए सनातन धर्म मानता है वो चारों चीजें। जन्म भी हो, कर्म भी हो, गुण भी हो और स्वभाव भी हो, चारों चीजें मिले तो सोलह आने सही। और भईया अगर कोई कमी-बेसी हो जाये तो फिर उसको निन्दनीय मानते हैं, और सुनो, एक बात और ध्यान देने की है, इन चारों वर्णों में निन्दनीय प्रशंसनीय···टन टन टन टऽऽऽ······

श्री अमर स्वामी जी महाराज—

माननीय सभापति महोदय, बहनों और भाईयो ! बड़े अच्छे ढंग पर शास्त्रार्थ का आरम्भ हुआ। आदरणीय आचार्य जी ने बहुत अच्छे ढंग पर बात कही। बहुत कोई आपत्ति जनक बात नहीं कही क्योंकि जो बातें मुझे विशेष रूप से बोलनी हैं—आचार्य जी ने जो बात कही वर्ण व्यवस्था की महिमा पर, हम सहमत हैं। दोनों ही, ये तो शास्त्रार्थ का विषय है। आज सनातन धर्मी और आर्य समाजी दोनों वर्ण व्यवस्था को मानते हैं। और दोनों ही समझते हैं कि, वे राष्ट्रहित का विषय है, दोनों मिलकर तो यह श्रम शक्ति है। गृह शक्ति है, कोई संसार में इसे मिटा न सकेगा। बड़ी अच्छी बात है। थोड़ा सा मतभेद है। उस मतभेद को मिटाने के लिए ही आज यहां विचार विनिमय के लिए एकत्र हुए हैं। तो उसमें आचार्य जी ने जो बात कही है। वो यह कही—गुण, कर्म, स्वभाव, के साथ उन्होंने बात रक्खी है। पर एक बात यह भी कही कि, जन्म, ब्राह्मण से जिसका जन्म हुआ हो वह ब्राह्मण ! क्षत्रीय से जिसका जन्म हुआ हो वह क्षत्रीय ! वैश्य से जिसका जन्म हुआ हो वह वैश्य ! शूद्र से जिसका जन्म हुआ हो वह शूद्र ! यह भी एक बात जो उन्होंने कही, मुझे यह कहना है कि, यह वेद मन्त्र से घटेगा नहीं। आज जो ब्राह्मण है, इसलिए आप जो कहते हैं कि, उसके माता-पिता ब्राह्मण हैं, और वह कौन सा ब्राह्मण है ? जिसके माता-पिता ब्राह्मण नहीं हैं। वह कौन सा ब्राह्मण है जिसके माता-पिता ब्राह्मण है। ऐसे चलते-चलते हम सृष्टि के आरम्भ में पहुंचेंगे।

और सृष्टि के आरम्भ में ऐसे भी हमारे विचार में आवेंगे जिनके कोई माता नहीं कोई पिता नहीं। सृष्टि के आरम्भ में उत्पन्न हुए। सबसे पहले सृष्टि हुई। तो न उनका पिता ब्राह्मण! न उनका पिता क्षत्रीय! न उनका पिता वैश्य! न उनका पिता शूद्र! तो यह लक्षण वहां जाकर कट जायेगा। यह लक्षण वहां नहीं रहेगा। इसलिए ये समझते हैं वे लक्षण ठीक नहीं तो ठीक क्या होगा? ठीक वही होगा जिसमें ब्राह्मण के से गुण, कर्म, स्वभाव हों वह ब्राह्मण! जिसमें क्षत्रीय के से गुण, कर्म, स्वभाव हों वह क्षत्रीय! जिसमें वैश्य के से गुण, कर्म, स्वभाव हों वह वैश्य! और जिसमें शूद्र के से गुण, कर्म, स्वभाव हों वह शूद्र! ये लक्षण ऐसा है कि, सृष्टि के आरम्भ के पक्ष तक भी मिलेगा। बीच के पक्ष तक भी मिलेगा, अभी भी मिलेगा और जब तक सृष्टि रहेगी तब तक मिलता चला जायेगा। श्रोताओं में सन्नाटा······आर्य जनों द्वारा हर्ष प्रकट करना······, तो आचार्य जी! यह बात कि ब्राह्मण का पुत्र ब्राह्मण, क्षत्रीय का पुत्र क्षत्रीय, यह लक्षण जो है, यह कभी घटेगा नहीं सृष्टि के आरम्भ में इसलिए गलत है, यह लक्षण ठीक नहीं, एक ओर बात कही, ये जो स्वभाव की बात आपने कही कि, स्वभाव से वर्ण व्यवस्था होती है।

यहां यह बात कही कि, स्वभाव से कोई व्यक्ति ब्राह्मण के ऊपर स्वभाव सा हो, और पुत्र न हो ब्राह्मण का, उसमें गुण कर्म स्वभाव ब्राह्मण के से हों तो वह ब्राह्मण हो गया। कोई आपत्ति नहीं। ऐसे ही क्षत्रीय हो गया। ऐसे ही वैश्य हो गया। माता-पिता इसके कोई होवें। वह स्वभाव को लेकर पैदा हुआ, इसमें हमें कोई आपत्ति नहीं, और वैसे यह कहा जाये कि जो ब्राह्मण के घर में हुआ वही ब्राह्मण है, वह स्वभाव लेकर उत्पन्न होगा, जो क्षत्रीय के घर उत्पन्न हो वह वही स्वभाव लेकर उत्पन्न होगा। तो यह सिद्धान्त विरुद्ध है। ब्राह्मण श्रेष्ठ श्रेणी में होता है, पर ब्राह्मण होते हुए झूठ बोलता हो। और इतना झूठ बोले कि जिसकी कोई सीमा नहीं। तो स्वभाव काहे का रहा क्योंकि स्वभाव जिसका नहीं है ठीक तो क्या होता है। क्योंकि स्वभाव की बात उसके ऊपर नहीं है। जो माता-पिता से चली आई उसकी अपनी बात है। अपना स्वभाव उसका बुरा है, यह अलग बात है। एक बात आपने यह कही कि अठन्नी खोटी, चवन्नी खोटी, रुपया खोटा, तो वह रुपया ही रहेगा। खोटी होते हुए भी अठन्नी व चवन्नी, वही रहेगी। यह तो आकृति की बात है। क्योंकि आकृति अठन्नी जैसी है। इसलिए वह अठन्नी का रूप है। ये दृष्टान्त आकृति का है। और ब्राह्मण, क्षत्रीय, वैश्य और शूद्र ये आकृति की बात नहीं है, आजकल तो न कोई ब्राह्मण कहना चाहता है, न क्षत्रीय कहना चाहता है। न वैश्य न शूद्र! वह गुण, कर्म, स्वभाव से बनेगा। इसलिए आकृति का दृष्टान्त आपने दिया वह खत्म हो गया।

ब्राह्मण, यदि ब्राह्मण पुत्र नहीं है तो वह ब्राह्मण नहीं रहेगा। व ब्राह्मण ही नहीं रहेगा वह शूद्र हो जायेगा, या वह और कुछ हो जायेगा, जिसके जो कुछ गुण, कर्म, स्वभाव होंगे वह वही हो जायेगा। इसलिए मैं इसके लिए प्रमाण भी दूंगा, पर एक मन्त्र आपने कहा है, उसको भी कहे देता हूं उस मन्त्र में कहा है—"ब्राह्मणोस्य मुखमासीत् बाहु राजन्य कृतः। उरूतदस्ययत् वैश्यः पदभ्यागं शूद्रो अजायतः॥" और इससे पहला मन्त्र भी पढ़ लिया जावे, पहले मन्त्र में कहा है—"यत्पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन्। मुखं किमस्य, को बाहू का उरु पादा उच्येते।" (ये दोनों मन्त्र—अथर्व वेद १९-६-४-५ तथा ऋग्वेद—१०-९१-११-१२, एवं यजुर्वेद ३१-१०-११ में हैं) आपने बात कही थी आचार्य जी बड़ी अच्छी कही थी कि, शरीर को भी समझो कि यह राष्ट्र है, ये देश है। ऐसे ही समझ लिया जावे, क्योंकि देश जो है शरीर, जो राष्ट्र है, वह शरीर है। तो वह राष्ट्र पुरुष है, उसकी कैसे कल्पना की जाये। उसका मुख क्या? उसकी भुजायें क्या, उसका उर्ध्व भाग क्या? और उसके पैर क्या? यह प्रश्न है एक और। उसका बाहु क्या, उसका मुंह क्या, उसके पांव क्या कहें। क्यूं पाला उसे। उसका उत्तर है कि

उसका मुख ब्राह्मण, उसकी भुजा क्षत्रीय, उसका उरु वैश्य, और उसके पैर शूद्र ये बात उसके उत्तर में हैं। पहले मन्त्र में, चार प्रश्न हैं, चारों के चार उत्तर है, एक प्रश्न हुआ—मुख उसका क्या था? यह राष्ट्र पुरुष है इसका मुख ब्राह्मण है। और इसकी भुजायें क्या है? रक्षा करने वाली ये क्षत्रीय हैं। और उस भाग इसका वैश्य है और पैर इसके शूद्र हैं।

इस प्रकार राष्ट्र का वर्णन हुआ तो यह है, वहां प्रश्न भी हुए और उत्तर भी हुए। इसलिए यहां पर ये बात कही गई कि जो राष्ट्र है, देश है, इसमें ये चार वर्ण मानने चाहियें। एक शिक्षित वर्ग, एक रक्षक वर्ग, एक व्यापारी वर्ग, और एक सेवा करने वाला वर्ग। ये, जैसे-जैसे काम करने की योग्यता इनमें होगी, वैसे-वैसे हो जायेंगे। जिसमें योग्यता शिक्षा देने की होगी वह शिक्षक होगा, जिसमें योग्यता शिक्षा देने की नहीं होगी वह शिक्षक नहीं होगा। जिसमें रक्षा करने की सामर्थ्य होगी वह रक्षक होगा, और जिसमें व्यापार करने की सामर्थ्य होगी वह व्यापारी होगा। और जिसमें सेवा करने की सामर्थ्य होगी वह सेवा करेगा। ऐसा नहीं है कि, शिक्षक वर्ण में उत्पन्न हुआ है तो उसे शिक्षक बना देना चाहिये, और वह रक्षक वर्ग में उत्पन्न हुआ हैं, उसका पिता रक्षक था, इसलिए उसे रक्षक बना देना चाहिये। तो जैसा कि आपने कहा कि, नाम शेर सिंह और चूहे से भी डरे। तो उसे सेनापति कैसे बना दिया जायेगा? नहीं बनाना चाहिये। यह सर्वथा अनुचित है। वह रक्षक नहीं है। वह रक्षकों में नहीं रहने के योग्य है। जो शिक्षा ग्रहण नहीं करता, जिसने शिक्षा नहीं ली है तो वह चाहे बड़े से बड़े विद्वान का पुत्र क्यों न हो वह शिक्षक वर्ग में रहने के योग्य नहीं है। तो गुण, कर्म, स्वभाव से जो ब्राह्मण दिखाई देता है, वह ब्राह्मण है। गुण, कर्म, स्वभाव से जो क्षत्रीय है, वह क्षत्रीय है। और गुण, कर्म, स्वभाव से जो वैश्य है, वह वैश्य है। एक आपने और बात कही, और वह बात यह कही कि भगवान श्री कृष्ण जी कहते हैं कि—"**जात कर्म मया श्रेष्ठं गुण कर्म विभाजतः**" आखरी बात तो मान ली गई। कि गुण कर्म के विभाजन से ही, ब्राह्मण, क्षत्रीय, वैश्य, कहे हैं, जन्म विभाग से नहीं कहे, और यह नहीं कहा कि, जन्म से मैंने यह निश्चय किया है कि जो ब्राह्मण के घर में उत्पन्न हुआ हो वह ब्राह्मण है। जो क्षत्रीय के घर में उत्पन्न हुआ हो वह क्षत्रीय है। वैश्य के यहां उत्पन्न हुआ वह वैश्य है। गुण, कर्म और व्यवहार से मैंने यह किया है। आपने आधी बात कही है, और बिल्कुल हमारी बात कह दी। और रही आधी उसको अपने पक्ष में लगा लिया और यह बता दिया कि श्रीकृष्ण जी महाराज परमेश्वर हैं, और उन्होंने यह बात कही है कि मैंने बनाये हैं, परमेश्वर ने बनाये हैं, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र! इसलिए वेद कहते हैं—"**ये स्वाध्वतम् हेत्वाभव**" जो है पहले यही साध्य है। और श्रीकृष्ण जी महाराज परमेश्वर हैं कि नहीं? जब उन्हें यह मान लिया जाये, हम तो नहीं मानते उन्हें परमेश्वर! हम तो उन्हें महापुरुष मानते हैं। बड़ा विद्वान मानते हैं। बड़ा आदर करते हैं उनका, ये कह करके आप "**स्वाध्वतम्हेत्वाभव**" में आ गये हैं। ये नहीं आपको कहना चाहिए। हमें तो वही बात कहनी चाहिए जो बात उभय सम्मत हो और प्रमाण दीजिए, जो प्रमाण हमारे लिए भी ठीक, आपके लिए भी ठीक, इसलिए वो प्रमाण देने चाहिए। तो ये—"**ब्राह्मणोस्य-मुखमासीत्**" की बात हो गई। अब जितने गुण, कर्म, स्वभाव, जिसके जैसे दिखलाई देंगे, वैसा-वैसा हम उसको मानेंगे, तो फिर लक्षण क्या हुआ?

ब्राह्मण का लक्षण यह है कि, वह ब्राह्मण के घर में उत्पन्न हुआ हो। जिसमें ये गुणकर्म स्वभाव हों, पढ़ना, पढ़ाना, यज्ञ करना, कराना, दान देना-लेना, तो इस प्रकार के वह ब्राह्मण हैं। तो जिसमें यह गुण नहीं होंगे, वह ब्राह्मण नहीं होगा। चाहे वह ब्राह्मण के घर में उत्पन्न हुआ हो, और चाहे किसी पण्डित के, ब्राह्मण नहीं है। ऐसे ही क्षत्रीय भी नहीं हैं। तो इसलिए वह केवल जन्म से ब्राह्मण थोड़े ही हो जाएगा। आकृति से ब्राह्मण नहीं बनता

है। तो आकृति उसकी नहीं है। मनुष्य-मनुष्य सब एक जैसे है, ऐसे ही ब्राह्मण, ऐसे ही क्षत्रीय, उसमें कोई भेद की बात नहीं, तो इसी प्रकार से क्षत्रीय जिसमें गुण, कर्म, स्वभाव, क्षत्रीय के से है, प्रजा की रक्षा करना और यज्ञ करना, दान देना, यज्ञ कराना, ऐसे गुणों के व्यवहार से जो युक्त है वह क्षत्रीय है। जिसमें यह गुण होंगे वह क्षत्रीय होगा, चाहे जन्म उसका कहीं हुआ हो, इसी प्रकार से ये गुण जिसमें होंगे वह वैश्य होगा। ये गुण उत्पादन के जिसमें होंगे वह वैश्य होगा। वैश्य के घर में उत्पन्न होने से वैश्य नहीं होगा। तो इन बातों से यह सिद्ध हुआ कि गुण, कर्म स्वभाव से ही वर्ण व्यवस्था होती है। जन्म से नही होती है। होनी भी उससे ही चाहिए। और उससे ही होगी भी, गुण, कर्म, स्वभाव से ही मानी जायेगी। तो उन्नति होगी। हम कहेंगे कि तुम गुण, कर्म, स्वभाव से युक्त नहीं हो, इसलिए तुम ब्राह्मण नहीं हो, क्षत्रीय नहीं हो, वैश्य नहीं हो। ये और आपके मत के अनुसार नहीं कि मैं तो ब्राह्मण हूं। मुझमें ब्राह्मण के से गुण हों चाहे न हों। मैं तो ब्राह्मण ही हूं ये कहेगा इससे इसका मिथ्या अभिमान उसको गिरायेगा, उसकी उन्नति नहीं होने देगा। और हमारा जो नियम है उससे उसकी उन्नति करेगा। भलाइयों को समझेगा, बुराइयों को छोड़ेगा, यदि वह ब्राह्मण रहना चाहता है तो, नहीं तो ब्राह्मणत्व से निकाल दिया जायेगा, और मनु महाराज ने कहा भी है—

"अर्थात् जो अपने को ब्राह्मण कहता है, और वेद नहीं पढ़ता, वह ब्राह्मणों में से निकाल देने योग्य है"। और देखिए कहा है—

"अर्थात् जो मनुष्य संध्या नहीं करता है, अपने को ब्राह्मण कहता है, वह ब्राह्मण कुल में से निकाल देने के योग्य है"। वह ब्राह्मणों में रखने के योग्य नहीं है।

श्री पण्डित प्रेमाचार्य जी शास्त्री—

मान्य सज्जनों ! श्री स्वामी जी महाराज ने, मैंने जो वेद मन्त्र उपस्थित किया था, सम्भवत: उस पर पूरी तरह ध्यान नहीं दिया, मन्त्र में बड़ी स्पष्ट क्रिया है—**"पदभ्याम् शूद्रो अजायत:"**। **"अजायत:"** यानी **"प्रादुर्भावे"** इसी धातु से बना है **"जाति"** शब्द। और वही क्रिया है इस मन्त्र में, इसलिए ऐसा काम करने वाले को राष्ट्र में ब्राह्मण मान लिया गया। या ऐसा करने वाले को यह मान लिया गया, वीरता दिखाने वाले को क्षत्रीय मान लिया गया, मान लिया गया, कि मान लिया गया की, गुंजाईश नहीं है, मूल वेद में, वेद मन्त्र में **"अजायत:"** क्रिया पड़ी है। जिसका सीधा अर्थ है **"निप्रादुर्भावे"**। एक बात, **"अजायत:"** क्रिया पर स्वामी जी ने विचार नहीं किया, और मैं तो स्वयं, अठन्नी वाली बात जो स्वामी जी ने कही आपको, वह आकृति की बात नहीं, टकसाल से वह अठन्नी ढलकर आई है। अठन्नी अब बाजार में नहीं चलती तो उसको खोटी अठन्नी कहा जा रहा है। आकृति की बात नहीं, चूंकि वह टकसाल में ढली है। इसलिए अठन्नी है। और बाकी जो आपने उदाहरण दिया मनु का उदाहरण दिया था कि—

"शूद्रमत् बहिष्कार्य: सर्वस्माद्विजकर्मण:" ये बात तो हम पहले ही बोल चुके हैं, कि, जन्म, कर्म, गुण, स्वभाव, इन चारों में से अगर किसी बात की कमी होगी तो समाज में उसकी निन्दा होगी। उसको अच्छा नहीं माना जाएगा। जो नाम का शेरसिंह हो, उसको कौन सेनापति बना देगा ? यही तो बात हम कह रहे हैं, नाम का शेरसिंह है, पर भइया उसको सेनापति नहीं बनाया जा सकता। वह निंदनीय क्षत्रीय है। चूंकि वह क्षत्रीय मां-बाप से पैदा है इसलिए उसको क्षत्रीय हम न कहें यह नहीं हो सकता, चूंकि उसमें बहादुरी तो नहीं है, इसलिए वह सेनापति तो नहीं बन पायेगा परन्तु वह क्षत्रीय ही न रहे यह कहना या करना उसके साथ बड़ा अन्याय ही होगा। देखो इसमें

एक कारण है, सही बात तो यह है कि, अगर ब्राह्मण में, स्वामी जी कहते हैं, गुण, कर्म और स्वभाव न हो, तो उसको ब्राह्मण ही न रहने हो। वो बहादुर वीर न हो तो उसको क्षत्रीय ही न रहने दो। अगर वह क्षत्रीय ही न रहा हो तो उसका बहिष्कार कर दिया तो जीवन भर वो अपने पूर्व पद पर अपने बाप-दादा के चलाये मार्ग पर चलकर क्षत्रीय, क्षत्रीय कहलाने का प्रयत्न करे, हम उसका द्वार बन्द कर देते हैं। अगर क्षत्रीय होते हुए उसमें गुण कर्म आदि क्षत्रीय के नहीं हैं तो और हम उसकी निन्दा करते हैं, समाज में उसका अपमान होता है ? तो समाज में उसे निन्दा गालियां अपमान सुनते-सुनते कभी उसकी अन्तरात्मा जागेगी कि अरे तू नाम भर का क्षत्रीय, बहादुरी दिखा और सच्चे अर्थों में क्षत्रीय बन जा। अरे तू नाम भर का ब्राह्मण, पढ़ लिख, विद्याभ्यास कर, और सच्चा ब्राह्मण बन, अच्छी तरह ब्राह्मण बन जा, बाप व दादा की तरह। तो वह सच्चे अर्थों में पूरी तौर पर ब्राह्मण-क्षत्रीय बनने का प्रयत्न करेगा। और इसलिए उसका बहिष्कार कर देने पर हम उसके हाथ से एक मौका छीन लेते हैं। इसलिए यह तो हुई युक्ति, तर्क की बात ! पर हमने जो एक बात बताई थी "अजायतः" उस पर विचार करें, और दूसरी बात यह है कि, जो स्वामी दयानन्द जी का हमने उदाहरण दिया था, स्वामी जी कहते हैं कि, गीता को तो हम प्रामाणिक नहीं मानते। कृष्ण भगवान परमेश्वर भी थे कि नहीं ? हम नहीं मानते, हम तो उनको महापुरुष मानते हैं, "अच्छा परमेश्वर न सही", नहीं मानते, एक महापुरुष कह रहे हैं एक बात, हूं ! अच्छा गीता तो एक प्रमाण है, आपके लिए परन्तु उसे नहीं माना आपने, पर स्वामी दयानन्द जी तो प्रमाण होंगे। उन्होंने अपने व्याकरण में जब बताया कि, ब्राह्मण शब्द कैसे बनेगा ? व्याकरण की बात है। व्याकरण जानने वाले लोग समझेंगे, ब्राह्मण, वहाँ लिखा है कि, ब्राह्मण का बेटा, अर्थात् ब्राह्मण से पैदा होने वाला ब्राह्मण, ब्राह्मणी से जो पैदा होगा, उसको कहा जायेगा, ब्राह्मण और अगर अजातीय अर्थ हो अर्थात् जाति से भिन्न अर्थ में हो, तब कहेंगे ब्राह्मण पुत्र है। **"ब्राह्मौ अजातौ"** अगर जाति से भिन्न अर्थ में होगा, —**"ब्राह्म"** शब्द। और अगर अपव्य अर्थ होगा। प्रत्य हो जाने पर। तब बनेगा ब्राह्मण। इसी प्रकार क्षत्रीय। क्षत्रीय की संतान होगा। व्याकरण से शब्द बनेगा, क्षत्रीय। और अगर क्षत्रीय से सम्बन्धित कोई बात कहनी होगी तो कहेंगे क्षात्र, इसलिए व्याकरण भी इस बात की पुष्टि करता है। अपने व्याकरण के ग्रन्थ में घोषित करते हैं इस बात को। तो मूल वेद का जो शब्द है—**"अजायतः"** एक यही नहीं हम आपको और भी प्रमाण देते हैं, जिसमें इसी धातु का प्रयोग हुआ है। वह कौन धातु शब्द हैं। **"क्षत्रियो अजनिविश्वस्य भूतस्याधिपति। ब्राह्मणो यज्ञे प्रथमा-ब्राह्मणो यज्ञे प्रथमा"** (अथर्व वेद ४-६-१) तो यह अथर्ववेद का मन्त्र कहता है, **"ब्राह्मणो यज्ञे"** वही यानि प्रादुर्भाव धातु का यहाँ लट्ट लकार का प्रयोग हुआ है। तो व्याकरण की ये क्या नाम विशेषता और उस विशेष धातु का प्रयोग करके जिस धातु से जाति शब्द बना है, जाति। उसी धातु का प्रयोग ही यहाँ पर हुआ। इसलिए कल्पना कर ली गई चारों वर्णों की ऐसी-ऐसी, ऐसा नहीं है। बल्कि हम तो स्वामी जी की बात का समर्थन करते हुए साथ में एक बात ओर जोड़ रहे हैं। हम यह नहीं कहते कि, उसमें कर्म न हो, उसमें गुण न हो, स्वभाव न हो, ये हों जरूर ! पर जन्म भी हो। हम कहते हैं कि जन्म भी होना चाहिए। चारों चीजें हों। तब तो होगा वह पक्का, और भाई अगर एक-आध चीज की भी कमी है, तब हो जाएगी गड़बड़ी, अच्छा एक बात, इसके साथ हम एक उदाहरण देते हैं। और चूंकि गीता को स्वामी जी नहीं मानते, पर श्री स्वामी दयानन्द जी महाराज का आदर करते हैं। इसलिए हम उनका ही एक प्रमाण देते हैं। स्वामी जी महाराज अपनी संस्कार विधि में एक बात कहते हैं कि—ध्यान देना सज्जनों ! स्वामी जी क्या कहते है ? हम जो उदाहरण देने चले हैं उसके अनुसार ब्राह्मण, क्षत्रीय, वैश्य, शूद्र,······हाँ ! सज्जनों इधर हमारी बात पर ध्यान दो ! ···स्वामी दयानन्द जी महाराज नामकरण संस्कार में एक बात कहते हैं, जरा ध्यान देना हमारी बात पर ! स्वामी जी लिखते हैं कि—नामकरण संस्कार में बालक का नाम रक्खा जा रहा है। सज्जनों ! आज बालक का नामकरण है। और ये नामकरण होता है दसवें दिन। ग्यारहवें दिन नामकरण संस्कार होता है। अर्थात्

बालक है दस दिन का, अब दस दिन के बालक का कोई गुण, कर्म नहीं है। वह तो विचारा, पाखाना या पेशाव करना भी ठीक से नहीं जानता ऐसा है बालक, तो उस बालक का, दस दिन के बालक का जब नाम रखा जाय तो स्वामी जी कहते हैं कि, अगर ब्राह्मण का बालक हो तो उसका नाम "**देवशर्मा**" रखो। और क्षत्रीय का हो तो "**देव वर्मा**" रखो। और वैश्य का हो तो "**गुप्त**" नाम रखो। और शूद्र का हो तो "**देवदास**"। अर्थात् चारों वर्णों में से किसी भी वर्ण का वह बालक हो, ब्राह्मण है तो नाम के साथ शर्मा लगाओ, क्षत्रीय हो तो नाम के साथ वर्मा लगाओ। वैश्य हो तो गुप्त लगाओ, शूद्र हो तो दास लगाओ, अब आप विचार करो कि ये जो बालक का नाम रखा जा रहा है, तो बालक का अपना तो कोई गुण, कर्म है नहीं, तो ये तो बाप की जाति के अनुसार बालक का नाम रखा जा रहा है। आप अगर ब्राह्मण हैं तो बेटे का नाम भी ब्राह्मण के अनुसार शर्मा रख दिया, बाप अगर वैश्य हो तो, वैश्य के कारण पिता के अनुसार बेटे का नाम भी वैसा ही रख दिया गया, तो अर्थात् दस दिन के बालक को, जो नामकरण संस्कार किया जा रहा है, उसके अपने वर्ण के अनुसार या गुण के अनुसार ब्राह्मण, क्षत्रीय या वैश्य या शूद्र नहीं बताया जा रहा। बल्कि पिता के वर्ण के अनुसार उसको नाम दिया जा रहा है। तो दस दिन का बालक, चूंकि उसकी अपनी कोई योग्यता नहीं, एक प्रमाण तो हमारा यह ध्यान देना।

सज्जनों सुनो! आज बालक है दस दिन का! और जब बालक हो गया ८ वर्ष का या ११ वर्ष का या १२ वर्ष का, तब उसका जनेऊ होने लगा, ध्यान देना, यज्ञोपवीत अर्थात् उपनयन संस्कार! ये संस्कार विधि के दोनों प्रमाण हैं, उपनयन संस्कार में, स्वामी जी महाराज कहते हैं कि, जिस ब्राह्मण के बालक का आठवें वर्ष में उपनयन संस्कार हो, आठवें में! और भइया क्षत्रीय का संस्कार हो, ११वें में। वैश्य का हो तो १२वें में। तो ८-११-१२—तो आज बालक हो गया ८ वर्ष का, तो आठ वर्ष के बालक का जनेऊ क्यों किया जा रहा है? इसलिए किया जा रहा है कि वह ब्राह्मण का बेटा है। स्वामी जी लिखते हैं कि, वह ब्राह्मण का बेटा हो तो ८ वर्ष में जनेऊ करो और बालक का तो अपना कोई गुण, कर्म है ही नहीं, जो हम उसको अमुख कह सकें या कुछ भी कह सकें। इस लिए और क्षत्रीय का हो तो ११ वर्ष में करो और वैश्य का हो तो १२ वर्ष में जनेऊ करो। तो जनऊ होने तक भी बालक का अपना कोई वर्ण नहीं। स्वामी जी कहते हैं कि पिता के वर्ण के अनुसार इसका संस्कार करे। और इसके साथ-साथ स्वामी जी ने व्रत भी लिखे। वो जिसका जनेऊ होना है, वह बालक व्रत करे। एक दिन का या तीन दिन का व्रत बताते हैं स्वामी जी। और वह व्रत में क्या खाये? ब्राह्मण का बालक हो तो दूध पीकर रहे वह भी तीन दिन तक। क्षत्रीय का बेटा हो तो "**यवागूम**"! आप समझ लो, "हलवा"। स्वामी जी कहते हैं जौं का मोटा दला हुआ गुड़ के साथ। और भइया वैश्य का बालक हो तो "**आमिला**"। जिसको "**श्रीखण्ड**" बोलते हैं। दही और दूध मिला करके बनाते हैं ये, हाँ! श्रीखण्ड पीकर तीन दिन गुजारे, व्रत करे फिर उसका जनेऊ होगा। तो ११ वर्ष के बालक का व १२ वर्ष के बालक का कोई वर्ण नहीं। उसकी कोई जाति नहीं, उसकी जाति स्वामी जी के लेखानुसार पिता के वर्ण के अनुसार है। पिता अगर ब्राह्मण है तो अपने बेटे का आठवें वर्ष में जनेऊ कर दे। पिता अगर क्षत्रीय है तो ग्यारह वर्ष में कर दे तो ग्यारह वर्ष तक भी उस बालक की अपनी कोई जाति कोई वर्ण नहीं रहा, ध्यान देना हमारी बात पर, तीसरी बात एक और बताते हैं कि स्वामी जी लिखते हैं कि—कन्यायें विद्याध्ययन करने के लिए जायें। और २४ वर्ष तक बालक विद्याध्ययन करें। तथा १६ वर्ष तक कन्या विद्या का अध्ययन करके जब स्नातक होवे तब जैसी उनकी योग्यता हो अर्थात् जो गुण, कर्म, स्वभाव उसमें देखा जाए तो १६ वर्ष में लड़कियों को उसी वर्ण में बता दिया जाए कि तुम्हारा यह वर्ण है, और बालक को २४ वर्ष की अवस्था में अगर वह पढ़-लिख गया तो उसको ब्राह्मण कह दो, अगर वह अनपढ़ रह गया तो उसको शूद्र कह दो तो २४ वर्ष में जाकर जाति का फैसला स्वामी जी महाराज करते हैं २४वें साल में जा कर के। यह फैसला कौन करे? यह फैसला

अगर विधासभा करे तो, दे दे सर्टिफिकेट इस बात का कि—यह ब्राह्मण हो या क्षत्रीय या वैश्य या शूद्र हो ? और स्वामी जी कहते हैं कि—राज्य सभा होनी चाहिए ! और जो बालक ब्राह्मण बना है, आज जिसको पढ़ाई लिखाई करने के बाद जिसको ब्राह्मण होने का सर्टिफिकेट मिला है, वह कहाँ जाये ? यह बात ध्यान देने की है। अगर उसका बाप है, अनपढ़ तो उसका पढ़ा-लिखा बेटा उस अनपढ़ बाप के पास न जावे, वो तो किसी पढ़े लिखे बाप को दे दो, और भइया जिसका बेटा अनपढ़ रह जाए २४ साल तक पढ़ा-पढ़ाया रह जाये वह उस अनपढ़ के माथे मढ़ दो अर्थात् जिस बेचारे अनपढ़ बाप ने मजदूरी करके अपने पेट पर लात मार कर जिस बेटे को पढ़ाया, इस आशा से कि पढ़ लिख कर मेरी सेवा करेगा परन्तु जब वह पढ़ लिख कर इस योग्य हुआ तो बाप चूंकि अनपढ़ है इसलिए स्वामी जी का कहना है कि वह अब उसके पास नहीं रह सकता, अब उसे दूसरा बाप दो। जाली बाप ! इसलिए पढ़ने-लिखने के बाद वह किसी दूसरे को सौंप दिया जाए और दूसरे का अनपढ़ बेटा उसके मत्थे मढ़ दिया जावे सारी उमर उसकी छाती पर मूंग दलने के लिए···।

श्री अमर स्वामी जी महाराज—

बहनों और भाइयो ! आचार्य जी बड़े अच्छे ढंग से बोल रहे हैं, मैं उनकी प्रशंसा करता हूं। पर बात तो वही है जैसी कि उनकी मान्यता है आखिर उसी को पुष्ट करने का यत्न करेंगे, पर वह पुष्ट होता कहां है ? यहां आपने कहा कि जो वेद मन्त्र मैंने बोला था, स्वामी जी ने उस वेद मन्त्र पर ध्यान नहीं दिया, मैंने तो ध्यान इतना दिया कि—इससे पहला मन्त्र भी ले लिया। यह आपने कैसे कह दिया कि ध्यान नहीं दिया ? मैंने उस पर व उससे पहले मन्त्र पर विशेष जोर दिया, पहले मन्त्र में प्रश्न हैं और उसके उत्तर हैं। आगे जैसा कि आप कहते हैं—**"पद्मा शूद्रो अजायतः"** और यदि यह उत्तर ठीक हो तो कि पैरों से उत्पन्न हुआ तो शूद्र ! अर्थात् परमेश्वर ही हमको यह उलटा मार्ग बतावे तथा कहे कुछ करे कुछ ! उस मन्त्र में प्रश्न है कि कौन कहां से उत्पन्न हुआ ? अर्थात्—**"मुखौमद्यासीत"** मुख उसका क्या था ? तथा **"मुखम् किमस्यासीत किं बाहू"** उसकी भुजायें क्या हैं ? **"किं उरु"** उसके उरु क्या है ? **"किं पादा"** उसके पैर क्या हैं ? प्रश्न तो यह है और आप कह रहे हैं—उत्तर यह है ध्यान से सुनिए—शूद्र पैरों से पैदा हुआ। यह पूछा ही नहीं गया कि पैरों से पैदा हुआ कि सिर से ? यह तो प्रश्न के विरुद्ध हैं, तो प्रश्नों के विरुद्ध उत्तर देंगे यह भी ईश्वर ने कहा होगा, क्या यह उचित होगा ? हम तो मनुष्य भी इसे उचित नहीं समझते, कोई भी नहीं समझता, इसलिए जो प्रश्न है उसका वैसा ही उत्तर हो सकता है जैसे कि—ब्राह्मण कौन है ? उसका पुरुष जो राष्ट्ररूपी पुरुष है—उसका मुख क्या है ? ब्राह्मण, उसकी भुजा क्या है ? क्षत्रीय, ! उसका उरु भाग क्या है ? वैश्य, उसके पैर क्या हैं ? शूद्र, ये प्रश्न और ये उत्तर। ठीक है आपने उसे छोड़ दिया और उसके साथ एक मन्त्र और जोड़ दिया, परन्तु उसे जोड़ देने से तो और भी मुसीबत में फंस जायेंगे, आपने जो मन्त्र बोला उसका मुझे सब पता है परन्तु आपको उसका अता-पता बिल्कुल भी मालूम नहीं है। मैं जो पूर्ण जानकारी के आधार पर ही बोलता हूं, आपने बोल दिया कि—"अथर्ववेद में मन्त्र है" **"ब्राह्मणे·· प्रथमः"** ठीक है ये मन्त्र है, कि ब्राह्मण उत्पन्न हुआ यह तो बात ठीक है इसलिए आपने कहा कि—**"प्रादुर्भावे"** से यहां भी उत्पन्न हुआ, वहां भी उत्पन्न हुआ, यह हो गया, वह हो गया, और आगे कहा कि—मन्त्र को पूरा पढ़ते तो पता चल जाता कि—"ब्राह्मण कैसे उत्पन्न हुआ ?" तब प्रश्न उसका तथास्यः। पहले ब्राह्मण उत्पन्न हुआ, कैसे हुआ ? इस प्रकार हुआ कि—जिसके दस सिर और दस मुंह हों वह ब्राह्मण है। इस प्रकार तो वह रावण जैसा ही होगा। जनता में हंसी·········और वह कौन था ? महाराज जी, उत्पन्न होने की बात यदि प्रादुर्भाव से प्रकट होना कहना, या गुण कर्म स्वभाव से ? यह तो वैसे भी ठीक हो जायेगा। आपने संस्कार विधि को लेकर कितनी बढ़िया आपत्ति उठाई आपने कहा कि—जन्म हुआ बालक का और जन्म के बाद ग्यारहवें दिन नामकरण संस्कार हुआ। ब्राह्मण

के लड़के के नाम के साथ "**शर्मा**", क्षत्रीय के बालक के साथ "**वर्मा**" वैश्य के बालक के साथ "**गुप्त**" तथा शूद्र के बालक के नाम के साथ "**दास**" जोड़ा जाये। जबकि उसका कोई गुण, कर्म आदि नहीं है। ठीक है परन्तु उसके माता पिता किस वर्ण के हैं ? ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र अर्थात् वे कैसे हैं ? जन्म से नहीं बल्कि गुण कर्म स्वभाव से वह कैसे हैं ? सर्व सिद्धांत है कि गुण-कर्म-स्वभाव से जिसका पिता ब्राह्मण है तो उसकी सन्तान क्या हो ? क्या चाहता है पिता ? पिता यह चाहता है कि मेरा पुत्र भी ब्राह्मण बने इसलिए वह नाम रखवाता है कि मेरे बेटे का नाम "**शर्मा**" रख दो मैं कामना करता हूं कि यह भी ब्राह्मण बने ऐसी मेरी भावना है। इस भावना के अनुरूप जब वह ब्राह्मण नहीं बनेगा तो उसके साथ लगाया गया उप नाम "**शर्मा**" अपने आप हट जायेगा, शर्मा रहेगा ही काहे को जब मुसलमान हो गया तो शर्मा रहा ही नहीं। कुछ और हो गया तो न शर्मा रहा न वर्मा कुछ भी नहीं रहेगा, वह पक्का मुसलमान हो जायेगा, शर्मा तो उसके नाम के साथ इसलिए लगाया गया कि पिता की भावना है कि मेरा बेटा भी ब्राह्मण बने, उपनयन संस्कार में भी यही वार्ता है, वहां पर कहा गया है कि—"**जो ये चाहता है कि मेरा बेटा ब्राह्मण बने तो उसे अपनी सन्तान का यज्ञोपवीत संस्कार पांच वर्ष की आयु में कर देना चाहिए और जो क्षत्रिय बनाना चाहता है वह छः वर्ष की आयु में उसका यज्ञोपवीत संस्कार कर दें**" तो ये कामना की बात है। जैसी-जैसी कामना वैसा-वैसा ही बनाना चाहते हैं। देखेंगे कि जो कोई बालक डाक्टर बन सकता है तो उसे किस आयु में लिया जाए ? और जो कोई व्याकरणाचार्य बनता है उसे किस आयु में लिया जाये ? गुरुकुल वाले, पाठशाला वाले, विद्यालय वाले देखेंगे कि जो विद्यार्थी आया है वह इस योग्य है कि नहीं, उसकी आयु इस योग्य है कि नहीं ? उसकी आयु देख करके ही उसे प्रवेश देंगे, यह नहीं होगा कि वह ब्राह्मण बन गया, वह क्षत्रिय बन गया वह वैश्य बन गया या वह शूद्र बन गया। कुछ नहीं बन गया वह क्योंकि मनु जी महाराज कहते हैं कि—"**शूद्र समद्यावत् तावत् यावत् वेदेन जायते**" जब तक उसका यज्ञोपवीत संस्कार नहीं हुआ, तब तक वह शूद्र के समान है, और कुछ नहीं है।

परन्तु पिता की कामना यह है कि मेरा बेटा ये बने, इस वास्ते उसके नाम के साथ शर्मा, वर्मा, गुप्त, दास आदि-आदि जोड़े गये हैं, परन्तु वह इसलिए नहीं जोड़े गए कि ये जोड़ते ही वह वैसा बन गया। नहीं, बल्कि शास्त्रकार कहता है कि—"**आचार्यम् स्वयं जाति विधिवत् वेदमार्गः उत्पादेसा वित्रयासा सत्या सः जरा मरा**" वह ब्राह्मण वह आचार्य उस समय बतायेगा कि वह कौन बनेगा, क्षत्रिय बनेगा या वैश्य बनेगा, ? क्या बनेगा वह ? जो वर्ण दिया जाएगा वही बनेगा। इस प्रकार से और जो नहीं रहेगा उसके लिए कहते हैं कि—"**शूद्रो ब्राह्मणेतामेति ब्राह्मणेते शूद्रतम क्षत्रीय**" मनु जी महाराज कहते हैं कि—शुद्र जो हैं वह ब्राह्मण हो सकता है और—"**शूद्रो ब्राह्मणेति ब्राह्मणेते शूद्रतः**" और जो ब्राह्मण है वह कभी भी शूद्र हो सकता है इसी तरह क्षत्रीय से उत्पन्न हुआ भी और वैश्य से उत्पन्न हुआ भी शूद्र हो सकता है। और ऐसा होता रहा है और हुआ है। आपने एक बात यह कह दी कि उसका बेटा उसको दे दिया जाये इसमें समाज की ···रहती है। और उसका बेटा उसको दे दिया जाये, छीन करके दे दिया जाए, आचार्य जी ! वह तो अपने आप छिन जाएगा। जो वर्णशंकर हो गया उसका अस्तीत्व तो अपने आप ही नष्ट हो जाएगा, जब माता पिता की सेवा ही न करेगा। और उसे किसी और के साथ जोड़ दो ऐसे ही मूर्ख के साथ जो जैसा है वह और मूर्ख हो जाएगा, उसे मूर्ख के साथ जोड़ दो। विद्वान के साथ मूर्ख हो गया, कहते हैं विदुर जी महाराज कि—'एक वो लोग हैं जिनके सन्तान हुई नहीं, एक वे हैं जिनके हुई और मर गई, एक वे हैं जिनके सन्तान हुई भी तथा मरी भी नहीं परन्तु मूर्ख हो गई, इसमें सबसे बुरे वे हैं जिनकी सन्तान मूर्ख हो गई, तो क्या करें उसी के गले मढ़ा रहने दें उसको ? अच्छा यह है कि उसे अलग कर दे, राज्य का प्रबन्ध हो। उसके माता-पिता को कष्ट होगा, वह माता-पिता की सेवा नहीं करेगा। ये वर्णशंकर हो गया है, ये भ्रष्ट हो गया है, उसका

कोई उपयोग नहीं। और ये कहते हैं कि उससे विमुख हो जाते हैं। यह तो अच्छी व्यवस्था बतलाई कि उसने कमाई की है, उसने मेहनत की है, ठीक है। लेकिन जो बिगड़ गया है उसे अलग कर देना ही चाहिए। अंगुली सड़ गई, और कहें कि बड़ी मेहनत से पाला है परोसा है, ठीक है बिगड़ गई सो बिगड़ गई उसे फेंको। तो इस वास्ते महाराज जी आपने ये सब जो बातें कही हैं उन सबका मैंने हर एक का उत्तर दिया, कोई भी बात मैंने छोड़ी नहीं। मैंने एक बात कही कि वहां प्रश्न वेद में यह है कि जो शरीर की राष्ट्र के रूप में कल्पना की है उसमें यह पूछा गया है कि उसके मुख क्या ? उसके उरु क्या ? उसकी भुजा क्या ? और उसके पैर क्या ? वहां यह नहीं है कि ये जो है ये काहे से पैदा हुआ और काहे से नहीं पैदा हुआ, और इसीलिए इस मन्त्र का अर्थ करते हुए श्री आचार्य महीधर जी ने और आचार्य जी ने यही अर्थ किया कि उसका मुख क्या है ? उसकी भुजाएं क्या हैं ? और उसका ये-ये क्या है, यही उन्होंने उत्तर दिया और कहा कि—यहीं उसका प्रश्न तथा यहीं उसका उत्तर है। आचार्य महिधर तथा उव्वट आदि ये इनके भाष्य हैं और यहीं पर यह कहा गया है—"**यत् पुरुषम् विभु**···**मुखम् किमस्यापि, किम् बाहू**·········ये प्रश्न करके उसका उत्तर देते हैं—"**ब्राह्मणां च मुखम् आसीत**" ब्राह्मण उसका मुख था।

ब्राह्मण मुख से पैदा हुआ नहीं ? बल्कि ब्राह्मण उसका मुख था। और ये आपके लिए प्रमाण है हमारे लिए नहीं, क्योंकि आपके आचार्यों का कथन है, हमारे लिए आप प्रमाण दीजिए जब मानेंगे, ये सब इस बात के प्रमाण हैं। तो आपने कहा कि—मैंने आपके मन्त्र पर ध्यान नहीं दिया। आचार्य जी ! मैंने तो आपके मन्त्र पर पूरा ध्यान दिया है तथा पहले मन्त्र को भी साथ जोड़ा। पहले प्रश्न में ये प्रश्न है इसलिए इस प्रकार के उत्तर इसके साथ होने चाहिए और साथ में मैंने अनेक प्रमाण इस बात के दिए, मैंने बताया कि मनु जी महाराज कहते हैं कि—जो आज ब्राह्मण है वह कल को शूद्र हो सकता है, जो आज शूद्र है वह फिर कभी भी ब्राह्मण हो सकता है यदि उसके गुण-कर्म-स्वभाव बदल जायें तो वह अवश्य हो सकता है। इसलिए इन सब बातों का उत्तर देते हुए मैं आपसे निवेदन करता हुं कि—आपने एक बात और कही थी कि—जिनका हमने बहिष्कार कर दिया और यह कह दिया कि तू ब्राह्मण नहीं है। नही रहा गुण-कर्म-स्वभाव उसका ब्राह्मण जैसा। आपने यह बात कही और कह दिया कि वह ब्राह्मण नहीं है। तो वह निराश हो जायेगा, वह निकल जायेगा ब्राह्मणों में से तब तो वह उन्नति कर ही नहीं सकेगा, वह तो उन्नति करता ही नहीं है। प्रश्न तो यह है कि यदि हम उसे भी ब्राह्मण ही रहने देंगे तो दुर्जन स्वभाव के ब्राह्मण हैं, वह कहेगा कि यह तो बड़ा अन्याय है। मैं गुण-कर्म-स्वभाव से ब्राह्मण और यह बिना गुण-कर्म-स्वभाव के ब्राह्मण, यह भी ब्राह्मण हम भी ब्राह्मण तो क्या भेद रहा ? तो प्रगति करने का वह भी उपाय नहीं करेगा और कहेगा कि मैं वैसे भी ब्राह्मण हूं—"**अविद्यो वा सविद्यो वा ब्राह्मणोमान विष्णु**" अविद्वान हो या विद्या वाला हो ब्राह्मण तो भगवान का शरीर है, यदि यह कहा जाएगा तो कर्म करने का फल ही नहीं मिलेगा, वह कहेगा कि मैं तो ब्राह्मण हूं ही, मैं तो ब्राह्मण रहूंगा ही चाहे मैं कुछ भी करूं मुझे कोई ब्राह्मणों में से निकाल ही नहीं सकता तो इस वास्ते उन्नति का मार्ग यही है कि उसे कहा जाए कि यदि तू गुण-कर्म-स्वभाव ब्राह्मणों के से नहीं रक्खेगा और जिसमें गुण-कर्म-स्वभाव हैं ब्राह्मण के से चाहे वह किसी भी योनि में उत्पन्न हुआ हो वह ब्राह्मण होगा ?

इसी प्रकार गुण-कर्म-स्वभाव पर आधारित अन्य अन्य वर्णों में निश्चित किए जाएंगे, जैसे-जैसे गुण-कर्म-स्वभाव जिसके हों वैसा-वैसा ही उसको बना दिया जाए, ऐसी बातें केवल हमारे ही यहां नहीं हैं आचार्य जी ! आप अपने ग्रन्थों को भी उठा कर देखें आपके ग्रन्थों में भी इस प्रकार की बातें हैं और उनमें भी बताया गया है, कहा गया है कि—ये सब जो है—"**न विशेषोवित वर्णानिम् सर्व ब्राह्मणयदत् जगत्**" अर्थात् महाभारत के शान्ति पर्व में कहा गया है कि वे उत्पन्न हुए थे तो सब ब्राह्मण, ब्रह्म से उत्पन्न हुए उन्हीं में से जैसे-जैसे कर्म करते गए वैसे-वैसे बनते गए। उनमें से जिन्होंने क्षत्रीयों के से कर्म किए वे क्षत्रीय हो गए। जिन्होंने वैश्यों के से कर्म किए वे

वैश्य हो गए तथा जिन्होंने शूद्रों के से कर्म किए वे शूद्र हो गए, जैसे-जैसे कर्म किए, वैसे-वैसे हो गए। ऐसा एक जगह पर ही नहीं है, मैं सैकड़ों जगहों पर दिखला सकता हूँ जहां इसी प्रकार की व्यवस्था विद्यमान है।

आपने अठन्नी का उदाहरण दे दिया कि वह टकसाल में बनी है। टकसाल में ब्राह्मण बना है? कोई भेद है उसमें? आकृति में, ब्राह्मण में, टकसाल में, भेद है और वह भेद क्या है? सुनो! टकसाल से अठन्नी बन कर आई है·········टर्न टन टन·········

श्री पण्डित प्रेमाचार्य जी शास्त्री—

सज्जनो! आपने श्री स्वामी जी महाराज का प्रवचन सुना। मैंने जो बात कही थी उसको भी आपने ध्यान से सुना होगा। मैंने अपनी पहली टर्न में यह कहा था कि स्वयं श्री स्वामी दयानन्द जी महाराज कहते हैं—ब्राह्मण, क्षत्रीय, वैश्य, शूद्र ये चारों वर्ण ईश्वर कृत हैं, सज्जनो! ये स्वामी दयानन्द जी के शब्द हैं, और ब्राह्मण गुण-कर्म से हो जाये तो उसे ब्राह्मण बना दो, क्षत्रीय जैसे गुण-कर्म हों तो उसे क्षत्रीय बना दो ये कह रहे हैं कि—हम बना दें, स्वामी दयानन्द जी कह रहे हैं कि—ईश्वर ने बनाये और ये कह रहे हैं कि हम बना दें, इसलिए ईश्वरकृत वस्तु को ये मनुष्यकृत की सीमा में ला रहे हैं। हमने कहा था कि—बालक का नामकरण करे जब, उस पर स्वामी जी कहते हैं कि यह तो पिता की इच्छा है, जो पिता चाहे अपने बेटे को ब्राह्मण बनाना वह ब्राह्मण नाम रख दो। जो क्षत्रीय बनाना चाहे वह क्षत्रीय नाम रख दो। क्यों भाई हम पूछते हैं कि कोई अपने बेटे को शूद्र बनाना चाहेगा? यहां तो यह भी है कि शूद्र का बालक हो तो उसका नाम देवदास रखो। तो अपने बेटे को सभी अच्छा बनाना चाहेंगे, योग्य बनाना चाहेंगे। और सुनो शूद्र कौन है? स्वामी दयानन्द जी के कथनानुसार—नाम धर्म के या कर्मानुसार नहीं, स्वामी दयानन्द जी की मान्यतानुसार शूद्र किसको बोलते हैं? स्वामी जी कहते हैं कि—ब्राह्मण, क्षत्रीय, वैश्य इन तीनों का नाम तो है आर्य और शूद्र का नाम दस्यु या अनार्य। दस्यु को कहें हिन्दो भाषा में—डकैत, उचक्का आदि-आदि तो शूद्र, जिसको इतना अनार्य कहकर स्वामी जी स्मरण कर रहे हैं और आर्य तो हुए केवल ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य! तो कौन बाप होगा कि—बेटा पैदा हुआ घर में, और मान लो कि वह प्रथम सन्तान से यह आशा करे कि मेरा बेटा बड़ा होकर डाकू बने, चोर बने, उचक्का बने। इसलिए नामकरण के समय कोई पिता अपनी सन्तान को चूंकि डाकू वा दस्यु बनाना न चाहेगा। सभी चाहेंगे कि अच्छा बने। इसलिए नामकरण संस्कार के दिन पिता ऐसा बनावे, यह बात नहीं है।

अच्छा मान लो चलो एक क्षण के लिए हम स्वामी जी की बात मान ही लें कि—पिता जैसा चाहता हो वैसा बेटे को बनावे और वैसा ही उसका नाम रख दे तो मान लो पिता ने चाहा कि मेरा बेटा ब्राह्मण बनें कि या क्षत्रीय बने तो उसका नाम रख दिया देवदत्त या देव शर्मा। परन्तु जब वह पढ़-लिखकर चौबीस साल का हो गया वहां से वह निट्ठल्ला, गंवार अनपढ़ निकला और बाप चाहता था ब्राह्मण बनाना, नाम रख दिया देव शर्मा, वहां वह पढ़-लिख नहीं पाया तो क्या उसका फिर नाम बदलें? अब उसका नाम बदलो! वाह स्वामी जी!! फिर तो वह बेचारा सारी उम्र नाम ही बदलता रह जायेगा। एक बात और स्वामी जी ने अपने प्रवचन में कही—हमने कहा था कि बेटे को अगर बाप अनपढ़ है अथवा कोई विधवा है बेचारी तो उसने अपने बेटे को पाल-पोसकर बड़ा किया, स्कूल भेजा, पढ़ने-लिखने को गुरुकुल भेजा वहां से जब वह स्नातक बन करके आया तो मां बड़ी खुश थी कि बेटा अब मेरी खूब सेवा करेगा, मेरा इसे पढ़ाना-लिखाना काम आयेगा। स्वामी जी कहते हैं—नहीं राज सभा का यह काम है, मां चूंकि पढ़ी-लिखी नहीं है, इसलिए पढ़े-लिखे बेटे को अपने पास रखने का उसको कोई हक नहीं। स्वामी जी फरमान जारी करते हैं कि उस बेटे को किसी पढ़े-लिखे बाप को दे दो। और जिसका बेटा अनपढ़ रह जाये वह उस बूढ़ी मां के गले मढ़ दो। उस बेचारी विधवा के गले। भईया हम पूछते हैं कि उस बेचारी विधवा

मां का क्या अपराध है ? जिस मां ने···उसका क्या अपराध ? और इतना ही नहीं बेटियां भी मिलेंगी, बेटियां ! अगर बेटी पढ़-लिख गई तो पढ़े-लिखे बाप के हवाले कर दी जावेंगी ये तुम्हारे पढ़े-लिखे होने का तुम्हारे ऊपर दण्ड है, बेटी मिली अब उसका विवाह भी करो और आज के जमाने में एक बेटी का विवाह करना मुश्किल है और दो-चार पढ़ी-लिखी बेटियां तुम्हारे घर में आ गयी तो इस व्यवस्था के अनुसार तो गड़बड़ी हो जायेगी। इसलिए भइया ये जो राज सभा, विद्या सभा वाली बात है कि बेटा-बेटी बदल दो अर्थात् पढ़े-लिखे मां-बापों को दे दो और किसी भी अनपढ़ सन्तान किसी अनपढ़ मां-बाप को दे दो क्या ये बात दुनिया में चल सकती है ? अच्छा एक बात हमने कही थी उपनयन संस्कार की ! उपनयन संस्कार के समय भी ब्राह्मण के बेटे का आठवें वर्ष में हो। अमुक का अमुक समय में हो ये व्रत करे, ये अमुक काम करे।

मान लो नामकरण के समय किसी ने अपने बेटे को ब्राह्मण बनाना चाहा और नाम रख दिया देव शर्मा और आठ साल के भीतर उसमें ऐसी कोई योग्यता दिखाई न पड़ी तो वह उसका जनेऊ कब करेगा ? इसलिए आर्य समाज की गुण कर्म अनुसार जाति व्यवस्था में सबसे बड़ी गड़बड़ी यह है कि चौबीस साल की उम्र तक नौजवान को पता ही नहीं होता कि मेरा क्या गुण-कर्म है अर्थात् मेरी जाति क्या है ? मैं ब्राह्मण हूं, क्षत्रीय हूं, वैश्य हूं, शूद्र हूं कि क्या हूं ? चौबीस साल में पता लगता है जबकि उसके जीवन का लगभग आधा हिस्सा सुवर्ण समय, नौजवानी का समय जो होता है वह उसका निकलने लगता है उस समय उसको मालूम पड़ता है कि मैं क्या हूं ? तो सनातन धर्म कहता है कि जन्म से यदि वह क्षत्रीय घर में पैदा हुआ है, बालक जब होश सम्भालेगा, दो-चार वर्ष का होगा, उसको पता रहेगा कि मेरा बाप बड़ा बहादुर, देश रक्षा करने वाला, सब चीजों में सम्पन्न, वह भी वैसा ही बनने की कोशिश करेगा, वैसे ही गुण अपने में लाने का प्रयास करेगा, अपने पिता, कुल और परम्परा की बात को ध्यान में रखता हुआ। इसलिए सनातन धर्म तो जन्म से बालक को उसका कर्त्तव्य बताता है कि तुम्हें क्या करना है ? कौन राष्ट्र का कर्म तुम्हारे ऊपर है ? तुम्हें राष्ट्र के लिए कौन कर्म करना है ? राष्ट्र सेवा में तुम्हारा क्या योगदान रहेगा ? और स्वामी दयानन्द जी जो व्यवस्था बतलाते हैं उसमें भइया अगर किसी को कुछ पता लगता भी है तो वह चौबीस वर्ष में जाकर लगता है कि उसको क्या करना है ? यह हुई एक बात ! अब दूसरी बात सुनो, हम यह पूछना चाहते हैं अपने इन आर्य समाजी भाइयों से कि—आर्य समाज की स्थापना हुए सौ वर्ष हो गये। अब शताब्दी समारोह चल रहा है।

इन सौ सालों में आर्य समाज में कितने ब्राह्मण बने ? कितने क्षत्रीय बने ? कितने वैश्य बने ? तथा कितने शूद्र बने ? इन सौ सालों में जितने बने हों उनकी लिस्ट जो सज्जन यहां विराजमान हैं उनमें से किसी को कोई सर्टीफिकेट मिला हो कि तू क्षत्रीय है, तू अमुक है अथवा तू क्या है ? आर्य समाज द्वारा दिया गया सर्टीफिकेट कृपा करके हमें दिखायें। अर्थात् हमारा कहने का तात्पर्य यह है कि—एक सौ वर्षों में ऐसी कोई संस्था, ऐसी कोई विद्या सभा, ऐसी कोई राज्य सभा या वह व्यवस्था जो स्वामी जी ने बताई विद्यमान नहीं है, क्यों विद्यमान नहीं हैं ? क्योंकि आजकल के युग में ऐसा होना बहुत कठिन है, व्यवहार में ऐसा हो नहीं सकता। कोई बाप नहीं चाहेगा कि हमारे बेटे से अदल-बदल किया जाए। और फिर सबसे बड़ी बात जो है उसके लिए हम स्वामी जी से ही यह दर्याफ्त करना चाहेंगे कि आपने कल यह सूचित किया था, और हम तो पहले से ही यह जानते हैं कि हमारे पूज्य पिताजी के साथ आपका प्रेम सम्बन्ध है। हम उसी प्रेम सम्बन्ध का निर्वाह करते हुए, आप वयोवृद्ध हैं, आर्य समाज के मूर्धन्य प्रचारक और उपदेशक हैं ये, इसलिए बहुत संयम ओर शान्ति और सौम्य व्यवहार करते हुए ये बात जानना चाहेंगे कि स्वामी जी ने जो ये लिखा कि—"लड़का-लड़की बदल दिये जायें ? और इसके साथ-साथ यह भी प्रतिज्ञा की कि—मैं वेद के अनुसार सब कुछ लिख रहा हूं। तो ये बच्चा-बच्ची बदलने की बात वेद में कहां

लिखी है ?" ऐसे बेटा-बेटी बदल दो, कोई भी मूर्ख बेटा किसी भी मूर्ख बाप को दे दो। और पढ़ा लिखा बेटा किसी पढ़े लिखे बाप को दे दो। ये बात किस वेद में लिखी है ? मैं इसके विपरीत एक ऐसा वेद मन्त्र सुनाता हूं जिस वेद मन्त्र में यह कहा गया है कि भाई वैसे तो जहां तक बने मनुष्य को चाहिये संसार के सब लोगों को, सब प्राणियों को अपना माने, परन्तु ध्यान देना—हम वेद में भगवान से प्रार्थना करते हैं, ये ऋग्वेद का मन्त्र है सप्तम् मण्डल का दसवें सूक्त का सातवां मन्त्र है इसमें आता है—**"परिसदयं अरणस्यरेक: नित्यस्यराय: पतयस्याम: नाशेषो अग्ने: अन्यजातम् मा पतो विधूक्ष: ।** इस मन्त्र में लाईन है ।। **''नित्यस्यराय: पतयस्याम:······"** अर्थात्—हे भगवान हम हमेशा—**"नित्यस्यराय: पतयस्याम:······"** अपनी औरत से अपने द्वारा उत्पन्न सन्तान वाले रहें। हमें अपना पुत्र अपने वीर्य से उत्पन्न हुआ पुत्र प्राप्त हो । हम वेद में प्रार्थना करते हैं और अगला मन्त्र कहता है—**"न अन्यो दरियो मनसा मन्तबाहू······"** अर्थात् दूसरे के उदर से पैदा हुआ बेटा, दूसरे के कोख से पैदा हुआ बेटा (सन्तान) हमारे लिए हितकर नहीं हो सकता। जैसा हमारे लिए हमारा बेटा हितकर हो सकता है, वैसा कैसा दिन हमें न देखना पड़े, ये भगवान से प्रार्थना करते हैं और ये दो मन्त्र, विद्या सभा या राज्य सभा का कोई वेद प्रमाण और अजायत: क्रिया के ऊपर विचार जनीप्रादुर्भावे······टर्न टन टन ऽ ऽ ऽ······

श्री अमर स्वामी जी महाराज—

सुनिये ! मैंने जो बातें कहीं थीं, उस पर तो आचार्य जी ने ध्यान नहीं दिया, अपनी बातें और कह दीं। उनका भी मैं उत्तर दूंगा और मैं उन बातों को भी याद दिला दूं, मैंने कहा था कि विदुर जी महाराज कहते हैं—**"अजात मृत्यु मूर्खानाम्······"** अर्थात् संसार में एक वो मनुष्य हैं जिनके सन्तान हुई नहीं, दूसरे वो हैं जिनके होकर मर गयी, एक वो व्यक्ति हैं जिनकी सन्तान होते हुए भी मूर्ख हो गयी, तो जिनकी सन्तान मूर्ख हो गयी वो सबसे बुरे हैं, उनसे वो अच्छे हैं जिनके सन्तान हुई ही नहीं परन्तु जिनकी सन्तान मूर्ख हो गयी वो तो सारी उम्र उनको दुख देगी। उसका क्या इन्तजाम है ? उसके इन्तजाम के लिए स्वामी जी ने इस व्यवस्था का वर्णन कर दिया। पर एक बात यह है कि—अब वर्ण व्यवस्था के प्रश्न पर खोल करके आचार्य जी एक और प्रश्न पर पहुंचना चाहते हैं कि—**"पुत्रों का परिवर्तन होना चाहिये कि नहीं होना चाहिये"** ? ये इनकी अलग भाषा है, इसका उससे घना सम्बन्ध नहीं है कि पुत्र परिवर्तन करना चाहिये कि नहीं करना चाहिये ? यह करो, वह करो, वह तो होता ही रहता है, संसार में मैंने अभी कहा था कि जो वर्ण शंकर हो जायेंगे, इसमें श्री कृष्ण चन्द्र जी महाराज का वचन है—"वो जो हैं वर्ण शंकर सन्तान माता-पिता की सेवा नहीं करेंगे" तो वो नहीं करेंगे। विधवा रोवेगी कि मेरा बेटा कहां डाल दिया ? वह पड़ा रहेगा या यूं करेगा। उस नालायक से तो उसे त्याग देना ही अच्छा है। एक नालायक हो जाये किसी का बेटा तो उसको त्याग देना ही अच्छा है। बताइये न करो कोई किसी पर जोर थोड़े ही है, पर जो बात कही गई वह मुख्य विषय नहीं है। मुख्य विषय तो वर्ण व्यवस्था है। तो उसी पर चलते रहिये, मूल रोग का इलाज करना और है इसलिए उसे कहिये। आपने कहा कि उसका नाम बदल जायेगा, भई नाम बदल जायेगा, और नाम तो बदलते ही रहते हैं, नाम तो संसार में बहुतेरे बदलते हैं, सुयोधन, दुर्योधन कहलाता रहा, ये बात सच है कि नहीं ? तो नाम बदल जाते हैं बहुतों के, सुयोधन भी कहते रहे उसको, और अब तो उसे सुयोधन कोई नहीं कहता, अब तो उसे सब दुर्योधन ही कहते हैं, और वर्ण भी बदल जाते हैं, ऋषियों का पुत्र, कुलस्त्य ऋषि का पौत्र, विस्वा ऋषि का पुत्र रावण, राक्षस हो गया और आज भी राक्षस ही कहा जाता है। उसे कोई ऋषि पुत्र या ऋषि की सन्तान नहीं कहता बल्कि राक्षस ही कहते हैं। जैसे-जैसे-गुण-कर्म-स्वभाव होंगे वैसे-वैसे हो जायेंगे, वो अठन्नी वाली बात जो है वह आपके अपने ही ग्रन्थों के विरुद्ध है, वह टकसाल से ढली हुई आई थी। मैंने कहा था कि

उससे बात यूं नहीं बनती क्योंकि वह प्रश्न ही नहीं है, वहां पर प्रश्न यह नहीं है कि—ब्राह्मण काहे से उत्पन्न हुआ ? शूद्र काहे से उत्पन्न हुआ ? बल्कि प्रश्न ये है कि—ब्राह्मण उसका कौन है ? मुख उसका कौन है ? उसकी भुजायें कौन है ? उरु उसका कौन है ? उसके पैर कौन हैं ? ये प्रश्न है, वो नहीं हैं कि कौन काहे से उत्पन्न हुआ ? तो इसका उत्तर ऐसा क्यों फिर अठन्नी वाली बात पर देखिये भविष्य पुराण में है कि—**"गो वर्जमध्यम् जगद् यथास्व, निर्धायते च सुविसत्वमत्वात् । मनुष्यजाते नृपयो विशेषो, ये कल्पतरे सर्व नरानुयायी । संस्कार युक्ता इतियादितिष्टाः द्विजवनाम् शूद्रनिवेदहेतु"** ।। कहते हैं जैसे अठन्नी की बात है, चवन्नी, अठन्नी, रुपया ये तो टकसाल से ढले हुए आते हैं, वैसे के वैसे ही रहेंगे उन्हें खरे कहते हैं । परन्तु ब्राह्मण, क्षत्रीय, वैश्य, शूद्र जो हैं इनमें ऐसा भेद नहीं है यहां कहा है—गौवों के बीच में घोड़ा चला जाये तो गौवें तो गौव ही हैं, घोड़ा उनके बीच चला जाये तो घोड़े को ताकेंगे, ये लोग कि ये घोड़ा है । लेकिन सौ ब्राह्मणों में एक शूद्र आये, सौ शूद्रों में एक ब्राह्मण घुस जाये तो झट पहचान लिया जायेगा, यह बात नहीं होगी, यहां गरुड पुराण में कहा है—**"गौ वर्ण मध्यो गतो जगद् यथाऽस्यो निर्धायते ये सुवत्सिवात् मनुष्य जाते नृपयो विशेषो, ये कल्पतरे सर्व नरानुयायी"** सब लोग जानते हैं कि ये भेद मनुष्यों में नहीं है । फिर कैसे जाना जायेगा कि—**"संस्कार युक्तः क्रिया विशिष्टः"** जैसे संस्कार होंगे, क्रिया विशेष होंगी उनसे उसका वर्ण जाना जायेगा उससे साफ पता चल जायेगा कि—ये शूद्र है, या ब्राह्मण है, सौम्य व आकृति से पता नही लगेगा । आकृति कौन है ? यह कुछ पता नहीं लगता । एक प्रकार से उनमें—कहते हैं—**"तस्मान्न भेदोस्ति, न मरे अन्दर आत्मनि । न सुखादो ऐश्वर्यं न जायायंनाभेयद्पि"** ।। कोई भेद नहीं है ब्राह्मण में, वैश्य में, क्षत्रीय में । **"न वीर्ये न चितो आंखे न व्यापारे न जायसि, नान्हे पुष्टे न गौखन्ने, न शैये न विचापले न प्रन्नायायां न वैराग्ये न धर्मे न पराक्रमे"** अर्थात् देव भी इकट्ठे होकर के ये भेद भूलना चाहें कि ये ब्राह्मण हैं या क्षत्रीय, आकृति से तो पता नहीं लगता । इसलिए अठन्नी का दृष्टान्त सर्वथा विषम है, उस दृष्टान्त का यहां कुछ भी सम्बन्ध नहीं है, और ये ब्राह्मण, क्षत्रीय, वैश्य ऐसे टकसाल से बनकर नहीं आते है, उन्हें स्पष्ट नहीं देखा जाता है । मुसलमान हो गये, ईसाई हो गये, इसके लिए सुनिये—महान पण्डित, काशी का विद्वान "नीम चन्द शास्त्री" जन्म से ब्राह्मण होता हुआ भी ईसाई बन गया और उसका पौत्र हमारे साथ शास्त्रार्थ करने को आया महाविद्यालय ज्वालापुर में जिसका नाम **"पादरी जानसन"*** था, जब वह शास्त्रार्थ में हार गया तो आखों में आंसू भर लाया और कहने लगा कि—**"आर्य समाजियो तब तुम कहां थे जब मेरे दादा "श्री नीलकंठ शास्त्री" ईसाई हो गये थे"** ? उस समय अगर आप लोग होते तो वे भी तथा मैं भी ईसाई होने से बच जाते । तो लोग अनुभव करते हैं इस बात को, चला गया वो । तो उसको उन्नति का मार्ग बताने के लिए कि वही उन्नति का मार्ग है, हम लोगों

टिप्पणी—

*सज्जनों पादरी फ्रैंक जानसन के साथ यह शास्त्रार्थ श्री डा० लक्ष्मीदत्त जी आर्य मुसाफिर जी का महाविद्यालय ज्वालापुर में हुआ था, इस शास्त्रार्थ के अन्त में जो वार्तालाप श्री डा० साहब व श्री फ्रैंक जानसन के बीच हुआ उसका मार्मिक वर्णन पूज्य महात्मा अमर स्वामी जी महाराज ने अपने जीवन चरित्र (**निर्णय के तट पर—भाग 1-पृ० 434**) में दिया हैं, परन्तु इस शास्त्रार्थ का विवरण मुझे प्राप्त नहीं हुआ, अतः अगर किसी भी सज्जन के पास यह विवरण हो तो अवश्य भेजें, हम उन्हीं के नाम से प्रकाशित करा देगें । एवं उनका हृदय से आभार भी प्रकट करेंगे ।

"सम्पादक"

को कि जो-जो दण्डनीय है उसे दण्ड दिया जाये जो उत्साह वर्धन के योग्य है उसका उत्साह वर्धन किया जाये, और यह कर दिया जायेगा तो एक व्यक्ति—······बीच में······

श्री पण्डित प्रेमाचार्य जी शास्त्री—

स्वामी जी महाराज ! सवाल तो पैदा ये होता है कि उसे कब पता लगेगा कि वह ब्राह्मण बना कि नहीं ? मूल बात को लेकर चलो, इधर-उधर भागने से या लींपा-पौती करने से काम नहीं चलेगा ।

श्री अमर स्वामी जी महाराज—

प्रथम तो आचार्य जी ने नियम विरुद्ध बात की, बीच में इस प्रकार बोलना नियम विरुद्धता है, तो भी चलो मैं इनकी सब हरकतें सहन करता हुआ उत्तर देता हूं । (प्रेमाचार्य जी द्वारा मुस्कुराना······) बिल्कुल ठीक है प्रिय आचार्य जी ! आपने सही पूछा सो सुनो ! जो व्यक्ति व्याकरण, आचार्य की पढ़ाई पढ़ रहा है और वह पढ़ते-पढ़ते व्याकरणाचार्य हो गया तो क्या वह प्रमाण पत्र मिलने से पहले ही अपने आपको व्याकरणाचार्य लिखना आरम्भ कर दे ? नहीं बल्कि जिन-जिनको काशी विश्वविद्यालय से बताया जायेगा कि तुम परीक्षा में पास हो गए हो उनको उसके बाद अपने नाम के साथ यह लिखने का अधिकार होगा, अगर पहले ही लिखने लग जायेगा तो उस पर मुकदमा चल जाएगा, तो इस वास्ते सच्ची बात यह है कि जब उसे प्रमाणपत्र मिले तभी लिखना चाहिए, पता कब लगेगा कब नहीं लगेगा ? कितना समय है कितना कोर्स है ये तो विश्वविद्यालय से पता चलेगा । परन्तु साफ पता चलता है कि वह व्यक्ति ब्राह्मण बनने का प्रयत्न कर रहा है कि नहीं ? तथा वह क्षत्रीय बनने का यत्न कर रहा है कि नहीं ? वह वैश्य बनने का यत्न करता है कि नहीं यह भी तो देखना आवश्क है ? तो इस वास्ते नाम बदल जाएगा, कुछ और बदल जाएगा । कोई आपत्ति की बात नहीं है, परन्तु आज के शास्त्रार्थ का विषय यह नहीं है, मूल विषय को छोड़ते हुए अन्य कहीं पहुंच जाएं, पुत्रों को बदलना·····न बदलना·····बदलते रहें, होते रहें, विश्वामित्र का पुत्र बदल गया, गोत्र बदल गया, कई बदल जाते हैं इस प्रकार से तो कोई बात नहीं है ऐसा भी होता रहा है, बात तो केवल यह है कि—जो गुणहीन है उसको गुणवानों में रहने दिया जाए कि न रहने दिया जाए ? जो गुणवान है उसे गुणहीनों के साथ गिना जाए कि न गिना जाये ?

मैं तो कहता हूं कि—गुणवान को गुणवानों में गिना जाए और गुणहीन को गुणहीनों में गिना जाए । यही नियम की बात है तथा ठीक भी है। शास्त्रों का सिद्धांत भी यही है जो बुद्धि सम्मत है। जो गुणहीन है उसे गुणहीनों में रखा जाए और जो गुणवान है उसे गुणवानों में गिना जाए, परन्तु आपका यह कहना कि जो ब्राह्मण से पैदा हुआ उसे ब्राह्मण ही रहने दिया जावे, जो क्षत्रीय से पैदा हुआ उसे क्षत्रीय ही रहने दिया जावे, चाहे उसके कर्म कैसे भी हों । अगर ऐसा होगा तो अनर्थ हो जाएगा और जो उन्नति करने वाले हैं वह कहेंगे कि—हम तो इतने परिश्रम करके विद्या प्राप्त करके ब्राह्मण हुए और यह बिना परिश्रम व विद्या के ब्राह्मण बना हुआ है इससे हमारे परिश्रम व विद्या प्राप्त करने का हमें क्या लाभ मिला ? और इसके न करने का क्या फल हुआ ? इनको कुछ भी न करने पर सब कुछ मिला, हमें सब कुछ करने पर भी कुछ नहीं मिला । तब वह उन्नति करने से रुक जाएगा ओर जिसे विना कुछ किए मिला हुआ है वह तो उन्नति से रुका हुआ है ही । इसलिए न्यायानुकूल यही बात है कि जो जैसा है उसको वैसा ही कहा जाए । जो उन्नतिशील है उसे उन्नतिशील ही कहा जाए, जो अवनति करता है उसको अवनतिशील कहा जाए । जो ब्राह्मण होते हुए भी अपने गुण, कर्म, स्वभाव से ब्राह्मण नहीं रहा बल्कि क्षत्रीय, वैश्य या शूद्र हो गया तो जो कुछ वह हो गया उसे वही कहा जाना चाहिए ।

अत: बात साफ हुई कि जिस व्यक्ति के जैसे-जैसे कर्म, गुण और स्वभाव हैं उसको वैसा-वैसा ही कहा जाए। वह ब्राह्मण नहीं है तो उसे जैसे उसके गुण, कर्म, स्वभाव हैं वही उसको मानना और जानना चाहिए, उसको देखना चाहिए कि—

यस्य यल्लक्षणं, प्रोक्तं पुंसो वर्णाभिव्यंजकः।
यदन्यात्रापि दृश्येत् तन्तेनैवविनिर्दिशेत् ॥३५॥

(श्रीमद्भागवत पुराण, स्कन्द ७ अध्याय, ११ श्लोक, ३५)

अर्थात् श्रीमद्भागवत् में कहा है कि—जिसमें जो लक्षण दिखलाई देवें उसे उसी प्रकार का मान मिलना चाहिए और उसी प्रकार का उसको कहना चाहिए यदि ऐसा नहीं कहा जाएगा तो अनर्थ हो जाएगा इस वास्ते मैंने यह बात कही है आपके सामने कि मनुष्य को देखना चाहिए कि उसमें गुण, कर्म, स्वभाव कैसे हैं तथा कैसे नहीं हैं ? आचार्य देखें, और विद्वान लोग देखें, आप देखें, सब लोग देखें, समाज देखें। एक प्रश्न आपने और किया था कि—आर्य समाज में ऐसे कितने आदमी हैं जिनको ब्राह्मण वर्ण दे दिया गया, परन्तु आचार्य जी को पता होना चाहिए कि हमारे यहाँ एक दो नहीं अनेकों हैं जो ब्राह्मणों में पैदा नहीं हुए परन्तु उनकी विद्वता के कारण आर्य समाज ने उनको ब्राह्मण वर्ण प्रदान किया, अगर मैं उनके नाम गिनाने लगूं तो एक लम्बी सूची तैयार हो जावेगी, श्री पं० भगवद्दत्त जी जैसे और बहुत से हुए तथा अब भी हैं, मैं सैकड़ों के नाम बता सकता हूं। मुझे याद है उनके नाम, तो वो ब्राह्मण बन गए और सब लोगों ने मान लिया उनको कि वो ब्राह्मण बन गए इस वास्ते हमारे यहाँ............टर्न टन टन SSSS.........

श्री आचार्य प्रेमाचार्य जी शास्त्री—

भाईयों ! बात वहीं की वहीं है, हाँ स्वामी जी ने कहा तो बहुत परन्तु आगे एक क़दम भी नहीं चले, सुनो क्यों नहीं चले ? हमने पहली बार कहा था कि स्वामी दयानन्द जी लिखते हैं कि चारों वर्ण ईश्वर कृत हैं। इस बात का कोई जबाब मिला ? आखिर तक नहीं मिलेगा, इस बात को फिर याद दिला रहा हूं। हमने गीता का प्रमाण दिया था जिसे स्वामी जी ने नहीं माना और कह दिया कि हम नहीं मानते परमेश्वर कृत ! तथा कह दिया कि हम श्री कृष्ण जी महाराज में भी सन्देह करते है कि वे परमेश्वर हैं या नहीं। इसलिए गीता को नहीं मानते और स्वयं हमें अब गीता का प्रमाण सुना रहे थे कि—

"पतन्ति पितरोयेशाम् लुप्त पिण्डोदक क्रिया......" हम पूछते हैं कि जिस गीता को आप मानते ही नहीं महाराज तो फिर उसका प्रमाण आप क्यों देते हैं ? मैंने पूछा वेद का प्रमाण बताओ, लड़का लड़की बदलने में वेद का प्रमाण बतलाओ, ये बांचने लगे भविष्य पुराण ! बात वेद की हो रही है कि पुराणों की ? आपको पुराणों पर कुछ कहना सुनना हो तो सिर्फ पुराणों पर ही शास्त्रार्थ रख लो, यह हम पहले भी कई बार कह चुके हैं। उसमें सिर्फ पुराणों पर ही बातें होंगी। परन्तु आज यहाँ तो केवल वेद की बात है। और वही होनी चाहिए। कहते हैं सन्तान बदलना विषयान्तर है साहब, अरे हम कहते हैं यह कहना विषयान्तर बिल्कुल नहीं है, सन्तान बदलने का प्रकरण विषय के अन्दर है, न कि बाहर ! स्वामी दयानन्द जी महाराज ने जो वर्ण व्यवस्था, गुण कर्मानुसार लिखी है उसे अमल में कैसे लाया जावे ? अर्थात् उस स्वामी जी की व्यवस्था को अमलीजामा कैसे पहनाया जावे ? भाइयों स्वामी जी महाराज कहते हैं कि दो सभा बनाओ। एक तो विद्यासभा बनाओ जो सर्टिफिकेट बांटे, तथा एक

राजसभा बनाओ जो विद्यासभा द्वारा दिए गए सर्टिफिकेट के अनुसार इन बच्चा बच्चियों को बदलने के काम को करे।

दो सभा बनाओ, स्वामी जी महाराज कह रहे हैं कि बहुत ब्राह्मण बन गए, सैकड़ों की तादाद में हैं अगर नाम गिनाऊं तो देर हो जाए। अरे साहब! पहले ये तो बताओ कि वे विद्या सभा और राजसभा कहां हैं तुम्हारी? वो संस्था कहां है? और फिर ये बताओ कि जो ब्राह्मण बना उसे अपने अनपढ़ बाप से छीनकर किस पढ़े-लिखे बाप को दिया गया? और कौन से गुरुकुल से पढ़कर शूद्र से प्राप्त आदमी किन अनपढ़ या पढ़े-लिखों के माथे थोपे गए? ये अदला-बदली जो हुई जिसके द्वारा हुई वो विद्या सभा-राज सभा नाम की संस्था कोई है भी? अगर है तो बताएं उसके द्वारा ऐसे ब्राह्मणों को कितने सर्टिफिकेट बांटे गए? आर्य समाजी सज्जनों को चाहिए कि आर्य समाज शताब्दी समारोह में इन सर्टिफिकेटों की लिस्ट कि—कितने ब्राह्मण बनें? अवश्य प्रकाशित करावें और अगर भैय्या यहां कोई आर्य समाजी ऐसा कोई सर्टिफिकेट प्रमाण पत्र लिए बैठा हो तो हम उसे जरूर देखना चाहेंगे। कहते हैं साहब कि नाम बदल गया, नाम तो बदल जाता है। सुयोधन का दुर्योधन हो गया, अरे! स्वामी जी महाराज उसका नाम था ही दुर्योधन, वो तो क्योंकि धर्मराज युधिष्ठिर अपने मुंह से बुरा शब्द भी कहने के आदि नहीं थे इसलिए दुर्योधन को सुयोधन कह देते थे। और वह बात जो नाम बदलने की है, जिसके बारे में आप कहते हैं कि नाम बदल जाए कोई बात नहीं फिर बदल जाएगा, पहले ब्राह्मण का नाम रख लो अगर वह नहीं पढ़ता-लिखता तो फिर उसका नाम कुछ और रख लो। धन्य हो महाराज! आपको पता होना चाहिए कि नाम बदलना इतना सहज काम नहीं है, वो भी आज के जमाने में। अरे महाराज आजकल इसके लिए बड़े पापड़ बेलने पड़ते हैं, अखबार में निकलवाओ, मजिस्ट्रेट का सर्टिफिकेट लो, तब कहीं जाकर बड़ी मुश्किल से नाम बदल पाता है। और अगर कहीं किसी आदमी का······ध्यान देना सज्जनों······गुण, कर्म के अनुसार नाम बदलने लगेगा तो एक दिन में दसियों नाम धारण करने पड़ेंगे। हमारी माताएं घर में सब तरह के काम करती हैं, आप लोग जानते भी हैं। माताएं छोटे बालक का पाखाना भी उठाती हैं, सफाई करती हैं, भोजन भी बनाती हैं, कपड़े भी धोती हैं, वक्त मिलने पर रामायण भी पढ़ती हैं, तो भइया इन आर्य समाजियों के अनुसार तो जब वह रामायण पढ़े-कीर्तन करे तब वो ब्राह्मणी हुई, जब रोटी बनावें तो पाचिका, और जब कपड़े धोवे तो धोबिन, तो भइया उसके तो हम दिन भर क्या नाम ही बदलते रहेंगे? यदि कर्मानुसार नाम बदलोगे तो ये करना ही होगा, जो सम्भव ही नहीं है। तथा गुण-कर्म का तात्पर्य यह है ही नहीं जो लोग बखानते हैं। अच्छा एक बात स्वामी जी ने और कही कि बनारस के पण्डित नीलकंठ बन गए पण्डित से ईसाई, हां! ईसाई बन गए? क्योंजी हम पूछते हैं कि क्या ईसाई बन जाना भी कोई जाति बदलना है? क्या ईसाई भी कोई जाति है? ईसाई भी कोई क्या चार वर्णों में वर्ण है? दुनियां में कितने ही ईसाई बन गए आप किस-किस का ठेका लोगे?

हम पूछते हैं क्या आपने स्वयं देखा नीलकंठ जी महाराज को ईसाई होते हुए? पर स्वयं आर्य समाज के प्राण, स्वामी श्रद्धानन्द जी के सुपुत्र ईसाई बन गए थे, और वहां जाकर विवाह भी कर लिया था। आपने इतनी दूर नजर डाली, पहले अपने घर में तो देख लेते। इसलिए स्वामी जी महाराज! इस बात को तो जाने दो कि कौन ईसाई बन गया, और कौन नहीं बन गया, दुनियां में कितने ही ईसाई बनते हैं, जो बना है वह चूल्हे में जाओ। सवाल तो यहां ये है कि—कौन क्या बन गया यह नहीं है बल्कि मैं फिर याद दिला रहा हूं कि मैंने दो वेद मन्त्र प्रस्तुत किए थे जिनमें से आपने दूसरे मन्त्र पर तो ध्यान ही नहीं दिया है, आप बार-बार हितोपदेश का मन्त्र सुनाते हैं कि जिसको बेटा पैदा ही नहीं हुआ उसकी बजाये जिसका बेटा मूर्ख रह गया उससे वह ज्यादा अच्छा—"अजातमत् मूर्खेभ्यो मृताजातो सुतुवरं यतस्तौ स्वल्पा दुखाय यावद्जीवं जड़ोदहेत्" यहां पर लिखा है कि—"जावद् जीवं

जड़ोवहेत्" इसी श्लोक पर सुनो—जिसका बेटा मूर्ख रह गया वो मूर्ख बेटा बाप को जीवन भर जलाता है, बाप उसके मारे परेशान रहता है। यहां पर यह तो नहीं लिखा कि—उस मूर्ख बेटे को किसी मूर्ख के पास दे आओ, और वहां से कोई पढ़ा लिखा बेटा ले आओ। हम तो कहते हैं कि जो रद्दो बदली की बात है इसमें क्या कारण है? क्यों इसमें रद्दो-बदल किया जावे? ये इस बात को विषयान्तर कहते हैं, अरे साहब! ये विषयान्तर नहीं है। मैं फिर कहता हूं यह इस विषय से सम्बन्धित है, बल्कि स्वामी दयानन्द जी ने जो व्यवस्था लिखी है उस व्यवस्था को अमल में कैसे लाया जावे? इसका उपाय स्वयं स्वामी जी द्वारा बताया गया है, पर हमें तो पूछना केवल यह है कि यह व्यवस्था स्वामी जी ने प्रारम्भ में वेदोक्त होने के कारण कथन का ही यह वेदोक्त है इस व्यवस्था को वेदोक्त इसलिए लिख रहा हूं कि ये लोग सिर्फ वेद या वेदोक्त नाम के आधार को ही मानते हैं। मैंने एक मन्त्र सुनाया था कि—हे भगवान हम अपनी ही सन्तान के, औरत व पुत्र वाले हों, हमें अपना ही बेटा शुभकारी हो, "नित्य स्तरा-यततयस्याम: वितयस्यराय: ततय: ·····" अर्थात् अपनी औरत व सन्तान के स्वामी हम जीवन भर रहें। ये वेद में प्रार्थना लिखी है, इसके विपरीत यह अदला-बदली वाली बात किस वेद मन्त्र के अनुसार है? इस बात पर स्वामी जी ने ध्यान नहीं दिया। और कहते हैं रावण, ······हा! रावण की बात सुनाई।

रावण जो महाराजा, कुलस्त का अमुख बेटा-पोता राक्षस हो गया, अब इतनी दूर नजर गई स्वामी जी की रावण पर! हम पूछते हैं क्या रावण को आपने देखा है? ऐसे दसियों उदाहरण हैं, गुरू द्रोणाचार्य जी महाराज, महाभारत के संग्राम में वीरता पूर्वक लड़ने वाले कौरवों और पाण्डवों को धनुर्विद्या की शिक्षा देने वाले और वे कहा करते थे—"अग्रतस्तोवेदा व्रक्षतर: शतरं धनु: इदम् ब्राह्मणम् इदम शस्त्रम् क्षापादति शरादति···" जो दोनों तरह लड़ने भिड़ने को शास्त्र-शस्त्र की बात करने वाले थे, वो द्रोणाचार्य जी महाराज धनुष चलाते हुए लड़ते रहे जीवन भर, ! तो भी क्षत्रिय नहीं कहलाए बल्कि ब्राह्मण ही कहलाते रहे, परशुराम जी महाराज ने जीवन भर फरसा चलाया, कुछ क्षत्रियों का संहार भी किया, तो भी उनको क्षत्रिय नहीं कहा गया, राजा जनक वेदान्त के विद्वान "विदेहराज" कहे जाने वाले ज्ञानोपदेश करने वाले तो भी वे राजा ही कहलाए, क्षत्रिय ही रहे, ब्राह्मण नहीं बनें। इसलिए ऐसे तो दर्जनों प्रमाण हमारे पास हैं जिनसे हमारे पक्ष की सिद्धि हो रही है। हम भी तो यही कह रहे हैं कि काम तो कुछ भी करो जीवन में अगर योग्यता नहीं पाई कुछ कमी-बेसी रह गई तो भी कुछ न कुछ काम करके गुजारा तो करोगे ही, पेट तो भरोगे ही या नहीं? अगर पूरी तरह चारों बातें आप में हैं तब तो पूरे सर्वांग सम्पन्न! अगर किसी अंश में कमी रह गयी तो काम कुछ भी किया जा सकता है। काम के अनुसार जाति नहीं बदल सकती, जन्म के अनुसार जिनका जन्म माता-पिता से हो गया वह तो जीवन भर के लिए उसके साथ जुड़ गया, जीवन भर के लिए जुड़ गया उसके साथ। और इन्होंने हमारी आकृति वाली बात कही कि—कहते हैं साहब! कि गौवों में घोड़ा पहचान लिया जावेगा। गौवों में घोड़ा घुस जावे तो घोड़ा पहचान लिया जावेगा, ऐसे ही ब्राह्मणों में कोई मूर्ख ब्राह्मण बैठा होगा तो क्या वह पहचाना नहीं जाएगा? जरूर पहचाना जावेगा, अन्यथा वह विद्वान क्या हुए जो मूर्ख को न पहचान······टर्न टन टन टन SSS······

श्री अमर स्वामी जी महाराज—

भाईयों! ये तो शास्त्रार्थ सभा में कुछ रोग होता है कि विपक्षी हमेशा यह समझते हैं कि—हम बार-बार यह कहते रहेंगे कि मेरी बातों को छुआ भी नहीं, तथा मेरी बातों का उत्तर नहीं दिया, मेरी बातों पर तो ध्यान ही नहीं दिया, एक झूठ को बार-बार कहते रहने से कुछ तो प्रभाव पड़ेगा ही, मैं समझता हूं आप जैसे विद्वानों को यह अभ्यास छोड़ देना चाहिये, कि बार-बार आरम्भ में इस बात को कह देना कि मेरी बात को तो छुआ ही नहीं, मेरी

बात पर तो ध्यान ही नहीं दिया, आदि-आदि, यह अभ्यास व्यर्थ का अभ्यास है, इससे कोई लाभ नहीं, हां कुछ लाभ हो सकता है तो केवल अनभिज्ञों को ! इसलिए ऐसा नहीं, आप ध्यान दो इन बातों पर, मैं तो कहता ही नहीं कि मेरी बातों पर ध्यान ही नहीं दिया, जैसा उत्तर आप देते हैं, दे रहे हैं, मैं भी दे रहा हूं, तो बार-बार इस बात को कहना उचित नहीं है। चलो, आपका अभ्यास बना हुआ है तब तो आप हर बार कहेंगे ही······मुझे इससे कोई फर्क नहीं पड़ता श्रोता गण सब देख व सुन ही रहे हैं। आपने पूछा कौन सी धर्म सभा है ? कौन सी राज्य सभा है ? कौन सी फलानी सभा है ? मैंने कहा था कि एक दो नहीं हमारे यहां अनेकों हैं जो जन्म से ब्राह्मण नहीं हैं— परन्तु वो ब्राह्मण कहलाते हैं, और वे ब्राह्मण हैं, पण्डित हैं, विद्वान हैं, इस समय, भाइयों ! एक दो नहीं हैं सैंकड़ों हैं, आपने कहा कि नाम बदल गये, परन्तु नाम तो बदलते ही नहीं। मैं कहता हूं नाम बदलते हैं और बहुतों के बदल गये। हमारे पण्डित चरणदास जी थे, जो वाचस्पति शास्त्री जी बन गये, अन्य भी अनेकों उदाहरण मौजूद हैं, जो क्षत्रीय कहलाने वालों में से थे, परन्तु अपने गुण, कर्म, स्वभाव से ब्राह्मण बन गये, सारा विद्वान मण्डल उन्हें ब्राह्मण मानता है। यहां मंच पर भी बैठे हुए हैं जो जन्मना ब्राह्मण नहीं हैं, परन्तु महान विद्वान है, संस्कृतज्ञ हैं, व्याकरण के आचार्य हैं, शास्त्री हैं, सारा आर्य समाज इन्हें ब्राह्मण मानता है, मैंने एक बात कही थी, नील कण्ठ शास्त्री की बात ? परन्तु आचार्य जी ने समझा कि मैंने नील कण्ठ शास्त्री का नाम इसलिये लिया कि सनातन धर्म का अपमान हो। वो तो हमारे थे, आपके और हमारे दोनों के साथ ही थे। इस वास्ते मैंने नाम लिया, मैंने सनातन धर्मियों का अपमान करने के लिए उनका नाम नहीं लिया।

आपने बदला लेने के लिए यह बात कह दी, बदला लेने के लिए कहा, बदला लेने के लिए झूठी बात कह दी। तथा कह दिया कि क्या नील कण्ठ शास्त्री को देखा था आपने ? भाई नील कण्ठ शास्त्री को तो नहीं देखा हां उनके पौत्र फ्रैंक जानसन को अवश्य देखा था। फिर कह दिया कि, रावण को क्या आपने देखा है ? भाई रावण को तो मैंने नहीं देखा आचार्य जी ने देखा होगा······जनता में हंसी······मैं कहता हूं मैंने नहीं देखा, मैंने कब दावा किया है कि मैंने रावण देखा था, मैं कहने लगूं कि आपने गुरु द्रौणाचार्य जी अवश्य देखे होंगे, क्या यह कोई तुक की बात है ? बेमतलब समय नष्ट करने वाली बातें हैं, इन बातों के कहने का क्या लाभ ? अरे भाई ! देखा है या नहीं देखा ? हां ! ग्रन्थों में ऐसा विद्यमान है, इसलिए कह रहे हैं। इसी वास्ते आपने एक झूठी बात कह दी कि स्वामी श्रद्धानन्द जी के पुत्र हरिशचन्द्र जी ईसाई हो गये थे। बिल्कुल झूठ ! सोलह आना झूठ !! इसका कोई भी प्रमाण नहीं है और कोई भी नहीं बता सकता कि हरिशचन्द्र जी ईसाई हो गये थे। क्योंकि वे हुए ही नहीं, आपने व्यर्थ में यह झूठी बात कही है, तो ये तो हुआ कि आपने झण्डा लेकर सनातन धर्म का अपमान किया है, इसलिए आर्य समाज का अपमान न करें, जो भी ईसाइयों या मुसलमानों में जाता है, वह है तो बुरा ही, वह हम दोनों से तो गया ही हैं, तो हम दोनों एक हैं।

इसलिए मैंने सनातन धर्म को बदनाम करने के लिए वह नील कण्ठ वाली बात नहीं कही थी, आपने कहा कि धर्म राज्य सभा कौन सी है ? आचार्य जी ! जब हमारा राज्य ही नहीं, तो राज्य सभा कहां से होंगी ? न हमारी है न तुम्हारी, हां ! धर्म आदि सभा हैं। हमारी जो शक्ति है उसकी सभा हैं, जो हमारी शक्ति नहीं हैं तो उनकी सभाएं भी नहीं हैं। बाकी मैं बार-बार यह कहता हूं यह मुख्य विषय नहीं है कि बेटे को बदला जाये या न बदला जाये, बदला जाये तो किसी मतलब का नहीं। पर जो मैंने बात कही, आपने उसे हितोपदेश की कह दिया, चलो हितोपदेश ही सही, वैसे मैंने विदुर जी का वचन कहा था, महाभारत का मैंने श्लोक बोला सभा पर्व का कि— "अजात् मृत्यु मूर्खानां बरमाद्यो न चान्तिमः······" अर्थात् संसार में एक वो मनुष्य है जिनकी सन्तान हुई ही नहीं, दूसरे वह हैं जिनके सन्तान हुई और मर गई, तीसरे वह हैं जिनके सन्तान हुई भी, मरी भी नहीं परन्तु मूर्ख हो गयी।

विदुर जी कहते हैं कि इनमें पहिले वाले दो अच्छे हैं, तीसरा नहीं। आपने इस विदुर जी महाराज के वचन को हितोपदेश कहा, तो हितोपदेश ही सही, आपने कहा कि गीता का प्रमाण क्यों दिया ? जबकि आप गीता को तो प्रमाण रूप में मानते ही नहीं। मैं कहता हूं आचार्य जी आपने शास्त्रार्थ किये हैं और मैंने भी बहुत किये हैं, शास्त्रार्थ करने वाले सब जानते हैं कि, जो पक्ष जिन ग्रन्थों को प्रामाणिक मानता है उस पक्ष के लिए उन ग्रन्थों के प्रमाण दिये जा सकते हैं, वह अनुचित नहीं हैं, तो मैं मानूं चाहे न मानूं पर आप तो मानते हैं इसलिए मैं आपके लिए तो उन प्रमाणों को दूंगा ही। उसमें आपको क्या आपत्ति है ? आप यह कह दें कि हम भी उसे नहीं मानते तो मैं उसके प्रमाण आपके लिए नहीं दूंगा।

इसी प्रकार के और भी प्रमाण में हर्गिज नहीं दूंगा बशर्ते कि आप उन ग्रन्थों को मानने से मना कर दें। परन्तु ये श्री कृष्ण जी महाराज ने कि—जो सन्तान अच्छी नहीं रहेगी उसके माता-पिता को क्लेश होगा। उसको दुख हो इसलिए कोई प्रबन्ध उसका होना ही चाहिये। हमारी राजसभा आदि नहीं हैं। हमारा राज्य प्रबन्ध ऐसा नहीं है जो यह सम्भव हो सके। आचार्यों को यह करना चाहिये कि ऐसा हो सके अन्यथा बेटे अपने मां-बापों को सताते रहेंगे, इससे क्लेशित बहुत लोग हैं, इनका कोई भी प्रबन्ध नहीं है, राज्य का प्रबन्ध ऐसा हो तो इनका भी प्रबन्ध हो सकता है, रही जाति की बात ? ये ठीक है कि ईसाई या मुसलमान कोई जातियां नहीं हैं, बल्कि यहां जाति-वाति का कोई प्रश्न नहीं है, वह ब्राह्मण नहीं रहा, ब्राह्मणत्व से हीन हो गया तो वह उधर चला गया, और इसी प्रकार से और भी चले गये, जिनके वर्ण बदलते रहे, और अनेक बार बदले। रही रावण के देखने की बात ? सो मैंने तो नहीं देखा, क्या आपने देखा है ? सुन लीजिये मैं कहता हूं कि मैंने देखा रावण ? रावण का वर्ण बदला कि नहीं बदला ? रावण ऋषियों का पुत्र था, कहते हैं, मैंने देखा कि नहीं देखा और परमात्मा करे कभी मैं रावण को न देखूं, मैं काहे को देखूं रावण ? इस वास्ते मैंने तो आपके सामने यह निवेदन किया है कि उसका वर्ण बदल गया, वेद में गुण, कर्म, स्वभावानुसार ही वर्ण कहा है, जन्म से कहीं नही कहा, मुख के समान ब्राह्मण, भुजाओं के समान क्षत्रीय कहने से गुण-कर्म ही तो स्पष्ट कहे हैं, मुख के समान गुण, कर्म, स्वभाव ब्राह्मण के हों,—"**अध्यापन अध्ययनं यजनं याजन तथा······(मनुस्मृति)**" पढ़ना-पढ़ाना आदि मुख से ही होता है, रक्षा भुजाओं से ही होती है, इसलिए भुजाओं के समान क्षत्रीय, यही भागवत में कहा है देखो—"**यस्य यल्लक्षणं प्रोक्तं, पुंसो वर्णाभि व्यंजकम्। यदन्यत्रापि दृश्यतेत्तेनैव विनिर्दिशेत्**"॥ अर्थात् जिस वर्ण का जो लक्षण बताया गया है, वह लक्षण जिस मनुष्य में दिखाई दें उस मनुष्य को उसी लक्षण वाले वर्ण का मानना चाहिये। महाभारत में भी कहा है—ब्रह्म से सब मनुष्य उत्पन्न होने से ब्राह्मण कहलाते, पर कर्मों से भिन्न-भिन्न वर्णों के हो गये। यदि वर्ण बदल जायेगा तो फिर नाम बदलने में क्या आपत्ति है ? बहुत से लोग हैं जिन्होंने अपने नाम अपनी इच्छा से बदल दिये। जैसे-चमनलाल से विश्वबन्धु, शिवचरण से वाचस्पति, चम्पत राय से चमूपति और चरणदास से—चारुदेव, माधोदास से माधवाचार्य, सैकड़ों नाम बदलते देखे हैं, और हां ! हीरालाल से अब्दुल्ला भी······चारों तरफ तालियां ही तालियां······ शान्त ! शान्त !! और बताइयें आचार्य जी कितने नाम गिनाऊँ ? यहीं पर (स्टेज पर बैठे श्री पं० अभिविनय जी भारती, श्री पं० भगवत शरण जी शास्त्री, श्री पं० रमेश चन्द्र जी शास्त्री व्याकरणाचार्य, आदि की ओर हाथ करते हुए) दर्शनाचार्य, व्याकरणाचार्य, शास्त्री विद्वान् बैठे हैं जो अन्य नाम वाले वर्णों में उत्पन्न हुए परन्तु आज सर्व सम्मत ब्राह्मण हैं। तो मैं नाम बदलने की बात कह रहा था, भाई नाम बदलने से क्या आदमी मर जाता है ? क्या प्रलय आ जाती है ? नाम खूब बदलते हैं, और बदलते रहते हैं। तो इसलिए महाराज आचार्य जी इस बात पर अड़ने की कोई आवश्यकता नहीं है। शास्त्रार्थ जिस विषय पर चल रहा है, वह विषय अलग है, और मैं कह रहा था कि—यह आपने नहीं बताया कि शूद्र को दस्यू भी कहते हैं, यदि ऐसा कहीं स्वामी दयानन्दजी महाराज ने लिखा हो तो बता देने की कृपा करें।

आपने कहा था कि ब्राह्मण शूद्र नहीं हो जाता, बल्कि शूद्र जैसा लगने लगता है, ये मात्र आपकी कल्पना है, जो बिलकुल निराधार है, शास्त्र वचन का यह भाव नहीं है—देखिये मनुस्मृति में है कि—"त्र्यहेण शूद्रो भवति ब्राह्मणः क्षीर विक्रियात्······" "ब्राह्मण" तीन दिन तक दूध बेचने से "शूद्र" बन जाता है। ऋग्वेद के दशवें मण्डल में कहा है—"**इमे ये नार्वाङ्गपरश्चरन्ति, न ब्राह्मणासो न सुतेकरासः······**" अर्थात् जो लोग इस लोक और परलोक सम्बन्धी ब्राह्मणों के कर्मों को नहीं करते वह ब्राह्मण नहीं होते या रहते। और भी बहुत से प्रमाण व उदाहरण हैं, अब रही बात कि कौन किससे पैदा हुआ? यह कथन गलत है, बलिक वेद में जहां यह मन्त्र है वहां वह प्रसंग नहीं है कि "कौन कहां से उत्पन्न हुआ?" इससे पहले मन्त्र में चार प्रश्न हैं, इस मन्त्र में चारों के उत्तर हैं, पूर्व मन्त्र इस प्रकार है सुनिये—"**यत्पुरुषं व्यदधु कतिधा व्यकल्पयन्। मुखं किमस्यासीत् किं बाहु, किमुरु पादाऽ-उच्येते**" (यजुर्वेद ३१-१०) उस परमात्मा की सृष्टि को एक पुरुष रूप कल्पना की जाये तो उसका क्या था, उसकी भुजा क्या थी, उसका ऊरु भाग क्या, तथा उसके पैर क्या कहे जाते हैं? इसका उत्तर वहीं दूसरे मन्त्र में हैं कि—उसका मुख ब्राह्मण था, उसकी भुजा क्षत्रीय थी, उसका उरु वैश्य और उसके पैर शूद्र हैं, यह प्रश्न ही नहीं है कि कौन किससे उत्पन्न हुआ? संसार का नियम है कि जो जिससे उत्पन्न होता है तो आकृति में भी लगभग उसके समान ही होता है, ब्राह्मण यदि मुख से उत्पन्न हुए तो गोल-मटोल आकृति में होते, पर ऐसा प्रत्यक्ष में नहीं है, आपका अर्थ प्रत्यक्ष के विरुद्ध तथा बुद्धि के भी विरुद्ध है, बल्कि अर्थ यही ठीक है कि—"भगवान की सृष्टि में ब्राह्मण, गुण, कर्म, स्वभाव से मुख के समान है, क्षत्रीय गुण, कर्म स्वभाव से भुजाओं के समान हैं," आदि-आदि। अलग-अलग अंगों से अलग-अलग कोई पैदा होता हो, ऐसा नहीं है, हमारे यहां तो सब एक हैं, सनातन धर्मी-आर्य समाजी सभी एक······टर्न टन टन······।

श्री पण्डित प्रेमाचार्य जी शास्त्री—

सज्जनों! स्वामी जी कहते हैं कि हम बार-बार झूठ दोहरा रहे हैं, और स्वामी जी महाराज कहते हैं कि हम यह आदत छोड़ दें कि—हमारे प्रमाणों पर विचार नहीं किया। पर अब तो आपने सुन लिया कि इन्होंने हमारे प्रमाणों पर कितना विचार किया है? स्वामी दयानन्द जी महाराज चारों वर्णों को ईश्वर कृत मानते हैं या नहीं? इस बात का क्या जवाब मिला? अब तक सन्तोष से बैठा हूं परन्तु कोई जवाब नहीं। स्वामी जी लिखते हैं कि चारों वर्ण ईश्वर कृत हैं। और ये कहते हैं कि राज्य सभा बदल दे। और राज्य सभा उन्हें बदल कर किसी को ब्राह्मण किसी को कुछ, किसी को कुछ बनावें। यह ईश्वर के बनाये मामले में भंग हुआ कि नहीं? एक बात हमने यह पूछी और दूसरी बात हमने यह कही थी कि कर्मानुसार जाति मानी जाये इसके लिए कोई वेद मन्त्र पेश करो। वेद का मन्त्र देना होगा, जहां तहां के प्रमाण नहीं चलेंगे, और कहते हैं साहब कि गीता को हम मानते हैं इसलिए गीता का प्रमाण दिया, तुम नहीं मानते, हम मानते हैं चूंकि इसलिए प्रमाण दिया। अच्छा तो यह होता कि उस ग्रन्थ का प्रमाण दिया जाये जो उभय पक्ष को भी मान्य हो, तब कोई झगड़े की बात ही नहीं। वरना इसको माने, वा किसको मानें इसी झगड़े में पड़े रहेंगे।

हमने इसीलिए पिछले दो दिनों के शास्त्रार्थों में वेद मन्त्र ही सुनाये थे। केवल वेद मन्त्र, और उन वेद मन्त्रों पर जो अर्थ किये गये थे, उन विद्वानों के नहीं जिन्हें हम मानते हैं, अर्थात् अपने विद्वानों के नहीं बल्कि आर्य समाज के मान्य विद्वानों के किये अर्थ ही सुनाये थे। पर आप उन्हें भी कह देते हैं कि साहब हम नहीं मानते अपने आर्य समाजी विद्वानों का अर्थ, हम तो वेद मन्त्र पेश कर रहे हैं, कि दूसरे की सन्तान, भगवान कभी हमें ऐसा मौका न देवे कि हम अपने औरस वीर्य की सन्तान के स्वामी बनें, ये हम स्वयं भगवान से प्रार्थना करते हैं, इसका

मैंने मन्त्र पेश किया था। स्वामी जी से प्रार्थना है कि—कर्म से वर्ण व्यवस्था होती है इसके लिए कोई वेद मन्त्र पेश करें। पहली बात ! अच्छा गीता को ही केवल आप प्रमाण नहीं मानते, हम तो हनुमान चालीसा से लेकर वेद तक सब बातों को प्रमाण मानते हैं, गीता तो बहुत ग्रन्थों का सार है वह तो मान्य है ही। परन्तु आप चूंकि वेद को ही प्रमाण मानते हैं, आप गीता को नहीं मानते, इसलिए आप हमें प्रमाण भी वेद का ही दीजिये, चूंकि वेद हमारा आपका दोनों का मान्य ग्रन्थ हैं, आपने कहा—"......पतन्ति पितरो ह्येषां, लुप्त पिण्डोदक क्रियाः।।" ये गीता का प्रमाण दिया, कल तो कह रहे थे कि—पितर माने जिन्दा का नाम और अब इस प्रमाण से श्राद्ध सिद्ध कर रहे हैं, ये जिवित श्राद्ध का प्रमाण है कि मृतक का ? उनके पितरों का पतन हो जाता है जिनको पिण्ड-तर्पण आदि नहीं मिलता, तो वर्ण संकरो के द्वारा, इसलिए ऐसा प्रमाण उपस्थित कीजिये हम पितर कह रहे हैं कि वेद का प्रमाण दीजिये जिससे कर्मानुसार जाति व्यवस्था का निर्माण हो, हमने अपनी दूसरी टर्न में स्वामी दयानन्द जी के द्वारा लिखित व्याकरण के अनुसार व्याकरण की बात बताई थी, कि ब्राह्मण का बेटा होगा, ब्राह्मण से उत्पन्न अपद्य अर्थ होगा, सन्तान अर्थ होगा तब बनेगा "ब्राह्मण" शब्द नहीं तो बनेगा "ब्राह्म" ! क्षत्रीय के रजवीर्य से उत्पन्न होने वाला कहलायेगा "क्षत्रीय" वरन् कहलायेगा "क्षात्र"। क्षत्राद्भ। तो ये सूत्र हैं व्याकरण के बने हुए, ये व्यवस्था स्वामी दयानन्द की लिखी हुई है। आप व्याकरण की इस बात पर ध्यान ही नहीं देते। हम फिर कह रहे हैं कि, अजायतः क्रिया है वहां पर वेद में। कह रहे हैं साहब कि कौन अंग क्या है ? कौन अंग क्या है ? ये पूछा है, अरे त्रिया कह रही है कि "पदभ्याम् शूद्रो अजायतः" और एक मन्त्र हमने और भी पेश किया था उस मन्त्र को भी स्पर्श नहीं किया, वह मन्त्र हम पुनः सुना देते हैं, सुनिये—यजुर्वेद की शतपथ शाखा क्या कहती हैं ? स्वामी जी महाराज ध्यान से सुनों—"सा शौद्रम वर्णम् अस्रजतः सः नैवदय अभवत्" यहां भी "अस्रजतः" त्रिया है। अर्थात् सृष्टी का श्रजन किया, ये कल्पना नहीं है कि मान लिया। इसलिए वेद के शब्दों का जो शतपथ यजुर्वेद की शाखा का प्रमाण दिया "सा शौद्रम् वर्णम् अस्रजतः" और मूल पुरुष सूक्त के मन्त्र में भी "शूद्रो अजायतः" त्रिया पड़ी है। ब्राह्मणोयज्ञेत्, कहते हैं उसमें रावण का वर्णन हैं, हमने तो नहीं पूछा था कि आपने रावण देखा कि नहीं ? हमने नहीं पूछा था यह सवाल और द्रौणाचार्य आदि को तो हमने भी नहीं देखा, जहां से रावण का आपको अता-पता मिला ऐसे ही हमें भी अपने ग्रन्थों से द्रौणाचार्य आदि का अता-पता मिला, पर वो जो रावण था इसमें भी—ब्राह्मणोयज्ञेत्, मूल बात खतम नहीं होती। यदि "प्रादुर्भावे" धातु है, अर्थात् "ब्राह्मणो यज्ञे प्रथमः" और कहते हैं रावण राक्षस हो गया, राक्षस हो गया, हम कहते हैं कि अगर राक्षस हो गया तो क्या वह ब्राह्मण नहीं रहा ? ब्राह्मण होते हुए राक्षसों जैसे कर्म करने लगा, मांस खाने लगा, शराबी हो गया, व्यभिचारी हो गया, पतित हो गया, इसलिए सुनों ध्यान दो बालमीकी रामायण ! वेद का तो प्रमाण दे ही रहे हैं, परन्तु शायद आप रामायण का प्रमाण न माने, पर सुनो—"ब्राह्मणो यज्ञेत्" कैसा ब्राह्मण ? तो बोले—"दशशीर्षः दसास्यः सा कोमम् प्रथमम तपो सः चकारा रसंविषम्" तो बालमीकी रामायण में आता है कि वहां निवास करने वाले जो लोग थे रावण के अनुयायी और रावण आदि—"ब्रह्म राक्षस" थे, अर्थात् ब्राह्मण की सन्तान होते हुए भी राक्षसों जैसा काम करने लग गये थे, राक्षसों जैसा आचार-विचार व्यवहार करने वाले हो गये थे, इसलिए रावण की निन्दा आजकल हो रही है। रावण का अपमान होता हैं, और हमने द्रौणाचार्य का उदाहरण दिया महाराज, वो जीवन भर लड़ते रहे तो भी ब्राह्मण रहे, राजा जनक का उदाहरण दिया, जीवन भर उन्होंने वेदान्त सुनाया, हितोपदेश सुनाया, पर तो भी उनको राजा, अर्थात् राजाजनक कहा जाता है।

वो ब्राह्मण नही कहे जाते, यह सब हमने आपको सुनाया आप कहते हैं कि जिसमें दस्यु लिखा हो शूद्र का नाम अनाड़ी लिखा हो वह हमें प्रगल्प बता दो, तो सुनों प्रकरण सत्यार्थ प्रकाश द्वितीयावृत्ति अष्टम् समुल्लास के पृष्ठ २४५ पर क्या लिखा है ? सुनो, ध्यान दो वहां लिखा है कि—"ब्राह्मण, क्षत्रीय, वैश्य और शूद्र चार भेद हुए,

द्विज विद्वानों का नाम आर्य, द्विज माने ब्राह्मण, क्षत्रीय, वैश्य ! और मूर्खों का नाम शूद्र अर्थात् अनार्य तथा अनाड़ी हुआ, तो कहने का तात्पर्य यह हुआ कि—श्रेष्ठों का नाम आर्य, विद्वान्, देव, और दुष्टों के दस्यु अर्थात् डाकू, मूर्ख नाम होने से दस्यु प्रसिद्ध हुआ।" तो द्विज तो हो गये आर्य, बाकी बच गये दस्यु, अनाड़ी, मूर्ख इसलिए कहने का तात्पर्य यह है कि—ये प्रमाण आपने मांगा और हमने उपस्थित कर दिया। अतः सज्जनों हम फिर अपनी बात दोहरा रहें हैं सज्जनों ! आपने अभी अपने पड़ोस में बैठे सज्जन से पूछा कि आचार्य साहब हैं कि ब्राह्मण बन गये ? और इन्होंने संशोधन भी किया कि आचार्य ही नहीं मैं एम० ए० भी हूं, क्यों महाराज हमें बताओ कृपा करके कि आचार्य पास को ब्राह्मण की डिग्री देते हो या जो आचार्य के साथ-साथ एम० ए० पास कर ले उसको ब्राह्मण बनाते हो। और अगर केवल आचार्य पास को ही ब्राह्मण बनाते हो तो वो गुरुकुल से आचार्य पास करके आया और सीधा ब्राह्मण बन गया। और उस बेचारे ने बाद में मेहनत करके कर ली एम० ए० पास तो उसका वर्ण बदल जायेगा कि वही आचार्य वाला वर्ण रहेगा ? अब तो उसकी योग्यता बढ़ गयी तो उसे देने के लिए कोई पांचवा वर्ण बना लो, दूसरे और सुनो ! मान लो आज तुमने समान वर्ण के अन्तर्गत वाली ऐसी कन्या से विवाह कर लिया जो तुम्हारे वर्ण के अन्तर्गत है। पर बेचारी लड़की तो रह गयी बाल-बच्चा सम्भालने में, चौका चूल्हा सम्भालने में। और आपने पढ़ लिखकर के योग्यता बढ़ा ली, तब तो आपका वर्ण बदल जायेगा, अब वह बेचारी लड़की रह गयी पहले वर्ण की, तो इस दशा में क्या करोगे ? उस लड़की को छोड़कर अपने समान वर्ण वाली किसी नई लड़की को ढूंढ़ कर लाओगे ? और वह लड़की फिर अपने वर्ण के किसी पति को तलाश करेगी ? इसलिए हम पूछ रहे हैं फिर दोहराते हैं, कि सन्तान परिवर्तन पर······स्वामी जी इस पर वेद मन्त्र नहीं देते, सन्तान परिवर्तन पर वेद मन्त्र दीजिये, टनं टन टन ऽ ऽ······

श्री अमर स्वामी जी महाराज—

भाइयों, शान्त हो जाओ, बिल्कुल शान्त ! ये बिल्कुल झूठ है सच नहीं है, वो आर्य नहीं थे जिनकी बात हमने नहीं मानी। वो अनार्य थे, उनकी बात हमने नहीं मानी, एक बात आपने और कही कि—"आप तो वेदों को ही प्रमाणित मानते हैं तब केवल वेदों के ही प्रमाण दीजिये।" मैंने अभी बताया था, अब फिर कहे देता हूं। आचार्य जी ध्यान से सुनों अन्यथा फिर कहोगे कि हमारी बात को स्पर्श ही नहीं किया, हमारी बात पर ध्यान ही नहीं देते आदि-आदि ये तकिया कलाम आपके फिर शुरू हो जायेंगे इसलिए ध्यान से सुनों—**"शास्त्रार्थ का नियम है कि जो पक्ष जिन-जिन ग्रन्थों को प्रमाणित मानता है उन-उन ग्रन्थों के प्रमाण उस पक्ष के लिए दिये जाते हैं"**, और जैसे आप दे भी रहे हैं, आप बार-बार सत्यार्थ प्रकाश का प्रमाण देते हैं, आप बार-बार महर्षि दयानन्द जी महाराज के ग्रन्थों के हवाले दे रहे हैं, क्या आप उन्हें मानते हैं ? इन्हें देते हुए आपको दुख नहीं होता, और जब हम पुराणों के प्रमाण देते हैं तब पेट में दर्द होने लगता है, भाई जैसे हम उस दर्द को सहते हैं तो आप भी सहन कीजिये, और चूंकि आप जानते हैं कि, उससे गड़बड़ मचेगी तथा जो समय है वह नष्ट हो जायेगा इस वास्ते आप कहते हैं कि उसे क्यों देते हैं ? केवल वेद के ही प्रमाण दीजिये, यह इनका बिल्कुल झूठा दावा है कि आर्य समाजी केवल वेद को ही मानते हैं, आर्य समाजियों ने कहीं नहीं कहा कि वे केवल वेद को ही मानते हैं, ये हमारे पास सत्यार्थ प्रकाश की प्रति रक्खी है, जिसके ऊपर लिखा हुआ है कि—**"वेदादि सत्यशास्त्र प्रमाण समन्वितः"** अर्थात् वेद आदि सत्य शास्त्रों के प्रमाणों से युक्त ! इसमें केवल वेद नहीं कहा अतः आपका यह कहना झूठ है कि हम केवल वेदों को ही मानते है। वेद को सदा प्रमाण मानते हैं, और अन्य ग्रन्थों को पढ़कर प्रमाण मानते हैं। जो वेद के अनुकूल हैं, मानते उनको भी हैं, उनके भी प्रमाण देते हैं हम, साथ रही बात यह कि जो आपके ग्रन्थ हैं जिनको आप प्रमाण मानते हैं और हम नहीं मानते उनके प्रमाण भी हम देते हैं, जैसे आप सत्यार्थ प्रकाश को नहीं मानते

और सत्यार्थ प्रकाश का प्रमाण देते हैं, और संस्कार विधि को नहीं मानते, पर उसका भी प्रमाण देते हैं, इसी प्रकार से हम भी देते हैं, जो पाठ आपने प्रमाण रूप में प्रस्तुत किया सत्यार्थ प्रकाश के आठवें समुल्लास का उसे आपने उलटा-पुलटा करके खिचड़ी बनाकर प्रस्तुत कर दिया। वहां कहा है कि—आदि सृष्टि में एक जाति थी या अनेक ? ये प्रश्न है, इसका उत्तर है—एक मनुष्य जाति थी। तो "**विदानी याजन्येत**......" यह ऋग्वेद का वचन है, श्रेष्ठों का नाम आर्य, विद्वान्, देव और दुष्टों के, दस्यु, डाकू, और मूर्ख ये दो नाम आपने कहे, पर महाराज जी ये अलग हैं, और ब्राह्मण क्षत्रीय, वैश्य, शूद्र ये अलग हैं, उसे मूल बात को छोड़ करके आपने शूद्रों के साथ दस्यु वाला अर्थ जोड़ दिया, बेमतलब भड़काने की बातें हैं, अब ये गड़बड़ कराने की बात आरम्भ की जा रही है। ये अलग बात है, वो अलग बात है। सुनो ध्यान से सुनों ! फिर उसका उत्तर दो, इधर-उधर मत भागो, बल्कि प्रेमाचार्य जी भागोगे तो तभी जब मैं तुम्हें भागने दंगा, ज्यादा उछल कूद करोगे तो उभय पाशा रज्जू* में बांध दूंगा। इसलिए सुनो, आर्यों में पूर्ण प्रकार से—ब्राह्मण, क्षत्रीय, वैश्य, शूद्र ये चार भेद हुए, यह सत्यार्थ प्रकाश का पाठ है, आर्यों में चार भेद हुए—ये पाठ है, आठवें सम्मुल्लास का, आपने इसे उलट-पलट कर पढ़ दिया, अब रही बात वर्ण व्यवस्था की, ऋषि दयानन्द जी लिखते हैं कि, वर्ण व्यवस्था गुण, कर्म, स्वभाव से होती है। और ब्राह्मण के घर में पैदा होने से ब्राह्मण नहीं, और कोई क्षत्रीय के घर पैदा होने से क्षत्रीय नहीं, और कोई शुद्र के यहां पैदा होने से शूद्र नहीं होता।

अब ब्राह्मणत्व, क्षत्रीयत्व जो हैं उसे छोड़ करके आप उधर दौड़ते हैं कि बेटा बदला जाये कि न बदला जाये ? बस एक यही बात रह गयी है आपको कहने के लिए बाकी सब खतम हो गयी, बार-बार यही कहना कि—बदला जाये कि न बदला जाये ? जनक जो हैं वो राजा ही रहे, एम० ए० करके वो किसी और को ढूंढ़े, लड़की फिर क्या करे ? दुनियां भर की बेमतलब की बातें, वास्तविक बात को छोड़कर इधर-उधर भागना तुम्हारा काम है। अरे राजा जनक राजा न रहते तो और क्या बन कर रहते,......पुजारी ? चारों तरफ हंसी ही हंसी...... ज्ञानी होने से राज्य करते थे, राज्य का सारा काम करते थे, राजा ही बने रहे तो क्या प्रलय हो गयी ? राजा भी ज्ञानवान होना चाहिये और होते ही हैं, मूर्ख क्या राज्य चलायेगा ? राजा को वेदों का विद्वान् महान ज्ञानवान होना ही चाहिये, क्षत्रीय भी वेदों का जानने वाला होना चाहिये, मनु जी महाराज कहते हैं कि राजा, क्षत्रीय, सेनापति, राज्य का रक्षक कैसा होना चाहिये ? सुनो यह मनुस्मृति का श्लोक है। इसमें कहा है कि ये लोग कैसे होने चाहिये ? राजा हो, सेनापति हो, सभी वेदों के विद्वान् होने चाहिये, सुनों आचार्य जी, महाराज ने यह कहा कि सारी उमर पढ़ाने का काम करते रहे यदि एक बार युद्ध का काम पड़ गया तो क्या उसी दिन उनका वर्ण बदल जाता ? जो जैसे गुण कर्म स्वभाव रखता है, वह वैसा रहता है।

टिप्पणी—

***उभय पाशा रज्जू**—एक बैल चलने में परेशान करता तथा मारता भी था, किसान ने उसकी नाथ में दोनों तरफ रस्से बांध दिये, जब वह एक तरफ भागता था, या मारने को आता था तो दूसरी तरफ का किसान रस्से से झटका मारता था, तथा जब दूसरी तरफ ऐसी हरकत करता था तो विपरित दशा वाला किसान अपने रस्से से झटका मारता था। परिणाम स्वरूप बैल बिल्कुल सीधा चलता था, इस उक्ति को न्याय में "**उभय पाशा रज्जू**" के नाम से कहा गया है'—

"**सम्पादक**"

कभी-कभी वो अन्य कार्य कर ले, जैसे आपने कह दिया कि माता बच्चों का गन्द साफ करती है, तो वह ये हो जाएगी, वो हो जाएगी। ये तो सामान्य बातें हैं, वो विशेष बात है, जिस बात को करते हुए हम बहस करते हैं, आपस में बातचीत करते हैं, वैसे ही घरों में भी करते हैं, अनेकों समस्याओं का समाधान माता-पिता बैठ कर करते हैं, तो वो शास्त्रार्थी, महामुनी बन जायेंगे ? भाई जिनका काम है शास्त्रार्थ करने का वो ही शास्त्रार्थी कहलायेंगे। माता पिता का सम्वाद सामान्य अवस्था की बात है, वह तो चलता ही रहता है, जैसे किसी ने झाड़ू लगा दी, ये कर दिया, वो कर दिया तो वह शूद्र हो जाएगा यदि वह किसी को पढ़ाने बैठ गया तो ब्राह्मण बन गया ये सब सामान्य बातें हैं, विशेष रूप से जो इस कार्य को करता है, उसका वही वर्ण होता है, तो इस वास्ते मैंने आपको बताया। अजात् त्रिया बार-बार आ जाती है, मैं कहता हूं ठीक है, अजात् त्रिया उसमें हैं, परन्तु अजात् क्रिया प्रश्न में नहीं है, प्रश्न में तो यही है कि ब्राह्मण कौन है ? क्षत्रीय कौन है ? वैश्य कौन है ? वह जो पुरुष कल्पना किया गया उसमें कौन है ? उसका मुख कौन है, बाहू कौन है उसके उरु कौन है, उसके पैर कौन हैं ? यह पूछा गया न कि—ब्राह्मण काहे से उत्पन्न हुआ ? क्षत्रीय काहे से तथा शूद्र काहे से उत्पन्न हुआ ? यह प्रश्न ही नहीं है। इसलिए वहां आप अजात् त्रिया को व्यर्थ खोज रहे हैं। और वहां अजात् त्रिया का कोई सम्बन्ध भी नहीं है। अन्त में मैंने कहा था कि आप परमेश्वर को ही उलटा पाठ पढ़ा रहे हैं, प्रश्न कुछ और किया गया है, और उत्तर उसका कुछ और दिया करो प्रश्न यह है कि उस पुरुष का मुख क्या है ? उसकी भुजाएं क्या हैं ? उसका उरु क्या हैं ? उसके पैर क्या हैं ? और ये कह रहे हैं कि—शूद्र पैरों से पैदा हुए, जबकि यह तो पूछा ही नहीं, खामखा ही अपनी तरफ से प्रश्नोत्तर बना लिए और फिर किसके पैरों से पैदा हुए, किसके पैर हैं वो किसके पैरों से पैदा हुए ?

इस वास्ते मुझे यह बात कहनी पड़ी, आपने कह दिया कि रावण राक्षस हो गया तो ब्राह्मण भी रहा। रहा होगा, मैं तो ब्राह्मण नहीं समझता हूं, जब वह राक्षसवंशी हो गया तो ब्राह्मण नहीं रहा, आप ही यह मान सकते हैं कि ब्राह्मण भी रहे और राक्षस भी रहे, मैं तो कभी बनने नहीं दूंगा आपको राक्षस चाहे लाख यत्न करो…जनता में हँसी… ब्राह्मण भी कहलावे और राक्षस भी कहलावे मैं तो यह यत्न कभी करूंगा नहीं यदि आपको यह पसन्द हो तो आप कहलाते रहिए, किसी ब्राह्मण को राक्षस भी कहलवाते रहिए। मैं कहता हूं कि अगर ब्राह्मण होगा तो राक्षस वह कदापि नहीं होगा। और राक्षस होगा तो ब्राह्मण कदापि नहीं कहला सकता। चोर भी रहे, और साधु भी रहे, तो ये बात आचार्य जी बनेगी नहीं। तो इस वास्ते उसे राक्षसराज कहा जाता है, और वह भी अपने आपको राक्षस कहता रहा। इसलिए स्पष्ट बात यह हुई जो मैंने कही है। और अब एक बात आपने और कही कि—आचार्य बन गये, व्याकरणाचार्य बन गए, एम० ए० बन गए, यह बन गए, वह बन गए, और उसका विवाह कर दिया अनपढ़ी से, क्यों कर दें अनपढ़ी से हमारे यहां तो जितने आचार्य हैं उसकी पत्नियां बड़ी-बड़ी विदुषी हैं, हमारे यहां यह अन्धेरगर्दी नहीं चलती है, हमारे यहां तो यह देख लिया जाता है कि जैसे गुण, कर्म स्वभाव लड़के के हैं, वैसी ही गुण, कर्म, स्वभाव वाली लड़की भी हो, और लड़की विदुषी हो तो उसके लिए वर भी विद्वान ही ढूंढ़ा जाता है। तो इस वास्ते मैंने यह बात कही।

अजीगर्त का पुत्र शुनःशेप, ऋषि विश्वामित्र का पुत्र बन गया, और उन्हीं के गोत्र का कहा गया। तो उसका गोत्र भी बदल गया, अब बताइए ? श्रीकृष्ण जी-कारणवश, देवकीनन्दन और वासुदेवनन्दन से यशोदानन्दन और नन्दनन्दन कहलाए, मूल विषय यह है कि—वर्ण जन्म से होता है या गुण कर्म स्वभाव से ? इसको छोड़कर इधर-उधर जायेंगे तो मूल विषय छूट जाएगा आप उसी मूल विषय पर शास्त्रार्थ करिए, ऋषभदेव जी के सौ पुत्र हुए जिनमें भरत मुख्य थे, जिनके नाम पर भारतवर्ष नाम पड़ा, उनके ८१ पुत्र ब्राह्मण बन गए देखिए श्रीमद्भागवत पुराण को पढ़कर पता भी नोट कर लो, स्कन्द ५, अ० ५, श्लोक ८-९ तथा १३ इस प्रकार से कोई

क्षत्रियों से ब्राह्मण हो गए देखिए श्रीमद्भागवत स्कन्द ९ के अध्याय दो में, मनु का पुत्र प्रषध्र शूद्र हो गया देखिए भागवत में ही श्लोक ९ में इसी प्रकार मनुपुत्र करुष के क्षत्रिय हुए ॥१६॥

मनु के वंश में अग्नि वैश्य के पुत्र ब्राह्मण हो गए ॥२३॥ एक दो हों तो बताऊँ सारे पुराण भरे पड़े हैं कौन क्या-क्या हो गया, ? आचार्य जी श्रीमद्भागवत को कभी खोल कर देख लेते तो ये प्रश्न ही न करते। तो मैं कह रहा था कि बदलते रहते हैं वर्ण बराबर बदलते रहते हैं, कुछ पुराणों के श्लोक सुनिए और नोट कर लीजिए भविष्य के लिए ! यथा—

शूद्रो ब्राह्मणतामेति, ब्राह्मणश्चैवशूद्रताम। क्षत्रिया जातमेवतु विद्याद्वैश्यातथैव च ॥

(मनु० तथा भविष्य० अ० ४, श्लोक ४७)

प्रषध्रस्तु गुरु गोवध्यच्छूद्रत्वमगमत् ॥ (विष्णु पुराण ४-१-१४)

नाभागो नेदिष्ट पुत्रस्तु वैश्यातामगमत् ॥ (विष्णु पुराण ४-१-१४)

अब बताइए, नाभाग दैत्य हो गया, और भी इसी प्रकार से बहुत से ऋषि कुछ के कुछ बन गए। तथा पुराणों…… टर्न टन टन टन…चलो अगली बारी में कहेंगे………

श्री आचार्य पण्डित प्रेमाचार्य जी शास्त्री—

सज्जनों हम अपनी बात वहीं से शुरू कर रहे हैं, हमने कहा था कि—स्वामी दयानन्द जी लिखते हैं कि—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र अन्त्यज ये जाति भेद ईश्वर कृत हैं, ग्यारहवें समुल्लास पृष्ठ ४२५ पर, और ये कहते हैं कि ब्राह्मण हम बना देंगे, इसका जवाब क्यों नहीं देते ? क्यों शुरू से नहीं छू रहे इस बात को ? अब की बार यहीं से शुरू करना स्वामी जी महाराज, नोट कर लीजिए, स्वामी दयानन्द जी महाराज कह रहे हैं कि जाति भेद ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र अन्त्यज ये सब हैं ईश्वर कृत, और आप कह रहे हैं कि, राजसभा सर्टिफिकेट बांट कर किसी को ब्राह्मण, क्षत्रिय बना देगी। भगवान कहते हैं मैंने बनाए, ईश्वरीय हैं, और ये दावा करें कि ऐसा-वैसा हम बना देंगे। हमने कहा था कि दिन भर में माताएं कई तरह के काम करगी, उनका वर्ण बदलेगा………कहते हैं, नहीं, नहीं, यह तो उनका साधारण कर्म है सामान्य कर्म है, साहब ! ये तो वो करेंगी ही, रोटी भी बनायेंगी, कपड़ा भी धोयेंगी, अमुक काम भी करेगी, ये तो सामान्य कर्म हैं, जाति तो विशेष कर्मों से बनाई जाती है। हम पूछते हैं वे विशेष कर्म कौन हैं महाराज ? उन्हें भी तो बता देते। उन विशेष कर्मों की लिस्ट अवश्य पेश कीजिए। कौन से हैं वो विशेष कर्म ? जिनके कारण किसी को ब्राह्मण, किसी को क्षत्रिय, किसी को वैश्य, किसी को शूद्र करार दिया जावेगा।

अगर क्षत्रिय तलवार चलाना जानता है, वीर है, बहादुर है, तो यह तो उसका सामान्य कर्म हुआ, विशेष काम कौन सा हुआ जिससे उसे क्षत्रिय कहा गया। पढ़ा लिखा होना, योग्य होना, विद्वान होना यह तो ब्राह्मण को होना ही चाहिए, पर इनके अलावा और कौन सा कर्म विशेष हो गया जिसके कारण हम उसको ब्राह्मण मानेंगे, इसलिए अगर सामान्य कर्म से जाति नहीं बदलती तो विशेष कर्म कौन से हैं। ये साथ ही साथ बताने चाहिए थे। हमने स्वामी दयानन्द जी का वेदान्त प्रकाश वाला उदाहरण दिया था, व्याकरण का ! न मालूम इस व्याकरण वाली बात में स्वामी जी क्यों प्रवेश नहीं करना चाहते ? स्वामी जी कहते हैं कि—ब्राह्मण शब्द कब बनेगा ? ब्राह्मण ! यह शब्द तो तभी बन सकता है, व्याकरण अनुसार जब ब्राह्मण के द्वारा उत्पन अपत्य अर्थ हो। यदि ब्राह्मण से सम्बन्धित कोई चीज अलग होगी तब ब्राह्म शब्द बनेगा, ब्राह्मण शब्द नहीं बन सकता, इसी प्रकार क्षत्रिय शब्द

जो बनेगा वह तभी बनेगा जब क्षत्री की औरस सन्तान का अर्थ होगा, नहीं तो क्षात्र शब्द बनेगा, यह बात स्वामी दयानन्द जी ने अपने व्याकरण ग्रन्थ में लिखी हैं, तो भईया इस बात पर भी विचार नहीं किया, अच्छा अजायतः पर तो बार-बार वही जवाब दे रहे हैं, कल्पना कर ली, यह सवाल ही नहीं था, न यह पूछा गया था, मैंने तो शतपथ का एक और प्रमाण दिया है, शतपथ जो यजुर्वेद शाखा का है, जो इस प्रकार था—"**स शौद्रम् वर्णम् असृजतः**" यहाँ पर दृग धातु है, "**सृजनः**" सृष्टि निर्माण किया, बनाया, तो "**असृजतः**" त्रिया के ऊपर यहाँ तो कोई प्रश्नोत्तर वाली बात ही नहीं है, सीधी बड़ी सुन्दर इबारत है—"**स शौद्रम् वर्णम् असृजतः**" शूद्र वर्ण को बनाया, इसलिए "**असृजतः**" त्रिया पर विचार करें महाराज।

"**असृजतः**" त्रिया पर विचार करें, मैं फिर कह रहा हूं कि वर्ण व्यवस्था कर्मानुसार होनी चाहिए इस पर कोई वेद मन्त्र दो, वेद मन्त्र मांग रहा हूँ, उलटा हमें ही कह रहे हैं कि साहब भागवत् में कथा आती है कि—ऋषभदेव राजा के सौ बेटे हुए, और वे सब,·· क्या नाम-ब्राह्मण बन गए, भाइयो ये गप्प है, बिल्कुल सोलह आने गप्प हांक मारी ···हां ! हां !! ये भागवत हमारे पास है, स्वामी जी महाराज के पास कोई और भागवत हो तो हम उसे भी बाँच लेंगे, हमारी भागवत प्रमाण न हो तो नकली भागवत बता देना महाराज ! सुनो ! क्या है असल बात वो एक सौ बेटों वाली, वो सुनो जिन्हें बताया कि एक ऋषभ देव और बाकी ब्राह्मण बन गए। भाइयो ! ब्राह्मण नहीं बन गए, बलिक ब्रह्मज्ञ बन गए, वहां ब्रह्मज्ञ अर्थात् ज्ञानी हैं, अर्थात् वे सभी ब्रह्म के स्वरूप का ध्यान करके संसार से निवृत्त होकर ब्रह्माण्ड में विचरण करते हैं, वेदान्ती लोग घर गृहस्थ से निवृत्त अर्थात् ब्रह्मज्ञानी हो गए, वहाँ पर शब्द है ब्रह्मज्ञ होना, अर्थात् ज्ञानी, ब्रह्म बोलते हैं क्या नाम, वेद के तत्व को समझकर उनके मन में वैराग्य उत्पन्न हो गया, वो ब्राह्मण क्यों बने ? इसलिए ब्राह्मण होने का तो वहाँ पर सवाल ही नहीं, ब्राह्मण होने का तो वहाँ पर प्रश्न ही नहीं। ब्रह्मज्ञ होने की बात है, ब्रह्मज्ञानी हो जाना, अच्छा एक बात तो इन्होंने मान ली कहते हैं कि राजा जनक ज्ञानी थे, पर ठीक है राजा रहे, उनके राजा होने में क्या रुकावट ? अरे हम भी तो यही कह रहे हैं कि रुकावट क्यों नहीं पड़ी ? आपके हिसाब से तो रुकावट पड़ जानी चाहिए थी। जब वे ब्रह्मज्ञानी हो गए, वेदान्त का उपदेश करने वाले हो गए, और साहब सत्संग में नित्य रमे रहे। उपनिषद पढ़ें, राज काज का कार्य सब उनके मन्त्री देखें इस स्थिति में आपके हिसाब से तो उन्हें ब्राह्मण होने का सर्टिफिकेट दे दिया जाना चाहिए था। पर नहीं, इसके बावजूद भी उनको राजा ही कहा जा रहा है। राजा ही माने चले जाते हैं साहब ! वही हम कहते हैं कि भाई कर्मों से जाति के बदलने का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता, जाति तो वही हो गई, जिन माता-पिता के रज-वीर्य से हम उत्पन्न हुए, उसी के अनुसार हमारी जाति भी हो गयी, तो इस बात पर स्वामी जी गहराई से विचार करें।

एक बात और कही कि साहब हमने वो जो इबारत पढ़कर सुनाई—दस्यु हो जाना या क्या हो जाना, वह सब उलट-पलट कर सुनाई, ये इलजाम हमारे सर मढ़ दिया स्वामी जी महाराज ने। भई हम कहते हैं उलट-पलट की क्या बात ? सत्यार्थ प्रकाश हमारे भी हाथ में हैं, और उनके भी हाथ में है, अभी फैसला हुआ जाता है, इसमें उलट-पलट की बात नहीं है, इसमें उन्होंने बात को उलट-पलट जरूर कर दिया, हमने बड़ी सीधी बात कही थी पर उस बात को स्वामी जी ने जरूर उलट-पलट कर दिया। देखो इसमें लिखा है कि—"**ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये चार भेद हुए,**" स्वामी दयानन्द जी ऐसा लिख रहे हैं, जो हम बाँच कर सुना रहे हैं, ध्यान से सुनो, कहते हैं साहब कि—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र ये चार भेद हुए, सृष्टि के आरम्भ में द्विज विद्वानों का नाम आर्य, द्विज बोलते हैं, ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य को इन तीन का नाम है द्विज। और मूर्खों का नाम है शूद्र। अनार्य !! अनाड़ी !!! ये तो बात वो हुई जो हमने पढ़कर सुनाई। और इससे पहले कहते हैं कि दो भेद हुए आर्य और

दस्यु, तो भाई आर्य तो हो गए द्विज तो बाकी दस्यु बने, हमने अगर शूद्रों को दस्यु कह दिया तो कौन गुनाह किया ? इसलिए आपके कथनानुसार हम नहीं कहते शूद्रों को दस्यु। हमारे यहां तो शूद्र भगवत प्राप्ती, परम वैकुंठ धाम तक जाने के अधिकारी और सत्पात्र बताए गये हैं, ये तो हम आपके शब्द दोहरा रहे हैं, स्वामी जी के शब्द दोहरा रहे हैं, स्वामी जी कहते हैं, दो हुए, आर्य और दस्यु। तो द्विजों का नाम हो गया आर्य और बाकी रह गए दस्यु। तो शूद्र जो हैं वो दस्यु हो गए। अच्छा एक बात स्वामी जी ने और कही कि—हमारे यहां अन्धेरगर्दी नहीं है, हमारे यहां तो विवाह के लिए जोड़ी सोच-समझ कर मिलाई जाती है। मैं समझता हूं बड़ी खतरनाक बात है, बड़ी खतरनाक बात क्यों ?

स्वामी जी की व्यवस्था के अनुसार कन्याओं का विद्या स्थान और लड़कों के विद्या अध्ययन का स्थान पृथक-पृथक होवे, तो ये जो जोड़ी मिलाने की बात है, केवल सार्टिफिकेट के अनुसार होगी। लड़की जो सार्टिफिकेट लेकर आई तथा लड़के का जो सार्टिफिकेट हुआ, दोनों का मिलान किया, और जोड़ी बना दी। अगर ऐसे ही करेंगे तो हम कहते हैं कि—जब नम्बरों की परसेन्टेज देखी जावेगी कि कितने नम्बर लड़की को तथा कितने नम्बर लड़के को मिले तो जब इस प्रकार नम्बर मिलाकर विवाह होगा तो हम यह कह रहे हैं भाई कि अगर विवाह हो जाने के बाद अगर दोनों में से कोई अपनी योग्यता बढ़ा ले तो उसका वर्ण बदलेगा कि नहीं ? हम तो यह कह रहे हैं कि तब क्या होगा ? अगर लड़की तो उतनी ही रह जाए, और लड़का बेचारा आगे पढ़ लिख कर अपनी योग्यता बढ़ा ले, अर्थात् मान लो पहले वह आचार्य था, परन्तु बाद में डबल आचार्य हो गया, और डोक्टरेट कर ली तो तब उसकी योग्यता उस कन्या से अधिक हो गयी उसके नम्बरों की परसेन्टेज बढ़ गयी, तब उसका क्या बनेगा ? और गुण-कर्म का वेद मन्त्र, गुण-कर्मानुसार वर्ण व्यवस्था का वेद मन्त्र हम फिर पूछ रहे······टनं टन टन टन ऽऽ······

श्री अमर स्वामी जी महाराज—

भाइयों मैं कह रहा था, ये ऋग्वेद का वचन है, देवताओं का नाम आर्य, विद्वान्, श्रेष्ठ और दुष्टों के दस्यु अर्थात् धूर्त नाम होने से अनार्य, ये तो दोनों नाम हुए।···बीच में···

श्री पण्डित प्रेमाचार्य जी शास्त्री—

स्वामी जी महाराज आप इसे ठीक पढ़िए तथा···

श्री अमर स्वामी जी महाराज—

(गर्जते हुए)···आप बीच में मत बोलिए, जब आपकी बारी आयेगी तब बोलना, बीच में बोलना नियम विरुद्ध है, सुनिए मैं तो बिल्कुल ठीक पढ़ रहा हूं, मैं तो वैसा का वैसा ही पढ़ रहा हूं जैसा कि लिखा है, आपने उलट-पलटकर पढ़ा है, और बीच में बोल-बोलकर विघ्न डालना चाहते हैं, यहां लिखा है कि आर्यों के—"**ब्राह्मण, क्षत्रीय, वैश्य, शूद्र ये चार भेद हुए**" ये स्पष्ट लिखा हुआ है।···प्रेमाचार्य द्वारा विघ्न···अच्छा प्रधान जी ! आप ये स्वयं पढ़कर सुनाओ या किसी से भी पढ़वाओ, मुझे पता है, ये विघ्न करेंगे जरूर ये मानेंगे नहीं, पढ़वाओ कि ये लिखा हुआ है कि नहीं ?······प्रधान जी देखकर···हां ! हां !! ये ठीक है लिखा हुआ है,······जनता में तालियां······शान्त ! भाइयो शान्त हो जाओ आज सारी कलाईयां खुलेंगी, इनको पता था फिर भी इन्होंने बेमतलब विघ्न डालने का प्रयास किया, ये स्पष्ट लिखा हुआ है जो प्रधान जी ने भी देखा है, जो मैं पढ़ रहा हूं इसके अलावा अब सुनो आगे की बात ! श्रीमद् भागवत की बात इन्होंने कही, सुनो ! उसमें भी लिखा हुआ है, मैं आपको वह भी पढ़कर सुना देता हूं, ये श्रीमद् भागवत है पांचवां स्कन्द है, और इसका अध्याय भी पांचवां ही

है, और श्लोक है बारहवां, आचार्य जी नोट कर लो फिर बाद में विघ्न पैदा करोगे···हंसी···और सुनो इस पर टीका किसकी है ? ये भी सुनो—श्री कन्हैया लाल जी मिश्र उपाध्याय मुरादाबाद के और पण्डित बलदेव प्रसाद जी मिश्र जो पण्डित बनारसी दास जी मिश्र मुरादाबादी के भाई थे, उनके द्वारा प्रकाशित है, सनातन धर्मियों की पुस्तक है, इसका नाम है श्रीमद् भागवत ! इसके अन्दर लिखा है कि—वेद वक्ता, वे यज्ञ करने वाले थे वे नित्य नियम से, शुद्ध कर्मों से वे श्रेष्ठ ब्राह्मण हो गये। इनके पौते (८१ पुत्र) पिता के आज्ञाकारी वेद वक्ता, यज्ञ करने वाले थे, नित्य नियम से यज्ञ करने व श्रेष्ठ कर्म करने से वे सब श्रेष्ठ ब्राह्मण हो गये। यह गीता है और सनातन धर्मियों की गीता है। कहीं से लेकर के, आप इसको कहिए श्रीमद् भागवत को भी इन्कार करिए, और गीता को भी इन्कार करिए। यह मेरे पास है गीता, सनातन धर्मियों की ही छपाई हुई है, और उनकी ही लिखी हुई है यह गीता। और सत्यार्थ प्रकाश को भी मैंने पढ़कर सुनाया, वो सब है। अच्छा अब रहा इनका अगला प्रश्न कि ये विशेष-विशेष कर्म क्या है ? कौन-कौन से हैं ? आपने ये प्रश्न किया था, कि विशेष कर्म कौन से हैं, ये तो सामान्य कर्म हुए विशेष कर्म कौन से हैं ? आपने ये बात पूछी थी, सुनो आचार्य जी विशेष कर्म सुनो ! आज आपको विशेष कर्म बताते हैं—सुनो ! सामान्य-विशेष कर्म नहीं, मैं कह रहा हूं कि विशेषता से जिन कर्मों को करे। बाप बालक को पढ़ा रहा है या मां ने ही थोड़ा-सा पढ़ा दिया, स्कूल जाने से पहले ये और बात है। लेकिन जिसका काम ही पढ़ाने का है विशेष कर तो यह कार्य उसकी विशेषता का हुआ, यही उसके लिए विशेष कर्म है। एक कार्य है, किसी के घर में चोर आया और लाठी उठा-उठाकर मार दी यह और बात है। और यही कार्य सेना में भर्ती होकर करना और बात है। विशेष कर्म नहीं है पर उसको करने में विशेषता से विशेष कार्य बनता है। उस कार्य को अधिक करता है तो वर्ण परिवर्तन होता है। ऐसे ही नहीं कि एक छोटी-सी बात हो गयी और वर्ण परिवर्तन हो गया। इस प्रकार से नहीं होती ये वर्ण व्यवस्था। अब आपने एक बड़ी भारी बात कह दी और वह प्रश्न इसलिए किया है कि आपने ये जो था कि लड़की वहां पढ़ती है, लड़के वहां पढ़ते हैं, और वहां से पढ़ करके वह सार्टीफिकेट लाया और वह लड़की वहां से सार्टीफिकेट लायी, और दोनों की परसेण्टेज मिला ली। आपने सार्टीफिकेट देखकर के यह देख लिया कि इनके शतप्रतिशत नम्बर कितने हैं ? हमने कब कहा था कि हम नम्बर देखकर विवाह करते हैं ? हम तो सारी बातें देखते हैं, गुण देखते हैं, कर्म देखते हैं, स्वभाव देखते हैं, रंग रूप देखते हैं, व्यवहार देखते हैं, माता-पिता के व्यवहार देखते हैं, सारी बातें देखते हैं, तब कहीं जाकर विवाह करते हैं, और ऐसा ही करना भी चाहिए, तथा सभी करते भी है, क्या आप ऐसा नहीं करते ? जो भी चतुर व्यक्ति हैं उन्हें यह सब देखना ही चाहिए, जो बुद्धिमान व्यक्ति हैं उन सबको ऐसे करना ही चाहिए, और अब रही ये बात ! कि अगर वह ज्यादा पढ़ जाएगी तो वह अपना वर्ण बदल लेगी, क्यों ? क्यों बदल लेगी ? गुण, कर्म, स्वभाव, तो वही पहले वाले ही रहे, कोई ज्यादा पढ़ जायेगा, कोई आगे बढ़ जाएगी तो वह ब्राह्मण ही नहीं रहेगा। गुण, कर्म, स्वभाव बदल जायेंगे तो वे अपने आप ही बदल जायेंगे, वो तो रहेंगे ही नहीं। जोड़ा रहेगा ही नहीं, इसलिए बहुत से सम्बन्ध टूटते रहते हैं, संसार में, और झगड़े होते रहते हैं इस बात के कि उनके स्वभाव नहीं मिलते। तो साफ पता चला कि जिनके स्वभाव नहीं मिलते वह अलग-अलग भी हो जाते है। परन्तु जिनके स्वभाव मिलते हैं, वो एक ही जगह मिलकर रहते हैं। योग्यता बढ़ती है तो बढ़ती रहे, केवल योग्यता से सारी बात बदल जाती हो ऐसी बात नहीं है। इसलिए यह केवल सार्टिफिकेट की बात नहीं है। और ब्राह्मण आदि ईश्वर कृत हैं ? नहीं वह ईश्वर कृत भी है, और मनुष्य कृत भी। ईश्वर कृत क्या है ? वेद कहता है, **"ब्राह्मणोस्य मुखमासीत् बाहुः राजन्य कृतः, उरु तदस्य यत् वैश्य पदांभ्याम् शूद्रो अजायतः"** अर्थात् वेद कहता है कि, ब्राह्मण ऐसा, क्षत्रीय ऐसा, वैश्य ऐसा, और शूद्र ऐसा, ये तो परमेश्वर ने कहा ये गुण, कर्म, स्वभाव तो परमेश्वर ने बतलाये, अब ये हमारा काम है कि, ये देखें कि यह ब्राह्मण के से गुण, कर्म, स्वभाव किसमें हैं ? जिसमें हों वह ब्राह्मण, जिसमें क्षत्रीय के से हों, वह क्षत्रीय, ये तो

आचार्य जी हमारा काम है, न कि परमेश्वर कहीं से आवेगा हमें बताने के लिए कि ये ब्राह्मण है, ये क्षत्रीय है, ये वैश्य है, या ये शूद्र है। उसने मोहर लगा कर भी नहीं भेजा कि ये अमुख है अगर मोहर लगा कर भेजता तो······ मैं पढ़ रहा हूँ वहां पर लिखा हुआ है कि उन्होंने (परमेश्वर ने) कौवों का सा और ढ़ोरों का सा भेष ग्रहण नहीं किया, यह भविष्य पुराण में लिखा हुआ है।

ऐसा नहीं किया कि गौवों के बीच में घोड़ा आ जाये तो झट पहचान लिया जाये, इसी प्रकार ब्राह्मणों के बीच में शूद्र आ जाये तो झट से पहचान लिया जाये। यह आकृति भेद परमात्मा ने नहीं किया। यहां पर यह भी कहा है कि, उस परमेश्वर ने यह भी नहीं किया कि उनके गुण, कर्म, स्वभाव इस प्रकार के बना दिये गये कि वह देखकर फौरन पहचान लिया जाये कि—ब्राह्मण है तो सोने का सा रंग है। और अगर क्षत्रीय है तो ये लाल रंग का है। और वैश्य पीले रंग का है। ऐसा कुछ कभी नहीं बनाया, भगवान ने आकृति भेद नहीं किया। ब्राह्मण के चार मुख बना देता या क्षत्रीय की आठ भुजायें बना देता, तथा शूद्रों के बारह पैर बना देवे और वैश्यों के चार पेट बना देवे। ये तो किया नहीं। बल्कि सबकी एक जैसी आकृति, मुख, पैट, पैर, भुजायें बनाई। सबको एक जैसा बनाकर भगवान ने इसलिए भेजा कि—गुण, कर्म, स्वभाव अगर इनके बदलेंगे तो उसी प्रकार के ये लोग समझे जावेंगे। जैसा कि श्री मद् भागवत पुराण का प्रमाण मैंने दिया था कि—**"यस्य ये लक्षणं प्रोक्तम्······"** जिसके जो लक्षण कहे गये हैं, वैसे लक्षण जिसमें दिखलाई देवें उसके लिए वो ही वर्ण दिया जाना चाहिये, यह श्री मद् भागवत में भी कहा है, हमारे यहां भी कहा है, आपके यहां भी कहा है, सर्वत्र कहा गया है और उसको वैसा ही कहना चाहिये, जब जो एक पढ़ाने का कार्य करेगा वह अध्यापक हो जावेगा, और अगर घर में वैसे ही थोड़े समय के लिए बच्चे को पढ़ा दिया तो वह अध्यापक नहीं बन जावेगा।

ऐसे वर्ण नहीं बदलता हमने कब कहा कि वर्ण ऐसे ही बदलता रहता है। सुबह से शाम तक वह तो विशेष रूप से कार्य करते रहने से वर्षों तक उस प्रकार के गुण, कर्म, स्वभाव रक्खेगा तो उसका वर्ण बदलेगा, और मैंने यह पहले भी बता दिया था कि—**"ऋषभदेव जी के ८१ पुत्र ब्राह्मण हो गये थे"** यह नहीं है कि वे ब्रह्म ज्ञानी हो गये, ब्रह्म ज्ञानी नहीं बल्कि ब्राह्मण हो गये ब्राह्मण! ऐसा सनातन धर्मियों का किया हुआ अर्थ है, और वो इसी प्रकार के और लोग हैं, बहुत से हैं जिनके लिए कहा गया है, कि वो न जाति भेद कहते हैं,—**"शूद्र ब्राह्मणों तस्मात् नास्ति भेद:"** कहते हैं कि शूद्र और ब्राह्मण का आपस में आकृति का कोई भेद नहीं है, यह बात भागवत् पुराण में कही गई है। बल्कि इतना ही नहीं, इसके बाद कहते हैं कि—**"हरिणी गर्भ संभूत: ऋषि शृंगों महामुनि तमसा ब्राह्मणो जात: संस्कार स्तेन कारण"**[1] हरिणी के गर्भ से पैदा हुए शृंगीं ऋषि ब्राह्मण बन गये। और देखिये—"शपान्ती

---

[1] **टिप्पणी—**

पुराणों में—"हरिणी गर्भ संभूत: ऋष्य शृंगो महामुनि: ।
श्वपाकी गर्भ संभूत: पिता व्यासस्य पार्थिव ॥
उलूकी गर्भ संभूत: कणादाख्यो महामुनि: ।
गणिका गर्भ संभूतो वसिष्ठश्च महामुनि: ॥
नातिका गर्भ संभूतो मन्दपालो महामुनि: ।

यहां तो हरिणी, श्वपाकी (चाण्ड़ाली), उलूकी, गणिका, नाविका, इतनी स्त्रीयों का वर्णन है, उनसे जो-जो उत्पन्न हुए उनके नामों के साथ लिखा है—**"तपसा ब्राह्मणो जात: संस्कारस्तेन कारणम्"** वह ब्राह्मण बनें, इसमें संस्कार ही वहां कारण है जन्म नहीं॥

"सम्पादक"

गर्भं संभूतः पिता जा तमसा ब्राह्मणो जातः संस्कारस्तेन कारणं" शपान्ती के गर्भ से पैदा हुए व्यास जी, परन्तु संस्कारों के कारण ब्राह्मण-विद्वान बन गये।

व्यास जी के पिता—"**तमसा ब्राह्मणो जातः संस्कारस्तेन कारणंविता गर्भ संभूतः वैशिष्ठ महामुनि**" वैश्या के गर्भ से उत्पन्न हुए वशिष्ठ मुनिः ब्राह्मण बन गये, अर्थात् साफ पता चला कि—"**तमसा ब्राह्मणे जातः संस्कारस्तेन कारणं**" उसका कारण जन्म नहीं है, बल्कि संस्कार है। तो जन्म, संस्कार के कारण इस प्रकार बदल जाते हैं, ये बात यहां पर कही गई हैं, आगे सुनिये क्या कहते हैं ?—"**ब्राह्मण शुभ्र वर्ण शद्र वर्ण विशुभा, न क्षत्रीयत् न पुष्प वर्णः**" ये भविष्य पुराण का वचन है, कि ब्राह्मणों को शुभ्र वर्ण नहीं बनाया गया, और न क्षत्रीयों को पुष्प वर्ण ही बनाया गया, और न वैश्यों या शूद्रों को किसी विशेष रंग का बनाया गया, सबको परमेश्वर ने एक जैसा ही बनाया है, जो एक मनुष्य जाति के नाम से हैं, परन्तु इसमें गुण, कर्म, स्वभाव के अलग-अलग होने से, ब्राह्मण, क्षत्रीय, वैश्य, और शूद्र बन जाते हैं, इनका वर्ण गुण कर्म स्वभाव पर आधारित है, न कि जन्म पर ! देखिये मनु-स्मृति क्या कहती है ?—"**शूद्रो ब्राह्मणेतामेति ब्राह्मणो शूद्रतम्**" मनुस्मृति कहती है कि—ब्राह्मण शूद्र हो जाता है। और शूद्र ब्राह्मण हो जाता है, अर्थात् ब्राह्मण में भी शूद्र जैसे गुण हों तो वह शूद्र हो जाता है। अगर कोई ब्राह्मण मांस गृहण कर ले तो वह उसी समय शूद्र हो जाता है। तब आप कहेंगे कि यह तो ब्राह्मण ही रहेगा······ जनता में हंसी······आचार्य जी बातें सोच विचार कर······टर्न टन टन ऽ ऽ······

श्री पण्डित प्रेमाचार्य जी शास्त्री—

सज्जनों—"**सः शूद्रं वर्ण असृजतः**" ये शतपथ का प्रमाण हमने पेश किया था, जिसमें कृत धातु का प्रयोग किया गया है। स्वामी जी ने इस पर ध्यान ही नहीं दिया······हँसी······हम तो शुरू से कह रहे हैं कि—"कर्मा-नुसार जाति बदली जावे इसके लिए आप हमें अपनी युक्ति मत सुनाओ"। वेद का मन्त्र सुनाओ, हम भी तो वेद का मन्त्र सुना रहे हैं, और आप से पूछ रहे हैं कि वेद का मन्त्र बताओ······जनता में चारों तरफ शोरोगुल······ जिसमें ये बताया गया हो कि अर्थात् परमेश्वर ने उसमें कहा हो कि अब तो मैं बना रहा हूं इसे, आगे से तुम बदल लिया करना, यह मनुष्यों के अधिकार में आ जावेगी चीज ? ये अधिकार बदलने की आज्ञा जिस वेद मन्त्र में हो, लम्बे चौड़े व्याख्यान की जरूरत ही नहीं थी, महाराज जी केवल वो वेद मन्त्र सुना देते, बस ? हम मान लेते, अच्छा भाइयों हमने स्वामी जी से सामान्य और विशेष कर्म पूछे थे, आपको याद होगा ही, आप लोगों ने सुना, स्वामी जी ने क्या कहा ? स्वामी जी बोले—वैसे कोई पढ़ा दे ये तो उसका सामान्य कर्म हुआ। अगर स्कूल में टीचर लग जाये, अध्यापक हो जावे तो वह उसका विशेष कर्म हुआ।

घर में चोर घुस जाये और लाठी से भगा दे ये तो उसकी सामान्य बात हुई, परन्तु मोर्चे पर लड़ने चला जाये या बहादुरी दिखला दे, अर्थात् वह लड़ने के काम पर ही नियत हो जाये तो वही काम उसका विशेष कर्म हो गया, तब तो महाराज जितने ब्राह्मण हैं वही ब्राह्मण हो पायेंगे जो स्कूलों में लग गये वह तो हो गये ब्राह्मण और जिन बेचारों की बेकारी के कारण बारी ही नहीं आ पाई, भाइयों वह है तो पढ़ा लिखा पर सरकारी नौकरी मिली नहीं, और ट्युशन वगैरा पढ़ा कर गुजारा करता हो तो आपके हिसाब से वह ब्राह्मण ही नहीं रहा। अब तो मास्टरों की पौ बारह है कि वे ब्राह्मण बन गये। उन्हें सार्टीफिकेट दे दिया गया, और भइया चोर को घर से भगा देना, गुण्डो को भगा देना मुहल्ले से, यह तो सामान्य बहादुरी हो गयी, और अगर हम मिल्ट्री में भर्ती होकर रंगरूट

बन गये तभी आपको क्षत्रीय कहा जाया करेगा। यही विशेष कर्म हो गया। और कुछ नहीं। स्वामी जी कहते हैं कि लड़का-लड़की की हम जोड़ी मिलाते हैं, तब केवल परसैन्टेज ही नहीं देखते बल्कि गुण, कर्म, स्वभाव तो देखते ही हैं, मां-बाप को भी देखते हैं, भाइयो ये स्वामी जी के शब्द हैं कि—मां-बाप को भी देखते हैं। हम पूछते हैं माँ-बाप को क्यों देखते हैं जी ? मां-बाप को देखने की क्या जरूरत है ? अगर—माँ-बाप मूर्ख हैं, और बेटी पढ़ लिखकर के विदुषी बन गई, ब्राह्मण होने का प्रमाण ले आई, तब माँ-बाप तो अनपढ़ हैं बेचारे, मां-बाप के कारण तो विवाह ही नहीं हो पायेगा।

आप कहते हो कि हम लड़की के गुण कर्म स्वभाव को ही नहीं देखते बल्कि लड़की के मां-बाप को भी देखते हैं, और जब लड़की के मां-बाप को देखते हैं तो लड़के के भी जरूर देखते होंगे। लड़का-लड़की दोनों के मां-बाप को देखकर ही विवाह का निर्णय आप करते हो, इससे सिद्ध होता है कि जरूर माता-पिता का भी "**क्या वर्ण हैं ?**" जरूर देखते होंगे। मां-बाप किस वर्ण के हैं, इस बात पर भी जरूर ध्यान देते होंगे। अच्छा साहब ! हमने जो मन्त्र पूछा वह मन्त्र स्वामी जी ने नहीं बताया। तथा "**सः शूद्रम् वर्णं असृजतः**" का जवाब भी नहीं दिया स्वामी जी ने, हम फिर दोहरा रहे हैं,—"**सः शूद्रम् वर्णम् असृजतः**" और हमारा जो स्वामी दयानन्द जी का व्याकरण का प्रमाण वो तो महाराज जी भूल ही जाते हैं, उसको तो स्पर्श ही नहीं किया अभी तक। और पहले जो हमने कहा—नामकरण के समय दसवें दिन बालक का ऐसा नाम रक्खे तथा बारहवें व आठवें वर्ष में उपनयन संस्कार के समय ऐसा नाम रक्खे, इसके विषय में जो प्रमाण हमने आपको सुनाये थे, अर्थात् आठ वर्ष की अवस्था तक तो बालक का कोई वर्ण नहीं रहता। इन सब बातों पर विचार न करके कहते हैं साहब—लिखा है कि—"**शूद्रो ब्राह्मण तामेती**" मनु ऐसा कहते हैं, मालूम होता है कि आप मनु को बड़ा प्रमाण मानते हैं। मनु आपको सर्व मान्य है, ऐसा मालूम पड़ता है, तो महाराज हम अगर मनु के शब्दों में आपको सुनायें। मनु जी महाराज वेद मन्त्र का अनुवाद करके बताते हैं, जो मन्त्र हमने आपको सुनाया उसी मन्त्र का अनुवाद करके मनु जी वर्ण व्यवस्था बताते हैं, और ये जो "**ब्राह्मण तामेती**......" वाली बात कही है, फिर व्याकरण की बात है, व्याकरण पढ़े लिखे लोग जानते हैं यहां पर ब्राह्मण के आगे "**ता**" लगा हुआ है, "**ब्राह्मण तामेती तस्य भावस्य त्वली**" व्याकरण का सूत्र है भाव अर्थ तल प्रत्यय होता है—"**ब्राह्मण तामेती**" माने "**ब्राह्मण बन गये**" यह नहीं है बल्कि "**ब्राह्मण जैसे हो गये**" यह व्याकरण की बारीकी है, अर्थात् शूद्र भी पढ़े लिखे विद्वान हो जाये, योग्यता प्राप्त करे, उसका भी वही सम्मान होगा जो एक पढ़े लिखे ब्राह्मण का होना चाहिये, और वह सम्मान प्राप्त करेगा इसका यह मतलब नहीं कि उसके मां-बाप ही बदल जायेंगे, वे कुछ के कुछ हो जायेंगे, इसका यह अर्थ नहीं है। अच्छा कहते हैं साहब कि वशिष्ठ जी यूं थे, अमुक-अमुक के गर्भ से पैदा हो गये। "**गणिका गर्भ संभूतो-वशिष्ठस्य महामुनि**" ये सब प्रमाण सुनाये, इन सब प्रमाणों की जरूरत नहीं थी, पर सुना दिये तो उत्तर सुनों इनके। गणिका नाम वैश्या और हरिणी, ये जो हरिणी आप समझते हो ये हरिणी।

अरे भइया ये तो नाम हैं, गणिका, कौन थी ? किसको बोलते हैं गणिका ? महाराज जी केवल वैश्या को ही गणिका नहीं कहते "**गण**" संख्या में धातु है "**गण**" ! स्वामी जी महाराज ये व्याकरण की बातें हैं, पुराण को कहते हैं "**गणक ज्योतिकानाम्**" मैथमैटिक्स जानने वाले का नाम है "**गणक**" और अगर स्त्री हो तो जैसे पाठक और पाठिका, वैसे ही गणक और गणिका, तो इसलिए इसमें कोई बात नहीं है और कौन किससे पैदा हुआ ? तथा वशिष्ठ जी महाराज कौन थे ? अब क्यों क्या नाम सन्देह में पड़ते हैं, वशिष्ठ जी का हम आपको मन्त्र सुनावें, वे वेदोक्त ऋषि हैं, वशिष्ठ जी किसके पुत्र थे ? इसमें लिखा है—"**उदासिमैत्रावरुणो वशिष्ठो**......" यह ऋग्वेद है, सातवां मण्डल, सूक्त-३३, भइया बड़े सीधे शब्द, साधारण संस्कृत जानने वाला भी समझेगा, कि—"**उदासि**

मेत्रा वरुणो वशिष्ठो, वश्याब्रह्मण मनसोभिजातः" इसमें तो **"मनसो भिजातः"** मानसिक दृष्टि की चर्चा है, सृष्टि वाली बात की चर्चा इसमें नहीं है, **"वोमेत्रावर्ण"** से मित्रा वरण की सन्तान थे।—**"स्वपनं कन्नं ब्राह्मणा देतेनः विश्वेदेवा पुष्करे स्वावदन्तः"**······" इसलिए मित्रा वरण ऋषि की सन्तान हुए वशिष्ठ जी महाराज ! वेद में जिनका वर्णन आता है। इसलिए कौन ऋषि कैसे हुआ ? इसमें कोई ज्यादा······चारो तरफ शोर······अच्छा स्वामी जी ब्रह्मज्ञानी की बात कह रहे हैं।

हमने भागवत के प्रमाण को कहा कि वो ब्रह्मज्ञानी हो गये, परन्तु आपने कहा कि—ब्राह्मण हो गये। एक बड़ा ही प्रसिद्ध श्लोक है बहुत ही प्रसिद्ध है, आप भी सुनों, उसमें लिखा है—**"ब्रह्म जानाति सः ब्राह्मण"** अर्थात् जो ब्रह्म का, वेद का, तत्व जान जाता है, अर्थात् उसका मर्मज्ञ हो जाता है उसको ब्राह्मण कहते हैं, ऐसे ही ये भी ब्रह्म के ज्ञाता हो गये, तो उनके समान आदरणीय हो गये। उनकी जाति परिवर्तित हो गयी हो अर्थात् वे क्षत्रीय न रह पाये हों ऐसा शब्द भागवत में कहीं नहीं है। उनका क्षत्रियत्व बदल गया हो और वे क्षत्रीय ही न रहे हों; हम तो उदाहरण दे रहे हैं राजा जनक का। आपके सामने हमने राजा जनक का उदाहरण पेश किया था। इसलिए राजा जनक का उदाहरण, द्रौणाचार्य, महाराज का उदाहरण ये सब, और जो हमारे द्वारा बोला गया मन्त्र है, इन सबको फिर याद दिला रहे हैं, आपको। शतपथ शाखा, यजुर्वेद का—उसमें लिखा हैं—**"सः शूद्रम् वर्णम् असृजतः"** अर्थात् शूद्र वर्ण की सृष्टि की **"अजायतः"** के बारे में तो आप बार-बार कि यह तो पूछा ही नहीं, यह सवाल ही नहीं था, तो कैसे जन्म हुआ यह क्यों लिखें ? मैं पूछ रहा हूं **"असृजतः"** पर आपको क्या कहना है ? **"सः शूद्रम् वर्णम् असृजतः"** अर्थात् शूद्र वर्ण की सृष्टि की, इस मन्त्र के ऊपर और सुनो हमारे यहां ये ज्यादा प्रमाण सुना रहे हैं स्वामी जी। अमुख में ऐसे गुण कर्म हो गये वह ब्राह्मण हो गया, अमुख में वैसे गुण-कर्म हो गये वह ब्राह्मण हो गया, ये प्रमाण सुनाने की आवश्यकता इसलिए नहीं कि यह गुण कर्म तो हम भी मानते हैं, कि गुण-कर्म तो होने ही चाहिये, हम तो कहते हैं कि गुण-कर्म ही नहीं स्वभाव भी हो वैसा। और फिर सबसे बड़ी तो यह भी है कि वैसे ही माता-पिता के यहां उसका जन्म भी हो, हम चार चीजें मान रहे हैं, और आप केवल दो पर ही जोर दे रहे हैं, हम दो, उन दो के साथ साथ······इसलिए दो वाले प्रमाण ज्यादा मत सुनाओ और टाइम रह गया है थोड़ा, स्वामी जी ! यों ही निकल जायेगा और शायद अन्तिम टर्न होने वाली है, इसलिए नयी बात मत छेड़ो। हमारी जो बात आपके ऊपर उधार है, हम अध्यक्ष महोदय से प्रार्थना करेंगे कि वक्ता को विषयान्तर में जाने से रोके और हमारे पूर्व प्रश्नों के समाधान की ओर केन्द्रित करें, और हाँ···टर्न टन टन ऽ ऽ ऽ······

श्री अमर स्वामी जी महाराज—

आचार्य जी ! विषयान्तर की तो मुझे आवश्यकता ही नहीं है, और न मैं कभी भूल कर भी कहूंगा विषयान्तर, ये बात आप पर ही है, तो मैं कह रहा था, आपने पूछा विशेष कर्म, ब्राह्मण जो अध्यापक है, वे ब्राह्मण हो जायेंगे, क्यों हो जायेंगे ? क्यों जी क्या आप मानते हैं ? आप भी तो यही कहते हैं, खोटी अठन्नी आपने क्यों कही उनको ? अठन्नी कहते हो तो खोटी क्यों कही ? इसलिए कही कि अठन्नी में जो गुण होने चाहिये वे उसमें हैं नहीं ! और यदि उसमें वे गुण होते तो अठन्नी होती खरी। उसे खोटी कहने वाले को जेल जाना पड़ता तो इसलिए मैंने कहा कि जो गुण, कर्म स्वभाव से युक्त है वो ही है, और जिसमें कोई आकृति नहीं दिखाई देती है, व काम उसने कर दिया है, उसको कोई वर्ण बदलने की बात नहीं है, यह तो विशेष काम है विशेष ! जिसे व्यक्ति सारी आयु भर करता रहता है, वर्षों से करता रहता है, और गुण कर्म भी है और स्वभाव भी मैं कब कहता हूं कि स्वभाव नहीं है उसमें ? उसमें स्वभाव भी है, स्वभाव भी होना चाहिये, प्रकृति के अनुसार चलेगा तो काम ठीक

होगा, इसीलिए मैं कह रहा हूं ! और हां !! आपने एक बात बहुत ही बढ़िया कही है हमारे श्रोताओं के लिए धन्यवाद आपका ! परमात्मा करे ऐसा ही मत आपका बनता चला जाये, और अच्छा होवे, आपने कहा है कि— "**शूद्र जो विद्वान होगा उसका वही सम्मान होगा जो ब्राह्मण का होता है।**" यही तो आचार्य जी मैं कहता हूं। और झगड़ा ही क्या है ? रोना ही सारा ये था, और ये आपने मान लिया, परमात्मा आपका भला करे······चारों तरफ तालियां ही तालियां······शान्त ! शान्त !! भाइयों मेरे पास यहां स्टेज पर मिठाई होती तो मैं आचार्य जी को अभी मिठाई खिलाता, क्योंकि आपने वह बात कह दी (मान ली) जिसे हम कहते हैं, और यही इनको कहनी भी चाहिये······बोलो वैदिक धर्म की जय ······(श्रोताओं में चारों तरफ हर्ष ध्वनि······और महाराज आचार्य जी ये ही बात तो हम कहते हैं ·· पौराणिक समुदाय का स्तब्ध रहना······आचार्य जी वो नहीं होना चाहिये कि शूद्र जो है वो विद्वान हो जाये फिर भी मान न पावे, और ब्राह्मण अविद्वान भी मान पाता रहे, हम भी यही कहते हैं, आपने भी मान लिया, जो ब्राह्मण नहीं रहा उसे तो ब्राह्मणों में से निकाल ही देना चाहिये। आपने भी मान लिया तो झगड़ा खत्म हुआ······पुनः तालियां······मैंने एक बात "**वर्ण**" की कही वर्ण शब्द है, उणादि कोष में वर्ण शब्द का अर्थ देखिये वहां क्या अर्थ किया है ? ब्राह्मणादि, शुक्लादि और इसी प्रकार से वर्णोभनोते, वहां पर तो कहां······टनं टन टन······

श्री पण्डित प्रेमाचार्य जी—

आपने क्या बाचाँ जरा बताओ ?

श्री अमर स्वामी जी महाराज—

वर्ण उणादि कोष का, वर्ण शब्द का उणादि कोष !

श्री पण्डित प्रेमाचार्य जी—

पता दीजिये, अता-पता बता दीजिये।

श्री अमर स्वामी जी महाराज—

तो भाइयो ! ये सब मैंने बताया, अब सुनों इन्होंने गणिका का अर्थ बोला कि गणित करने वाली स्त्री ! वाह !! क्या खूब, ये पुराण के अभिप्रायः के विरुद्ध है, सुनों—

हरिणी गर्भ संभूत ऋष्य श्रृंगो महामुनिः। तपसा ब्राह्मणो जातः संस्कारस्तेन कारणम्॥ २६ ॥

श्वपाकी गर्भ संभूतः पिता व्यासस्य पार्थिवः। तपसा ब्राह्मणो जातः संस्कारस्तेन कारणम्॥ २७ ॥

उलूकी गर्भ संभूतः कणावाख्यो महामुनिः। तपसा ब्राह्मणो जातः संस्कारस्तेन कारणम्॥ २८ ॥

गणिका गर्भ संभूतो वसिष्ठश्च महामुनिः। तपसा ब्राह्मणो जातः संस्कारस्तेन कारणम्॥ २९ ॥

नातिका गर्भ संभूतो मन्दपालो महामुनिः। तपसा ब्राह्मणो जातः संस्कारस्तेन कारणम्॥ ३० ॥

अब इनको इन सब की व्युत्पत्ति करनी पड़ेगी, गणिका की तो कर दि, बाकी इन सबकी अलग-अलग करनी होगी। और ये वेद वचन जैसे होवें, सामान्य शब्द बन गये अब शाब्दिक और जातीय अर्थ किये जावेंगे, अब तक तो वेद का ही अर्थ करते थे, अब ये भी कहने लगे कि गणिका का तो वैश्या अर्थ रूढ़ में हैं, भाइयों

रूढ़ शब्द है वैश्या के अर्थ में और फिर ये अग्नि, कौन है जी ? और उलूकी कौन है ? अक्षया कौन है ? इसलिए सबकी निश्पत्तियां करके चलना सड़ेगा। इसलिए क्या विशेषता नहीं है इनमें कि उसके गर्भ से हुआ तो संस्कारों से हुआ है। संस्कारों से उसको ये वर्ण मिला, इसके बाद यह बात कहने की क्या आवश्यकता हुई ? यदि यह वो कोई ऐसी कोई छोटी बात नहीं है तो यह कहने की क्या आवश्यकता हुई कि इससे उत्पन्न होने पर भी संस्कारों के कारण वे ब्राह्मण बन गये यह कहने की क्या आवश्यकता हुई ? साफ पता लगता है कि, यह इसलिए कहा गया है कि, वह कोई दूसरी वस्तु है। तो गणिका अजामिल, गिद्ध, व्याधादि खल तारेऊ धना, तुलसीदास जी, ने गणिका वही कही होगी जो गणना करने वाली अर्थात् गिनती गिनने वाली। ये जो गणिका हिसाब लगाने वाली ? कहाँ-कहाँ भटकते फिरते हैं, आप महराज जी, आचार्य जी, वहीं पर रहिये, जहाँ पर हैं, वशिष्ठ का नाम आपने वेद में, से निकाल कर दिखला दिया, बहुत ही अच्छा किया।

वशिष्ठ जो हैं, वेद में जिनका नाम आया है वे ही हैं, वो ही वशिष्ठ हैं, महाराज मीमाँसा दर्शन में कहा है ऋषि ने कि—हमें कहा है कि—ये सामान्य शब्द हैं जो वेद में आये, किसी विशेष व्यक्ति के नाम नहीं है और आपने विशेष व्यक्ति का नाम बता दिया, गणका से उत्पन्न हुए और वेद में उनका नाम है। परन्तु वेद में उनका नाम नहीं है, वेद में तो वशिष्ठ नाम है, वशिष्ठ प्रणों का भी नाम है, वेद में प्रण का भी नाम वशिष्ठ है, इसके लिए मैं प्रमाण भी दे सकता हूँ, आवश्यकता पड़ने पर। तो इस वास्ते मैंने आपके सामने यह बात कही है और इसलिए कि यह बात सैद्धान्तिक रूप में हो, "**ब्रह्म जानाति ब्राह्मणः**" ये आपने बोला। एक बात और आपने कही, क्योंजी माता-पिता के गुण-कर्म क्यों देखेंगे ? क्या माता-पिता के गुण कर्म देखने से पार हो जायेगा ? हम तो माता पिता को तभी ब्राह्मण मानेंगे यदि उनके ब्राह्मण के से गुण कर्म होंगे तो उनको भी ब्राह्मण तभी मानेंगे और उनकी सन्तान को देखेंगे तो वो अच्छा होगा।

गुण-कर्म-स्वभाव से माता-पिता भी ब्राह्मण, गुण कर्म-स्वभाव से पुत्र भी ब्राह्मण, बड़ी अच्छी बात है, अगर हम यह सब देखें तो इसमें बुराई ही क्या है ? माता-पिता क्यों देखेंगे जी ? इसलिए देखेंगे कि गुण कर्म स्वभाव उनके अन्दर होंगे तो पुत्र पर अच्छे संस्कार आवेंगे और अगर वैसे ही नाम मात्र की अठन्नी है वो तो काहे को होगा विवाह ? उनका गुण-कर्म-स्वभाव नहीं है तो। इसलिए देखते हैं कि माता-पिता के गुण-कर्म-स्वभाव उसी प्रकार के हैं तो घर में भी शिक्षा अच्छी मिली होगी।

और अगर माता-पिता के गुण-कर्म-स्वभाव उस प्रकार के नहीं है तो ················एक श्लोक आपने कहा था, कि—"**ब्रह्म जानाति ब्राह्मणः**" ये श्लोक का एक टुकड़ा बोला, पूरा बोलते तो अच्छा होता। पूरा श्लोक बोलते तो ये होता—"**जन्मना जायते शूद्रः, संस्कारात् द्विजोच्यते । वेद पाठी भवेत् विप्रः ब्रह्म जानाति ब्राह्मणः ।।**" ये हुआ पूरा श्लोक ! परन्तु आप पूरा श्लोक बोलते क्यों ? वहाँ पूरा बोलने पर गड़बड़ी जो पड़ती थी, कि "**जन्मनः जायते शूद्रः**" न बोल करके आपने यह बोल दिया कि—"**ब्रह्म जानाति ब्राह्मणः**" पर मुझे तो पूरा का पूरा याद है, याद आपको भी है। मैं ऐसे ही थोड़े मानता हूँ, में मानता हूँ आप विद्वान हैं, मैं ऐसा नहीं श्रोताओं पर प्रदर्शित करता कि देखो भाइयों अगर याद होता या इन्होंने कहीं पढ़ा होता तो पूरा श्लोक बोलते। नहीं ये बात है ही नहीं, आपको पूरा श्लोक याद है आपने पढ़ा हुआ भी है। आप विद्वान भी हैं, बस ! आपने जानबूझ कर छोड़ दिया है इस अंश को। क्यों छोड़ दिया ? उसे भी आप खूब समझते हैं············प्रेमाचार्य जी का मुस्कुराना ············मैं भी समझता हू, आप अच्छी तरह जानते थे कि इस श्लोक के पूरा पढ़ने पर पोल खुल जायेगी। और गड़बड़ हो जायेगी, और सैद्धान्तिक रूप से हमारी बात हट जावेगी। इसलिए आपने केवल एक टुकड़ा बोल

दिया, और मैंने उसी प्रकार का श्लोक मनुस्मृति का बोला था कि—"**शूद्रेस्य सम तावत् यावत् वेदे न जायते**" अर्थात् शूद्र के समान है वह ब्राह्मण जब तक कि वह वेद आरम्भ नहीं करता।

जब इन्हें आवश्यकता होगी तो मैं अता-पता भी बता दुंगा, ये जब चाहें पूछ लें। और ये बात नहीं हैं वो सब जानते हैं, मैं जहाँ से बोल रहा हूँ। भाइयों वो आप की तरह नहीं बल्कि ज्ञानवान हैं, तो भी अगर वो चाहें तो अता-पता पूछ सकते हैं............विघ्न............तो मैं कह रहा था इस प्रकार से हमारे यहाँ कहा गया है—"**पूर्वो नो जातो ब्राह्मणो ब्रह्मचारी**............" ऐसा मन्त्र देकर के ऋषि दयानन्द जी महराज वेद अध्यात्मिका में लिखते हैं कि—"**जो ब्रह्मचारी पूर्व पढ़कर ब्राह्मण होता है वह धर्मानुष्ठान से स्वयं पुरुषार्थी होकर मनुष्यों का कल्याण करता है**" तो कहने का तात्पर्य यह है कि—हम गुण-कर्म-स्वभाव की बात कह रहे हैं, तो ये "**गणिका गर्भ संभूत**............" वाली बात जो है वह बनेगी नहीं, पण्डित जी! उस तरह से बात नहीं बनती, यहां तो साफ और स्पष्ट लिखा हुआ है—"**हरिणी गर्भ संभूत, ऋषय श्रृंगो महामुनिः। ब्राह्मणो** जातः संस्कारस्तेन: **कारणम्**"॥ यहाँ पर हिरणी है, श्वपाकी है, उलूकी है, यहां एक थोड़े ही है, यहां तो बहुतेरे हैं। एक-एक को लेकर आप.........टर्न टन टन ऽ ऽ ऽ......

श्री पण्डित प्रेमाचार्य जी शास्त्री—

महानुभाव! अभी जैसा......(बीच में अध्यक्ष जी ने कहा).........

अध्यक्ष महोदय—

आचार्य जी अब ये आपके बोलने की इस शास्त्रार्थ में अन्तिम बारी है।

श्री पण्डित प्रेमाचार्य जी शास्त्री—

महानुभाव, अभी जैसा कि अध्यक्ष जी द्वारा सूचना मिली कि ये शास्त्रार्थ की अन्तिम टर्न चल रही है, मैंने अन्तिम टर्न से पहले ही स्वामी जी से निवेदन किया था कि मेरे जो पिछले प्रश्न आ रहे हैं उन पर आप कुछ सोचो। मैं फिर प्रमाण दोहराता हूँ—"**सः शौद्रम् वर्णम् असृजत:**" इस बात पर मेरे निवेदन करने पर भी स्वामी जी ने विचार नहीं किया। और कहते हैं साहब! हम तो लड़का लड़की के विवाह के समय देखेंगे माँ-बाप को भी अगर माँ-बाप भी ब्राह्मण होंगे तो हम विवाह करेंगे, मैं तो इसके आगे एक बात कह रहा हूँ कि अगर माँ-बाप ब्राह्मण नहीं हैं, आपकी मान्यता के अनुसार अनपढ़ हैं केवल बेटा बेटी ही पढ़ा लिख गये हैं जिनको सार्टिफिकेट मिल गया है ब्राह्मण होने का। तो उनका विवाह होगा कि नहीं? क्या आप कह रहे हो कि माँ-बाप को भी देखेंगे, भाइयों माँ-बाप को तो देख लिया, वह तो ब्राह्मण हैं ही नहीं, केवल बेटा-बेटी ही हैं ब्राह्मण तो भइया बदले जायेंगे या विवाह होगा कि नहीं होगा? इस बात के ऊपर स्वामी जी को विचार करना चाहिये था, अब अन्तिम टर्न में ही विचार कर लें, अब तक तो किया नहीं, केवल कर्म से जाति होती है, जन्म का कारण नहीं होता, यह हम शुरू से पूछ रहे हैं कि कोई वेद मन्त्र हो तो दो, मैंने वेद मन्त्र दिया था ऋग्वेद का—"**न अन्यो दरियो-मन्सामन्तवाहु**—" और "**नित्यस्वरायततस्याम:** ......" अर्थात् हे भगवान हम अपनी औरस सन्तान के स्वामी बन कर रहें, यह हम वेद में प्रार्थना करते हैं, पर आपकी राज्य सभा हमारे बेटों को छीनकर दूसरों को तकसीम करने की व्यवस्था बताती है, तो वेद की प्रार्थना! मैं समझता हूँ कहाँ तर्क संगत रही?

तो वेद तो कहते हैं कि अदला-बदली मत करो, आप करने को तैयार हैं तो वह कर्मणा वर्ण व्यवस्था मानी जाये जिसके लिए कोई वेद मन्त्र प्रारम्भ से लेकर आपने उपस्थित नहीं किया। न ही हमें सुनाया कोई वेद मन्त्र और केवल वही अपनी पुरानी बात जो कई बार से दोहरा रहे हैं उसी को फिर से कह रहे हैं, मैं मनु महराज का प्रमाण सुनाता हूँ, मनु जी का ! सुनों और **"शूद्रो ब्राह्मण तामेति**·········" मैंने कहा था—"**शूद्रो ब्राह्मण तामेति**·········" यहाँ ब्राह्मण—तामेति में जो "ता" है, ये तो इसमें विशेष अर्थ को प्रकट करता है, ब्राह्मण होवे, माने उनका वर्ण बदल गया, तबदील हो गये, उनकी जाति बदल गयी यह अर्थ नहीं बल्कि ब्राह्मण "ता" मैंने वह ब्राह्मणों जैसे हो गये। फिर सुन लो—"**शूद्रो ब्राह्मण तामेति ब्राह्मश्चैव शूद्रताम्**" आदि वचनों से यह भाव निकलता है कि—"शूद्र ब्राह्मण जैसा और ब्राह्मण, शूद्र जैसा चाहे लगने लगे पर ब्राह्मण शूद्र नहीं हो जाता है। और शूद्र ब्राह्मण नहीं हो जाता है। तो बात यहीं खत्म हुई। आगे कहते हैं साहब ! कि आपने भी मान लिया कि जो शूद्र विद्वान हो जायेगा, पढ़ा-लिखा हो जायेगा तो उसका ब्राह्मणों जैसा आदर होगा। तो यह तो हम प्रारम्भ से ही कह रहे हैं, इसमें आपने वर्ण-कर्म अनुसार योग्यता होगी, जरूर अपने वर्णों में उसी प्रकार माननीय व सम्माननीय होगा।

निन्दनीय तो वह है जिसमें इन चारों अंगों में से, क्या नाम············जन्म तो है, केवल परन्तु न उसमें वैसा स्वभाव है, न वैसा गुण है और न वैसा कर्म है, तब वह फिर हो ही नहीं पायेगा। इसलिए महाभाष्य में महर्षि पतञ्जली कहते हैं,—"**तपस्वत्च विद्या च एतद् ब्राह्मण कारणम् सपसूताभ्याम् यो हीनः जाति ब्राह्मण एव तः**" अर्थात् तपस्वी होना, विद्वान होना योग्य होना, यह तो ब्राह्मण का लक्षण है। ब्राह्मण तो ऐसा ही होना चाहिये, ब्राह्मण में ब्राह्मण होने के साथ-साथ ये गुण भी उसमें होने चाहिये वैसा ही स्वभावादि भी होना चाहिये। अगर उसमें ये सब नहीं हैं तो पतंजलि कहते हैं महाभाष्य में उद्धरण देकर—"**यो जाति ब्राह्मण एव तः**" वो जाति से ब्राह्मण है माने केवल ब्राह्मण के घर में पैदा मात्र हुआ है, उसमें ब्राह्मणों जैसे गुण कर्म आदि न होने के कारण वो उतना प्रशसंनीय व आदरणीय नहीं है इसलिए "**ब्राह्मण तामेति**" और स्वामी दयानन्द जी का जो उदाहरण हम दे रहे हैं············व्याकरण का, अरे ब्राह्मण सन्तान अर्थ में होगा अमुक प्रत्यय और क्षत्रिय का औरस पुत्र में होगा अमुक प्रत्यय, उस तरह स्वामी दयानन्द जी की व्यवस्था को स्वामी जी ने स्पर्श ही नहीं किया, वेदांग प्रकाश में जो स्वामी दयानन्द जी लिखते हैं और भइया हमने उदाहरण दिया था शतपथ शाखा का कि—"**सः शौद्रम् वर्णम् असृजत**" उसके ऊपर कुछ नहीं कहा, हमने वेद मन्त्र मांगा था कर्मानुसार वर्ण व्यवस्था का प्रतिपादन करने वाला इन पुराणों के प्रमाण सुनने से क्या हमारे यहां तो देखो अनेकों भक्त हुए हैं, भगवान का भक्त होगा भगवान को प्राप्त करना इसके लिए किसी के लिए द्वार बन्द नहीं है।

हमारे यहां भक्तमाल में सब भक्तों की कथा आती है उसमें रैदास चमार भी है, नन्दा नाई भी, धन्ना जाट भी, नामदेव छींदा भी, सदना कसाई भी है, जब ये सब कर्म करने वाले विद्वान, भगवान के भक्त हो गये, हम आज तक इनका सम्मान करते हैं। आदर से इनका नाम लेते हैं, रैदास चमार था, जूते-गांठना बन्द नहीं किया उसने परम्परागत सब काम वह करता ही रहा। पर क्या बोलता था रैदास ? वह कहता था कि—"**मेरी जात कमीनी, पात कमीनी ओछा जन्म हमारो । तू रक्षक राजा रामचन्द्र कह रविदास चमारो ।।**" इसलिए ये सब प्रमाण············कोई नई बात न छेड़ कर हमारी इन सब बातों का उत्तर दीजिये, और एक आधे मिनट की बात और कह दें कि ये जो शास्त्रार्थ सभा का आयोजन हुआ, इसमें आप सभी सज्जनों ने धैर्य पूर्वक सम्मिलित होकर दोनों पक्षों की बात-चीत सुनी यदा-कदा शोरोगुल हुआ जो नहीं होना चाहिये था, यद्यपि प्रारम्भ से ही हमारा आग्रह था कि शास्त्रार्थ होवे, और जरूर होवे। विचार विनिमय का द्वार हमेशा खुला रहना चाहिये, किसी की

खोपड़ी बन्द मत करो वो अपने निर्णयानुसार अपनी व्यवस्था माने तो शास्त्रार्थ होवे परन्तु किसी निर्णायक-मध्यस्थ की विद्यमानता में होवे, पर निर्णायक-मध्यस्थ वाली शर्त जो हमारी थी, वह हमारे आर्य समाजी भाइयों ने नहीं मानी ।

यहां जो अध्यक्ष महोदय विराजमान हैं, क्षमा करना ये केवल टाईम कन्ट्रोलर हैं। घण्टी बजाना ही सिर्फ इनका काम है, और कोई ड्यूटी इनको नहीं सौंपी गई, हम चाहते थे कि कोई विद्वान जैसे प्रोफेसर साहब हमारे सामने बैठे हैं, श्री धर्मालंकार जी हैं, ऐसे किसी सज्जन योग्य पुरुष को जो निष्पक्ष होकर न्याय कर सकता, दोनों पक्षों की बात सुनकर ऐसा मध्यस्थ होना चाहिये और संस्कृत में शास्त्रार्थ होता, क्योंकि वेद शास्त्र सब संस्कृत भाषा में हैं, लोगों को हिन्दी भाषा सुनाई जाती तो बात और भी बढ़िया हो जाती, चलो फिर कभी आगे कर लेंगे हमारे भाई हमारे इन प्रस्तावों को । अब तो हमने इनकी सभी शर्तें मान कर इस शास्त्रार्थ सम्मेलन में भाग लिया, आप सभी सज्जनों का विशेष कर अध्यक्ष महोदय का और अपने वयोवृद्ध आर्य सन्यासी श्री ठाकुर······ सोरी-सोरी·········· भाइयों·········माफ करना ये इनका पुराना नाम है, ये इनके पूर्वाश्रम का नाम है ····· आर्य सन्यासी श्री अमर स्वामी जी,··· भई क्या करें वह "ठाकुर" शब्द ऐसा पीछे पड़ा है इनके कि वह छूटेगा नहीं इसलिए इन्होंने सम्मिलित होकर शास्त्रार्थ में भाग लिया इसके लिये हम धन्यवाद देते हुए अपनी बात को अध्यक्ष महोदय पर सौंपते हैं ।

श्री अमर स्वामी जी महाराज—

मैं बहुत-बहुत धन्यवाद करता हूं आचार्य जी का ! अब थोड़ी सी बात कहनी है, उसके बाद शास्त्रार्थ समाप्त होता है, बहुत अच्छे ढंग से उन्होंने और बड़े प्रेम से, सभ्यतायुक्त हमारे साथ व्यवहार किया, मैं इनको पुनः धन्यवाद देता हूं और शुभकामना भी करता हूं कि परमात्मा करे कि उनको आगे सन्मार्ग मिले । और अपने धर्मालंकार जी का भी बहुत-बहुत धन्यवाद करता हूं, वे बहुत सज्जन हैं, बहुत अच्छा काम किया और बड़े प्रेम से आपका भी सबका धन्यवाद । तो मुझे जो थोड़ी सी बात कहनी है वह इस प्रकार है कि—आरम्भ से लेकर मैंने कहा कि वेद में यह कहा गया है कि ब्राह्मण कौन होता है ? क्षत्रीय कौन ? आदि-आदि, लक्षण बताये गए कि मुख के समान जो है वह ब्राह्मण है, भुजाओं के समान रक्षा करने वाला क्षत्रीय है, और पैरों से भार ढोने वाला शूद्र है, ऐसा करता है, और ऐसा नहीं करता है जो जैसा करता है वो वैसा है ।

तो ये इतनी सी बात वहीं पर कही गई । और इसी प्रकार से "असृजत" बार-बार क्यूं नहीं कहा, मैंने कहा कि वहाँ पर प्रश्न ये नहीं है, कि कौन किससे बनाया गया ? वेद में यह नहीं पूछा गया कि कौन किससे पैदा हुआ ? क्षत्रीय काहे से पैदा हुआ ? वैश्य काहे से हुआ ? पैदा होने से कोई शृष्टि में··· · जैसे सब पैदा हुए वैसे ही ये भी हुए । ब्राह्मण, क्षत्रीयादि सब वैसे ही पैदा होते हैं, उत्पन्न होने में कोई किसी प्रकार का अन्तर नहीं है । तो आप कैसे सिद्ध करना चाहते हैं ? पैरों से पैदा हुआ तो अब पैरों से क्यों नहीं होता ? अतः बात साफ हुई कि न पैरों से शूद्र पैदा हुआ न मुख से ब्राह्मण ही हुआ, ये तो केवल बात यह है कि ब्राह्मण वह जो मुख के समान गुण-कर्म-स्वभाव वाला है, रही अदला-बदली की बात ? भाइयों अदला-बदली की तो आवश्यकता ही नहीं है, अदला-बदली न करेंगे न देखेंगे, ये राज्य का काम है, अब रही पुत्र की बात ? हम देखते हैं बहुत से पुत्र नालायक हैं, अपने माता-पिता को दुख देते हैं, और बहुत से आपकी तरह बहुत अच्छे हैं, जो आदर सत्कार के साथ साथ मां-बाप की सेवा भी करते हैं, मैं कब कहता हूं कि आपको वर्ण बदल लेना चाहिए मैं तो उन नालायकों के लिए कहता हूं कि उन्हें निकाल देना चाहिए, बदल देना चाहिए, आप जैसे तो धन्य हैं जो कि अपने माता-पिता की सेवा करते हैं, और

ये कहा कि शूद्र कौन ?—"त्र्यहेण शूद्रो भवति ब्राह्मणः क्षीर विक्रियात्" मनु जी महाराज कहते हैं कि जो ब्राह्मण दूध बेचता है वह तीन दिन में शूद्र हो जाता है, इसके साथ-साथ मैंने कहा था कि—ऋषभ देव जी के ८१ पुत्र ब्राह्मण हो गए, ऐसा श्रीमद्‌भागवत में लिखा है, वशिष्ठ ऋषि ब्राह्मण हो गए, विश्वामित्र ब्राह्मण हो गए जो क्षत्रीय पुत्र थे, इसलिए·········

(बीच में प्रेमाचार्य जी ने कहा···स्वामी जी नई बात मत कहिए)······लो भाइयो ये और सुनो क्या ये बातें आपने शास्त्रार्थ के बीच नहीं सुनी ? न जाने आचार्य जी कहाँ थे उस समय, महाराज जी मैं तो कोई नई बात नहीं कह रहा हूं, श्रीमद्‌भागवत् से मैंने बतलाया, तो ये वर्ण परिवर्तन तो सदा होता रहा है, और हां ! सुनो हमारा यही कोई लक्ष्य नहीं है कि अवश्य ही होवे, गुण, कर्म, स्वभाव बदलें, पूर्व स्वभाव से जो हैं वो उसी प्रकार के रहे आवें तो बड़ी अच्छी बात है । माता-पिता के गुण-कर्म-स्वभाव हम क्यों देखते हैं ? वो इसलिए कि अगर माता-पिता भी गुण कर्म स्वभाव से ब्राह्मण हों तो ज्यादा अच्छा है। अगर मां-बाप ब्राह्मण नहीं होंगे तो क्या उनकी सन्तानों का विवाह नहीं होगा ? होगा तो सही उनका भी, पर अच्छा यही है कि ये पता लग जाए कि उनके माता-पिता भी गुण-कर्म-स्वभाव से ब्राह्मण थे यह अति उत्तम होगा। आपने जरूर अपनी टर्न में नई बात कही है, उसका उत्तर भी सुनिए आपने कहा मध्यस्थ होना चाहिए था । संस्कृत में शास्त्रार्थ होना चाहिए था, ये सब बातें गड़बड़ की हैं, बात यह है कि—मध्यस्थ किसको बनावें ? सनातन धर्मी को या आर्य समाजी को ? आर्य समाजी और सनातनधर्मी दोनों में से आर्य समाजी, आर्य समाजियों का पक्ष करेगा, सनातनधर्मी, सनातनधर्मियों का पक्ष लेगा, अगर ईसाई को बना दें, या मुसलमान को बना दें, परन्तु सनातनधर्मियों से या आर्य समाजियों से बड़ा विद्वान उनमें मिलना कठिन है, सनातनधर्मियों में बड़े-बड़े प्रकाण्ड पण्डित हैं, उनके मुकाबले में कोई ईसाइयों में नहीं है, न मुसलमानों में है, इसलिए मध्यस्थ वाली बात बिल्कुल गलत, मध्यस्थ का तो केवल झगड़े का चिन्ह है, यह तो आपस में विचार हो रहा है, हार-जीत का तो कोई प्रश्न ही नहीं है । हमने कहाँ कहा है कि आप हार गए ? हम यहाँ से लिख करके भेज देंगे कि वो हार गए । हारने का तो कोई प्रश्न ही नहीं है ।

बात हुई है, आपस में बैठ करके अपने-अपने बिचार रक्खे हैं, श्रोतागण स्वयं निर्णय ले लेंगे । श्रोतागण भी तो विद्वान हैं ये कोई······हंसी······आप ऐसी शंका क्यों करते हैं ? और इसके साथ ही आपने कह दी वो संस्कृत वाली बात ! शास्त्रार्थ संस्कृत में होना चाहिए वह इसलिए कि वेद और शास्त्र सभी संस्कृत में हैं, ठीक है संस्कृत में हैं, ठीक है संस्कृत में करते तो आधे से ज्यादा समय व्यर्थ जाता, वो केवल संस्कृत में ही होकर रह जाता सो बात तो थी नहीं, हिन्दी फिर भी करनी पड़ती तो फिर यहाँ कोई संस्कृत प्रतियोगिता तो हो नहीं रही······चारों तरफ हंसी···न कोई संस्कृत की परीक्षा ही हो रही ? आप एक बात छोड़ गए वह भी कह देते जो सब जगह कहते हो कि लिखित होना चाहिए, ये सब बातें समय को व्यर्थ बर्बाद करने की हैं । जो बात पाँच मिनट में हो सकती है वह पच्चीस मिनट में होगी ये कहाँ की बुद्धिमता है ? और फिर सबसे बड़ी बात तो ये है कि शास्त्रार्थ किसके लिए हो रहा है, जनता के लिए, तो क्या ये सारे श्रोतागण संस्कृतज्ञ बैठे हैं ? हम-आप संस्कृत बोलते रहें, लिखते रहें, और जनता हमारा मुख ताकती रहे, क्या इस बात को कोई भी व्यक्ति पसन्द करेगा ? कदापि नहीं । तो ये सब व्यर्थ की बातें हैं, मैंने बड़े-बड़े मौलवियों व पादरियों से शास्त्रार्थ किए परन्तु किसी ने कभी अरबी, उर्दू आदि भाषाओं में शास्त्रार्थ करने का आग्रह नहीं किया, परन्तु यह रोग सिर्फ आपको है । और वह क्यों है ? ये मैं भली प्रकार जानता हूं ।······जनता में सन्नाटा·········

भाइयों इतना समय नहीं रहा अन्यथा मैं बताता कि ये इन शर्तों को क्यों रखते हैं[1] ? इन सब बातों का समय नहीं रहा, अब तो केवल परीक्षा इस बात की है कि आपके सिद्धान्त कहाँ तक ठीक हैं, और हमारे कहाँ तक, न कि आपकी संस्कृत कहाँ तक अच्छी है और मेरी कहाँ तक ! बल्कि सवाल इस बात का है कि आप जो बात कह रहे हैं वो कहाँ तक ठीक है ? और मैं जो कह रहा हूं वह कहाँ तक ठीक है ? जिसका आज साफ पता भी चल गया है···पुनः हंसी···इस वास्ते अब शास्त्रार्थों में यह होना चाहिए और बड़े अच्छे ढंग से यह तीन शास्त्रार्थ जैसे हुए हैं ऐसे ही हुआ करे तो इसी में आर्य समाज और सनातन धर्म दोनों का लाभ है। टर्न टन टन टन ऽऽ······

शास्त्रार्थ के अध्यक्ष—

सनातन धर्म शास्त्रार्थ मण्डल की ओर से मैं आर्य सन्यासी श्री स्वामी अमर स्वामी जी महाराज का विशेष कृतज्ञ हूं कि उन्होंने बड़े ही शान्ती और प्रेम से और धैर्य के साथ-साथ शास्त्रार्थ को निभाया है, उसके साथ-साथ मैं प्रो० रामसिंह जी जो कि मेरे परम् मित्र हैं, और वयोवृद्ध नेता हैं, उन्होंने बड़ी ही निष्पक्षता के साथ समय विभाजन किया है, क्योंकि टाइम कीपर ही हैं हम दोनों तो···हंसी···और सब कन्ट्रोल भी किया है समय को। और यहाँ के आर्य समाज के जो प्रधान और मन्त्री हैं, मैं उनसे भी बहुत प्रभावित हूं। उन्होंने भी अपनी सभ्यता व प्रेम का बड़ा प्रदर्शन किया है। शास्त्रार्थ में जो पत्र व्यवहार हमारे हुए, उनमें जो हम चाहते थे, वैसा तो उन्होंने स्वीकार नहीं किया लेकिन जो उन्होंने कहा हमने वह स्वीकार कर लिया, परन्तु मैं आगे यह अभिलाषा रखूंगा कि इस बार हमने तमाम उनकी शर्तें स्वीकार करके शास्त्रार्थ स्वीकार किया है। आगामी समय में वो हमारे शास्त्रार्थ के जो विषय हैं, जिन्हें उन्होंने स्वीकार नहीं किया उन पर वो शास्त्रार्थ करने के लिए सन्नद्ध होंगे। और भविष्य में भी आप देखेंगे कि इसी प्रकार प्रेमपूर्वक शास्त्रार्थ होगा······तालियाँ······अब रही बात यह कि मध्यस्थ रखें या न रखें ? कुछ भी हो लेकिन जनता के ऊपर प्रभाव पड़ता है वक्ताओं का। ये सिद्धान्त हैं, और सामने जनता है, जनता स्वयं निर्णय कर लेती हैं। ······जनता में जोरदार तालियों की गड़गड़ाहट······और यही कारण है कि जो विश्व में गीता का रामायण का, सनातन धर्म का व्यापक प्रचार कार्य हो रहा है। मैं धन्यवाद करता हूं।

आर्य समाज और सनातन धर्म ये दोनों एक हैं, और हम भारतवर्ष में ही अगर वेदों का प्रचार नहीं करेंगे तो कहाँ करेंगे ? हमारे बालक वेद विद्या पढ़ें, शास्त्रों को देखें। उनका अभ्यास करें ! और फिर उनको यह प्रोत्साहन कैसे मिलेगा ? यह केवल पण्डितों के वाद-विवाद से मिलेगा इसलिए मैं सनातनधर्मी वक्ता का भी बहुत आभारी हूं।

---

१. **टिप्पणी—**

इन सब बातों को विस्तार से समझने के लिए पूज्य अमर स्वामी जी महाराज द्वारा दिए गए **"शास्त्रार्थ के सामान्य नियम"** जो निर्णय के तट पर प्रथम भाग के आरम्भ में उद्धृत हैं देखें।

"सम्पादक"

एकसौ सातवां शास्त्रार्थ–

स्थान : प्राचीन आर्य समाचार पत्रों के माध्यम से (इलाहाबाद, कलकत्ता व लखनऊ)

दिनांक : सन् १८८४ ई० (महर्षि दयानन्द जी के बलीदानोपरान्त)

विषय : क्या "संस्कार विधि" की यज्ञ विधि का यह अंश प्रक्षिप्त है कि—"अयन्त इध्म आत्मा ·······" मन्त्र से समिधा डाली जावे ?

प्रक्षिप्त मानने वाले पक्ष की ओर से शास्त्रार्थकर्त्ता : श्री पण्डित गंगाप्रसाद जी उपाध्याय एम० ए० (इलाहाबाद)

प्रक्षिप्त न मानने वाले पक्ष की ओर से शास्त्रार्थकर्त्ता : १. श्री पण्डित ठाकुर अमरसिंह जी शास्त्रार्थ केशरी (कलकत्ता) वर्तमान—अमर स्वामी सरस्वती

सहायक : २. श्री पण्डित रामावतार जी शर्मा "पञ्चतीर्थ"

नोट :—(१) यह शास्त्रार्थ सामग्री, "आर्य मित्र" (लखनऊ) तथा "आर्य संसार" (कलकत्ता) के प्राचीन अंकों द्वारा प्राप्त हुई। जिनको मुझे फोटो कापी के रूप में "स्व० पूज्य श्री अमर स्वामी जी महाराज" अपनी मृत्यु से पहले प्रकाशनार्थ सौंप गये थे !

"लाजपतराय अग्रवाल"
(सम्पादक)

शास्त्रार्थ से पहले

मैंने एक बार आर्य पत्रों में यह प्रश्न उठाया कि—विवाह-संस्कार में प्रायः आर्य पण्डित चौथी परिक्रमा "**ओं भगाय स्वाहा**" खीलों की इस आहुति के पीछे कराते हैं यहऋषि दयानन्दजी की लिखी विधि के अनुकूल नहीं है। स्वामीजी ने यह आहुति चारों परिक्रमाओं के पीछे लिखी है। इसके पीछे वर और वधू को बैठ जाने का आदेश है परिक्रमा करने का नहीं। जो पण्डित इसके पीछे चौथी परिक्रमा कराते हैं वह इसका आधार बताने की कृपा करें। मेरे प्रश्न पर सारे आर्यजगत में से केवल दो पण्डितों के पत्र मुझको आये। एक श्री पं० चन्द्रमणि जी वेदालङ्कार (देहरादून) और दूसरे श्री पं० ऋषि मित्रजी आचार्य (आर्य समाज बम्बई)। इनके अतिरिक्त और किसी ने उस पर ध्यान नहीं दिया। फिर एक बार मैंने यह प्रश्न उठाया कि—होम करते समय प्रायः यह गड़बड़ होती है कि—कुछ लोग "**यदस्य कर्मणो०**" मन्त्र से सामग्री की आहुति भी आरम्भ करते हैं और कई लोग वहीं बैठे हुए दोनों हाथ उठाकर उन सामग्री की आहुति देनेवालों को रोकते हैं। "**ओं भुर्भू वः स्वः अग्न आयू ंषि०**" आदि चार और "**ओं त्वन्नो अग्ने०**" आदि ८ मन्त्रों से भी सामग्री नहीं देने देते। "**सूर्यो ज्योति०**" आदि चार और "**अग्निर्योति०**" आदि चार तथा "**आपो ज्योति०**" आदि चार से सामग्री की आहुति कराते है बीच में "**भूरग्नेय०**" आदि चार से भी सामग्री की आहुति नहीं होने देते हैं। मैंने पूछा था इन मन्त्रों से सामग्री की आहुति न हों और इनसे हों, ऐसा भेद करनेवालों के पास ऐसा करने के लिए क्या आधार है? वह कृपा करके बताने का कष्ट करें। सार्वदेशिक धर्मार्य सभा के श्री मन्त्रीजी की ओर से "**सार्वदेशिक**" मासिक पत्र में भी "**एष आदेशः**" "**एष उपदेशः**" इन वाक्यों के साथ इसी भेद की घोषणा हुई थी पर यह बताने का कष्ट किसी विद्वान् ने भी नहीं किया कि इस भेद का आधार क्या है? इस भेद के लिए प्रमाण क्या है?

श्री पं० गंगाप्रसादजी उपाध्याय, श्री गंगाप्रसादजी चीफ जज, आचार्य श्री पं० नरदेवजी शास्त्री, आचार्य श्री पं० वैद्यनाथजी शास्त्री की मैं प्रशंसा किए बिना नहीं रह सकता। ये विद्वान् उपस्थित हुए प्रश्नों पर अपनी सम्मति प्रायः देते हैं तथापि मेरे उठाये इन दोनों प्रश्नों पर उन्होंने भी कुछ नहीं लिखा। मुझको ऐसा लगता है कि इन विद्वानों से मेरे दोनों प्रश्नों का कुछ सम्बन्ध नहीं था। जिनसे सम्बन्ध था वे उदासीन रहे। श्री पं० गंगाप्रसाद जी वानप्रस्थी नैनीताल ने एक प्रश्न सृष्टि सम्वत् के भेद पर उठाया, श्री पं० गंगाप्रसादजी चीफ जज ने तत्काल एक छोटा-सा लेख लिखकर उस शंका के ठीक समाधान की ओर संकेत किया। यद्यपि उसमें पूरा समाधान नहीं था तथापि संकेत ठीक समाधान की ओर था। मैंने उस शंका का पूरा समाधान, प्रमाण और व्यवहार के साथ लिखकर "**आर्य मित्र**" को भेजा। वह प्रश्न भी अत्यावश्यक था और उत्तर भी अत्यावश्यक था, परन्तु "**आर्य मित्र**" में प्रश्न तो प्रकाशित हुआ जो मेरा भेजा हुआ था, परन्तु उत्तर प्रकाशित न हुआ। "**अयन्त इध्म आत्मा**" मन्त्र से समिदाधान करने पर "**श्री पं० गंगाप्रसादजी उपाध्याय**" ने उसको "**एक पुरानी उलझन**" बताकर उसपर प्रबल आक्षेप किया। श्री उपाध्यायजी का वह लेख आर्यमित्र में छपा।

आर्यमित्र को अन्य आर्य विद्वानों के विचार उस विषय पर मांगने चाहिए थे, अपने स्थम्भ इसके लिए खुले रखने चाहिए थे यह कोई व्यक्तिगत झगड़ा नहीं था, कर्मकाण्ड में नित्य व्यवहार में आनेवाली बात पर विचार था। श्री उपाध्याय वो साधारण व्यक्ति नहीं हैं। उनकी लेखनी से लिखी हुई बात यूं ही हवा में उड़ जाए यह सम्भव

नहीं है। यह तो सम्भव नहीं है कि उनके लेख को पढ़कर भूमण्डल के अधूरे आर्य उन्हीं के मत को स्वीकार कर लेंगे। उनके लेख से सारी यज्ञशालाओं में एक झगड़ा खड़ा हो जाएगा और वह प्रत्येक स्थान में होगा और प्रतिदिन होगा। एक पक्ष "अयन्त इध्म" इस मन्त्र से समिधा देगा, एक पक्ष श्री उपाध्यायजी के प्रभाव से इसका विरोध करेगा।

उस लेख से कितनी बड़ी समस्या उपस्थित हो गई इस पर न आर्य विद्वानों ने ध्यान दिया न आर्य पत्रों ने "श्री पं० रामावतारजी पन्चतीर्थ" आर्यसमाज के प्रसिद्ध विद्वान् हैं, उन्होंने "अयन्त इध्म आत्मा०" इस मन्त्र पर उठी समस्या पर पाण्डित्यपूर्ण लेख लिखा और "आर्य मित्र" व "सार्वदेशिक" आदि अनेक पत्रों में प्रकाशनार्थ भेजा पर किसी पत्र ने वह लेख नहीं छापा। मैंने भी "आर्य मित्र" आदि को यह लिखा कि इस विषय पर मैंने लेख लिखा है प्रकाशित करें तो मैं भेज दूं "आर्य मित्र" ने इस पर उदासीनता रक्खी जिसको स्वयं इस विषय पर विद्वानों के मत मांगने चाहिए थे। इसमें श्री उपाध्यायजी के मान अपमान का कुछ भी प्रश्न नहीं है। कर्मकांड की एक उलझन को सुलझाने का प्रश्न है। श्री उपाध्यायजी इस पर प्रसन्न ही होंगे अप्रसन्न नहीं। ऐसे प्रश्नों पर आर्य विद्वान् तथा आर्य-पत्र उदासीन रहेंगे तो कर्मकांड में मतभेद बढ़ेंगे, झगड़े होंगे, कर्मकांड में विघ्न पड़ेगा। "आर्य संसार" मासिक पत्र ने विद्वानों के विचार मांगें हैं। यह पत्र छोटा है, नवजात शिशु है, इसकी अभी सर्वत्र पहुँच नहीं है पर बड़े-बड़े शक्तिशाली पत्र उदासीन रहे। इसलिए इस बालक "अभिमन्यु" को ही चक्रव्यूह में घुसना पड़ा। आशा है आर्य विद्वान् इसकी पुकार पर ध्यान देंगे।

रहिमन देख बड़ेन को, लघु न दीजिए डार।
जहां काम आवे सुई, कहा करे तलवार॥

विनीत—
"अमर सिंह आर्यपथिक"
(आर्य समाज कलकत्ता)

कर्मकांड में अनियमितता

—"गंगा प्रसाद वानप्रस्थी (रिटायर्ड चीफ जज)

सुझाव और सम्मतियां—

आनन्द कर भगवान् दयानन्द ने संस्कार विधि के सामान्य प्रकरण में यज्ञ का विधान करते हुए निम्न भाषा का उल्लेख किया है—

"जब अग्नि समिधाओं में प्रविष्ट होने लगे तब चन्दन की अथवा ऊपर लिखित पलाशादि की तीन लकड़ी आठ-आठ अंगुल लम्बी घृत में डुबो उनमें से नीचे लिखे एक मन्त्र से एक-एक समिधा को अग्नि में चढ़ावे वे मन्त्र इस प्रकार हैं—"ओइम् अयन्तइध्म आत्मा जातवेद स्तेनेध्यस्व चेद्धवर्धय चास्मान प्रजया पशुभिब्रह्मवर्चसे नान्नाधेन समेध्य स्वाहा॥ इदमग्ने जातवेदसे इदंनमम् ॥१॥ ओइम् समिधाग्निं दुवस्यत घृतैंबोधर्तातिथिम। अस्मिन् हव्या

जुहोतन स्वाहा ।। इदमग्ने इदंनमम् ।।२।। इससे और—"सुसमिद्धाय शोचिषे घृतं तीव्रं जुहोतन । अग्नये जातवेद से स्वाहा ।। इदमग्नये जातवेद से इदन्नमम् ।।३।। इस मन्त्र से अर्थात् दोनों मन्त्रों से दूसरी" ।।

मुझे कितने ही अवसर ऐसे याज्ञिकों को यज्ञ क्रिया में दूसरी समिधा आहुत करते हुए मिला है कि जो उपरोक्त आदेश से भिन्न केवल निम्न प्रकार उच्चारण करके समिधा चढ़ाते हैं—

"ओइम् समिधाग्निं दुवस्यत घृतैंबोधयतातिथिम् । आस्मिन हव्या जुहोतन ।। सुसमिधाय शोचिषे घृतं तीव्रं जुहोतन । अग्नये जात वेद से स्वाहा ।। इदमग्नये जात वेद से इंदनमम् ।। ऐसे याज्ञिक दूसरी समिधा को आहुति करने वाले इन दोनों मन्त्रों में से प्रथम मन्त्र के अन्तिम अंश—"स्वाहा" ।। इदमग्नये इदंनमम्" को छोड़ देते हैं, उनकी सेवा में निवेदन है कि, इस मन्त्र भाग को कदापि न छोड़ा करें । क्योंकि यह क्रिया महर्षि की आज्ञा को भंग करती है । यदि श्री स्वामीजी महाराज को इस मन्त्रांश को उच्चारण करने की आवश्यकता प्रतीत न होती तो वे संस्कार विधि में इतने स्पष्ट रूप से इसका उल्लेख न करते । आगे-पीछे किसी अन्य स्थल पर भी इस अंश के उच्चारण का निषेध नहीं किया है । मेरा अपना विचार है कि ऐसे याज्ञिक केवल यह समझकर कि "स्वाहा" शब्द के साथ आहूति अवश्य ही छोड़ी जानी चाहिए । और चूंकि अगले मन्त्र के पाठ के उपरान्त समिधा चढ़ाने का आदेश है । अतः इतने भाग को छोड़ देते हैं, अन्य कोई कारण प्रतीत नहीं होता है । परन्तु यह भ्रममात्र है । यदि देखा जाए तो अनेक मन्त्र इस प्रकार के मिलेंगे जिनके पूर्ण होने तक बीच-बीच में "स्वाहा" ऐसा शब्द आ जाता है, ऐसे अवसरों पर आहुति, मन्त्र पूरे होने पर ही छोड़ी जाती है, मध्य में आए हुए "स्वाहा" शब्द के मन्त्र उच्चारण करते समय नहीं । इस स्थल पर भी उच्चारण तो अवश्य होना चाहिए परन्तु समिधा तीसरे मन्त्र के उच्चारण के पश्चात् ही छोड़नी चाहिए । यदि कोई यजमान अनुभवी नहीं है, तो ऋत्विज का धर्म है कि, वह यजमान को यथावसर निर्देशकर विधान के अनुकूल यज्ञ को सम्पन्न करावे । क्योंकि यजमान ऋत्विजों के आधीन होता है, न कि ऋत्विज आधीन होता है यजमान के ! जुओं के भय से कथरी में आग लगाना कोई बुद्धिमानी नहीं है । यदि धीरे-धीरे इसी प्रकार के परिवर्तन अपनी मूर्खता आदि कमजोरी को ढकने के लिए किए जाते रहे तो वह दिन दूर नहीं जब "अपनी-अपनी ढपली अपना-अपना राग ।" आर्य समाज के नवजात पौधे में यह घुन रूप होकर उसका नाश कर देगा । "संगच्छध्वं संवदध्वं ..." वाली वेद की आज्ञा का पालन करते हुए ऋषि द्वारा प्रदर्शित मार्ग से एक पग भी आगे-पीछे न जाने में ही सबका हित अर्न्तनिहित है ।

—गंगाप्रसाद वानप्रस्थी
हलद्वानी (नैनीताल)

नोट :—

उपरोक्त लेख हमारे पास उपलब्ध नहीं था, इसके लिए मैंने योग्य प्रबन्ध सम्पादक (आर्य मित्र—लखनऊ) "श्री इन्द्रदेवजी पाठक" को लिखा उन्होंने तत्काल इस लेख को पुराने रिकार्ड से नोट करके मेरे पास भेज दिया, परिश्रमी व्यक्ति की प्रशंसा होनी ही चाहिए, मैं उनका हृदय से आभार प्रकट करता हूं उनके परिश्रम से ही यह प्रारम्भिक लेख प्राप्त हो सका ।

—निवेदक :
"लाजपत राय अग्रवाल"

शास्त्रार्थ आरम्भ

एक पुरानी उलझन

श्री पण्डित गंगाप्रसादजी उपाध्याय :—

आर्यमित्र २० जनवरी सन् १९६० ई० के पृष्ठ १३ पर "श्री गंगाप्रसादजी वानप्रस्थी (रिटायर्ड चीफ जज) हलद्वानी (नैनीताल) ने—"**कर्मकाण्ड में अनियमितता**" शीर्षक लेख में अग्निहोत्र के अन्दर समिधा वाले मन्त्रों के विषय में एक उलझन का उल्लेख किया है। वह उलझन बहुत पुरानी है, लगभग ६० वर्षों से तो मैं सुनता आ रहा हूं, सन् १९२० ई० में जब मैं इलाहाबाद में पढ़ने आया था, तो श्री मेवालालजी, प्रधान––आर्य समाज, के घर पर यही चर्चा हुआ करती थी, कि "**अयन्त इध्म**······" मन्त्र से समिधा डालने की प्रथा आर्ष परम्पराके विपरीत है। उस समय यह चर्चा केवल व्यक्तिगत थी। खुल्लमखुल्ला कहने का कोई साहस नहीं करता था, २०-२५ वर्षों के बाद जब मैंने विचार किया, और संस्कार विधि के आदिम (परिव्यक्त) संस्करण तथा प्रचलित पुस्तक के कई संस्करणों का मिलान किया, तो मुझे निश्चय हो गया कि—कोई न कोई भूल अवश्य है। मैंने इस विषय में "**आर्य मित्र**" में एक लेख माला दी, उस पर लोग बिगड़ खड़े हुए। विवेचन किसी ने न किया, कचालू साहित्य की भरमार कर दी। मुझे इतना तो स्पष्ट दीखता था कि कोई भूल है, क्योंकि किसी प्राचीन विधान में—"**अयन्त इध्म**······" से पहली समिधा और—"**समिधाग्नि सुसमिद्धाय**······" (दो मन्त्रों) से दूसरी समिधा देने का विधान नहीं है। परन्तु उस समय मैं यह नहीं समझ सका था कि भूल किस प्रकार हुई, और कहां पर हुई ? सन् १९४६ ई० की वर्षा ऋतु में, मैं स्वयं अजमेर गया, और "**श्री हरबिलास जी सांड़ा**" की विशेष आज्ञा से कुञ्जियां मंगाकर संस्कार विधि की असली कापी और प्रेस कापी का प्रेस के एक अधिकारी के संरक्षण में अवलोकन किया।

असली कापी को देखते ही मेरी उलझन दूर हो गई। असली कापी पैन्सिल से लिखी है, और स्वामीजी ने उसको कहीं-कहीं, काट-छांट कर शुद्ध किया है, उसके अन्दर समिधा के सम्बन्ध में "**अयन्त इध्म**······" मन्त्र का कहीं अवलेश भी नहीं है। तीन समिधाओं के लिए तीन मन्त्र—(१) "**समिधाग्नि**······" (२) "**सुसमिद्धाय**······" (३) "**तन्त्वा समिद्भि**······" दिए हैं, प्रेस कापी किसी अन्य लेखक ने बनाई है। उसका लेख तो सापेक्षतः अच्छा है, परन्तु उसकी योग्यता बहुत कम प्रतीत होती है। यह मक्खी पर मक्खी मारता है। और यदि कोई सोचने का स्थल आ जाता है, तो वह सोच नहीं सकता। पहले तो प्रेस कापी लिखने में, उसने भी समिधाओं के लिए तीन ही मन्त्र दिये थे, परन्तु बाद में न जाने किसकी प्रेरणा से किस परिस्थिति में, और किस समय "**अयन्त इध्म**······" यह मन्त्र पीछे से जोड़ दिया, कागज पर इतने बड़े मन्त्र को बीच में प्रक्षिप्त कर देने का अवकाश तो था नहीं। अतः कुछ अंश तो पंक्ति के रिक्त भाग में लिखा गया, और शेष हासिये पर ! इसी प्रकार इस प्रक्षेप को सुसंगत बनाने के लिए "**सुसमिद्धाय**······" मन्त्र के पश्चात् अर्थात् दोनों मन्त्रों से, दूसरे यह शब्द पीछे से जोड़ दिए गए। प्रेस कापी बनाने वाले लेखक की बदनियती तो प्रतीत नहीं होती, क्योंकि बदनियती के लिए कोई प्रयोजन होना चाहिए था। परन्तु भूल अवश्य हुई है।

मैंने **"श्री भगवान स्वरूप जी न्याय भूषण"** जी को प्रेस से बुलाकर तत्काल ही यह सब दिखा दिया था, और जिन प्रेस अधिकारी के निरीक्षण में, मैं पुस्तक का अवलोकन कर रहा था, उन्होंने और श्री भगवान स्वरूप जी ने भी स्वीकार किया कि—यह पीछे से मिलाया गया है। उस दिन से मैं या मेरे परिवार में कोई भी **"अयन्त इध्म......"** मन्त्र से पहली समिधा नहीं चढ़ाते। मैंने तभी परोपकारिणी सभा को एक पत्र लिखा जो पीछे से सार्वदेशिक में भी छपा दिया गया था। मेरी प्रार्थना थी कि, इस भूल को तत्क्षण सुधार दिया जाय। प्रथम तो परोपकारिणी सभा के अधिकारियों ने सुना नहीं, जब मैंने (परोपकारिणी सभा के प्रधान) **"श्री शाहपुराधीश"** को लिखा तो यह विषय तीन पण्डितों की उपसमिति के हवाले किया गया। अधिकारियों को भय था कि, जो भूल 50-60 वर्षो से चली आ रही है, उसको सुधारने में बदनामी है। यही भावना उपसमिति पर भी काम कर गई, पाण्डित्य प्रदर्शन तो बहुत हुआ, भूल की सम्पुष्टि में बाल की खाल निकाली गई, मन्त्र की विस्तृत व्याख्या की गई, परन्तु—**"असत्य को त्यागने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए"** ऋषि के इस वाक्य पर ध्यान नहीं दिया गया, मैंने इस पर दो प्रार्थनाएं की थी, पहली यह कि—मुझे बुला लिया जाए। मिलावट को पहचानने के लिए पण्डितों की आवश्यकता नहीं। कोई भी साधारण व्यक्ति देख सकता है, यदि उप समिति बनती भी तो मिलावट पहिचानने वाले विशेषज्ञों की, न कि व्याकरण, शास्त्रों के विशेषज्ञों की! मैंने यह भी प्रार्थना की थी कि—असली कापी का फोटो छाप दो, सब लोग अजमेर जाकर देख नहीं सकते और न असली कापी ही सदा बनी रहेगी, जहां और बस्तों की चीजें गायब हो गयीं, वहाँ यह भी हो जाएगी, परन्तु भूल को न स्वीकार किया गया और न सुधारा गया,। एक भूल की सम्पुष्टि के लिए अनेक भूलें करनी पड़ती हैं। यही उलझनें चली आ रही हैं। कोई **"स्वाहा"** और **"इदन्नमम्"** छोड़कर संगति मिलाने का यत्न करता है। कोई इसको भी ऋषि कृत मान कर सब परम्पराओं के विरुद्ध लकीर का फकीर होना चाहता है। अभी सार्वदेशिक के किसी पिछले अंक में मैंने पढ़ा (शायद श्री आचार्य विश्वश्रवा जी का लेख है)। कि हासिये पर लिख देने से कोई चीज अप्रामाणिक नहीं हो जाती। श्री आचार्य जी की युक्तियां तो घोर यत्न करने पर भी मेरे मस्तिष्क में नहीं आया करती। —**"जो बात की खुदा की कसम लाजवाब की। पापोश में लगाई किरण आफताब की"**॥ यह कौन कहता है कि, हासिये पर लिखने मात्र से कोई चीज अप्रमाणित हो जाती है ? भूलें प्रायः हासिए पर ही सुधारी जाती हैं, परन्तु अप्रमाणिक होने के कारण तो और ही हैं। जिनकी आप उपेक्षा करते हैं, सबसे बड़ा हेतु तो यह है कि, **"वह इबारत असली कापी में नहीं है।"** दूसरा हेतु यह है कि—"समिधा के तीन मन्त्र यजुर्वेद के पहले अध्याय के पहले ही तीन मन्त्र हैं, वहीं से लिए गए हैं, उनमें—**"अयन्त इध्म......"** वाला मन्त्र नहीं है। न यह वेद मन्त्र ही है, उसका विनियोग केवल अगली घृत की पांच आहुतियों के लिए हुआ है"। तीसरा हेतु यह है कि—"यह तीनों ऋचाएं समिद्वति हैं। **"समिद्वती"** वह ऋचाएं कहलाती हैं जिनमें **"समित्"** शब्द आया हो, जैसे **"कवती"** वह ऋचाएं कहलाती हैं जिनमें **"क"** शब्द आया हो। यहां समित शब्द लिया जाता है। शब्द का पर्यायवाची नहीं लिया जाता। **"अयन्त इध्म......"** मन्त्र समिद्वती ऋचा नहीं है। समिधा चढ़ाने के लिए **"समिद्वती"** ऋचाओं के विनियोग को **"रूप समृद्धता"** कहते हैं। अर्थात् जिस मन्त्र का जिस कृत्य में विनियोग हो उस मन्त्र में कोई सादृश्य होना चाहिए।" चौथा हेतु यह है कि "शतपथ ब्राह्मणादि में भी ऐसा ही दिया गया है। देखो—**"अश्वत्थो स्तिस्रः समिधो ऋतावता आदधाति समिधाग्निमिति प्रत्यृचम्"** यहाँ इस वाक्य में—**"तिस्रः समिधा"** तथा **"समिधाग्निमिति"** तथा **"प्रत्यचम्"** यह शब्द देखने योग्य हैं।" पाँचवा हेतु तह है कि "ऋषिवर ने संस्कार विधि को स्वयं नहीं बनाया, अपितु पुरानी आर्य परम्परा को जीवित रक्खा है, वह केवल उन स्थलों पर परिवर्तन करते हैं जहा सिद्धान्त की घोर हानि देखते हैं। केवल अपना नूतनपन जताने को परिवर्तन नहीं करते। उन्होंने आरम्भ में ही लिख दिया है कि—

"वेदादि शास्त्रसिद्धान्तमाध्याय परमाद्रात्। आयतह्यं पुरस्कृत्य शरीरात्य विशुद्धये" ।। अर्थात् वह प्राचीन आर्य प्रथा का परम् आदर करते हैं ।।" छठा हेतु यह है कि—**"अयन्त इध्म······"** इस मन्त्र को बीच में डाल देने का कोई प्रयोजन न था। न तो उसके न रहने से सिद्धान्त हानि थी, और न डाल देने से किसी विशेष कमी की पूर्ति थी। सातवाँ हेतु सुनिए वह क्या है ? जो कदापि उपेक्षा के योग्य नहीं है।

असल कापी की एक पंक्ति तो अब भी संस्कार विधि में ज्यों की त्यों छपी हुई है। "नीचे लिखे एक मन्त्र से एक-एक समिधा को अग्नि में चढ़ावें।" यहाँ एक शब्द तीन बार आया है, और उच्च स्वर से कह रहा है कि— **"मेरे होते हुए दो मन्त्रों से आहुति देना अनार्ष और असह्य हठ है।"** इस पंक्ति के साथ ही जरा इस वाक्य को ध्यान से पढ़िए—**"इस मन्त्र से अर्थात् दोनों मन्त्रों से दूसरी"** इसे पढ़ कर साधारण साहित्यकार भी कह देगा कि, यह वाक्य कितना "भौंड़ा" है ? ऐसा प्रतीत होता है कि, रेशमी कपड़े को फाड़कर किसी ने टाट के टुकड़े से थेगरी (पैबन्द) दे दी हो। न जाने यह थैगरियाँ (पैबन्द) हमारे धर्म ग्रन्थों को कब तक सुशोभित करती रहेंगी और भविष्य में कितने विचारकों को भूल-भुलइयों में डालती रहेंगी।

अभी गत दिसम्बर (२६ दिसम्बर सन् १९५९ ई०) को वेद सम्मेलन के प्रथम व्याख्यान में श्री आचार्य विश्वश्रवा जी ने जोर-शोर से ऋषि के निभ्रान्त होने का प्रश्न छोड़ दिया, जिससे जनता जान सके कि, **"संसार में यदि कोई ऋषि भक्त है तो केवल विश्वश्रवा जी ही हैं।"** ऋषिवर ने कभी अपने लिए या किसी प्राचीन ऋषि के लिए **"सभ्रान्त"** या **"निभ्रान्त"** थे, यह हम नहीं जानते। जिस विषय का उन्होंने पक्ष लिया है, उसके उतने अंश में तो वह अपने को निभ्रान्त ही समझते होंगे, अन्यथा उसका प्रचार न करते। सिद्धान्त रूप से जीव सभी अल्पज्ञ हैं, और अल्पज्ञ ही रहेंगे, ईश्वर ही सर्वज्ञ है, बहुज्ञ और विशेषज्ञ तो ऋषि मुनि होते हैं, और इसलिए हम उन विषयों में उनकी बात पर श्रद्धा करते हैं। परन्तु हमारे सामने ऋषि के व्यक्तित्व का प्रश्न नहीं है। ऋषि के ग्रन्थों में जो अशुद्धियां रह गयी हैं, या निरन्तर आती जा रही हैं, उनको शोधने का प्रश्न है। एक विद्वन्मण्डल है, जिसका दावा है कि, —**"कोई अशुद्धि है ही नहीं।"** जिस किसी ने अगर किसी अशुद्धि की ओर संकेत भी किया, तो उस पर ये विद्वन्मण्डल के लोग टूट पड़ते हैं। इनका सिद्धान्त है कि—जनता को न तो अवकाश है, न सभी योग्य ही हैं, जो अधिक से अधिक बार स्वामी दयानन्द के नाम की दुहाई दे और बहुत जोर से खम (छाती) ठोक कर कह दे, वही सत्य होगा। उनकी थ्यूरी यह है कि जैसे चुम्बक के सम्पर्क से लोहा भी चुम्बक बन जाता है, इसी प्रकार ऋषि भी निभ्रान्त थे, उनके सम्पर्क से लेखक भी निभ्रान्त हो गए, लेखकों के सम्पर्क से कागज भी निभ्रान्त हो गए, और जब यह निभ्रान्त कागज प्रेस में पहुंचे तो प्रेस वाले भी निभ्रान्त हो गए, और छपी हुई पुस्तकें भी निभ्रान्तता के प्रभाव में आकर निभ्रान्त हो गयी, और इन पुस्तकों को पढ़ने वाले आचार्य महोदय भी निभ्रान्त हो गए। ऋषि दयानन्द जी महाराज तो अब हैं नहीं—कि हम उनसे पूछ लें कि—**"महाराज आप निभ्रान्त हैं या सभ्रान्त ?"** या अमुक शब्द आपने लिखवाया था या लेखक की भूल से लिखा गया, हमारे समक्ष तो आचार्य जी हैं। जिनका दावा है कि चुम्बक व लोहे के सम्पर्क वाली परम्परा से ऋषि दयानन्द की निभ्रान्तता इनमें भी आ गई हैं। अतः इनकी बात मानकर किसी अशुद्धि को अशुद्धि मत समझो। चाहे दो संस्करणों में परस्पर विरोध ही क्यों न हो ! मुझे यह प्रवृत्ति घोर घातक प्रतीत होती है। इससे ऋषि के सिद्धान्तों की रक्षा नहीं होती। अपितु कूड़ा, दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही जाता है। झाड़ू देने वाले बदनाम होते हैं। अतः किसी को मार्जन (शुद्धि) करने का साहस भी नहीं होता। यदि ऋषि दयानन्द की प्रवृत्ति भी ऐसी ही होती तो वह प्राचीन ग्रन्थों की किसी अशुद्धि को शुद्ध करने का यत्न न करते। क्योंकि दूध में मक्खी डालने का तो सबको जन्मसिद्ध अधिकार है, किसी का प्रमादवश और किसी का स्वार्थवश,

परन्तु मक्खी निकाल कर फेंकने का अधिकार तो किसी को नहीं है। जो आज पचास वर्ष से चली आने वाली भूल को नहीं सुधार सकते। वे एक सहस्र वर्ष पश्चात् इसी भूल को कैसे सुधारेंगे, तब तो मूल कागजों की राख तक भी शेष न रह जाएगी। बदनाम होगा ऋषि दयानन्द का नाम! जैसे आज हम-पाराशर, व्यास आदि ऋषियों को बदनाम करते हैं। क्या कोई विद्वान इस विषय पर आज विचार करने को उद्यत है ? ॥

—"गंगाप्रसाद उपाध्याय"

("आर्य मित्र" के प्राचीन अंक से "श्री पन्नालाल शर्मा" द्वारा टाईप रूप में उदधृत) यह उपरोक्त लेख जो पूज्य अमर स्वामी जी महाराज द्वारा दिया गया था, उद्धृत किया गया है।

—"लाजपतराय अग्रवाल"

श्री पण्डित ठाकुर अमर सिंह जी शास्त्रार्थ केशरी—

"एक पुरानी उलझन" इस शीर्षक से एक लेख "आर्य मित्र में माननीय श्री पण्डित गंगा प्रसाद जी उपाध्याय" का मैंने पढ़ा। पूज्य पण्डित जी ने साहित्य द्वारा आर्य समाज की जो सेवा की है, वह अवर्णनीय है। मैं तो उनके लेखन कार्य की प्रशंसा करते नहीं थकता हूं, मुझको उनके इस कार्य की प्रशंसा करते हुए बहुत आनन्द आता है। मान्य पण्डित जी ने जितना लिखा है, और जैसा उत्तम लिखा है, उसको देखकर बड़े-बड़े लेखकों को भी आश्चर्य होता है, उन्होंने हम पर इतना ऋण चढ़ा दिया है कि, वह सौ अभिनन्दन ग्रन्थ भेंट करने और सौ बार अभिनन्दन समारोह करने पर भी उतारा नहीं जा सकता है। **"एक पुरानी उलझन"** शीर्षक लेख लगता है श्री पण्डित जी ने कुछ आवेश में आकर लिखा है। इसीलिए अपने विचार के विरुद्ध लेख लिखने वालों के लिए अनेक वाक्य ऐसे लिख दिये हैं, जो उनके जैसे गम्भीर विचारक और लेखक की लेखनी से लिखे नहीं जाने चाहिये थे। जिनके विषय में पूज्य पण्डित जी ने वह न लिखने योग्य वाक्य लिखे हैं, वह पण्डित और लेखक कौन थे ? यह मुझको पता नहीं है।

इतना ही मुझको इस विषय में पता है कि—मैं उनमें नहीं था। पर अब जो आगे आदरणीय पण्डित जी के विचारों के विरुद्ध लेखनी उठायेगा उस पर तो वह वाक्य लागू होंगे ही। यह सोच कर भी कुछ लिखने का साहस करता हूं। मैंने सारे लेख को दो बार पढ़ा है। और उस पर चिन्ह भी लगाये हैं। तथा एक बार तो मैंने अन्य दो विद्वानों को साथ मिला कर उस लेख को गम्भीरता से पढ़ा, और उस पर विचार किया। सारे लेख पर विचार करके मैं अल्पमति यह समझा हूं कि इस लेख में—**"अयन्त इध्म आत्मा······"** इस मन्त्र से समिदाधान करने के विरुद्ध पण्डित जी का आग्रह बहुत प्रबल है। हेतु यद्यपि गिनती में सात लिखे हैं। पर वह इतने प्रबल नहीं हैं जितना प्रबल आग्रह है। मैं इन हेतुओं पर विचार व्यक्त करता हूं। (१) **"प्रथम हेतु"**—जिसको पण्डित जी ने सबसे बड़ा हेतु बताया है, वह यह है कि—**"अयन्त इध्म आत्मा······" यह मन्त्र असल कापी संस्कार विधि की जो अजमेर में सुरक्षित है, उसमें नहीं है।"** यहां पण्डित जी ने यह नहीं बताया कि—सारी संस्कार विधि में ही यह मन्त्र समिधा के लिए नहीं है या केवल सामान्य प्रकरण में ही नहीं है। इस पर विचार करना अत्यन्त आवश्यक है। यह तो पण्डित जी ने माना ही है कि—**"पीछे से न जाने किसकी प्रेरणा से, किस परिस्थिति में और किस समय उसने (प्रेस कापी करने वाले ने) "अयन्त इध्म आत्मा······" यह मन्त्र पीछे से जोड़ दिया।"** पण्डित जी ने इसी लेख में यह भी लिखा है कि—**"जिसने प्रेस कापी की है उसकी योग्यता बहुत कम प्रतीत होती है"** पण्डित जी की इन पक्तियों से यह तो सिद्ध होता है कि—इस मन्त्र को जोड़ने में उसकी योग्यता और उसकी अपनी कल्पना काम नहीं कर रही थी। **"न जाने किसकी प्रेरणा ?"** इस पर यह विचारणीय है कि—यह प्रेरणा

ऋषि दयानन्द जी की ही हो यह सम्भव है कि नहीं ? असल कापी तो श्री पण्डित जी ने देखी होगी। परन्तु मैंने नहीं देखी, और न मेरी शक्ति है कि—मैं देख सकूं, परन्तु जो संस्कार विधि हमारे सबके प्रयोग में आती है उसमें सामान्य प्रकरणस्थ क्रियाओं के करने की आगे चलकर संस्कारों में स्थान-स्थान पर जो आज्ञाएं हैं उनके तीन प्रकार वर्तमान हैं, नं० १ तो यह है कि—"अमुक पृष्ठ से अमुक पृष्ठ तक की क्रिया करके वा "करनी"। नं० २ यह है कि—"सामान्य विध्युक्तअग्न्याधान, समिदाधान करके" इन दो प्रकारों से तो पता लगता नहीं कि—श्री पण्डित गंगा प्रसाद जी और श्री स्वामी रामेश्वरानन्द जी का पक्ष ठीक है अथवा अन्य सारे आर्य पण्डितों का। नं० ३ यह है कि जो बिल्कुल स्पष्ट है—(A) "अयन्त इध्म आत्मा······" (पुंसवन संस्कार) (B) "ओंइम् अयन्त इध्म······" आदि मन्त्रों से वेदी में चन्दन की समिदाधान करे (जातकर्म संस्कार) (C) "अयन्त इध्म······" आदि चार मन्त्रों से समिदाधान (वेदारम्भ संस्कार), (D) "अयन्त इध्म······" इत्यादि मन्त्रों से समिदाधान (विवाह संस्कार) (E) "ओइम् अयन्त इध्म······" इत्यादि चार मन्त्रों से समिदाधान करके (विवाह संस्कार में दूसरी बार) (F) "अयन्त इध्म······" इत्यादि मन्त्रों से समिदाधान करके (वानप्रस्थ प्रकरण में) इस प्रकार सामान्य प्रकरण से अतिरिक्त छैः बार यह इस—"अयन्त इध्म······" मन्त्र का उल्लेख किसकी प्रेरणा से किसने किया ? और असल कापी जो श्री उपाध्याय जी ने देखी है, उसमें यह है कि नहीं ? और यदि है तो इसके स्थान में उन स्थलों पर क्या है ? यह भी विचारणीय है। इस पर श्री उपाध्याय जी ने कुछ भी प्रकाश नहीं डाला है। समिधाग्निदुवस्यत······" इत्यादि "तीन मन्त्रों से समिदाधान" ऐसा आदेश और संकेत सारी संस्कार विधि में एक बार भूल कर भी क्यों नहीं आया ? इसका उत्तर भी श्री उपाध्याय जी को अवश्य ही सोचना चाहिये। "समिद्धाग्नि······" इत्यादि तीन मन्त्रों से समिदाधान किया जाय, ऐसा भी तो संस्कारों में आदेश होगा ही। वह कबसे निकाला गया है ? यह खोज आपने की ही होगी। वह भी सबके सम्मुख आ ही जानी चाहिये। यह तो पहला और सबसे बड़ा हेतु था, जिस पर मैंने कुछ विचार किया है।

इस पर मेरे यह छः प्रश्न हैं, (१) संस्कार विधि की प्रेस कापी में सामान्य प्रकरण के हासिये पर "अयन्त इध्म······" मन्त्र ऋषि दयानन्द जी की प्रेरणा से लिखा गया हो, यह सम्भव है, कि नहीं ? यदि नहीं तो क्यों ? (२) सामान्य प्रकरण के अतिरिक्त अन्य छः स्थलों पर इसी "अयन्त इध्म······" मन्त्र से समिदाधान का आदेश क्यों और कैसे हो गया ? (३) यह भी उस प्रेस कापी में आदेश और संकेत है या नहीं ? (४) समिधाग्नि······" इत्यादि तीन मन्त्रों से समिदाधान करे" ऐसा आदेश संस्कार विधि सारी की सारी में एक बार भी क्यों नहीं है ? (५) संस्कार विधि में जहां-जहां स्पष्ट रूप में "अयन्त इध्म······" इत्यादि चार मन्त्रों से" यह आदेश है वहां-वहां प्रेस कापी में इसके स्थान पर क्या संकेत हैं ? (६) "समिधाग्नि······" इत्यादि तीन मन्त्रों से समिदाधान करे" ऐसा संकेत संस्कारों में यदि था, तो वह कब हटाया गया है ? आशा है, सब आर्य विद्वान मेरे इन प्रश्नों पर विचार करेंगे !

पूज्य उपाध्याय जी का दूसरा हेतु यह है कि—"समिधा के तीन मन्त्र यजुर्वेद के पहले अध्याय के पहले तीन मन्त्र हैं, वहीं से लिये गये हैं, उनमें "अयन्त इध्म······" मन्त्र नहीं है। यह वेद मन्त्र ही है, इसका विनियोग केवल अगली घृत की पांच आहुतियों ही के लिए हुआ है। "पहले अध्याय के पहले तीन मन्त्र" यह श्री उपाध्याय जी द्वारा भूल से लिखा गया है। वास्तव में ये मन्त्र "तीसरे अध्याय के पहले तीन मन्त्र हैं। इस वाक्य समूह में मुझ जैसे अल्पज्ञ को तो कहीं हेतु बना दिखाई नहीं देता है। मुझको इसमें तीन भाग दिखाई देते हैं, (१) यजुर्वेद के तीन मन्त्र जहां से लिये हैं, यह मन्त्र वहां नहीं हैं। (२) यह वेद मन्त्र नहीं हैं। (३) घृताहुति में ही इसका विनियोग है। अगर पहले भाग को हेतु मान लिया जाये, तो सारी संस्कार विधि और सन्ध्या आदि सभी कार्य अनुचित और वर्जनीय हो जायें, संस्कार विधि में यदि ऐसे स्थलों को यहां उद्धृत किया जावे, जिनमें एक ही

स्थल के मन्त्र नहीं बल्कि भिन्न-भिन्न ग्रन्थों और स्थलों के मन्त्रों का प्रयोग किया जाता है, तो एक छोटी सी पुस्तक बन जाये। सर्व कार्यों में सर्व मन्त्र एक ही स्थान से लिए हुए हों, ऐसा कोई नियम नहीं है। इसलिए यह सर्वथा असद् हेतु है। दूसरा भाग यह है कि—"**यह वेद मन्त्र नहीं है**" ठीक है यह वेद मन्त्र नहीं है। पर यह भी इस मन्त्र के बहिष्कार का हेतु नहीं बन सकता है। संस्कारों में ऐसे बहुत से मन्त्र हैं, जो वेद के नहीं हैं। उनके बहिष्कार से दूसरी ही संस्कार विधि नई बनानी पड़ेगी। सारे विश्व में जहाँ कहीं भी कोई वैदिक धर्मी रहता है, वहाँ—"**यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं**......"इस मन्त्र से ही यज्ञोपवीत पहना जाता है, पर क्या यह वेद मन्त्र हैं? ऐसे संस्कार विधि में बहुत से मन्त्र हैं जो वेद के नहीं है, तीसरा भाग, दूसरे हेतु का यह है कि—इस मन्त्र का केवल पांच घृताहुतियों के लिए विनियोग हुआ है, इस पर बहुत आश्चर्य है कि, जो मन्त्र वेद का न होने के कारण समिदाधान में वर्जित किया जा सकता है, वह घृताहुति में वेद मन्त्र न होने पर भी कैसे विनियुक्त हो सकता है? घृताहुतियां देते समय क्या वह वेद मन्त्र हो जायेगा?

तीसरा हेतु श्री उपाध्याय जी का यह है कि—"**अयन्त इध्म**........." यह मन्त्र "**समिद्वती**" ऋचा नहीं है। इसलिए इससे "**समित्**" नहीं दी जानी चाहिये। यहां पण्डित जी यह तो मानते हैं कि इस मन्त्र में "**समित्**" का प्रर्यायवाची शब्द "**इध्म**" है, पर समिदाधान के लिए पर्यायवाची शब्द होने से इस मन्त्र को समिदाधान का अधिकार नहीं दिया जा सकता है, इस मन्त्र के लिए इतना कड़ा प्रतिबन्ध क्यों लगा दिया? इसका हेतु अभी सामने नहीं आया है। पर्यायवाची शब्दों से यदि काम न लिया जाय तो हजारों मन्त्र और लाखों श्लोक बेकार हो जायें। बड़ा भारी आश्चर्य तो यह है कि, "**समित्**" का पर्यायवाची शब्द "**इध्म**" जिस मन्त्र में स्पष्ट रूप में विद्यमान है, वह मन्त्र समिदाधान में तो प्रयुक्त नहीं हो सकता है। पर उसमें न घृत शब्द ही है, और न घृत का पर्यायवाची ही कोई शब्द! वह घृताहुति के लिए पांच बार प्रयोग किया जावे यह हमारे पूजनीय जी को स्वीकार है। "**किमाश्चर्यमत: परम्**"। घृत शब्द या घृत का पर्यायवाची मुझे तो इस मन्त्र "**अयन्त इध्म**......"में दिखलाई दिया नहीं, कोई विद्वान बतला देगें तो मानने में कोई आपत्ति नहीं होगी। "**सर्वः सर्वं न जानाति**" मेरी अल्प मति में यह ऋचा समिद्वती तो है, क्योंकि इसमें "**समित्**" का प्रर्याय "**इध्म**" शब्द प्रत्यक्ष है, पर यह घृतवती ऋचा तो किसी प्रकार भी नहीं है। एक और विचारणीय प्रश्न है कि—क्या "**सुसमिद्धाय**" यह समिद्वती ऋचा है? क्या इसमें "**समित्**" पद है? मैंने ६-१०, उद्भट विद्वानों के इस मन्त्र पर अर्थ देखे हैं। किसी ने भी इस मन्त्र में "**समित्**" पद मान कर ही अर्थ नहीं किया है। सबने ही "**सुसमिद्धाय**" में "**सु-सम-इद्धाय**" ऐसा पद पाठ मान कर ही अर्थ किया है। इस मन्त्र में "**समित्**" शब्द को मानना ऐसा ही है जैसे पौराणिकों का—"**उद्बुद्धस्वाग्ने**......" मन्त्र में "**बुध**" और "**शन्नो देवी** ......" मन्त्र में "**शनिश्चर**" को मानना। यह मन्त्र तो स्पष्ट ही घृत का है या यूं कहिये कि—यह घृतवती ऋचा है, "**समिद्वती**" नहीं।

पूजनीय पण्डित जी की इस पुरानी उलझन से तो यह नई उलझन अच्छी रहती कि—(१)—"**अयंत इध्म** ......" (२)—"**समिधाग्नि**......" (३)—"**तन्त्वा समिद्भिः**......" इन तीनों मन्त्रों को समिदाधान के लिए मान लिया जाता। और "**सुसमिद्धाय**......" इसको घृत का मन्त्र मान लिया जाता, क्योंकि पण्डित जी ने तीसरे हेतु के अंत में यह लिखा है कि—"**जिस मन्त्र का जिस कृत्य में विनियोग हो उस मन्त्र में कोई सादृश्य होना चाहिये**" इस मन्त्र—"**अयन्त इध्म**......" में स्पष्ट "**यह काष्ठ**" ऐसा है, अतः इसका सादृश्य समिदाधान में है, और "**सुसमिद्धाय**......" मन्त्र में "**समित्**" शब्द है नहीं, "**घृतं तीव्रं**......" स्पष्ट है। चौथा हेतु शतपथ का एक पाठ है उसमें "**समिधाग्नि**......" आदि मन्त्रों से समिधा देने का विधान है, यद्यपि उसका पता नहीं दिया हैं, तथापि मैं

मान लेता हूं कि वह भी एक मत है। गृह सूत्रों में असंख्य भिन्न-२ प्रकार के मत हैं, यदि उन सबको इकट्ठा करें तो कोई भी संस्कार हो नहीं सकता है। न कोई यज्ञ क्रिया हो सकती है। क्योंकि शायद ही कोई क्रिया ऐसी हो जिसके विषय में वहां भिन्न-२ मत न हों । पांचवा हेतु यह है कि—ऋषिवर ने संस्कार विधि को स्वयं नहीं बनाया, अपितु पुरानी आर्य परम्परा को जीवित रक्खा है। इस पर मेरी मान्यता तो यह है कि,—"ऋषि दयानन्द जी **वैसे ही एक कल्पकार थे जैसे कि, पहले कल्पकार ऋषि हुए हैं,**" उन्होंने वैदिक धर्म प्रचार और वैदिक धर्म को स्थिर रखने के लिए भिन्न-२ मतों के गृह्यसूत्रों और अन्य वेदादि सत्य शास्त्रों के भावों को आधार रख कर सर्व गृह्य सूत्रों से अधिक क्रमबद्ध किसी एक गृह्यसूत्र के सर्वथा आधार पर नहीं, सर्वथा उनसे स्वतंत्र (उनसे सर्वथा विरुद्ध नहीं) एक सुन्दर गृह्यसूत्र बनाया है। उसी का नाम "**संस्कार विधि**" है। इस पांचवे हेतु के नीचे पण्डित जी ने लिखा है कि—"**वह प्राचीन आर्य प्रथा का परम् आदर करते हैं**"

तो ठीक है, दो मन्त्रों से समिदाधान करने की भी कोई नई प्रथा नहीं है, बल्कि पुरानी ही है देखिये—"**सांख्यायन गृह्यसूत्र सग्रंह**" (विद्या विलास प्रेस बनारस के छपे हुए के पृष्ठ २ पंक्ति १४ से १८ तक) पाठ इस प्रकार है—"**आश्वत्थोस्तिस्त्रः समिधोऽभ्यज्य, समिधाग्निं दुवस्यत, सुसमिद्धाय शोचिषे, तन्त्वा समिद्भिरङ्गिरः, उपत्वाग्नेहविष्मति घृताचीर्यन्तुहर्यत, जुषस्व समिधोमम्**"। **इत्येतासांचतसृणामृचां प्रथमया समिधमाधाय द्वितीयांजपति। ततस्तृतीया चतुर्थीभ्यां यथा संख्यं समिधावाधाय**......" आदि। अर्थ यह है कि—पीपल वृक्ष की तीन समिधा घृत में भिगों कर—"**समिधाग्निं दुवस्यत**......", "**सुसमिद्धाय**......", "**तन्त्वा समिद्भिरङ्गिरः**......", "**उपत्वा गोहविष्मती**......", इन चार ऋचाओं में से पहली—"**समिधाग्नि**......" से समिधा देकर दूसरी—"**सुसमिद्धाय**......, को जपता है, पश्चात् तीसरी और चौथी ऋचाओं से क्रमशः दो समिधाएँ देवे। तीसरी ऋचा से दूसरी और चौथी से तीसरी समिधा दी जावे। यहाँ—"**अयन्त इध्म**......" इस मन्त्र से समिधा देने का यद्यपि विधान नहीं है, पर—"**सुसमिद्धाय**......" मन्त्र को जपकर तीसरे—"**तन्त्वा समिद्भि**......" मन्त्र से दूसरी समिधा देने का विधान है।

यहाँ चोथा मन्त्र और है, संस्कार विधि में, प्रथम मन्त्र और है, शेष तीन दोनों में समान हैं, क्रम दोनों में एक ही हैं। पहला मन्त्र पढ़ कर पहली समिधा, दूसरे को पढ़ना ही है। उससे समिधा न देकर तीसरे चौथे से दूसरी और तीसरी समिधा देनी। दोनों की विधियों में भेद दो हैं, एक यह कि—सांख्यायन गृह संग्रह में चौथा मन्त्र विशेष है। संस्कार विधि में, प्रथम मन्त्र विशेष है, शेष तीन दोनों में वही हैं। दूसरा भेद यह है कि—सांख्यायन गृह संग्रह में **सुसमिद्धाय**......" आदि का जाप मात्र करना है, उससे समिधा नहीं देनी। संस्कार विधि में "**समिधाग्नि**......" इस मन्त्र का जाप या उच्चारण मात्र करना है, समिधा उससे नहीं, तीसरे मन्त्र से देनी है। इस प्रकार यहाँ भी पूर्णरूपेण आर्ष परम्परा का रक्षण ही हो रहा है। छटा हेतु माननीय श्री उपाध्याय जी का यह है कि—"**अयन्त इध्म**......" मन्त्र को बीच में डाल देने का कोई प्रयोजन न था, न उसके न रहने से सिद्धान्त हानि थी, और न डाल देने से किसी कमी की पूर्ति थी, पण्डित जी महाराज ने इसी लेख के कालम नं० २ की पंक्ति ८ में लिखा है, कि—"**प्रेस कापी बनाने वाले की इस मन्त्र के लिखने में बदनीयती नहीं प्रतीत होती है**" बदनीयती के लिए कोई प्रयोजन होना चाहिए प्रश्न यह है कि, मन्त्र कैसे आ गया ?" "**भूल**" से तो कोई मन्त्र छूट सकता था, परन्तु यह तो "**विशेष इरादे**" से हाशिये पर लिखा वा लिखवाया गया है। अतः स्पष्ट है कि यह भूल से नहीं बल्कि किसी प्रयोजन से ही लिखा गया हैं। ऋषि दयानन्द जी का प्रयोजन स्पष्ट दीखता है। (१)—यह कि "**अयन्त इध्म**......" **मन्त्र स्पष्ट रूप से कहता है कि यह समिधा है (अयन्त इध्म**......)

इसलिए पहली समिधा के लिए यह सर्वोत्तम मन्त्र है। (२)—यह कि सांख्यायन गृह्य संग्रह में दो मन्त्रों का समुच्चय किया गया है, अर्थात् एक मन्त्र का उच्चारण मात्र कहा गया है दूसरे से समिधा दी गई है। इसी प्रकार संस्कार विधि में दो मन्त्रों का समुच्चय है, एक का उच्चारण मात्र दूसरे से समिधा। पारस्कर गृह सूत्र में भी समिदाधान में विकल्प से समुच्चय कहा है, अर्थात् दो मन्त्रों का इकट्ठा प्रयोग करना। एक को उच्चारण मात्र करना, और दूसरे से समिदाधान करना लिखा है, यथा—**"समिधमादधाति······स्वाहा"** एवं **द्वितीयां तथा तृतीयाम् ॥४॥ एषा त इति वा समुच्चयोवा ॥५॥** (पारस्कर गृह-सूत्र-काण्ड-२, कण्डिका ४, वाक्य ३) साथ ही यह भी है कि, यह मन्त्र किसी भी सिद्धान्त के विरुद्ध नहीं है। आगे पूज्य पण्डित जी ने श्री आचार्य विश्वश्रवा जी के भाषण को लेकर ऋषि दयानन्द जी महाराज के निर्भ्रान्त या सभ्रान्त होने पर लम्बी बहस की है, सार उसका यह है कि, कोई भी मनुष्य सर्वज्ञ नहीं हो सकता है। जीव अल्पज्ञ ही रहेगा, कभी सर्वज्ञ नहीं होगा। अभिप्राय यह है कि, स्वामी दयानन्द जी भी सर्वज्ञ नही थे, यह बात श्री पण्डित जी ने बिना प्रसंग और बिना किसी प्रयोजन के तो लिखी नहीं होगी। प्रसंग और प्रयोजन सोचा जाय तो यहां यह निकलेगा कि—स्वामी दयानन्द जी से भूल का होना सम्भव था, फलतः यदि यह भूल—**"अयन्त इध्म······"** मन्त्र से समिदाधान लिखना स्वामी जी से हुई है तो भी हमको इसका संशोधन कर ही देना चाहिये। **"कूड़े करकट को झाड़ू से हटा ही देना चाहिये।"** आदि।

इस पर मेरा निवेदन यह है कि—**निरुक्त में** ऋषि का लक्षण आचार्य यास्क जी ने यह किया है—(१) **"साक्षात् कृतधर्मा ऋषवो बभूव"** धर्म का साक्षात्कार कर लेने वाले ऋषि होते हैं। (२) **"ऋषयः मन्त्र दृष्टारः** गुप्त रहस्य या वेद मन्त्रों के गुप्त अर्थों को जान लेने या साक्षात् देख लेने वाले ऋषि होते हैं। दोनों लक्षणों से यही अर्थ निकलता है कि—"ऋषि निर्भ्रान्त होते हैं, सभ्रान्त नहीं। जिन्होंने धर्म का साक्षात्कार कर लिया वह धर्म के विषय में निर्भ्रान्त हो गये और सर्व गुप्त रहस्यों और वेदार्थों का दर्शन अर्थात् साक्षात्कार कर लिया तो भ्रान्ति कहां रही ? यह सत्य है कि कोई जीव सर्वज्ञ नहीं होता है, पर यह भी मैं सत्य मानता हूं कि ऋषि लोग **"सत्यज्ञ'**, और **"तत्वज्ञ"** अवश्य होते हैं। इसलिए हम अल्पज्ञ तो यही समझते हैं, कि—ऋषि का अर्थ निर्भ्रान्त ही है, बड़ों की बात बड़े जानें। ऋषि दयानन्द जी यदि सभ्रान्त भी थे, तो पण्डितों को यही अधिकार तो चाहिये कि, उनके मन्तव्यों पर अन्धविश्वास न रख कर अपना सर्वसम्मत निर्णय सब मिल कर दे सकें।

सारे देश भर के आर्य पण्डित दो विद्वानों (श्री पण्डित गंगा प्रसादजी उपाध्याय, और स्वामी रामेश्वरानन्द जी सरस्वती तीसरे किन्हीं का मैं नाम जानता नहीं, जो यह मान्यता रखते हों) को छोड़कर यह सर्व सम्मत निर्णय कर ही चुके हैं, और यह स्वीकार कर ही चुके हैं कि, **"अयन्त इध्म······"** इत्यादि चार मन्त्रों से तीन समिधा देनी ठीक है। ऐसी दशा में श्री उपाध्यायजी को भी कोई उलझन न रखकर सर्व सम्मति या पण्डितों के बहुमत के सम्मुख झुक ही जाना चाहिए। पूज्य उपाध्यायजी ने जो यह लिखा है कि—**"मैं या मेरे परिवार में कोई "अयन्त इध्म······" से समिधा नहीं चढ़ाते हैं।"** इस पर मेरा निवेदन यह है कि, बड़ों की भूल पकड़ना यद्यपि भूल माना जाता है, तथापि मैं पूज्य पण्डितजी के इस कार्य को प्रशंसा के योग्य नहीं समझता हूं। मैं उनके इस निश्चय का विरोध करता हूं, **"इस पाप में हैं पुण्य के लक्षण मिले हुए। पीपल को काटता हूं कि सीधी सड़क रहे।"** इसलिए मैं यह समझता हूं कि आदरणीय पण्डितजी ने यह एक बुरा उदाहरण उत्पन्न किया है। यह उनका कार्य धार्मिक संगठन के विपरीत है, ऋषि की संस्कार विधि अथवा पञ्चमहायज्ञ विधि की किसी भी क्रिया से जिस पण्डित का मतभेद होगा वह ही उसको छोड़ देगा, तो कोई भी विधि नहीं रहेगी। सर्व संस्कारों और सन्ध्या आदि नित्य कर्मों को सब मनुष्य एक ही विधि से करें यह सामाजिक सर्व हितकारी नियम है। इसको बदलने या तोड़ने का किसी को भी अधिकार नहीं है, उचित मार्ग यही हैं कि, सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा द्वारा पण्डितों की सम्मतियां ली

जायें, जो सर्व सम्मति या बहु सम्मति से निर्णय हो उसको स्वीकार करें जब तक ऐसा निर्णय न हो तब तक एकता को और विधियों को सुरक्षित रखने के लिए उसी प्रकार करें जिस प्रकार वर्तमान संस्कार विधि मे लिखा है। और जैसा देश भर के आर्य विद्वान मानते और करते हैं।

सातवां और अन्तिम हेतु पण्डितजी ने यह दिया है कि—असल कापी की एक पंक्ति तो अब भी संस्कार विधि में ज्यों की त्यों छपी हुई है—"**नीचे लिखे एक-एक मन्त्र से एक-एक समिधा को अग्नि में चढ़ावे**" यहां एक शब्द तीन बार आया है, और उच्च स्वर से कह रहा है कि, मेरे होते हुए—"**दो मन्त्रोंसे** एक आहुति देना अनार्ष **और असह्य हठ है**" एक शब्द तो यहां तीन बार नहीं चार बार आया है, परन्तु यह हम अल्पज्ञों की समझ में नहीं आता है कि, एक शब्द सौ बार भी आया हो पर वह आगे के लिए यह कैसे कह सकता है कि मेरे रहते हुए जो नियम बना हैं, उसका आगे अपवाद होना, अनार्ष, असह्य, हठ हो जाएगा। सारे विषयों में नियम भी होते हैं, और अपवाद भी होते हैं। न कोई नियम और अववाद को अनार्ष, असह्य, हठ कह सकता है न किसी अपवाद से नियम अनार्ष हो जाता है। प्रथम मन्त्र पर भी वही नियम चला, अन्तिम पर भी वही नियम चलता है। बीच में एक विशेष नियम पहले नियम का अपवाद रूप आया उसका वहां पालन हो गया, यह तो शुद्ध आर्षपन है, इसमें कुछ भी अनार्षपन नहीं हैं। वैसे सांख्यायन गृह्य संग्रह में चार मन्त्रों से तीन समिधाओं का देना मैंने दिखाया है। ऋग्वेद में जो एक-एक मन्त्र है, वह ही सामवेद में २-२, ३-३ और ५-५ मन्त्र मिलकर भी एक-एक गिना जाता है। दैनिक हवन यज्ञ में यजुर्वेद अध्याय ३ के मन्त्र ९ और दस के सात टुकड़े करके उनकी आठ आहुतियाँ चार प्रातः और चार सायंकाल दी जाती हैं, यह अनार्ष और असह्य हठ क्यों नहीं कहा जाता है ? यदि कहा जाए कि ऐसा गृह्यसूत्रों में भी किया गया है।

ऋषि ने वहां देखकर ऐसा किया है तो मैं कहता हूं कि—गृह्यसूत्र अनादि तो नहीं हैं, कभी तो किसी एक ऋषि ने ये टुकड़े किए ही होंगे, उसने तो किसी का प्रमाण देखकर यह नहीं किया, क्या उसका कार्य अनार्ष कहा जाएगा ? यदि नहीं तो यह अनार्ष कैसे हुआ ? एक और आश्चर्य की बात यह है कि—"अग्निर्ज्योति **ज्योतिरग्निः**" सायं काल की चार आहुतियों में इस एक ही मन्त्र से दो बार में दो आहुतियां दी जाती है। एक बार इस मन्त्र को मुख से बोलकर और एक बार मन में बोलकर यह अनार्षपन है या आर्षपन ? फिर जो कुछ भी है तो वह क्यों है ? इस प्रसंग में एक ही बात उदाहरण के रूप में बताता हूं, यद्यपि और भी अनेक हैं—"संध्या **की विधियों में**" अंग स्पर्श और अंग मार्जन तथा प्राणायाम मन्त्र व अघमर्षण मन्त्र और उपस्थान मन्त्र प्रायः पौराणिकों की भिन्न-भिन्न प्रकार की सन्ध्याओं में भी मिलते हैं, इन मन्त्रों के विनियोग भी मिलते हैं। परन्तु मनसा परिक्रमा के ६ मन्त्रों का प्रयोग स्वामी दयानन्द जी महाराज से पहले किसी ने भी किया हो ऐसा प्रमाण मुझको बहुत खोजने पर भी नहीं मिला, कोई विद्वान बता सकेंगे तो मैं उनका बहुत बड़ा आभार मानूंगा। मैं यही मानता हूं कि—महर्षि दयानन्दजी, अन्य कल्पकारों की भांति ही एक श्रेष्ठ कल्पकार थे। प्रत्येक कल्पकार को किसी न किसी कल्पकार के प्रमाणों के आधार पर ही संस्कारों आदि की विधियां लिखने का प्रतिबन्ध होगा तो अनवस्था दोष आ जाएगा, किसी ने वैसा विनियोग किया हो चाहे न किया हो मन्त्रों में योग्यता किसी कार्य विशेष में प्रयुक्त होने की यदि किसी ऋषि को दिखाई देती है तो वह ऋषि उन मन्त्रों का विनियोग उन-उन कार्य विशेषों में कर देते हैं।

उनमें जो वास्तव में ऋषि होते हैं, वह सर्वथा उचित विनियोग करते हैं, जो वैसा ही तुक्का मिलाते हैं, वह अनुचित विनियोग करते हैं, ऐसे अनुचित विनियोग करने वालों ने "शन्नो देवी……" मन्त्र का विनियोग शनिश्चर की पूजा में कर दिया, परन्तु शनिश्चर से उस मन्त्र का सम्बन्ध दूर का भी नहीं है। हां ! यदि "श" अक्षर का

साम्य "शन्न:" और "शनिश्चर" में होने से शनिश्चर से इस मन्त्र का सम्बन्ध हो सकता हैं, तो "श्वान" और "श्वपच" में भी इस मन्त्र का विनियोग हो सकता है। ऋषि दयानन्द ने इसका विनियोग जल द्वारा आचमन करने में किया है। "आपो भवन्तु पीतये" यह मन्त्र खंड स्वयं साक्षी दे रहा है कि—ऋषि दयानन्द जी का विनियोग सर्वथा उचित है। यदि सारे गृह्य सूत्रों में एक भी प्रमाण ऐसा न हो जिसमें इस मन्त्र का विनियोग आचमन में बताया जा सके तो कुछ हानि नहीं। इसी का नाम आर्ष प्रणाली है, गृह्य सूत्रों में जिसका प्रमाण मिल जाए वही आर्ष प्रणाली है, ऐसा मैं नहीं समझता हूं, आर्ष प्रणाली यह है कि—मन्त्रार्थों के अनुसार विनियोग मन्त्र का कर दिया जाए, सो "अयन्त इध्म······" इस मन्त्र का ठीक विनियोग किया गया है। एक दृष्टि से एक-एक मन्त्र से ही एक-एक समिधा यहां दी जाती है, एक मन्त्र तो केवल मात्र जपा जाता है! चार मन्त्रों में से समिधा पहले, तीसरे और चौथे से ही दी जाती है, दूसरे मन्त्र से नहीं। यही सांख्यायन गृह संग्रह से मैंने दिखाया है। वहां चार मन्त्र दिए हैं, और पहले, तीसरे और चौथे से एक-एक समिधा दी जाती है, दूसरे से नहीं दी जाती है। उसका केवल उच्चारण किया जाता है।

मैं उनमें से नहीं हूं जो यह कहते हैं कि संस्कार विधि में एक अक्षर तो क्या एक मात्रा का भी परिवर्तन नहीं किया जाना चाहिए, मैं तो मानता हूं कि कहीं आवश्यकता हो तो परिवर्तन कर लेना चाहिए। परन्तु वह परिवर्तन आर्य विद्वानों का सर्वसम्मत होना चाहिए। प्रत्येक व्यक्ति अपने घर में परिवर्तन कर ले यह मैं उचित नहीं समझता हूं। यदि माननीय पण्डित जी यह कहें कि सार्वदेशिक सभा, परोपकारिणी सभा, और जो तीन पण्डित इस पर विचार करने के लिए नियुक्त किये गये, उनकी उस उपसमिति ने परिवर्तन नहीं किया, इसलिए मैंने कर लिया तो मेरा निवेदन यह है कि, उस अवस्था में आपको परिवर्तन कदापि नहीं करना चाहिए। न वह मन्त्र सिद्धान्त विरुद्ध है, न उससे कोई हिंसा हो रही है। न कोई सिद्धान्त की हानि। वह मन्त्र वहां बिगाड़ता क्या है? प्रत्यक्ष तो हानि कोई हो नहीं रही है परोक्ष हानि कोई हो रही हो तो भगवान जानें ऋषि दयानन्द जी महाराज ने "ओइम् द्यौशान्ति···" इस मन्त्र को हवन के बाद, संस्कारों, साप्ताहिक सत्संगों, अधिवेशनों, पर्वों, और वार्षिकोत्सवों की समाप्ति पर बोलने के लिए कहीं नहीं लिखा। परन्तु सर्वत्र निर्विवाद रूप से नित्य बोला जाता है। किसी को कुछ आपत्ति नहीं है, मुझको भी नहीं है। इसका बोलना सर्वसम्मत हो गया, इसी प्रकार—"अयन्त इध्म······" मन्त्र भी सर्व सम्मत है।

एक बात माननीय पण्डितजी की मेरी समझ में और भी नहीं आई, वह यह कि—पण्डितजी ने लिखा है कि—दो मन्त्रों से एक आहुति देने के लिए "इससे और इन मन्त्रों से अर्थात् दोनों मन्त्रों से दूसरी समिधा देनी" इस भाव को किसी साधारण साहित्यिक को भी दिखाया जाए तो वह भी इसको "भौंडीभाषा" बतायेगा। क्या ऋषि दयानन्द जी की भाषा पर हम वर्तमान काल के साधारण या असाधारण साहित्यकों से व्यवस्था लेकर मान्य—अमान्य होने का निर्णय किया करें? अन्त में निवेदन है कि माननीय उपाध्याय जी जैसे विद्वान अपने ऐसे लेखों से आर्य समाज के कर्म काण्ड में "नई-नई उलझनें" उत्पन्न न करें।

श्री पण्डित रामावतार जी शर्मा पंचतीर्थ—

"चार मन्त्र और तीन समिधायें"? सज्जनों! ७ फरवरी सन् १९६० के आर्य मित्र में—"एक पुरानी उलझन" नामक शीर्षक से एक लेख प्रकाशित हुआ है। उसके लेखक हैं आर्य जगत के प्रसिद्ध विद्वान—श्री पण्डित गंगाप्रसाद जी उपाध्याय" उस लेख का सार अंश यह है कि—स्वामी दयानन्द सरस्वती की बनाई हुई संस्कार विधि

की यह विधि प्रक्षिप्त है, कि—**"अयन्त इध्म आत्मा……"** इस मन्त्र से प्रथम समिधा अग्नि में डालनी चाहिए। हस्तलिखित मूल पुस्तक में चार मन्त्रों से तीन समिधाओं का प्रयोग नहीं है। अपितु तीन मन्त्रों से ही तीन समिधाएं डालने का विधान है। आपने उन तीन मन्त्रों का भी उल्लेख किया है, जिनसे समिधा डाली जानी चाहिए, वे मन्त्र ये हैं—(१) **"समिधाग्निं दुवस्यत……"** इससे प्रथम तथा **"सुसमिधाय शोचिषे………"** इससे दूसरी समिधा, और—**"तन्त्वासमिद्भिः……"** से तीसरी समिधा अग्नि में चढ़ाना ही विनियोग के अनुकूल है। (२) शतपथ ब्राह्मण का भी इसी प्रसंग में आपने प्रमाण देकर तीन मन्त्रों का मण्डन किया है। (३) **"अयन्त इध्म आत्मा…"** यह वेद मन्त्र भी नहीं है। इसलिए इसका परित्याग कर देना चाहिए (४) उसका विनियोग केवल अगली पाँच घृत की आहुतियों के लिए हुआ है, समिधा के लिए नहीं। (५) तीसरा हेतु आपने दिया है कि—विनियुक्त तीनों मन्त्र या ऋचायें समिद्वती हैं। **"अयन्त"** यह समित् शब्द वाला मन्त्र नहीं है। अर्थात् जिस मन्त्र का जिस कृत्य में विनियोग हो उस मन्त्र में कोई सादृश्य होना चाहिए। इसी में विनियोग की रूप समृद्धता समझी जाती है। रही **"समिधाओं"** की बात ? समिधाओं के सम्बन्ध में अनेक मतभेद दृष्टिगोचर होते हैं। ये मतभेद, शाखा भेद के कारण से हैं, ऐसा अनुमान है। गृह्य मन्त्रों में देखा जाता है कि कहीं **"अनुक्तमन्त्रतोग्राह्यम्"** के अनुसार दूसरी शाखा का प्रमाण मानकर अपना गृह्यकार्य सुसम्पन्न करते हैं। और कहीं उनका परित्याग भी करते हैं। आपस्तम्ब श्रौत सूत्र में लिखा है कि—**"पालाशीम् समिधमादधाति एकाम्, द्वे तिस्रो वा"** इस प्रमाण से पलाश की एक, दो अथवा तीन समिधाएं होनी चाहिए। इस स्थल में एक, दो और तीन संख्यावाचक शब्द देकर यह निर्देश किया गया है कि, तीन ही समिधाएं हों, यह कोई आवश्यक नहीं है, किन्तु तीन होने में कोई दोष भी नहीं। इसी ग्रन्थ में एक और प्रमाण है जिससे पांच समिधाओं का संकेत मिलता है। यथा—**"यदग्ने यानि कानि चेति पञ्चभिः प्रति मन्त्रम् अग्निषुइध्मान् आदधाति"** ॥ इस प्रमाण में पांच संख्या का स्पष्ट निर्देश है। पंचदश समिधायें भी होती हैं। इस प्रकार समिधा भेद है, संस्कार विधि के अग्न्याधान के प्रसंग में तीन समिधाएं मानी गई हैं।

"मन्त्रभेद"—कुछ ऐसे प्रमाण मिलते हैं जिनसे समिधा चढ़ाने के मन्त्रों में भी भेद दृष्टिगोचर होता है। यहां वैखानस श्रोत सूत्र का प्रमाण दृष्टव्य है—**"तिस्त्रः समिधोऽभ्यज्य समिधाग्निं दुवस्यत, उपत्वाग्ने हविष्मतीः तन्त्वा समिद्भिरङ्गिरः इति तिसृभिः गायत्रीभिः अग्नावादधाति ॥"** इन गायत्री छन्दों वाली तीन ऋचाओं से तीन समिधाएं घी में डुबो कर अग्नि में आधान करता है। इस प्रमाण में पाठकों को एक भेद प्रतीत होता है वह यह कि यहां—**"सुसमिद्धाय शोचिषे"** इस मन्त्र के बदले में एक अन्य मन्त्र लिया गया है। मन्त्र का यह परिवर्तन महत्वपूर्ण है। अनुमान यह है कि, इस विनियोजक की दृष्टि से यह मन्त्र समिधा चढ़ाने के लिए उपयुक्त नहीं है। अभी तक विचारने पर एक ही कारण समझ में आता है कि, इस मन्त्र में **'समित्'** शब्द नहीं है। इस मन्त्र का पद पाठ इस प्रकार है—**"सु। सम्। इद्धाय। शोचिषे। घृतम्। तीव्रम। जुहोतन। अग्नये। जातवेदसे"**। इस मन्त्र का प्रवाह अथवा झुकाव देखा जाय तो स्पष्ट प्रतीत होगा कि इस मन्त्र से समिधा के बदले घृत की आहुति देनी चाहिए। क्योंकि पाठक ध्यान देकर देखें तो यही मालूम होगा कि—**"घृतं तीव्रम् जुहोतन……"** अर्थात् गर्म घी का होम करो। इस मन्त्र का भावार्थ यही है कि, प्रखर अग्नि में गर्म घी का होम करो। यहां यह बात भी स्पष्ट हो गयी कि समिधा आधान के मन्त्रों में परिवर्तन की एक परम्परा है। इससे अपूर्वता की सिद्धि के अतिरिक्त कुछ और नहीं कहा जा सकता। वैखानस श्रोत सूत्र में ही समिधाधान के मन्त्रों के छन्दों का भी विचार किया गया है। कहा गया है कि, गायत्री छन्दों वाली ऋचाओं से ब्राह्मण-त्रिष्टुप छन्द की ऋचाओं से क्षत्रिय तथा जगती छन्द की ऋचाओं से वैश्य समिदाधान करे। बाराहश्रोतसूत्र में वर्ण क्रम से समिधाधान का मण्डन किया गया है। यथा—

"प्रवोवाजा अभिद्यव इति गायत्रीभिः ब्राह्मणस्य। आत्वाजिघर्मि, आविश्वतः यस्ते अद्येति रजन्यस्य, सप्तते अग्ने, जनस्य, गोपाः, उपक्षरन्ति सिन्धवः इति वैश्यस्य" इन प्रमाणों पर ध्यान देने से पाठक यह समझ सकेंगे कि जहां भिन्न-भिन्न छन्दों का वर्णक्रम से विधान किया गया है, वहां मन्त्र स्वतः भिन्न हो गए हैं। एवं क्रम से मन्त्रों का भेद सिद्ध होता है। संस्कार विधि में भी मन्त्र भेद है। शतपथ आदि ब्राह्मण ग्रन्थों के विनियोग के अनुसार जहाँ समिधाधान के मन्त्र संगृहीत हैं, वहाँ श्रोत और गृह्य ग्रन्थों का भी आश्रय लिया गया है।—"अभिमत" अब मैं यह विचार करना चाहता हुं कि, चार मन्त्रों को पढ़कर तीन समिधाएं डालने का कहीं विधान भी है, अथवा नहीं ? संस्कार विधि में स्थान-स्थान पर सांख्यायन सम्प्रदाय के प्रमाण उपलब्ध होते है। गर्भाधान प्रकरण में—"वायो, चन्द्र, सूर्य प्रायश्चित्ते" आदि मन्त्र सांख्यायन गृह्य सूत्र में भी हैं। चूड़ाकरण संस्कार के प्रकरण में—ओषधेत्रायस्वैनम्" यह मन्त्र भाग भी उसी सम्प्रदाय का है। सांख्यायन गृह्य संग्रह की निम्न पंक्तियाँ चार मन्त्रों को पढ़कर तीन समिधायें डालने का स्पष्ट संकेत करती हैं—"**आश्वत्थीस्तिस्त्रः समिधोऽभ्यज्य समिधाग्निं दुवस्यत, सुसमिद्धायशोचिषे, तन्त्वा समिद्भिरङ्गिरः, उपत्वाग्ने हविष्मतीः—इत्येतासाम् चतसृणाम्-ऋचाम् प्रथमया समिध माधाय द्वितीयाम्-जपति ततः तृतीया चतुर्थीभ्याम्"—यथा संख्यम् समिधावाधाय**"। अर्थात् पीपल की तीन समिधाओं को घी में डुबोकर इन चार ऋचाओं में पहली ऋचा से एक समिधा अग्नि में डालकर दूसरी ऋचा अर्थात् "**सुसमिद्धाय शोचिषे**" इस मन्त्र का केवल जप अर्थात् पाठ मात्र करता है। तदनन्तर तीसरी और चौथी ऋचाओं से क्रमशः दूसरी और तीसरी समिधाएं चढ़ाता है। साँख्यायन गृह्य-संग्रह के इस स्थल पर ध्यान देने से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि जिन दो मन्त्रों से एक समिधा डालने का संस्कार-विधि में विधान है, उन्हीं दो मन्त्रों से एक समिधा अग्नि में चढ़ाने का यहाँ भी विनियोग है। भेद केवल प्रथम और द्वितीय समिधा का है। इन पंक्तियों में "**चतसृणाम् ऋचाम् और तिस्त्रः समिधः**" ये दो संख्याएं महत्वपूर्ण हैं।

यदि संस्कार-विधि के विधान से इस विनियोग की तुलना की जाय तो दोनों में कुछ भेद प्रतीत होगा किंतु वह भेद भी महत्वपूर्ण ही है। संस्कार-विधि में विनियुक्त तीन मन्त्र यजुर्वेद के तीसरे अध्याय के प्रारम्भ में ही हैं। यह भूल है कि यजुर्वेद के प्रथम अध्याय के ये मन्त्र हैं। पुस्तक देख लेने से ही इस का निर्णय हो जायगा। प्रस्तुत में यह चौथा मन्त्र "**उपत्वाग्ने**" भी उसी स्थल का है। परन्तु यह मन्त्र संस्कार-विधि में नहीं है। इसके बदले में वहां "**अयन्त इध्म आत्मा**" यह मन्त्र स्वीकृत है जिससे मन्त्रों की चार संख्यायें पूर्ण होती हैं। "**उपत्वाग्ने हविष्मतीः**" यह मन्त्र नहीं लेने का कारण यह है कि इस मन्त्र में वर्णित रीति से समिधा हविष्मती चाहिए। उनकी दृष्टि से देखने पर यह बात स्पष्ट हो जाती है कि ऐसा करना उचित नहीं है। क्योंकि हविष्मती समिधा साधिका के स्थान में बाधिका सिद्ध हो सकती है।

याज्ञिक प्रक्रिया का वैदिक दृष्टिकोण यह है कि—

(१)—"**समिधाग्निं दुवस्यत**" सर्व प्रथम समिधा से अग्नि को प्रज्वलित करना चाहिए। (२)—तदन्तर "**घृतर्बोधयतातिथिम**" घी से अग्नि को प्रखर करना चाहिए। (३)—अन्त में "**आस्मिन् हव्या जुहोतन**" अग्नि में हविष्य का होम होना चाहिए। हविष्य के होम की तीसरी स्थिति है जब अग्नि के बुझ जाने की सम्भावना ही नहीं हो। वर्तमान में यदि "**उपत्वाग्ने हविष्मतीः**" इस मन्त्र से हविष्य मिश्रित समिधा अग्नि में चढ़ाई जाय तो अग्नि के बुझ जाने की पूरी सम्भावना रहती है। यदि हविष्य मिश्रित समिधा के बदले में केवल घृतावत घी में डुबोकर समिधा इस मन्त्र से चढ़ाई जाय तो वह मिथ्या प्रयोग होगा। क्योंकि मन्त्र कहता है कि घी और हविष्य दोनों पदार्थों से युक्त समिधा चाहिए। हविष्य के साथ समिधाधान से अग्नि में प्रखरता कभी नहीं आ सकती। अग्नि के सबल

हो जाने पर ही "**हविष्यान्नस्याग्नौ जुहुयात्**" इत्यादि गृह्य-ग्रन्थों के प्रमाणों से हलुआ अथवा खीर आदि का होम उचित होगा। यही कारण है कि संस्कार-विधि में यह चौथा मन्त्र नहीं लेकर "**अयन्त**" यह मन्त्र समिदाधान का प्रथम मन्त्र स्वीकार किया गया है।

अयन्त इध्म आत्मा—

इसके आगे पाठकगण इध्म शब्द वाले "**अयन्त इध्म आत्मा**" इस मन्त्र के ग्रहण के औचित्य पर विचार करें।

मिथ्या अभियोग—

उपाध्याय जी ने अपने दूसरे हेतु में यह लिखा है कि समिधा के तीन मन्त्र यजुर्वेद के पहले अध्याय के प्रथम तीन मन्त्र हैं, वहीं से लिए गए हैं। उनमें "**अयन्त इध्म**···" नहीं है। यह भूल है कि ये मन्त्र यजुर्वेद के प्रथम अध्याय के प्रथम तीन हैं। अब उनमें "**अयन्त इध्म**" नहीं है, यह मिथ्या अभियोग है। स्वामी जी ने अथवा किसी ने कभी भी ऐसा नहीं माना कि "**अयन्त इध्म**" यह यजुर्वेद का मन्त्र है और यह वहां का ही है जहां "**समिधाग्निं दुवस्यत**" आदि मन्त्र हैं। आप आगे लिखते हैं कि "**न यह वेद मन्त्र ही है।**" यह वेद मन्त्र नहीं है इसमें किसको आपत्ति हो सकती है? परन्तु प्रश्न यह है कि वेद मन्त्र नहीं होना यदि इस मन्त्र के परित्याग का कारण है तो इस हेतु से सब के सब वेद मन्त्र से भिन्न मन्त्र आक्रान्त हो जाते हैं। उनमें—"**यदस्य कर्मणोऽत्यरीरिचम्। येते शतम्। अयाश्चाग्ने**" आदि सैकड़ों मन्त्र छांट देने पड़ेंगे अथवा यह मान लेना पड़ेगा कि गृह्य कार्यों में वेद मन्त्रों के साथ-साथ गृह्य मन्त्रों का होना भी अपरिहार्य हैं। उनको निकाला नहीं जा सकता। अतएव "**अयन्त इध्म**" इस मन्त्र को वेदमन्त्र नहीं होने पर भी छोड़ा नहीं जा सकता है।

अव्यवस्था—

वेद मन्त्र कहने मात्र से अव्यवस्था हो जाती है। क्योंकि जल-सिंचन के चार मन्त्र हैं, उनमें एक ही मन्त्र "**देव सवितः प्रसुव**" वेद का है, शेष तीन श्रौत और गृह्य मन्त्र हैं। यदि श्रौत और गृह्य मन्त्र छोड़ दिए जाए तो कोई हानि भी नहीं होती हैं। कारण कि जल का सेचन ही मुख्य प्रयोजन है। वह इस एक ही मन्त्र से सिद्ध हो जाता है। अर्थात चारों दिशाओं में इस एक ही मन्त्र से, उसमें भी वेद मन्त्र से ही कार्य पूरा हो जाता है। तीन मन्त्रों के पाठ का काल बच जाएगा। उसका उपयोग किसी और विषय में हो सकता है। हमको तो पूरा अधिकार है कि उन सब मन्त्रों को माने जिनका विभिन्न कार्यों में विनियोग है। संस्कार-विधि को मानते हुए यह प्रश्न ही नहीं उठता कि अमुक वेद मन्त्र नहीं है। इसलिए उसका प्रयोग नहीं होना चाहिए। आगे आप कहते हैं कि "**उसका विनियोग केवल अगली घृत की ही पांच आहुतियों के लिए हुआ है।**"

मैं जानना चाहता हूं कि यदि घृताहुति के लिये इसका विनियोग है तो इस समय यह वेद-मन्त्र कैसे हो गया कि घृताहुतियां दी जांय? अन्यच्च इस मन्त्र में घृत शब्द के सादृश्य का वाचक शब्द होना चाहिये जिससे विनियोग की रूप समृद्धता सिद्ध हो सके। ऐसा इस मन्त्र में कोई शब्द नहीं है। सम्पूर्ण मन्त्र आर्य मात्र को कण्ठस्थ है। उसका पद-पाठ भी इस प्रकार से है। "**अयम्। ते। इध्म। आत्मा। जात वेदः। तेन। इद्धस्व। वर्धस्व। च। इद्ध। वर्धय। च। अस्मान्। प्रजया। पशुभिः। ब्रवर्चसेन। अन्नाद्येन। सम्। एधय स्वाहा**" इसमें घृत शब्द अथवा उसका अर्थ करने वाला कोई शब्द नहीं है। मैं नहीं समझता कि ऐसी अवस्था में घृताहुति के सम्बन्ध से भी

उपाध्याय जी इस मन्त्र का परित्याग करने के लिये उद्यत होंगे। किन्तु विनियोग की रूप समृद्धता समता है विषमता में नहीं। अनेक वेद मन्त्र इस मन्त्र के स्थान में घृत की आहुतियों के लिये उपयुक्त हो सकते हैं।

समिद्वती ऋचा—

तीसरे हेतु में आपने लिखा है कि ये तीनों ऋचायें समिद्वती हैं अर्थात् इनमें समित शब्द है। किन्तु ऊपर पद-पाठ देकर मैंने स्पष्ट कर दिया है कि **"सुसमिद्धाय"** मन्त्र या ऋचा समिद्वती नहीं है। इसलिये समिदाधान के लिये समिद्वती युक्ति से यह सिद्ध नहीं होती, इसके विपरीत अयन्त इध्म···मन्त्र में समित् शब्द का पर्यायवाचक इध्म शब्द पुकार कर कह रहा है कि जब तक मेरी सत्ता इस मन्त्र में है तब तक समिदाधान से मेरा निवारण किसी शक्ति से नहीं हो सकता है। कोई शक्ति मुझको इस विधान से नहीं रोक सकती है। मेरा ऐसा विश्वास है कि विनियोग के अनुसार **"सुसमिद्धाय"** इस मन्त्र से समिदाधान की प्रक्रिया अयुक्त नहीं है किन्तु समिद्वती ऋचा का होना अनिवार्य मानने वाले के लिये दो ही मार्ग हैं। या तो समिद्वती ऋचा नहीं होने के कारण इस मन्त्र का परित्याग कर दिया जाय। अथवा यह मान लिया जाय कि समिदाधान में समिद्वती ऋचा का होना अनिवार्य नहीं है। **"नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय।"** इसलिये **"उभयतः पाशा रज्जुः।"** आपने अपने कचालु साहित्य के वर्णन के प्रसंग में लिखा है कि—**"क्योंकि किसी प्राचीन विधान में "अयन्त इध्म" से पहली समिधा देने का विधान नहीं है।"** यदि किसी प्राचीन विधान में पहली समिधा देने का विधान नहीं है तो दूसरी और तीसरी समिधा इस मन्त्र से देने का विधान है क्या ? संस्कार-विधि में हिरण्यकेशि सम्प्रदाय के प्रमाण पाये जाते हैं।

हिरण्यकेशि गृह्य-सूत्र में इस मन्त्र **"अयन्त इध्म"** का विनियोग समिधा देने के अर्थ में किया गया है। देखिये—**"इध्मम् अङ्क्त्वा अभ्यादधाति"** तथा पूरा मन्त्र—**"अयन्त इध्म आत्मा जात वेद स्तेनेद्धस्ववर्द्धस्व चेद्धवर्धय चास्मान् प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेनान्नाद्येन समेधय स्वऽहेति।"** पाठक यह न समझ लें कि मैं अपनी ओर से यह मन्त्र लिख रहा हूं। उस स्थल में इसी प्रकार से सूत्र का निर्देश किया गया है। इस सूत्र में **"इध्मम्"** यह एक वचन कर्म कारक का रूप है। एक ही समिधा तथा प्रथम समिधा का ही यहां विनियोग है। यहां प्रसंगतः दूसरी और तीसरी समिधा का कोई प्रश्न उपस्थित नहीं होता है। **"इध्ममङ्क्त्वा अभ्या दधाति"** यह निर्देश स्पष्ट है कि समिधा को घी में डुबोकर अग्नि में देता है अथवा उसका आधान करता है। इतना ही नहीं आश्वलायन गृह्य-सूत्र में भी **"अयन्त इध्म"** मन्त्र से समिदाधान का विधान किया गया है। **"इध्ममभि धार्यायन्त इध्म आत्मा जात वेद स्तेनेध्यस्व वर्द्धस्व चेद्ध वर्धय चास्मान् प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेनान्नाद्येन समेधय स्वाहेति।"** इस स्थल में वृत्तिकार लिखता है—**"इध्ममभि धार्य अयन्त इति मन्त्रेणाग्ना वा दध्यात्"** समिधा को घी में डुबोकर **"अयन्त"** इस मन्त्र से उसको अग्नि में देवे। यहां भी दूसरी या तीसरी समिधा का कोई प्रसंग नहीं है। ऐसी स्थिति में यह कहना कि इस मन्त्र से समिधा अथवा प्रथम समिधा चढ़ाने का विनियोग नहीं है। यह अभियोग निराधार हैं। इन दोनों गृह्य-ग्रन्थों के प्रबल प्रमाणों से सिद्ध होता है कि इस मन्त्र से समिधा देने का एक परम्परा से प्रवाह है जो अबाध गति से अब तक चला आता है। जब श्रौत और गृह्य-ग्रन्थों में इध्म शब्द का प्रयोग शतशः समिधा के अर्थ में पाया जाता है तो **"समित् शब्द वाला मन्त्र"** ही चाहिये यह कहना न्याय संगत नहीं है।

भौंडा वाक्य—

आपने जिस रूप में भौंड़ा वाक्य बनाया है, उस रूप में वह नहीं है। सामान्य प्रकरण के उस स्थल को पाठकवृन्द स्वयं पढ़ें और ध्यान से देखें तो वहां इस रूप में उनको लेख मिलेगा इससे और इस मन्त्र से अर्थात् दोनों

मन्त्रों से दूसरी समिधा की आहुति देवे। इस स्पष्टार्थक निर्देश को भौंड़ा सिद्ध कर, उसको साहित्य की तुला पर तौलने का प्रयास करना चिन्तनीय है। यदि आपने **"मंगल कार्य"** के निर्देश को अथवा इसी प्रकार के अन्य स्थलों को सुधारने का प्रयास किया होता तो कितना कल्याण आर्यजगत् का होता नहीं कहा जा सकता। किन्तु यह तो अभियोग मात्र ही है।

शतपथ :—

चतुर्थ हेतु में आपने शतपथ का प्रमाण कहकर यह सिद्ध किया है कि तीन मन्त्र से समिधा देनी चाहिए। इस स्थल पर आपने **"प्रत्यृचम्"** शब्द पर विशेष संकेत किया है। **"प्रत्यृचम्"** शब्द पर आश्वलायन गृह्य-सूत्र के वृत्तिकार ने लिखा है कि **"प्रत्यृचम् ग्रहणं ऋगन्ते होमः स्यात् न स्वाहाकारान्ते।"** अर्थात् जहां-जहां **"प्रत्यृचम्"** का निर्देश किया जाए वहां-वहां स्वाहा शब्द का उच्चारण किये बिना ही होम होना चाहिए। अर्थात् ऋचा के अन्त में होम कर दे। यदि केवल शतपथ आदि के विनियोग के आधार से ही गृह्य कार्य किये जायें तो बिना स्वाहा कहे ही होम करना पड़ेगा। हिरण्यकेशि गृह्य-सूत्र और गोभिल गृह्य-सूत्रों में ऐसा लेख है कि **"मन्त्रान्ते स्वाहाकारः। मन्त्रान्ते नित्यः स्वाहाकारः।"** फलतः गृह्य-ग्रन्थों का आश्रय अनिवार्य है।

अभ्यास :—

"उपक्रमोपसंहारावभ्यासोऽपूर्वताफलम्" इस मीमांसा से किसी विशेष मन्त्र आदि का अनेक बार का प्रयोग ग्रन्थों के तात्पर्य का निर्णायक होता है। सात बार मैंने संस्कार-विधि के विभिन्न प्रकरणों में **"अयन्त इध्म"** इस मन्त्र की आवृत्ति देखी है। उन-उन स्थलों में यही लिखा है कि—**"अयन्त इध्म आत्मा"** आदि चार मन्त्रों से समिदाधान करे अथवा **"अयन्त इध्म"** आदि मन्त्रों से समिदाधान करे। आश्चर्य की बात यह है कि **"समिधाग्निं दुवस्यत्"** इस से प्रथम समिधा देने की चर्चा सारी संस्कार-विधि में कहीं नहीं देखी गई। अतएव सम्पूर्ण ग्रन्थ का तात्पर्य भी **अयन्त इध्म** इसी मन्त्र से प्रथम समिधा देने का प्रतीत होता है। जब चार मन्त्रों को पढ़कर तीन समिधा देने का प्रमाण मिलता है तो केवल स्वामीजी का ही ऐसा लेख नहीं है, किन्तु अबाध गति से यह एक परम्परा चली आ रही है। अतः हाशिया पर का लेख प्रक्षेप नहीं किन्तु संशोधन है। अन्यत्र प्रमाण नहीं मिलने पर सन्देह का अवकाश अवश्य था किन्तु अब ऐसा नहीं कहा जा सकता। कहीं ऐसा न हो कि भूल के संशोधन के प्रसंग से मूल का ही संशोधन हो जाए।

जब ५० वर्ष पूर्व से इस आन्दोलन का सूत्रधार उपाध्यायजी स्वयं अपने को मानते हैं तो आर्य समाज पत्र के इस लेख का कुछ अर्थ नहीं है कि उपाध्यायजी को दो दलों में से किसी एक दल में नहीं रखा जा सकता।

श्री पण्डित गंगा प्रसाद जी उपाध्याय :—

योग्य सम्पादक **"श्री पण्डित अमर सिंह जी आर्य पथिक"** जी ने मेरे उत्तर का जो प्रत्युत्तर दिया है वह **"मेरी समझ में नहीं आया"** मुझे यह आश्चर्य भी हुआ कि ऐसे तार्किक विद्वान की लेखनी से युक्ति-शून्य हेत्वाभासों का यह आविर्भाव कैसे सम्भव हो सका? पहले यह लिखना कि **"तीन लकड़ी आठ-आठ अंगुल की घृत में डुबो उनमें से "एक-एक" नीचे लिखे "एक-एक मन्त्र से एक-एक समिधा" को अग्नि में चढ़ावे"** और फिर शीघ्र ही चार

मन्त्रों से तीन आहुतियों का विधान करना साक्षात् **"वदतो व्याघात"** या **"परस्पर विरोध"** है। दोनों आदेशों का पालन नहीं हो सकता। एक का होगा या किसी का भी नहीं। आपने इस परस्पर विरोध को मिटाने या समन्वित करने के लिए दो उपाय किये हैं। प्रथम तो पहले आदेश को **"विधि"** और दूसरे को **"अपवाद"** माना है। विधि-वाक्य वही होता है जो सामान्यतः अधिकांश स्थानों में लागू होता है। मैं भी इसको विधिवाक्य ही मानता हूं इसी-लिए एक-एक मन्त्र से एक-एक आहुति के पक्ष में हूं, मैं या आप किसी स्थान में इसको लागू नहीं मानते अतः **"विधि"** कैसा ? अपवाद वह होता है जो किसी विशेष अवस्था या अवसर पर विधि से अन्यथा निर्दिष्ट हो। यदि पहले तीन मन्त्रों से तीन आहुतियों का सामान्य अवस्था में निर्देश करके किसी विशेष स्थान पर चार मन्त्रों से तीन आहु-तियां देने का विधान किया जाता तो इसको अपवाद कह सकते थे। जब आप तीन मन्त्रों में तीन आहुतियां देने के निर्देश को कहीं नहीं मानते तो **"अपवाद"** कैसा ? विधि का क्षेत्र अपवाद के क्षेत्र से अधिक व्यापक हुआ करता है। सब शास्त्रों में और विशेषकर अष्टाध्यायी में इसके अनेक उदाहरण मिलेंगे। आपको बताने की क्या आवश्यकता है ? साधारण विद्यार्थी भी समझते हैं, अपवाद विधि का पोषक होता है घातक नहीं।

अंग्रेजी में कहते हैं कि एक्सेप्शन प्रूव्ज दी रूल (Exception proves the rule) अर्थात् **"अपवाद"** विधि के अस्तित्व का प्रमाण है। यदि विधि नहीं हो तो अपवाद न होता। अपवाद दिया तो विधि सिद्ध हो गई। इसलिये विधि-अपवाद-सम्बन्ध की इस स्थल पर कल्पना करना ही असमीचीन है। सर्वथा असमीचीन है। इसकी यहां झलक तक भी नहीं। दूसरा उपाय आपने यह दिया है कि—**"समिधाग्निं दुवस्यत घृतैर्बोधयतातिथिम्। अस्मिन् हव्या जुहोतन। स्वाहा॥ इदमग्नये इदन्नमम्"**। इससे जाप का मन्त्र इसको मानकर दूसरी समिधा को **"सुसमिद्धाय"** इत्यादि से चढ़ाया जाय। यह **"जाप"** की कल्पना आपकी कल्पना मात्र है और क्लिष्ट-कल्पना है। ऋषिवर को यह इष्ट है ही नहीं। यदि इष्ट होती तो **"स्वाहा इदमग्नये इदन्नमम्"** तथा **"इससे"** यह तीन शब्द न देते। यह ठीक है कि **"स्वाहा"** शब्द यजुर्वेद के कई मन्त्रों के बीच में या अन्त में आया है और उनमें से कुछ ऐसे भी हैं जहाँ आहुति देने का विधान नहीं है, परन्तु **"समिधाग्नि"** मन्त्र में **"स्वाहा"** या **"इदन्नमम्"** मन्त्र का भाग है ही नहीं, यह मन्त्र **"यजुर्वेद के तीसरे अध्याय का पहला है और ऋग्वेद के ८वें मण्डल के ४४ वें सूक्त का भी पहला मन्त्र है"** जहाँ किसी स्थल पर भी **"स्वाहा"** शब्द मन्त्र का अङ्ग नहीं है। बाहर से यह शब्द जोड़े ही वहां जाते हैं जहां अहुति देना इष्ट हो। यदि श्री स्वामी जी को **"जप"** इष्ट होता तो कुछ संकेत करते। इसलिये यदि आप इस मन्त्र को केवल **"जप"** में प्रयोग करते हैं तो स्वामी जी महाराज के अभिमत निर्देश का विरोध करते हैं। **"फर्दे जुर्म उल्टी तो नहीं है"** बिल्कुल सीधा है, मुजरिम जो चाहे सो कह सकता है।

श्री स्वामी जी ने जो कल्प निर्धारित किया था वह तो बहुत सुन्दर था। असली कापी में वही था, तीन मन्त्र स्पष्ट और तीन समिधायें स्पष्ट और उनका प्रयोग स्पष्ट। **"कल्प"** को बिगाड़ा तो उसने जिसने प्रमाद से अकारण बीच में **"अयन्त इध्म"** वाला मन्त्र प्रक्षिप्त कर दिया। एक अच्छे कल्प की सुन्दरता नष्ट हो गई। परस्पर विरोध भी और असंगति भी और सभी विचारकों के लिये उलझन। गाय ने तो दूध अच्छा दिया था। पानी मिलाने वाले ने मिलाया और मिट्टी ऊपर से मिल गई। दूध का गुण बिगड़ गया और गाय की बदनामी हुई। मुझे तो यह ऋषि की वास्तविक भक्ति प्रतीत नहीं होती। ऋषिवर का तो स्पष्ट आदेश है कि बुद्धि के छन्ने से छानकर दूध पिये। ऋग्वेद भी कहता है कि **"सक्तुमिव तितउना"** अर्थात् जैसे सत्तू को चलनी से छानकर खाते हैं इसी प्रकार ग्रन्थों को भी छान कर मानना चाहिये। मैंने कभी यह संकेत नहीं किया कि आपने गृह्य-सूत्रों आदि को नहीं देखा। देखा तो मैंने भी है, आपके बराबर न सही। पाठ्य ग्रन्थों की सूची देने से क्या लाभ ? मैं

संस्कारविधि के भी असाधारण मूल्य को स्वीकार करता हूं। परन्तु दूध में पड़ी हुई मिट्टी को दूध नहीं मानता। मैंने श्री पं० रामावतार जी शर्मा का लेख भी वेदवाणी में पढ़ा था और उसका उत्तर भी उसी पत्र को भेजा था। अब वह लेख अन्यत्र भी छपा है। मैं अलग-अलग हर पत्र को नहीं लिख सकता। यदि सम्पादक महोदय जनता के समक्ष दोनों पक्ष रखना स्वीकार करेंगे तो मेरे उत्तर को भी छाप देंगे। मैंने उत्तर में केवल प्रकृत-विषय तक ही अपने को सीमित रक्खा है। यदि अन्य बातों की भी मीमांसा की जायगी तो विषयान्तर हो जायगा।

श्री पण्डित ठाकुर अमर सिंह जी शास्त्रार्थ केशरी :—

श्रद्धेय श्री पं० गंगाप्रसादजी उपाध्याय ने **"अयन्त इध्म आत्मा"** इस मन्त्र से समिदाधान के विरुद्ध एक लेख आर्यमित्र में छपाया था। उसमें उन्होंने अपने पक्ष में और इस मन्त्र से समिदाधान के विरुद्ध सात हेतु दिये थे। मैंने उन सातों हेतुओं को हेत्वाभास मानकर सातों हेतुओं का खण्डन आर्यसंसार मासिक पत्र में प्रकाशित कराया। श्री उपाध्यायजी ने अपने हेतुओं की पुष्टि और मेरी आलोचना के खण्डन में कुछ न लिखकर मेरी इस मान्यता पर आपत्ति लिखकर आर्यसंसार में छपने को भेजी कि—**"संस्कारविधि ऋषि दयानन्दजी का बनाया सर्वोत्तम गृह्यसूत्र है।"** मैंने इसका उत्तर **"आर्यसंसार"** के उसी अंक में दे दिया। पीछे श्री उपाध्यायजी के दो लेख फिर पढ़ने को मिले (1)—**"मेरी समझ में नहीं आया"** इस शीर्षक से **"आर्यसंसार"** मे (2)—**"उलझन अभी बनी है।"** इस शीर्षक से **"वेदवाणी"** में। इन दोनों लेखों को पढ़कर मुझको बहुत आश्चर्य हुआ। मेरे आश्चर्य के कुछ कारण ये हैं—

१—जब कि श्री उपाध्यायजी के सातों हेतुओं का खण्डन हो गया और एक प्रकार से उसको माननीय उपाध्यायजी ने स्वीकार भी कर किया क्योंकि उनके पक्ष और मेरी आलोचना के विरुद्ध कुछ न लिखकर एक और नये प्रश्न पर ही उन्होंने लेख लिखकर भेजा था। फिर—" **"समझ में न आने"** और **"उलझन बनी रहने"** का क्या कारण शेष रह गया? उन हेतुओं पर संक्षेप से फिर दृष्टि डाल ली जाय जो ऊपर से गिनने में सात थे पर थे अधिक।

२—प्रथम और सबसे बड़ा हेतु यह था कि—असल कापी में **"अयन्त इध्म"** मन्त्र नहीं था।

इस हेतु पर मैंने ६ प्रश्न किये थे जिनमें से एक का भी उत्तर श्री उपाध्यायजी ने नहीं दिया। उनपर विचार करने से सारी उलझन सुलझ जाती। कम से कम इतना ही विचार लिया जाए कि—यदि असल कापी में यह मन्त्र नहीं था और प्रेस कापी में बढ़ा दिया गया और हाशिये पर ही बढ़ाया गया, तो इसमें आपत्ति क्या है? क्या असली कापी ईश्वरीय इलहाम थी जो उसमें कभी भी कुछ बढ़ाया नहीं जा सकता था? यदि आप कहें यह ऋषि ने नहीं बढ़ाया या बढ़वाया तो मैं पूछता हूं कि—आपके पास इसका क्या प्रमाण है? जब कि ऋषि के पत्रों से स्पष्ट है कि—यह भाग स्वयं ऋषि ने छपने को भेजा था। एक नया प्रश्न जो श्री उपाध्यायजी ने उठाया है वह यह है कि—**"क्या असली कापी लिखते समय ऋषि, ऋषि निर्भ्रान्त या साक्षात्कृतधर्मा"** न थे और ये गुण उनमें प्रेस कापी बनाते समय ही आ गये? इस प्रश्न के साथ ही श्री उपाध्यायजी के प्रथम और सबसे प्रबल हेतु को जोड़ लिया जाए जिसको सब लेखों में अब तक लिखा है—**"असल कापी में नही था"**। तो ऋषि दयानन्द के लिखे सारे ग्रंथ श्री उपाध्यायजी के शब्दों में कूड़ा-करकट हो जायेंगे। क्योंकि—**"प्रथम बार की संस्कार विधि जो ऋषि ने सं० १९३२ विक्रमी में लिखी थी वह सं० १९४० में नहीं रही"** उसमें बहुत कुछ परिवर्तन कर दिया और स्वामीजी ने स्वयं किया। तथा **सत्यार्थ प्रकाश का प्रथम संस्करण सं० १९३१ विक्रमी में हुआ था और वह ऋषि ने स्वयं**

१९३९ **विक्रमी में बदल दिया"**। श्री उपाध्यायजी के इन हेतुओं से पहले संस्करण ही प्रामाणिक ठहरेंगे और अन्य दूसरे संस्करण "**कूड़ा-करकट निकाल फेंकने के योग्य ठहरेंगे"**।

दूसरे संस्करणों में जो कुछ पहलों से अधिक या भिन्न है वह अमान्य है, क्योंकि वह पहले संस्करण में नहीं था और यह प्रश्न श्री उपाध्यायजी का इन संस्करणों को कूड़ा-करकट बना देगा कि—"**क्या पहले सत्यार्थ प्रकाश और पहली संस्कारविधि के लिखते व छपते समय ऋषि, ऋषि या निर्भ्रान्त या साक्षात्कृतधर्मा न थे और ये गुण दूसरे संस्करणों के समय ही आ गये"** ? महान् आश्चर्य है कि इतने बड़े दार्शनिक विद्वान और महान् लेखक की लेखनी से यह क्या लिखा जा रहा है ? दूसरा कारण मेरे आश्चर्य का यह है कि—"ये जितने बड़े-बड़े पण्डित हैं **इनमें से अधिक पण्डित उलझनें सुलझाने के स्थान में उलझनें उत्पन्न करने में क्यों लग गए हैं"** ? हमारी यज्ञशालाएं प्रायः सर्वत्र नये-नये शास्त्रार्थ शूरों का संग्राम क्षेत्र बन रही हैं। सामग्री किन मन्त्रों से डाली जानी चाहिये किन से नहीं इस पर सर्वत्र झगड़ा होता है। इसी प्रकार कई और भी प्रश्न हैं। एक नया झगड़ा यज्ञशालाओं में "**अयन्त इध्म**" इस मन्त्र से समिदाधान का और खड़ा हो जाएगा।

ये पंक्तियां तो उपाध्यायजी ने सर्वथा वैसे ही लिख दी हैं कि—"**जब कभी भूल सामने आती है तो कहने लगते हैं कि ऋषि ऋषि थे, साक्षात्कृतधर्मा थे, निर्भ्रान्त थे। अतः यह भूल भूल नहीं है**" आदि। "**अयन्त इध्म**" इस मन्त्र पर श्री उपाध्यायजी के लेख के विरुद्ध मैंने लिखा है और "**श्री पं० रामावतारजी पञ्चतीर्थ ने**। हमारे दोनों के ही लेखों में यह हेतु कहीं नहीं दिया गया है। न हमारे दोनों के लेखों में यह कहीं लिखा गया है कि ऋषि दयानन्दजी के ग्रन्थों में संशोधन नहीं होना चाहिए। मेरा कहना केवल यह है कि—"**भूल का नाम लेकर भूल को न मिटाया जाए**" और कूड़ा-करकट कहकर लाभदायक शिक्षाप्रद वास्तविक वाक्यों को न निकाल दिया जाए। श्री उपाध्यायजी जिनके लिए मैं अगाध श्रद्धा रखता हूं और लोग भी रखते हैं उनका उठाया आन्दोलन उपेक्षा करके टाल देने योग्य नहीं हैं। उससे समाज में बहुत झगड़ा बढ़ सकता है जैसा कि—श्री उपाध्यायजी का हेतु रहित आग्रह है इससे और अधिक भय होता है क्योंकि—सर्व साधारण जन हेतुओं को अधिक नहीं समझते हैं आग्रहों से शीघ्र आग्रहीत हो जाते हैं। श्री उपाध्यायजी का यह कोरा आग्रह है कि असल कापी में यह मन्त्र नहीं था। इसलिए इसको मानना अनार्षपन और हठ है। इस आग्रह में उपाध्यायजी कहां तक आगे चले गये हैं इसके कुछ नमूने उनके लेखों में नये देखने योग्य हैं। यथा :—

(१) प्रेस कापी में "**अचानक बिना कारण**" के हाशिये पर मन्त्र का आ जाना जो यजुर्वेद के उन तीनों मन्त्रों से सर्वथा भिन्न है सन्देह को पक्का करने के लिए पर्याप्त है।" (२) विशेष कर उस समय जब प्रेस कापी का अधिकतर भाग ऋषिवर की मृत्यु के पीछे लिखा गया हो। (३)—आप जो "**सात बार—अयन्त०**" मन्त्र को दुहराया हुआ देखते हैं ये प्रतीकें तो पीछे से जोड़ी गई हैं। (४)—यदि "**अयन्त०**" इस मन्त्र का प्रक्षेप न हुआ होता तो प्रतीकों में "**समिधा०**" आदि ऐसा लिखा होता। ये चारों वाक्य श्री उपाध्यायजी के वेदवाणी वाले लेख में से लिए हैं।

तनिक विचार करिये कि, ये वाक्य क्या प्रकट करते हैं ? प्रथम सन्दर्भ में—"**अचानक बिना कारण के हाशिये पर मन्त्र का आ जाना**" यह वाक्य श्री उपाध्यायजी के आग्रह को नंगा कर रहा है। क्या यह मंत्र यहां "**अचानक और बिना कारण**" आ गया है ? यदि अचानक और बिना कारण आया था तो गर्भाधान से अन्त्येष्टि

पर्यन्त किसी भी संस्कार का कोई भी मंत्र यहां क्यों नहीं आया ? वही मंत्र अचानक यहां कैसे आ गया जो समिधा का स्पष्ट मंत्र है और जिसमें समिधा का ही वाचक "इध्म" शब्द स्पष्ट रूप से विद्यमान हैं और जो मन्त्र अपना विनियोग आप ही बता रहा है। उस मंत्र को "**अचानक बिना कारण**" बताना कितना बड़ा हेतु रहित आग्रह है यह इस वाक्य में पूर्णरीत्या स्पष्ट है। इससे अगले तीनों वाक्य यदि सत्य मान लिए जाएँ तो संस्कारविधि संशोधन करने के योग्य नहीं रहती है। नष्ट करने और जला देने के योग्य ही ठहरेगी। यह बात पौराणिक लोग लिखा और हमारे सम्मुख शास्त्रार्थों में कहा करते हैं कि—"**सत्यार्थ प्रकाश और संस्कारविधि दोनों ग्रंथों के दोनों दूसरे संस्करण स्वामी दयानन्दजी की मृत्यु के पीछे आर्यसमाजियों ने बनाकर छपा लिए हैं**"। अब अपने एक जगत प्रसिद्ध महापण्डित की लेखनी से लिखा हुआ हम यह पढ़ रहे हैं कि—"**संस्कारविधि की प्रेस कापी का अधिकांश भाग ऋषि की मृत्यु के पीछे लिखा गया है**"। और उसमें "**अयन्त इध्म**" इस मन्त्र को पीछे से सात बार जोड़ा गया है। पाठकगण ! यह मंत्र समिधा के लिए संस्कारविधि में स्पष्टरूपेण पुंसवन संस्कार, जातकर्म संस्कार, वेदारम्भ संस्कार विवाह संस्कार में दो बार और वानप्रस्थ संस्कार में। इस प्रकार छः स्थलों में सामान्य प्रकरण से अतिरिक्त उल्लिखित और निर्दिष्ट है।

श्री उपाध्यायजी कहते हैं कि इन सारे स्थलों में यह पीछे से जोड़ा गया है। श्री उपाध्यायजी के शब्दों में यह प्रक्षेप और थेगड़ी है जो लगभग सारी संस्कारविधि में है सामान्य प्रकरण से वानप्रस्थ तक लगी हुई एक थेगड़ी का पता तो अभी सम्मुख आया है। भगवान् जाने ऋषि की मृत्यु के पीछे और क्या-क्या कहां-कहां पीछे से जोड़ा होगा। इसके संशोधन का अर्थ तो होगा इसका सारा कलेवर बदलना इससे तो अच्छा यही होगा कि—इसकी अन्त्येष्टि करके संस्कारविधि के पहले संस्करण को ही छपा लिया जाए और पहला ही सत्यार्थ प्रकाश ले लिया जाए। जो कुछ ऋषि ने त्याग दिया था उसको ही प्रामाणिक मान लिया जावे।

संस्कारविधि का द्वितीय संस्करण—

ऋषि दयानन्दजी का बनाया हुआ श्लोक वर्तमान संस्कारविधि में विद्यमान है जिसमें दूसरे संस्करण का काल बताया गया है। देखिये—"**विन्दु वेदांक चन्द्रेब्दे शुचौ मासेऽसिते दले। त्रयोदश्यां रवौवारे पुनः संस्करणं कृतम्**॥ इसका अर्थ यह है कि सं० १९४० विक्रमी के आषाढ़ मास में त्रयोदशी रविवार को दूसरा संस्करण किया।

ऋषि की मृत्यु—

उसी सम्वत् के कार्तिक मास की अमावस्या दीपावली को ऋषि का देहावसान हुआ। ऋषि की मृत्यु से चार मास पूर्व दूसरा संस्करण बन रहा था। आषाढ़ से दीपावली तक का समय बीच में स्पष्ट ही है। अब प्रेस कापी की कहानी सुनिये--

ऋषि दयानन्दजी के इस विषय में दो पत्र श्री मुंशी समर्थदानजी के नाम लिखे ऋषि के पत्र व्यवहार में विद्यमान हैं—(१) आश्विन बदी ८ सोमवार सं० १९४० वि० २४ सितम्बर सन् १८८३ को लिखा गया है और दूसरा आश्विन बदी १३ शनिवार २९ सितम्बर को लिखा है। पहले पत्र में लिखा है कि—"**आज संस्कारविधि के पृ० १ से ४७ तक भेजते हैं।**" (२)—इसी तिथि को लिखकर बताया है कि—उस दिन "**संस्कारविधि के पृष्ठ १ से लेकर ४७ तक भेजे हैं, पहुंचे होंगे।**" इस पृष्ठ संख्या से अनुमान होता है कि —"**पुंसवन संस्कार**" तक की प्रेस

कापी स्वामीजी ने स्वयं ही छपने के लिए भेज दी थी। इतने लेख में सामान्य प्रकरण में आया **"अयन्त इध्म"** मंत्र प्रथम समिधा के लिए विद्यमान था चाहे वह हाशिये पर हो। और गर्भाधान में यह भी आ चुका था कि **"सामान्य प्रकरण के प्रमाणे हवन करके"** तथा पुंसवन संस्कार का यह निर्देश भी पृष्ठ ४७ तक आ चुका था कि—पृष्ठ अमुक में लिखे प्रमाणे **"अयन्त इध्म०"** इत्यादि। ऐसी स्थिति में यह लिखना कि—**"यह पीछे से जोड़ा गया है बड़ी भारी जबर्दस्ती है"**। जो माननीय उपाध्यायजी जैसे प्रौढ़ तथा गम्भीर विद्वान् के द्वारा नहीं होनी चाहिए जिनसे मेरे जैसों को बहुत कुछ सीखना है।

श्री उपाध्यायजो की महाक्लिष्ट कल्पना—

यह लिखना कि—सात बार **"अयन्त इध्म"** मंत्र की प्रतीकें संस्कारविधि में पीछे से जोड़ी गई है यह कल्पना करके श्री उपाध्यायजी ने बहुत बड़े साहस का काम किया है। श्री उपाध्यायजी के विचारानुसार यदि कोई ऐसा व्यक्ति था कि—जिसने ६-७ बार **"अयन्त इध्म"** इस मन्त्र की प्रतीक जगह-जगह लिखने का कष्ट उठाया और **"समिधाग्नि०"** आदि संकेतों पर लगभग उतनी ही बार हड़ताल फेरने का कष्ट किया वह अवश्य पागलखाने में रखने योग्य कोई होगा—क्योंकि उसको एक बहुत ही सुगम और बहुत ही छोटा-सा काम करना ही पर्याप्त था वह यह कि—**"नीचे लिखे एक-एक मन्त्र से एक-एक समिधा"** इस वाक्य को इस प्रकार कर देता कि—**"नीचे लिखे एक मन्त्र से एक समिधा"** ऐसा करने में केवल २ के अंक को दो स्थानों से मिटाना, बस इतना काम था। इसको करके उसको एक जगह भी **"अयन्त इध्म आदि चार मन्त्रों से"** यह कुछ लिखने की आवश्यकता न होती और यदि प्रतीकें देना आवश्यक भी समझता तो भी उसको एक-एक के स्थान में **"एक"** कर देना अत्यन्त आवश्यक था। जो इतना आवश्यक और सुगम काम नहीं कर सका उसने छः बार **"अयन्त इध्म"** की प्रतीक लिखने और **"समिधाग्नि०"** को मिटाने का कार्य किया होगा, ऐसी कल्पना कल्पनातीत ही है। पर श्री उपाध्यायजी प्रमाणभूत आचार्य हैं उनको अधिकार है वह चाहे जैसी कल्पना कर लें।

भोंड़ा वाक्य—

"ओं अयन्त" इस मन्त्र से एक। तथा **"ओं समिधाग्नि०"** इससे एवं **"सुसमिद्धाय०"** इस मन्त्र से अर्थात् दोनों मन्त्रों से दूसरी और **"ओं तन्त्वा०"** इस मन्त्र से तीसरी समिधा की आहुतिदेवें।

इन वाक्यों में **"भोंड़ा वाक्य"** कौन-सा है? यह सारे पाठक पृथक्-पृथक् और आपस में मिलकर भी विचारें। मुझको तो इनमें कोई वाक्य भोंड़ा दिखाई नहीं दिया। मैं समझता हूँ कि—**"अयन्त इध्म"** मन्त्र पर सर्वथा अनावश्यक प्रश्न उठाया गया और उस पर मुझको भी इतना लिखना पड़ा। अब अच्छा यह है कि—इन सब लेखों को हमारी **"सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा की धर्मार्य सभा के सम्मुख रख दिया जावे और यह सभा जो निर्णय दे उसे हम सब श्री उपाध्यायजी सहित स्वीकार करें"** और समाज में नई-नई उलझनें न उत्पन्न करें। पूज्य उपाध्यायजी संस्कारविधि और सत्यार्थप्रकाश के संशोधन का कार्य अब अपने हाथ में लेलें तो मैं उनका तुच्छ सेवक और उनका भक्त भी उनको अपनी योग्यता के अनुसार सहयोग दूंगा। मेरा विचार यह है कि—**"सत्यार्थ-प्रकाश और संस्कारविधि में प्रक्षेप कुछ भी नहीं हैं पर कुछ अशुद्धियां हैं"**—ऐसी अशुद्धियाँ प्रायः मुद्रकों से हुआ ही करती हैं और प्रूफ देखने वालों की असावधानी या अयोग्यता से रह जाती हैं। ऐसी भूलें भी बहुत नहीं हैं। यदि मिलकर कार्य करेंगे और ग्रंथों को शुद्ध कर सकेंगे तो आर्य जनता का महान उपकार होगा। पर यह अचानक, अकारण और अनावश्यक उलझन जो श्री उपाध्यायजी ने खड़ी कर दी है, उसपर आप हट न करें। उससे

समाज को भारी हानि होगी, "जिसे शास्त्रार्थ करनेवाले ही अनुभव कर सकते हैं।" दूसरे बड़े-बड़े विद्वान भी यह अनुभव नहीं कर सकते कि—ऐसी उलझनों से और कितनी उलझने खड़ी हो जायेंगी ?

श्री पण्डित गंगा प्रसाद जी उपाध्याय :—

"आर्य संसार" के वैशाख अङ्क में विद्वद्वर श्री पं० अमर सिंहजी आर्यपथिक ने मेरे एक आर्यमित्र के लेख "एक पुरानी उलझन" की मीमांसा की है। श्री पं० जी की सद्भावना मुझे सदैव प्राप्त रही है और इस लेख में उन्होंने जो मेरे प्रति प्रशंसा के शब्द लिखे हैं, उनका मैं आभार मानता हूं। श्री पं० जी का लेख विद्वतापूर्ण और असाधारण अध्ययन और परिश्रम का परिचायक है, परन्तु मुझे एक कमी प्रतीत होती है। मैंने "असली कापी" प्रेस कापी को स्वयं अपनी आँख से देखा और मिलान किया। १८८४ के छपे पहले संस्करण और उसके पश्चात् छपे दो-तीन संस्करणों का मिलान किया। इसके अतिरिक्त परित्यक्त संस्करण भी मेरे पास है। श्री पं० जी ने इनको नहीं देखा। अतः प्रत्यक्ष प्रमाण के अभाव में उन्होंने अनुमान आदि से काम लिया। यदि वे या अन्य बहुत से विद्वान् जिनकी ओर उन्होंने अपने लेख में संकेत किया है स्वयं देख लें तो उन्होंने जो पांच-छः प्रश्न मुझ पर किये हैं, उन सब का उत्तर वही कापियां दे देंगी। और श्री पं० जी की तर्क-पद्धति भी कुछ भिन्न ही होगी। प्रत्यक्ष अभाव में "मुद्दई सुस्त और गवाह चुस्त" की कहावत लागू हो जाती है। मैं कोई "नई उलझन" पैदा नहीं कर रहा हूँ। संस्कार-विधि के पहले दो-तीन संस्करण छापने वालों के समक्ष भी यह उलझनें थीं। श्री स्वामीजी महाराज इस संसार में न थे। "परोपकारिणी" की परिस्थिति भी चिन्ताजनक रही होगी। उस समय भूल सुधारना भी सुगम था।

परन्तु उस समय "लीपा-पोती से" काम चलाया गया। इन ७६ वर्षों में भूमि की कठिनता बढ़ गई हैं। परन्तु उलझनें तो ज्यों की त्यों बनी हैं। पं० जी के लेख के अनेक भागों पर मुझे बहुत कुछ वक्तव्य है, परन्तु मैं यथाशक्ति केवल "सार" को ही लेता हूँ जिससे विषयान्तर न हो जाय। श्री पं० जी का पक्ष यह है कि स्वामीजी महाराज "ऋषि" थे, "मन्त्र द्रष्टा" थे, अपने युग के "कल्पकार" थे। अतः उन्होंने जो विशेष "कल्प" बनाया वह अन्य आचार्यों से भिन्न होता हुआ भी माननीय है।" इतना स्वीकार करने में मुझे आपत्ति नहीं। परन्तु जिसको आप विशेष "कल्प" कहते हैं उसका स्वरूप "कल्प" का है ही नहीं। यदि स्वामीजी को पुराने आचार्यों से भिन्न किसी विशेष निज "कल्प" की इष्टि होती तो वह आरम्भ में अर्थात् "असली कापी" में ही इसका द्योतन करते और अन्य सूत्रों के अनुसरण मात्र से सन्तुष्ट न होते। अन्य स्थान से उद्धरण करने में असावधानी हो सकती है।

नये "कल्प" बनाने में आरम्भ से सावधान रहना पड़ता है। और संशोधन की आवश्यकता कम पड़ती है। "हमारे सामने जो प्रचलित "संस्कार-विधि" है और जिसका पं० जी ने सम्पोषण किया है उस पर दृष्टि डालने से विशेष "कल्प" का स्वरूप दिखाई नहीं देता कैसे ? देखिये, नये "कल्प" का निर्देश निश्चित शब्दों में होना चाहिये, संदिग्ध न हो। न उनको कार्यान्वित करने वाले को कुछ काट-छांट करनी पड़े। श्री पं० जी यज्ञ करने या कराने में बिना काट-छांट किये कार्य चला ही नहीं सकते वस्तुतः उनके समक्ष उलझनें हैं और दूसरों के समक्ष भी श्री पं० जी काट-छांट करने पर बाधित होते हैं" परन्तु कहते नहीं, सब से पहले यह पंक्ति आती है—'तीन" लकड़ी आठ-आठ अंगुल की घृत में डुबा उनमें से एक-एक नीचे लिखे एक-एक मन्त्र से एक-एक समिधा को अग्नि में चढ़ावे। इस प्रकार "एक-एक" वाला वाक्य तीन स्थानों पर आया।

इस निर्देश का आप कैसे पालन करते हैं ? **एक-एक मन्त्र से**"। कितना स्पष्ट निर्देश है, "**आपके मतानुसार** इस विधिकी, जो कि "मन्त्र द्रष्टा" "ऋषि" और "कल्पकार" द्वारा दी हुई है आपने **अवहेलना की । क्योंकि बिना अवहेलना किये आपके पक्ष की सिद्धि न होगी । आप दोनों मन्त्रों से एक आहुति देने को इस विधि का अपवाद मानते हैं । यह तो विचित्रतम स्थिति है । विधि कहीं न हो और अपवाद हो जाय**" । पाणिनि में विधि और अपवाद के अनेक स्थल मिलेंगे । परन्तु ऐसा एक भी नहीं । यह काटने-छांटने की पहली क्रिया हुई जो आपके पक्ष में आवश्यक है । आगे चलिये—"**सुसमिद्धाय शोचिषे घृतं तीव्रं जुहोतन । "अग्नये जात वेद से स्वाहा ।। इदमग्नये जातवेद से इदन्नमम्**" ।

यहां "**स्वाहा**" और "**त्याग**" दोनों हैं । जाप में तो ऐसा नहीं होता । यहां भी अवश्य ही आप काट-छाँट करते होंगे । सांख्यायन का प्रमाण यहां समानान्तर तो नहीं रहा । यदि ऋषि को ऐसा अभीष्ट होता तो "जप" का आदेश देते और "**स्वाहा**" तथा "इदन्नम" न लिखते । न "**इन मन्त्रों से**" ऐसा लिखते । "**आपकी बिना काटे-छाँटे तो एक पग भी गति नहीं है**" । काटने-छाँटने से आप वह स्वीकार कर लेते हैं कि "**भूल है**" उसका सुधार होना चाहिए । क्यों ऐसा करने से "**ऋषित्व**" और "**मन्त्रद्रष्ट्रत्व**" की अवहेलना होती है या नहीं ? या यह आक्षेप केवल दूसरों के लिये है । जब संशोधन करना है तो सीधा-साधा मान लीजिये कि असली कापी ठीक थी । प्रेस कापी में किसी ने भूल की, संशोधन नहीं । यह विकृत रूप हो गया । और विकृति इतनी भद्दी तरह से की गई कि भूल पकड़ में आ गई । यदि आजकल की प्रचलित संस्कार-विधि को आप बिना काटे-छाँटे तद्वत् पालन कर सकते तो चाहे विधि पुरानी होती या नई, प्राचीन ऋषियों की होती या स्वामी दयानन्द का नया कल्प, यज्ञ करने कराने वालों के समक्ष उलझन तो न होती । इस समय तो दो ही विकल्प हैं, या काट-छाँट कीजिये और जो आक्षेप आप मेरे पक्ष पर करते हैं उसको अपने ऊपर ओढ़िये या चुपचाप बैठ जाइये और कहिये कि यह "**कल्प**" अव्यवहार्य है । बात तो केवल इतनी ही है । रही संगठन की बात ! आप मेरी मनोवृति पर विचार करें । जब मुझे प्रत्यक्ष प्रमाण से ज्ञात हो गया कि महर्षिजी को यह इष्ट था तो मैं दूसरों के कहने से चाहे वह दो-चार हों या दस-बीस, व्यक्ति हों या सभा, केवल संगठन के लिये सत्यमार्ग को कैसे छोड़ दूं ? संगठन और उसके प्रस्ताव तो बदलते रहते हैं और बदल सकते हैं । मैं यह नहीं कहता कि आप मेरी आँखों से देखें । परन्तु इतनी मांग तो अन्यायपूर्ण न होगी कि जब तक आप अपनी आँखों से न देख लें मुझे अपनी आँखों से देखे हुए के विरुद्ध प्रेरणा न करें ।

श्री पण्डित ठाकुर अमर सिंह जी शास्त्रार्थ केशरी :—

प्रसिद्ध आर्य विद्वान् श्री पं० गंगाप्रसादजी उपाध्याय के "**अयन्त इध्म आत्मा**" मन्त्र सम्बन्धी लेख पर मैंने कुछ मीमांसा की थी जो कि "आर्य संसार" मासिक कलकत्ता में छपी हैं । मैंने उसमें वर्तमान संस्कार-विधि की पुष्टि की है और ऋषि दयानन्द जी को एक कल्पकार माना है । माननीय उपाध्यायजी ने मेरी इस मान्यता पर अपने एक लेख में दोषापत्तियां उठाई हैं । आदरणीय उपाध्यायजी ने वह आपत्तियां उठाकर मुझको अपनी मान्यता स्पष्ट करने का शुभ-अवसर प्रदान किया है । इसके लिये मैं श्री उपाध्यायजी का धन्यवाद करता और आभार मानता हूं । मेरी कामना है कि श्री उपाध्यायजी सौ वर्ष से भी अधिक जियें और अपनी लेखनी से आर्य समाज को सदा लाभ पहुंचाते रहें । थोड़े-थोड़े मतभेदों को प्रकट कर देने से बहुतों को कुछ पढ़ने और विचार करने का अवसर मिल जाता है । मेरी मान्यता यह है कि "**ऋषि दयानन्दजी एक कल्पकार ऋषि थे और "संस्कार-विधि" उनका बनाया हुआ एक अत्युत्तम गृह्य-सूत्र है**" । श्री उपाध्यायजी ने मेरी इस मान्यता पर जो कुछ लिखा है । उसको उन्हीं के शब्दों में उनके नाम के साथ रखकर मैं अपना विचार अपने नाम से व्यक्त करूंगा—

श्री उपाध्यायजी—जिसको आप विशेष कल्प कहते हैं उसका स्वरूप कल्प का है ही नहीं। यदि स्वामी जी को पुराने आचार्यों से भिन्न किसी विशेष निज कल्प की इष्टि होती तो वह आरम्भ में अर्थात् "असली कापी" में ही उसका द्योतन करते। और अन्य सूत्रों के अनुसरण मात्र से सन्तुष्ट न होते।

मैं (अमर सिंह आर्य पथिक)—इस संदर्भ के तीन भाग हैं—(१) उस (संस्कार-विधि) का "**स्वरूप कल्प का है ही नहीं।**" श्री उपाध्यायजी ने कल्प का स्वरूप बताया होता तो संस्कार-विधि के स्वरूप से उसका मिलान करके देखा जाता। (२)—स्वामीजी को अन्य आचार्यों से भिन्न निज कल्प इष्ट होता तो वह आरम्भ में ही उसका द्योतन करते—"**किसी आचार्य ने भी ऐसा द्योतन नहीं किया है कि मैं अन्यों से भिन्न निज कल्प बनाता हूं। पर बनाये सब ने अन्यों से कुछ-कुछ भिन्न ही है। यदि भिन्नता न करनी होती तो दूसरे कल्प बनाये ही क्यों जाते।** (३)—"**अन्य सूत्रों के अनुसरण मात्र से सन्तुष्ट न होते ?**"

किसी भी एक सूत्र के अनुसरण से स्वामीजी सन्तुष्ट नहीं हुए। इसलिए बहुत सूत्रों का मिलान किया और सबके अनुसरण से सन्तुष्ट न होते हुए अनेक कार्य सब से पृथक लिखे। "शन्नो देवी=मन्त्र से आचमन और मनसा परिक्रमा के छः मन्त्र इसके उदाहरण हैं। ऐसी ही अनेक और भी क्रियाएं हैं जो सबसे भिन्न हैं। "**कल्प**" के स्वरूप के विषय में मेरा निवेदन है कि—"जितने भी गृह्य-सूत्र वर्तमान काल में पाये जाते हैं उन सबसे अधिक सुन्दर और क्रमबद्ध ऋषि दयानन्दजी का गृह्य-सूत्र "**संस्कार-विधि**" ही है। सृष्टि के सबसे पहले और सबसे बड़े विधानकर्त्ता भगवान् मनुजी ने कहा है—"**निषेकादि श्मशानान्तो मन्त्रैर्यस्योदितो विधि:**"। **देखिए**—(मनुस्मृति अ० २। श्लोक १६)

गर्भाधान से लेकर दाह-क्रिया तक, वेद मन्त्रों से संस्कारों की विधि है। इसके अनुसार ही ऋषि दयानन्द जी ने संस्कार-विधि के आरम्भ में ही कैसा सुन्दर लिखा है कि—"**गर्भाद्या मृत्यु पर्यन्ताः संस्काराः षौडशैवहि। वक्ष्यन्ते तं नमस्कृत्यानन्त विद्यं परमेश्वरम्**।। गर्भाधान से आरम्भ करके मृत्यु तक संस्कार सोलह ही हैं अनन्त विद्याओंवाले परमेश्वर को नमस्कार करके उन संस्कारों का वर्णन करेंगे। गर्भाधान से लेकर मृत्यु पर्यन्त संस्कारों का जैसा क्रमबद्ध विधि वर्णन संस्कार-विधि में हैं ऐसा किसी भी गृह्य सूत्र में नहीं है। किसी गृह्य-सूत्र का आरम्भ किसी संस्कार से होता है किसी का किसी से। कोई संस्कार आगे आ जाता है कोई पीछे।

श्री उपाध्यायजी—हमारे सामने जो प्रचलित संस्कार विधि है और जिसका पं० (अमर सिंह जी) ने सम्पोषण किया है उसपर दृष्टि डालने से विशेष "**कल्प**" का स्वरूप दिखाई नहीं देता है। कैसे ? देखिये "**नये कल्प**" का निर्देश निश्चित शब्दों में होना चाहिये, सन्दिग्ध न हो।

मैं (अमर सिंह आर्य पथिक)—कल्प तो कोई नया हो चाहे पुराना, उसके निर्देश निश्चित शब्दों में ही होने चाहिएं। जो कल्प पुराने है वह भी तो कभी नये रहे होंगे। यद्यपि आपका लिखा यह लक्षण आपका अपना बनाया हुआ ही है किसी कल्पकार का नहीं है तथापि मैं इसको अक्षरश: सत्य मानता हूं। और यह साहस के साथ निवेदन करता हूं कि यह लक्षण घटता केवल ऋषि दयानन्दजी की संस्कार-विधि पर ही है और किसी भी गृह्य-सूत्र में नहीं घटता है। मैंने विद्वानों की कृपा और आशीर्वादों से इतने गृह्य-सूत्रों को देखा है—(१)—"**गोभिल (२)—पारस्कर, (३)—आश्वलायन, (४)—लौगाक्षि, (५)—हिरण्यकेशी, (६)—खादिर, (७)—द्राह्यायण, (८)—सांख्यायन, (९)—आपस्तम्बीय, (१०)—मानवीय, (११)—छान्दोग्य ब्राह्मण या मन्त्र ब्राह्मण**"। इनमें से किसी में भी यह लक्षण पूरा नहीं घटता है जिसमें घटता है वह एक ही है, वह है ऋषि दयानन्दजी का "**गृह्य-सूत्र-संस्कार विधि**" और उसमें पूरा घटता है तथा उसमें सब निर्देश निश्चित शब्दों में हैं, कोई भी निर्देश

संदिग्ध नहीं है। यह भी ध्यान रहे कि—लगभग सारे ही गृह्य-सूत्रों में मधुपर्क आदि में मांस का विधान है। प्रायः सभी में विवाह में गोदान, तथा गौ को वध करने के लिये लिखा है और विवाह के समय बैल का चमड़ा बिछाने की आज्ञा है और न जाने क्या-क्या ? यह बताने के लिये यहां स्थान नहीं है। हमें ऋषि दयानन्दजी का लाख-लाख धन्यवाद करना चाहिये कि—उन्होंने एक वेदानुकूल "**गृह्य-सूत्र**" बनाकर हमको दे दिया। नहीं तो हम उन्हीं जंजालो में फंसे रहते।

श्री उपाध्यायजी—न उसको कार्यान्वित करने वाले को काट-छांट करनी पड़े। श्री पं० जी यज्ञ करते या कराते हुए बिना काट-छांट किये काम चला ही नहीं सकते है। वस्तुत: उनके समक्ष उलझनें हैं और दूसरों के समक्ष भी। श्री पं० जी काट-छांट करने पर बाधित होते हैं, परन्तु कहते नहीं।

मैं (अमर सिंह आर्य पथिक)—नहीं महाराज ! मेरा विचार है कि—"**संस्कार विधि को कार्यान्वित करने में कहीं काट-छांट करने की आवश्यकता नहीं है**"। मेरे विचार में काट-छांट करने की आवश्यकता उन्हीं पण्डितों को होती है जो अपनी मान्यता संस्कार-विधि में लिखे निर्देशों से बाहर बना लेते हैं। ऐसा नहीं है कि मुझको भी काट-छांट करने को बाधित होना पड़ता है पर मैं कहता नहीं हूं। पूज्यपाद ! मैं तो बिना काट-छाँट किये ही काम करता हूं। यदि मुझको भी काट-छांट करनी पड़ती तो मैं भी आपकी भांति अवश्य कहता।

श्री उपाध्यायजी—नीचे लिखे मन्त्र से "**एक-एक**" समिधा चढ़ावें यह "**एक-एक**" तीन स्थानों पर आया। इस निर्देश का आप कैसे पालन करते हैं ? "**एक-एक**" मन्त्र से कितना स्पष्ट निर्देश है। आपके मतानुसार इस विधि की जो कि "**मन्त्र दृष्टा ऋषि**" और "**कल्पकार**" द्वारा ही हुई है आपने अवहेलना की। क्योंकि बिना अवहेलना किये आपके पक्ष की सिद्धि न होगी।

मैं (अमर सिंह आर्य पथिक)—मान्यवर ! ऋषि के आदेश एक स्थल पर दो हैं—"**एक**" यह है कि नीचे लिखे एक-एक मन्त्र से एक-एक समिधा चढ़ावें और "**दूसरा**" यह है कि—इन दोनों मन्त्रों से दूसरी समिधा। "**अन्त**" में है, इस मन्त्र से तीसरी समिधा की आहुति देवे। मैं इन "**तीनों पंक्तियों**" के एक-एक शब्द को प्रामाणिक मानता हूं। तीनों वाक्यों के अनुकूल व्यवहार करता और अन्यों से कराता हूं, मेरे पक्ष में काट-छांट का नाम-निशान नहीं। मेरे पक्ष में ऋषि के एक शब्द की भी अवहेलना नहीं होती है। हां आपके पक्ष में काट-छांट भी है और अवहेलना भी। आप एक पंक्ति का आदर करते हैं, एक का अनादर करते हैं और उसको महा "**भोंडी**" भाषा बताते हैं। मुझको तीनों पंक्तियां सुन्दर लगती हैं और तीनों का सम्मान करता हूं। इसलिये मेरे पक्ष में काट छांट और अवहेलना को कुछ भी स्थान नहीं है। मैं ऋषि दयानन्दजी को "**ऋषि**" मन्त्र दृष्टा और "**कल्पकार**" मानता हूं। इसलिये इस स्थल पर भी उनका एक-एक वाक्य एक-एक शब्द और एक-एक अक्षर मानता हूं और आदर देता हूं। आपका यह लिखना कि—"**आपकी बिना काटे-छांटे एक पग भी गति नहीं है।**" मुझपर बिलकुल भी नहीं लगता है। हां, आपके मत में काट-छांट करना अवश्य अनिवार्य है। इसलिये मेरा निवेदन है कि—"**यह फर्दे जुर्म तो उल्टी लगा दी। खता किसकी थी और किसको सजा दी ?**"॥

श्री उपाध्याय जी—"आप दोनों मन्त्रों से एक आहुति देने को इस विधि का अपवाद मानते हैं। यह तो विचित्रतम् स्थिति है। विधि कहीं न हो और अपवाद हो जाये।

मैं (अमरसिंह आर्य पथिक)—मान्यवर ! फिरविचार करिये विचित्रतम् स्थिति किसकी है ? "**नीचे लिखे एक-एक मन्त्र से एक-एक समिधा चढ़ावे।**" आप इस वाक्य को सत्य, शिवम् और सुन्दर मानते हैं और दूसरे

वाक्य को असत्य और भोंड़ा बताते हैं तो क्या आपका माना हुआ वाक्य विधि नहीं है ? यदि वह विधि नहीं है तो आप क्यों उस पर इतना बल देते हैं ? उसको कसौटी मानकर दूसरे वाक्यों को खोटा घोषित करते हैं। स्पष्ट है कि आप उसको विधि मानते हैं मैं भी मानता हूं। अन्तर इतना ही है कि आ केवल इसी वाक्य को मानते हैं दूसरे को काटते-छांटते हैं। मैं दोनों को मानकर उनका समन्वय करता हूं, एक को विधि कहता हूं और दूसरे को उसका अपवाद कहता हूं। यहां विधि का अभाव कहां है ?

आप जिस वाक्य पर बड़ा बल देते हैं उस ही को सत्य मानते हैं और मेरे लिये उसको विधि नहीं मानते, अपने लिये विधि से भी अधिक प्रामाणिक मानते हैं। मेरे लिये उसके होते हुये कहते हैं कि विधि कहीं नहीं है, यह विचित्रतम् स्थिति है।

श्री उपाध्याय जी—मन्त्र "सुसमिद्धाय शोचिषे०" इसके विषय में लिखते हैं कि—इस मन्त्र में **"स्वाहा"** और **"इदन्नमम्"** दोनों हैं, जाप में तो ऐसा होता नहीं। यहां तो आप अवश्य काट-छाँट करते होंगे। (आपका अभिप्राय **"समिधाग्निं दुवस्यत०"** से होगा)

मैं (अमर सिंह आर्य पथिक)—पूज्यपाद ! जाप में **"स्वाहा"** और **"इदन्नमम्"** हों तो हानि क्या है ? यजुर्वेद के सैंकड़ों मन्त्रों में स्वाहा है, अनेकों मन्त्रों के अन्त में भी और अनेकों मन्त्रों के बीच में भी स्वाहा है तो उन मन्त्रों का पाठ या जाप उनके साथ स्वाहा होने से निषिद्ध हो जायेगा ? यह तो कोई आवश्यक नहीं कि जहाँ स्वाहा हो वहाँ आहुति अवश्य हो। मैं वहां भी यह मानता हूं कि ऋषि ने यहाँ **"स्वाहा"** और **"इदन्नमम्"** को आवश्यक बताया है **"आहुति"** को नहीं। मेरे लिये यहाँ भी काट-छाँट करना अनावश्यक है। स्वाहा का अर्थ है कि मेरा यह वचन **"शोभन"** हो और **"इदन्नमम्"** का अभिप्राय।

श्री पण्डित गंगाप्रसाद जी उपाध्याय एम० ए०—

मेरे और विद्वद्वर श्री पं० अमर सिंह जी शास्त्रार्थ महारथी के मध्य में अकस्मात् **"अयन्त इध्म"** इत्यादि समिधाधान मन्त्रों की संख्या और क्रम के विषय में कुछ वादानुवाद चल पड़ा। शनैः शनैः उसने **"महारथी-उपाध्याय-युद्ध"** का रूप धारण कर लिया और आर्य संसार की सीमायें सकुड़ कर हमारे अखाड़े तक आ गई। मुझे यह न प्रिय है न इष्ट। पण्डितों के सामने दोनों पक्ष आ गये और उनके निर्णय करने के लिये पुष्कल सामग्री है। रहे अपण्डित तमाशाई। उनका आनन्द-अभिवर्धन और मनोरंजन मुझे इष्ट नहीं। अतः कुछ ऊपरी बातें ही कहूंगा। यह उलझन मेरी उठाई हुई नहीं है। एक सज्जन (श्री गंगाप्रसाद जी वानप्रस्थी रिटायर्ड चीफ जज) ने **"आर्य मित्र"** में इसे उठाया था और मैंने अपने ज्ञान तथा अनुभव द्वारा जैसा सूझा उसका समाधान कर दिया। यह उलझन नई भी नहीं थी। लगभग ६० वर्ष से तो मैं सुनता आया हूं और मैं भी उलझन में ही था जब तक कि सन् १९४६ में अजमेर जाकर मैंने असली कापी और प्रेस कापी को स्वयं आँखों से नहीं देख लिया। उससे पहले मुझे शंका होती थी और मुझ से पूर्व बहुत से लोगों को होती थी, और मेरे मन में अनेक विकल्प उठते थे। परन्तु अजमेर जाकर मेरे विकल्प दूर हो गये, और मेरी समझ में आया कि वास्तविक भूल कहां हुई है ? मैंने न्यायदर्शन, भारतीयतर्कशास्त्र, पश्चिमी लाजिक और थोड़ी थोड़ी अरबी मन्तिक के ज्ञान के आधार पर जो कुछ अपने पक्ष में लिखा है वह हेतु और सुदृढ़ हेतु समझ कर ही लिखा है, कहीं कहीं भूल हो सकती है। परन्तु मुख्य बातों में नहीं, यदि वे सब हेतु श्री पं० जी अथवा अन्य पण्डित मंडली की दृष्टि में निस्सार, निराधार तथा हेत्वाभास हैं तो मैं कह ही क्या सकता हूं ? ऋषि दयानन्द के कितने ही प्रबल, अकाट्य हेतुओं को कुछ लोग हेत्वाभास कहते और मानते

हैं। श्री पं० अमर सिंह जी के स्नेह, प्रेम तथा श्रद्धा पर मुझे कभी सन्देह नहीं हुआ। उनकी भाषा जोरदार है, अशिष्ट नहीं। वह मेरी युक्तियों पर जब वज्र प्रहार करते हैं तो दया से आर्द्रीभूत हो कर ! ऐसा प्रतीत होता है कि किसी स्नेही के पेट पर बैठे हुए सांप को इस सावधानी से मारने का प्रयास कर रहे हैं कि सांप तो मरे पर मित्र को चोट न लगे। कड़वी दवा में दो बून्द शरबत बनफ्सा डाल ही देते हैं। यह मेरे सौभाग्य और अभिमान का विषय है और मैं इसके लिये उनका आभारी हूं।

श्री पं० अमर सिंह जी ने अपने लेखों की अन्तिम पंक्तियों में इस प्रकार की उहापोह के कई भयंकर परिणामों की ओर मेरा ध्यान आकर्षित किया है। इस विषय में मेरा उनका मतभेद है, शायद दृष्टिकोण का। शायद परिस्थितियों का उलझन दबाने से नहीं सुलझती, सुलझाने से सुलझती हैं और शास्त्रकारों ने इनकी विधियां बताई है। मुझे ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों में अनेक अशुद्धियां दृष्टि पड़ती हैं। परन्तु वे ऐसी नहीं हैं कि ऋषि के ग्रन्थ जला दिये जाँय या गंगा में फेंक दिये जांय। मेरे तो समस्त धार्मिक विचारों के आधार ऋषि ग्रन्थ ही हैं। इसीलिए मेरा अधिकांश समय इन्हीं ग्रन्थों को पढ़ने और पढ़ाने में व्यय होता है। मैं जो कुछ लिखता हूं उसकी प्रेरणा श्रीऋषि के ग्रन्थों से ही मिलती है और सामग्री भी अधिकतर और मुख्यतः वहीं से। अशुद्धियों को मैं ऐसा मानता हूं कि किसी के शुभ्र वस्त्रों पर मार्ग में गर्द पड़ जाय। और मेरा आग्रह केवल इस बात पर है कि ब्रुश लगाकर गर्द को साफ कर दो। यदि आरम्भ से ऐसी सावधानी की जाती तो शुभ्र वस्त्र मैल खोरा कपड़ा प्रतीत होने लगेगा जिस पर गर्द तो जमती है परन्तु प्रतीत नहीं होती। वर्तमान सनातन धर्म का भी वही हाल हुआ है। शायद ब्रुश लगाने वाले तो पहले ऋषि दयानन्द ही थे। यदि अन्य विद्वद्गण ब्रुश इसलिए लगाना नहीं चाहते कि उनके शास्त्रार्थ में आने वाले प्रतिपक्षी भी उनके कपड़ों पर मैल होने का आक्षेप करेंगे तो मैं उस भय को उचित नहीं समझता। यह तो आक्षेप करेंगे ही। मुझे अपने शास्त्रार्थ-महारथियों की शास्त्रार्थ दक्षता पर इतना विश्वास है कि जिस पक्ष को वह सत्य समझ कर जनता के समक्ष करेंगे उसकी सम्पुष्टि भी योग्यता पूर्वक कर सकेंगे और अपने प्रतिपक्षियों के हथियारों को कुण्ठित भी कर सकेंगे। अतः जब में किसी विषय की सत्यता की खोज करता हूं तो बाहर वाले क्या कहेंगे इसका मुझे कुछ भय नहीं होता "सत्यमेव जयते नानृतम्" पर मुझे विश्वास है।

श्री पं० जी ने कात्यायन, सांख्यायन, आदि सूत्रकारों और कर्क आदि भाष्यकारों के वाक्यों का अवलम्बन किया है। यह मुझे कुछ जँचता नहीं। मैं इनसे सर्वथा अपरिचित तो नहीं हूं। आज से 15 वर्ष पूर्व कर्क भाष्य के आधार पर मैंने पारस्कर-गृह्य सूत्र का भाषानुवाद किया था। वह प्रकाशित तो नहीं हुआ और इधर दूसरे कार्यो में लग जाने के कारण वह मेरे पास पड़ी हुई है। मेरी धारणा यह है कि इन सूत्रों से हमारी गुत्थियां सुलझती नहीं, और जटिल हो जाती हैं। ऋषि दयानन्द ने इसीलिए "ग्रामं गच्छन् तृणं स्पृशति" से अधिक उनको महत्व नहीं दिया है। हमारे विद्वानों को ऋषि दयानन्द के सिद्धान्तों, मन्तव्यों तथा ग्रन्थों की रक्षा के लिये अन्यत्र ही दृष्टि डालनी होगी। कात्यायन का मान तो शबर स्वामी जैसे कर्मकाण्ड-युग के नेता तक ने नहीं किया। पूर्व मीमांसादर्शन के अध्याय 10, पाद 8 अधिकरण 1, सूत्र 4 के इस सूत्र पर :—"अपि तु वाक्यशेषः स्यादन्याय्यत्वाद् विकल्पस्य विधीनामेकदेशः स्यात्।" भाष्य करते हुये श्री शबर स्वामी लिखते हैं :—"सद् वादित्वाच् च पाणिनेर्वचनं प्रमाणम्। असद् वदित्वान् न कात्यायनस्य"। अर्थात् सद्-वादी होने से पाणिनि का वचन प्रमाण है। असद्वादी होने से कात्यायन का नहीं। मेरा इतना लिखने से तात्पर्य वाद को बढ़ाना नहीं है। किसी परिणाम पर पहुंचने के लिए इतना भी पर्याप्त है। यह है कि मुझको जाप का भी अभिमान न हो। यहां घृत, सामग्री, समिधा का त्याग नहीं जाप के अभिमान का भी त्याग है, यह त्याग की पराकाष्ठा है। ऐसा मानने में तो कुछ हानि नहीं है। फिर काट-छांट की क्या आवश्यकता है ?

मैंने यह लेख इसलिये लिखा है कि ऋषि दयानन्द जी तथा संस्कार-विधि के विषय में मेरी मान्यतायें स्पष्ट हो जायें।

संक्षेप में मेरी मान्यता यह है कि संस्कार-विधि एक अत्युत्तम गृह्य-सूत्र है। ऋषि दयानन्द जी, ऋषि, मन्त्र-दृष्टा, कल्पकार, तत्वज्ञ, सत्यज्ञ और निर्भ्रान्त थे। सर्वज्ञ केवल परमेश्वर ही है।

सर्वज्ञ और निर्भ्रान्त दोनों एकार्थ वाचक शब्द नहीं है दोनों के अर्थों में अन्तर है।

मेरे लेख से कोई यह कदापि न समझे कि—मैं अपने-आपको ऋषि दयानन्द जी का अधिक भक्त सिद्ध करता हूं और उपाध्याय जी को कम। माननीय उपाध्याय जी स्वामी दयानन्द जी के मुझसे किसी प्रकार कम भक्त नहीं हैं। उन्होंने आर्य समाज की सेवा मुझसे अधिक की है। मैं उनका बहुत आदर करता हूं और सदा करूंगा।

श्री पण्डित ठाकुर अमर सिह जी शास्त्रार्थ केशरी—

हमारा दुर्भाग्य है कि हमारे जिन महान् पण्डितों को ऋषि दयानन्द जी के ग्रन्थों की युक्तियों और प्रमाणों द्वारा पुष्टि और रक्षा करनी चाहिए थी वह उनमें भूलें और प्रक्षेप बताकर उन ग्रन्थों को विक्रत और बदनाम करने पर तुल गये हैं। आर्यसमाजियों में अध्ययन की बहुत कमी हो गई है और कुछ आर्यसमाजियों ने अपने अज्ञान और मिथ्या अहंकार के कारण अपने नित्य कर्तव्य, सन्ध्या और अग्निहोत्र की विधियों में अनेक उलझनें खड़ी कर ली हैं। हमारे बड़े-बड़े विद्वानों को चाहिए था कि उन उलझनों को सुलझाते, परन्तु हमारे दुर्भाग्य से हमारे बड़े-बड़े पण्डित और भी नई-नई उलझनें उत्पन्न करते जाते हैं। हमारे परम श्रद्धा-भाजन श्री पं० गंगाप्रसाद जी उपाध्याय अचानक और सर्वथा अकारण अपनी सारी शक्ति से हवनविधि में एक बड़ी उलझन खड़ी करने में लग गए हैं, इसका मुझको हार्दिक दुःख है।

निराधार आरोप—

श्री उपाध्यायजी ने मुझ पर और श्री पं० रामावतारजी पञ्चतीर्थ पर यह आरोप लगाया है कि—ये संस्कारविधि में एक नया प्रक्षेप करना चाहते हैं। जबकि वास्तविकता यह है कि—माननीय उपाध्यायजी ऋषि दयानन्दजी को निर्भ्रान्त नहीं मानते हैं, यह एक पृथक विषय है, पर वह ऋषि के ग्रन्थों में बहुत से प्रक्षेप और भूलें मानते हैं और इस समय कूड़ाकरकट, सडांस, थेगड़ी, प्रक्षेप और भूलों के नाम से संस्कारविधि में से बहुत कुछ निकाल फेंकना चाहते हैं, क्योंकि—उनके मत में वर्तमान संस्कारविधि का बहुत-सा भाग ऋषि दयानन्दजी की मृत्यु के पीछे लिखा गया है। उनके मतानुसार वर्त्तमान संस्कारविधि में बड़ी-बड़ी मिलावटें हुई हैं। **"अयन्त इध्म०"** मन्त्र मिला दिया गया इसके पीछे दो मन्त्रों के साथ एक भौण्डा वाक्य मिला दिया गया और सात स्थानों में (संस्कारविधि के आरम्भ से वानप्रस्थ आश्रम तक अर्थात् लगभग समाप्ति तक) **"अयन्त इध्म०"** यह प्रतीकें पीछे से मिला दीं। यह तो एक—चोरी है जिसका सामान बड़े प्रयत्न से घर के कोने-कोने में से खोजकर श्री उपाध्याय-जी ने निकाल लिया है—**"आगे-आगे देखना होता है क्या ?"** मेरा मत यह है कि—वर्तमान संस्कारविधि में लेश-मात्र भी प्रक्षेप और मिलावट नहीं हैं। श्री उपाध्यायजी की बात छोड़िये। ऋषि दयानन्दजी महाराज स्वयं अवतार धारण करके आयें और यह कहें कि—**"वर्तमान संस्कारविधि और सत्यार्थप्रकाश सर्वथा अमान्य हैं"** तो मैं उनके चरण-स्पर्श करके कहूँगा—कि महाराज ! आपने जो हमको दिव्यचक्षु दिये थे। अब हम उन्हीं के आधार पर मान्य और अमान्य का निर्णय करेंगे। किसी बडे के बडे व्यक्तित्व के कारण उसके कथन मात्र से नहीं।

जपवाद का प्रक्षेप—

हम लोग संस्कारविधि में कोई प्रक्षेप करना चाहते हैं। "यह मिथ्या दोषारोपण" हमारे ऊपर इसलिये किया है कि—श्री उपाध्यायजी महाराज संस्कारविधि में कूड़ा-करकट बताकर जो कुछ निकालना चाहते हैं उनके इस भयंकर प्रयास के विरुद्ध हम कुछ न लिखकर अपनी सफाई देने में लग जायें। ऐसा मिथ्या आरोप लगाना श्री उपाध्यायजी जैसे महान् पण्डित के लिये कदापि शोभा-जनक नहीं है।

जप का अभिप्राय—

मेरा और श्री पं० रामावतारजी का अभिप्राय वहाँ केवल इतना है कि—"जहाँ **चार मन्त्र और तीन समिधाएं होती हैं वहाँ तीन मन्त्रों से तीन समिधाएं होती हैं और एक मन्त्र का पाठ मात्र होता है**"। उससे पृथक समिधा नहीं दी जाती है। सांख्यायन-गृह्य-संग्रह, सांख्यायन गृह्यसूत्र और कात्यायन श्रौत-सूत्र के कर्कभाष्य आदि के प्रमाण भी इस विषय पर दिखाये हैं। जहाँ स्पष्ट कहा गया है कि—चार मन्त्रों को पढ़े और तीन समिधा देवे। जब दो मन्त्र पढ़ने के पीछे एक समिधा दी जायगी तो अन्त वाले मन्त्र के अन्त में ही समिधाधान होगा, तो पहले मन्त्र का पाठ मात्र हुआ उससे पृथक समिधा नहीं दी गई। इसलिये—यह लिखा जाय कि—"**इन दोनों मन्त्रों से समिधा दी जावे**" या यह लिखा जाय कि—"**एक मन्त्र का पाठ मात्र किया जाय (उससे समिधा न दी जाय), दूसरे से समिधा दी जाय**"। इन दोनों वाक्यों से व्यवहार में क्या अन्तर आता है ? इसे श्री उपाध्यायजी ही शायद समझ सकें और किसी की समझ में तो कुछ अन्तर प्रतीत होना कठिन ही है।

जप शब्द का हव्वा—

श्री उपाध्यायजी ने जप शब्द को बार-बार लिखकर और उसका प्रक्षेप करने का चिन्त्य प्रयास बताकर अपने लेख में जप शब्द को अणुबम या हाइड्रोजनबम के समान भयंकर प्रकट करने का प्रयास किया है। जिन पाठकों के ज्ञान की सीमा आर्यमित्र या किसी और पत्र तक ही हो वह सम्भव है इस शब्द से डर भी जायें। क्योंकि जप शब्द का अधिक प्रयोग पौराणिकों में है और वहाँ उसका अर्थ किसी नाम विशेष या मन्त्र विशेष के साथ माला फेरना है। यही रूप श्री उपाध्यायजी ने हमारे लिखे "जप" शब्द का बनाकर खड़ा कर दिया है। अर्थात् हम मानो यह कहते हैं कि—एक समिधा देने के पीछे दूसरे मन्त्र को जपने के लिये यजमान माला लेकर बैठ जाय और उस मन्त्र का घण्टा दो घण्टा जप करने के पीछे दूसरे मन्त्र से दूसरी समिधा दे दे। यदि जप का अर्थ ऐसा ही है तो उपाध्यायजी की चेतावनी सर्वथा आवश्यक और समयानुसार है। और मैं कहूँ कि—"**समिधाग्निं०**" इस मन्त्र के साथ यह लिख देना चाहिये कि—"**यह जप**" करने के लिये मन्त्र है तो प्रक्षेप अवश्य होगा पर यह उस कार्य से बहुत भयंकर है यह आप विचार कर लें कि—एक पूरे मन्त्र को निकाल दिया जाय और सात स्थानों में श्री उपाध्यायजी की आज्ञानुसार "**अयन्त०**" प्रतीकों को निकाल दिया जाय और दूसरी "**समिधाग्निं०**" प्रतीकें वहाँ लिख दी जायें। हालांकि—यह मैंने कभी नहीं लिखा कि—वहाँ "**जप**" शब्द बढ़ा देना चाहिये। गृह्यसूत्रों के पढ़ने वाले सब जानते हैं कि—"**इस मन्त्र को पढ़े**", बोले, उच्चारण करे या जपे। इन शब्दों का वहाँ कोई अर्थान्तर नहीं है सर्वथा एक ही अर्थ है। गृह्यसूत्रों में सैकड़ों स्थलों पर यह प्रयोग हैं—"**जपति**" "**जपेत्**" और "**जपित्वा**" इनके सर्वत्र सभी टीकाकारों ने यही अर्थ किये हैं—जपता है, बोलता है, पढ़ता है, उच्चारण करता है, जपे, बोले, पढ़े, उच्चारण करे और जप करके, पढ़कर के, बोल के, उच्चारण करके। "**जप**" "**व्यक्तायां वाचि**" जप धातु का अर्थ भी व्यक्त वचन ही है। श्री उपाध्यायजी ने व्यर्थ ही "**जप के प्रक्षेप**" का भय दिखाने वाला लम्बा

लेख लिख दिया। मुझको उस लेख को पढ़कर यही भान हुआ कि—अधिक आयु हो जाने पर वृद्ध पुरुषों की यही अवस्था हो जाती है कि—उनको छोटों के सब अच्छे काम भी बुरे लगने लगते हैं। मैं गृह्यसूत्रों में जब "जप" शब्द का प्रयोग देखने लगा तो सारे गृह्यसूत्र भरे हुए हैं। आपस्तम्बीय में ९ बार, मानव में १५ बार, सांख्यायन गृह्य-संग्रह में ४५ बार। अभिप्राय यह है कि—इस समय मेरे पास ११ गृह्यसूत्र रक्खे हुए हैं। प्रायः सब ही इस शब्द से भरे हुए हैं। ऋषि दयानन्दजी ने भी सर्वत्र ये ही अर्थ संस्कारविधि में लिये हैं। और संस्कारविधि में अनेक स्थलों पर जप शब्द का स्वयं भी प्रयोग किया है।

समिद्वती ऋचा—

श्री उपाध्यायजी के प्रथम लेख में सात असद् हेतु थे। मैंने सातों की आलोचना की थी। उनमें यह भी एक हेतु था कि—"**अयन्त इध्म०**" यह समिद्वती ऋचा नहीं है। इसकी चर्चा "आर्यमित्र" वाले इस लेख में फिर की है और व्यर्थ की है। इसमें कुछ सार नहीं है कि—जिस मन्त्र में "समित्" शब्द नहीं है उससे समिधा नहीं दी जानी चाहिये। चाहे उसमें "**समित्**" का पर्यायवाची कोई भी शब्द हो। "**अयन्त इध्म०**" इस मन्त्र में स्पष्ट है कि—यह काष्ठ – यह समिधा। समिधा का पर्याय "**इध्म**" है। साथ ही मैंने लिखा था कि—"**सुसमिद्धाय०**" मन्त्र में समित् शब्द नहीं है और किसी भाष्यकार ने भी इस मन्त्र में "**समित्**" शब्द नहीं माना है। ऋषि दयानन्दजी, उव्वट, महीधर, पं० जयदेवजी, पं० द्विजेन्द्रजी, पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र, पं० रामस्वरूप ऋषिकुमार आदि के—यजुर्वेद पर भाष्य हैं। सब ने—(१) "**समिधाग्निं०**" (२)—**तन्त्वा समिद्भिः०** (३)—**उपत्वाग्ने० जुषस्वसमिधोमम्**"। (यजु० अ० ३ के १-३-४) मन्त्रों में "**समित्**" शब्द माना है। दूसरे मन्त्र "**सुसमिद्धाय**" में किसी ने भी "**समित्**" शब्द नहीं माना है "**सु। सम्। इद्धाय।**" सब ने ऐसा पद पाठ माना है उपाध्यायजी ने "**समिद्धाय**" को व्याकरण से चतुर्थी का एक वचन बनाने का व्यर्थ प्रयास किया है। श्री उपाध्यायजी अपने व्याकरण से वेद के पदपाठ को भी बदल देंगे।

श्री पण्डित रामावतारजी का संस्कृत वाक्य—

शर्माजी ने अपने लेख में—यह संस्कृत वाक्य दिया था—"**द्वितीया न समिच्छब्दवती अतो द्वितीयामेव जपति**" इसका अर्थ दिया था यजु० अ० ३ के मन्त्र "**सुसमिद्धाय०**" में समित् शब्द नहीं है। श्री उपाध्यायजी ने इस संस्कृत वाक्य को श्री पं० रामावतारजी का बताया है और इस पर लिखा है कि—"**विद्वान् संस्कृतज्ञों को अपने वाक्य इस प्रकार मिला देना कि—लोगों को सूत्रों का भ्रम हो प्रशंसनीय प्रवृत्ति नहीं है**"। श्री उपाध्यायजी ने कात्यायन श्रौतसूत्र की चर्चा तो व्यर्थ बहुत की पर उसको और उसके उन सूत्रों के आचार्य कर्क कृत भाष्य को देखने का कष्ट नहीं किया जिनको वह अपने पक्ष में बताते हैं और "**कर्क**" के वाक्य को श्री शर्माजी का बता दिया। मेरे पास कात्यायन श्रौतसूत्र कर्क भाष्य विद्यमान है—उसमें अध्याय ४ के सूत्र २०१ के भाष्य में—यह वाक्य इस प्रकार है—"**द्वितीयां वा जपति। ये नैव श्रूयते। समिद्वती-भिर्घृतवतीभिर्ऋग्भिरभ्याद्धतीति समिच्छब्दतोभिर्घृतवतीभिश्चेति**"। इसके आगे है—"**द्वितीया च न समिच्छब्दवती अतो द्वितीयामेव जपति।**" यह कर्काचार्य का वाक्य है शर्मा जी का नहीं। इस पर टिप्पणीकार टिप्पणी लिखते हैं—"**अथवा न उपत्वेति ऋचं जपति अपितु सुसमिद्धायेती मां जपतीत्यर्थः।**" अभिप्राय ऊपर से आते हुए सारे पाठ को मिलाने पर यह है कि—पीपल की तीन समिधा "**समिधाग्निं०**" आदि मन्त्रों से देवे। मन्त्र यहाँ (१)—"**समिधाग्निं०**, (२)—**सुसमिद्धाय०**, (३)—**तन्त्वासमिद्भिः०**, (४)—**उपत्वाग्ने०**।" इन चार मन्त्रों से समिधा ३ कैसे दी जायें? इस पर कहा जा रहा है कि—इनमें दूसरा मन्त्र जो "**सुसमिद्धाय**" है उसमें "**समित्**" शब्द नहीं है। अतः उसका जप अर्थात् पाठ मात्र कर

ले, शेष तीनों से समिधा देवे। बिल्कुल ऐसा ही "सांख्यायन" में है—वहाँ भी चार मन्त्र और तीन समिधा हैं। और "**सुसमिद्धाय**" इस मन्त्र के लिये यही आज्ञा है कि—इसको भी पढ़ ही लिया जाय। यही संस्कारविधि में है चार मन्त्र और तीन समिधा। अतः एक मन्त्र का पाठ मात्र ही हुआ। हमने चार मन्त्र और तीन समिधा पर यह लिख दिया कि—एक मन्त्र का यहाँ जप पाठ मात्र करना होता है। अर्थात् दो मन्त्र बोलने के पीछे एक समिधा दी जाती है। इस पर श्री उपाध्यायजी ने सारे आर्य समाज को चेतावनी दी है कि—"**सावधान हो जाओ, संस्कार-विधि में जप का प्रक्षेप किया जा रहा है**"।

श्री उपाध्यायजी का एक और सहारा—

आप लिखते हैं कि—मेरे पक्ष की पुष्टि में—"**एक महत्त्वपूर्ण बात**" यह भी है कि—जैसे, तीन मन्त्रों के आगे "**इससे**" (इस मन्त्र से) इस मन्त्र से तीसरी ऐसा निर्देश है उस प्रकार का कोई निर्देश "**अयन्त०**" इस मन्त्र के पश्चात् नहीं है। इस महत्त्वपूर्ण बात पर श्री उपाध्यायजी को बहुत प्रसन्नता है। पर देखिये—वैदिक यन्त्रालय अजमेर की छपी दो संस्कारविधियां इस समय मेरे सामने रक्खी हैं। एक छोटे साइज की है जो सं० २००९ की छपी है जिसका यह २४ वां संस्करण है। और एक (६) छठा संस्करण है बड़े साइज में, यह संस्करण सं० १९६३ का है अर्थात् अब से ५४ वर्ष पुराना। दोनों में "**अयन्त इध्म०**" मन्त्र के नीचे लिखा है—इस मन्त्र से एक। इससे उपाध्यायजी का यह महत्वपूर्ण सहारा भी नष्ट हो गया। श्री उपाध्यायजी ने न जाने कौन सा संस्करण ले रक्खा है?

हमने रफ़-कापी और प्रेस-कापी नहीं देखी—

यह बात मैंने अपने पहले ही लेख में लिख दी थी कि—मैंने उन दोनों कापियों को नहीं देखा है। श्री उपाध्यायजी ने इसको भी अपने पक्ष में एक बड़ी महत्वपूर्ण बात बना लिया है। इसलिये इसको भी वह बार-बार लिखते हैं कि—इन्होंने उन कापियों को नहीं देखा है। मैं आज घोषणा करता हूं कि—मैंने उन कापियों को नहीं देखा और उन कापियों को देखने की कोई आवश्यकता भी नहीं है। मेरे पास "**ऋषि दयानन्दजी का पत्र-व्यवहार**" है उसमें ऋषि के पत्र छपे हुए हैं। जिनसे प्रकट है कि—प्रेस-कापी के वह पृष्ठ जिनमें "**अयन्त इध्म०**" मन्त्र है ऋषि दयानन्दजी ने स्वयं ही शोधकर छपने के लिये भेजे थे।

श्री सम्पादकजी की सम्मति—

आर्यमित्र के सुयोग्य सम्पादक—श्री पं० उमेशचन्द्रजी स्नातक ने श्री उपाध्यायजी के लेख पर अपनी सम्मति यह लिखी है कि—"**हम समझते हैं कि—परोपकारिणी सभा के सम्मानित सदस्यों और अन्य आर्य-विद्वानों को इस विवाद में साक्षियों के आधार पर निर्णय देना चाहिये।**" परन्तु "**इस पर मेरा विचार**" यह है कि ऋषि दयानन्दजी से बड़ी और प्रामाणिक साक्षी कोई भी नहीं हो सकती है। जब ऋषि ने स्वयं अपने पत्रों में लिखा है कि—यह पृष्ठ हमने छपने के लिये भेजे हैं तो इस पर किन्हीं की भी साक्षी क्या मूल्य रक्खेगी? क्या उपाध्यायजी यह कहने का भी साहस करेंगे कि—ऋषि दयानन्दजी के नाम से ये पत्र उनकी मृत्यु के पीछे लिख लिये गये हैं? या श्री उपाध्यायजी अथवा कोई और यह सप्रमाण बतायेंगे कि जब ऋषि ने ४७ पृष्ठ डाक द्वारा प्रेस में भेजे थे तभी प्रेस-कापी करने वाला उसी पैकेट में पैक होकर साथ चला गया था और प्रेस में पहुंच कर उसने या डाक के थैले में ही भीतर बैठे-बैठे यह मन्त्र बढ़ा दिया?

श्री उपाध्यायजी भी तो यही मानते हैं कि—प्रेस-कापी बनानेवाले ने यह मन्त्र बढ़ाया है। "**मेरा अन्तिम निवेदन**" यह है कि—माननीय उपाध्यायजी का व्यक्तित्व बहुत ऊँचा है, उनकी लेखनी से लिखा हुआ तथ्य भी और अतथ्य भी प्रभाव डालता है। अतः वह ऋषि दयानन्दजी को निर्भ्रान्त न मानकर सभ्रान्त ही चाहे

मानें और वह निश्चय अपना दृढ़ रक्खे कि—"**संस्कार-विधि और सत्यार्थप्रकाश दोनों वर्तमान ग्रन्थ ऋषि की मृत्यु के पीछे लिखे गये हैं**"। परन्तु ऐसे विवादास्पद विषयों पर समाचारपत्रों में लेख न लिखें। अपने विचारों को छुपावें भी नहीं दबायें भी नहीं पर समाचारपत्रों में न देकर पण्डित मण्डली में रक्खें, सार्वदेशिक धर्मार्य सभा में रक्खें और देर तक विचार-विनमय होने दें। वे यह कदापि न समझें कि—अब उनको ग्रंथ लिखने की आवश्यकता नहीं रही। बड़ी भारी आवश्यकता है, वे उसी कामको करते रहें और अपनी लेखनी का प्रयोग इन कामों में न करें, जो वह रिफार्मर आदि में लेख लिखकर करते हैं।

उन्होंने एक मन्त्र के विरुद्ध लिखकर अब इस विषय को अपने सम्मान और हार-जीत का विषय बना लिया है। अन्यथा उनके इस विषय से सारे लेख हेत्वाभासों और अप्रासंगिक बातों से भरे हुए हैं। उनके दावे में कुछ भी तथ्य नहीं है। उनके इन लेखों से ऋषि दयानन्द के, ऋषि, मन्त्र दृष्टा, साक्षात्कृतधर्मा तथा निर्भ्रान्त होने पर कुछ भी आघात नहीं पहुँचेगा। हाँ, आर्यसमाज को अवर्णनीय हानि पहुँचेगी। श्री उपाध्यायजी घर में बैठकर पुस्तकें लिखते हैं और मुझको तथा मुझसे बड़े अनेक शास्त्रार्थ करनेवालों को सारे देश के कोने-कोने में जाना पड़ता है और हमको अनेकों सम्प्रदायों के साथ चतुर्मुखी युद्ध करना पड़ता है। उनके इन लेखों से क्या समस्या हमारे सामने आ गई है इसको मैं अनुभव करता हूँ और मेरे साथी शास्त्रार्थ करनेवाले अनुभव करेंगे इसको श्री उपाध्याय जी अनुभव नहीं कर सकते हैं।

मेरा गौरव—

इस बात में मेरा गौरव कदापि नहीं है कि—मैं श्री उपाध्यायजी जैसे महान् और आदरणीय सज्जन से जीत जाऊँ। बल्कि मेरा गौरव इसमें है कि—मैं पौराणिकों, जैनियों, ईसाइयों और मुसलमानों आदि को आर्यसमाज की वेदी से परास्त कर दूं और वैदिक धर्म की ध्वजा को ऊँचा करूँ। मैं यह लिखकर सौ बार दे सकता हूं कि—श्री उपाध्यायजी का पाण्डित्य उनका परिश्रम तथा उनका हमारे ऊपर उपकार इतना है कि—मैं उनके चरणों की धूल के समान भी नहीं हूँ। पर मैं यह नहीं सहन कर सकता कि—"**संस्कार विधि, सत्यार्थप्रकाश और ऋग्वेदादि भाष्य-भूमिका को कोई आर्यसमाजी पण्डित यह कहे कि—इनमें "प्रक्षेप" हैं "मिलावट हैं, इनमें "पीछे से कुछ जोड़ा गया है"** इनमें "थेगड़ियां हैं", **इनमें "कूड़ाकरकट है"** आदि-आदि। मैंने अपने सब लेखों में श्री उपाध्यायजी के सम्मान का पूरा ध्यान रक्खा है। और उनके लिये मेरे हृदय में आदर है वह आगे भी वैसा ही रहेगा। मैंने उनके लिखे शब्दों को बुरा अनुभव किया है पर अपने किसी लेख को कड़ा नहीं होने दिया है।

मेरा उनसे अन्तिम करबद्ध निवेदन है कि—वह ग्रंथ लेखन के महान् कार्य में ही संलग्न रहें और बौद्धों के विरुद्ध हमको आन्दोलन नहीं करना चाहिये, ईसाइयों के विरुद्ध जो कुछ किया जा रहा है वह उचित नहीं है, ईसाइयों और मुसलमानों का खण्डन करके हम बदनाम हुए हैं आदि-आदि। "**रिफार्मर आदि में जो आप लिखते हैं वह सब आपके व्यक्तित्व के अनुरूप नहीं है**"। अत: उसे लिखना बन्द कर दें। शमित्योम् ॥

नोट:—

उपरोक्त लेखों से काफी कुछ स्पष्ट हो गया है। आशा है पाठक लोग इन लेखों से अवश्य ही किसी न किसी सही निर्णय पर पहुंच पायेगें। इसी आशय के साथ इन लेखों को प्रकाशित किया गया है।

निवेदक—
"लाजपतराय अग्रवाल"

एकसौ आठवां शास्त्रार्थ—

स्थान : जाखल मण्डी, जिला हिसार (हरियाणा)

दिनांक : ३ मई सन् १९१४ ई० (रात्रि के ८ से १० बजे)

विषय : स्वामी दयानन्द कृत ग्रन्थ वेद विरुद्ध हैं या अष्टादश पुराण ?

आर्य समाज की ओर से शास्त्रार्थकर्त्ता : श्री पण्डित लोकनाथ जी तर्क वाचस्पति (आर्योपदेशक)

सनातन धर्मियों की ओर से शास्त्रार्थकर्त्ता : श्री पण्डित श्रीकृष्ण शास्त्री

शास्त्रार्थ के प्रधान : श्री स्वामी स्वतन्त्रतानन्द जी महाराज (आचार्य उपदेशक विद्यालय—लाहोर)

शास्त्रार्थ के सहायक (प्रधान) : श्री पण्डित माधवाचार्य जी शास्त्री

आर्य समाज के मन्त्री : श्री मोहनलाल जी गुप्त

मूल छपी उर्दू पुस्तिका के हिन्दी अनुवादक : श्री राजाराम जी जिज्ञासु (बदायूं निवासी)

नोट :—यह शास्त्रार्थ सामग्री, "श्री राजाराम जी जिज्ञासु" स्वाध्याय संस्थान—बदायूं द्वारा प्राप्त हुई है। हम उनके हृदय से आभारी हैं।

निवेदक—

"लाजपतराय अग्रवाल"

शास्त्रार्थ से पहले

सभ्य पुरुषों !

आर्य समाज, मण्डी-जाखल जो सन् १९१४ ई० से स्थापित है, इसी वर्ष इस मण्डी की भी स्थापना हुई थी। सबसे पहले इस मण्डी में इस पंक्ति के लेखक (सेवक) को अपनी दुकान खोलने का गौरव प्राप्त है, दुकान की स्थापना दिवस भी वैदिक रीति से किया गया, उसी समय से आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब की कृपा से आर्य उपदेशकों का आवागमन भी निरन्तर होता रहा। इसके अतिरिक्त रेलवे का जंक्शन होने के कारण प्राय: अन्य रेलवे कर्मचारी आर्य सामाजिक पुरुषों का भी समय-समय पर आगमन होता रहा, और आर्य समाज के कार्यों में सहयोग मिलता रहा, यद्यपि इन जाति सेवकों के कार्यों को परस्पर प्राथमिकता देना कठिन है, फिर भी सार्वजनिक निर्माण विभाग (P.W.D.) एवं चिकित्सा विभाग में सब के सब आर्य समाज के सेवक ही सिद्ध हुए। कई स्टेशन मास्टर, बुकिंग क्लर्क, सिग्नलर लोकोशेड क्लर्क अपने-अपने समय में बड़ी लगन और उत्साह के साथ कार्य कर गये, अनथक सेवक श्री बाबू रामसिंह जी पोस्ट मास्टर ने अपने प्रधानकाल में जो सार्वजनिक सेवा की है, वह भुलाई नहीं जा सकेगी, आपका व्यवहारिक एवं क्रियात्मक जीवन तथा व्यक्तिगत चरित्र गर्व के योग्य था, यही कारण था कि मण्डी और रेलवे विभाग का प्रत्येक व्यक्ति परस्पर प्रेम और सहानुभूति का व्यवहार करता था, कोई भी पर्व या समारोह होता था तो सभी मिलकर बड़े प्रेम से सम्मिलित होते थे, आर्य समाज के हर उत्सव के अवसर पर सनातनधर्मी बन्धु तो बड़े उत्साह से भाग लेते ही थे, किन्तु बहुत से उदार विचार रखने वाले मुस्लिम भाई भी उसमें सम्मिलित होकर मुक्त कण्ठ से आर्य समाज व उसके संस्थापक महर्षि दयानन्द के प्रति अपार श्रद्धा व्यक्त करते थे, किंतु कुछ स्वार्थीजनों को यह प्रतिष्ठा ईर्ष्या का भी कारण बन गयी। वह ऐसे अवसर की टोह में रहने लगे कि किसी प्रकार आर्य समाज का विरोध करें। अत: जन्माष्टमी के अवसर पर एक विशाल आयोजन समस्त हिंदुओं की ओर से हुआ, जिसमें "**बाबू सन्तराम जी-रेलवे स्टेशन मास्टर**" ने अपने विचारों को व्यक्त करते हुए बताया कि—महाराज श्री कृष्ण जी का जीवन, गौरक्षा, अनाथ और नारी जाति की रक्षा एवं उद्धार के हेतु हुआ था, स्वयं उन्होंने गौवें चरायीं। श्रीकृष्ण जी महाराज यह सहन नहीं कर सकते थे कि—किसी स्त्री का सतीत्व हरण हो। इसलिए भरी सभा में द्रौपदी का अपमान देखकर उन्होंने महाभारत युद्ध की सम्भावना व्यक्त की, उन्हें यह भी सहन न था कि कोई आतताई किसी निर्बल व्यक्ति का अधिकार हनन् करे। आज उनकी सन्तान कहलाने वाले उनके विचार एवं कार्यों से बहुत पीछे हैं, कितने ही आज हमारे बन्धु हमारी उपेक्षा और घृणा के परिणाम स्वरूप यवन और ईसाई बन रहे हैं। गौ माता की रक्षा के स्थान पर उसके रक्त के प्यासे बन रहे हैं। कितनी विधवाओं की लाज लुट रही है। अपमानित होने पर विधर्मियों के साथ जाने को विवश होती हैं, यवन, ईसाई घरों को बसाकर गौ घातक संतान पैदा करती हैं, कौन है जो दावे से कह सके कि उसने किसी का अधिकार हनन नहीं किया ? हमें इन सब बातों का समाधान करना पड़ेगा, इत्यादि-इत्यादि, यह भाषण हो ही रहा था कि बीच में सनातन धर्म के कुछ बेसमझ ठेकेदारों ने आपत्ति उठाई कि हमें यहां बुलाकर अपमानित किया जा रहा है। जन्माष्टमी के उत्सव की आड़ में शुद्धि और विधवा विवाह का प्रचार किया जा रहा है। बस ! उस दिन के बाद से आर्य समाज के हर कार्य में सनातनधर्मियों

द्वारा कोई न कोई रोड़ा अटकाया जाने लगा। अतः आर्य समाज के दूसरे वार्षिकोत्सव की तिथियों से मिलाकर उन्हीं तिथियों में सनातन धर्म सभा ने भी अपना उत्सव मनाया, तथा उसमें आर्य समाज का खूब विरोध प्रदर्शित किया गया, जिसका पूर्ण विवरण अलग से प्रकाशित भी हो चुका है। उसके बाद भी हर अवसर पर आर्य समाज के विरोध को ही लक्ष्य मानकर प्रचार किया जाने लगा। जब सनातन धर्म का दूसरा वार्षिकोत्सव हुआ तो आर्य समाज की आन्तरिक स्थिति एवं ऋषि दयानन्द जी के सम्बन्ध में भ्रान्ति फैलाते हुए एड़ी-चोटी की शक्ति लगाकर खण्डन किया गया। तथा आर्य समाज को भरपूर उत्तेजित किया गया, इस अवसर पर सनातन धर्म सभा-जाखल के दूसरे वार्षिकोत्सव पर आर्य समाज का उनके साथ बहुत बड़ा शास्त्रार्थ हुआ,[1] जिसमें सनातन धर्म की ओर से **"श्री पण्डित भीमसेन जी शर्मा"** (उपदेशक सनातन धर्म सभा) तथा आर्य समाज की ओर से **"श्री पण्डित मनसारामजी वैदिक तोप"** (उपदेशक आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब) शास्त्रार्थ कर्ता के रूप में नियत किये गये थे। जिसका विषय यह रक्खा गया था कि—**"क्या अष्टादश पुराण वेदानुकूल है?"**

उस शास्त्रार्थ में सनातनधर्मियों की ऐसी पराजय और दुर्गति हुई थी कि जिसे सनातनधर्मी युग-युगान्तरों तक स्मरण रखेंगे। शास्त्रार्थ के उपरान्त जब श्री पण्डित भीमसेन जी से सनातनधर्मियों ने अपनी पराजय का कारण पूछा तो पण्डित भीमसेन जी ने कहा था कि—**पुराणों के विषय में हम आर्य समाज से बाजी नहीं जीत सकते, हाँ! यदि कुछ सफलता मिल सकती है तो जब इनका अगला उत्सव होवे तो उसमें विषय यह रखा जावे कि—"स्वामी दयानन्दकृत ग्रन्थ वेद विरुद्ध और झूठे हैं" मैं इस पर अवश्य शास्त्रार्थ कर सकूंगा और हमें सफलता भी अवश्य मिलेगी"** यह कहकर पण्डित भीमसेन जी ने अपना पीछा छुड़ाया, और अपनी दक्षिणा लेकर चलते बनें। बस! सनातनधर्मियों के लिए पण्डित भीमसेन जी का कथन **"लोहे की लीक"** बन गयी, उस दिन से सभी सनातनधर्मी इस प्रतीक्षा में रहे कि—कब आर्य समाज का उत्सव हो और अपनी अभिलाषा पूरी करें। दिन गिनते-गिनते आर्य समाज के उत्सव की तिथियां निश्चित हुई, आर्य समाज ने विचार किया कि, आजकल संगठन की आवश्यकता और युग है, शास्त्रार्थ में मधुर शब्दों का उपयोग आवश्यक है, कहीं ऐसा न हो कि हमारे शास्त्रार्थ से किसी प्रकार जातीय संगठन को कोई क्षति पहुंचे, इस विचार से आर्य समाज की ओर से चर्चा होने पर भी कहा गया कि—आजकल परस्पर विवाद का समय नहीं है इसलिए हम शास्त्रार्थ नहीं करते, किन्तु स्वार्थी लीडरों को जातीय एकता से क्या सहानुभूति? जब देखा कि आर्य समाज मौन है तो झट से आर्य समाज को पत्र लिख मारा। फिर भी आर्य समाज ने बार-बार अपने पत्रों में समझाया कि आजकल शास्त्रार्थ करने का कोई औचित्य नहीं है। परन्तु स्वार्थी लीडरों की दृष्टि में यह समाया हुआ था कि हमारी विजय के लिए यही अमूल्य अवसर है। आर्य

टिप्पणी—

(१)—यह उपरोक्त विवरण वाला शास्त्रार्थ अगर किन्हीं सज्जन के पास हो तो अवश्य भेजें। इसे हम उन्हीं सज्जन का आभार व्यक्त करते हुए उन्हीं के नाम से अगले भाग में प्रकाशित करा देगें। मैं समझता हूँ इस शास्त्रार्थ में काफी उपयोगी सामग्री प्राप्त हो सकेंगी, क्योंकि दोनों ही विद्वान अपने विषय के दिग्गज विद्वानों में से रहे हैं। मैं पुनः प्रार्थना करता हूँ कि किसी भी सज्जन के पास यह उपरोक्त शास्त्रार्थ का विवरण हो तो अवश्य हमारे पते पर भेजें या सूचित करें।

निवेदक—

"लाजपत राय अग्रवाल"

समाज ने बार-बार कहा कि—**"दही के धोखे में कपास मत खाओ"** किन्तु विपक्षिगण टालने पर भी न टले, और आर्य समाज को शास्त्रार्थ का चैलेन्ज स्वीकार करना पड़ा। विषय यही निर्धारित हुआ कि—**"स्वामी दयानन्दकृत ग्रन्थ वेद विरुद्ध हैं या अष्टादश पुराण ?"**

शास्त्रार्थ का समय ३ मई सन् १९१४ ई० रात्रि आठ बजे से दस बजे तक स्वीकृत हो गया, सनातनधर्म वालोंने बड़ा प्रयत्न किया कि आर्य समाज के उत्सव में गड़बड़ी उत्पन्न करके उसकी सफलता को क्षति पहुंचाई जावे। इसलिए अछूतोद्धार सम्मेलन के अवसर पर पण्डित माधवाचार्य जी ने छूतछात के विषय में कहा कि यदि हम-मेहतर और धानुक आदि जातियों से छुआछूत नहीं करेंगे और उन्हें घृणा की दृष्टि से नहीं देखेंगे तो इनकी युवा बहु-बेटियां जो प्रायः हमारे यहां आती-जाती हैं, उनको देखकर हमारे नवयुवक अपना सदाचार खोकर दुराचारी हो जावेगें, उनका उद्धार छुआछूत के दूर करने से नहीं होता, प्रत्युत उनकी आर्थिक स्थिति सुधारने से होगा। किन्तु लाहौर के प्रसिद्ध आर्य समाजी **"श्री धनीराम भल्ला"** ने बूटों की तिजारत स्वयं अपने हाथ में लेकर चर्मकारों को बेरोजगार बना दिया है, इत्यादि-इत्यादि। आर्य समाज के योग्य पण्डितों ने इसका उत्तर उसी समय दे दिया कि—हिन्दुओं के घरों में रोटी लेने वाली ब्राह्मणी, महाराजिन आदि प्रायः आती रहती हैं, और उनसे किसी प्रकार की छूत छात भी नहीं है, किन्तु क्या मजाल जो कभी कोई ऐसा प्रसंग सुनने में आया हो जहां किसी मालिक मकान के युवा लड़कों ने छेड़खानी की हो या केवल छूत-छात न होने से अपने आचरण से पतित हुआ हो, फिर जहां—**"मातृवत् परदारेषु.........."** वाला उपदेश दृष्टिगत हो वहां इस प्रकार की आशंका करना भी महापाप है। मिस्टर भल्ला जी ने बूटों के व्यवसाय को उन्नत्ति देकर गरीब, चर्मकारों व अछूतों को आर्थिक क्षति नहीं पहुंचाई प्रत्युत व्यवसाय को प्रोत्साहन देकर सर्व प्रकारेण विकास किया हैं। जिस परीमाण में किसी वस्तु की बिक्री बढ़ेगी, उसके निर्मात्ताओं को उसी परीमाण में लाभ भी अधिक होगा। मिस्टर भल्लाजी, बूट स्वयं नहीं बनाते, प्रत्युत अधिक मात्रा में बिक्री करते हैं, जिससे बूट बनाने वाले बहुत अधिक मात्रा में बूट तैयार करके लाभान्वित होते हैं। इस प्रकार के निरर्थक प्रश्नों से सनातन धर्म का उद्देश्य धानुकों आदि को उत्तेजित करके वार्षिकोत्सव के कार्यक्रम में विघ्न डालना मात्र ही था। किन्तु जहां उस सम्मेलन के अध्यक्ष **"श्री पण्डित ठाकुरदास जी भार्गव एम० ए०, (सदस्य असैम्बली)"** जैसा निर्भीक और योग्य व्यवित हो वहां इस प्रकार के क्षुद्र विचार वाले व्यक्ति के षडयन्त्र कैसे पूरे हो सकते हैं ? आर्य समाज के उचित प्रबन्ध के कारण स्वार्थी पौराणिक पन्थियों की दाल न गल सकी। और उत्सव पूर्ण सफलता के साथ सम्पन्न हुआ। उसके पश्चात्त अन्त में बड़ी प्रतीक्षा के बाद वह रात्रि भी आ पहुंची जिसका चिरकाल से सनातन धर्मियों को इन्तजार था, जिसमें सनातन धर्म और आर्य समाज को एक तराजू पर रखकर तोला जाना था। आर्य समाज की ओर से शास्त्रार्थ का प्रबन्ध किया गया, और उसका अध्यक्ष **"श्री पूज्य स्वामी स्वतन्त्रतानन्द जी महाराज"** (आचार्य उपदेशकविद्यालय-लाहौर) को निर्वाचित किया गया। शास्त्रार्थ में जो कुछ हुआ पाठकगण उसे अगले पृष्ठों पर पढ़ेंगे, मैं जनता से सामान्यतः और अपने सनातन धर्मी भाईयों से विशेषतः प्रार्थना करूंगा कि उसको निष्पक्षभाव से अध्ययन करें, और भविष्य के लिए इस प्रकार निरर्थक छेड़-छाड़ करके उपहास का कारण न बनें। यदि पुराणों में कोई प्रक्षिप्तांश हैं तो उसको **"श्री पण्डित मदन मोहन जी मालवीय की सम्मत्यानुसार"** संशोधन कर दें। अन्यथा हमारा तो फ़र्ज कहना है, अगर, कोई माने चाहे न माने, तो, ऐ भाई ! हमारा क्या बिगड़ता है ?

जातिय सेवक—
"मोहन लाल गुप्त"
(जाखल-निवासी)

शास्त्रार्थ आरम्भ

नोट—

जैसा कि पूर्व लिखा जा चुका है कि शास्त्रार्थ का विषय—"**स्वामी दयानन्द कृत ग्रन्थ वेद विरुद्ध हैं या अष्टादश पुराण ?**" निश्चित किया गया। और उसके लिए दिनांक ३ मई सन् १६१४ ई० रात्रि के ८ बजे से १० बजे तक का समय नियत किया गया, शास्त्रार्थ के प्रधान "**पूज्यपाद श्री स्वामी स्वतन्त्रतानन्द जी महाराज**" (आचार्य-उपदेशक विद्यालय-लाहौर) को बनाया गया। सनातन धर्मियों ने यह प्रयत्न किया कि अपनी ओर से "**श्री पण्डित माधवाचार्य**" जी को शास्त्रार्थ का प्रधान नियत करें। किन्तु आर्य समाज ने कहा कि—उत्सव हमारा हो रहा है। प्रबन्ध का दायित्व हम पर है। इसलिए प्रधान हमारी ओर से ही होंगे। आप एक सहायक के रूप में कुर्सी पर बैठ सकते हैं। किन्तु प्रधान के रूप में नहीं। आर्य समाज का यह प्रस्ताव उचित ही था, इसलिए सनातन धर्म वालों को स्वीकार करना पड़ा और शास्त्रार्थ की कार्यवाही प्रारम्भ हुई, सनातन धर्म की ओर से श्री "**पण्डित श्री कृष्णशास्त्री**" (अमरोधा—"कानपुर" निवासी) तथा आर्य समाज की ओर से "**श्री पण्डित तर्क वाचस्पति लोकनाथ जी, आर्य उपदेशक**—"शास्त्रार्थ कर्त्ता के रूप में निश्चय किये गये। और अन्त में श्री पण्डित श्री कृष्णजी शास्त्री ने अपने प्रश्नों को आरम्भ किया—

श्री पण्डित श्री कृष्णजी शास्त्री—

मेरे आर्य समाज पर ६ प्रश्न है, (सात प्रश्न सत्यार्थ प्रकाश पर तथा दो प्रश्न संस्कार विधि पर) मेरे प्रश्नों का उत्तर आर्य समाज की ओर से दिया जावे,। मेरा दावा है कि—"**श्री स्वामी जी कृत ग्रन्थ वेद विरुद्ध हैं**" मेरे प्रश्न इस प्रकार हैं—

१—सत्यार्थ प्रकाश में स्वामीजी ने लिखा है कि—"वर्ण के परिवर्तन होने पर परस्पर लड़के और लड़कियों को परिवर्त्तित कर दिया जाये" यह कौन से वेद की आज्ञा है ?

२—बलिवैश्वदेव यज्ञ में जो स्वामीजी ने मन्त्र लिखे हैं, वह किस वेद के हैं ?

३—स्वामी जी ने विधवाओं के लिए दस सन्तान उत्पन्न करना लिखा है, कि दो अपने और दो-दो अन्य चार पुरुषों के लिए ! बताइये यह कौन से वेद की आज्ञा है ?

४—स्वामी जी ने लिखा है कि जब किसी स्त्री का पति मर जावे तो उसका दाह संस्कार करने से पहले लोग स्त्री से पूछें कि—"ऐ स्त्री ! तू इस मरे हुए पति की आशा छोड़कर जीते हुओं में से पति चुन ले", यह कितनी बुरी बात है ?

५—सृष्टि के आरम्भ में युवा स्त्री पुरुष उत्पन्न हुए यह किस वेद में लिखा है ?

६—आदि सृष्टि तिब्बत में उत्पन्न हुई, यह किस वेद के अनुसार लिखा है ?

७—स्वामी जी ने लिखा है कि—"जहां गर्म देश हो वहां चोटी कटवा दी जावे" यह किस वेद की आज्ञा है ?

८—स्वामी जी ने संस्कार विधि में जातकर्म संस्कार में लिखा है कि बच्चे के उत्पन्न होते ही घी और मधु बराबर मात्रा में मिलाकर बच्चे की जिव्हा पर ओ३म् लिखा जावे । घी और मधु बराबर मात्रा में मिल कर विष हो जाता है । इससे बच्चे की मृत्यु हो जावेगी, यह वेद के विरुद्ध है, इसका उत्तर दिया जावे ।

९—संस्कार विधि के गृहस्थ प्रकरण में लिखा है कि जब कन्या विवाह के पश्चात् अपने घर आवे तो सब दुष्टा स्त्रीयां उसके पास आवें, और अपना तेज देकर चली जावें, और फिर कभी भी उसके पास न आवें, यह दुराचरण की शिक्षा है ।

बस ! मेरे यह प्रश्न हैं, इनका उत्तर आर्य समाज को देना चाहिये ।

श्री पण्डित लोकनाथ जी तर्कवाचस्पति—

प्यारे भाइयो ! पण्डित जी ने लगातार ९ प्रश्न तो कर दिये, किन्तु अपने पक्ष को एक भी प्रश्न में सिद्ध नहीं किया । पण्डित जी का यह पक्ष था कि—"**स्वामी दयानन्द कृत ग्रन्थ वेद विरुद्ध हैं**" किन्तु एक मन्त्र भी ऐसा प्रस्तुत नहीं किया—कि जिससे यह पता चलता कि—कौन-सी बात कौन से वेद मन्त्र के विरुद्ध है ? पण्डित जी को न्याय शास्त्र के अनुसार अपने पक्ष को सिद्ध करना चाहिये, पक्ष को सिद्ध करने का दायित्व वादी पक्ष पर ही होता है । पण्डित जी को यह बताना चाहिये कि—वेद में तो लिखा है कि—सृष्टि के आरम्भ में बच्चे और बूढ़े पैदा हुए परन्तु स्वामी दयानन्द जी ने लिखा है कि युवावस्था रूप में स्त्री-पुरुष पैदा हुए, इसलिए स्वामी जी का लेख वेद विरुद्ध है, या वेद में तो लिखा है कि—विधवा स्त्री को सन्तान उत्पन्न नहीं करनी चाहिये । और स्वामी दयानन्द जी ने अपने ग्रन्थों में लिखा है कि—सन्तान उत्पन्न करनी चाहिये, इसलिए स्वामी जी का लेख वेद विरुद्ध है, ऐसे स्थल दिखाते तो बात कुछ समझ में आती भी, मेरा आशय यह है कि जब तक पण्डित जी वेदों का कोई प्रमाण प्रस्तुत करके स्वामी जी के ग्रन्थों में उसका विरोध न दिखावें तब तक यह शास्त्रार्थ आगे नहीं चल सकता। मेरे मित्र को चाहिये कि—अपने पक्ष को न्याय शास्त्र के पांचों अंगों के अनुसार प्रमाणित करें । जिससे शास्त्रार्थ की कार्यवाही आगे बढ़ाई जा सके । आर्य समाज के पास इन सब प्रश्नों के यथोचित्त उत्तर हैं । किन्तु जब तक पण्डित जी अपने पक्ष को निर्धारित कर सिद्ध न करें तब तक पण्डितजी को उत्तर नहीं दिया जावेगा । मैं इतने पर ही अपने कथन को समाप्त करता हूं । और आशा करता हूं कि श्री पण्डित जी अपने पक्ष को किसी वेद के प्रमाण से सिद्ध करेंगे ।

श्री पण्डित श्री कृष्ण जी शास्त्री—

मैंने जो पक्ष प्रस्तुत किया था, कि—"**स्वामी दयानन्द कृत ग्रन्थ झूठे और वेद विरुद्ध हैं**" सो सत्य ही निकला । मेरे एक प्रश्न का उत्तर भी पण्डित लोकनाथ जी ने नहीं दिया, चोटी कटाना स्वामी दयानन्द ने लिखा है, ! यह वो चोटी है जिसके कारण लोगों ने अपने शिर कलम करा दिये, मगर चोटी नहीं कटवायी, स्वामी दयानन्द ने उसको भी कटवाना लिख दिया, कितने शर्म की बात है ? सृष्टि के आदि में युवा पुरुष पैदा हुए, इसमें वेद का कोई

बुद्धि तथा युक्ति और आत्मा की आवाज के विरुद्ध हो वह "धर्म" होता है। अब इन चारों प्रकारों को दृष्टिगत रखते हुए हम आर्य समाज पर किये गये प्रश्नों का परीक्षण करेंगे और आवश्यकतानुसार, यह भी दिखायेगें कि, जिन सिद्धान्तों को सनातन धर्म स्वयं स्वीकार करता है, किन्तु उनके सम्बन्ध में आर्य समाज से आकर प्रश्नोत्तर करता है, उससे उनका उद्देश्य केवल वितण्डावाद के और कोई दृष्टिगोचर नहीं होता, पाठकगण ऊपर के चारों प्रमाणों को मस्तिष्क में रखते हुये हमारी ओर से दिये गये प्रश्नों के उत्तर ध्यानपूर्वक पढ़कर आनन्द उठावें, और सत्य व असत्य का निर्णय करके सत्यता स्वीकार करेंगे।

श्री पण्डित लोकनाथ जी तर्क वाचस्पति जी का विशेष वक्तव्य—

सनातन धर्मियों की ओर से—

सत्यार्थ प्रकाश में स्वामी जी ने लिखा है कि, वर्ण के परिवर्तन के आधार पर पुत्र-पुत्रियों का परिवर्तन कर लिया जाये, यह कौन से वेद की आज्ञा है ?

श्री पण्डित लोकनाथ जी तर्क वाचस्पति—

इस प्रश्न का मौलिक आधार वर्ण व्यवस्था है, सनातन धर्म मानता है कि, वर्ण व्यवस्था जन्म से होती है। अर्थात् जो ब्राह्मण, ब्राह्मणी से पैदा हुआ हो वही ब्राह्मण बन सकता हैं। और क्षत्रिय वैश्य शूद्र ये सभी क्षत्राणी, वैश्याणि, और शूद्राणि में उत्पन्न होकर सन्तान ही क्षत्रिय वैश्य और शूद्र बन सकते हैं। कोई ब्राह्मण चाहे किसी प्रकार के भी निकृष्ट कर्म क्यों न करें मगर वह ब्राह्मण ही बना रहेगा। और उसके ब्राह्मणपन में कोई अन्तर नहीं आ सकता इसी प्रकार यदि कोई शूद्र चाहे वह कितनी ही विद्या पढ़े, और कितने ही उसके उत्कृष्ट कर्म क्यों न हों परन्तु वह शूद्र ही रहेगा। वह उन्नति नहीं कर सकता। इसी प्रकार से वैश्य और क्षत्रिय के सम्बन्ध में भी समझना चाहिए। यह है सनातन धर्म का सिद्धान्त ! और आर्य समाज यह मानता है कि, वर्ण व्यवस्था, उसके अपने (कार्यों और आचरण) के अनुसार अर्थात् कोई भी व्यक्ति ब्राह्मण के यहां उत्पन्न होकर अगर-विद्याध्ययन आदि ब्राह्मण के कर्मों को छोड़कर, पानी पिलाने, भोजन बनाने या किसी दुकानदार के यहां सेवा कार्य करने शूद्रपने का कार्य करने लग जाये तो वह शूद्र बन जाता है, और जो व्यक्ति शूद्र के घर उत्पन्न होकर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, के काम, विद्या-अध्ययन, अध्यापन, राष्ट्ररक्षा में संलग्न, सैनिक आदि एवं कला कौशल तथा व्यापार कर्म करने वाला ब्राह्मण, क्षत्रीय, वैश्य, बन जाता है। सारांश यह है कि, वर्ण व्यवस्था में कर्म ही मुख्य हैं। जन्म उसमें कारण नहीं है, यह आर्य समाज का सिद्धान्त है। स्वामी दयानन्द जी महाराज ने इस सिद्धान्त को सिद्ध करने के लिए यजुर्वेद के ३१वें अध्याय के ११वें मन्त्र का प्रमाण दिया है। जिसमें चारों वर्णों को मनुष्य के शरीर की उपमा दी है। और बताया है कि, मनुष्य शरीर के चार मुख्य भागों में एक मुख, दूसरे भुजा, तीसरे पेट और चौथे पांव होते हैं। इसी प्रकार सम्पूर्ण मनुष्य-समाज चार हिस्सों में समझना चाहिए। जो मुख के समान ज्ञानवान, सीधी राह बताने वाले विद्या पढ़ाने वाले हों वह ब्राह्मण कहलाते हैं, दूसरे भुजा अर्थात् बाहुओं की तरह से अपने आपको संकट में डालकर दूसरों की रक्षा करते हैं, वह क्षत्रिय कहलाते हैं, और जो पेट के समान कच्चे पदार्थों को पका, बनाकर राष्ट्र की रक्षा करते हैं, और व्यवसाय को प्रोत्साहन देते हैं, वो वैश्य, और जो पैरों के समान सबकी सेवाओं का काम करते हैं, वह शूद्र कहलाते हैं, स्वामी दयानन्द जी महाराज का यह सिद्धान्त इतना प्रबल और स्पष्ट है कि प्रत्येक स्थान पर इसका प्रबल समर्थन मिलता है। मनुस्मृति के अध्याय-६ के श्लोक २२, २३, २४ में स्त्रियों के सम्बन्ध में लिखा है कि, जिस प्रकार के गुणों वाले पति के साथ स्त्री विवाही जावे, तो उसी पति के गुणों वाली वह स्त्री भी हो जाती है। जैसे नदियां, समुद्र में मिलकर समुद्र रूप हो जाती हैं। अक्षमाल नाम की स्त्री नीच कुल में उत्पन्न होकर वशिष्ठ नाम के ब्राह्मण के साथ विवाही गयी और वह उत्तमता को प्राप्त हो गयी, इसी प्रकार शृंगी नाम की स्त्री

बुद्धि तथा युक्ति और आत्मा की आवाज के विरुद्ध हो वह "धर्म" होता है। अब इन चारों प्रकारों को दृष्टिगत रखते हुए हम आर्य समाज पर किये गये प्रश्नों का परीक्षण करेंगे और आवश्यकतानुसार, यह भी दिखायेगें कि, जिन सिद्धान्तों को सनातन धर्म स्वयं स्वीकार करता है, किन्तु उनके सम्बन्ध में आर्य समाज से आकर प्रश्नोत्तर करता है, उससे उनका उद्देश्य केवल वितण्डावाद के और कोई दृष्टिगोचर नहीं होता, पाठकगण ऊपर के चारों प्रमाणों को मस्तिष्क में रखते हुये हमारी ओर से दिये गये प्रश्नों के उत्तर ध्यानपूर्वक पढ़कर आनन्द उठावें, और सत्य व असत्य का निर्णय करके सत्यता स्वीकार करेंगे।

श्री पण्डित लोकनाथ जी तर्क वाचस्पति जी का विशेष वक्तव्य—

सनातन धर्मियों की ओर से—

सत्यार्थ प्रकाश में स्वामी जी ने लिखा है कि, वर्ण के परिवर्तन के आधार पर पुत्र-पुत्रियों का परिवर्तन कर लिया जाये, यह कौन से वेद की आज्ञा है ?

श्री पण्डित लोकनाथ जी तर्क वाचस्पति—

इस प्रश्न का मौलिक आधार वर्ण व्यवस्था है, सनातन धर्म मानता है कि, वर्ण व्यवस्था जन्म से होती है। अर्थात् जो ब्राह्मण, ब्राह्मणी से पैदा हुआ हो वही ब्राह्मण बन सकता हैं। और क्षत्रिय वैश्य शूद्र ये सभी क्षत्राणी, वैश्याणि, और शूद्राणि में उत्पन्न होकर सन्तान ही क्षत्रिय वैश्य और शूद्र बन सकते हैं। कोई ब्राह्मण चाहे किसी प्रकार के भी निकृष्ट कर्म क्यों न करें मगर वह ब्राह्मण ही बना रहेगा। और उसके ब्राह्मणपन में कोई अन्तर नहीं आ सकता इसी प्रकार यदि कोई शूद्र चाहे वह कितनी ही विद्या पढ़े, और कितने ही उसके उत्कृष्ट कर्म क्यों न हों परन्तु वह शूद्र ही रहेगा। वह उन्नति नहीं कर सकता। इसी प्रकार से वैश्य और क्षत्रिय के सम्बन्ध में भी समझना चाहिए। यह है सनातन धर्म का सिद्धान्त ! और आर्य समाज यह मानता है कि, वर्ण व्यवस्था, उसके अपने (कार्यों और आचरण) के अनुसार अर्थात् कोई भी व्यक्ति ब्राह्मण के यहां उत्पन्न होकर अगर-विद्याध्ययन आदि ब्राह्मण के कर्मों को छोड़कर, पानी पिलाने, भोजन बनाने या किसी दुकानदार के यहां सेवा कार्य करने शूद्रपने का कार्य करने लग जाये तो वह शूद्र बन जाता है, और जो व्यक्ति शूद्र के घर उत्पन्न होकर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, के काम, विद्या-अध्ययन, अध्यापन, राष्ट्ररक्षा में संलग्न, सैनिक आदि एवं कला कौशल तथा व्यापार कर्म करने वाला ब्राह्मण, क्षत्रीय, वैश्य, बन जाता है। सारांश यह है कि, वर्ण व्यवस्था में कर्म ही मुख्य हैं। जन्म उसमें कारण नहीं है, यह आर्य समाज का सिद्धान्त है। स्वामी दयानन्द जी महाराज ने इस सिद्धान्त को सिद्ध करने के लिए यजुर्वेद के ३१वें अध्याय के ११वें मन्त्र का प्रमाण दिया है। जिसमें चारों वर्णों को मनुष्य के शरीर की उपमा दी है। और बताया है कि, मनुष्य शरीर के चार मुख्य भागों में एक मुख, दूसरे भुजा, तीसरे पेट और चौथे पांव होते हैं। इसी प्रकार सम्पूर्ण मनुष्य-समाज चार हिस्सों में समझना चाहिए। जो मुख के समान ज्ञानवान, सीधी राह बताने वाले विद्या पढ़ाने वाले हों वह ब्राह्मण कहलाते हैं, दूसरे भुजा अर्थात् बाहुओं की तरह से अपने आपको संकट में डालकर दूसरों की रक्षा करते हैं, वह क्षत्रिय कहलाते हैं, और जो पेट के समान कच्चे पदार्थों को पका, बनाकर राष्ट्र की रक्षा करते हैं, और व्यवसाय को प्रोत्साहन देते हैं, वो वैश्य, और जो पैरों के समान सबकी सेवाओं का काम करते हैं, वह शूद्र कहलाते हैं, स्वामी दयानन्द जी महाराज का यह सिद्धान्त इतना प्रबल और स्पष्ट है कि प्रत्येक स्थान पर इसका प्रबल समर्थन मिलता है। मनुस्मृति के अध्याय-९ के श्लोक २२, २३, २४ में स्त्रियों के सम्बन्ध में लिखा है कि, जिस प्रकार के गुणों वाले पति के साथ स्त्री विवाही जावे, तो उसी पति के गुणों वाली वह स्त्री भी हो जाती है। जैसे नदियां, समुद्र में मिलकर समुद्र रूप हो जाती हैं। अक्षमाल नाम की स्त्री नीच कुल में उत्पन्न होकर वशिष्ठ नाम के ब्राह्मण के साथ विवाही गयी और वह उत्तमता को प्राप्त हो गयी, इसी प्रकार शृंगी नाम की स्त्री

पतित वर्ण में उत्पन्न होकर मदपाल नाम के ब्राह्मण के साथ विवाही गयी। और उच्चपन को प्राप्त हो गयी। इसी प्रकार और भी बहुत सी स्त्रियां बीच वर्ण में पैदा होकर अपने पतियों के कारण उच्चपन को प्राप्त हो गयी, मनुस्मृति अध्याय ३ के श्लोक ३ से १३ तक में लिखा है कि ब्राह्मण चारों वर्ण की स्त्री से शादी कर सकता है। और उसकी सम्पत्ति के बंटवारे के विषय में मनुस्मृति अध्याय-६ के श्लोक १५३ में लिखा है कि, ब्राह्मण अपनी सम्पत्ति के दस भाग करे, उसमें चार भाग ब्राह्मणी के पुत्र को और तीन भाग क्षत्राणी के पुत्र को और दो भाग वैश्य की सन्तान को और एक भाग शूद्र की सन्तान को देवे। इस प्रकार अपनी सम्पत्ति को चारों स्त्रियों की सन्तति में विभक्त करे।

यद्यपि भागों की विभक्ति में न्यूनाधिकता वेद विरुद्ध होने के कारण आर्य समाज को स्वीकार नहीं, किन्तु मनुस्मृति से ये तो स्पष्ट हो ही जाता है कि, दूसरे वर्णो की स्त्रियों से विवाह करके सन्तान उत्पन्न करना उचित है, क्योंकि उचित और योग्य सन्तान ही सम्पत्ति की अधिकारिणी होती है। अब सनातनधर्मी यहां बतायें कि जन्म से वर्ण व्यवस्था कैसे बनेगी ? इसके अतिरिक्त पुरुषों के सम्बन्ध में भी मनुस्मृति अध्ययन १० के श्लोक ६५ में स्पष्ट लेख है कि ब्राह्मण, शूद्र बन सकता है, और शूद्र, ब्राह्मण बन सकता है। और क्षत्रिय व वैश्य भी शूद्र और ब्राह्मण बन सकते हैं। फिर मनुस्मृति के अध्याय १० के श्लोक ४२ में लिखा है कि कर्मों के न करने से क्षत्रियों की हजारों जातियां शूद्र बन गयीं, फिर मनुस्मृति अध्याय-१०, श्लोक ६२ में लिखा है कि ब्राह्मण मांस, लाख और लवण के बेचने से उसी समय से ब्राह्मणत्व से गिर जाता है। और यदि ब्राह्मण दूध बेचने का व्यवसाय करे तो ब्राह्मण तीन दिन में ही शूद्र हो जाता है। फिर मनुस्मृति अध्याय ११ के श्लोक २३८ में लिखा है कि—तप करने से जो वस्तु कठिनाई से प्राप्त हो सकती है, वह भी प्राप्त हो जाती है। टीकाकार कुल्लूक भट्ट जी लिखते हैं कि जैसे विश्वामित्र जी क्षत्रिय होते हुए भी, इसी शरीर से ब्राह्मण हो गए। मनुस्मृति में इस प्रकार के सैकड़ों श्लोक मौजूद हैं, स्वामी दयानन्दजी महाराज के कर्मानुसार वर्ण व्यवस्था का समर्थन करते हैं, इससे आगे बाल्मीकीय रामायण को ले लीजिए, बालकांड सर्ग १८, श्लोक ५३ से ५५ में स्पष्ट लिखा है कि—जब विश्वामित्र—राजा दशरथ के पास आये तो राजा दशरथ ने कहा कि मेरा भाग्य अच्छा है कि मैंने ब्राह्मण के दर्शन किए, और ये भी कहा कि आप पहले क्षत्रिय थे। और अब ब्राह्मण बन गए। इसके अतिरिक्त बालकाण्ड सर्ग १०, श्लोक ३२ में लिखा है कि राजा रामपाद की लड़की शान्ता का विवाह श्रृंगी ऋषि के साथ हुआ और फिर उसी श्रृंगी ऋषि ने राजा दशरथ के यहां पुत्रेष्टि यज्ञ करवाया, बाल्मीकी रामायण सर्ग ६३ श्लोक ५१ में लिखा है कि, श्रवण कुमार की माता शूद्र और पिता वैश्य थे। और श्रवण कुमार ब्राह्मण बने। इसका प्रमाण यह है कि श्रवण के पिता ने दशरथ जी से कहा—कि तुझे ब्रह्महत्या इसलिए नहीं लगेगी, क्योंकि तूने श्रवण कुमार को जान बूझकर नहीं मारा, आगे देखिए, महाभारत आदि पर्व अध्याय ६० में लिखा है कि—सत्यवती से व्यास जी उत्पन्न हुए थे। वो ब्राह्मण बन गये और उसी सत्यवती से राजा शान्तनु का विवाह हुआ, जिससे चित्रांगद और विचित्रवीर्य पैदा हुए वह क्षत्रिय बन गए। देखिए माँ एक ही है, परन्तु उसी से उत्पन्न हुए लड़कों में से एक ब्राह्मण बन जाता है और दूसरे पुत्र क्षत्रिय बन जाते हैं, बताइये जन्म से वर्ण व्यवस्था मानने पर उसका औचित्य क्या और कैसे होगा ? यदि बीज को प्रधान मानें तो व्यास ने अम्बिका से धृतराष्ट्र और अम्बालिका से पाण्डु तथा दासी से विदुर को उत्पन्न किया, वह ब्राह्मण क्यों नहीं बने ! महाभारत आदि पर्व अध्याय ८३ में लिखा है कि राजा ययाति के दो स्त्रियां थीं, एक का नाम देवयानी था जो शंकराचार्य नामक ब्राह्मण की पुत्री थी, दूसरी का नाम शर्मिष्ठा था जो विश्वप्रवा की पुत्री थी, अब देखिए पति क्षत्रिय है, उसकी एक स्त्री ब्राह्मण की पुत्री है, दूसरी राक्षस की, ब्राह्मण के उदर से यदु पैदा हुए, जिससे यादव वंश चला, जिसमें कृष्ण जी भी पैदा हुए और राक्षसी के उदर से पुरू पैदा हुए, जिससे पौरव वंश चला, जिसमें कौरव और

पाण्डव पैदा हुए थे, अब बताइये यहां जन्म से वर्ण व्यवस्था कैसे बनायेंगे ? और भविष्य पुराण ब्रह्म पर्व अध्याय ४२ में श्लोक २६ से ३० तक में स्पष्ट लिखा हुआ है कि श्रृंगी ऋषि हिरिणी के गर्भ से, पाराशर चाण्डाली के गर्भ से, कणाद् आदि उल्लू से और वशिष्ठ कंजरी के गर्भ से और मन्दपाल (मनि मलाहानी) के उदर से पैदा होकर अपने तप के कारण ब्राह्मण बन गये। अभिप्राय यह है कि, एक दो नहीं बल्कि सैकड़ों प्रमाण इस विषय के मिलते हैं कि, **"वर्ण व्यवस्था जन्म से नहीं बल्कि कर्म से है"** और युक्तियां भी इस बात को स्वीकार करती हैं, हम सनातन धर्म वालों से पूछते हैं, अगर आज कोई ब्राह्मण-मुसलमान बन जाये और गऊ वध से भी परहेज न करे और चोटी कटा कर नमाज पढ़ने लगे तो तुम उसको ब्राह्मण मानोगे या मुसलमान ? यदि ब्राह्मण मानते हो तो उसके साथ रोटी-बेटी का व्यवहार क्यों नहीं करते ? और अगर मुसलमान मानते हो तो कर्मों से वर्ण व्यवस्था क्यों नहीं मानते ? अगर जन्म से वर्ण व्यवस्था मानते हो तो अपने पण्डित राजनारायण "अरमान" को अब तक बन्द क्यों नहीं किया जबकि उसके घर में जन्म की मुसलमान और शुद्ध की हुई स्त्री मौजूद है। इसलिए आर्य समाज का यह सिद्धान्त इतना पुष्ट और प्रबल है कि, सनातनधर्मियों को इस पर शास्त्रार्थ करने का साहस ही नहीं है। स्वामी दयानन्द जी महाराज ने इस सिद्धान्त को अनेक युक्ति और प्रमाणों से सत्यार्थ प्रकाश के चौथे समुल्लास में सिद्ध किया है उक्त विषय से सम्बन्धित निम्न प्रश्नोत्तर रूप में वहां लेख भी विद्यमान है—देखिए—

"(प्रश्न)—**जो किसी के एक ही पुत्र या पुत्री हो और वह दूसरे वर्ण को स्वीकार कर ले तो उसके माता पिता की सेवा कौन करेगा ? और वंश भी नष्ट हो जाएगा और उसकी क्या व्यवस्था होनी चाहिए ?** (उत्तर)—**न किसी के सेवा का भंग और न उसका वंश नष्ट होगा क्योंकि उनको अपने पुत्र पुत्रियों के परिवर्तन में अपने वर्ण के योग्य दूसरे पुत्र पुत्रियां विद्या सभा और राज्य सभा की व्यवस्था से मिलेंगे इसलिए कोई व्यवस्था में बाधा नहीं होगी। ये गुण कर्मानुसार वर्णों की व्यवस्था कन्याओं को सोलह वर्ष और पुरुषों की २५वें वर्ष की परीक्षा निर्धारित होनी चाहिए"** ये वो पाठ सत्यार्थ प्रकाश का है जिस पर पौराणिक पण्डित को विरोध था। वर्ण व्यवस्था के मूल सिद्धान्तों पर तो शास्त्रार्थ करने का साहस नहीं हुआ उसके विवरणात्मक पक्ष पर आक्षेप उठाया है। हम पण्डित जी से जानकारी करना चाहते हैं कि आप जन्म से वर्ण व्यवस्था मानते हैं या कर्म से ? अगर जन्म से मानते हैं तो आपको **"कर्म से वर्ण व्यवस्था"** पर शास्त्रार्थ करना चाहिए, आपको उसके विवरण पर प्रश्न करने का अधिकार तब होगा जब आप कर्म व्यवस्था के मौलिक सिद्धान्त को स्वीकार करेंगे। अगर मौलिक सिद्धान्त ही मिथ्या सिद्ध हो जावे तो विवरण साथ में ही मिथ्या साबित सिद्ध हो जायेंगे। हाँ यदि आप कर्मों के अनुसार वर्ण व्यवस्था के मौलिक सिद्धान्त को स्वीकार करते हैं तो फिर आपको अपनी सन्तुष्टि के लिए उक्त विवरण पर शास्त्रार्थ करने का अधिकार प्राप्त हो सकता है। आपने इस विवरण के लिए वेद मन्त्र पूछा है। यह आपकी भूल है। इस विवरण के लिए तो वही यजुर्वेद के ३१वें अध्याय का ११वां मन्त्र पर्याप्त है। जो इसकी मौलिकता के लिए स्पष्ट प्रमाण है, ध्यान दीजिये जिस प्रकार से सारे शरीर को गति देने वाला और नियन्त्रण रखने वाला जीवात्मा मनुष्य के शरीर में विद्यमान है और इस शरीर की प्रत्येक आवश्यकता को पूरा करता है और शरीर को नियन्त्रण में रखता है उसकी आज्ञा के विरुद्ध यह शरीर जरा भी गति नहीं कर सकता और उसके बिना ये शरीर मुर्दा अर्थात् शव मात्र है, वह इस शरीर के भागों को आवश्यकतानुसार कार्य पर लगाता है, ठीक इसी प्रकार सारे मनुष्य समाज में राजा भी वही अस्तित्व या अधिकार रखता है, वही मनुष्य समाज की सारी जरूरतों को पूरा करने वाला होता है, और वही सारे मनुष्य समाज को नियन्त्रण में रखता है, और उसकी अनुपस्थिति में भी मनुष्य समाज मुर्दा अर्थात् शव के समान होता है। इसका भी ये कर्तव्य है कि प्रत्येक मनुष्य को उसकी योग्यता के अनुसार काम पर लगाये, जब तक इस देश में विद्या सभायें और राज्य सभायें उपस्थित रहीं और मनुष्य समाज में योग्यता के अनुसार हर एक

व्यक्ति को उन्नति और अवनति का भय रहता था, ब्राह्मणों को तो ये भय रहता था कि, यदि हमने ब्राह्मणों की योग्यता या गुण कर्म न प्राप्त किए तो हमको शूद्र बना दिया जावेगा, वह इस भय से पूर्णरूपेण विद्या आदि ब्राह्मणपन के गुणों को प्राप्त करने का प्रयत्न करते थे और शूद्रादि लोगों को भी इससे ये प्रेरणा मिलती थी कि, हम योग्यता प्राप्त करके ब्राह्मणादि बनें। इसलिए वह भी उन्नति के लिए पूर्णरूपेण प्रयत्न करते थे, अर्थात् इधर से ब्राह्मण प्रयत्न करते थे, और उधर से शूद्रादि प्रयत्न करते थे, इसलिए सारा देश विद्या का भण्डार बना हुआ था। जब से विद्या सभायें और राज्य सभायें न रही और ब्राह्मण आदि बनने का पैमाना बजाय योग्यता के जन्म ही स्वीकार होने लग गया तब से ब्राह्मणों में तो ये निश्चिन्तता हो गयी कि हम जन्म से तो ब्राह्मण हैं ही, चाहे विद्या का एक भी अक्षर न पढ़ें, बल्कि शराब पीये, मांस खाएं, दुराचारी, भ्रष्टाचारी, व्यभिचारी बन कर बुरे कर्म भी करेंगे तो ये कर्म हमारी ब्राह्मणत्व की पदवी तो छिनवा नहीं सकते, इसलिए क्यों विद्याध्ययन में व्यर्थ समय नष्ट करें ? वह तो इसी कारण विद्याध्ययन आदि कार्य करना छोड़ने लगे। और शूद्र आदि का साहस टूट गया, और इसीलिए वह भी उदासीन हो गये, कि इतनी योग्यता प्राप्त करने के उपरान्त भी हम रहेंगे शूद्र ही, समाज में हमें द्विजों का स्थान मिलेगा ही नहीं, तो फिर हमें विद्या आदि के प्राप्त करने का क्या लाभ ? इसका परिणाम यह हुआ कि शूद्र आदि भी विद्या प्राप्ति और योग्यता प्राप्ति के प्रयत्न को छोड़ बैठे, अब उसका परिणाम सामने हैं, सारा देश विद्या आदि गुणों से रहित हो गया।

इसलिए जिस प्रकार से मनुष्य शरीर को ठीक नियमित रूप से गति देने या कार्य संचालनार्थ आत्मा का होना आवश्यक है, उसी प्रकार इस मनुष्य समाज को चलाने के लिए राज्य सभा और उसके अन्तर्गत विद्यासभा का होना अत्यन्त आवश्यक है, जिस प्रकार जीवात्मा शरीर के प्रत्येक अंग को उसकी योग्यतानुसार कार्य पर लगाता है। उसी प्रकार राजा का भी कर्तव्य है कि विद्यासभा द्वारा प्रत्येक व्यक्ति की योग्यता को जानकर उसको उसी प्रकार के काम में लगावे। यद्यपि मनु धर्मशास्त्र में उसके विषय में स्पष्ट आज्ञा है। कि जब विद्यार्थी गुरुकुलों में रहते हुये अपनी विद्या समाप्त कर चुकें तो गुरू उनकी परीक्षा लेकर गायत्री मन्त्र के द्वारा उसके जिस वर्ण को निर्धारित करे वह ही ठीक है, वही अजर और अमर है। विद्यासभा जब योग्यता का परीक्षण करके जिन व्यक्तियों का वर्ण निर्धारित कर दे, उसके बाद राज्यसभा का यह कर्तव्य है कि मनुष्य समाज में इस बात की परीक्षा करे कि विद्यासभा ने जिसको, जिस योग्यता का प्रमाणपत्र दिया है वह व्यक्ति उसके अनुसार आचरण करता है या नहीं, मनुस्मृति अध्याय ८, श्लोक २४ में स्पष्ट लिखा है कि राजा का यह कर्तव्य है कि वह अपनी प्रजा में जाकर इस बात को देखे कि हमारी प्रजा के व्यक्ति अपने-अपने वर्ण के अनुसार आचरण करते हैं या नहीं, क्योंकि राजा इस बात का ध्यान रखें कि यदि मनुष्य समाज में कोई अनाधिकार चेष्टा करेगा तो अनर्थ हो जावेगा। इसीलिए महाभारत के अनुशासन पर्व में भीष्मपितामह ने यह उपदेश किया है कि जो ब्राह्मण दोनों समय संध्या न करे राजा का यह कर्तव्य है कि उससे शूद्र का काम कराये रहा लड़के और लड़कियों की व्यवस्था के सम्बन्ध में ! उक्त विषय में मनुस्मृति अध्याय ७ श्लोक १५२ में लिखा है कि राजा का कर्तव्य है कि लड़के और लड़कियों की व्यवस्था को ठीक प्रकार से करें। अब बतलाइये स्वामी जी ने इससे बढ़कर और अधिक क्या लिख दिया है ? सम्भवतः आपको यह विचार अधिक चिन्तित कर रहा हो कि लड़के और लड़कियों के परिवर्तन में एक का लड़का और एक की लड़की दूसरे परिवार की सदस्य बनकर कैसे निर्वाह कर सकेगी ? किन्तु यह विचार भी निरर्थक है आजकल भी लड़के और लड़कियां एक दूसरे के वंश की सदस्य बनकर जीवन निर्वाह करती हैं। भारतवर्ष में यह सामान्य रीति है कि विवाह के पश्चात् कन्या वर के वंश की सदस्या बनकर रहती है और कोई आपत्ति नहीं होती और बर्मा देश में विवाह के पश्चात् लड़का, लड़की के वंश का सदस्य बनकर रहता है वहाँ भी कोई आपत्तिकारक बात नहीं मानी

जाती इसके अतिरिक्त भी लोग दूसरी जाति और दूसरे वंश के लड़के लड़कियों को गोद लेकर उनका पालन पोषण करते हैं और वह उसी वंश के सदस्य बन जाते हैं और यहां भी लोग सन्तान न होने पर अपनी लड़की के पति को अपने घर का सदस्य बना लेते हैं अब भी इस प्रकार के सैंकड़ों उदाहरण मिलते रहते हैं कि अमुक व्यक्ति ने अपने पुत्र को विपरीत आचरण होने के कारण घर से निकाल दिया और अपनी अचल सम्पत्ति से भी वंचित कर दिया और अमुक ने दूसरी जाति और दूसरे वंश के लड़के को अपना पुत्र स्वीकार कर लिया और अपनी सारी सम्पत्ति उसके नाम करा दी क्योंकि वह योग्य और सेवाभावी था। इसके अतिरिक्त मनुस्मृति अध्याय ६-श्लोक १६६ से १७८ तक में दत्तक पुत्र आदि के विषय में लिखा है उनमें से एक पहले औरष पुत्र को छोड़कर शेष सब ११ प्रकार के इसी प्रकार बताये हैं जिसका सम्बन्ध दूसरे वंश और दूसरी जातियों से है फिर जब वह वंश के सदस्य बनकर हर प्रकार के सम्पत्ति के स्वामी बन सकते हैं और वंश के सारे कार्यों और दायित्वों को निर्वाहते हैं कोई विरोध नहीं उत्पन्न होता तो फिर स्वामी जी के लेख के अनुसार अगर दूसरे वंश के लड़का या लड़की योग्यता के अनुसार दूसरे वंश के सदस्य बनकर रहें तो इसमें किसी प्रकार का कुप्रबन्ध या सेवाभाव की न्यूनता क्यों रहेगी ? और फिर एक और ध्यान देने योग्य बात यह भी है कि ईश्वरीय वाणी वेद में तो ये शिक्षा है कि सारा मनुष्य समाज एक शरीर की भांति समझना चाहिए जिस प्रकार शरीर का प्रत्येक भाग आवश्यक और मूल्यवान है परस्पर दूसरे अंगों का आपस में इतना प्रेम और सम्बन्ध है कि वह एक दूसरे को दूसरा समझते ही नहीं, यदि कोई पदार्थ है तो सारा शरीर उसको अपना ही स्वीकार करता है। ये प्रश्न ही नहीं होता कि ये पदार्थ मुंह का है या पेट का या हाथों का या पांव का ! एक दूसरे की आवश्यकता को हरेक अपनी आवश्यकता अनुभव करता है इसी प्रकार से सारे मनुष्य समाज को भी एक राष्ट्रीय संगठन माना जाये और बच्चों को राष्ट्र की सम्पत्ति समझकर प्रत्येक दूसरे बच्चे को अपना बच्चा समझें और प्रत्येक बच्चा भी राष्ट्र के प्रत्येक स्त्री और पुरुष को राष्ट्र की मां और पिता ही अनुभव करते हुए अपनी माता और पिता स्वीकार करें तो किसी प्रकार की कोई बाधा या कुव्यवस्था उत्पन्न नहीं हो सकती। वर्ण व्यवस्था के मौलिक सिद्धान्त को वर्णन करने वाला यह वेद मन्त्र इतना भावपूर्ण है कि वर्ण व्यवस्था के सम्बन्ध में सम्पूर्ण विवरण इसके अन्तर्गत आ जाता है और स्वामी जी का सम्पूर्ण लेख इसी वेद मन्त्र की सीमा में आकर वेदानुकूल प्रमाणित होता है ओर फिर मेरे पौराणिक भाइयों को तो इस परिवर्तन से घबराने का कोई कारण ही नहीं है।

देखिये ब्रह्मवैवर्त पुराण कृष्णजन्म खण्ड ४ अध्याय ७ श्लोक ३४ से ३८ तक में कहा गया है कि जब कंस की तरफ से देवकी के गर्भ का परीक्षण होने लगा तो छः गर्भों से छः लड़के पैदा हुए जिनको कंस ने लेकर उन्हें सार दिया तब माया ने देवकी के सातवें गर्भ को देवकी के पेट से वासुदेव की दूसरी स्त्री रोहिणी के पेट में परिवर्तित कर दिया और और चौकीदारों में यह प्रसिद्ध हो गया कि देवकी का सातवां गर्भपात हो गया है रोहिणी के इस गर्भ से कृष्ण के भाई बलरामजी उत्पन्न हुए। और पौराणिकों के १६ कला सम्पूर्ण कृष्ण भगवान का परिवर्तन नन्द की लड़की से किया गया और कृष्णजो अन्त समय तक यशोदा और नन्द के पुत्र कहलाते हैं और उनकी सेवा सुश्रुषा अन्त समय तक करते रहे कभी कोई आपत्ति अन्त समय तक नहीं हुई और नन्द की लड़की का पालन पोषण वासुदेव के घर पर ही हुआ और अन्त में वासुदेव ने ही उसकी शादी दुर्वाषा ऋषि के साथ की और वह वासुदेव और देवकी को माता-पिता अन्त समय तक मानती रही और सेवा सुश्रुषा करती रही इसमें कभी किसी को कोई आपत्ति नहीं हुई। यह बात ब्रह्मवैवर्त पुराण कृष्णजन्म खण्ड ४ अध्याय ७ में श्लोक १३० से १३२ तक स्पष्ट लिखी है।

अब बोलिये पण्डितजी महाराज! स्वामी जी के लेख पर आपको क्या आपत्ति है? अन्त में इतना कहना और पर्याप्त होगा कि प्राचीन काल में जब सब वर्णों के लड़के गुरु के वंश में गुरु के घर के सदस्य बन कर गुरु को पिता और गुरु की पत्नी को माता समझते हुए २५-३६ और ४८ वर्ष व्यतीत करते थे और उनकी पितरों के समान सेवा सुश्रुषा करते थे और किसी प्रकार का विरोध या आपत्ति उत्पन्न नहीं होती थी तो इस प्रकार की शिक्षा को प्राप्त करने वाले सारे मनुष्य समाज को एक शरीर की भांति एक समझने वाले थे सारी जाति और वंश को मां-बाप समझने वाले सभी जातियों से भिक्षान्न प्राप्त कर खाने वाले ब्रह्मचारियों को परीक्षण के पश्चात् उनकी योग्यता के अनुसार कहीं भी और किसी परिवार में भेजने से किसी प्रकार की विरोधता या आपत्ति का प्रश्न आना ही असम्भव है इसलिये स्वामी दयानन्द का सिद्धान्त उपरोक्त विवरण सहित वेद के अनुसार है।

सनातन धर्मियों की ओर से प्रथम प्रश्न—

स्वामी जी ने सत्यार्थ प्रकाश में जो देव यज्ञ के "**सानुगाय इन्द्राय नमः**" इत्यादि मन्त्र चौथे समुल्लास में दिये है ये कौन से वेद के हैं ?

श्री पण्डित लोकनाथ जी तर्कवाचस्पति की ओर से उत्तर—

इस प्रश्न में सबसे पहली भूल या भ्रमात्मक बात यह है कि जिनको मन्त्र के नाम से पुकारा जाये वे वेद में ही होते हैं यह बात त्रुटिपूर्ण है संस्कृत मन्त्र एक काव्य के प्रकार का नाम है इस प्रकार काव्य के रूप में जो भी पद हो उसको मन्त्र कहा जाता है चारों वेदों में सब मन्त्र ही हैं। यह ठीक है इसके अतिरिक्त शतपथ आदि ग्रन्थों में और उपनिषदों और ग्रह सूत्रों में भी मन्त्र हैं। ये आवश्यक नहीं कि जिसको मन्त्र कहा जाये वह वेदों के अन्तर्गत ही हो यदि अब भी कोई ऋषि या विद्वान् संस्कृत भाषा में कोई काव्य या पद बनाये वह भी मन्त्र कहा जा सकता है अब प्रश्न यह है स्वामी जी ने जहाँ "**सानुगाय इन्द्राय नमः**" आदि बलि वैश्व देव यज्ञ के मन्त्र लिखे हैं क्या उनके नीचे विवरण के रूप में लिखा है कि यह वेद के मन्त्र हैं? अगर पण्डित जी सत्यार्थप्रकाश को आँखें खोलकर पढ़ते तो उन्हें ज्ञात होता कि सत्यार्थप्रकाश में इन मन्त्रों के नीचे यह कहीं नहीं लिखा है कि यह वेद के मन्त्र हैं। भला जब स्वामी जी ने उनको वेद का मन्त्र लिखा ही नहीं तो यह प्रश्न करना कि यह मन्त्र वेद में दिखाओ ? क्या अर्थ रखता है। हाँ अगर स्वामी दयानन्द जी ने उनको वेद का मन्त्र लिखा होता और वह वेद में न मिलते तो स्वामी जी का वास्तव में कोई अपराध हो जाता और फिर उस पर भी आर्य समाज या स्वामी जी का यह दावा या पक्ष है कि जो कुछ सत्यार्थ प्रकाश में प्रमाण लिखे हैं वह सब अक्षरक्षः वेद में विद्यमान हैं। कदापि नहीं क्योंकि सत्यार्थ प्रकाश में तो मनुस्मृति, रामायण, उपनिषद, ब्राह्मण ग्रन्थ, महाभारत, बाइबिल, कुरान, गुरू ग्रन्थ साहिब इत्यादि-इत्यादि अनेक ग्रन्थों के प्रमाण दिये गये हैं फिर भला आर्य समाज यह पक्ष या इस प्रकार का दावा कैसे कर सकता है ? यह सब प्रमाण अक्षरशः वेद में विद्यमान है ! हाँ आर्य समाज और स्वामी जी का यह दावा है कि सब वेद के अनुसार या विरुद्ध है। प्रश्न करने वाले यह प्रश्न कर सकते हैं कि सत्यार्थ प्रकाश में वर्णित अमुक सिद्धान्त को वेद के अनुसार सिद्ध करें यदि कोई सज्जन भविष्य में खड़े होकर मनुस्मृति, रामायण, बाइबिल, कुरान, गुरु ग्रन्थ साहब इत्यादि के किसी प्रमाण की ओर संकेत करके प्रश्न करें कि वेद में दिखाओ तो इससे बढ़कर भ्रमात्मक और धोखे की बात क्या हो सकती है ? हमें इसका खूब अनुभव है कि सनातन धर्म के पण्डित किसी सिद्धान्त पर तो शास्त्रार्थ करते नहीं बल्कि स्थान-स्थान पर गीता व भ्रमित करने के लिये अशिष्टता पर उतर आते हैं कि सत्यार्थ प्रकाश में से कोई पाठ पढ़कर सुनाओ तथा ये ही प्रश्न करते हैं कि यह वेद में लिखा हुआ दिखाओ इस प्रश्न के करने में भी यही अशिष्टता प्रकट की है अन्यथा पण्डित जी का यह कर्तव्य था कि वह यह बात सिद्ध करते कि स्वामी दयानन्द जी ने जो बलि वैश्य देवयज्ञ के विषय में लिखा है वह अमुक वेद के अमुक मन्त्र के विरुद्ध है इसलिये स्वामी दयानन्द कृत ग्रन्थ वेद के विरुद्ध हैं किन्तु

पण्डित जी ने तो ऐसा न करते हुए सनातन धर्मी पण्डितों की अशिष्टता प्रदर्शित करते हुये अपनी योग्यता का परिचय दिया है हमारा यह कर्तव्य है कि स्वामी जी के सिद्धान्त को वेदानुकूल सिद्ध करके प्रमाणित करें। स्वामी जी ने सत्यार्थ प्रकाश में लिखा है कि प्रत्येक ग्रहस्थी का यह आवश्यक कर्तव्य है कि वह "**पांच महायज्ञों**" को नित्य करें। पहला "**ब्रह्मयज्ञ**"—अर्थात् दोनों समय की संध्या का करना और वेदों का स्वाध्याय करना। दूसरा "**देवयज्ञ**"—दोनों समय हवन (यज्ञ) करना। तीसरा "**पितृयज्ञ**"—अर्थात् जिवित पिता माता आदि की सेवा करना। चौथा "**बलिवैश्य देवयज्ञ**"—अर्थात् अपने घर में बने हुये भोजन में से कुछ भाग निकालकर दूसरे प्राणियों (पशु-पक्षियों) को देना। पांचवा "**अतिथि यज्ञ**"—अर्थात् अकस्मात आये हुये साधु संन्यासी या अतिथि की सेवा करना यह "**पांच महायज्ञ**" हैं जिनको नित्य करना प्रत्येक गृहस्थी का परम् धर्म हैं। उनमें ये चौथा "**बलिवैश्य देवयज्ञ**" है जिसके सम्बन्ध में पण्डित जी ने आपत्ति उठायी है प्रथम तो यह सनातन धर्म और आर्य समाज का सम्मिलित सिद्धान्त है इस पर प्रश्न करने का अर्थ यह है कि पण्डित जी को अपने सिद्धान्त पर स्वयं ही सन्देह है। अन्यथा जब सनातन धर्म भी उसको वेद के अनुसार मानता है तो फिर आर्य समाज से प्रश्न करने का क्या अर्थ है? किन्तु इस बात पर ध्यान न देते हुए अपने कर्तव्य का पालन करना चाहिए। देखिये—बलिवैश्य देवयज्ञ का विधान अथर्ववेद काण्ड १९ सूक्त ५५ मन्त्र ७ में स्पष्ट रूप से वर्णन है कि—"**हे परमेश्वर हम आपकी आज्ञा का पालन करते हुए प्रतिदिन आप के द्वारा उत्पन्न हुए प्राणियों से कहीं शत्रुता न करें और हम लोग उनका उपकार पके हुए अन्न से करें**" इस वेद मंत्र में स्पष्ट रूप से बलिवैश्य देवयज्ञ में मौलिक सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है इससे यह सिद्ध होता है बलिवैश्य देवयज्ञ का करना वेद की आज्ञा अनुसार है। अब रही यह बात जो स्वामी जी ने बलिवैश्य देवयज्ञ की जो विधि वर्णित की है और वह वेद मन्त्र कहाँ से लिये गये हैं तो उनके सम्बन्ध में हम यह मानते हैं यदि यह मन्त्र स्वामी दयानन्द जी के अपने भी बनाये हुये हों तो भी इसमें कोई आपत्ति की बात नहीं है क्योंकि वह ऋषि और संस्कृत भाषा के विद्वान् थे उनको मन्त्रों के बनाने का अधिकार था। उनके बनाये हुए मन्त्रों को भी कोई व्यक्ति मिथ्या नहीं कह सकता जब तक की वह यह सिद्ध न करें कि स्वामी दयानन्द के बनाये हुये मन्त्र वेद के मन्त्रों के विरुद्ध है किन्तु यह मन्त्र तो स्वामी जी के बनाये हुये भी नहीं हैं देखिये मनुस्मृति अध्याय ३ श्लोक ७४ से ९३ तक में बलिवैश्य देवयज्ञ का विवरण और उसकी व्याख्या की गई है और जितने भी मन्त्र स्वामी जी ने अपने ग्रन्थ में लिखे हैं वह सारे के सारे उद्धरण के रूप में दिये गये हैं मनुस्मृति के टीकाकार कुल्लूक भट्ट ने भी स्वामी जी के लिखे हुए मन्त्रों को ही वर्णित किया है इस स्थिति में बलिवैश्य देवयज्ञ का मौलिक सिद्धान्त वेद के अनुसार है और इसके करने की विधि और स्वामी दयानन्द जी के उल्लखित मन्त्रों के विवरण मनुस्मृति में विद्यमान हैं और इस विधि के विरुद्ध कोई वेद का मन्त्र पण्डित जी ने प्रस्तुत करके वेद के विरुद्ध सिद्ध भी नहीं किया है इससे स्वामी दयानन्द जी महाराज का लेख पूर्णरूप से वेद के अनुसार है।

सनातन धर्मियों की ओर से प्रश्न २—स्वामी जी ने सत्यार्थ प्रकाश में लिखा है कि एक विधवा स्त्री दो अपने लिए और दो-दो दूसरे चार पुरुषों के लिए अर्थात् कुल १० संतानें उत्पन्न कर सकती है बताओ यह कौन से वेद की आज्ञा है?

श्री पण्डित लोकनाथ जी तर्क वाचस्पति की ओर से उत्तर—यह प्रश्न भी मौलिक सिद्धान्त पर नहीं किया गया है यह प्रश्न भी मौलिक सिद्धान्त के विवरण पर ही आधारित है आर्य समाज का मौलिक सिद्धान्त यह है कि स्त्री को भी दूसरे पति के करने का अधिकार है। अब यदि यह प्रश्न करने वाले से पूछें कि आपको एक विधवा स्त्री को चार पुरुषों के लिए दो-दो और अपने लिए दो कुल दस सन्तान करने पर आपत्ति है तो क्या आप इस बात को स्वीकार करते हो कि विधवा स्त्री द्वितीय पति को प्राप्त करके एक ही से दो चार या दस सन्तानें उत्पन्न कर ले?

तो कानों पर हाथ रखकर कहेंगे कि हम तो विधवा स्त्री के लिए दूसरे पति का अधिकार भी स्वीकार नहीं करते इस प्रकार कहा जा सकता है कि जब तुम किसी स्त्री के लिए द्वितीय वर का अधिकार भी स्वीकार नहीं करते तो फिर तुमको इसके विवरण पर आपत्ति करने का क्या अधिकार या आवश्यकता है ? विवरण पर तो तभी आपत्ति की जा सकती है जबकि मौलिक सिद्धान्त को स्वीकार कर लिया जावे । आपको मौलिक सिद्धान्त के ऊपर ही चर्चा करनी चाहिए क्योंकि मौलिक सिद्धान्त के सत्य या असत्य सिद्ध हो जाने से विवरण स्वयं ही सत्य या असत्य सिद्ध हो जायेगा किन्तु मित्र लोगों को इस बुद्धि की बात से क्या सम्बन्ध ! उनका काम तो बस उल्टी सीधी बातें कहकर आर्य समाज के सम्बन्ध में भ्रान्ति फैलाना ही है हम उनके इस अनरगल प्रश्न पर चर्चा नहीं करते हमारा तो यह कर्तव्य है कि हम सिद्धान्त के अनुसार पहले मौलिक प्रश्न पर विचार विनिमय करें देखिए यह आर्य समाज का सिद्धान्त हैं स्त्री को द्वितीय पति का अधिकार है आर्य समाज का यह पक्ष वेद के अनुसार है और वेदों में इस मौलिक सिद्धान्त को सिद्ध करने वाले अनेक मन्त्र विद्यमान हैं। अथर्ववेद काण्ड ९ सूक्त ५ मन्त्र २७-२८ में स्त्री को द्वितीय पति की आज्ञा दी गयी है जो स्त्री पहले पति को प्राप्त करके उसके पश्चात् दूसरे पति को प्राप्त होती है वह दोनों उस परमात्मा की उपासना करके वियोग को प्राप्त नहीं होते (मन्त्र २७) अब "पुनर्भव" स्त्री द्वितीय पति के साथ समान सुख वाली होती है जो उस परमेश्वर की उपासना करती है संस्कृत के अमरकोष आदि ग्रंथों में स्पष्ट रूप से लिखा है कि "पुनर्भव" उस स्त्री का नाम है जिसका विवाह दूसरी बार किया गया हो और फिर ऋग्वेद मण्डल १० सूक्त ४० मन्त्र २ में लिखा है कि विवाहित स्त्री और पुरुषों से इस प्रकार पूछा जाना चाहिए कि तुम दोनों दम्पत्तियों ने दिन और रात्रि में कहाँ-कहाँ निवास किया था ? अन्न, वस्त्र और धन को कहां से प्राप्त किया था तुम्हारा निवास स्थान कहां है ? जैसे विधवा स्त्री द्वितीय वर के साथ सन्तान उत्पन्न करती है वैसे ही तुम भी करो इस वेद मन्त्र में विधवा स्त्री और द्वितीय वर द्वारा संतान पैदा करने की चर्चा है निरुक्त अध्याय ३ खण्ड १५ में लिखा है कि द्वितीय वर से अभिप्राय: विधवा-स्त्री का दूसरा पति होता है । इस पर सनातन धर्म इण्टर कालेज लाहौर के मुख्य अध्यापक "पण्डित शिवदत्त जी शास्त्री महामहोपाध्याय" व्यवस्था देते हैं कि विधवा चार तरह की होती हैं प्रथम वह जो पति की मृत्यु के पश्चात् ब्रह्मचर्य धारण करके अपने जीवन को व्यतीत करती है। दूसरे प्रकार की विधवा वह है जो ब्रह्मचर्य तो धारण नहीं कर सकतीं बल्कि पति के साथ सती हो जाती है और तीसरे प्रकार की वह है जो न तो ब्रह्मचारिणी रह सकती है और न ही पति के साथ सती हो सकती है बल्कि विधि अनुसार दूसरे पति को स्वीकार कर लेती है और चौथे प्रकार की वह है जो न ब्रह्मचारिणी हो न सती होती हो न दूसरे पति को स्वीकार करती हो प्रत्युत् व्यभिचारी, दुराचारी बनके जीवन व्यतीत करती हो इन चार तरह की विधवाओं में से पहले तीन तरह की विधवाओं का आचरण और व्यवहार वेद के अनुसार है और चौथे दर्जे की विधवा का व्यवहार वेद के विरुद्ध और घोर पाप है। यह ऊपर के मन्त्र का वास्तविक उद्देश्य या सार है जो एक सनातनधर्मी पण्डित की राय पर आधारित है। अब थोड़े ध्यान देने की आवश्यकता है क्योंकि ब्रह्मचारिणी होने में किसी को कोई आपत्ति नहीं हो सकती, विधवा तो क्या यदि कोई क्वांरी लड़की भी कहे मैं बिना विवाह कराये ब्रह्मचारिणी रहना चाहती हूं यह अच्छी बात है। किन्तु ब्रह्मचर्य धारण करना कितना कठिन है इस पर ध्यान देने की आवश्यकता है। प्राचीन काल में युवावस्था में विवाह होने के कारण विधवा कम होती थीं और जो विधवा भी होती थीं तो उनके सन्तानें भी होती थी उनका मन सन्तानों के पालन-पोषण में लगा रहता था और जो निःसन्तान विधवा होती थीं उनका जीवन बड़ी तपस्या का होता था भोजन वस्त्र आदि अत्यन्त साधारण प्रयोग करती थी परिवार और निकट के लोग उसे देवी समझकर सम्मान देते थे प्रत्येक व्यक्ति उसके सतीत्व की रक्षा करना अपना धर्म और कर्तव्य समझता था उपरोक्त कारणों से ब्रह्मचर्य धारण करना सरलता से हो जाता था किन्तु आजकल के समय में प्रथम तो छोटी आयु का विवाह, बुढ़ापे के विवाह, अनमेल विवाह के कारण विधवाएं बड़ी भारी संख्या

में होती हैं। और उनमें से प्रायः निःसन्तान अधिक होती हैं फिर उनके खान-पान, रहन-सहन में भी सात्विकता दृष्टिगोचर नहीं होती, आस-पास के निवास करने वालों से सतीत्व संरक्षण का भय बना रहता है और उनके पारिवारिक एवं निकटस्थ व्यक्तियों के शादी विवाह आदि समारोहों में सम्मिलित होना बुरा माना जाता है फिर अगर वह ब्रह्मचारी रह सकें तो कैसे ? अब दूसरा प्रकार रह जाता है सती होने का ? जो इस रूप में तो स्वीकार की जा सकती है कि स्त्री को जितना स्नेह हो कि वह पति की मृत्यु के पश्चात् उसके वियोग में घुल-घुल के मर जाए या उसी समय पति की मृत्यु के साथ प्राणों को छोड़ दे किन्तु लोगों ने तो इस रिवाज या प्रथा के अन्तर्गत छोटी आयु की विधवा लड़की को भी बलात् आग में झोंकना प्रारम्भ कर दिया था जिसके कारण सरकार ने विवश होकर इस प्रकार की प्रथा को अवैध और दण्डनीय अपराध माना है इस प्रकार ब्रह्मचारिणी रहना वैसे कठिन और सती का होना कानूनन अपराध ! अब दो ही मार्ग शेष रह जाते हैं तराजू के दो पलड़े होते हैं एक पलड़े पर दूसरा पति स्वीकार करना दूसरे पलड़े पर व्यभिचारी जीवन व्यतीत करने पर विवश होना या ईसाई मुसलमानों के घरों को आबाद करके गऊ घातक सन्तान पैदा करना अब इन दोनों में से जो पसन्द हो हमारे सनातनधर्मी भाई स्वीकार करें। मैं समझता हूं कोई भी बुद्धिमान व्यक्ति यह नहीं मान सकता कि दूसरा पति स्वीकार करने की अपेक्षा वह व्यभिचारी और दुराचारी बनकर नारकीय जीवन व्यतीत करें। प्रत्येक बुद्धिमान व्यक्ति व्यभिचार की अपेक्षा विधवा का द्वितीय वर स्वीकार करना हजार दर्जे उचित ही कहेगा।

वेदों में इस प्रकार के अनेक प्रमाण हैं। इससे सिद्ध होता है कि स्त्री को दूसरे पति या द्वितीय वर का अधिकार वेद के अनुसार है स्मृतियों और शास्त्रों में धर्म ३ प्रकार का लिखा है (1) उच्च श्रेणी का धर्म, (2) सामान्य धर्म, (3) आपत्तकालीन धर्म, उपरोक्त विषय में स्त्री के लिए ब्रह्मचारिणी रहना उच्च और आदर्श धर्म है और दूसरे पति का स्वीकार करना आपत्धर्म वर्णन किया है। दूसरे पति को स्वीकार करने वाली भी दो प्रकार की श्रेणियां होती हैं। एक वह जिनका विवाह हो चुका और वह विधवा हो गयी किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं हुआ दूसरे वह जिनका विवाह के पश्चात् सम्बन्ध भी रहा और फिर विधवा हो गई। आर्य समाज का सिद्धान्त है कि जिस स्त्री का विवाह मात्र ही हुआ है उसका दूसरे पति के साथ विधि अनुसार विवाह हो जाना चाहिए इसका नाम पुर्नविवाह है जिसके लिए स्वामी जी ने मनुस्मृति के अध्याय ६/श्लोक १७६ का प्रमाण दिया है इसका अर्थ यह है कि जो स्त्री पति ने छोड़ दी हो या विधवा हो गयी हो शारीरिक सम्बन्ध न हुआ हो तो चाहे वह पति के घर में रह भी आयी हो तो भी पुर्नविवाह हो सकता है किन्तु वह व्यक्ति भी विधुर होना चाहिए। इस विषय में अनेक स्मृतियों के प्रमाण मिलते हैं। और जिसका सम्बन्ध मात्र गर्भाधान संस्कार तक ही सीमित है इसके पश्चात् उनका इससे कोई सम्बन्ध नहीं रहता। यही नियोग है और इस प्रथा को भी इष्ट मित्रों और सम्बन्धियों की सम्मति से बिरादरी के व्यक्तियों द्वारा विवाह की भांति ही उन्हें सूचना देकर पूर्ण की जाती है इसके अतिरिक्त नियोग भी दो प्रकार का होता है।

1. पति की मृत्यु के उपरान्त स्त्री नियोग करायें।

2. दूसरे वह पति के जीवित होते हुए किन्तु उसके रोगी होने या सन्तान उत्पत्ति में असमर्थ होने की स्थिति में या विदेश गया होने, सन्यासी या पतित या खो जाने की स्थिति में स्त्री नियोग करें। इन दो प्रकार के नियोग में भी दो भेद हैं। एक वह जो वंश के अस्तित्व को रखने के लिए सन्तान की इच्छा से किया जाये। दूसरे प्रकार का वासनात्मक नियोग, जो संयम से न रह सकते हों उनके लिए जिससे दुष्ट चरित्र न हो और विधिवत आज्ञा लेकर नियोग द्वारा सन्तान उत्पन्न करें इस प्रकार नियोग के चार प्रकार हैं—

1. पति की मृत्यु के पश्चात् वंश की रक्षा के लिए।

2. यदि ब्रह्मचर्य पूर्वक रहने की स्थिति में न हों।

3. पति के जीते हुए सन्तान की इच्छा से हों।

4. पति के जीते हुए ब्रह्मचर्य पूर्वक वाली स्थिति में न रहती हो।

1. पति के मरने पर संतान की इच्छा से नियोग की आज्ञा मनुस्मृति अध्याय-९ श्लोक ६९ में इस प्रकार दी गयी है कि स्त्री संतान न होने की अवस्था में परिवार के किसी व्यक्ति द्वारा संतान उत्पन्न करें फिर मनुस्मृति अध्याय-९ श्लोक १२० में लिखा है अगर छोटा भाई बड़े भाई की स्त्री द्वारा संतान पैंदा करे तो उसकी सारी संपत्ति में दोनों का बराबर का भाग होगा फिर मनुस्मृति अध्याय-९ श्लोक १४५ में लिखा है कि नियोग से उत्पन्न सन्तान उसी प्रकार से सम्पत्ति के भाग को प्राप्त करे जैसे औरस पुत्र प्राप्त करता है या व्याहता पति से उत्पन्न पुत्र को ! क्योंकि वह धर्मानुसार उत्पन्न होने के कारण पहले ही पति का पुत्र माना जायेगा फिर मनुस्मृति अध्याय ९ श्लोक १४६ में लिखा है जो कोई अपने भाई की मृत्यु के पश्चात् उसकी सम्पत्ति और उसकी स्त्री पर अधिकार करे वह मरे हुए भाई के लिए उसकी स्त्री द्वारा सन्तान उत्पन्न करके उस सन्तान को अपने भाई की सारी सम्पत्ति सौंप दे। मनुस्मृति की इसी आज्ञा के आधार पर महर्षि व्यास जी ने बिचित्रवीर्य की दो स्त्रियों अम्बिका और अम्बालिका से नियोग किया था। अम्बिका से धृतराष्ट्र की उत्पत्ति हुई और अम्बालिका नाम की स्त्री से पाण्डु और दासी से विदुर को उत्पन्न किया इसका वर्णन महाभारत के आदि पर्व अध्याय १०२ से १०६ तक में किया गया है ये नियोग हूबहू अपने निर्धारित नियमों के अन्तर्गत किये गये थे यही नियम स्वामी दयानन्द जी ने सत्यार्थ प्रकाश में लिखा था।

२. पति के मरने के बाद यदि स्त्री के सन्तान भी हो किन्तु युवावस्था के कारण अपने को संयम में न रख सके ऐसी दशा में नियोग के सिवाय इसका कोई उपाय नहीं सीधा नियोग करके दूसरे पुरुष के लिए सन्तान उत्पन्न करे। इसका वर्णन मनुस्मृति अध्याय ९ श्लोक १६२ में आता है। यदि ओरस और क्षेत्रज दोनों एक ही सम्पत्ति के अधिकारी बन जावे तो जो जिसके पिता की सम्पत्ति है वह उसी पर अधिकार करे एक दूसरे के पिता की सम्पत्ति पर नहीं इस पर कुल्लूक भट्ट ने टीका करते हुए लिखा है कि एक स्त्री के अपने पहले व्याहता पति से पुत्र विद्यमान है और वह स्त्री दूसरे पुरुष से नियोग द्वारा संतान पैंदा करती है ऐसी अवस्था में दोनों संतानें एक ही सम्पत्ति के अधिकारी बनते हैं किन्तु ऐसी स्थिति में यही निर्णय उचित हैं कि हरेक पुत्र अपने-अपने पिता की संपत्ति का उत्तराधिकारी बने इस मनुस्मृति की आज्ञा के अनुसार जो स्त्री संतान होने के पश्चात् संयम से न रह सके वह नियोग द्वारा संतान उत्पन्न कर सकती है क्योंकि ऊपर के श्लोक में ये दो लड़कों का एक ही सम्पत्ति का उत्तराधिकारी होना लिखा गया है ये ऐसी स्थिति में हो सकता है जब किसी स्त्री के एक लड़का अपने विवाहिता पति में विद्यमान हो और दूसरा नियोग द्वारा पैंदा करें और अन्य किसी सूरत में भी दो लड़के एक संपत्ति के उत्तराधिकारी नहीं बन सकते इससे स्पष्ट है कि वह स्त्री एक लड़का पहले पति से होने के बाद दूसरे से नियोग करती है तो उसी अवस्था में जबकि वह संयम से न रह सके अन्यथा संतान तो उसके पूर्व पति से है ही इस प्रकार वह स्त्री पहले व्याहता पति से एक संतान होते हुए उसकी मृत्यु के उपरान्त नियोग करके उत्पन्न करती है वह अपने को नियंत्रित न रखके ऐसा करती है ऐसा समझना चाहिए मनु की आज्ञा के अनुसार ही बाली की स्त्री "तारा" ने बाली के मरने के उपरांत सुग्रीव से नियोग किया था यद्यपि बाली से उसके एक पुत्र जिसका नाम "अंगद" था विद्यमान था

किन्तु वह नियन्त्रण न रख सकने के कारण सुग्रीव से नियोग किया अन्यथा अंगद की उपस्थिति में उसको संतान की आवश्यकता ही क्या थी ? इसका वर्णन वाल्मीकि रामायण किष्किन्धा काण्ड अध्याय ३३ तथा ३४ में वर्णित है।

३. पति की जीवित अवस्था में संतान की इच्छा से नियोग करने की चर्चा मनुस्मृति अध्याय ९ श्लोक १६७ में आती है यदि कोई स्त्री पति की मृत्यु के पश्चात् या पति के रोगी या अन्य असमर्थता के कारण, ऐसी स्थिति में धर्मानुसार नियोग करके जिस संतान को पैदा करती है उसका नाम क्षेत्रज पुत्र है मनु की इस आज्ञानुसार कुन्ती और माद्री ने राजा पाण्डु के अशक्य और असमर्थ होने की स्थिति में धर्मानुसार धर्म, वायु, इन्द्र और अश्वनी कुमारों से नियोग करके युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव को उत्पन्न किया था इसकी चर्चा भी महाभारत आदि पर्व के अध्याय १२३ तथा १२४ में उल्लिखित की गई हैं।

४. पति के जीते हुए और संयम न रखने की स्थिति में नियोग का विधान मनुस्मृति अध्याय ९ श्लोक ७६ में लिखा है कि यदि पति किसी धर्म कार्य के लिए विदेश गया हो तो ८ वर्ष तक उसकी प्रतीक्षा करें और यदि पति विद्या अध्ययन और प्रसिद्धि की इच्छा से गया हो तो ६ वर्ष तक प्रतीक्षा करे और पति किसी और कामना की जीविका को गया हो तो तीन वर्ष तक उसकी प्रतीक्षा करें इसके पश्चात् वह नियोग कर सकती है अब इस श्लोक पर ध्यान देने की आवश्यकता है इसका तात्पर्य ये है कि यदि पति परदेश गया हुआ हो और कई वर्षों तक उसका कोई पता न लग सके और स्त्री संयम न रख सके तो ऐसी अवस्था में स्त्री को नियोग करके संतान उत्पन्न कर लेनी चाहिए। स्वामी जी ने भी इसी आधार पर लिखा है वास्तविकता तो ये है ऐसी स्थिति में कोई और उपाय भी तो नहीं हो सकता यदि नियोग की आज्ञा न दी जाय तो व्यभिचार और दुराचार को प्रोत्साहन मिलेगा मनुस्मृति की इस आज्ञा के अनुसार राजा नल के परदेश चले जाने पर उसकी पत्नी दमयन्ती ने अपने माता पिता से अपना फिर से स्वयंवर करने की आज्ञा ली थी यद्यपि दमयन्ती पर राजा नल से २ बच्चे भी विद्यमान थे यद्यपि दमयन्ती ने अपना स्वयंवर नल को तलाश करने के लिए ये उपाय किया था किन्तु ये बात नितान्त गुप्त रखी गई थी सामान्य रूप से यही किया गया था कि दमयन्ती अपना पुनः स्वयंवर करना चाहती है और निकट क्षेत्र के राजा महाराजा जो एकत्रित हुए थे वह दमयन्ती के साथ विवाह की इच्छा से ही एकत्रित हुए थे इससे ये तो सिद्ध होता है कि उस समय में लोग ऐसी स्थिति में दूसरे पति की प्राप्ति को उचित स्वीकार करते थे अब इस विषय पर अधिक लिखने की आवश्यकता नहीं कि लोग इस बात को अच्छी तरह जानते थे कि दमयन्ती द्वारा दूसरे पति की उपदेश सन्तान की प्राप्ति नहीं प्रत्युत नल के विदेश चले जाने या गुम हो जाने की स्थिति से दमयन्ती अपने आपको संयम में नहीं रख सकती थी इसलिए वह दूसरे पति को ग्रहण करना चाहती है इसका विवरण महाभारत बनपर्व अध्याय ६६ से ७७ में लिखा है।

इस संदर्भ में ही स्वामी जी से प्रश्न किया गया है जब एक स्त्री के एक पुरुष और एक पुरुष के एक स्त्री है ऐसी स्थिति में यदि पुरुष अशक्य और असमर्थ अवस्था में योग्य न हों और स्त्री संयम न रख सके अथवा स्त्री गर्भवती हो तो क्या किया जाय ? स्वामी जी ने उत्तर दिया है—**"ऐसी अवस्था में उनके लिए योग्य है कि नियोग करना चाहिए"** इस प्रश्न में जो प्रथम अवस्था लिखी है यदि पुरुष ला इलाज रोगी है और स्त्री संयम न रख सके। ये प्रश्न तो मनु जी के सामने आ चुका है और अध्याय ९ श्लोक ६७ में इसका उपाय नियोग ही लिखा है किन्तु इस प्रश्न में जो दूसरा पक्ष लिखा गया है यदि स्त्री गर्भवती हो पुरुष संयम से न रह सकता हो तो ऐसी स्थिति में पुरुष क्या करें ? ये प्रश्न स्वामी जी से पहले किसी के सामने नहीं आया और न ही किसी ने इसका स्पष्ट रूप से उत्तर दिया है स्वामी जी इस बात को जानते थे कि गर्भावस्था में असंयम पाप और संतान के लिए हानिकारक

बताया है इसलिए स्वामी जी ने एक स्थान पर ही नहीं बल्कि अनेक स्थानों पर लिखा है कि गर्भ स्थित होने के पश्चात् पुरुष, स्त्री के साथ कम से कम १ वर्ष तक विषय भोग न करे ऐसी स्थिति में सिवाय नियोग के अन्य कोई उपाय उसकी चरित्रहीनता की दृष्टि से नहीं भाता ऐसी अवस्था में पुरुष को नियोग की आज्ञा नहीं दी जायेगी तो वह दुराचार की ओर प्रोत्साहित होगा इसलिए स्वामी जी ने इसका उपाय नियोग ही बताया है अन्य मजहब वाले लोगों ने भी इसका उपाय नियोग के अतिरिक्त और कुछ नहीं बताया अब केवल प्रश्न यह शेष रह जाता है कि-स्त्री और पुरुष नियोग करके कितनी-कितनी संतानें पैदा कर सकते हैं ? तो इसके विषय में ऋग्वेद, मण्डल १० सूत्र ८५ मंत्र ४५ में प्रत्येक स्त्री पुरुष अधिक से अधिक १० संतान तक उत्पन्न करने की आज्ञा दी है और अथर्ववेद काण्ड ५ सूत्र १७ में भी प्रत्येक स्त्री को ११ तक पति के लिए और प्रत्येक पुरुष को ११ संतानें स्त्रियों के लिए उनके साथ नियोग करने की आज्ञा दी गई है और मनुस्मृति के अध्याय ९ श्लोक ६१ में आदेश है कि एक नियोग की प्रथा के अनुसार अधिक से अधिक दो पुत्र उत्पन्न करने की आज्ञा है। और प्रत्येक पुरुष और स्त्री को भी अपने लिए २ संतानें नियोग द्वारा उत्पन्न करने की आज्ञा है ऐसी स्थिति में यदि कोई पुरुष वेद की आज्ञानुसार १० संतानें उत्पन्न करना चाहे तो उसको पांच स्त्रियों के साथ नियोग करना पड़ेगा क्योंकि प्रत्येक की विधि में दो से अधिक संतान उत्पन्न करने की आज्ञा नहीं है। और १० संतानों में से दो अपने लिए उत्पन्न करेगा और ८ संतानें वह दूसरी ४ स्त्रियों के लिए उत्पन्न करेगा क्योंकि नियोग द्वारा प्रत्येक को अपने लिए दो संतानें ही उत्पन्न करने की आज्ञा शास्त्रोक्त हैं। इसी प्रकार यदि कोई स्त्री वेद की आज्ञानुसार दस संतानें उत्पन्न करना चाहे तो उसको ५ पुरुषों से १० संतानें उत्पन्न करनी पड़ेंगी। और उनमें से दो-दो वह अपने लिए पैदा कर सकेगी और ८ संतानें वह अन्य ४ पुरुषों के लिए उत्पन्न कर सकेगी इसीलिए स्वामी जी ने जो लिखा है कि १ विधवा दो अपने लिए और दो-दो अन्य ४ पुरुषों के लिए कुल मिलाकर १० संतानें उत्पन्न कर सकती है।

यह वेद और शास्त्रों के अनुकूल ही है। इस वेद की आज्ञा के अनुसार ही कितनी स्त्रियों ने ३ विविध पुरुषों द्वारा ३ संतानें उत्पन्न की। प्रथम-धर्म नामक पुरुष से नियोग कर युधिष्ठर उत्पन्न किए और पुन: वायु नामक पुरुष से नियोग कर भीम और तीसरे नियोग द्वारा जो इन्द्र के साथ किया था अर्जुन को उत्पन्न किया। अब हमें पंडितजी के प्रश्न के उस पक्ष पर ध्यान देना है कि पंडित जी को संतान की अधिकता पर आपत्ति है या पुरुषों की अधिकता पर ? यदि संतान की अधिकता पर आपत्ति है तो १० संतानों तक की आज्ञा वेदानुसार है और आपके यहां तो धृतराष्ट्र के १०० पुत्र थे और राजा सागर के यहाँ ६० हजार इसलिये संतति की अधिकता पर तो पंडित जी को क्या शंका हो सकती है ? हाँ पं० जी को यह आपत्ति होगी कि पतियों की संख्या अधिक है किन्तु यह भी नहीं होनी चाहिए जबकि महाभारत में आदि पर्व अध्याय ६३ श्लोक ११५ से ११९ तक में वर्णित है कि द्रोपदी के एक ही समय में ५ पति थे और उनके ५ पतियों से ५ पुत्र उत्पन्न हुए प्रीतिबन्ध युधिष्ठर से तथा सत्यसोम भीमसेन से तथा श्रुतिकीर्ति अर्जुन से तथा नकुल से शतानीक और सहदेव से श्रुतिसेन नाम के पुत्र हुए। उसके अतिरिक्त महाभारत आदि पर्व अध्याय १४८ श्लोक १४ तथा १५ में जटाला नाम की गौतम की पुत्री के एक ही समय में ७ पति थे और ताराक्षी नाम की स्त्री के एक समय में १० पति थे इसके अतिरिक्त परम्परा भूमिखण्ड अध्याय ८५ में लिखा है कि विद्या देवी के २१ पति थे इसके अतिरिक्त इस कथा का महाभारत उद्योग पर्व अध्याय ११२ से ११८ तक में वर्णन किया गया है कि आलख नाम के ऋषि ने विश्वामित्र से विद्या पढ़ी जब उसकी विद्या पूर्ण हो गई तो उसने विश्वामित्र से पूछा कि महाराज क्या गुरु दक्षिणा आपकी सेवा में प्रस्तुत करूं तब विश्वामित्र ने कहा तू ८०० श्याम कर्ण घोड़े मुझे दक्षिणा में दें। ये सुनकर वह श्याम कर्ण घोड़ो के ढूढ़ने में गया, राजा ययाति के पास गया और उससे ८०० घोड़ों की याचना की किन्तु राजा ययाति के पास भी श्याम कर्ण घोड़े नहीं थे राजा को याचक के

वापस जाने से बहुत दुःख हुआ बहुत कुछ सोचने के उपरान्त राजा ययाति ने कहा गालव के पास श्याम कर्ण घोड़े नहीं है अमुक राजाओं के पास ऐसे घोड़े हैं तुम मेरी पुत्री माधुरी को ले जाओ वह राजा लोग मेरी पुत्री के बदले तुम्हें श्याम कर्ण घोड़े दे देंगे ये सुनकर गालव ने ययाति की लड़की माधुरी को साथ में ले लिया और वह अयोध्या के राजा हरि अश्व के पास आया और कहा आप ८०० श्याम कर्ण घोड़े दे दें और इस कन्या से पुत्र पैदा कर लें। हरिअश्व ने कहा कि मेरे पास केवल २०० श्याम कर्ण घोड़े हैं तब गालव ने कहा तो आप सिर्फ १ पुत्र उत्पन्न कर सकते हैं ये सुनकर राजा हरिअश्व ने २०० घोड़े उसको दे दिए और माधुरी को रख लिया एक वर्ष के पश्चात् गालव आये उस समय तक उन्होंने १ पुत्र उत्पन्न कर लिया था जिसका नाम विश्वभन्त था और अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार माधुरी को वापस कर दिया तब गालव माधुरी को साथ लेकर काशी के राजा देवोदास के पास गया उसके साथ भी यही एक पुत्र उत्पन्न करने की बात रखते हुए २०० श्याम कर्ण घोड़े ले लिए और माधुरी को उसे सौंप दिया १ साल में उसने भी एक पुत्र उत्पन्न किया जिसका नाम प्रतिद्वन्दी रखा गया १ वर्ष के पश्चात् गालव और माधुरी को साथ लेकर भोजनालय के राजा उशीनर के पास गये और इसी शर्त पर माधुरी को उसे सौंप कर २०० श्याम कर्ण घोड़े प्राप्त किये १ वर्ष में उसने भी माधुरी से एक पुत्र उत्पन्न किया जिसका नाम विश्वी रखा गया १ वर्ष के पश्चात् गालव आया और कोई राजा उसको ऐसा न मिला अन्त में विवश होकर ६०० श्याम कर्ण घोड़े तथा माधुरी को साथ लेकर अपने गुरु विश्वामित्र के पास आये तब घोड़ों के प्राप्त करने की सारी घटना सुनायी और कहा महाराज २०० घोड़ों के बदले आप एक पुत्र पैदा कर लें विश्वामित्र ने ये बात स्वीकार कर ली और उन्होंने अपने पुत्र का नाम अस्तक रखा इसके पश्चात् लड़की माधुरी राजा ययाति के यहां वापस चली गयी और ययाति ने उसका स्वयंवर रचाया।

अब पं० जी को अपने घर में इस प्रकार की कथाओं की उपस्थिति में विचार करना चाहिए कि ऋषि दयानन्द जी के वेदानुकूल वाक्यों पर क्या आपत्ति हो सकती है? प्यारे पाठक गण मैंने आपके सामने ये सिद्ध कर दिया है कि नियोग और उसकी विधि वेद के अनुसार है जिसमें पं० जी की आपत्तियों का उत्तर सम्पूर्ण रूप से दिया गया है नियोग "आदर्श धर्म" नहीं है ये "आपत्त धर्म" है ये मैं पहले ही बता चुका हूं मनुस्मृति अध्याय ११ श्लोक २६ में आपत्त धर्म की परिभाषा इस प्रकार की गयी है कि ऋषि महर्षि लोगों ने किसी विपरीत परिस्थिति में मौत से आतंकित होकर मौत से बचने के लिए जो उपाय निश्चित किये हैं उनका नाम "आपत्त धर्म" है। ऐसी दशा में उसको बचाने के लिए नियोग कार्य स्वीकार निर्धारित कर दिया कानून के जमाने वाले का ये कर्तव्य हो जाता है कि वह कानून के प्रत्येक पक्ष पर विचार करें चाहे उसके प्रयोग की आवश्यकता पड़े या न पड़े, उदाहरण के लिए ताजीराते हिन्द के कानून को बने हुये बहुत समय हो गया किन्तु उसमें इस प्रकार की धारायें भी बनाई गयी है जिनके प्रयोग करने की अभी तक आवश्यकता ही नहीं पड़ी कानून और नियम के बनाने वाले ने उसके प्रत्येक पक्ष पर विचार करते हुए उनको एकत्रित करके लिख दिया है जब आवश्यकता हो तब उसका उपयोग किया जा सकता है। उदाहरण के लिये मुसलमानों के यहां ही देखिये कुरान शरीफ की शरह (शर्त) के अनुसार ३ चीजें हराम है? लहू (रक्त) और २. मृतक शरीर और ३. सुअर किन्तु कुरान शरीफ में ये भी आज्ञा है कि यदि कोई कई दिन से भूखा हो प्राण जाने की स्थिति आ जाये तो प्राण बचाने के लिये इन वस्तुओं का उपयोग किया जा सकता है आपने ऐसे मुसलमान बहुत कम सुने होंगे जिन्होंने मुसीबत या संकटकालीन अवस्था से भयाक्रान्त रक्त व मृतक शरीर इत्यादि का प्रयोग किया हो किन्तु कुरान शरीफ के बनाने वाले ने इस बात पर विचार करते हुये ऐसे अवसरों पर इन अग्रहाई (हराम) वस्तुओं के प्रयोग करने की आज्ञा दे दी है कोई उनका उपयोग करे या न करे ये हर व्यक्ति की परिस्थितियों और इच्छा की बात है इसी प्रकार नियोग भी एक बीमारी का प्रतिकार है जिन परिस्थितियों को

ऊपर वर्णित किया गया है उन परिस्थितियों में समाज को दुराचार, व्यभिचार आदि से बचाने के लिए नियोग के अलावा और कोई उपाय नहीं है किन्तु ये व्यभिचार नहीं कहा जा सकता क्योंकि दुराचार और चरित्रहीनता की परिभाषा ये हैं कि वेद की आज्ञा के विरुद्ध समाज की स्वीकृति के बिना गुप्त रूप से स्त्री और पुरुषों का सम्बन्ध व्यभिचार कहाता है नियोग कदापि इस परिभाषा के अन्तर्गत नहीं आता क्योंकि नियोग वेद की आज्ञा के अनुसार समाज और सम्बन्धित सम्बन्धी की स्वीकृति और आवश्यकतानुसार समाज को व्यभिचार से बचाने के लिए व्यवहार में लाया जाता है अब मौलिक रूप से पुनः ध्यान दिलाना चाहता हूं स्त्री को दूसरे पति का अधिकार है चाहे उसको पुर्नविवाह कहो या विधवा कहो चाहे नियोग कहो चाहे नाम कुछ भी रखो इन सबका वास्तविक उद्देश्य ये है कि स्त्री को दूसरे पति का अधिकार है पौराणिक साहित्य प्रमाणों से भरा है बाल्मीकि रामायण को ही ले लीजिए रामचन्द्र जी मृग रूप मारीच को मारतें हुए उसकी आवाज पर सीता लक्ष्मण को आज्ञा देती है कि तुम राम के सहयोग के लिए जाओ लक्ष्मण के निषेध करने पर सीताजी क्रोध में आकर कहती है तू मेरे लोभ के कारण राम के पीछे-पीछे फिरता है सीता का लक्ष्मण को ये उलहाना देना इस बात को सिद्ध करता है कि उस स्त्री को दूसरे पति का इन्तजार था इसी प्रकार हनुमान जी की उत्पत्ति नियोग द्वारा रामायण में लिखी है हनुमान जी की माता अंजना थी उनका विवाह केशरी से हुआ था और नियोग पवन से हुआ था जिससे हनुमान जी पैदा हुए, रावण की बहन सूपर्नखा उस वक्त विधवा थी जब उसने राम के प्रति विवाह करने का प्रस्ताव रखा था एक विधवा ब्राह्मणी की विवाह की अभिव्यक्ति करना ये सिद्ध करता है कि स्त्री को दूसरे पति का अधिकार था। बाली के मरने के पश्चात् उसकी स्त्री को सुग्रीव ने रानी बनाया और रावण की मृत्यु के उपरान्त उसकी पत्नी मन्दोदरी को विभीषण ने रानी बनाया महाभारत में अर्जुन ने नागराजा की पुत्री जो विधवा थी उससे शादी की जिससे अरावरम् नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ राजा बलि ने अपनी स्त्री सुदेशना को दीर्घतमा ऋषि के पास सन्तति प्राप्त करने को भेजा था नियोग द्वारा सन्तति प्राप्ति की जब परशुराम जी ने क्षत्रियों की २१ बार बलपेक्षित कर दिया तो ब्राह्मणों ने क्षत्रियों के वंश चलाने के लिए क्षत्राणियों ने सन्तान प्राप्त की, अभिप्राय ये है रामायण, महाभारत और पुराणों में इस प्रकार के सैंकड़ों उदाहरण भरे पड़े हैं जिनमें स्त्री को दूसरे पति का अधिकार दिया गया है विस्तार वैसे यहां और अधिक विवरण नहीं दिया जा रहा है इसका सामान्यतया: उत्तर ये हैं विधवा स्त्री का इस तरह से संतान उत्पन्न करना तो आप वेद के विरुद्ध मानते हैं भला बताइये तो सही व्यभिचार, गर्भपात, चौका चूल्हे से जमीन खोखली करना कौन से वेद के अनुसार है ? इसलिए हमारे पौराणिक भाइयों का कर्तव्य है कि अपने ग्रन्थों को ध्यान से पढ़ें व्यर्थ आर्य समाज के साथ उलझने का प्रयत्न न करे मैं ईश्वर से प्रार्थना करता हूं ईश्वर हमारे पौराणिक भाइयों को सद्बुद्धि दें जिससे कि वह विधवा स्त्रियों की दुर्दशा को अनुभव करके अपनी आत्मा की हत्या न करते हुए वेद स्मृति रामायण महाभारत और पुराणों के प्रमाण को सम्मुख रखते हुए उनको दूसरे पति की आज्ञा प्रदान कर दें जिससे वह दुराचरन गर्भपात इत्यादि पापों से अपने जीवन को बचा सकें।

प्रश्न-४　स्वामी जी ने लिखा है कि जब किसी व्यक्ति की स्त्री की मृत्यु हो जावे तो उसका दाह कर्म करने से पूर्व लोग स्त्री से कहें कि हे स्त्री तू इस मृतक पति की आशा छोड़कर अन्य जीवित व्यक्तियों में से किसी एक पति को निर्वाचित कर ले ! ये कितने लज्जा की बात है कि उसके पति का शव उसके सामने पड़ा है और उससे ये कहा जाता है तू अन्य पति को निर्वाचित कर ले आर्य समाज की ये शिक्षा सभ्यता और संस्कृति के विरुद्ध है बताओ ये किस वेद के अनुसार है ?

उत्तर—पं० जी महाराज प्रश्न करने से पहले ये उचित था कि आप प्रश्न करने से पहले सत्यार्थ प्रकाश को पढ़ लेते जिससे आपको पता लग जाता कि जिस बात पर आप आपत्ति कर रहे हैं वह तो स्वामी जी के

लेख में इस प्रकार है ही नहीं अच्छा लीजिए अब हम स्वामी जी के इस लेख को ज्यों का त्यों उद्धरित कर रहे हैं स्वामी जी महाराज ने नियोग समर्थन में ऋग्वेद मण्डल १० सूत्र १८ मन्त्र ८ का प्रमाण देकर इस प्रकार लिखा है कि हे विधवा स्त्री तू इस मृतक पति की आशा छोड़कर शेष पुरुषों में से जीते हुए पति को प्राप्त हो और इस बात का निश्चय रख तुझ विधवा के दूसरी बार हाथ पकड़ने वाले नियोगयुक्तपति के सम्बन्ध के लिए नियोग होगा तू ये जना हुआ बालक नियोग युक्त पति का होगा और जो तू ये अपने लिए नियोग करेगी तो ये सन्तान तेरी होगी ऐसा निश्चय कर और नियोग युक्त पुरुष भी इस विधि का अनुकरण करें अब कृपा करके बतलाइये कि इस लेख में ये कहां लिखा है कि दाह कर्म करने से पहले लोग पूछें यदि आप ये कहें कि इसमें ये लिखा कि (इस मृतक हुए पति की आशा छोड़कर) तो आपके विचार में (इस जो शब्द) है क्या ये वर्तमान काल में ही प्रयोग होता है तो आपकी व्याकरण विद्या की बलिहारी है कहिये पं० जी महाराज व्याकरण का नियम है वर्तमान काल के निकटवर्ती काल को भी वर्तमान काल की भांति प्रयोग किया जाता है इसको उर्दू में माषीकरीम कहते हैं (इस) शब्द से अभिप्राय मृतक पति की और संकेत है कि जिसको मरे हुए कुछ क्षण व्यतीत हो चुका है और जिसके वियोग में स्त्री गृह कार्यों में रुचि नहीं रखती उदासीनता के कारण कुछ समय के पश्चात् परिवार के बुजुर्गों का कर्तव्य है कि वह विधवा स्त्री की इच्छाओं की जानकारी करें कि वह ब्रह्मचारिणी रहना चाहती है या नहीं सब ऊंच नीच भी उसको समझाते हैं और कहते हैं तु इस मरे हुए पति का शौक छोड़ दे और घर के कामों में रुचि ले और यदि ऐसा न कर सके तो अन्य जीवित पुरुषों में विधिवत् पति को निर्वाचित कर ले और फिर आप कृपा करके ये बतायें कि स्वामी जी के लेख में ये शब्द कहां हैं कि हे स्त्री तू इस मरे हुये पति के साथ सोयी हुई है कहिये पं० जी महाराज ये मरे हुए पति के साथ सोना और संतान उत्पन्न करना ये विधि तो सनातन धर्म में ही प्रचलित होगी आपत्ति करने से पहले अपने घर को नहीं टटोलते ये ऋग्वेद का मन्त्र है सनातन धर्म के भाष्यकारों ने इसका क्या अर्थ किया है लीजिए हम आपको बताते हैं देखिए—

तैत्तरीय आरण्यक प्रपाठक ६ अनुवाक १ पृ० ६५२ पर इस मन्त्र का अर्थ आपके भाष्यकार सायणाचार्य इस प्रकार से करते हैं कि हे स्त्री तू इस मरे हुए पति के साथ सो रही है इसके पास से उठ और जीवित पुरुषों में से और तू हाथ के ग्रहण करने वाले पुनर्विवाह के इच्छुक पति की पत्नि बनकर अच्छे प्रकार से रह ।

कहिए पं० जी महाराज पता लगा कि ये सब कुछ आपकी किताबों में है और उसके सम्बन्ध में आरोप आर्य समाज पर किया जाता है इसी पर किसी ने कहा है—"गिल्ला दूसरे का करते थे कसूर अपना निकल आया" अब जाकर सनातन धर्म के टीकाकारों से जानकारी करो महाराज आपने तो सनातन धर्म की लुटिया ही डुबो दी प्रथम तो आपने इस मन्त्र के अर्थ में पुनर्विवाह को स्वीकार कर लिया और फिर उसके लिए इतनी शीघ्र आज्ञा दी कि जब वह स्त्री मरे हुये पति के पास है तो उस वक्त उसके सामने ये प्रस्ताव प्रस्तुत कर दिया कि तू इन जीवित पुरुषों में से एक की पत्नि बन जा वाह-वाह "जादू वो जो सिर पर चढ़कर बोले" पं० जी इन बातों का आर्य समाज से कोई सम्बन्ध नहीं है ऐसी बातें सनातन धर्म में ही मिल सकती है और फिर ये कहते हुये लज्जा नहीं आती कि ये किस वेद के अनुसार है क्या आपको ये दृष्टिगोचर नहीं होता कि ये ऋग्वेद का मन्त्र है जिसका अनुवाद स्वामी जी ने किया है आपका कर्तव्य ये था किन्तु ये सिद्ध करते कि स्वामी जी का ये अर्थ अशुद्ध है और इसकी तुलना में दूसरा अर्थ इस प्रकार है कि ये काम तो आप जैसे व्यक्ति को कठिन था इसलिए आपने सनातन धर्म के भाष्य को सामने रखकर आरोप आर्य समाज पर जड़ दिया वाह जी वाह ईमानदारी इसी का नाम है लीजिए यदि आप सभ्यता और संस्कृति के विरुद्ध वेदों के अर्थ देखना चाहते हैं तो हम वह भी आपके सम्मुख रख रहे हैं, यजुर्वेद अध्याय २३ मन्त्र १६ में आचार्य महिधर ने भाष्य करते हुए लिखा है कि यजमान की स्त्री सब पुरोहितों

के सामने घोड़े के पास सोवे फिर उसके पास सोकर क्या करे यह यजुर्वेद अ० २३ मन्त्र २० में लिखा है कि यजमान की स्त्री घोड़े के लिंग को पकड़कर आप ही अपनी योनि में डाल देवे। कहिए पंडित जी कुछ और भी दिखलाऊं या यही पर्याप्त है। किन्तु हां आपको तो मरे हुए के साथ सोने का शौक है यदि वह आपको न दिखाया गया तो आपकी संतुष्टि कैसे होगी ? तो लीजिये सनातन धर्म के इस भाष्य को व्यवहारिक स्वरूप देने के लिए राजा दशरथ ने पुत्रेष्टि यज्ञ किया इसमें जो कुछ हुआ वह बाल्मीकि रामायण बालकाण्ड सर्ग १४ श्लोक ३२ से ३८ तक में इस प्रकार वर्णित है। कि ३०० पशु यज्ञशाला में उसके स्तम्भों में बांधे गये जिसमें राजा दशरथ का एक बड़ा मूल्यवान अश्व भी था, कौशिल्या ने पहले इस घोड़े के चारों ओर परिक्रमा की और बड़े हर्ष के साथ उस अश्व को तीन तलवारों से काटा धर्म कार्य समझ १ रात्रि उस घोड़े के साथ शयन किया राजा के पुरोहितों ने उस घोड़े के साथ कौशिल्या को संयुक्त किया वह भी केवल कौशिल्या को ही नहीं प्रत्युत राजा की दो और रानियों को भी। फिर उस घोड़े की वसा निकालकर यज्ञ के प्रमाणित ग्रन्थों की विधि अनुसार यज्ञ किया और राजा दशरथ ने समयानुसार अपने पापों को निर्मूल करने के लिए वसा की गन्ध लेकर ब्राह्मणों ने बड़ी प्रसन्नता के साथ उस अश्व के अंगों के खण्डों को अग्नि में होम दिया उपरोक्त लेख में स्पष्ट है कि कौशिल्या ने घोड़े को तलवार से काटा और फिर वह उस मरे हुए घोड़े के साथ १ रात्रि सोती रहीं और पुरोहितों ने ऊपर महीधर द्वारा लिखे भाष्य के अनुसार कौशिल्या का घोड़े से समागम करा दिया। कहिए पं० जी महाराज अब तो आपकी पूर्णतया संतुष्टि हो गई होगी। चौबे जी आये थे छब्बे बनने किन्तु यहां दुबे ही रह गये पं० जी महाराज सोच समझ कर आर्य समाजियों से भिड़ा करो अन्यथा बुरी गति बनेगी।

प्रश्न ५—स्वामी जी ने लिखा है कि सृष्टि के आरम्भ में जो मनुष्य उत्पन्न हुए वह युवावस्था के थे सृष्टि उत्पत्ति के समय युवा स्त्री और पुरुषों कीं उत्पत्ति विषयक कौन सा वेद का प्रमाण है ?

उत्तर—सनातन धर्म के पण्डितों की कैसी विचारों की दयनीय स्थिति है ? यह आर्य समाज के साथ उन सिद्धान्तों पर तो शास्त्रार्थ करने से कतराते और भागते हैं जिन सिद्धान्तों में आर्य समाज और सनातन धर्म का विरोध हैं, पक्षपात से ग्रसित अन्धे होकर इस प्रकार के प्रश्नों को करते हैं जिनमें आर्य समाज और सनातन धर्म की सम्मिलित सम्मतियें हैं। इससे स्पष्ट होता है कि उनका उद्देश्य सत्यता की जानकारी करना नहीं प्रत्युत आर्य समाज के विरुद्ध लोगों कों भ्रमित करना ही है। इस प्रयत्न से चाहे सनातन धर्म के पक्ष की ही धज्जियाँ भले उड़जावें। उनकी तो इस प्रकार की स्थिति है कि—पड़ौसी की भैंस मर जावे चाहे उसके निमित्त हमारे घर की दीवार ही क्यों न गिर पड़े। इन भले मानुषों से पूछिये कि जो लोग भी सृष्टि की उत्पत्ति को स्वीकार करते हैं उनको यह अनिवार्य रूप से स्वीकार करना पड़ता है कि सृष्टि के आदि में सभी प्राणी, मनुष्य, पशु, पक्षी, आदि बिना माता पिता के संयोग से उत्पन्न हुए। इसको ईश्वरी सृष्टि या अमैथुनी सृष्टि कहते हैं। और वह युवावस्था में ही उत्पन्न होते हैं। इसके सम्बन्ध में श्री स्वामी जी महाराज ने युक्ति दी है कि सृष्टि के आरम्भ में यदि सभी जीव बाल्यावस्था में उत्पन्न होते तो उनके पालन पोषण की आवश्यकता पडती और यदि वृद्धावस्था में उत्पन्न होते तो उनकी सेवा सुश्रूषा करने वालों की आवश्यकता पड़ती। और सेबा सुश्रूषा या पालन पोषणका सम्बन्ध वंशीय या शैक्षिणिकता से असम्भव होता है। इसलिए सृष्टि के आरम्भ में स्त्री पुरुष आदि सभी प्राणी युवावस्था में ही उत्पन्न हुए थे ऐसा स्वीकार करना पड़ता है। भला सनातन धर्म के दिग्गज जी बतायें कि सृष्टि के आरम्भ में जो ब्रह्मा, विष्णु और महेश (महादेव) जी जो हुए वे किस आयु के थे ? ईसाई और मुसलमानों को भी यह बात स्वीकार करनी पड़ती है कि सृष्टि के आरम्भ में आदम की उत्पत्ति बिना माता पिता के हुई और युवावस्था में हुई। क्योंकि उस विषय में अन्य कोई प्रकार माना ही नहीं जा सकता। विदित होता है कि पण्डित जी यह तो स्वीकार करते हैं कि सृष्टि के आदि में सभी प्राणी

युवावस्था में उत्पन्न हुए किन्तु उनका प्रश्न तो यह है कि इसका प्रमाण वेद से दिया जावे। किन्तु पण्डित जी का पक्ष तो यह था कि "**स्वामी दयानन्द कृत ग्रन्थ वेद के विरुद्ध हैं**" अतः पण्डित जी को चाहिए कि वह वेद का कोई ऐसा मन्त्र प्रस्तुत करते जिससे यह सिद्ध हो सकता कि सृष्टि के आरम्भ में प्राणी या जीव, बाल या वृद्ध रूप में उत्पन्न हुए। तब तो यह सिद्ध हो जाता कि स्वामी जी ने जो सृष्टि की आदि में जीवों की उत्पत्ति युवावस्था में लिखी है वह वेद के विरुद्ध है किन्तु पण्डित जी ने ऐसा कोई मन्त्र प्रस्तुत नहीं किया। करते भी कैसे जब कि वेद के मन्त्र स्वामी दयानन्द जी के पक्ष का समर्थन करते हैं। देखिये एक मन्त्र तो मैंने शास्त्रार्थ के अवसर पर दिया ही था यजुर्वेद अ० ३१ मन्त्र ६ कि सृष्टि के आरम्भ में साध्य और ऋषि लोग उत्पन्न हुए। इसके भाष्य में महीधर लिखते हैं कि साध्य उसको कहते हैं जो सृष्टि उत्पन्न करने की सामर्थ्य रखता हो और ऋषि उनको कहते हैं जो मन्त्रों के अर्थों को जानने वाले हों। अब इस पर ध्यान देने की आवश्यकता है कि सृष्टि के आरम्भ में जो व्यक्ति या प्राणी संतति उत्पन्न करने की सामर्थ्य वाले हुए वह युवावस्था के ही हो सकते हैं बच्चे और वृद्ध संतति उत्पन्न करने में समर्थ नहीं हो सकते। और न मन्त्रों के अर्थ जानने वाले ऋषि ही बच्चे हो सकते इस प्रकार उक्त प्रमाणों से सिद्ध होता है कि सृष्टि के आरम्भ में व्यक्ति युवावस्था में ही उत्पन्न हुए वेद के इस मन्त्र के समर्थन में मनुस्मृति अ० १ श्लोक ३४ में लिखा है कि प्रजापति उसको कहते हैं जो प्रजा अर्थात् प्रजाजनों का स्वामी हो तो प्रजाजनों का स्वामी युवावस्था का व्यक्ति ही हो सकता है इसलिए सृष्टि उत्पत्ति के समय सभी जीव युवावस्था में ही उत्पन्न हुए। इसके अतिरिक्त देखिए सनातन धर्म की तो लीला ही निराली है लीजिये सुनिये। भविष्य पुराण उत्तर पर्व अ० २ श्लोक ४७ से ७७ तक में लिखा है कि कृष्ण और नारद भ्रमण करते हुए काव्य कुन्ज के निकट वशिष्ठ नामक सरोवर पर गए और पहले कृष्ण ने स्नान किया और फिर नारद जी गये। नारद जी जब डुबकी लगाकर निकले तो वह एक सुन्दर स्त्री बन गये थे वहाँ पर भ्रमण करते हुये तालध्वज नामक राजा आ गये वह उसे देखकर घोड़े पर सवार करके ले गया और जाकर उससे विवाह करके अपने घर रखा १३ वर्ष के पश्चात् उसके बड़ा भारी गर्भ हुआ जिसमें से ५० युवा युद्ध कला विशारद पुत्र उत्पन्न हुये। वाह पण्डित जी महाराज ये तो युवावस्था की उत्पत्ति घर में से ही निकलने लगी अच्छा पण्डित जी आपकी सन्तुष्टि के लिये हम एक और वेद मन्त्र प्रमाण स्वरूप उपस्थित कर रहे हैं देखिये ऋग्वेद मण्डल ५ सूक्त ६० मन्त्र ५ में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि सृष्टि के प्रारम्भ में स्त्री और पुरुष युवावस्था में उत्पन्न हुये आशा है आपकी पूर्णरूपेण सन्तुष्टि हो गयी होगी और भविष्य में कभी भी इस प्रकार का प्रश्न करने का दुस्साहस न करेंगे।

प्रश्न ६—स्वामी जी ने लिखा है कि मनुष्यों की उत्पत्ति सृष्टि के प्रारम्भ में तिब्बत में हुई ये कौन से वेद का प्रमाण है ?

उत्तर—पण्डित जी महाराज जरा अपने पक्ष पर ध्यान दीजिये आपका पक्ष "स्वामी दयानन्द जी के ग्रन्थ वेद के विरुद्ध हैं" यह है, इसलिए आपका कर्तव्य था कि कोई वेद का ऐसा मन्त्र प्रस्तुत करते जिससे ये पता लगता कि सृष्टि के प्रारम्भ में मनुष्यों की उत्पत्ति किसी और स्थान पर हुई तब आप कह सकते थे कि स्वामी जी ने तो लिखा है सृष्टि के प्रारम्भ में मनुष्यों की उत्पत्ति तिब्बत में हुई और वेद में लिखा है कि अमुक स्थान पर हुई इसलिये स्वामी दयानन्द जी का लेख वेद के विरुद्ध है किन्तु आपने अपने पक्ष के समर्थन में कोई प्रमाण नहीं दिया अच्छा जाने दीजिये मगर स्वामी जी के कथन के अनुसार सृष्टि में मनुष्यों की उत्पत्ति तिब्बत में नहीं हुई तो सनातन धर्म के सिद्धान्त से किस स्थान पर हुई ? किन्तु आप ये बताने में भी विवश होंगे अच्छा हम आपको बतलाते हैं कि स्वामी जी का लेख अक्षरशः सत्य है देखिये ऋग्वेद मण्डल १० सूक्त १९० मन्त्र ३ में लिखा है कि परमात्मा ने आकाश से लेकर पृथ्वी तक सूर्य, चन्द्र, तारे इत्यादि स्वर्ग सहित (अर्थात् सुख प्राप्ति का विशेष स्थान) कि जैसे पहले कल्प में उत्पन्न

किया था वैसे ही अब उत्पन्न किया इस वेद मन्त्र के अन्दर एक विशेष रूप से ध्यान देने की बात यह है कि परमात्मा ने जहाँ पर सम्पूर्ण सृष्टि को बनाया इसमें स्व: अर्थात् स्वर्ग सुख प्राप्ति के विशेष स्थान को भी उत्पन्न किया अब देखना ये है कि सुख प्राप्त होने का विशेष स्थान का लक्षण वेद की दृष्टि में क्या है ? यजुर्वेद अध्याय २६ मन्त्र १५ में लिखा है कि जहाँ पर पहाड़ों की गुफाओं और सरिता का संगम हो ऐसे स्थान पर विद्वान ब्राह्मणों की उत्पत्ति होती है इस मन्त्र से ये बात स्पष्ट हो गयी कि जिस स्थान पर पहाड़, दरिया और जंगल हो ऐसे स्थान में ही विद्वान पुरुषों, ऋषि मुनियों की उत्पत्ति होती है अर्थात् ऐसे स्थान ही आवास के लिए उचित होते हैं यह बात भी स्पष्ट है जो ऋषि मुनियों के उत्पन्न करने वाले और आवास के योग्य स्थान होते हैं उसी का नाम स्वर्ग है क्योंकि ऐसे स्थानों में ही लोग योगाभ्यास करके उस परमात्मा के परम सुख को प्राप्त होते हैं ऊपर वाले ऋग्वेद के मन्त्र में जो सृष्टि की उत्पत्ति का वर्णन किया गया है वह किस हेतु से उत्पन्न हुई इसकी व्याख्या तैतरिय उपनिषद ब्रह्मानन्द बल्ली अनुवाद १ तथा मनुस्मृति अध्याय १ श्लोक ७५ से ७८ में इस प्रकार लिखा है कि परमात्मा ने सबसे पहले आकाश को व्यक्त किया उसके पश्चात् वायु उसके पश्चात् अग्नि और अग्नि के पश्चात् जल और उसके पश्चात् पृथ्वी उत्पन्न हुई पृथ्वी के पश्चात् वनस्पतियां फल-फूल और जड़ी बूटी इत्यादि और उसके पश्चात् मनुष्य आदि की उत्पत्ति हुई इस व्याख्या से ये भी स्पष्ट होता है कि जल की उत्पत्ति के पश्चात् पृथ्वी की उत्पत्ति होने में सबसे पहले भूमि का वह भाग दृष्टिगोचर होगा जो जलस्थान में पृथ्वी का सब से उच्च भाग होगा जो सब से ऊँचा भाग होगा और जो भाग सबसे पहले व्यक्त होगा उस पर ही सृष्टि के प्रारम्भ में मनुष्यों की उत्पत्ति सम्भावित है इसके अतिरिक्त अमर कोश में जहाँ पर स्वर्ग के नाम गिनाये गये हैं वहाँ पर त्रविष्टक शब्द को भी स्वर्ग के नामों में गिना गया है और महाभारत के पढ़ने से भी ज्ञात होता है कि पांचों पाण्डव भी जब राज्य को छोड़ कर स्वर्ग को गये हैं तो वह भी हिमालय पर्वत की चोटी पर ही था ऊपर की सभी युक्तियां और प्रमाण तिब्बत के अनुसार प्रतीत होते हैं क्योंकि वेद में कहा गया है कि परमात्मा ने स्वर्ग को उत्पन्न किया फिर आगे ये भी वेद में लिखा है कि स्वर्ग वह है जिसमें पर्वत, गुफायें, सरिता वन उपवन विद्यमान हों ऐसे स्थान में विद्वान और ऋषियों की उत्पत्ति होती है इस प्रकार कि पृथ्वी जिसमें पर्वत और सरिता और वन हो ये तिब्बत में ही लक्षण घटते हैं और वह स्थान पृथ्वी पर सब से ऊँचे स्थान पर भी है और सबसे पहले जल में से तिब्बत का प्रकट होना ही सम्भव हो सकता है अमर कोश कहता है कि तिब्बत का नाम स्वर्ग है पाण्डव भी इसी तरफ को गये इन सब युक्तियों से पता लगता है कि पृथ्वी में सबसे ऊँचे और जल में सबसे पहले दृष्टि गोचर होने के कारण और सरिता, पर्वत, वन, उपवन और ऋषियों की उत्पत्ति होने के कारण तिब्बत ही एक ऐसा स्थान है जिसके विषय में ये माना जा सकता है कि वहाँ पर सृष्टि के प्रारम्भ में मनुष्यों की उत्पत्ति हुई इन सब कारणों को दृष्टि में रखते हुये स्वामी जी ने सत्यार्थ प्रकाश में इस प्रकार का उल्लेख किया है जो कि अक्षरशः सत्य है।

प्रश्न ७—स्वामी जी ने सत्यार्थ प्रकाश में लिखा है कि जहाँ उष्ण देश हो वहाँ चोटी भी कटवा देनी चाहिये ये किस वेद के अनुसार है ?

उत्तर—इस प्रश्न का उत्तर भी मैंने आपको पूर्ण रूप से दे दिया था किन्तु फिर भी आपकी सन्तुष्टि के लिये और स्पष्ट कर दिया जाय देखिये अथर्ववेद सूक्त ६८ मन्त्र २ में लिखा है कि जल तेजी से बालों को गिला करे और तेज उस्तरा बालों को काटे पिता बहुत समय तक छीने और देखने के लिये देख भाल रखे या बीमारियाँ दूर करे इस वेद मन्त्र में स्पष्ट कहा है कि बालों को गिला करके उस्तरे से कटवा देना चाहिये, क्योंकि उससे अनेक रोग दूर होते हैं अब प्रश्न ये पैदा होता है कि बालों को चोटी समेत कटवा देना चाहिए या चोटी रख कर कटवा देना

चाहिए इस बात का वर्णन यजुर्वेद अध्याय १७ मन्त्र ४८ में किया गया है कि जिस युद्ध में तीर इस प्रकार चलाये जाते हैं जिस प्रकार बिना चोटी वाले बालक चंचलता से इधर-उधर भागते फिरते है उस युद्ध में ईश्वर उनको विजय प्राप्त कराये, मन्त्र के इस भाग में "कुमारा विशिखाइव" इसका अर्थ उव्वट ने जो सनातन धर्म के भाष्यकार हैं किया कि जैसे चोटी के बिना मुंड़े हुये बालक भागते फिरते हैं और महिधर ने भी अपने भाष्य में चोटी से विहीन हुये बालक लिखा है अभिप्राय ये है कि सनातन धर्म के दोनों विद्वान भाष्यकारों ने यही अर्थ किया जो हमने भी आपके सम्मुख वही प्रमाण दिया है इस पर स्वामी दयानन्द जी महाराज भाष्य करते हुये लिखते हैं कि जैसे बिना चोटी वाले और अनेक चोटियों वाले कुमार इधर-उधर भागते फिरते हैं इस प्रकार स्वामी जी के विचार में इसके दोनों अर्थ हैं बिना चोटी वाले भी और चोटी वाले भी इस मन्त्र से ये स्पष्ट होता है कि चोटी मुंड़वायी भी जा सकती है और रखी भी जा सकती है अब बाल कब मुंड़वाने चाहिए ? और चोटी कब रखनी और मुंड़वानी चाहिए ? इस पर मनु जी लिखते हैं मनुस्मृति अध्याय २ श्लोक ३५ में लिखा कि ब्राह्मण और क्षत्रिय के बालकों का मुण्डन संस्कार एक साल के बाद या तीन साल के बाद वेद के अनुसार कराना चाहिए इसके पश्चात् मनुस्मृति अध्याय २ में लिखते हैं कि ब्राह्मण का १६वें वर्ष क्षत्री का २२वें वर्ष और वैश्य का २४वें वर्ष में केशान्त संस्कार होना चाहिए अब इन दोनों अवसरों पर चोटी रखनी चाहिए या नहीं इस विषय में मनुस्मृति अध्याय २७ श्लोक २१६ में लिखा है कि चाहे केश सारे मुंडवा दिये जायें चाहे सारे केश रखलें और चाहे १ चोटी रख कर शेष सारे बाल मुंडवा दें। स्वामी दयानन्द जी महाराज ने सत्यार्थ प्रकाश के १०वें समुल्लास में वेद मन्त्रों और मनुस्मृति के श्लोकों के समर्थन में स्पष्ट रूप से व्याख्या की है और युक्ति देकर श्रुति और स्मृति के पक्ष को अधिक सुदृढ़ किया है देखिये स्वामी जी महाराज क्या लिखते हैं कि ब्राह्मण के १६वें, क्षत्री के २२वें वैश्य के २४वें वर्ष में केशान्त कर्म अर्थात् मुंडन होना चाहिए अर्थात् मात्र चोटी रख कर दाढ़ी मूंछ और सर के केश सदा मुंडवाते रहना चाहिए अर्थात् फिर कभी न रखना और जो शीत प्रधान देश हो वहाँ चाहे जितने बाल रखें और जो अधिक उष्ण देश हो तो चोटी समेत कटवा देनी चाहिए ये देश काल और परिस्थिति के अनुकूल है क्योंकि सर में बाल रहने से गर्मी अधिक होती है और बुद्धि प्रभावित होती है दाढ़ी मूंछ रखने से भोजन और खानपान में बाधकता होती है जूठन रह जाना भी सम्भावित है अब बतलाइये स्वामी जी ने कौन सी बात अपनी ओर से लिखी है ? जो कुछ वेद और स्मृति में लिखा हुआ है उसको सिद्ध करने के लिये स्वामी जी ने युक्तियां दे दी हैं किन्तु सनातन धर्म के पण्डित जनता में ये आर्य समाज के प्रति भ्रम फैलाते हैं कि स्वामी जी ने चोटी कटवाना लिख दिया है और लोगों को यह कह कर उत्तेजित करते है कि चोटी के लिये अमुक ने अपने प्राण दे दिये परन्तु चोटी नहीं दी किन्तु स्वामी दयानन्द जी ने उसको भी कटवाने की आज्ञा दे दी है कुछ बुद्धि से काम लो कि जिन लोगों ने अपने सर कटवाये और धर्म के लिये प्राण दे दिये उनसे सिर्फ चोटी कटवाने का उद्देश्य न था प्रत्युत उसका अभिप्राय ये था जो अपने हिन्दू धर्म को छोड़ कर मुसलमान हो जाये प्रत्युत उस समय के कई समुदायों ने अपनी चोटियों को कटवा कर अपने धर्म की रक्षा भी की है जिला जनपद हिसार, रोहतक, बीकानेर, जयपुर और उत्तर-प्रदेश के बिजनौर इत्यादि शहरों में एक ऐसा ही समुदाय विश्नोइयों का है जो चोटी बिल्कुल नहीं रखते किन्तु वह कितने कट्टर हिन्दू हैं उनको जानने वाले यदि केवल चोटी को ही धर्म का अभाव मान लिया जाये तो क्या विश्नोई हिन्दू नहीं हैं ? और सन्यासी एक भी चोटी नहीं रखते क्या उनको हिन्दुओं से पृथक कर दोगे और सिक्खों और स्त्रियों के पृथक से भी चोटी नहीं है तो क्या सब सिख तथा सब स्त्रियां हिन्दू धर्म से पृथक कर दिये जावें ? अगर कहो सिक्खों के और स्त्रियों के पूरे केश हैं तो क्या आप पूरे केश रखने वालों को हिन्दू स्वीकार करते हो तो क्या सब मुसलमान और ईसाई सर पर पूरे केश रखने के कारण से हिन्दुओं में सम्मिलित किये जा सकते हैं ? इसलिये कुछ बुद्धि से काम लो हिन्दू की परिभाषा मात्र चोटी ही नहीं है बल्कि हिन्दू की परिभाषा ये है जो ऐसे धर्म को

स्वीकार करता हो जिस धर्म का संस्थापक हिन्दुस्तान में उत्पन्न हुआ हो उसको हिन्दू कहते हैं स्वामी जी चोटी के विरुद्ध नहीं हैं उन्होंने तो चोटी का समर्थन ही किया है किन्तु विशेष स्थिति की दृष्टि से वेद और स्मृति की आज्ञा से चोटी कटाने की आज्ञा दी है और स्वामीजी के लेख के अनुसार भी ये देश अधिक गर्म है और न अधिक शीतल इसलिए इस देश में तो न तो चोटी समेत कटवाना चाहिये और न सारे केश रखने चाहिए यहाँ की जलवायु सर्दतर और सामान्य होने के कारण चोटी रख कर शेष केश मुंडवा देने चाहिए यही उचित है इसलिये स्वामी जी ने जो लिखा है वह वेद के अनुसार है।

प्रश्न ८—स्वामी जी ने संस्कार विधि में लिखा है कि बच्चे की जीभ पर घी और शहद बराबर मिला कर उससे "ओ३म्" लिखें घी और शहद बराबर मिलाने से विष बन जाता है इसका क्या प्रभाव होगा और जीभ पर "ओ३म्" लिखना किस वेद की आज्ञा है ?

उत्तर—पण्डित जी महाराज को जो भ्रान्ति हुई है वह बराबर शब्द के अर्थ न समझने से हुई है पण्डित जी ने विचार कर लिया कि बराबर शब्द का अर्थ बराबर मात्रा में मिलाना है किन्तु ये (सब स्थानों में) उचित नहीं वास्तव में बराबर शब्द का अभिप्राय यथोचित मात्रा में उसका मिलाना है एक व्यक्ति कहता है पाँच सेर दूध में बराबर खांड मिला लाओ कहने वाले का उद्देश्य ये है कि यथोचित मात्रा अर्थात् जितने से मीठा हो जाये उतनी खांड मिला लाओ या एक व्यक्ति कहता है दो सेर दाल पकाओ बराबर नमक डालना इसका अर्थ ये नहीं हैं कि दो सेर दाल में दो सेर नमक डाला जाये बल्कि इसका अभिप्राय दो सेर दाल में यथोचित मात्रा में नमक डालने का है यहाँ भी बराबर शब्द है कि घी और शहद सोनेकी सलाई से मन्त्र बोल कर चटाना चाहिए इसलिए स्वामी जी ने जो लिखा है यह युक्ति युक्त तथा वेद के अनुसार है इसे सभी जानते हैं मधु से सैंकड़ों लोगों की चिकित्सा की जाती है रक्त साफ होता है इसके अतिरिक्त गूंगापन या हकलाने की सम्भावना भी नहीं रहती मधु पर्क में भी घी और शहद डाला जाता है सोने की सलाई से ये अभिप्राय है कि मूल्यवान स्वर्ण धातु के समान सर्वप्रिय बने और सोने का अनुपान भी है ओ३म् लिखने का उद्देश्य ये है कि वह प्रारम्भ से ही ईश्वर का निजि नाम बच्चे की जीभ पर रहे और वाणी में मधु के समान मधुरता रहे और वह जो सबसे पहले आवाज कान में सुने वह वेद है अर्थात् ज्ञान वाला है यही सुने, आशा है इससे पण्डित जी की भ्रान्ति दूर हो जायेगी।

प्रश्न ९—स्वामी जी ने संस्कार विधि के ग्रहस्थ प्रकरण में लिखा है कि जब लड़की व्याह करके ससुराल जावे तो वहाँ दुशचरित्र (पतित) स्त्रियां उसके पास जावें और अपना तेज उसको देकर वापस चली आवें और फिर कभी भी उसके पास न जावें अब देखो आर्य समाज की शिक्षा ? भला वह पतित स्त्रियां उस लड़की को क्या तेज देंगी ? मात्र दुराचरण ही सिखायेंगी इसलिये आर्य समाज की शिक्षा दुराचार फ़ैलाने वाली है इससे बचना ही उचित है।

उत्तर—पण्डित जी महाराज वेदों के अर्थों को समझने के लिये मस्तिष्क की आवश्यकता है जिस व्यक्ति ने गांजा, भंग इत्यादि पी पीकर अपने मस्तिष्क को विकृत कर लिया हो उसके लिये वेद के अर्थों का समझना बड़ा कठिन है ये लेख स्वामी जी का अपना नहीं हैं प्रत्युत्त स्वामी जी ने अथर्ववेद काण्ड १४ सूक्त २ मन्त्र २९ का अर्थ लिखा है वेद तो आपके लिये भी प्रमाण है फिर ये प्रश्न तो होता ही नहीं कि ये लेख वेद के विरुद्ध है हाँ यह हो सकता था कि इस मन्त्र के अर्थ जो स्वामी जी ने किये हैं वह गलत हैं उसके स्थान में जो अर्थ हम कर रहे हैं वह ठीक है किन्तु पण्डित जी में इतनी हिम्मत और साहस कहाँ कि अपने अर्थ करके स्वामी जी के अर्थों को दोष पूर्ण सिद्ध करते कि अजी पण्डित जी महाराज आप जो वेद मन्त्र पर आरोप करते हैं और आपत्ति उठा रहे हैं वही बात तो उस वेद

मन्त्र में बड़ी शिक्षाप्रद और सुन्दर है किन्तु समझने के लिये बुद्धि कहाँ से आये ? देखिये एक व्यक्ति कहता है कि मैं अमुख व्यक्ति से मिलने गया उसने मेरी प्रतिष्ठा ले लीं अब यहाँ प्रतिष्ठा ले ली का अर्थ है कि मुझे अप्रतिष्ठित किया। इसी प्रकार एक व्यक्ति कहता है कि देखो अगर अमुख-अमुख व्यक्ति आपके पास आवे तो अपनी प्रतिष्ठा गवां के जावेगा और पुनः कभी आप से भेंट न करेगा तो इसका अभिप्राय ये होता है कि अमुख व्यक्ति तुम्हारे पास आये तो उनकी अप्रतिष्ठा करके लज्जित ही करना जिससे वह दुबारा तुम्हारे पास आने का साहस ही न कर पाये ऐसे ही उदाहरणों को दृष्टि में रखते हुये उपर्युक्त वेद मन्त्र के भाव को समझने का प्रयत्न करें और मैं संस्कार विधि से वह पाठ अक्षरशः आपके सम्मुख रख रहा हूं स्वामी जी ने लिखा है जो दुष्ट हृदय वाली अर्थात् दुष्ट आत्मा, युवा स्त्रियाँ और जो उस स्थान में बृद्ध स्त्रियाँ हों वह भी उस वधु को शीघ्र तेज देवें इसके पश्चात् अपने-अपने घर को चली जावें और फिर उसके पास कभी न आवें यहाँ तेज देने का अभिप्राय ये है कि दुष्ट हृदय वाली वृद्धायें जो अपनी युवावस्था में पथ भ्रष्टता के कारण विवश हुई हों और ठोकरें खा खाकर पश्चाताप का जीवन व्यतीत कर रही हों, वह आयें और व्याहता स्त्री को (सन न कर दमं समादृढ़ जन कनीद) की युक्ति के अनुसार ये शिक्षा दें कि हमने पथभ्रष्ट होकर और दुष्ट नारियों के संग से बहुत कष्ट उठाया है तुम हमारे अनुभवों से लाभ उठाओ भ्रष्टाचरण को कभी न अपनाना जिससे हमारी तरह जीवन नष्ट न होने पाये उसके पश्चात् घरों को चली जावें और फिर न आने का अभिप्राय है उनके इस दुष्ट आचरण से इतना लज्जित करना पड़े कि पुनः उनको आने का साहस न पड़े अब ऊपर बताये हुये उदाहरण के अनुसार इस मन्त्र का भाव ये है कि किसी नयी व्याहता स्त्री के पास पथभ्रष्ट स्त्रियाँ आये तो वह शीघ्र ही अपना तेज देकर और लज्जित होकर अपने घर से चली जाये पुनः लौटने का साहस न करे नयी व्याही हुई स्त्री के लिए स्पष्ट शिक्षा दी है कि यदि ऐसा किया या इस प्रकार की स्त्रियां आवें तो उनको लज्जित करके उठा दे जिससे उनका पुनः सम्पर्क न होने पावे अब स्वामी दयानन्द जी महाराज की इसमें कौन सी ऐसी बात है जिसके लिए आपको आपत्ति है ? यदि वेद मन्त्र का भाव अब भी आपके मस्तिष्क में न आया हो क्योंकि जिस व्यक्ति को पीलिया का रोग हो जावे और उसकी आंखें पीली हो जावें उसको संसार कीं सभी चीजें पीली ही दृष्टिगोचर होती है और सब को पीली ही बताता है यद्यपि चीजें सफेद भी होती हैं उसमें उन चीजों का दोष नहीं होता दोष उसकी आंखों और रोगों का होता है बस हुबहु इसी तरह से जिन धर्म गुरुओं की किताबों में दुराचार व्यभिचार पथभ्रष्टता की शिक्षा भरी पड़ी हो उनको दूसरी पुस्तकों में भी वैसी ही दृष्टिगोचर होती हैं यही हाल सनातन धर्म के पण्डितों का है पौराणिक दिन भर भ्रष्टता की शिक्षा में संलग्न रहते हैं इसलिये उनको दूसरे ग्रन्थों की अच्छी बातों में भी दुराचरण ही दृष्टिगोचर होता है पण्डित जी महाराज आर्य समाज के वेद के अर्थों में दुराचरण की शिक्षा नहीं मिलेगी हाँ अगर आपको दुराचार की शिक्षा देखने की रुचि हो तो आइये हम आपको दिखाते हैं आपकी ये अभिलाषा सनातन धर्म का भाष्यकार महीधर का ग्रन्थ पूरी करेगा देखिये यजुर्वेद अध्याय २३ मन्त्र २३ में महीधर लिखता है यज्ञ के समय पुरोहित लोग क्वारी स्त्रियों के साथ अश्लील और अभद्र भाषा में संकेत करते हुए उंगली से जनेन्द्रिय की ओर आकृति बनाकर हंसते हैं कि जब स्त्रियां शीध्रता से चलती हैं तो उनकी जनेन्द्रिय से हल हल शब्द होकर इन्द्रियां स्रवित होने लगती हैं उसने यजुर्वेद मन्त्र का भाष्य करते हुए लिखा है कि उसके उत्तर में कुमारी स्त्रियाँ पुरोहित से अश्लील भाषा में कहती हैं कि तेरा मुंह मेरी मुत्रेन्द्रिय की भांति दिखाई देता हैं। इससे अगले मन्त्र २४ में लिखा है कि यज्ञ का ब्रह्मा यजमान की स्त्री से कहता है कि जब तेरे माता पिता ने पलंग पर चढ़ कर पिता से मुट्ठी के समान अपनी मूत्रेन्द्रिय को तेरी माता के मूत्रेन्द्रिय में प्रवेश किया तो तेरी उत्पत्ति हुई। इस प्रकार उस पर उसने भी कहा कि तेरी उत्पत्ति भी इसी प्रकार हुई है। अनेक मन्त्र यजुर्वेद के महीधर भाष्य में विद्यमान हैं जिनका अर्थ महीधर ने बहुत ही बुरा और चरित्र हीनता को फैलाने वाला किया है मैं

बहुत से और भी मन्त्र सनातन धर्म के भाष्य में से प्रस्तुत कर सकता था किन्तु इस प्रकार की बात लिख कर अधिक कीचड़ नहीं उछालना चाहता था हमारे सनातन धर्मी पण्डितों को चाहिए कि दूसरों पर चरित्र हीनता की शिक्षा का आरोप लगाने के स्थान पर सनातन धर्म के ग्रन्थों में चरित्रहीनता की शिक्षा को दोष मुक्त करने का प्रयास करे और ये तभी ही हो सकता है जब आप पौराणिकों को छोड़ कर वैदिक धर्म की शरण में आ जायें परमात्मा आपको बुद्धि प्रदान करे।

प्रश्न १०—स्वामी दयानन्द ने अपने वेद भाष्य में लिखा है कि "पुरुष लिंग को योनि में प्रवेश करे" वाह कैसी गन्दी और अशिष्ट शिक्षा है। आर्य समाज को इस प्रकार की शिक्षा का प्रचार करते लज्जा आनी चाहिये।

उत्तर—पण्डित जी महाराज यह गन्दी शिक्षा नहीं है प्रत्युत संतान उत्पन्न करने की विधि का वर्णन है। यदि वेद ही सन्तान उत्पन्न करने का प्रकार नहीं बतायेगा तो फिर और कौन बतायेगा ? और यह भी विचारणीय है कि सनातन धर्म को इस पर क्या आपत्ति है ? पण्डित जी का यह दायित्व था कि वह स्वामी दयानन्द के अर्थों को अशुद्ध या अनुचित सिद्ध करते अन्यथा वेद में यदि ऐसा उल्लेख है तो वेद सनातन धर्म और आर्य समाज के लिए समान रूप से प्रमाणित हैं पण्डित जी स्वामी जी के अर्थों को त्रुटि पूर्ण सिद्ध कर ही नहीं सकते। क्योंकि इसका अर्थ सनातन धर्म के टीकाकार महीधर ने वही किया है जो स्वामी जी ने किया है। और इस मन्त्र का कुछ अन्य अर्थ भी नहीं हो सकता है। लीजिए हम महीधर का अर्थ नीचे प्रस्तुत कर रहे हैं—

यजुर्वेद अध्याय १९ में लिखा है कि पुरुष की इन्द्रिय स्त्री की जनेन्द्रिय में प्रवेश होकर वीर्य स्राव करती है स्त्री का मूत्र बहिर्गमन का मार्ग दूसरा है। आगे कहा है कि जरायु से वेष्ठित गर्भ प्रसव के उपरान्त जरायु से पृथक हो पाता है। उपरोक्त वेद मन्त्र के द्वारा ईश्वर ने मनुष्यों कोसन्तानोत्पत्ति की यह शिक्षा दी है। जो मूलरूप में अत्यन्त आवश्यक है। इसके द्वारा प्रथम शिक्षा तो यह दी गई है कि पुरुष को अपनी इन्द्रिय स्त्री की जनेन्द्रिय में ही प्रवेश करना उचित है अन्य किसी स्थान में मुंह नाक कान गुदा आदि द्वारा इन्द्रिय का दुरुपयोग करना उचित नहीं। आपको यह शिक्षा या नसीहत इसलिये आपत्ति कारक या अश्लील अनुभव हो रही है क्योंकि सनातन धर्म के ग्रन्थों में स्वाभाविक और प्राकृतिक शिक्षा के स्थान पर ऊटपटांग उल्लेख देखा जाता है। देखिये भाविष्य पुराण ब्रह्मपर्व अध्याय ७९ श्लोक ५५ व ५६ इसमें लिखा है कि सूर्य ने अपना शिश्न (लिंग) अपनी स्त्री के मुख और नाक में प्रवेश किया इसी प्रकार श्रीमद्भागवत स्कन्ध ११ अध्याय २० श्लोक २६ में उल्लेख है कि राक्षस लोगों ने ब्रह्मा की गुदा में शिश्न प्रवेशार्थ पीछा किया। अनेकानेक कथाएं इस प्रकार की पुराणों में भरी पड़ी हैं। जिनमें इस प्रकार का वर्णन है कि जनेन्द्रिय के अतिरिक्त अन्य स्थानों में शिश्न का प्रवेश किया। लोग कहीं ऐसा पाप कर्म न करें इसलिये वेद ने सृष्टि के आदि काल में ही मानव जाति के लिये सन्तानोत्पत्ति हेतु यह शिक्षा देना आवश्यक समझा।

इसके अतिरिक्त उससे दूसरी शिक्षा यह भी मिलती है कि जनेन्द्रिय भी पुरुष के लिये स्त्री की ही हो अन्य किसी पशु आदि की नहीं-खेद की बात तो यह है कि पुराणों के समर्थकों को यह प्रजनन विज्ञान या शिक्षा आपत्तिजनक लगती है। क्योंकि पुराणों में पशु आदि के साथ भी इन्द्रिय दुरुपयोग के उदाहरण मिलते हैं। जैसे शृंगि ऋषि हिरणी के और कर्णादि उलूकी के उदर से उत्पन्न हुए और वज्रसूची उपनिषद में मण्डूक ऋषि मेढ़क और गौतम ऋषि खरगोश के उदर से उत्पन्न हुए। विचार का स्थल है कि इन सब के पिताओं ने क्या इन पशु मादाओं से सन्तानोत्पत्ति की थी ? उपर्युक्त वेद मन्त्र से तीसरी एक शिक्षा का और संकेत है कि स्त्री के साथ सन्तानोत्पत्ति क्रिया उस समय की जावे जब कि ऋतु के भी अनुकूल हो। ऋतु के विपरीत न हो किन्तु सनातन धर्म में इस बात का ध्यान नहीं रखा गया है अन्यथा देखिये बालमीकि रामायण बाल काण्ड सर्ग ४८ में इन्द्र गौतम रूप धारण कर उसकी स्त्री

अहिल्या के पास जाकर और अन्दर ले जाकर उससे कहा कि कामासक्त अवस्था में लोग ऋतु का विचार नहीं करते संयम की प्रतीक्षा नहीं करते। अहिल्या ने प्रसन्नता पूर्वक बिना ऋतु के सहवास किया। अन्यत्र भी इस प्रकार के अनेकों उदाहरण हैं। इसके अतिरिक्त इस वेद मन्त्र के द्वारा चौथी शिक्षा यह भी मिलती है कि स्त्री जनेन्द्रिय से बाहर मूत्र का निर्गमन किया जाता है मनुष्य शरीर का सार वीर्य का बहिर्गमन अन्य किसी प्रकार से नहीं। सनातन धर्म में इस पर भी कोई बन्धन या प्रतिबन्ध नहीं है देखिये शिवपुराण एवं रुद्रसंहिता सती खण्ड अध्याय १६ में लिखा है कि ब्रह्मा जब सती का विवाह शिव से करा रहे थे तो उनका सती को देख कर वीर्य पात हो गया। इसी प्रकार शिव पुराण शतरुद्र संहिता अध्याय २० में लिखा है कि महादेव मोहिनी के पीछे भागे तो उनका वीर्य पात हो गया जो नारद बन गया। आशय यह है कि यह रोग पौराणिक ऋषियों में सामान्य रूप में लिखा हुआ पाया जाता है। इसके अतिरिक्त उपर्युक्त वेद मन्त्र से एक पांचवीं शिक्षा और भी मिल जाती है कि कोई जनेन्द्रियों में मूत्र विसर्जन न करे इत्यादि-इत्यादि यदि पौराणिकों को इस प्रकार की शिक्षाएं अच्छी न लगें तो यह किसका दोष कहा जावेगा ? ईश्वर इन्हें सदबुद्धि दे जिससे यह वेदों पर श्रद्धा करके उन पर व्यर्थ के आरोप लगाने से बाज आवें।

प्रश्न ११—स्वामी जी ने यजुर्वेद भाष्य में लिखा है कि अय मनुष्यो ! तुम समृद्धिशाली बनने के लिये बैल से भोग करो ! ओ हो यह कैसी अश्लील शिक्षा दी है।

उत्तर—ज्ञात होता है कि पण्डित जी ने वेद भाष्य के दर्शन किये बिना ही इस प्रकार का आरोप घड़ लिया है। यदि पण्डित जी ने स्वामी जी के भाष्य को देखा होता तो इस प्रकार का भ्रान्ति पूर्ण ऊटपटांग प्रश्न नहीं करते। देखिये स्वामी जी महाराज ने यजुर्वेद अध्याय २१ मन्त्र ६० का भाष्य करते हुए स्पष्ट लिखा है कि समृद्धि के लिये (वृषभ) बैल का भोग करो अर्थात् उपयोग करो इसका तात्पर्य है कि उचित उपयोग लें। वास्तव में देखा जावे तो भोग का अर्थ ही उचित उपयोग के हैं। यदि कोई कहता है कि अमुक राजा राज्य का भोग कर रहा है इसका अर्थ मैथुन कर्म नहीं प्रत्युत उचित उपभोग पर प्रयोग के हैं यदि भोग का अर्थ मैथुन कर्म ही लिया जावे तो पुजारी बाबा देवीदेवताओं को भोग लगा रहा है इस वाक्य का क्या अर्थ लिया जावेगा ? क्या इसका अभिप्राय यह लिया जावेगा कि वह देवीदेवताओं से मैथुनकर्म कर रहा है ? कदापि नहीं ! उनको भोजन करा रहा है इसका यहां यही अर्थ लिया जावेगा। पशुओं आदि के साथ मैथुन कर्म के स्वप्न सनातन धर्म वालों को ही आ सकते हैं उनके पुराण इसी प्रकार की शिक्षा देते हैं। अभी १०वें प्रश्न के उत्तर स्वरूप पर्याप्त प्रमाण पीछे दिये जा चुके हैं यदि पुनः आपकी इच्छा हो तो देखें महाभारत में आया है कि राजा पाण्डु आखेट के लिए गए और एक हिरण पर तीर प्रहार कर दिया कि क्या देखते हैं कि एक ऋषि कन्दम पैर में पट्टी बांध रहे हैं। तब उन्होंने बताया कि मैं कदंम ऋषि हूं मेरी स्त्रियों से तृप्ति न होने से हिरणियों से भोग करता फिर रहा हूं। तूने मुझे मैथुन कर्म के समय मारा है तेरी मृत्यु भी ऐसे ही इसी प्रकार होगी इत्यादि इस प्रकार की अनेकानेक कहानियां पुराणों में भरी पड़ी हैं। पौराणिक पण्डितों का इस प्रकार का दुष्प्रयत्न कि पुराणों की अश्लीलता का यह कलंक वेदों पर भी लगावें नितान्त निरर्थक एवं निर्मूल है।

प्रश्न १२—स्वामी जी ने लिखा है कि बच्चे के उत्पन्न होने पर माता ६ दिन दूध पिलाये और उसके पश्चात धाय अपना दूध पिलावे और प्रसूता अपने स्तनों पर ऐसी औषधि लगाये जिससे दुग्ध स्रवित न हो। यह कितनी बुरी बात है कि स्तनों पर औषधि का उपयोग सम्भवतः उनके कठोर बने रहने के लिये किया जाता होगा, यह कौन से वेद की आज्ञा है ?

उत्तर—पण्डित जी महाराज पहले स्वामी जी के लेख को पढ़ लिया करो फिर आपत्तियां उठाया करो। स्वामी जी ने धाय का रखना अनिवार्य नहीं बताया प्रत्युत परिस्थिति अनुसार यथावश्यक उल्लेख किया हैं। और उसका हेतु यह दिया हैं कि बच्चे के शरीर का पोषण माता के शरीर द्वारा होता है। इसलिए संतान उत्पन्न होने पर माता का स्वास्थ्य प्रभावित होता है। इसलिये यदि धाय अपना दूध पिलायेगी तो उसका स्वास्थ्य समुन्नत हो जावेगा और वहां पर आगे यह भी लिखा है कि यदि धाय न मिले या सुविधा न हो तो बकरी आदि का दूध पिलायें और यदि यह भी प्रबन्ध न हो सके तो जैसी सुविधा सामर्थ्य हो वैसी व्यवस्था करे भला बताइये उसमें आपत्ति की क्या बात है? धाय के विषय में यजुर्वेद अध्याय १२ मन्त्र २ में आया है कि जैसे जितनी माता और धाय बालक को दूध पिलाती हैं वैसे ही दिन और रात्रि सब को स्वास्थ्य प्रदान कर पोषण करते हैं। इस मन्त्र में स्पष्ट रूप से धाय के द्वारा दुग्ध पिलाने की चर्चा की गई है। इसकी पुष्टि चिकित्सा विज्ञान के चरक और सुश्रुत आदि ग्रन्थ भी करते हैं। इस बात की चर्चा गरुड़ पुराण आचार्य खण्ड अध्याय १७२ श्लोक १३ तथा १५ में भी इस प्रकार की गई है कि विदारी-कन्द का रस और मूंग की दाल से धाय के दूध की शुद्धि होती है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि आवश्यकता पड़ने पर धाय द्वारा दूध पिलाने का समर्थन गरुड़ पुराण का कर्त्ता भी स्वीकार करता है। और फिर आगे गरुड़ पुराण का कर्ता लिखता है कि यदि धायके स्तनों में दूध कम हो तो बकरी और गाय का दूध बालक को पिलाना चाहिये। इससे यह विषय पूर्णतया स्पष्ट हो जाता है कि जब बच्चे की माता बच्चे को अपना दूध पिलाना बन्द कर उसे धाय दूध पिलाने लगेगी तो माता स्वयं अपने दूध को स्रवित होने से बचाने के लिये अवश्य किसी ऐसी औषधि का उपयोग करेगी जिससे दूध स्रवित न हो।

आजकल भी देखा जाता है कि जब मां बच्चे से अपना दूध छुड़ाती है तो कुछ न कुछ स्तनों पर लेप अवश्य करती है। आपके दृष्टिकोण से भागवत के लेख के अनुसार कृष्ण जी का परिवर्तन नन्द जी की पुत्री से हुआ और नन्द की पुत्री को कंस ने मार दिया तो यशोदा ने धाय के स्थान पर कृष्ण को अपना दूध पिलाते हुए उनका पोषण किया और उस समय देवकी ने अपने दूध को स्रवित न होने की दृष्टि से अवश्य कोई औषधि का उपयोग किया होगा। यही स्वामी जी ने लिखा है कि दूध को बन्द करने के लिये माता अपने स्तनों पर किसी औषधि का लेप करे जिससे दूध स्रवित न होता रहे। अब रहा आपका यह व्यंगतापूर्ण आरोप कि स्तनों को कठोर करने के लिए औषधि प्रयोग लिखी हैं तो पण्डितराज जी इस प्रकार की अंगो को कठोर करने वाली औषधि तो पुराणों में ही मिल सकती है। यदि आपको इस प्रकार के योगों पर अभिरुचि हो तो लीजिये सेवा में यह भी प्रस्तुत है। गरुड़ पुराण आचार खण्ड अध्याय १७२ श्लोक ४ में लिखा है कि बेंरी के पत्तों के लेप से विदीर्ण और लोध तथा लोनी के प्रयोग से स्त्री की शिथिल इन्द्रिय भी कठोर हो जाती है। और आगे अध्याय १७६ में लिखा है कि यदि तिल और सेंधा नमक का प्रयोग अनुत्थित इन्द्रिय या स्तनों पर किया जावे तो यह समुन्नत हो जाते हैं इत्यादि-इत्यादि गरुड़ पुराण में बीसियों ऐसे प्रयोग वर्णित हैं यदि आवश्यकता हो तो खोल कर देख लो। यदि इसका नाम असभ्यता परक शिक्षा है तो यह शिक्षा गरुड़ पुराण में तो यत्रतत्र पर्याप्त मात्रा में प्राप्त की जा सकती है। मैं आशा करता हूं कि आपके प्रश्नों का यथोचित समाधान और आपकी सन्तुष्टि हो गई होगी। किन्तु पण्डित जी मैं आपको एक सत्परामर्श देना चाहूंगा कि व्यर्थ में यूं ही वाद-विवाद में पड़ना उचित नहीं होता जिसके विषय में सामान्यत: किसी को सन्देह भी उत्पन्न होने की आशंका न हो यदि आपको शास्त्रार्थ करने की उत्कट इच्छा है और आप उससे पिण्ड नहीं छुड़ाना चाहते तो स्पष्ट उद्घोष के साथ आह्वान या चुनौती को स्वीकार करें और मैदान में आवें और उपर्युक्त विषयों पर शास्त्रार्थ करें जिसमें आर्य समाज और सनातन धर्म का परस्पर विरोध है अन्यथा व्यर्थ इधर-उधर की बातों में समय नष्ट करना बुद्धिमानी का कार्य नहीं और न इससे कोई लाभ ही है।

प्रमाण अब तक नहीं दिया, एक विधवा स्त्री, दो अपने लिए तथा दो-दो और अन्य चार पुरुषों के लिये सन्तान पैदा करे, इसका भी जवाब नहीं दिया। बलि वैश्वदेव के मन्त्र **"सानुगाय इन्द्राय नमः······"** किस वेद का है? अभी तक नहीं बताया, हमारा दावा है कि—आर्य समाजी केवल वेद—वेद चिल्लाते हैं, लेकिन एक बात को भी वेद से सिद्ध नहीं कर सकते।

श्री पण्डित लोकनाथ जी तर्क वाचस्पति—

सज्जनों मैंने पहली बार ही कहा था कि—पण्डित जी अपना पक्ष स्थापन करें, लेकिन पक्ष स्थापन करना कोई आसान काम नहीं है। न्याय के पांच अंग है, यथा—(१)—प्रतिज्ञा, (२)—हेतु, (३)—उदाहरण, (४)—अनुनय, (५)—सिद्धान्त ! अर्थात् (१)—दावा, (२)—दलील, (३)—मिसाल, (४)—मिसालकी मुताबिकत, (५)—परिणाम, अर्थात् उदाहरण के लिए "**दावा**"—कि इस पहाड़ में आग है, "**दलील**"—क्योंकि धुंआ निकल रहा है, "**मिसाल**"—जहां जहां धुंआ होता है वहां, वहां अग्नि अवश्य होती है। जैसे रसोई में, "**मिसाल की मुताबिकत**"—जहां आग नहीं होती वहां धुंआ भी नहीं होता, "**परिणाम**"—इसलिए "**पहाड़ में अवश्य ही आग है**"। यह है न्याय का प्रकार, इसी प्रकार आप सिद्ध करें कि—स्वामी दयानन्द कृत ग्रन्थ वेद विरुद्ध हैं, जब तक आप अपना पक्ष प्रस्तुत न करेंगे, शास्त्रार्थ आगे चल ही नहीं सकता। आप बार-बार कहते हैं कि,—"**स्वामी दयानन्द ने चोटी कटाना लिखा है**" आप कृपा करके इसी प्रकार इसी बात को ही प्रमाणित करें कि यह बात कौन से वेद मन्त्र के विरुद्ध है ? स्वामी दयानन्द जी ने मनुस्मृति अध्याय २, श्लोक २१९ का ही अर्थ किया है, जिसमें स्पष्ट लिखा है कि—चाहे सारा शिर मुंडवा दे, चाहे सारे केश रख ले, और चाहे एक चोटी रखकर बाकी सारे बाल मुंडवा देवे, यही स्वामी दयानन्द जी ने लिखा है, कि अपनी इच्छानुसार ये देश, काल और परिस्थिति पर निर्भर है। यदि ज्यादा गर्मी हो तो चोटी समेत मुंडवा दो। और अधिक सर्दी हो तो चाहे सारे केश रखवा लो और यदि न ज्यादा गर्मी और न ज्यादा सर्दी हो तो चोटी रखकर सारे (शेष) केश कटवा दो। नियोग के विरुद्ध आपने प्रश्न किया है, श्री मान् जी यदि नियोग को उड़ा दिया जावे तो महाभारत में सामान्यतया एक की भी उत्पत्ति का पता नहीं मिलेगा। अब रही सृष्टि के आदि में युवा पुरुषों के उत्पन्न होने की बात ! तो इसके सिद्ध करने का दायित्व हमारा नहीं है। क्योंकि तब तक हम वेद का प्रमाण ढूंढ़ कर प्रस्तुत नहीं कर सकते जब तक कि सनातन धर्म के पण्डित यह सिद्ध न कर दें कि—वेद में सृष्टि के आरम्भ में बाल या वृद्ध पैदा हुए थे ऐसा लिखा हुआ है। किन्तु फिर भी हम उनकी सन्तुष्टि के लिए वेद का प्रमाण प्रस्तुत करते हैं। देखिये—"**यजुर्वेद अध्याय-३१ का मन्त्र-९,**" में, महीधर ने स्पष्ट कहा है कि—"**सृष्टि के आदि में इस प्रकार के ऋषि पैदा हुए जो सृष्टि उत्पन्न करने में सर्वथा समर्थ थे**" अब बताओ कि बच्चे या बूढ़े तो सृष्टि उत्पत्ति के योग्य नहीं होते। इससे स्पष्ट विदित होता है कि—"**युवावस्था में ही उत्पन्न हुए थे**" जिस प्रकार मैंने उक्त विषय में वेद का प्रमाण दिया, इसी प्रकार अन्य सभी प्रश्नों का उत्तर सप्रमाण दिया जा सकता है, परन्तु पहले पण्डित जी को वेद का प्रमाण देकर यह सिद्ध करना चाहिये कि—"**स्वामी दयानन्द कृत ग्रन्थ कैसे वेद के विरुद्ध हैं ?**" मैं पुराणों के विषय में प्रश्न करना, इस बार छोड़ता हूं, आशा है श्री पण्डित जी, न्याय शास्त्र के अनुसार अपने पक्ष की स्थापना करके स्वामी दयानन्द कृत ग्रन्थों को वेद विरुद्ध होना सिद्ध करेंगे।

श्री पण्डित श्री कृष्ण जी शास्त्री—

भाइयो ! स्वामी दयानन्द ने युग परिवर्तन लिखा है, इसका कोई प्रमाण प्रस्तुत नहीं किया, दूसरे-सृष्टि तिब्बत में पैदा हुई इसका कोई प्रमाण नहीं दिया। वेद में चोटी की आज्ञा लिखी है देखिये—"**यजुर्वेद अध्याय १७**

का मन्त्र संख्या ४८ यथा "**यत्र बाणाः सम्पतन्ति कुमारा विशिखा ऽ इव तन्तद्व्दो बृहस्पतिरदितिः शर्म यच्छतु विश्वाप्त शर्म यच्छतु ।।**" अर्थात् कि बाण इस तरह गिरते हैं जैसे अनेक चोटियों वाले ब्रह्मचारी इधर-उधर दौड़ते हों। इसलिए सिर के मुंडवाने से बुद्धि का विनाश होता है। देखो—"**सरदार दिलीप सिंह जी, जो हाई कोर्ट के जज हैं, केशों के रखने के कारण कितने बुद्धिमान है ?**" (जनता में हंसी······) भाईयों इसमें हंसने की बात नहीं है, ये वास्तविकता है, दूसरे मैंने कितनी बार पूछा है कि, स्वामी दयानन्द ने संस्कार विधि में लिखा है कि— "**नई ब्याही हुई स्त्री के पास दुष्टा और बदमाश स्त्रीयां जावें और उसको अपना तेज देकर वापिस चली आवें, फिर पुनः कभी न जावें**"। मैं पूछता हूं बदमाश स्त्रीयां सिवाय बदमाशी के और क्या तेज प्रदान कर सकती हैं ? इसके अतिरिक्त मैंने पूछा था कि एक विधवा स्त्री दो औलाद अपने लिए और दो-दो अन्य चार व्यक्तियों के लिए सन्तान पैदा करे, क्या ही मजाक है, सच तो यह है कि, आर्य समाज की किताबों में दुराचार की शिक्षाएं भरी पड़ी हैं।

श्री पण्डित लोकनाथ जी तर्कवाचस्पति—

अब जरा पण्डित जी रास्ते पर आये हैं और यह प्रमाण प्रस्तुत किया है कि, "**वेद में चोटी रखाना लिखा है और स्वामी दयानन्द ने चोटी कटाना लिखा है**" इसलिए स्वामी दयानन्द कृत ग्रंथ वेद विरुद्ध है, श्रीमान् यदि पहले ही इसी तरह चलते, तो शास्त्रार्थ ठीक तरह से चल पड़ता। अच्छा आपने एक प्रश्न के विषय में ही वेद का प्रमाण देकर अपने पक्ष की स्थापना की है। इसलिए मैं इसी का उत्तर आपको दूंगा - पण्डित जी ! स्वामी दयानन्द के पक्ष को वेद विरुद्ध प्रमाणित करने चले थे, किन्तु स्वामी दयानन्द जी के समर्थन में ही वेद मन्त्र प्रस्तुत कर दिया, जादू वो जो सर चढ कर बोले, लीजिये—जरा "**यजुर्वेद अध्याय १७ मन्त्र १८**" का उत्तर और महिधर का भाष्य निकालिये और देखिए वहां क्या लिखा है ?—"**विशिखा**" का अर्थ "**उव्वट**" जी करते हैं, कि—"**सारे मुंड़े हुए**" और "**महिधर**" जी अर्थ करते हैं कि "**शिखा सहित सारे मुड़े हुए**" अब बताइये कि यह मन्त्र आपके पक्ष को सिद्ध करता है या स्वामी दयानन्द जी के मत को ? आपने न जाने भंग की तरंग में आकर यह मन्त्र कैसे प्रस्तुत कर दिया ? जो आपके ही सर पर तड़ाक से जा पड़ा, इसलिए स्वामी दयानन्द जी का पक्ष वेदानुकूल है और आपका उसके विरुद्ध। आपने सरदार दिलीपसिंह जी की बात खूब कही, शास्त्री जी महाराज ! आपको पता होना चाहिये कि—"**सरदार दिलीपसिंह सरदार नहीं बल्कि ईसाई हैं**" और उनके शिर पर केश ही नहीं हैं······जनता में हंसी ही हंसी······आपने यहां ये बात सिक्खों को भड़काने के लिए कही थी, पर निशाना चूक गया, युक्ति सफल नहीं हुई, उल्टी आपके ही विरुद्ध पड़ गयी, आगे आपने कहा है कि—आर्य समाज में व्यभिचार की शिक्षा भरी पड़ी है। शास्त्री जी ! आर्य समाज में नहीं, बल्कि अगर इस शिक्षा के दर्शन करने हों तो जरा पुराणों को खोल कर देखिये, वहां देखिये, आपके ही घर में इस शिक्षा के लिए क्या कहा गया ? "**भविष्य पुराण में सूर्य की अपनी ही भतीजी के साथ शादी करनी किस तरह लिखी है?**"······बीच में ही शोरोगुल।

नोट—

सभी सनातन धर्मियों ने शोरोगुल मचा दिया, और सनातनी पण्डित कहने लगे कि विषय केवल स्वामी दयानन्द कृत ग्रन्थों पर है, पुराणों पर नहीं, इसलिये यह प्रकरण बन्द किया जावे। पश्चात्त शास्त्रार्थ के प्रधान जी ने दोनों ओर का पत्राचार देख कर निर्णय दिया कि—"**विषय यही है कि स्वामी दयानन्द कृत ग्रन्थ वेद विरुद्ध हैं या अष्टादश पुराण ? इसलिए मैं पुराणों के प्रस्तुत करने की आज्ञा देता हूं**" इस पर श्री पण्डित लोकनाथ जी ने **कहना आरम्भ किया—**

श्री पण्डित लोकनाथ जी तर्कवाचस्पति—

तो भाइयो मैं जो भी कह रहा था, वह विषयान्तर नहीं था, इसलिए अब सुनिये—**"भविष्य पुराण...... तीन, खण्ड ४, अध्याय ८, श्लोक २१ से २८ तक"** में लिखा है कि—विश्वकर्मा के एक लड़की थी, इसका नाम "संज्ञा" था, जब वह युवा हुई तो विश्वकर्मा ने उसके विवाह के लिए स्वयंवर रचाया, इस स्वयम्वर में **"बली"** नाम का राक्षस उस लड़की संज्ञा का अपहरण करके ले भागा। फिर विश्वकर्मा के भाई, अर्थात् संज्ञा के चाचा सूर्य ने संज्ञा को बलि के चंगुल से छुड़ाया, तब संज्ञा अपने चाचा, सूर्य से बोली कि, आपने मुझको बली राक्षस के हाथों से मुक्त कराया है, इसलिए आप मेरे पति बन जाइये, सूर्य ने उत्तर दिया, कि—मैं तो तेरा चाचा लगता हूं इसलिए तेरे साथ विवाह करना उचित नहीं, इस पर संज्ञा ने कहा कि—जो स्त्री ज्ञान वाली हो, वह जिसे चाहे उसे वर ले, वह अगर चाहे तो भाई, पुत्र, पिता ही क्यों न लगता हो ? वह उसका पति बन सकता है। देखो ब्रह्मा ने अपनी पुत्री से, विष्णु ने अपनी माता से, और महादेव ने अपनी बहिन से विवाह करके श्रेष्ठ गति प्राप्त की इस रीति के मुताबिक (अनुसार) सूर्य ने भी अपनी भतीजी से विवाह करके श्रेष्ठ गति को प्राप्त किया था। श्रीमान् जी यह है पुराणों में व्यभिचार। आप कोई वेद का प्रमाण बताइये, जिसमें पुत्री, माता, बहिन, भतीजी से विवाह करने की आज्ञा हो ?······चारों तरफ हंसी का वातावण······ ।

श्री पण्डित कृष्ण जी शास्त्री—

मेरे प्रश्नों का उत्तर बिल्कुल नहीं दिया गया है। मेंने कहा था कि—**दुष्टा स्त्रियां नई विवाहिता स्त्री को क्या तेज देवें ?"** इस प्रश्न को छुआ तक नहीं, और भंग की बात कह दी ! भाइयो पण्डित जी को पता होना चाहिये कि भंग तो स्वामी दयानन्न जी भी पिया करते थे। जब वह भंग पीकर नादिय बैल में घुस गये थे। स्वामी दयानन्द जी तो नाचा भी करते थे, कैसी बुरी बात है ? नामकरण संस्कार में घी और शहद बराबर मिला कर बच्चे की जिह्वा पर ओ३म् लिखें, इस प्रकार बच्चे को मारने की शिक्षा दी है, क्योंकि घृत और शहद बराबर मिल कर जहर (विष) हो जाता है, स्वामी दयानन्द ने लिखा है कि, यदि गर्भवती से न रहा जाये तो वह दूसरे व्यक्ति से नियोग द्वारा सन्तान उत्पन्न कर ले, कितनी लज्जा की बात है ? इसी को व्यभिचार कहते हैं।

श्री पण्डित लोकनाथ जी तर्कवाचस्पति—

बन्धुओ पण्डित जी महाराज ने जो जो पक्ष स्थापित किया था, मैंने उनका उत्तर दे दिया था, शेष सैद्धान्तिक प्रश्नों का उत्तर भी इसी प्रकार जान लेना चाहिये, संस्कार विधि में जो दुष्टा स्त्रियों का नवविवाहिता के पास जाना लिखा है, इसका आशय यह है कि जो स्त्रियां पहले दुराचारिणी हों, और बाद में संभल कर सदाचारिणी बन गयी हो, वो जाकर नवविवाहिता को समझा दे, जिससे वो उनके जीवन से लाभ उठा सकें, और सदैव दुराचार से बची रह सके। जहां तक भंग की बात है कि स्वामी जी भांग पीते थे, तो स्वामी जी जब सनातनधर्मी थे, तब तक भंग पीते थे, क्योंकि सनातनधर्मियों का विचार है कि भांग उनके शिव की बूटी है। शिव जी महाराज स्वयं पिया करते थे। इसलिये शिव के भक्तों को भी (प्रसाद के रूप में) पीनी चाहिये, मैं सनातन धर्म के सारे पण्डितों को और सारे विद्वानों को चैलेञ्ज के रूप में आवाहन करता हूं कि वो दिखाएं, कि स्वामी दयानन्द ने श्री स्वामी विरजानन्द जी से शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् कभी भी भंग का प्रयोग किया हो ! तुम्हारा नाचने का आरोप भी मिथ्या है, अगर नाचना बुरा है तो, महाराज कृष्ण के नाचने को बुरा क्यों नहीं मानते ? जैसा कि आर्य समाज कृष्ण को योगी और महापुरुष मानते हैं, (इसी बीच श्री पण्डित लोकनाथ जी ने

पौराणिकों में प्रचलित कृष्ण चीर हरण लीला का चित्र जनता को दिखाया, जनता जिससे बड़ी उत्तेजित हो गयी, और सनातन धर्मी भी चीख उठे फिर शान्त होने पर पण्डित लोकनाथ जी ने कहना प्रारम्भ किया) कि—घृत और मधु को बराबर मिलाने से अभिप्राय यह है कि यथोचित मात्रा में मिलाया जाये। पण्डित जी ! आप कितना बड़ा झूठ बोलते हैं ? नियोग के सम्बन्ध में आपने कहा है, जरा सत्यार्थ प्रकाश को पढ़ो तो सही ! वहां गर्भवती को नियोग करना कहां लिखा है ? वहां तो यह लिखा है कि—"**गर्भवती स्त्री के पति से अथवा जीर्ण रोगी पुरुष की स्त्री से न रहा जाय तो वह नियोग करके सन्तान पैदा करे**" गर्भवती से समागम तो सनातन धर्म की दृष्टि से ही उचित हो सकता है, देखिये महाभारत आदिपर्व अध्याय १०४, श्लोक ६ से यह कथा प्रारम्भ होती है, उत्तिथ्य नाम का एक ऋषि था, उसकी स्त्री का नाम ममता था, वह गर्भवती थी, उत्तिथ्य ऋषि तप करने चले गये, तब उनकी अनुपस्थिति में उनका छोटा भाई जिसका नाम बृहस्पति था, और सनातन धर्म के देवताओं का गुरू भी था, उसकी ममता पर बुरी दृष्टि हो गई, और समागम करने को उद्यत हुए देख कर ममता ने बृहस्पति को समझाया कि—"**तेरे भाई का गर्भ मेरे पेट में पहले से ही विद्यमान है, और दूसरे गर्भ के धारण करने की क्षमता मुझ में नहीं है, तुम्हारावीर्य भी अमोघ है, इसलिए मुझ पर कृपा करो**" किन्तु बृहस्पति, ममता की प्रार्थना पर भी नहीं टल सका, यह देख कर अन्दर से गर्भ का बालक बोला—"**चाचा जी जाने भी दो, मैं यहां पहले से ही बहुत दुखी हूं यहाँ दो के लिए स्थान नही है।**" किन्तु बृहस्पति ने एक भी बात न सुनी और समागम में लीन हो गया, जब वीर्यपात का समय निकट आया तो गर्भ के अन्दर वाले लड़के ने अन्दर से योनिद्वार पर पैर की एड़ियां जोड़ कर लगादी और रास्ते को बन्द कर दिया। परिणाम स्वरूप वीर्यपात भूमि पर हो गया, जब बृहस्पति ने यह देखा तो फौरन शाप दे दिया। कि—हे भतीजे ! तू अन्धा पैदा होगा, इसी शाप के कारण वह गर्भस्थ बालक अन्धा पैदा हुआ, जो "**दीर्घतमा**" ऋषि के नाम से विख्यात हुआ, श्रीमान् जी, यह है पुराणों की शिक्षा ! आप जरा इसकी वैज्ञानिकता का बखान करें तो हम जानें।

श्री पण्डित श्रीकृष्ण जी शास्त्री—

मैंने जो प्रश्न किये थे, उनमें से एक का भी उत्तर नहीं दिया गया, आर्य समाज की शिक्षा कितनी गन्दी है ? जरा देखिये—स्वामी दयानन्द ने वेद भाष्य में लिखा है कि, ईश्वर की प्राप्ति के लिए—"**बैल से भोग करे**" और वेद भाष्य करते हुए लिखा है कि—"**लिङ्ग को योनि में प्रवेश करो**" स्वामी दयानन्द जी का जीवन भी ऐसा ही था, जब वह छोटे ही थे, तो उन पर एक जमींदार का लड़का आसक्त था, वह उन्हें लेकर भाग गया था...... शोरोगुल...... ।

नोट—

बीच में ही उपर्युक्त घटनाओं के विषय में श्री प्रधान जी ने इन उपरोक्त बातों का आधार पूछा ? तो पण्डित जी बोले—"**यह पुस्तक जियालाल जैनी की बनाई हुई है, इसमें लिखा है**", उसके बाद पण्डित जी ने कहा—

श्री पण्डित श्रीकृष्ण जी शास्त्री—

स्वामी जी भंग पीते थे, उन्होंने रमाबाई से पत्र व्यवहार किया था, स्वयं किराया देकर उसे बुलाया था, और महीनों तक वह स्वामी दयानन्द जी से पढ़ती रही। और अन्त में स्वामी जी के विचारों से सहमत न होकर ईसाई हो गयी, यह है आर्य समाज, और ऋषि दयानन्द का जीवन ! सब को समझ लेना चाहिये। लोगों को आर्य समाज के फन्दे में नहीं आना चाहिये।

श्री पण्डित लोकनाथ जी तर्कवाचस्पति—

सज्जनो जिन-जिन प्रश्नों को पण्डित जी ने न्याय के अनुसार स्थापित् किया है, उनका उत्तर मैंने भली प्रकार पण्डित जी को दे दिया है, शेष प्रश्नों का उत्तर भी उसी प्रकार जान लें। सिर पर चोटी रखें या न रखें? यह देश, काल और ऋतु पर निर्भर है। यह वेद का प्रमाण पण्डित जी ने स्वयं ही उपस्थित किया है, जो हमारे पक्ष में है, इसी प्रकार सनातन धर्म प्रतिपादित वेद भाष्य के भाष्यकार आचार्य महीधर जी ने सृष्टि की उत्पत्ति के विषय में, कि—"**युवावस्था में ही प्राणी** उत्पन्न हुए" लिखा है। जिसे दिखाया भी जा चुका है। यदि आपके कथनानुसार स्वामी जी ने वेद भाष्य में अश्लीलतापरक वर्णन किया है कि—"**लिङ्ग को योनि में प्रवेश करें**" तो उसमें क्या बुराई है? वेद सब विद्याओं की पुस्तक है, बीज रूप से सब विद्याओं का वर्णन है। वहाँ गर्भ धारणविद्या का निर्देश भी आवश्यक है, यदि यह स्वामी जी ने आपके कथनानुसार गलत लिख दिया है, तो क्या पण्डित जी या अन्य दूसरे सनातन धर्मी लिङ्ग को मुंह में प्रवेश करते हैं?...... हंगामा......इसका एक दूसरा कारण यह भी हो सकता है, कि सनातन धर्म ने तो अपने ऋषि मुनियों की प्रतिष्ठा बढ़ाने के स्थान पर गिराने का ही ठेका लिया हुआ है। पुराणों में देखिये—कहीं कान में गर्भाधान का वर्णन है। कहीं मुख और भिन्न-भिन्न स्थानों में! क्या ऐसे व्यक्तियों के मार्ग दर्शन के लिए गर्भाधान विद्या का वास्तविक रूप में वर्णन आवश्यक नहीं हैं? हां! बैल के भोग द्वारा ईश्वर प्राप्ति की बात यह भी इसी प्रकार की है। प्रथम तो वेद में इस रूप में कहीं वर्णन नहीं है, और यदि भोग शब्द का यदि आप अपने स्वभावानुसार यही गन्दा अर्थ लेना चाहते हैं या ले रहे हैं तो, मन्दिरों में देवी देवता या ठाकुर जी आदि को जो भोग लगाया जाता है, क्या उसका भी यही अर्थ है? क्यों आत्महत्यारे बनते हो? स्वामी दयानन्द जी के प्रति जो कुछ आपने आरोप लगाया है, वह अधर्मी और जैनी पुस्तक का प्रमाण है। आर्य समाज की ओर से लिखी पुस्तक का विवरण नहीं है। जहां तक रमाबाई की बात है? स्वामी दयानन्द जी चाहते थे कि रमाबाई सारी उम्र ब्रह्मचारिणी रह कर स्त्री जाति में वैदिक धर्म का प्रचार करे। इसी उद्देश्य से उन्होंने उसे बुलाया और पढ़ाया भी। किन्तु स्वामी जी का उद्देश्य सफल न हुआ, और रमाबाई ईसाइयों में चली गई, ऋषि दयानन्द के जीवन में सन्देह को स्थान देना महान हिंसा है।

नोट—

इसके बाद शास्त्रार्थ का समय समाप्त हो गया, तदोपरान्त दोनों पक्षों की ओर से धन्यवाद के पश्चात्त शास्त्रार्थ की कार्यवाही समाप्त हुई।

।। आवश्यक निवेदन ।।

माननीय!

पाठक गण!! वैसे तो मेरा निश्चय यही है कि जो भी शास्त्रार्थ विषयक मूल सामग्री है उसे ही मैं प्रस्तुत ग्रन्थ में उद्धृत करूं, परन्तु कुछ विशेष अत्यन्त प्रामाणिक सामग्री जैसे इस शास्त्रार्थ के अन्त में मौजूद है, उसको देने की आवश्यकता मैं इसलिए जरूरी समझता हूं क्योंकि इसमें अनेकों ऐसे विषयों का समाधान है जिनको प्रायः शास्त्रार्थों में सनातन धर्म की ओर से उठाया जाता हैं। हालांकि इन प्रश्नों का उत्तर आर्य समाज की ओर से अनेकों बार अनेकों शास्त्रार्थों के मध्य आ चुका है, तो भी, श्री पण्डित लोकनाथ जी तर्क वाचस्पति जी के कहने का ढंग अन्य

सभी विद्वानों से निराला है। प्रत्येक विद्वान अपनी-अपनी विशेषता अपनी-अपनी जगह पर कुछ अलग ही रखता है। इन्हीं प्रश्नों का उत्तर अगर, श्री पण्डित मनसाराम जी वैदिक तोप या अमर स्वामी जी महाराज द्वारा दिया जाता तो मजा कुछ और ही आता। तो भी प्रस्तुत सामग्री अपने आप में विशेष महत्व रखती है।

आप लोग भी देखें, पढ़ें तथा इस जाखलमण्डी वाले शास्त्रार्थ का विस्तार पूर्वक अध्ययन कर लाभ उठावें। इस शास्त्रार्थ का उल्लेख भी इतिहास में अनेकों स्थानों पर विशेष स्तर पर पाया गया है।

निवेदक—

"लाजपत राय अग्रवाल"

श्री पण्डित लोकनाथ जी तर्कवाचस्पति एवं प्रस्तुत शास्त्रार्थ के विषय में—

प्यारे सत्य के प्रेमी सज्जनों,

पण्डित लोकनाथ जी आर्य समाज के एक प्रसिद्ध वक्ता और शास्त्रार्थों के महारथी पण्डित हैं, सनातन धर्म के प्रायः सभी पण्डितों को पण्डित लोकनाथ जी शास्त्रार्थों में निरुत्तर कर चुके हैं, वे न्याय शास्त्र के धुरन्धर पण्डित हैं, इसलिए उन्होंने इस जाखल मण्डी वाले शास्त्रार्थ में उन्हीं प्रश्नों का उत्तर देना अपना कर्त्तव्य समझा, कि जिन प्रश्नों को सनातन धर्म के पण्डितों ने न्याय की रीती से स्थापन किया, इसलिए सारे प्रश्नों का उत्तर पण्डित जी ने नहीं दिया, इसका यह अर्थ नहीं है कि पण्डित जी उन प्रश्नों का उत्तर नहीं दे सकते थे। प्रत्युत उनका तो यह कहना था कि, जो विषय निर्धारित है, कि—**"स्वामी दयानन्द कृत ग्रन्थ वेद के विरुद्ध हैं या अष्टादश पुराण ?"** तो सनातन धर्म के पण्डित जो कि वादी पक्षीय है कि—**"स्वामी दयानन्द कृत ग्रन्थ वेद के विरुद्ध हैं"** इसलिए उनका दायित्व है कि, वह प्रत्येक प्रश्न पर यह सिद्ध करें कि—**"वेद इस विषय में यह कहते हैं तथा ठीक इसके विपरीत स्वामी दयानन्द यह कहते हैं"** इसलिए स्वामी दयानन्द कृत ग्रन्थ वेद के विरुद्ध हैं। वादी को अपना पक्ष सिद्ध करने के लिए प्रमाणित करने का दायित्व वादी पर ही होता है। प्रतिवादी पर नहीं। इसलिए, उन्होंने श्रीकृष्ण जी शास्त्री को बार-बार सचेत करते हुए आह्वान किया कि, अपने प्रश्नों के साथ वेद के प्रमाण देकर सिद्ध करो कि, ये बातें स्वामी दयानन्द कृत ग्रन्थों में वेद के इन मन्त्रों के विरुद्ध हैं। किन्तु स्वामी दयानन्द कृत ग्रन्थों को वेद के विरुद्ध प्रमाणित करना सूर्य के प्रकाश से निषेध करने के समान था, इसलिए श्रीकृष्ण शास्त्री इस विषय में अपने होठ भी नहीं हिला सके। और अन्त तक एक मन्त्र भी वेद का इस विषय में प्रस्तुत कही किया कि···जिसके विरुद्ध स्वामी दयानन्द जी की किसी बात को कहा जा सके। बड़ी कठिनाई से चोटी के विषय में एक मन्त्र प्रस्तुत करने का साहस भी जुटाया किन्तु वह भी स्वामी दयानन्द के समर्थन में प्रमाणित हुआ और पण्डित श्रीकृष्ण शास्त्री अपने शस्त्र से स्वयं ही परास्त होते हुए बगलें झांकने लगे।

आजकल सभी सनातनधर्मी पौराणिक पण्डित शास्त्रार्थ में अपने बचाव के लिए यह नियम (प्रकार) अपनाया हुआ है कि—वह किसी एक विषय, जैसे उदाहरणार्थ—मूर्तिपूजा, मृतकश्राद्ध, वर्णव्यवस्था, विधवा-विवाह इत्यादि पर शास्त्रार्थ नहीं करते। क्योंकि ऐसा करने से दो घण्टे में शास्त्रार्थ की इति श्री हो जाती है। सिद्धांतों की सत्यता, मिथ्यापन, झूठापन, जनता को तुरन्त विदित हो जाता है। इसलिए हर जगह सनातनधर्मी पण्डित इस आग्रह पर अधिक बल देते हैं कि, हम तो इस विषय पर शास्त्रार्थ करेंगे कि—**"स्वामी दयानन्द कृत ग्रन्थ वेद विरुद्ध हैं"**। आर्य समाज की ओर से सदैव यह कहा जाता है कि, यह कोई हमारा विषय नहीं है, क्योंकि

आर्य समाज जिस प्रकार मनु से लेकर व्यास तक महर्षियों के बनाये ग्रन्थों को परतः प्रमाण मानता है, वैसे ही ऋषि दयानन्द कृत ग्रन्थों को भी परतः प्रमाण मानता है। सनातन धर्म और आर्य समाज का यह एक ही सिद्धान्त है, कि वेद जो कि ईश्वर के ज्ञान का भण्डार है, और ईश्वरीय ज्ञान सन्देह से रहित होता है, इसलिए वेद स्वयं स्वतः प्रमाण है। इसे प्रमाणित करने के लिए किसी प्रमाण की आवश्यकता नहीं है। इसलिए वेदों में जो कुछ भी लिखा है वह अक्षरशः सत्य है। शेष जितने भी ग्रन्थ ब्रह्मा से लेकर ऋषि दयानन्द तक ऋषियों के बनाये हुए हैं वह सब परतः प्रमाण हैं, क्योंकि ऋषि मानव योनि वाले होते हैं, और मानव से त्रुटियां होना सम्भव है, इसलिए उनके ग्रन्थ अगर वह वेदों के अनुकूल हों तो प्रमाण हैं, और वेदों के प्रतिकूल हैं तो प्रमाण नहीं हैं, इसलिए आर्य समाज के लिए यह कोई शास्त्रार्थ का विषय नही है कि—"स्वामी दयानन्द कृत ग्रन्थ वेद विरुद्ध हैं" हाँ इसके लिए आवश्यक है कि, स्वामी दयानन्द कृत ग्रन्थों में जिनमें अनेक सिद्धान्तों का वर्णन किया गया है, उनमें से किसी एक विषय को निर्धारित कर लें, ताकि सैद्धान्तिक कोई निष्कर्ष निकल सके। परन्तु सनातन धर्मी पण्डित एक नहीं सुनते और इसी दुराग्रह पर पड़े रहते हैं, कि हम तो शास्त्रार्थ के लिए यही विषय निश्चय करेंगे। इस विषय के निर्धारित करने का उद्देश्य यह होता है कि दस मिनट में फटाफट आठ-दस प्रश्न कर जायेंगे। और उत्तर देने वाला दस मिनट में सारे प्रश्नों का उत्तर दे नहीं सकेगा। इस पर शोर मचाकर जनता को भ्रमित कर धोखा देकर डींग मारने में सफल हो जावेंगे कि हमारे प्रश्नों का उत्तर नहीं दिया, किन्तु यह चालाकियें हर जगह नहीं चल सकती, और फिर पण्डित लोकनाथ जी तर्क वाचस्पति जी के सम्मुख कैसे सफल हो सकती थी, ? जिनकी आयु ही सारी शास्त्रार्थ करने में व्यतीत हुई हो। वह सनातन धर्म के सभी हथकण्डों से परिचित हैं। इसलिए उन्होंने प्रारम्भ में ही यह बात रखी कि अपना पक्ष स्थापित् करो और वेद का प्रमाण देकर यह सिद्ध करो कि स्वामी दयानन्द की कौन सी बात कौन से वेद मन्त्र के विरुद्ध है? स्पष्ट था कि दस मिनट में कोई भी व्यक्ति दस प्रश्नों को, वेद मन्त्रों को सम्मुख रखकर अपने पक्ष की स्थापना नहीं कर सकता। उसका वही परिणाम निकला कि सनातन धर्म के पण्डित इधर-उधर की बातों में समय नष्ट करते रहे। बुद्धिमानों की दृष्टि में तो इसका बड़ा प्रभाव रहा, किन्तु जन साधारण की दृष्टि से किसी को यह सन्देह न रहे कि, चाहे सनातनधर्म का पण्डित वेद के मन्त्र देकर स्वामी दयानन्द के ग्रन्थों को वेद के विरुद्ध सिद्ध न कर सका, फिर भी जो प्रश्न उसने किये थे, उसका उत्तर अवश्य जनता की दृष्टि में आ जाना चाहिए। इसी बात को लक्ष्य कर अगले पृष्ठों में पूर्ण विवरण के साथ उन प्रश्नों के उत्तर दिये जायेंगे जिससे जन साधारण भ्रांति में भ्रमित न होने पावे। साथ ही सत्य-असत्य के निर्णय द्वारा अपने ज्ञान की वृद्धि भी कर सके। प्रश्नों के उत्तर लिखने से पूर्व यह बता देना भी आवश्यक प्रतीत होता है कि शास्त्रकारों ने किसी सिद्धान्त के सत्य या असत्य होने के परिक्षण के लिए क्या कसौटी निर्धारित की है। इस विषय में मनुस्मृति अध्याय २, श्लोक १२ में मनुजी महाराज निम्न प्रकार लिखते हैं कि—"वेद, स्मृति, सदाचार और अपनी आत्मा के प्रति अनुकूलता" अर्थात् धर्म के जानने के लिए यह चारों प्रकार आवश्यक हैं। अर्थात् धर्म और अधर्म के निर्णय की यह चार कसौटियां हैं, इन चारों प्रकारों से ही मनुष्य किसी बात के विषय में यह निर्णय कर सकता है कि, वह धर्म है अथवा अधर्म ? इन चारों बातों को समझने के बाद व्यक्ति किसी सैद्धान्तिक के भ्रम में नहीं रह सकता। इसका आशय निम्न प्रकार है—

(१) वेद :—

इसमें कोई सन्देह नहीं कि वेद सब सत्य विद्याओं का भण्डार है, किन्तु वेद में प्रत्येक विद्या मूलरूप में वर्णित है। विस्तृत रूप में वर्णित नहीं है। जिस प्रकार का बरगद का बीज इतना सूक्ष्म होता है कि, एक क्रमि (कीड़ा) भी उठाकर चल देता है, इसके विपरीत बरगद का पेंड (वृक्ष) इतना बड़ा होता है कि, उसे हाथी भी नहीं उखाड़ सकता। यह ठीक है कि, वह बरगद का वृक्ष बीज में पहले से ही उपस्थित होता है, लेकिन प्रत्येक

व्यक्ति को दृष्टिगोचर नहीं होता। इसी प्रकार वेद में प्रत्येक विद्या विद्यमान हैं, लेकिन जनसामान्य उसे जानने में समर्थ नहीं होता, ऋषि लोग भी समाधिस्थ होकर ही उसे जान पाते हैं, वेद में वह शाश्वत सिद्धांत स्थित किये गये हैं, जो भूत, भविष्यत्, वर्तमान तीनों कालों में स्थित रहते हैं, और कभी परिवर्तित नहीं होते। वेदों में जिन कार्यों के करने की आज्ञा दी है, वह "**धर्म**" है। और जिन कार्यों के करने का निषेध किया है, वह "**अधर्म**" अर्थात् पाप है। धर्म और अधर्म के निर्णय की यह पहली कसौटी है।

(२) स्मृति :—

स्मृतियों में वेद के मौलिक सिद्धान्तों को विस्तृत व्याख्या के साथ वर्णन किया गया है, जिन कार्यों का वेद में स्पष्ट रूप से वर्णन नहीं मिलता, उनके सन्दर्भ में देश, काल, परिस्थिति के अनुसार नियमों को निर्धारित किया जाता है। किन्तु वे नियम या आज्ञायें वेद के मौलिक सिद्धान्तों के विरूद्ध ना हों, यदि कोई इस प्रकार के नियम व व्यवस्था में वेद के मौलिक सिद्धांत के विरूद्ध हों तो स्वीकार योग्य नहीं होती। जिन आज्ञाओं के विषय में नियमों के सम्बन्ध में चाहे कोई स्पष्ट चर्चा न हो, किन्तु उसके विरूद्ध भी कोई प्रमाण न पाया जाता हो, वो वेद के अनुसार ही स्वीकार किये जाते हैं। इस प्रकार की आज्ञायें या नियम, देश-काल-परिस्थिति के अनुसार परिवर्तन होती रहती है। जिन कार्यों के सम्बन्ध में वेद में कोई स्पष्ट आदेश न पाया जाता हो किन्तु वेद के जानने वाले ऋषियों की बनाई हुई स्मृति में उसका वर्णन किया गया हो, ऐसी अवस्था में वे स्मृतियां जिन-२ कार्यों की आज्ञा दें, वह "**धर्म**" है, और जिन कार्यों का निषेध करें, वह "**अधर्म**" है, इस प्रकार यह, धर्म और अधर्म के जानने की दूसरी कसौटी हुई।

(३) सदाचार :—

सदाचार के अर्थ वेद और स्मृतियों के जानने वाले ऋषि-महर्षियों का आचरण है। यह भी धर्म और अधर्म के जानने की तीसरी कसौटी है। ऋषि-मुनियों का आचरण उसी सीमा तक प्रमाण हो सकता है जिस सीमा तक वह वेद और वेदानुकूल स्मृतियों पर आधारित हो, किन्तु जहां वह वेद और वेदानुकूल स्मृतियों के विरूद्ध हो वहां किसी प्रकार भी प्रमाण नहीं माना जावेगा। हाँ जिन कार्यों के सम्बन्ध में न तो वेद में कोई स्पष्ट आज्ञा मिले और न ही वेद के जानने वाले ऋषियों ने अपनी स्मृति में कोई व्यवस्था दी हो, ऐसी दशा में यह देखना आवश्यक होगा कि वेद और स्मृतियों के जानने वाले ऋषियों ने ऐसे अवसरों पर क्या आचरण किया? वह उनका आचरण भी स्वीकार किया जावेगा। ऐसी दशा में ऋषियों मुनियों के इस आचरण के अनुसार जो कार्य किया जावेगा वह "**धर्म**" और उसके विपरीत "**अधर्म**" होगा।

(४) अपनी आत्मा की अनुकूलता :—

यह चौथी कसौटी धर्म-अधर्म के पहचानने की है, जो अपनी आत्मा की आवाज के अनुसार है। किन्तु वह आत्मा की आवाज की अनुसारता वेद और स्मृतियों के आदेश और वेद और स्मृतियों के जानने वाले ऋषियों के व्यवहार आचरण विरुद्ध न हों। हाँ जिन आज्ञाओं के सम्बन्ध में वेद के अन्दर स्पष्टतया चर्चा न हो, और स्मृतियों में भी उनके सम्बन्ध में उल्लेख न हो, और ऋषियों के व्यवहारिक आचरण से भी पता न चले तो ऐसी स्थिति में उन कार्यों के सम्बन्ध में युक्ति, बुद्धि, और आत्मा की आवाज के अनुसार ही निर्णय किया जाना चाहिए, यह प्रमाण भी वेदों के अनुकूल ही माना जावेगा। इस नाते, बुद्धि, युक्ति, और आत्मा की आवाज के अनुसार, वह धर्म और

प्रश्न १३—जाखल शास्त्रार्थ में सनातन धर्म की ओर से आर्य समाज पर जो भी प्रश्न किये गए थे उन सबका उत्तर दिया जा चुका हैं। अब कुछ इस प्रकार की बातें रह गई हैं। जो स्वामी जी महाराज के अपने जीवन के सम्बन्ध में सनातन धर्म के पण्डितों ने कही हैं। उनके सम्बन्ध में आर्य समाज का उत्तर है कि स्वामी जी के जीवन के सम्बन्ध में सनातन धर्म के पण्डित जो कुछ कहते हैं वह आर्य समाज की प्रकाशित पुस्तकों में से एक भी प्रश्न नहीं किया गया है जो कुछ कहा गया है वह आर्य समाज के विरोधी जैन आदि धर्म के प्रचारक जियालाल आदि की पुस्तकों से लेकर कहा गया है इसलिये आर्य समाज की दृष्टि से वह प्रमाणित नहीं हैं हम समस्त पौराणिक पण्डितों को आह्वान करते हैं कि वह ऋषि दयानन्द जी के जीवन में से एक भी ऐसी कोई बात बतावें जो आपत्ति के योग्य हो किन्तु दिखायें आर्य समाज के द्वारा प्रकाशित पुस्तकों में से आर्य समाज के विरोधियों और विपक्षियों की पुस्तक में से नहीं। किन्तु सनातन धर्म के पण्डितों को तो यह धुन लगी हुई है कि जब सनातन धर्न का कोई भी देवता और ऋषि मुनि निष्कलंक के आरोप से मुक्त नहीं है तो आर्य समाज का ऋषि दयानन्द ही नितान्त आरोपों से मुक्त और निष्कलंक क्यों रह जावे। इसलिये यह प्रयास करते हैं कि ऋषि दयानन्द जी को भी कोई न कोई आरोप लगा कर निन्दित किया जावे। किन्तु उन्हें इस कार्य में सफलता कैसे मिल सकती है क्योंकि जिन पुस्तकों में सनातन धर्म के ऋषि मुनियों की निन्दा लिखी है सनातन धर्म उन ग्रन्थों को धर्म ग्रन्थ के रूप में मानता है किन्तु ऋषि दयानन्द के सम्बन्ध में जिन पुस्तकों में असभ्यता पूर्ण वर्णन है आर्य समाज उन पुस्तकों को अपनी पुस्तकें नहीं मानता प्रत्युत आर्य समाज की तो स्पष्ट घोषणा है कि इस प्रकार की सब पुस्तकें सम्प्रदायी और विरोधियों द्वारा लिखी पुस्तकें है इसलिये स्वामी जी के विषय में जो कुछ भी इस शास्त्रार्थ में कहा गया है उसके सम्बन्ध में इतना कहना ही पर्याप्त होगा कि वे सब वास्तविकता के बिपरीत और भ्रमोत्पादक है स्वामी जी का जीवन नितान्त निष्कलंक और पवित्र है। वह पौराणिक ऋषियों के ही जीवन चरित्र हैं। जैसा कि सनातन धर्म उन्हें प्रमाणित मानता है। हम आपको एक ही स्थान में इस प्रकार के ऋषियों के जीवन चरित्रों को एकत्रित कर आपके सम्मुख रख रहे हैं। देखिए शिव पुराण उमा संहिता ५ अध्याय ४ संतकुमार व्यास संवाद श्लोक १४ से ३६ तक सब ऋषियों के सम्बन्ध में इस प्रकार लिखा है। शिव की माया के प्रभाव से विष्णु काम से विह्वल हो अनेकों बार दूसरों की स्त्रियों से व्यभिचार आदि अनैतिक कार्य किया ॥१७॥ इन्द्र ने गौतम की स्त्री अहिल्या से अनैतिक कर्म किया। अग्नि देवता भी काम के वशीभूत हुए ॥१६॥ वायु देवता ने भी दूसरों की स्त्रियों से व्यभिचार किया ॥२०॥ सूर्य ने घोड़ी को देख घोड़ा बन कर उससे समागम किया ॥२१॥ चन्द्रमा ने अपने गुरु ब्रहस्पति की स्त्री तारा से व्यभिचार किया ॥२२॥ पूर्व कालीन मित्र और वरुण दोनों ऋषि उर्वशी को देखकर कामासक्त हो गए और वीर्य का पतन हो गया। मित्र ने अपने वीर्य को एक घड़े में डाल दिया जिससे वशिष्ठ ऋषि की उत्पत्ति हुई। और वरुण ने अपना वीर्य जल में डाल दिया जिससे अगस्त ऋषि की उत्पत्ति हुई ॥२३-२५॥ ब्रह्मा का पुत्र दक्ष अपने भाइयों सहित अपनी भगिनी से तथा ब्रह्मा जी स्वयं ने अपनी आत्मजा पुत्री से अनैतिक सम्बन्धों की अभिव्यक्ति की ।२७॥ च्यवन ने सुकन्या को और कश्यप ने राजा सुधन्ना की कन्या काम से वशीभूत होकर उसकी माँग की ॥२६॥ इसी प्रकार गरुड़ ने शांडिली कन्या को ले जाने का विचार बनाया ॥३०॥ विभाण्डक ऋषि भी नारी को देख कर कामातुर हो गए और हिरनी द्वारा श्रृंगी ऋषि को उत्पन्न किया ॥३१॥ गौतम ऋषि भी शारदवती को निर्वसन देख कामातुर हो गए। उनका वीर्य पात हो गया तो उसे दोने में रख दिया जिससे द्रोणाचार्य की उत्पत्ति हुई ॥ ३२-३३॥ इसी प्रकार पाराशर भी महायोगी मल्लाह पुत्री सत्यबती को देख कर कामातुर होकर संयम न रख सके और उसके द्वारा व्यास की उत्पत्ति हुई ॥३४॥ विश्वामित्र ने भी वन में कामातुर हो मेनका से सहवास किया ॥३५॥ बृहस्पति ने काम मोहित हो अपने भाई उत्थित की स्त्री ममता जो कि उस समय गर्भवती थी से बलात्कार किया जिनसे भारद्वाज का जन्म हुआ यह सब कुछ भगवान शंकर की माया से हुआ उसका वर्णन किया गया है और क्या सुनना चाहते हो?

।।३९।। बस महाराज इतने से ही पता लग गया कि सनातन धर्म में जाकर कोई ऋषि मुनि देवता निष्कलंक नहीं रह सकता। ऐसा विदित होता है कि सनातन धर्म ऋषि दयानन्द जी महाराज को भी अपने अवतारों ऋषि मुनि और देवताओं में सम्मिलित करके उनकी पूजा करना चाहता है। किन्तु यह तो अपनी आदत या स्वभाव से विवश हैं। जब तक उनकी उतनी ही निन्दा न करें जितनी कि और ऋषि मुनि और अवतारों की निन्दा की है तब तक ऋषि दयानन्द जी को उक्त सूची में कैसे सम्मिलित करें? हम सनातन धर्म के पण्डितों को डंके की चोट से उद्घोष करते हैं कि वह व्यर्थ में इस प्रकार का प्रयास न करें ऋषि दयानन्द का इस सूची में सम्मिलित होना नितान्त असम्भव हैं। आर्य समाज का यह उद्घोष है कि "पुराण वेद के विरुद्ध हैं" इस पक्ष की समीक्षार्थ और पुष्टि के लिये पुराणों की हम कुछ बातें प्रस्तुत कर रहे हैं जिससे आपको पुराण और उसकी वास्तविकता का बोध हो सके और वास्तविकता का पता लग जावे। ऋग्वेद अध्याय ८ सूक्त २ मन्त्र १२ में लिखा है कि मदिरा या शराब पीने वाले उन्मत्तों की भांति लड़ते हैं और नंगों की भांति रात्रि में द्वन्द या शोर मचाते हैं अर्थात् वेद में मदिरापान का स्पष्ट ही निषेध है किन्तु अब देखिये भविष्य पुराण ब्रह्मपर्व अध्याय ७३ श्लोक २१ - २२ में लिखा है कि श्रीकृष्ण महाराज अपनी स्त्रियों सहित मदिरापान कर उन्मत्त हो रहे थे और इसी प्रकार बालमीकि रामायण अयोध्या काण्ड सर्ग ५१ श्लोक ५१ में लिखा है कि भारद्वाज मुनि ने भरत और उसकी सेना के लिये मदिरा प्रस्तुत की आदि-आदि इसीलिये पुराणों की शिक्षा वेद के विरुद्ध और विरोधी है। इसी प्रकार अब दूसरा विषय मांसाहार का ले लीजिये अथर्ववेद काण्ड २ सूक्त २४ मन्त्र १ में लिखा है कि मांस खाने वाले महापापी होते हैं। किन्तु इसके विपरीत सनातन धर्म के ग्रन्थों में इसकी आज्ञा दी गई है देखिये मनुस्मृति अध्याय ३ मन्त्र २६८ से २७२ तक में लिखा है कि ब्राह्मण को श्राद्ध में मत्स्य मांस खिलाने से पितरों की दो मास पर्यन्त तृप्ति होती है। और हिरन का मांस खिलाने से ३ मास और मैंढे के मांस से ४ मास और पक्षियों के मांस से ५ मास और बकरी के मांस से ६ मास तथा चितकबरे मृग के मांस से ८ मास रुदरुद मृग के मांस से ९ मास, सुअर और भैंसे के मांस से १० मास और खर्गोश तथा कछुए के माँस से ११ मास इत्यादि-इत्यादि अवधि पर्यन्त पितरों की तृप्ति होती है। मनस्मृति अध्याय ५ श्लोक २२ में लिखा है कि ब्राह्मणों को यज्ञ के लिये अच्छे पशु और पक्षी मारने चाहिये और अपने वंश की वृद्धि के लिये क्योंकि अगस्त मुनि ने ही पहले ऐसा कथन किया था फिर मनुस्मृति अध्याय ५ श्लोक ३५ में लिखा है कि जो ब्राह्मण श्राद्ध मधुपर्क और यज्ञ कर्म में परोसे हुए मांस को नहीं खाता वह २१ जन्म तक पशु योनियों में जन्म लेता है। बाल्मीकि रामायण अयोध्या काण्ड सर्ग ५६ श्लोक २२ से २९ तक में लिखा है कि राम और लक्ष्मण ने काले हिरन को मार कर उसके मांस से गृह प्रवेश का हवन किया। बाल्मीकि रामायण अयोध्या काण्ड सर्ग ९६ श्लोक १ में राम और सीता द्वारा मांसाहार का वर्णन है। भविष्य पुराण ब्रह्म पर्व अध्याय २१६ श्लोक १४८-१५१ में लिखा है कि कथा करने वाले ब्राह्मण को मांस खिलाया जावे शिव पुराण उमा संहिता अध्याय ३८ श्लोक ९ से १२ में सत्यव्रत द्वारा विश्वामित्र के परिवार का गोमांस खाया जाना और शिव पुराण उमा संहिता अध्याय ४१ में विश्वामित्र के पुत्रों ने पितरों के निमित्त गौ मार कर उसका माँस खाया। ब्रह्मवैवर्त पुराण प्रकृति खण्ड अध्याय ५४ श्लोक ४८ व ४९ में लिखा हैं कि आदि मनु ने ५ लाख गायों का मांस घृत के साथ पका चावलों के साथ खिलाया किनको? ब्राह्मणों को ब्रह्मवैवर्त पुराण प्रकृति खण्ड अध्याय ६१ श्लोक ९९ में लिखा है कि राजा चतौर ने ५ करोड़ गायों का माँस पूड़े और पापड़ ब्राह्मणों को खिलाये। ब्रह्मवैवर्त पुराण कृष्ण जन्म खण्ड अध्याय १०५ श्लोक ६१ से ६३ तक में लिखा है कि रुक्मणि-कृष्ण के विवाह में बरातियों के आतिथ्य हेतु १ लाख गायें काटी गई २ लाख हिरन, खर्गोश ४ लाख कछुए ४ लाख बकरे १० लाख भेड़ें ४० लाख काटी गईं और उनका मांस भोजन के लिए तैयार किया गया इत्यादि-इत्यादि पुराणों में सैकड़ों स्थानों पर माँसाहार की स्वीकृति दी हुई है इसलिये पुराण वेद के विरुद्ध होने से मानने योग्य नहीं हैं।

(३) अथर्ववेद काण्ड ६ सूक्त ७० मन्त्र १ में व्यभिचार को पाप कहा गया है किन्तु शिव पुराण रुद्र संहिता सती खण्ड अध्याय १९ में लिखा है कि अपनी पौत्री का मुख देख कर ब्रह्मा का शुक्र स्रवित हो गया तथा शिव पुराण शत रुद्र संहिता अध्याय २६ में लिखा है कि महादेव ने नन्दा नामक कंजरी से व्यभिचार किया। आगे भविष्य पुराण प्रतिसर्ग पर्व अध्याय १२ में लिखा है कि ब्रह्मा ने अपनी पुत्री से बलात्कार किया। भविष्य पुराण प्रतिसर्ग पर्व खण्ड १४ अध्याय १७ में लिखा है कि ब्रह्मा विष्णु महेश तीनों निर्वसन हो और हाथ में अपनी इन्द्रिय पकड़ते हुए अनुसुइया के साथ बलात्कार किया। भविष्य पुराण उत्तर पर्व अध्याय १११ में लिखा है कि युधिष्ठर ने कृष्ण से पूछा महाराज सब वर्णाश्रमों के धर्म मैंने सुन लिए कृपा करके यह बताइये कि कंजरियों (वेश्याओं) की मुक्ति कैसे होती है कृष्ण ने उत्तर दिया कि रविवार के दिन ब्राह्मणों के लिये निःशुल्क रूप में रतिदान दें तो वे सीधी स्वर्ग में चली जावेंगी। भविष्य पुराण ब्रह्मपर्व अध्याय ७३ में लिखा है कि अपने पुत्र साम्बु को देख कर कृष्ण की सब स्त्रियां स्रवित हो गईं उनका रज वस्त्रों से छन-छन कर कृष्ण के सामने घास पर गिरने लगा। ब्रह्मवैवर्त पुराण कृष्ण जन्म खण्ड ४ अध्याय ७२ में लिखा है कि कृष्ण ने कुब्जा के साथ इतना व्यभिचार किया कि उसकी मृत्यु हो गई। इत्यादि इस प्रकार की अनेकों कथाएं पुराणों में भरी पड़ी हैं जिससे व्यभिचार और दुराचार की कुशिक्षा और प्रेरणा मिलती है इसलिये यह सिद्ध है कि पुराण वेद के विरुद्ध हैं।

(४) अथर्ववेद काण्ड १८ सूक्त १ मन्त्र ११ में लिखा है कि निकट की रिश्तेदारी में विवाह नहीं होना चाहिए जिसकी स्पष्ट व्याख्या मनुस्मृति श्लोक ५ में की है कि ऐसी कन्या से विवाह करना चाहिए जो पिता के गोत्र की न हो व माता की सपिण्डी न हो अर्थात् जिसका सम्बन्ध माता की ६ पीढ़ियों तक न मिलता हो। किन्तु भविष्य पुराण प्रति सर्ग पर्व ३ खण्ड ४ अध्याय ८ श्लोक २१ से २८ तक में लिखा है कि ज्ञान वाली स्त्री चाहे किसी सुशील व्यक्ति को वर बना ले वह चाहे उसका बाप भाई का पुत्र भी लगता हो वही उसका पति बन जाता है। इसीलिए ब्रह्मा ने अपनी पुत्री को विष्णु ने अपनी माता को महादेव ने अपनी बहिन को ग्रहण कर श्रेष्ठ गतियें प्राप्त की इसे वेद के अनुसार समझ सूर्य ने भी अपनी भतिजी से विवाह कर लिया ब्रह्मवैवर्त पुराण प्रकृति खण्ड ६ अध्याय ४९ से विदित होता है कि राधा कृष्ण की मामी लगती थी परन्तु कृष्ण का उससे विवाह हो गया इत्यादि-इत्यादि बहुत सी बातें पुराणों में इस प्रकार की मिलती हैं इसलिए पुराण वेद के विरुद्ध है।

(५) यजुर्वेद अध्याय ४० मन्त्र ८ में लिखा है कि ईश्वर निराकार है तथा यजुर्वेद अध्याय ३२ मन्त्र ३ में लिखा है कि परमात्मा की कोई मूर्ति नहीं है। और यजुर्वेद अध्याय ४० मन्त्र ९ में स्पष्ट है कि वह नरक में जाता है जो प्रकृति की उपासना करता है। और वह इससे भी घोर नरक में जाता है जो ईश्वर के स्थान पर प्रकृति कीं बनी वस्तुओं की पूजा करता है। सारांश यह है कि वेद मूर्ति पूजा का निषेध करता है किन्तु पुराण इसके विपरीत प्रकृति की पूजा का समर्थन और आज्ञा देते हैं। उदाहरणार्थ शिव पुराण रुद्र संहिता २ खण्ड ४ अध्याय ४८ में गणेश पूजा की आज्ञा दी गई है। और शिव पुराण २ मध्य खण्ड ५ अध्याय ४१ में तुलसी शालिगराम की पूजा की चर्चा है और शिव पुराण कोई रुद्र संहिता ४ अध्याय १२ में महादेव के लिंग पूजा का विधान इस प्रकार वर्णित है कि दारुण नामक वन में ऋषि लोग सपत्नीक तप करते थे एक दिन ऋषि लोग तो समिधाएं चुनने चले गए पीछे उनकी स्त्रियों को अकेली देख कर महादेव जी निर्वसन हो हाथ से अपनी उपस्थेन्द्रिय पकड़ स्त्रियों में चले गए स्त्रियां पहले तो डर के भागने लगीं फिर कोई शिवलिंग से लिपटने और कोई चूमने और कोई अपने छातियों से लगाने लगीं इतने में ऋषि लोग भी वापिस आ गए और क्रुद्ध होकर उन्होंने शिव को श्राप दिया कि इसने वेद की मर्यादा के विरुद्ध कार्य किया है इसका लिंग कट जावे और लिंग कट गया और गिरते ही आग का गोला बन ऋषियों के पीछे भागने लगा ऋषि

स्वर्ग, पाताल और भूमि जहां-जहां जावें पीछे-पीछे वह भी पीछा करता रहा अन्त में ऋषि लोग ब्रह्मा के पास गए और सब समाचार सुनाया तो ब्रह्मा ने कहा इस लिंग को पार्वती के अतिरिक्त और कोई शान्त नहीं कर सकता उनसे प्रार्थना करो यदि वह अपनी जननेन्द्रिय उसके सम्मुख कर दें तो यह उसमें स्थापित होकर शान्त हो जावेगा। ऋषि लोगों ने पार्वती के पास जाकर प्रार्थना की और लिंग जननेद्रिय में स्थापित कर लिया। इसी कारण ब्राह्मण लोग शिवालयों में नीचे पार्वती की जननेन्द्रिय बना कर बीच में शिवलिंग स्थापित कर देते हैं और ऊपर पानी का घड़ा पेंदी में छेद करके रखवाते हैं कि यह ठण्डा रहे कहीं पुनः ज्वालामुखी पहाड़ की भांति फूट न पड़े और इस सब की फिर पूजा की आज्ञा दी है इसलिए पुराण वेद के विरुद्ध हैं।

(६) यजुर्वेद अध्याय १९ मन्त्र ४६-५८ में वर्णन किया गया है कि माता पिता आदि वृद्ध जनों की सेवा करनी चाहिये। वेद मन्त्रों से स्पष्ट है कि पितृ नाम जीवित हुओं का हैं। और उनकी ही सेवा करनी चाहिये किन्तु पुराणों में मरे हुए पितरों के नाम से ब्राह्मणों को भोजन कराने की चर्चा है उदाहरणार्थ—गरुड़ पुराण के प्रेत खण्ड में मात्र मृतक के प्रति कर्तव्यों का निर्देश है अन्य कोई चर्चा नहीं है। उसके अतिरिक्त एक विस्मय कारक विधि का भी वर्णन है जो कि प्रेत खण्ड अध्याय ४ में है कि यदि कोई व्यक्ति परदेश गया हुआ हो और उसके मरने का निश्चय हो जावे और उसके शरीर को जलाया न गया हो तो उसका आटा तेल मधु आदि के मिश्रण से पुतला बना कर जलावे। और उस के निमित्त सब प्रेत कर्म करे और यदि वह व्यक्ति जीवित हो और आजावे तो उसे एक घी के कुण्ड में डुबकी लगवा कर उसके जात कर्म से लेकर फिर से सब संस्कार करावे और उसकी स्त्री से १२ या १५ वर्ष बाद विवाह की विधि पूर्ति करावे इसी प्रकार की निरर्थक बातें वेद के विरुद्ध पुराणों में आती हैं इसलिये पुराण वेद के विरुद्ध हैं।

(७) यजुर्वेद अध्याय ३१ मन्त्र १८ में लिखा है कि जो परमात्मा सब से बड़ा है और जो प्रकाश स्वरूप है उसको जानने से ही मुक्ति हो सकती है अन्य कोई दूसरा मार्ग मोक्ष का नहीं हैं किन्तु पुराणों में मुक्ति के अनेक सामान्य से साधन वर्णन किये गए हैं। गंगा स्नान से मुक्ति, व्रत रखने से मुक्ति, तिलक लगाने से मुक्ति और रुद्राक्ष धारण करने से मुक्ति इत्यादि-इत्यादि बड़ी सामान्य बातों से मुक्ति जैसी वस्तु के उपलब्ध कराने की प्रेरणा दी है यह वेद विरुद्ध होने से पुराण वेद विरुद्ध स्पष्ट सिद्ध होते हैं।

(८) ऋग्वेद अध्याय १० सूक्त ३४ मन्त्र १२ में स्पष्ट द्यूतकर्म जुआ का निषेध हैं किन्तु भविष्य पुराण उत्तर पर्व ४ अध्याय ३९ श्लोक २४-२७ तक और पदम पुराण उत्तर खण्ड में भी जुआ खेलने की अनुमति दी गई है इसलिए सिद्ध हुआ कि पुराण वेद के विरुद्ध है पुराणों में इस प्रकार की अनेक बातें हैं जो वेद के विरुद्ध हैं इस लिए पुराण माननीय ग्रन्थ नहीं यह आर्य समाज की ओर से परीक्षार्थ मात्र ८ प्रश्न किये गए हैं। सनातन धर्म के पण्डित सोच समझ कर इनका उत्तर दें। और आर्य समाज से प्रश्न करना भी सीख लें कि यदि किसी ग्रन्थ को वेद के विरुद्ध सिद्ध करना हो तो वेद का उदाहरण देकर तुलनात्मक दृष्टि से उसके विरुद्ध सिद्ध करना चाहिये। सनातन धर्म के पण्डितों ने कोई वेद का प्रमाण प्रस्तुत नहीं किया कि स्वामी दयानन्द के लेख के यह विपरीत है। और हमने वेदों के प्रमाण देकर पुराणों के लेख को उनके विरुद्ध सिद्ध किया है इसलिए स्वामी दयानन्द के ग्रन्थ वेदानुकूल हैं और १८ पुराण यह सब वेद के विरुद्ध हैं।

॥ ओ३म्शम् ॥

एकसौनौवां शास्त्रार्थ—

स्थान : पानीपत (हरियाणा)

दिनांक : ५ नवम्बर १९३३ ई० से १२ नवम्बर १९३३ ई० तक

विषय : क्या ईश्वर सृष्टि कर्त्ता है ?

शास्त्रार्थकर्त्ता आर्य समाज की ओर से : श्री स्वामी कर्मानन्द जी महाराज

शास्त्रार्थकर्त्ता जैनियों की ओर से : बनारस के शास्त्री तथा न्याय तीर्थ (अनेकों विद्वान्) एक साथ

मध्यस्थ : स्वयं जनता (श्रौतागण)

शास्त्रार्थ के आयोजन कर्त्ता : दिगम्बर जैन शास्त्रार्थ संघ (अम्बाला)

नोट :—विशेष जानकारी के लिए इस शास्त्रार्थ की भूमिका देखें।

निवेदक—
"लाजपतराय अग्रवाल"

भूमिका

यह शास्त्रार्थ जैन समाज पानीपत तथा आर्य समाज पानीपत में आठ दिन तक अर्थात् दिनांक ५-११-३३ से १२-११-३३ तक लिखित रूप में हुआ था, यह शास्त्रार्थ अपने ढ़ंग का निराला था, इस शास्त्रार्थ में जैन समाज ने अपनी ओर से सारी शक्ति लगा दी थी, यह शास्त्रार्थ लगभग ४०० पन्ने में था, परन्तु काफी प्रयास करने पर भी मुझे प्राप्त नहीं हुआ, केवल एक प्रति वह प्राप्त हुई जिसे पूज्य स्वामी कर्मानन्द जी ने कुछ समय बाद "जैनियों का काल और वैदिक ईश्वर" के नाम से छपाया था, यह प्रकाशित पुस्तक (पूर्व उस शास्त्रार्थ को दिगम्बर जैन शास्त्रार्थ संघ अम्बाला छावनी ने बिगाड़ कर छपाया था,) उसी की समीक्षा देकर शास्त्रार्थ का निचोड़ है, इस शास्त्रार्थ में जैनियों की ओर से दर्जनों विद्वान् शास्त्रार्थ करने वाले थे, परन्तु आर्य समाज की ओर से केवल स्वामी कर्मानन्द जी महाराज ही थे, जिन्होंने अनेक युक्तियों व प्रबल प्रमाणों से जैनियों की धज्जियां उखाड़ कर रख दी थी, जैनियों को अपनी इज्जत बचाना मुश्किल पड़ गया था। मुझे खेद है, हमारे आर्य भाइयों के आलस्य व प्रमाद ने न तो इसे प्रकाशित ही कराया न ही कोई कापी सुरक्षित रखी, जबकि इस समीक्षा में स्वयं स्वामी कर्मानन्द जी ने उस समय आर्य समाज से अनुरोध किया था कि इस शास्त्रार्थ को प्रकाशित करा दें।

इस शास्त्रार्थ पर आर्य समाज के सुप्रसिद्ध विद्वान् श्री पं० रामचन्द्र जी देहलवी तथा शास्त्रार्थ महारथी श्री पं० देवेन्द्र नाथ जी शास्त्री (गुरुकुल-सिकन्दराबाद) आदि विद्वानों की सम्मतियां हैं, इन सब विद्वानों की सम्मति में यह शास्त्रार्थ आर्य समाज के लिए एक बड़े महत्व और गौरव की चीज है, जो सज्जन जैन सिद्धान्तों का मनन करना चाहते हैं, उनके लिए कल्प वृक्ष है।

अब आप इसी उपलब्ध सामग्री को पढ़ें जिसमें जैनियों ने अपनी कमजोरी छिपाने के लिए उस पर समीक्षा आदि लिखकर छपाया था, परन्तु स्वामी कर्मानन्द जी ने भी उनकी सारी गड़बड़ियों को पकड़ कर अच्छी तरह परदाफाश किया है। आप भी पढ़िए और सत्यासत्य का निर्णय करिये—

निवेदक—

"लाजपत राय अग्रवाल"

शास्त्रार्थ आरम्भ

सृष्टि शब्द—

(१) प्रथम ही आपने लिखा है कि यह शास्त्रार्थ लिखित हुआ है। इसका "विषय क्या ईश्वर जगत कर्ता है !" है।

(समीक्षा)—पाठकगण ! जैन समाज की तरफ से ही जो शास्त्रार्थ की नियमावली छपी है उसमें दूसरा नियम देखने की कृपा करें वहाँ स्पष्ट लिखा है कि (पहला विषय क्या ईश्वर सृष्टि कर्ता है ? है।) यहाँ सृष्टि शब्द के स्थान में जगत शब्द लिखकर लेखक ने अपनी प्रतिज्ञापालन का परिचय दिया है। यह बात नहीं कि ऐसा भूल से हुआ हो अपितु ऐसा जान बूझ कर जनता को भ्रम में डालने के लिए किया गया है। क्योंकि जब हमने व्याकरण आदि प्रमाणों से यह सिद्ध कर दिया, कि सृष्टि शब्द ही अपने बनाने वाले ईश्वर को सिद्ध करता है। देखो पृष्ठ १ तो जैन समाज के मान्य विद्वानों ने (जिनमें इस आद्यवक्तव्य के लेखक भी थे) लिखा कि सृष्टि शब्द का अर्थ भी ध्रोव्य, व्यय, युक्त उत्पाद है देखो पृ० ११ पंक्ति २। ऐसा लिखने से जैन समाज के विद्वानों के व्याकरण ज्ञान की पोल खुल गई। हमने उनको ललकारा कि क्या कोई जैन समाज में ऐसा विद्वान् है जो सृष्टि शब्द के अपने किये गये अर्थों को किसी भी व्याकरण अथवा कोशों से सिद्ध कर सके।

इस पर जैन समाज ने आर्य समाज के आगे मस्तक नवाकर अपनी भूल को स्वीकार कर लिया और मौन धारण करके इसका परिचय दिया। अब जब वक्तव्य लिखने लगे तो उस कमजोरी का ध्यान आ गया और उस पर परदा डालने के लिए प्रारम्भ से ही मिथ्या लिखना आरम्भ कर दिया। आगे इसी वक्तव्य के पृ० १३ पर आप लिखते हैं कि सृष्टि से अभिप्राय यहां भिन्न-भिन्न पदार्थों के मिलाने से है तथा सृष्टि शब्द का अर्थ इससे भिन्न है। यह है जैन समाज के विद्वानों की विद्वत्ता। भला उपरोक्त पंक्तियों को आपने शास्त्रार्थ के किस पृष्ठ पर लिखा है ? यदि नहीं लिखा तो यह प्रतिज्ञा विरुद्ध कार्य किस उद्देश्य को सिद्ध करने के लिए किया है ? जब सृष्टि का तात्पर्य यही है तो आपने शास्त्रार्थ में इस पर शंकायें करके इतने कागज काले क्यों किए ? अस्तु जिस बात को हम शास्त्रार्थ में आप से मनवाना चाहते थे उसी को आपने अब मान लिया। सवेरे का भूला, यदि शाम को घर आ जावे तो भी भूला नहीं कहना चाहिए। श्रीमान् जी ! जब सृष्टि से तात्पर्य बना हुआ पदार्थ है तो उसका अर्थ दूसरा कैसे हो गया ? क्या तात्पर्य अभिप्राय प्रयोजन अर्थ, आदि शब्द परस्पर विरुद्ध वाचक हैं। भगवन् परस्पर विरुद्ध इस प्रकार की बातें लिखकर इस भोली भाली जैन समाज को क्या शिक्षा दे रहे हो इस रहस्य को आप ही जानें। परन्तु आश्चर्य तो इस बात का है कि इस वक्तव्य में भी आपने अपने इस मिथ्या अर्थ को सिद्ध करने के लिए किसी जैन व्याकरण तथा कोश का भी तो प्रमाण नहीं दिया, सम्भव है कि जैन समाज के इन योग्य पण्डितों को ऐसा प्रमाण नहीं मिला हो और इसीलिए नया व्याकरण तय्यार करने की कोशिश कर रहे हों। दुःख तो इस बात का है कि जैन विद्वान इस चट्टान पर भी खड़े न रह सके, क्योंकि लेखक की आत्मा इस मिथ्या अर्थ से मन में पश्चाताप कर रही थी, उसको संतोषित करने के लिए आपने निम्नलिखित पंक्तियां लिखी हैं जो कि स्वर्णाक्षरों में लिखवाकर जैन मन्दिरों में रख देने योग्य हैं। आप लिखते हैं कि—"**दूसरी बात यह है कि हम इस जगत को सृष्टि मानते भी नहीं है**"

समीक्षा—

श्रीमन् आपको किस ने बहका दिया कि सृष्टि और जगत भिन्न-भिन्न पदार्थ हैं, संसार, लोक, जगत, जगती, सृष्टि, आदि शब्द एकार्थ वाचक हैं। यदि आपको विश्वास न हो तो किसी जैन कोश को ही उठा कर देख लें। परन्तु हम तो आपको खुश करने के लिए आप ही की बात मान लेते हैं और आपसे ही नम्रतापूर्वक पूछते हैं कि जगत और सृष्टि एक पदार्थ हैं या दो ? यदि कहो एक है तब तो आप मानते क्यों नहीं ? यदि दो पदार्थ हैं तो शास्त्रार्थ सृष्टि पर था जगत का जिकर ही आप ने क्यों किया। बस जिस विषय पर शास्त्रार्थ था उसको आपने ईश्वर कृत मान लिया, अब आपका जगत ईश्वर कृत है या नहीं यह आप जानें हम तो उस आपके जगत से सर्वथा दूर रहते हैं। इसलिए हमने तो उस जगत के कभी दर्शन भी नहीं किए न करने की इच्छा है। परन्तु विचारणीय बात तो यह है कि जब आपके सिद्धान्तानुसार सृष्टि और जगत दो भिन्न-भिन्न पदार्थ हैं और शास्त्रार्थ सृष्टि विषय पर था, जैसाकि नियमों में स्पष्ट आपने ही छपवाया है तो आपने जनता को धोखा देने के लिए शास्त्रार्थ का विषय जगत क्यों लिख दिया। क्या आपको यह आशा थी कि आर्य समाज के सन्मुख हमारा इस प्रकार का छल चल जायेगा। यदि यह बात है तब तो आपके साहस की प्रशंसा करनी चाहिए। वास्तव में तो हमारी यह युक्ति इतनी जबरदस्त थी कि शास्त्रार्थ से लेकर अब तक जैन विद्वानों को इसने बेचैन बना रखा है। रात और दिन इस युक्ति का उत्तर खोजने में उनका समय जाता है। कभी कुछ उत्तर सूझता है तो कभी कुछ। परन्तु झूठा गवाह जिस प्रकार जिरह करने पर मुक़दमे को बिगाड़ देता है यही हाल इनके इन मिथ्या उत्तरों का है।

सृष्टि शब्द का अर्थ और सत्यार्थप्रकाश—

शास्त्रार्थ के पृष्ठ ११ पर जैन समाज के विद्वानों ने सृष्टि शब्द के अर्थ ध्रौव्य, व्यययुक्त उत्पाद, किए थे जैसाकि हम पूर्व में दिखला चुके हैं। जब हमने इस अर्थ की पुष्टि में प्रमाण माँगा तो उन विद्वानों ने लिखा कि, (हमने तो सृष्टि शब्द का अर्थ वही किया था जिसको स्वामी दयानन्द जी ने स्वीकार किया है—देखो मन्तव्यामन्तव्य प्रकरण। पृ० २६ लाइन २०।

समीक्षा—

हम यहां पर मन्तव्यामन्तव्य की वह पूरी पंक्ति लिखते हैं जिसका जिकर इन विद्वानों ने किया है। यथा मन्तव्य ८।

सृष्टि उसको कहते हैं जो पृथक-पृथक द्रव्यों का ज्ञान युक्तिपूर्वक मेल होकर नाना रूप बनना। अब हम आप लोगों पर ही, न्याय का भार देते हैं कि जब जैन विद्वानों ने सृष्टि के इस अर्थ को मान लिया तो अब उनको अनीश्वरवादी नहीं रहना चाहिए, और सृष्टि के कर्ता पर विश्वास लाकर अपनी भूलों का प्रायश्चित कर लेना चाहिए। क्योंकि सृष्टि के उपरोक्त अर्थ में ज्ञान युक्ति पूर्वक बनने का नाम सृष्टि स्पष्ट लिखा है। बस जिसके ज्ञान से यह सृष्टि बनी है वही ईश्वर है। कहिये अब आपको वैदिक धर्मी बनने में क्या आपत्ति है क्योंकि मनुष्य को सत्य ग्रहण करने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए। परन्तु मिथ्याविश्वासों में फँसे हुओं का इतना साहस कहां।

कार्य का लक्षण—

सृष्टि को कार्य सिद्ध करने के लिए। हमने कार्य का एक लक्षण मूर्त्तिमान होना भी किया था, उस पर लेखक महाशय निम्नलिखित सुन्दर वाक्य लिखते हैं।

आर्यसमाज का यह साधन सबल है या निर्बल इस बात के अतिरिक्त इससे एक बात और भी मालूम होती है और वह है शास्त्रार्थ कर्त्ता आर्यसमाज के विद्वान का पाण्डित्य।······आगे आप लिखते हैं कि क्या आर्य समाज इससे यह शिक्षा लेगा कि वह आज ही से जैनियों के सन्मुख जिस विद्वान को उपस्थित करे वह "न्याय शास्त्र के ज्ञाता होने चाहिए।"

यहाँ जैन समाज के हार्दिक भाव अकस्मात् प्रकट हो गये हैं। प्रतीत होता है कि शास्त्रार्थ करने वाले व्यक्ति से जैन समाज बुरी तरह घबरा गया है, तभी तो इनसे मुक्त होना चाहते हैं और इसके लिए अनेक उपाय भी करते हैं। अन्यथा जैन समाज को आर्य समाज की इतनी चिन्ता क्यों है? इसका कारण प्रतीत नहीं होता। रह गई पाण्डित्य की बात और कार्य का लक्षण? सो तो श्रीमान् जी का इतना बड़ा साहस कि लेखक की आधी पंक्ति लिखकर अपना स्वार्थ सिद्ध करना, जैन विद्वान् के सिवा कौन कर सकता है? मेरा पूरा अनुमान आपने ही शास्त्रार्थ के प्रथम पृष्ठ में छापा है उसमें से आपने निम्नलिखित शब्द न जाने क्यों छोड़ दिए। सम्भव है मेरा पाण्डित्य प्रकट करने की धुन में तल्लीन होने के कारण वे शब्द आपको न दीख सके हों, तो इसमें मेरा क्या दोष है? उन शब्दों को हम पुनः लिख देते हैं और आप से प्रार्थना करते हैं कि इनको ध्यान से पढ़कर अपनी इस वृत्ति का सुधार करलें।
एवं जो स्थूल इन्द्रियों का विषय हो और कार्य न हो ऐसा भी कोई पदार्थ नहीं है।

क्या आर्य समाज आप लोगों से इस प्रकार की आशा करे, कि आप लोग आगे को इस प्रकार की हरकत नहीं करेंगे। असल रहस्य तो यह है कि इस शास्त्रार्थ में जैन विद्वानों की विद्वता की ऐसी पोल खुली है कि उसको छिपाने के लिए वे इस प्रकार का घृणित कार्य करके अपने को सन्तोषित करना चाहते हैं। परन्तु पाठक गण इस भूमिका में जैन विद्वानों का साहित्यक ज्ञान तथा उनका वैंय्याकरणपना और इनकी न्याय की योग्यता का दृश्य देखें और स्वयं निर्णय करें। ये सब बातें यथा स्थान प्रकट की जावेंगी। इस लक्षण में तथा इस हेतु में भी जैन समाज ने शंकायें की थीं जिनका उत्तर हमने शास्त्रार्थ के पृ० ३४ पर दिया है। उसको भी आपने यहाँ अधूरा लिख कर समीक्षा की है जो सर्वथा अनुचित है पाठक वहीं पढ़ें तथा हमने अपनी पुष्टि में जैन मोक्ष शास्त्र का प्रमाण दिया था उसको आपने न शास्त्रार्थ में छुआ और न इस आद्यवक्तव्य में, जब आपके शास्त्र ही, दो परमाणुओं को समुदाय स्वरूप कार्य को चाक्षुष मानता है तो फिर भी इसमें दोष दिखाकर आपने नाक कटा कर दूसरे के अपशकुन करने वाली कहावत को चरित्रार्थ किया या नहीं? अस्तु विचार तो इस बात पर था कि यह सृष्टि कार्य है या नहीं हमारा पक्ष है कि यह कार्य है आपका पक्ष था कि यह कार्य नहीं है, अब आप विचार करें कि पक्ष हमारा सिद्ध हुआ या आपका। क्योंकि इस सृष्टि के कार्य होने में तो आपने सम्पूर्ण शास्त्रार्थ में तथा इस वक्तव्य में भी शंका नहीं की और न हमारे इन्द्रियों का विषय जो हेतु था उसका आपने अब तक कहीं प्रतिवाद किया और न इस बात में कि यह संसार कार्य, नहीं है आपने कोई अपना हेतु दिया, तो संसार का कार्य होना तो आपने मान ही लिया। इसलिए इस युक्ति में भी आर्य समाज की अभूतपूर्व विजय हुई। हमें आशा थी कि जैन विद्वान् इस दो परमाणु स्वरूप समुदाय को मूर्तिमान सिद्ध करने के लिए जो हमने जैन शास्त्र का प्रमाण दिया था उस पर कुछ लेखनी उठावेंगे, उस समय हम इसमें जैन शास्त्रों के अनेक प्रमाण देंगे। परन्तु जैन समाज ने एक ही प्रमाण से सन्तोष कर लिया यह अच्छा ही हुआ। जिनको अधिक देखना होवे पञ्चास्तिकाय की गाथा ३९ और उस पर जैन विद्वानों के भाष्य तथा मोक्ष शास्त्र को देख कर जैन विद्वानों के इस लेख की (कि दो परमाणु समुदाय स्वरूप कार्य चाक्षुष नहीं होता) परीक्षा करें और इनके अगाध पाण्डित्य पर दो दो आंसू बहा दें।

जैन शास्त्रों के प्रमाण—

सृष्टि की उत्पत्ति में हमने कुछ जैन शास्त्रों के भी प्रमाण दिए थे। उचित तो यह था कि जैन समाज के विद्वान् उन मूल पुस्तकों को एक बार देख तो लेते, फिर मेरे लेख का उत्तर देते परन्तु दुःख है कि जैन विद्वानों ने ऐसा करना पाप समझा, यही कारण है कि इन विद्वानों को पद पद पर ठोकर खानी पड़ती है। अब अपने वक्तव्य में आप लिखते हैं कि इन दोनों श्लोकों के (त्रैलोक्यंयेनिरुपन्नं) शब्द समूह पर आर्यसमाज ने जोर दिया है, तथा यह अर्थ किया है कि इन्हीं स्कन्ध आदि से ये तीन लोक उत्पन्न हुए हैं। आगे आप लिखते हैं कि जब इस से भी काम न चला क्योंकि यहां तो भिन्न भिन्न परमाणुओं की रचना स्वरूप कार्य की आवश्यकता थी तब आर्यसमाज ने इसके अर्थ को ही बदल दिया है। आर्य समाज का बदला हुआ इन शब्दों का अर्थ यह है, (यैस्त्रैलोक्यं निष्पन्नं) अर्थात् इन परमाणुओं से तीन लोक उत्पन्न हुये हैं।

समीक्षा—

इस विषय में शास्त्रार्थ में ही जैन विद्वानों की इतनी दुर्दशा हो चुकी थी कि उनको पुनः लेखनी उठाते हुए कुछ तो लज्जा आनी ही चाहिए थी, हम तो पाठकों से यही प्रार्थना करेंगे कि वे इस शास्त्रार्थ का पृ० ६६ व ६७ पढ़ें जिसको जैन विद्वानों ने जानकर छिपाया है। निष्पन्न शब्द का अर्थ तक जिन विद्वानों को न आता हो, तथा जिनको इतना भी ज्ञान न हो कि इस शब्द में भूतार्थ में, प्रत्यय हुआ है वे लोग यदि हमारे पाण्डित्य की भूलें निकालें तो कोई आश्चर्य नहीं है, क्योंकि ज्ञानलवदुर्विदग्ध लोग क्या नहीं कर सकते? रह गई अर्थ बदलने की बात जो आपको अब सूझी है। सूझती तो आपको दूर की है इसमें कुछ भी सन्देह नहीं, परन्तु दुःख है कि आप का भाग्य आप का साथ नहीं देता इससे आप लाचार हैं।

श्रीमान् जी यदि आपने तथा आपके सहायक विद्यासागरों, ने कभी इन जैन ग्रन्थों के दर्शन किए होते तो आप कभी ऐसा मिथ्या लेख लिखने का साहस न करते। परन्तु आश्चर्य तो इस बात का है कि शास्त्रार्थ में बार-बार यह लिखने पर भी कि हम अपनी ओर से अर्थ नहीं करते जैनाचार्यों के ही किए अर्थ लिख रहे हैं, आपने इस पर ध्यान क्यों नहीं दिया। सम्भव है शास्त्रार्थ का ६७ पृष्ठ आपने किसी कारणवश न देखा हो। परन्तु श्लोक ७४ से ७८ तक जिनको हमने अपने प्रथम पत्र में उद्धृत किया है और आपने भी यहां वक्तव्य में उनकी संख्यामात्र, लिख दी है उनको तो देख लेते। उसके प्रथम अर्थात् ७४वें श्लोक में ही **परमाणवः** शब्द स्पष्ट पड़ा हुआ है। इसलिए यदि आप को परमाणु से किसी कारण वशात् अधिक चिढ़ हो गई है और उनका नाम सुनकर आपको क्रोध आता है तो आपको उचित है कि इस क्रोध को श्रीकुन्दकुन्द स्वामी पर उतारें जिन्होंने पंचास्तिकाय जैसी पुस्तक जैन धर्म के विरुद्ध लिख दी आर्य समाज ने तो उसकी नकल मात्र की है, अथवा क्रोध करने की आवश्यकता ही क्या है जब आपने दिगम्बराचार्यों के बनाये हुए सैकड़ों ग्रन्थों को तिलांजली दे दी तो इनके ग्रन्थों से भी दे दें, बस कार्य सिद्ध हो जायेगा। तथा इस विषय में जो तत्वार्थसार के प्रमाण दिए थे उनको आपने शास्त्रार्थ में तो भुला ही दिया था नहीं मालूम अब भी क्यों छोड़ गये। प्रतीत होता है उन प्रमाणों का अभी तक कोई उत्तराभास नहीं सूझा है। हमारी समझ में तो आपको इतनी चिन्ता न करनी चाहिए केवल उत्तर के नाम से कुछ भी लिख देने की आपकी यह तरकीब आपके लिए सर्व श्रेष्ठ है। क्योंकि भोली भाली जैन समाज की तसल्ली के लिए इतना ही काफी है। श्रीमान् जी आपको खुश करने के लिए यदि हम परमाणुओं का जिक्र न भी करें तो भी तीनों लोक उत्पन्न हुए हैं यह तो सिद्ध हो ही गया जैसा कि हमारा सिद्धान्त है, अब रह गया यह कि वह स्कन्धों से बना है अथवा परमाणुओं से

इसके लिए हम अपने मित्र को नाराज नहीं करना चाहते अतः हम आपकी इस बात को मान लेते हैं कि ये तीनों लोक स्कन्धों से बने हैं। चलो किसी तरह हमारे मित्र खुश तो रहें।

राजी हैं हम उसी में जिसमें तेरी रजा है। यहां यूं भी वाह वाह है और यूं भी वाह वाह है ॥

परन्तु मित्रवर निष्पन्न शब्द के अर्थ आपने पुनः वही लिख दिए, श्रीमन् ऐसा अर्थ करते हुये आपको कुछ तो विचार करना चाहिए था। जबकि ऐसा अर्थ करना जैन समाज की व्याकरण शून्यता प्रकट करता है और विद्वानों में ऐसे मनुष्यों को अपमान सहन करना पड़ता है, वहाँ जैनाचार्यों का भी इससे घोर अपमान होता है क्योंकि सब जैनाचार्यों ने इस शब्द के वही अर्थ किए हैं जिनको मैंने पृ० ६, पर लिखा है। वहाँ जैनाचार्यों के भी प्रमाण दिए हैं। वास्तव में तो हमारी युक्ति और प्रमाणों से घबराकर जैन समाज अपने आचार्यों को तथा अपने ग्रन्थों को छोड़ता जाता है। यह प्रत्यक्ष है।

कार्य का दूसरा लक्षण—

हमने कार्य का दूसरा लक्षण यत्रभावत्वेसति विनाशित्वं तत्र कार्यत्वम्, अर्थात् "वर्तमान रहते हुए जहां नाश होता हो वह कार्य है" किया था, इस पर आपने कोई आपत्ति नही उठाई अतः इस संसार के कार्य होने में सन्देह नहीं रहा।

सृष्टिकर्ता—

जब यह सिद्ध हो चुका कि यह सृष्टि कार्य है अर्थात् एक बना हुआ पदार्थ है तो यह भी आवश्यक है कि इसका कोई न कोई बनानेवाला भी है, वैदिक धर्मी तथा अन्य आस्तिक लोग इसके बनाने वाली, एक चैतन्य सत्ता है, ऐसा मानते हैं परन्तु जैन समाज ऐसा नहीं मानता। इसके लिए मैंने अनेक हेतु और जैन शास्त्रों के अनेक प्रमाण उपस्थित किये थे जिनका जैन समाज के पास उत्तर ही क्या था, इसलिए जैन समाज ने विषयान्तर जाकर अनेक प्रश्न ऐसे किये जिनका इस विषय से कुछ भी सम्बन्ध नहीं था, क्योंकि जैन विद्वानों की इतनी शक्ति कहाँ थी जो इस विषय पर कुछ लिख सकते। बस हमको भी विवश होकर उनका अनुसरण करना पड़ा अब भूमिका में भी उन्होंने उन अपने प्रश्नों को छेड़ा है इसलिये हम भी उनकी परीक्षा कर लें यही उत्तम है। (१) आपका कथन है कि वैशेषिक दर्शन के अनुसार द्रव्य और गुण भिन्न भिन्न पदार्थ हैं, और बुद्धि भी एक गुण है अतः यह परमात्मा से भिन्न पदार्थ है पुनः यह कैसे जाना जावे कि यह ज्ञान परमात्मा का है। यदि कहो कि यह ज्ञान परमात्मा में समवाय सम्बन्ध से रहता है तो यह समवाय भी एक भिन्न पदार्थ है पुनः यह नियम क्यों है कि यह ज्ञान परमात्मा में ही रहे, आकाश में नहीं इसलिए ईश्वर ज्ञानी सिद्ध नहीं होता।

समीक्षा—

इसका जो हमने उत्तर दिया है वह भी आपने छापने की कृपा की है और उसका प्रत्युत्तर जैन समाज ने दिया है वह भी आपने छाप दिया है। परन्तु अफसोस है कि आपने इस शास्त्रार्थ का पृ० ७१ देखने का कष्ट नहीं उठाया, हमने आपके प्रश्न की नकल करके उत्तर दिया, जिसको हम पुनः लिखते हैं।

उत्तर—

श्रीमान् जी आपको किसने बहका दिया है कि समवाय (सम्बन्ध) भी नियम करने वाला होता है। अग्नि में दाहशक्ति समवाय सम्बन्ध (नित्य सम्बन्ध) से रहती है तो आपके कथनानुसार वह जल में भी होगी। बलिहारी

है आपके इस फिलासफी की। पाठकवृन्द इससे जान सकते हैं कि इन्होंने किस गलत मार्ग का आश्रय लिया है। वास्तव में तो इन लोगों को समवाय सम्बन्ध और गुण गुणी के समझने में भारी भ्रम हुआ है। इसीलिए यह अवस्था है। अस्तु यदि आपकी ही बात मान लें और इस ज्ञान को परमात्मा का ज्ञान न मानकर आकाश का ही मान लें तो भी हमारे सिद्धान्त की क्या हानि है। क्योंकि हम आप की तरह रूढ़ी दास तो हैं नहीं जो शब्दों पर लड़ें हम तो यह मानते हैं कि जिसके ज्ञान और जिसकी दी हुई क्रिया से यह सृष्टि बनती और बिगड़ती है वह ईश्वर है। अब आप इन गुणों को आकाश में मानते हैं तो ठीक है हम आकाश को ही ईश्वर या परमात्मा मान लेंगे और यदि आपको परमात्मा शब्द से विशेष द्वेष है तो आप उसको आकाश कहते रहें। यह तो केवल शब्द भेद होगा वस्तु भेद नहीं, हमारा शास्त्रार्थ वस्तु पर है शब्द पर नहीं। ऐसी ज्ञान वाली सत्ता को जिसने सृष्टि रची है आप मानते हैं तो पुन: हमारा और आपका फैसला हो गया। (२) जैन समाज ने कर्ता विषय पर एक यह प्रश्न किया है। कि यह कोई नियम नहीं है कि कार्य बिना कर्ता के नहीं होता। क्योंकि हम देखते हैं कि यकायक पृथ्वी पर गिरे हुए बीज से पैदा हुये वृक्ष अथवा जंगल की आग से पैदा हुई राख आदि कार्यों का कर्ता कोई नहीं है। इसका उत्तर हमने पृष्ठ १७ पर दिया था, जब जैन समाज से हमारी युक्ति का कुछ भी उत्तर न बन सका तो उसने सत्यार्थ प्रकाश की शरण ली और उसके नाम से जनता में भ्रम फैलाना आरम्भ किया, जिसका उत्तर हमने पृ० १०९ पर दिया था, परन्तु जैन समाज ने अपने अन्तिम पत्र में तथा इस आद्य वक्तव्य में भी उसका प्रमाण देकर पुनः भ्रम फैलाने का प्रयत्न किया है अतः हम सत्यार्थ प्रकाश का लेख लिखकर जनता को दिखलाते हैं कि जैन समाज किस प्रकार छल से काम लेता है ? यथा:—

कहीं कहीं जड़ के निमित्त से जड़ भी बन और बिगड़ जाता है, जैसे परमेश्वर के रचित बीज पृथ्वी में गिरने और जल पाने से वृक्षाकार हो जाते हैं। जैन समाज ने सत्यार्थ प्रकाश का इतना ही लेख पृष्ठ २८ पर लिखा है। परन्तु इससे पहले के शब्द और आगे के शब्दों को जान बूझ कर छोड़ दिया है, इसलिए हम पूरी इबारत लिख देते हैं। निमित्त कारण दो प्रकार के हैं। एक सब सृष्टि को कारण से बनाने धारने और प्रलय करने तथा सब की व्यवस्था रखने वाला **मुख्य निमित्त कारण परमात्मा** दूसरे परमेश्वर की सृष्टि में से पदार्थों को लेकर अनेक विध कार्यान्तर बनाने वाला साधारण **निमित्त कारण "जीव"** जैन समाज ने इतना लेख तो अपने शब्दों से पहले का छोड़ दिया, अब जैन समाज ने जो शब्द लिखे हैं उससे आगे यह शब्द और हैं यथा **परन्तु इनका नियम पूर्वक बनना व बिगड़ना परमेश्वर और जीव के अधीन है।** अब जनता स्वयं इनके छलों पर विचार करे और सत्यासत्य का निर्णय करे। सत्यार्थ प्रकाश का उपरोक्त लेख इतना स्पष्ट है कि उस पर कुछ भी टीका टिप्पणी करना सूर्य को दीपक दिखलाना है। उपरोक्त लेख में उन शब्दों को पढ़ें जो मोटे अक्षरों में हैं जिन विद्वानों को इतनी स्पष्ट भाषा का अर्थ भी समझ में न आवे और उससे उलटा ही अर्थ निकाल लें तो उनकी संस्कृत की योग्यता का तो कहना ही क्या है ? जैन समाज के विद्वानों ने जो भाव सत्यार्थ प्रकाश से लिया है उसमें और इस लेख में उतना ही विरोध है जितना अन्धकार का और सूर्य का। यदि हम अपने मित्रों को खुश करने के लिए सत्यार्थ प्रकाश के उन्हीं शब्दों को लें जो कि जैन समाज ने अपने लेख में नकल किया है तो भी जैन समाज के जड़ वाद की नाक कट जाती है क्योंकि उसमें तो स्पष्ट **ईश्वर रचित बीज**, स्पष्ट लिखा है। जिससे उसका मुख्य निमित्त कारण ईश्वर स्वयं सिद्ध है। वास्तव में तो जैन समाज भी अपने विद्वानों की योग्यता को जान गया है इसीलिए तो वह शास्त्रार्थ से घबराता है। अब रह गया आपके राख आदि का प्रश्न, सो तो हम आपसे पूछते हैं कि क्या आपके ये वृक्ष आदि कार्य हैं यह आपने मान लिया है, यदि ऐसा है तो क्या ये पदार्थ सृष्टि से पृथक हैं, यदि पृथक हैं तब तो आपने इनका दृष्टान्त ही क्यों दिया क्योंकि शास्त्रार्थ तो सृष्टि पर है, यदि आपके उपरोक्त पदार्थ सृष्टि के अन्दर ही हैं तो कहो, आपने

अपने हाथ से अपना मुंह काला किया या नहीं क्योंकि आप तो सृष्टी को कार्य मानते ही नहीं। यदि कहो कि सृष्टि के कुछ पदार्थ कार्य मानते हैं और कुछ को नहीं, तो आप में और हमारे में मतभेद नहीं है, क्योंकि हम भी ईश्वर जीव, काल, आकाश, परमाणु आदि को कार्य नहीं मानते। दूसरी बात यह है कि ये आपके वृक्ष, राख आदि कार्य हैं और सूर्य चन्द्र आदि नहीं इसमें क्या कारण है। इस प्रकार आपके इस हेतु की छीछालेदर भी न करें तो भी आपने इस वृक्ष को कार्य मानकर अत्यन्त धन्यवाद का कार्य किया है क्योंकि आखिर एक विद्वान् सत्य पर कब तक परदा डाल सकता था? अब इस कार्य के लिये हम तो कहते हैं कि कर्ता की आवश्यकता है और आप कहते हैं कि नहीं, परन्तु जादू तो यह है कि आपने हमारे सिद्धान्त को शास्त्रार्थ के पेज २८ के २२वीं लाइन में अपनी लेखनी से स्वीकार किया है, आपके शब्द निम्नलिखित हैं :—

बिना सहायक कारणों के कार्य नहीं होता, जैसे बिना माता पिता के पुत्र की उत्पत्ति नहीं होती, यदि ऐसा ही होना होता तो बन्ध्या के भी पुत्र हो जाता।

उपरोक्त शब्द आपने तथा आपके सहायक अनेक जैन विद्वानों ने विचार कर लिखे हैं। अब आपके कथनानुसार वृक्ष और राख आदि कार्य हैं तो उनका सहायक कारण क्या है? क्योंकि बिना सहायक कारण के आप स्वयं किसी कार्य को सिद्ध नहीं मानते। बस यही हमने प्रथम पत्र में लिखा था कि जो जो कार्य है वह वह कर्ता से हुआ है। जिस प्रकार आपके कथनानुसार बालक रूपी कार्य के कर्ता माता पिता हैं, इसी प्रकार आपके यकायक पृथ्वी पर गिरे हुये बीज से उत्पन्न हुए वृक्ष रूपी कार्य का कर्ता अर्थात् (सहायक कारण) बतलावें बस जो इस कार्य का सहायक कारण (कर्ता) है वही ईश्वर है। यही वैदिक सिद्धान्त है आप उसका नाम कुछ भी रख लें। यह है उस सर्वव्यापक सर्वशक्तिमान सर्वज्ञ की अपार महिमा जो एक नास्तिक को भी उसकी सत्ता को स्वीकार करना पड़ा है। यदि अब भी जैन समाज नास्तिक ही बना रहे तो यह उसके हठ की अन्तिम सीमा होगी।

क्रिया बिना कर्ता के नहीं होती—

संसार में क्रिया है इसलिए भी इसका कोई न कोई कर्ता है, क्योंकि क्रिया बिना कर्ता के नहीं होती। इस पर भी जैन समाज ने सत्यार्थ प्रकाश के उसी बीज और वृक्ष का प्रमाण दिया है जिसका भण्डाफोड़ हम अभी कर चुके हैं। जैन-समाज ने इसी कहावत को चरितार्थ किया है कि एक मनुष्य ने कहा देखो कुरान में लिखा है कि नमाज न पढ़ो, जब कुरान में देखा गया तो लिखा था कि नमाज मत पढ़ो यदि तुम नापाक हो। यदि तुम नापाक हो इन शब्दों को छिपाकर जिस प्रकार इस व्यक्ति ने धोखा दिया है उसी प्रकार जैन समाज ने जनता को धोखा देने का प्रयत्न किया है। इसके सिवाय जैन समाज ने हमारी इस दलील का कोई उत्तर नहीं दिया अतः जैन-समाज अपने विद्वानों से या तो कोई उत्तर दिलवावे अथवा इसको स्वीकार करे। इस सम्बन्ध में यह भी विषय आ गया था कि जैन सिद्धान्तानुसार सम्पूर्ण पदार्थ निष्क्रिय हैं जब ऐसा है तो उनमें क्रिया कहां से आई इसमें मैंने जैन शास्त्रों के अनेक प्रमाण भी दिये थे। इस पर जैन समाज ने पृ० ९८ पर हमको चेलेंज दिया था कि आप आत्मा को जैन शास्त्रों से निष्क्रिय सिद्ध करें। परन्तु जब मैंने पृ० १३० पर इस चेलेंज को स्वीकार किया और जैन शास्त्रों के प्रमाण भी साथ ही लिख दिए तो उनको अपने जैन सिद्धान्तों का ज्ञान हो गया और उसने मौनं सम्मति लक्षणम् का परिचय दिया। बस जब जैन सिद्धान्तानुसार ही सब पदार्थ निष्क्रिय हैं और हम इनमें क्रिया प्रत्यक्ष देखते हैं तो यह क्रिया इनमें किसने दी? बस जिसने इनमें क्रिया दी वही ईश्वर है यह सिद्ध हो गया।

ज्ञान पूर्वक क्रिया—

जगत में ज्ञान पूर्वक क्रिया है इस पर जैन समाज ने पृ० २८ पर शंकायें की थीं इसके विषय में अब आप लिखते हैं कि आर्य समाज अपने इस हेतु के सम्बन्ध में आपत्तियों को दूर करने में सर्वथा असमर्थ रहा है, क्यों न रहता जब आप जैसे विद्वानों से उसका पाला पड़ा था। जिनको निष्पन्न शब्द तक के अर्थों का भी ज्ञान नहीं। श्रीमान् जी क्या आपने इस शास्त्रार्थ के अन्दर हमारा पत्र नं० ७ पेज ११० से ११३ तक तथा पर्चा नं० ८ पेज १३८ से १३९ तक नहीं देखा जिसमें आपकी इन शंकाओं की वह छीछालेदर की है कि पुनः आपने शास्त्रार्थ में नाम तक नहीं लिया। हम जनता से साग्रह अनुरोध करते हैं कि जनता हमारे उन पृष्ठों को पढ़े और नास्तिकों के ऐसे प्रश्नों का ओजस्वी भाषा में प्रबल युक्तियों से दिए गए उत्तरों का मनन करे।

आकृति और नियम आदि—

हमने लिखा था कि संसार में सब जगह नियम विद्यमान हैं, सूर्य, चन्द्रमा, तारागण आदि सब नियम पूर्वक गति करते हैं, पृथ्वी के प्रत्येक पदार्थ में हमको नियम प्रत्यक्ष दीखता है। अतः इस नियम का कोई नियामक अवश्य है। पृ० ३ पर आपने भूमिका में केवल इतना ही लिख कर अपना उत्तर लिख दिया परन्तु इससे आगे हमने जो पृ० ५ पर दलील दी थी उसको आपने छुआ तक नहीं। यथा पृ० ५ से ५५ तक जो हमने इस विषय में अनेक दलीलें दी थी जिनको हम आगे लिखेंगे उनका आपने जिकर तक नहीं किया, केवल ५५ पेज से अधूरी पंक्ति नोट करके आपने अपनी समीक्षा आरम्भ कर दी है। परन्तु इस समीक्षा में भी नियम का कोई न कोई नियामक अवश्य होना चाहिए इस युक्ति का कोई समाधान नहीं किया। अपितु संसार में नियम ही नहीं है यह लिखकर अपनी विद्वता दिखलाई है। आपका कहना है कि कौन बुद्धिमान कह सकता है कि संसार में प्रत्येक कार्य नियम पूर्वक होता है। क्या पृथ्वी की उंचाई और निचाई भी नियमानुकूल है? पहाड़ वगैरा का बेपन डोल और भद्दापन जगत की सुन्दरता का खूब उपहास करता है। जगत में दुःखी, रोगी, अज्ञानी, पापी, भयभीत, चिन्तित, और आपत्तियों से पीड़ित अधिक नजर आते हैं इससे यह कैसे कहा जा सकता है कि यह सर्वशक्तिमान्, दयालु और सर्वज्ञ परमात्मा का कार्य है? इस पर आप लिखते हैं कि आर्य समाज ने इसके सम्बन्ध में मौन धारण करना ही कल्याणकर समझा है।

समीक्षा—

समीक्षा—प्रतीत होता है कि लेखक ने झूठ बोलने का ठेका ले लिया है। अन्यथा इस प्रकार का सफेद झूठ लिखने में कुछ तो लज्जा अवश्य आती। इसका उत्तर आपके छपाये हुए शास्त्रार्थ के प्रथम भाग के पेज ११० से ११३ तक में विद्यमान है। जिसको देखकर सम्पूर्ण नास्तिक-समाज की बुद्धि को जंग लग गया। और इसके आगे इस पर कलम उठाने का साहस न कर सका। हम उसमें से कुछ शब्द यहां लिखते हैं और जनता से प्रार्थना करते हैं कि विशेष उन पृष्ठों में देखने की कृपा करें, यथा—पहाड़ आदि को देखकर बुद्धिमान कर्ता की व्याप्ति का अभाव सिद्ध करना भी अयुक्त है। क्योंकि यदि ये पर्वत न होते तो आज ये नदियें, औषधियें, वनस्पतियें, वर्षा आदि कहाँ से प्राप्त होतीं? ऐसी अवस्था में इन प्राणियों की क्या अवस्था होती इसका बिना विचार किए ही आपने ऐसा लिख दिया। पर्वतादि का निर्माण और उनकी ऊंचाई आदि परमात्मा की दया और पूर्ण ज्ञान का प्रकाशक है। देखो पृ० ११३ तथा पेज १३८। ३९ भी देखें वहां भी इन बातों का उत्तर विस्तारपूर्वक दिया है। वास्तव में तो जगत का आबाल वृद्ध मनुष्य संसार में नियम को देखता है, सूर्य और चन्द्र की गति में नियम है, मनुष्य की पशु, व पक्षियों की बनावट में नियम है। बाल-युवा, वृद्ध अवस्था का नियम है (सम्भव है जैनियों के यहां पहले वृद्ध उत्पन्न

होते हों और फिर बालक बनते हों जिससे इनको नियम न दीखता हो) बीज का नियम है। अर्थात् प्रत्येक वस्तु में नियम कार्य कर रहा है और सृष्टि के नियमों को जानने के लिए ही मनुष्य प्रयत्न करता है और जो जितनी वस्तुओं के अधिक नियम जानता है वह उतना ही अधिक विद्वान कहलाता है। इस प्रत्यक्ष बात का भी आपने खंडन करने का यत्न करके कौनसा पाण्डित्य प्रकट किया ? यह जैन-समाज ही जाने। परन्तु धन्य है उसकी लीला को जो आप से ही इस नियम को स्वीकार करा लिया। क्योंकि आपने अपने पत्र नं० ३ पेज नं० ४३ में लिखा है कि सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, तारागण, स्वर्ग, नरक, व मध्य लोक अन्तर्गत जम्बूद्वीप आदि पृथ्वियां भी "यथानियम स्थिर रहती हैं" भला आपको इतना भी विचार न रहा कि नियम का तो हम खण्डन कर रहे हैं और यहाँ इन सब में नियम लिख रहे हैं। असल बात तो यह है कि उस ईश्वर ने इनकी बुद्धि पर ऐसा आवरण डाला कि आगे पीछे की सब भूल गये। बस अब तो आपने इनमें नियम स्वीकार कर लिया अब आप बतलावें कि इनका नियामक कौन है ? बस जो इस नियम का नियामक है वह ही ईश्वर है।

आकृति—

हमने अपने पत्र नं० ४ पेज नं० ५४ पर ईश्वर की सिद्धि में एक निम्नलिखित दलील दी थी। यथा; प्रत्येक वस्तु जो बनी हुई होती है उसमें निम्न बातें होती हैं, एक तो वह वस्तु तथा दूसरी उसकी आकृति। वस्तु तथा वस्तु के गुण तो उपादान कारण से आते हैं परन्तु आकृति तो हमेशा कर्ता के दिमाग में से आती है। जिस प्रकार घट का उपादान कारण तो मिट्टी है परन्तु उसकी आकृति तो कुम्हार के ज्ञान से आई है यद्यपि यह आकृति मिट्टी में थी परन्तु मिट्टी बिचारी को क्या ज्ञान था कि मकान की आकृति इस प्रकार की बनानी और घड़े की इस प्रकार की। क्या आप मकान की आकृति को देखकर मिट्टी को दोष देते हैं अथवा उसकी प्रशंसा करते हैं। आपने अपने इस वक्तव्य में यद्यपि यह आकृति मिट्टी में भी थी, से लेकर प्रशंसा करते हैं तक की मेरी इबारत को छोड़ दिया और इससे आगे की इबारत लिखकर अपनी समीक्षा कर दी। श्रीमान् जी आप के इस लेख का उत्तर तो मेरे उपरोक्त लेख में विद्यमान है और इसीलिए आपने उसे छिपाने की कोशिश की है। क्या जैन समाज का यही कर्तव्य है कि वह इस प्रकार की धोका देही का कार्य करे ? अब रह गया आपका यह प्रश्न कि परमात्मा के ज्ञान में आकृति नहीं हो सकती, क्योंकि आकृति उसमें आती है जो पहले आकृति से रहित हो। यदि परमात्मा के ज्ञान में आकृति मानी जावेगी तो आर्य समाज के नियमानुसार उसका भी कर्ता मानना होगा और यदि आकृति बिना कर्त्ता के आ सकती है तो बाह्य पदार्थों में भी क्यों नहीं ? श्रीमान् जी इस प्रश्न का उत्तर भी उपरोक्त मेरे लेख में विद्यमान है, परन्तु आपने उसे ध्यान से पढ़ने का कष्ट नहीं किया। श्रीमान् जी मेरी युक्ति यह है कि कार्य में जो आकृति है वह कर्त्ता के दिमाग से आई। परन्तु परमात्मा और परमाणु आदि कार्य नहीं है। मैंने पहले ही मिट्टी और घड़े की मिसाल देकर इसको स्पष्ट कर दिया था, इसलिए प्रथम तो आपका प्रश्न ही नहीं बन सकता। दूसरे आपने परमाणुओं में आकृति मानकर अपने पैरों में अपने आप कुल्हाड़ी मारी है क्योंकि आप तो पहले यह लिख चुके हैं कि दो परमाणु समुदाय स्वरूप कार्य इन्द्रियों का विषय नहीं है। उसका ही विरोध कर दिया और आर्य समाज न तो परमाणुओं में आकृति मानता है और न ईश्वर में। उपरोक्त लेख से तो आपने यह सिद्ध कर दिया कि आपको आकृति का भी ज्ञान नहीं है। अब आपने यह प्रश्न कर दिया कि परमाणुओं में यदि आकृति नहीं थी तो आई कहां से ? इस प्रश्न से तो आपने अच्छा जैन-समाज का उपकार किया, श्रीमान् परमाणुओं से तो आपको बेहद चिढ़ थी। फिर आपने यह लेख किस प्रकार लिख दिया ? क्या अब आपको यह ज्ञान हो गया है कि यह जगत परमाणुओं से बना है और इसमें जो आकृति आई है वह परमाणुओं से आई है। प्रतीत होता है आपको इन बातों का ज्ञान तो है, मगर नहीं मानने की बीमारी है। हां तो अब केवल आपका

और हमारा मत भेद इतना रह गया है कि इस आकृति का व्यञ्जन (प्रकाशक) भी कोई है या नहीं। बस अब हमारे पूर्व प्रश्न का उत्तर दे दें, जो हमने यद्यपि से लगाकर प्रशंसा करते है तक किया है जिसको आपने जान बूझकर छोड़ दिया है। बस जब कि आपके पास उस युक्ति का कोई उत्तर नहीं है तो सिद्ध हो गया कि जो संसार की आकृति का देने वाला है वही ईश्वर सृष्टि कर्त्ता है।

कर्म और फल--

ईश्वर के विषय में एक हेतु हमने कर्म के फल का दिया था जो इस प्रकार है। दूसरी बात यह है कि संसार में हम किसी को सुखी देखते हैं और किसी को दुःखी। क्योंकि कोई भी जीव अपने आप दुःखी नहीं होना चाहता और प्रकृति तथा कर्म जड़ हैं वे एक चेतन को फल दे नहीं सकते। अतः जिसको नियमाधीन होकर यह जीव अपने कर्मों का फल भोग रहा है वह नियामक कोई बुद्धिमान है। **आपको यह याद रखना चाहिए** कि कर्म का फल उसी अवस्था में मिल सकता है जब कि कोई बुद्धिमान न्यायधीश यह जान ले कि इसने अमुक कर्म किया है और इसको अमुक कानून के अनुकूल यह फल मिलना चाहिए। जब तक ऐसा न हो तो किसी भी किसम का सुख दुःख, सजा नहीं कहला सकती, वह अन्याय कहलायेगा, तथा सजा का अभिप्राय सुधार का है न कि बदले का······बस जब सजा का मतलब सुधार का है तो जड़ प्रकृति अथवा पराधीन जड़ कर्मों को यह किस प्रकार ज्ञान हो सकता है कि अमुक जीव को अमुक प्रकार की इतनी सजा देने से जीव का सुधार हो सकता है। बस इससे सिद्ध है कि **कर्म फल प्रदाता कोई चैतन्य सत्ता है**। देखो पत्र नं० १ पेज नं० ८ तथा पेज नं० ८६। आद्य वक्तव्य के लेखक जैन विद्वान् ने अपने वक्तव्य में हमारे इस लेख का कुछ थोड़ा सा हिस्सा छाप दिया और **आपको याद रखना चाहिए** से लगाकर **कर्म फल प्रदाता कोई चैतन्य सत्ता है** तक को (जिसको हमने मोटा कर दिया) हजम कर गये क्योंकि उसमें ईश्वर कर्मफल प्रदाता है इसके लिए वह जबरदस्त दलील दी गई थी कि जिसका उत्तर जैन-समाज से न तो शास्त्रार्थ में बना और न अब तक ही कोई उत्तर सूझा; अब इनके पास यही मार्ग था कि उसको हजम करने का यत्न करते परन्तु आर्य समाज के आगे इनकी यह भी चाल न चल सकी, बाकी के आपके जितने भी प्रश्न हैं उनका उत्तर विस्तार पूर्वक मैंने अपने पत्र नं० ६ तथा पेज ८६ से ६२ तक दे दिया है, तथा ईश्वर कर्मों का फल दाता है इसके लिए अनेक युक्तियाँ दी हैं, और आपने जो हमारे शास्त्रों के नाम से जनता को धोखा देना चाहा है उन शास्त्रों के पूरे प्रमाण लिखकर उनके अर्थ भी वहाँ किए हुए हैं फिर भी आपको नहीं दीखें तो इसमें मेरा क्या कसूर है ? यह कसूर आपकी आँखों का है अथवा आपकी हठ धर्मी का। आपको एक बात और भी याद रखनी चाहिए कि हमारे में और आप में इस विषय में मतभेद नहीं है कि फल कर्मों का मिलता है या नहीं, अर्थात् फल कर्मों का ही मिलता है यह तो हम भी मानते हैं अतः आपने जिन शास्त्रों के प्रमाणों से यह दिखलाया है कि फल कर्मों का मिलता है यह तो ठीक ही है। इससे आपने यह कैसे समझ लिया कि कर्मों का फल भी कर्म ही देते हैं।

जैन समाज का नियम विरुद्ध कार्य—

जैन समाज ने जो शास्त्रार्थ की नियमावली इसी शास्त्रार्थ के इतिहास में छपवाई है उसके चौथे नियम में स्पष्ट लिखा है कि अन्तिम पत्र में केवल पूर्वयुक्तियों पर ही विचार होगा कोई नवीन युक्ति या प्रमाण न दिया जायेगा। परन्तु जैन-समाज इस पर स्थिर न रह सका और अपने अन्तिम पत्र के पृष्ठ १४७ पर आप लिखते हैं कि वह कर्म जो फल दाता है जड़ रूप है, फोनोंग्राफ की प्लेट पर गाने की आवाज की तरह उन पर अच्छे बुरे भावों का संस्कार हो जाता है, और संस्कार युक्त जड़ पदार्थ परम सूक्ष्म रूप में आत्मा के साथ सम्बन्धित हो जाता है इत्यादि। इसी को आपने अपने वक्तव्य में भी लिखने की कृपा की है।

समीक्षा –

आपकी युक्ति की निरसारता तो आपको भी अच्छी तरह मालूम है, तभी तो आपने इसको शास्त्रार्थ के अन्दर पेश करने का साहस नहीं किया और उस समय आपने इसको लिखा जब आप यह जानते थे कि आर्य समाज से अब उत्तर तो आने ही का नहीं है, और हमारी विजय हो जायेगी परन्तु इस चाल से भी आपका मनोरथ पूरा न हो सका अर्थात् जनता ने यह जान लिया कि आपने नियमों का कितना पालन किया ? रह गई आपके दृष्टान्त की बात सो तो श्रीमान् यदि आपही की बात मान लें तो भी यह कर्मों का फल दाता जड़ सिद्ध न होकर चैतन्य सिद्ध होता है क्योंकि फोनोग्राफ का प्लेट किसी बुद्धिमान ने बनाया है आपके जड़पुङ्गल से अपने आप नहीं बन गया है बस इसी तरह वह जड़ कर्म को (जिसको आप इस कर्म से भिन्न फलदाता मानते हो) भी किसी बुद्धिमान चैतत्य सत्ता ने बनाया होगा एक तो आपने इससे यह सिद्ध कर दिया तथा आज तक किसी ने नहीं देखा कि ग्रामोफोन की प्लेट अपने आप गाने लग गई हो वह उसी समय गाती है जब कोई बुद्धिमान उसको ग्रामोफोन पर चढ़ा दे और चाबी आदि लगा दे, इसके पश्चात् भी वह प्लेट बुद्धिमान के आधीन रहती है अन्यथा आप इसकी परीक्षा करलें बस इससे तो आर्य समाज का सिद्धान्त आपने मान लिया यही हमारे ईश्वर की महिमा है जो अपने शत्रुओं को भी सीधी बात का उपदेश देता है यदि फिर भी वह अपनी हठ धर्मी से न माने तो उसकी इच्छा। आगे आप लिखते हैं कि पातञ्जलि ऋषि ने इसी को आशय और कणाद ऋषि ने कारण शरीर या लिङ्ग शरीर आदि नामों से स्वीकार किया है।

समीक्षा—

यह आपने बिलकुल ठीक लिखा है इतनी बात और है कि जैन समाज ने इन्हीं शास्त्रों के गूढ़ रहस्य को न समझकर इन्हीं को कर्म फल दाता मान लिया है अन्यथा इनके आश्चर्य भी इन शास्त्रकारों की तरह ईश्वर भक्त होते।

कर्म फल और जैन शास्त्र—

हमने यह सिद्ध किया था कि कर्म फल जड़ कर्म फल देते हैं यह जहाँ युक्ति विरुद्ध हैं वहाँ यह जैन शास्त्रों के भी सर्वथा विरुद्ध हैं। इसकी पुष्टि में हमने जैनियों के नरक और स्वर्ग की व्यवस्था का प्रमाण दिया था क्योंकि जैन-सिद्धान्तानुसार नरक में असुर कुमार फल देने को नियत हैं और स्वर्ग में देव तथा देवाङ्गनायें। इसमें से जैन-समाज ने स्वर्ग की बात को स्वीकार कर लिया क्योंकि उस पर कोई आपत्ति नहीं की, उन्होंने केवल नरक के असुर कुमारों का अधिकार छीनने की कोशिश की है, सम्भव है वे बिचारे कमजोर हों इसलिए जैन-समाज ने इतना साहस करके उन पर अन्याय किया हो। हम तो जनता से जोरदार शब्दों में प्रार्थना करेंगे कि वह एक बार जैन आदि पुराण पर्व १०१ श्लोक ४१ से ५० तक देखने की कृपा करें उसमें निम्नलिखित शब्द स्पष्ट लिखे हैं जिनको हमने बार २ शास्त्रार्थ में लिखा है परन्तु जैन समाज ने मेरे उन शब्दों को तो छुआ भी नहीं; अर्थात् न तो यह कहने का साहस किया कि ये शब्द हमारे ग्रन्थों में नहीं है और न यह कहा कि इनका अर्थ दूसरा है। वे शब्द निम्नलिखित हैं।

कइयों को तांबा पिला कर दुःख देते हैं लाल गरम तांबे से जब तन भस्म हो जाता है तो उनसे कहते हैं कि यह शराब पीने का फल है। तथा अनेकों को खण्ड-खण्ड करके घांणी में पेलते हैं, कितनों ही को कढ़ाई में

ओटाते हैं और बहुत सों को उनका ही माँस काट-काट कर उनको खिलाते हैं और उनसे कहते हैं कि **यह मांस भक्षण का फल है।** शास्त्रार्थ पृ० ३६। अफसोस है कि सम्पूर्ण शास्त्रार्थ में बार-बार कहने पर भी जैन विद्वानों ने उपरोक्त लेख का कोई उत्तर नहीं दिया। आश्चर्य तो इस बात का है कि आद्यवक्तव्य में भी इसको याद करने का कष्ट नहीं किया। सबसे बड़ी अन्याय की बात तो यह है कि आद्यवक्तव्य में ३६ पृष्ठ का हवाला तो दे दिया परन्तु मेरा लेख और प्रमाण नहीं लिखा। हम फिर जैन समाज से जोरदार शब्दों में कहना चाहते हैं कि उपरोक्त लेख में स्पष्ट लिखा है कि शराब पीने और मांस खाने का फल असुरकुमार देते हैं और उनसे कहते भी हैं कि **यह तुम्हारे शराब पीने का फल है, तथा यह तुम्हारे मांस खाने का फल है।** बस अब जैन समाज, तांबा पिला कर यह कहने का उत्तर दे कि **यह तुम्हारे शराब पीने का फल है।** व्यर्थ का लेख लिखकर जनता को धोखा देने से कार्य नहीं चलेगा।

अब एक विचार यह उत्पन्न होता है कि ये असुर नरक में क्यों रहते हैं क्या इन्होंने अपनी इच्छा से नरक चुन लिया है अथवा किसी के हुक्म से वहां रहते हैं या कर्मवश वहां रहते हैं ? प्रथम पक्ष इसलिए ठीक नहीं कि कोई भी जीव अपनी इच्छा से नरक में नहीं रहना चाहता और यदि किसी के हुक्म से रहते हैं तो वह कौन हैं जो इनको इस प्रकार की आज्ञा देता है और यदि कर्म वश इनका वहां उत्पन्न होना मानें तो भी ठीक नहीं क्योंकि जैन कर्मानुसार वे नित्य हैं अर्थात् अनादि काल से वहां रहते हैं और अनन्त काल तक (हमेशा) वहां रहेंगे। इसलिए कर्मों के कारण उनका वहां जाना हो ही नहीं सकता। दूसरा प्रश्न यह है कि ये लोग उन जीवों को क्यों कर्मों का फल देते हैं अर्थात् किसी की आज्ञा से ऐसा करते हैं अथवा अपनी इच्छा से अथवा नारकी लोग स्वयमेव उनसे कहते हैं कि आप हमको हमारे कर्मों का फल देवें। यदि अपनी इच्छा से फल देते हैं तो यह घोर अन्याय है न कि कर्मों का फल ! क्योंकि ये असुरकुमार आपके सिद्धान्तानुसार भी राग द्वेष से रहित कोई सर्वज्ञ जीव नहीं है। अतः प्रथम तो यही प्रश्न है कि उन्होंने यह कैसे जाना कि अमुक जीव ने अमुक कर्म किया है, क्या इन्होंने प्रत्येक जीव के साथ अपने दूत छोड़े हुए हैं जो उनके प्रत्येक समय के अमालों को लिखते रहते हैं यदि ऐसा है तो आप लोगों को उचित है कि तीर्थङ्करों की उपासना न करके इन दूतों की करें ताकि ये खुश होकर आपके ऊपर दया करें और आपको नारकीय कष्टों से बचा सकें। क्योंकि ये छोटी हैसियत के दूत थोड़े में खुश हो सकते हैं और यदि ये असुरकुमार किसी दूसरे की आज्ञा से ऐसा करते हैं तो किसकी आज्ञा से किसी सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान की आज्ञा से अथवा अल्पज्ञ की आज्ञा से ? प्रथम पक्ष में हमारे पक्ष की पुष्टि दूसरे में उपरोक्त वे ही प्रश्न फिर उपस्थित होते हैं और यदि जीव अपने आप उन असुर-कुमारों से कहते हैं कि आप हमको हमारे कर्मों का फल देवें तो यह प्रश्न उपस्थित होता है कि वे जीव उन असुर-कुमारों ही से क्यों कहते हैं और जीव तो बुरे कर्म भी सुख भोगने के वास्ते ही करते हैं फिर यह कैसे माना जावे कि जीव स्वयमेव दुःख भोगना चाहता है। इस प्रकार जितना इस विषय पर विचार किया जाता है उतना ही इसका खोखलापन प्रकट हो जाता है और यदि इन तमाम प्रश्नों को छोड़ भी दिया जावे तो भी यह प्रश्न बाकी रहता है कि कर्मों के फल देने का नियम इन असुर कुमारों को किसने बनाकर दिया ? अर्थात् किसी सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान, राग-द्वेष आदि से रहित ने अथवा अल्पज्ञ और रागी द्वेषी ने। प्रथम पक्ष में हमारे पक्ष का समर्थन और दूसरे में अन्याय की सम्भावना। इससे प्रकट है कि यद्यपि जैनाचार्यों ने जड़ कर्मों को फल का दाता माना परन्तु फिर भी उन्होंने उलटे मार्ग का अवलम्बन किया जिससे उनको और भी कठिनाई का सामना करना पड़ा अथवा किसी ने सत्य कहा है कि एक झूठ को सिद्ध करने के लिए हजारों झूठ बोलने पड़ते हैं और सबसे बढ़कर आनन्द की बात तो यह है कि ये असुर लोग जैनी हैं, क्योंकि हरिवंश पुराण सर्ग ४ श्लोक ६१ में लिखा है कि इन असुर-कुमारों के घरों में जैन-मन्दिर हैं और वे लोग उनकी पूजा भी किया करते हैं। यथाः—

चैत्यालयाश्च विज्ञेयाः प्रत्येकं सद्भसंख्यया ।। ६१ ।।

अर्थात् जितने असुर-कुमारों के घर हैं उतने ही वहाँ जैन मन्दिर समझने चाहिए। ये जैनी होते हुए भी उन जीवों पर दया न करके उनको कष्ट देते हैं, यह पाप उनको लगेगा अथवा नहीं इसका विचार जैन शास्त्रों में नहीं किया गया। यदि वे अपने आप अपनी इच्छा से ऐसा करते हैं तब तो उनको अवश्य पाप लगना ही चाहिए।

प्रश्न—

असुर-कुमार जीवों को फल नहीं देते अपितु जीव अपने आप परस्पर लड़कर दुःख पाते हैं।

उत्तर—

यदि आपने कभी जैन ग्रन्थों का स्वाध्याय किया होता तो ऐसा प्रश्न कभी न करते, क्योंकि असुर-कुमार उन नारकियों को दुःख देते समय यह कहते हैं कि यह तुम्हारे कर्मों का फल है, जैसा कि हम पूर्व लिख चुके हैं। और यदि आपको इतने स्पष्ट प्रमाणों से भी सन्देह रह गया है तो हम आपको और भी प्रमाण दे देते हैं। देखो—हरिवंश पुराण सर्ग ४ श्लोक ३६३ में लिखते हैं कि—(**असुरा आ तृतीयान्तं योधयन्ति परस्परम्।**) अर्थात् तीसरे नरक तक असुर लोग नारकियों को आपस में लड़ाते हैं। यदि अपने आप ही कर्मों का फल भोगते तो इनको लड़ाने की क्या आवश्यकता है ? जेलखाने का दरोगा यदि किसी कैदी को अपने हाथ से पीटता है तो भी उसका उत्तरदाता है और यदि किसी कैदी को किसी कैदी से पिटवाता है तो भी उसकी जबाबदेही उसी दरोगा पर है बस इसी प्रकार आपके नरक के दरोगा असुर लोग जहाँ अपने आप जीवों को सजा देते हैं वहाँ दूसरे कैदियों से भी सजा दिलवाते हैं परन्तु जुम्मेवारी तो उन्हीं की है। तथाच पद्मपुराण पर्व ८ में एक राजा का वर्णन है जिसका नाम यम था उसने नरक की नकल करने के लिए अपने यहाँ भी एक नरक बनाया था उसके विषय में इस प्रकार लिखा है—यम महापापी ने अपना यमपना सत्य सिद्ध करने के लिए एक बन्दीगृह बनाया था, उसका नाम उसने नरक रखा था, और वहाँ वैतरणी आदि सब चीजें नरक के समान बनाई। आगे लिखा है कि रावण ने दक्षिण दिशा में यम का बनाया हुआ नरक देखा जहाँ एक ऊंचा गढ़ा खोद रक्खा था और नरक की सब नकल बना रक्खी थी तथा उसमें अनेक राजा लोग बन्दी भी बना रक्खे थे।

उपरोक्त लेख से नरक का पूरा पता लग जाता है वह इस प्रकार है। (१) नरक का राजा भी होता है और उसके नौकर चाकर आदि भी होते हैं। (२) नरक के राजा का नाम यम है। (३) नरक दक्षिण दिशा में है। (४) नरक में बहुत गहरे गहरे गढ़े हैं (जिनको जैन शास्त्रों में बिल कहा है) और इनकी संख्या ८४ लाख बतलाई है देखो गणधर चरित्रा अधिकार ५ श्लोक १९९। अब पुनः यह प्रश्न उपस्थित होता है कि इस यम को नरक का राजा किसने बनाया इत्यादि जो पूर्व प्रश्न हम कर चुके हैं वे सब यहाँ उपस्थित होते हैं जिनका उत्तर देने में जैन शास्त्र मौन धारण के सिवाय कुछ नहीं कर सकता। वास्तव में यह वर्णन इन्होंने दूसरों अर्थात् वैदिक धर्म से लिया है इसलिए इसका उत्तर तो उनके पास नहीं है। जैसे कोई मनुष्य किसी की वस्तु को ले लेवे और उससे उस चीज के बारे में प्रश्न किए जावें तो वह इधर उधर झांकने के सिवा कुछ नहीं कर सकता यही अवस्था इनके जैनी आचार्यों की और शास्त्रों की है। वास्तव में तो यह यम एक वैदिक ईश्वर का नाम है और नरक दुःख विशेष परिस्थिति का नाम है और चौरासी लाख बिलें यह ८४ लाख योनियां हैं जिनमें डालकर परमात्मा जीवों को कर्म

फल देता है। वेद के इस आशय को न समझ कर लोगों ने अनेक मिथ्या कल्पनायें की हैं। अस्तु उपरोक्त लेख से यह तो भली प्रकार सिद्ध हो गया कि जैन सिद्धान्तानुसार भी कर्मों का फल स्वयमेव जड़ कर्म नहीं दे सकते अपितु कोई चैतन्य सत्ता फल देती है।

तथाच गणधर चरित्र में स्पष्ट लिखा है कि नारकी जीव पाँच प्रकार के दुःख भोगा करते हैं, यथा १ मानसिक, २ शारीरिक, ३ परस्पर के दिए हुए, ४ असुर कुमारों द्वारा दिए हुए, ५ शीतोष्णता के। देखो अधिकार ५ श्लोक १४। इससे बिल्कुल स्पष्ट हो गया कि असुर कुमार उनको फल देने के लिए वहाँ रक्खे गये हैं। और यदि ऐसा नहीं है तो उनके रहने का वहाँ प्रयोजन ही क्या है? क्या वे असुर कुमार वहाँ इसलिए रहते हैं कि कहीं नारकी जीव भाग न जावें, यदि ऐसा है तो भी वे कर्मों के फल भुगताने में सहायक हैं इससे भी जड़कर्मों को परावलम्बी होना ही पड़ा। पता नहीं नारकी लोग इन असुर कुमारों के फन्दे में पड़े हुये व्यर्थ ही क्यों दुःख भोगते हैं उन असुर कुमारों को ठीक करके भाग क्यों नहीं जाते। आशा है अब आजादी का समय आ गया है उनको भी नरक में यह आजादी का सन्देश पहुंच गया होगा।

स्वर्ग—

मध्य लोक में ६ राजू, ऊपर सोलहवाँ स्वर्ग है। अच्युतेन्द्र के २५६ विमान जिनमें देव रहते हैं। तथा ४०००० अंगरक्षक, वे खवास के तुल्य हैं। वे इन्द्र की शोभा के वास्ते हैं अन्य कुछ भी उनका प्रयोजन नहीं है। तीन सभायें हैं, जैसी यहाँ राजाओं की होती हैं। चार लोकपाल स्वर्ग की सीमा तक रक्षा करते हैं। उनकी १२८ स्त्रियाँ तथा इन्द्र की आठ पटराणियाँ वे इन्द्र के मन रूपी लोहे को आकर्षण करने वाली मानों चुम्बक की पुतलियाँ हैं। तथा ६३ वल्लभा तथा एक एक पटराणी सम्बन्धी २८०० राणियाँ। सब २०७१ देवाँगनाएं हैं। वे सब एक एक लाख बाईस हजार रूप बना कर दिखाती हैं। सात प्रकार की सेना, इसमें हाथी, घोड़े, रथ, आदि लाखों हैं, और उसमें तीन लाख बीस हजार गन्धर्व, छैः लाख चालीस हजार नाचने वाली देवाँगनाएं महेन्द्र को आनन्द देती हैं। उन देवाँगनाओं की अनुपम सुन्दरता है तथा मंजुल मुख और भव्य भूषण हैं जिनके सुन्दर सुरताल से राग रागनी गाती हैं। और अनेक हाव भाव से इन्द्र का मन हरती हैं, वह इन्द्र उनके कपोलरूपी दर्पण में अपना मुख देखता रहता है, तथा उनके नेत्र काम वाण के समान हैं, तथा भौं रूपी धनुष से निकले हुये बाणों से बिन्ध गया है हृदय जिसका ऐसा वह इन्द्र उन देवाँगनाओं को हाथ से स्पर्श कर सुख रूप रमता भया आदि पु० पर्व १० इसी पर्व के श्लो० २०४ में लिखा है कि उपरोक्त सामग्री जैन धर्म के प्रभाव से प्राप्त होती है इसलिए जो मनुष्य ऐसा सुख चाहे वह जैन भाषित वचनों पर श्रद्धा करें। यही बात रत्न करण्ड में है।

> **अष्ट गुणा तुष्टि पुष्टा दृष्टि विशिष्टा प्रकृष्ट शोभा जुष्टाः ॥**
> **अमराप्सरसां परिषदि चिरं रमन्ते जिनेन्द्रभक्ताः ॥३७॥**

तथा त्रिलोकसार में स्पष्ट लिखा है कि वहाँ गणिकायें होती हैं। यथा—

> **गणिका महत्तरोणां पुराणि तत्रवाग्नि प्रभृतिषु ॥**
> **विदिशासु लक्षयोजन विस्तारायाम सहितानि ॥५०५॥**

स्वर्गीय पं० टोडरमल जी ने इसकी भाषा में लिखा है कि जैसे यहाँ वेश्या (रण्डी) होती हैं तैसी वहाँ गणिका देवाँगनायें जानना तथा इसका श्लोक ५०६ भी कुछ इसी प्रकार का वर्णन करता है। अस्तु हमारा प्रश्न तो यह है कि इन स्वर्गों की इस प्रकार की व्यवस्था किसने की है? यद्यपि ये सब बातें कल्पित हैं, परन्तु आश्चर्य तो इस बात का है

कि इन स्वर्ग तथा नरकों की कल्पना करके भी इनके नियम को जड़ पुद्गल के आश्रय छोड़ दिया, भला आपने कभी विचार भी किया कि यह बुद्धिहीन जड़ पदार्थ इतने बड़े बड़े स्वर्ग और नरक की व्यवस्था कैसे कर सकेगा, तथा यह जड़ कर्म यह कैसे जानेगा कि अमुक मनुष्य जैनी हैं, इसे स्वर्ग ले चलो।

जैनों के हेत्वाभास—

(१) ईश्वर जगतकर्त्ता नहीं इसके साथ अन्वय व्यतिरेक न मिलने से।

उत्तर—

इसका उत्तर हमने पेज १७ पर दिया है जो कि आद्य वक्तव्य में पृ० ३५ पर जैन लेखक ने पूरा लिखा है परन्तु जब शास्त्रार्थ में हमसे पुनः इस पर प्रश्न किया गया तो हमने यह प्रश्न किया कि जब आपके यहाँ आकाश और काल के साथ अन्वय व्यतिरेक हो सकता है तो ईश्वर में इसका अभाव कैसे हो गया ? जैन विद्वान् ने बड़ी बुद्धिमानी करके हमारे इस प्रश्न का उत्तर लिखकर परस्पर विरोध बतलाया है जिनको प्रश्न और उत्तर में भेद क्या है इतना ज्ञान न हो यदि वह दोष दिखलावें तो क्या आश्चर्य है, असल बात तो यह है कि जैन विद्वानों ने स्वर्गीय जैन विद्वान् श्री गोपालदास जी बरैया की सृष्टि कर्तृत्वमीमांसा की नकल तो की परन्तु इस अन्वय व्यतिरेक को समझने का प्रयत्न नहीं किया यही कारण है कि न तो सम्पूर्ण शास्त्र में जैन विद्वान् यह सिद्ध कर सके कि अन्वय व्यतिरेक का अभाव कैसे है, और न वक्तव्य में ही उसको स्पष्ट किया। तथाच पेज ११३ पर विस्तारपूर्वक आर्य समाज ने उत्तर दिया है जिसको जैन समाज ने अभी तक नहीं छुआ।

(२) ईश्वर जगत कर्ता नहीं, ईश्वर के अशरीरी एवं इच्छा रहित होने से।

उत्तर—

इसका उत्तर पत्र नं० १ पृ० ५ पर हमने इस प्रकार दिया है यथा निमित्त कारण, सर्वव्यापक, अशरीरी एवं निष्क्रिय है, आपके मान्य काल तथा धर्म, अधर्म, आदि द्रव्यों में उपरोक्त गुण हैं। तथा पत्र नं० ३ पेज नं० ३४ में इसका जबाब हमने निम्नलिखित दिया था, अशरीरी कर्ता के विषय में आपके ग्रन्थों के प्रमाण दे चुका हूं। तथा जिस प्रकार जीव अशरीरी होता हुआ शरीर में क्रिया देता है इसी प्रकार ईश्वर भी (जगत) में क्रिया देता है। तथाच इच्छा रहित का भी उत्तर शास्त्रार्थ में दिया है अर्थात् आपके तीर्थङ्कर जब इच्छा आदि से रहित थे और उपदेश आदि कार्य करते थे तो ईश्वर के लिए ही इस इच्छा की क्या आवश्यकता है ? तथाच आपका काल जिसको आप लोग सृष्टि कर्ता मानते हैं उसमें भी इच्छा नहीं है अतः यह कोई आवश्यक बात नहीं कि कर्ता में इच्छा अवश्य हो। तथा पृ० ७२ पर भी इसका उत्तर है।

(३) ईश्वर जगत कर्ता नहीं, नित्य सर्वव्यापक होने से।

उत्तर—

इसका उत्तर पृ० ७२ पर आर्य समाज ने इस प्रकार दिया है। ईश्वर जगतकर्ता है आपको काल (आदि) की तरह नित्य और सर्वव्यापक होने से जैन समाज के विद्वानों ने इसका उत्तर नहीं दिया, नित्यत्व और सर्व-

व्यापकत्व कर्ता होने में क्यों बाधक हैं ? यह जैन विद्वान् किसी भी प्रकार से सिद्ध न कर सके हैं और न आगे को कर सकते हैं।

(४) ईश्वर जगत कर्ता नहीं आर्य समाज के माननीय शास्त्रों के प्रतिकूल होने से। देखो शतपथ ब्राह्मण, ऋग्वेद, सांख्य दर्शन, ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका।

उत्तर—

जैन समाज के विद्वानों ने यहाँ तो कमाल ही कर दिखाया है सबसे पहिले आपने शतपथ का प्रमाण दिया था जिसमें लिखा है कि (अक्षिता वै लोका:) इसके दो उत्तर हमने दिये थे जिनको इसी भूमिका में लेखक ने छापने की कृपा की है आपका कथन है कि ये दोनों उत्तर परस्पर विरुद्ध हैं इसलिए मिथ्या हैं। वे अर्थ निम्नलिखित हैं—

(१) प्रवाह से अनादि है। (२) त्रुटि रहित अर्थात् इस लोक में कोई कमी नहीं है। क्या जैन समाज के विद्वान् बतला सकते हैं कि इनमें विरोध क्या है। क्या एक शब्द के अनेक अर्थ नहीं होते यदि होते हैं तो क्या उनको जैन परिभाषा में विरुद्ध कहते हैं। श्रीमान् जी यदि आप लोगों को विरोध आदि बातों का ही ज्ञान होता तो बात ही क्या थी, पुन: आप इस प्रकार बच्चों वाली बातें लिखकर उपहास के पात्र ही क्यों बनते ? अस्तु आप किसी प्रकार से खुश हो जायें हम उसी में सन्तोष कर लेंगे इसलिए थोड़ी देर के लिए हम मान लेते हैं कि हमारे अर्थ मिथ्या हैं और आपके अर्थ सत्य हैं क्योंकि आप व्याकरण के सूर्य हैं और इसीलिए आपको निष्पन्न शब्द तक के अर्थों का भी बोध नहीं है आपने इसके अर्थ अपने पत्र ७ पेज १२१ में इस प्रकार किये हैं "अक्षिता" का वास्तविक अर्थ अनन्तता ही है। जो आर्य समाज की प्रलय और सृष्टि की कल्पना को छिन्न भिन्न करके लोक की अनन्तता को सिद्ध करता है। यहाँ जैन विद्वानों ने अनन्तता और अक्षिता, के अन्तिम अक्षर "ता" की समानता को देखकर यह अर्थ समझ लिया है, परन्तु यह उनके व्याकरण की कमजोरी का कारण है हम अपने मित्रों से निहायत अदब के साथ यह प्रार्थना करते हैं कि वास्तव में यह शब्द वहाँ पर शतपथ में, "अक्षिता:" है, वै शब्द आगे होने से विसर्गों का लोप हो गया है। अत: यह शब्द एक वचनान्त नहीं है अपितु बहु वचनान्त है जिसका आप लोगों ने अनन्त एक वचनान्त अर्थ कर दिया है। इसी व्याकरण की शून्यता से आपको मेरे अर्थों में विरोध प्रतीत हुआ है। अस्तु अब आपका ही यह अर्थ हम मान लेते हैं, तो भी हमारी क्या हानि है, क्योंकि हम भी लोकों को अनन्त मानते हैं, इससे ईश्वर सृष्टि कर्ता का खंडन आपको कैसे सूझ गया ? प्रतीत होता है शास्त्रार्थ के समय बुद्धि घर पर ही भूल आये थे।

जैन विद्वानों की विद्वता का और नमूना—

ईश्वर सृष्टिकर्ता के खण्डन में आपने एक ऋग्वेद का मन्त्र भी लिखने का साहस किया था उसी का संकेत इस वक्तव्य में भी किया है, हमने उस मन्त्र के शुद्ध अर्थ करके पृ० ७४ पत्र नं० ५ में दिखला दिये, इस पर जैन-समाज ने अपने पत्र नं० ५ पेज ८१, ८२, पर प्रश्न किया कि आपका अर्थ बिलकुल मिथ्या है आपने निमित्त कारण, आत्मा और प्रकृति में व्यापक परमेश्वर और सुख को प्राप्त नहीं होता आदि अर्थ इस मन्त्र के किन शब्दों के आधार पर किए हैं ? इस प्रश्न का उत्तर आर्य समाज ने पत्र नं० ७ पेज ११४ पर यह दिया कि इन शब्दों का अध्याहार होता है। इस पर जैन विद्वानों ने जैन पत्र नं० ७ पेज १२३ पर प्रश्न किया कि महाशय जी ! लिखिये कि किन मन्त्रों से किन शब्दों का अध्याहार किया गया है ?

समीक्षा—

जैन विद्वानों की विद्वता का इससे भण्डाफोड़ हो गया। उनको इतना भी ज्ञान नहीं था कि अध्याहार किसे कहते हैं ? वास्तव में तो जैन पण्डितों ने अध्याहार और अनुवृत्ति को एक समझकर यह प्रश्न कर दिया था तथा हमें भी इनकी यह अवस्था देखकर दया आ गई थी इसलिए हमने इसका कोई उत्तर नहीं दिया। परन्तु भूमिका में पुन: इसको छेड़कर जैन समाज ने अपनी पोल खुलवा ली। अत: वेद मन्त्रों का अर्थ जो हमने किया है वही व्याकरण आदि नियमों के अनुकूल होने के कारण सत्य है।

जैन समाज की एक और चालाकी—

किसी विद्वान् व्यक्ति ने जैन पण्डितों को अध्याहार और अनुवृत्ति के भेद को बतला दिया, उस समय इनको अपनी अज्ञानता पर दु:ख हुआ, इसका उपाय तो यह था कि अपनी भूल को स्वीकार कर लेते। परन्तु जैन विद्वान् ने ऐसा न करके अपने वक्तव्य में एक अत्यन्त घृणित मार्ग का आश्रय लेकर एक भद्दी चालाकी की है। जैन लेखक ने अपने आद्य वक्तव्य के पेज ३६ पर पेज ११४ का हवाला देकर हमारा उत्तर छापा है, जिसको हम अभी पृष्ठ ३० पर लिख चुके हैं। उसको जैन समाज ने निम्नलिखित रूप में छापा है। यथा—

(इस पर आर्यसमाज से जब कुछ भी जबाब न बन पड़ा तब कहता है कि **पहले मन्त्रों में इस अर्थ के वाचक शब्दों की अनुवृत्ति आई है**)।

शास्त्रार्थ छप चुका है वह जैन-समाज के विद्वान् लेखक जिस सभा के मन्त्री हैं उसी सभा ने छपवाया है, इसलिए हम कह सकते हैं कि उन्होंने ही छपवाया है। क्या इस शास्त्रार्थ में आर्य समाज के किसी भी पत्र में कोई उपरोक्त शब्द जिनको हमने मोटा कर दिया है दिखला सकता है। पुन: एक जिम्मेवार व्यक्ति को आर्य समाज के नाम से एक मिथ्या लेख छापते हुए कुछ तो विचार करना चाहिए था। क्या हठधर्मी के कारण साधारण सभ्यता को भी आप लोगों ने तिलांजलि दे दी है। हमें इन विद्वानों से इस प्रकार की चालाकी की कभी भी आशा न थी। परन्तु दु:ख तो इस बात का है कि इस लेख से उनका मनोरथ तो पूरा न हो सका अपितु उनकी विद्या की पोल और भी खुल गई। किसी ने सच कहा है कि **छिद्रेस्वनर्था बहुली भवन्ति**। श्रीमान् जी आपने किसी से अध्याहार और अनुवृत्ति के भेद को सुन तो लिया परन्तु दु:ख है कि वह आपके स्मरण नहीं रहा, इसीलिए आपने लिखा है कि पहले मन्त्रों में इस अर्थ के वाचक शब्दों की अनुवृत्ति आई है। भगवन् पहले मन्त्रों में अनुवृत्ति नहीं आया करती।

सांख्य दर्शन—

तीसरा प्रमाण आपने सांख्य दर्शन का पेश किया था जिसका उत्तर आर्य समाज ने पृ० ७३ पर इस प्रकार दिया है। आपका यह लिखना आपकी अज्ञानता प्रकट करता है। आपके दिये हुए सूत्र से पूर्व सूत्र नब्बे (९०) में योगियों के प्रत्यक्ष का विषय बतलाया है। अत: वहाँ मानस प्रत्यक्ष न मानने में दोष दिखलाया है न कि ईश्वर की असिद्धि की है। अब पाठक वृन्द स्वयं विचार करें कि आर्य समाज ने इसका उत्तर दिया है या नहीं ?

ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका—

चौथा प्रमाणाभास जैन समाज ने ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका का दिया है। इसका उत्तर भी आर्य समाज ने उसी पेज ७३ पर निम्नलिखित दिया था—

इससे आपका क्या प्रयोजन (सिद्ध होता है) वहाँ तो स्पष्ट ही ईश्वर द्वारा सृष्टि और प्रलय होने का वर्णन है, यथा इसी स्थान पर लिखा है **"यदिदं सकलं जगत् दृश्यते तत्परमेश्वरेणैव सम्यक् रचयित्वा संरक्ष्य प्रलयावस्थायां च वियोज्य विनाश्यते"**तथाच इसका दूसरा उत्तर पत्र ८ पेज नं० १३३ पर इस प्रकार दिया है। "सो आपको याद रखना चाहिये कि यहाँ वस्तुभेद नहीं है अपितु परिभाषा भेद है। किसी की परिभाषा में इसका नाम प्रकृति है, किसी की परमाणु, किसी की प्रधान, (किसी की) पुद्गलतो कोई इसको स्वधा कहता है। वेद में प्रलयकाल में प्रकृति की जो अवस्था है उसका नाम "स्वधा" है इसलिये वेद में स्वधा शब्द से इसका व्यवहार हुआ है जिसका अर्थ स्वामी जी ने (ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका में) जगत बनाने की सामग्री" किया है। इन उत्तरों के होते हुये भी जैन-समाज ने आद्यवक्तव्य में इन प्रमाणों का पुनः संकेत करके यह सिद्ध किया है कि आर्य-समाज ने इनका उत्तर नहीं दिया। प्रतीत यह होता है कि ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका की जो हमने संस्कृत लिख दी थी उसका अर्थ जैन विद्वान न समझ सके होंगे। परन्तु दूसरा उत्तर तो भाषा में ही लिखा हुआ था, सम्भव है इस पेज को उन विद्वानों ने न देखा हो।

जैनियों की प्रलय—

किसी कवि ने ठीक ही लिखा है—

यस्यनास्ति स्वयं प्रज्ञा शास्त्रं तस्य करोति किं। लोचनाभ्यां विहीनस्य दर्पणंकिं करिष्यति ॥

अर्थात् जिस प्रकार एक प्रज्ञाचक्षु की दर्पण कोई सहायता नहीं कर सकता, इसी प्रकार बुद्धि से हीन मनुष्यों को शास्त्र कोई लाभ नहीं पहुँचा सकता। अर्थात् शास्त्रों के रहस्य समझने के लिये जहां प्रगाढ पाण्डित्य की आवश्यकता है वहां विशाल बुद्धि की भी आवश्यकता है। परन्तु जैन विद्वानों की विद्या और बुद्धि का नमूना पाठक वृन्द देख ही चुके हैं। यही कारण है कि ये लोग जैनियों की प्रलय भी नहीं समझ सके। पुनः वैदिक प्रलय को समझने की तो बात ही क्या थी? इन्होंने चार अरब ३२ करोड़ वर्ष का लेख देख लिया और उसके अर्थ अपने अविद्या जनित संस्कारों के कारण यह समझ लिये कि इतने समय तक परमाणु निष्क्रिय अवस्था में पड़े रहने का नाम वैदिक प्रलय है। बार-बार आर्य समाज ने लिखा कि यह आप की बड़ी भारी भूल है, परन्तु पुराने संस्कार इतने प्रबल थे कि हमारा लिखना अरण्य रोदन के समान व्यर्थ हो गया। हमने समझा था कि जैन समाज अपनी इस भूल को सुधारने का प्रयत्न करेगा। परन्तु वह इसी अपनी भूल पर अभी तक हठ करता जाता है। हमने शास्त्रार्थ में भी बार-बार इस बात को स्पष्ट किया है कि आप के कथनानुसार आर्य समाज का सिद्धान्त नहीं है। आपने अपनी भूमिका में भी हमारा यह वक्तव्य प्रकाशित किया है। हम पुनः डंके की चोट से स्पष्ट शब्दों में कहते हैं कि आर्य समाज का सिद्धान्त वही है जो आर्य समाज ने अपने पत्र नं० २ पेज नं० १८ तथा पत्र, नं० ८ पेज नं० १३६ पर लिखा है। वही बात ऋग्वेद आदि भाष्य भूमिका में महर्षि दयानन्दजी ने लिखी है। आर्य समाज ने निम्नलिखित उत्तर दिया है—

(१) प्रलय काल में भी ईश्वर का कार्य उसी प्रकार होता रहता है जैसा कि इस समय। केवल क्रिया के फल में भेद है, अर्थात् सृष्टि और प्रलय हमारी अपेक्षा से है न कि ईश्वर की! देखो पेज १८ दूसरा उत्तर।

श्रीमान् जी! ऐसी ही भ्रान्तियों से तो आपने इतने पत्र काले किये हैं, परन्तु फिर भी वही रफ्तार है। भगवन्! जिस प्रकार रात्रि के ठीक बारह बजे के बाद दिन प्रारम्भ हो जाता है इसी तरह प्रलय की अन्तिम अवस्था समाप्त होते ही कुछ काल के पश्चात् (जिसको ज्योतिष में सन्ध्यांश कहते हैं) सृष्टि प्रारम्भ हो जाती है। इसी प्रकार

सृष्टि काल के मध्य भाग से प्रलय प्रारम्भ हो जाती है। आर्यसमाज का यही अटल सिद्धान्त है। इसी को श्री १०८ पूज्यपाद श्री स्वामी दर्शनानन्द जी महाराज ने अपनी पुस्तक "सृष्टिप्रवाह से अनादि है", में स्पष्ट किया है। रह गये आपके वह प्रमाण जिससे आपको भ्रम उत्पन्न हुआ है, जिनको आपने अपने वक्तव्य में भी लिखने का साहस किया है। जैसा कि आपने अपने वक्तव्य के पृ० ११ पर लिखा है, कि आर्य समाज ने प्रलय का स्वरूप ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका के पेज नं० ५ पर निम्नलिखित स्वीकार किया है—हजार चतुर्युगी पर्यन्त **सृष्टि को मिटा कर प्रलय** अर्थात कारण में लीन रखता है उसका नाम ब्रह्म रात्रि रक्खा है, अर्थात सृष्टि के वर्तमान होने का नाम दिन तथा प्रलय होने का नाम रात्रि है। यह जो वर्तमान ब्रह्म दिन है इसके एक अरब छियानवे करोड़ अठारह लाख बावन हजार नौ सो छियत्तर वर्ष इस सृष्टि की तथा वेदों की उत्पत्ति में व्यतीत हुये हैं। आदि आदि।

(समीक्षा) ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका में आपके **सृष्टि को मिटा कर** शब्द कहीं भी नहीं है। बाकी के लेख से और हमने जो उत्तर लिखा है उसमें कोई भेद नहीं है। अपितु आपने ही इसको ब्रह्म रात्रि और ब्रह्म दिन लिखा है, वही दिन और रात का दृष्टान्त देकर हम इस को स्पष्ट कर चुके हैं। मालूम नहीं आपने इन शब्दों का भाव यह कैसे समझ लिया कि चार अरब बत्तीस करोड़ वर्ष तक परमाणु निष्क्रिय पड़े रहते हैं ? उसके पश्चात् एक दम सृष्टि बनकर तय्यार हो जाती है। पुनः उतने ही समय तक सृष्टि रहने के पश्चात् एक दम प्रलय हो जाती है और ईश्वर विश्राम करने लगता है धन्य है आपकी इस सूझ को। श्रीमान् जी जिस प्रकार पृथ्वी की गति के कारण दिन और रात होते हैं तथा बारह घण्टे का दिन तथा बारह घण्टे की रात्रि होती है, अर्थात् पृथ्वी की क्रिया के दो फल हैं एक का नाम हम रात्रि रखते हैं दूसरे का नाम हम दिन रखते हैं। इसी प्रकार ईश्वर जो जगत में क्रिया देता है उस के दो फल हैं, एक का नाम हमारी अपेक्षा से सृष्टि है तथा दूसरी का नाम प्रलय। बस जिस प्रकार रात्रि के १२ बजे के पश्चात् दिन आरम्भ होता है और दिन के १२ बजे के पश्चात् रात्रि आरम्भ हो जाती है उसी प्रकार प्रलय के मध्य के पश्चात् सृष्टि प्रारम्भ होती है और सृष्टि के मध्य के पश्चात् प्रलय। जिसको हम शास्त्रार्थ में कई बार स्पष्ट कर चुके हैं। मालूम नहीं हमारे इस लेख में आपको विरोध कैसे प्रतीत हो गया। अतः हम पुनः आप से नम्रता पूर्वक प्रार्थना करते हैं कि पहले किसी बात को समझ लिया करें, यदि आपकी समझ में न आ सके तो किसी योग्य विद्वान् से जान लिया करें पुनः शास्त्रार्थ में किसी बात को कहने का साहस किया करें ताकि आप को इतना लज्जित होना न पड़ा करे। परन्तु अफसोस है कि बार-बार समझाने पर भी आपकी समझ में यह जरासी बात न आ सकी।

न समझा उमर गुजरी उस बुते खुदसर को समझाते। पिघल कर मोम हो जाता अगर पत्थर को समझाते ।।

इस शेर को आप ही ने चरितार्थ कर दिया।

जैनियों की प्रलय—

हमने अपने पत्र नं० १ तथा पत्र नं० २ पेज २१ तथा पेज नं० ६६ में एवं पेज नं० ८६ और पेज नं० १०७ में जैनियों की प्रलय का विस्तार पूर्वक वर्णन किया है।

तथाच अनेक मान्य जैन शास्त्रों के प्रमाण भी दिये थे, जिनका आशय निम्नलिखित है—

(१) जैन शास्त्रानुसार यह पृथ्वी ४००० मील तक गहराई में परमाणुरूप हो जाती है। इतना ही पृथ्वी का व्यासार्व है। अर्थात् जैन सिद्धान्तानुसार सम्पूर्ण पृथ्वी परमाणुरूप हो जाती है यह सिद्ध हो गया। यह तो हुआ

गहराई का हाल अब विस्तार की व्यवस्था को भी देख लें। अर्थात् जैन सिद्धान्तानुसार समस्त एशिया तथा सम्पूर्ण यूरुप, अफ्रीका, अमेरीका, आस्ट्रेलिया आदि समस्त महाद्वीपों की प्रलय हो जाती है देखो पृष्ठ १०७। जैन विद्वानों ने मेरे इन प्रमाणों को तो छूआ तक भी नहीं, अपितु अपना ही बेसुरा राग अलापते रहे। हम पुन: जैन विद्वानों को चेलेंज देते हैं कि वे हमारे उपरोक्त कथन का किसी भी जैन शास्त्र से विरोध करके दिखलावें। तथा कुछ भूमि कुछ काल के लिए मनुष्यों के रहने के अयोग्य हो जाती है, जिस प्रकार भूचाल आदि से जापान आदि में हो गया है। इत्यादि बेसिर पैर की बातें जिनके लिए एक भी जैन शास्त्र की आपको गवाही नहीं मिल सकती लिखने से क्या प्रयोजन सिद्ध हो सकता है। इत्यादि सब बातों का भी हम विस्तारपूर्वक उत्तर अपने पत्रों में दे चुके हैं, जिनके सामने आप को सर झुकाना पड़ा है। परन्तु फिर भी अपने वक्तव्य में मेरे दिये हुए जैन शास्त्रों के प्रमाणों को लिखकर उनका उत्तर तो लिखने का आपमें साहस न हो सका परन्तु वही किञ्चित आदि शब्द लिखकर जनता में भ्रम फैलाने का प्रयत्न किया है। जिनका उत्तर आर्य समाज ने शास्त्रार्थ के उपरोक्त पेजों में प्रबल युक्तियों तथा प्रमाणों से दिया है। इससे स्पष्ट है कि जैन सिद्धान्तानुसार भी सृष्टि की महा प्रलय सिद्ध है। इसके लिए विचारशील पाठक शास्त्रार्थ का पेज २१ व ६६ तथा ८६ और १०७ एवं १३५ को अवश्य देखने की कृपा करें।

जैन धर्म और प्रलय—

मैंने लिखा था कि जहाँ जैन धर्म सृष्टि को उत्पन्न हुआ मानता है वहां उसकी प्रलय भी मानता है। जिसका वर्णन प्रथम पन्ने में किया जा चुका है, परन्तु आपने उस पर विचार नहीं किया। अब उसको विवरण सहित पुन: लिखते हैं। यथा—

एवं गच्छति कालेऽस्मिन्नेतस्यपरमा वधौ। उत्तरपुराण नि:शेषं शेषमेतांबु शरीरमिव संक्षयम्।।
(श्लो० ४४६ से ४५२)
अति रुक्षा धरातत्र भाविनोस्फुटिता स्फुटम्। प्रलय प्राणिनामेव प्रायेणो पजनिष्यते, ।।४७।।

अर्थात् छटे काल के अन्त में प्राणियों की प्रलय इस प्रकार होगी। सात दिन तक रुक्ष और तीक्षण हवा चलेगी तथा सात दिन तक विष वर्षेगा सात दिन अग्नि वर्षेगी आदि आदि इस प्रकार ४६ दिन में संसार के सम्पूर्ण प्राणि नष्ट हो जायेंगे और यह चित्रा पृथ्वी भी नष्ट हो जायेगी। त्रिलोक सार में लिखा है कि—

तेभ्य:शेष जनानश्यन्ति विर्षाग्नि, वर्ष दग्ध मही।
एकयोजन मध:चूर्णो क्रियते हो काल वशात्। श्लो० ८६७

अर्थात् उस समय एक योजन नीचे तक पृथ्वी नष्ट हो जाएगी। यहाँ एक योजन २००० कोस का है। जिसका अर्थ हुआ कि यह पृथ्वी ४००० मील तक नीचे को नष्ट हो जावेगी। पृथ्वी का इतना ही व्यासार्ध है। बस इससे स्पष्ट है कि यह सम्पूर्ण पृथ्वी नष्ट हो जावेगी। बस जो वस्तु नष्ट होती है वह अवश्य एक उत्पन्न भी हुई होगी। इस अवस्था में इसके कार्यत्व का विरोध किसी भी विद्वान् को शोभा नहीं देता। क्योंकि ऐसा करना पंडितों में हंसी का पात्र बनना है।

जैन धर्म सृष्टि कर्ता—

जब जैन शास्त्रों ने सृष्टि की उत्पत्ति मानी और इसका प्रलय भी माना तो यह कैसे हो सकता था कि वे इसको उस जड़ प्रकृति के आसरे छोड़ देते? अत: जैन शास्त्रों ने इसका कर्ता भी ईश्वर को माना है। जिसके कुछ तो

प्रमाण हम प्रथम पत्र में दे चुके हैं तथा कुछ और भी देते हैं। आदि पुराण में जहाँ ईश्वर के नाम लिखे हैं वहाँ पर निम्नलिखित नाम लिखे हैं—

(१) **विश्वयोनि, कारणं, कर्ता भवान्तकः हिरण्यगर्भः विश्वभृद विश्वसृट**, देखो जिन वाणी संग्रह पृ० ५० से ५३ तक, वे नाम स्पष्ट सिद्ध करते हैं कि सृष्टि का कर्ता कोई ईश्वर है इसी प्रकार उत्तरपुराण पर्व ४८ श्लो० ७८, सगर पुत्रों को ईश्वर ने सर्वश्रेष्ठ बनाया लिखा है। तथा गणधर चरित्र में श्रेणिक का वर्णन करते हुए लिखा है कि विधाता ने सम्पूर्ण वस्तुओं के अच्छे अच्छे गुण लेकर उसमें रख दिए थे। इत्यादि अनेक वर्णन जैन शास्त्रों में आते हैं जिनसे ईश्वर सृष्टि कर्ता सिद्ध होता है। परन्तु आपने तो सत्य को स्वीकार न करने की प्रतिज्ञा की है। इसलिए आप लिखते ही रहेंगे।

वेद और भूमि—

इस सम्बन्ध में जैन समाज ने अपने पत्र नं० ७ पेज नं० ११६ पर एक वेद मन्त्र तथा योग दर्शन का सूत्र लिखकर यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि आर्य समाज भी असंख्य योजनों की भूमि को मानता है। जिसका उत्तर आर्य समाज ने पत्र नं० ८ तथा पेज नं० १४० में दिया है। परन्तु जैन समाज पुनरपि इस विषय में भ्रम फैलाना चाहता है जो एक अनुचित कार्य है।

प्रतीत होता है कि जैन समाज ने यहां असंख्यात योजन शब्द देखकर डूबते को तिनके का सहारा समझकर प्रमाण पेश कर दिया। परन्तु यह उनकी भारी भूल हो गई। जैन समाज ने यहाँ भी एक चालाकी की है, वह यह कि जहाँ यजुर्वेद का प्रमाण लिखा है उसमें से आकाश आदि शब्द को छोड़ दिया है, और अपना स्वार्थ सिद्ध करने के लिए असंख्य चार कोस के योजनों वाले देश में विस्तार करें यह छाप दिया। पूरा लेख इस प्रकार है, (असंख्य चार कोस के योजनों वाले आकाशादि देश में विस्तार करें) अब आपको कुछ शर्म आयेगी या नहीं यह आप ही जानें। यही अवस्था आपके दिए हुए योग दर्शन के प्रमाण की है, प्रथम यह प्रमाण वेदानुकूल होने से प्रमाण माना जा सकता है, दूसरे आपके अभिप्राय का वहाँ लेश भी नहीं है।

समष्टि और व्यष्टि—

हमने जब जैन शास्त्रों से संसार की प्रलय सिद्ध कर दी तो जैन समाज ने कहा कि हमारे यहाँ जो प्रलय का वर्णन है वह एक देश विशेष का है न कि सम्पूर्ण लोकों का, इसके उत्तर में हमने अनेक जैन शास्त्रों के प्रमाण दिए जिनका उत्तर उनको कुछ भी नहीं सूझ सका। इस पर भी हमने कहा कि यदि आप ही की बात को स्वीकार कर लिया जावे तो भी संसार की प्रलय सिद्ध हो गई क्योंकि जो गुण व्यष्टि में होते हैं वे ही गुण समष्टि में भी होते हैं। यथा एक मनुष्य जब मरणधर्मा है तो समस्त लोकों के मनुष्य मरणधर्मा हैं यह बात स्वयं सिद्ध हो जाती है। इस पर जैन-समाज ने कितने सुन्दर शब्द लिखे हैं उनको देखें। आप लिखते हैं कि प्रथम तो यह नियम ही असिद्ध है, जगत को ही ले लें इसमें एक मकान के गिरने से जगत नष्ट नहीं होता। दूसरी बात यह है कि किसी का वियोग होता है उस ही प्रकार किसी का संयोग भी, तथा ये दोनों बातें एक समय होती हैं, फिर यह कैसे हो सकता है कि वियोग से प्रलय को माना जावे और संयोग से स्थिति को नहीं। मालूम नही जैन-समाज को यह क्या बीमारी है कि एक बात भी स्पष्ट नहीं लिखता। प्रश्न तो यह है कि जब आपके कथनानुसार इस आर्य खण्ड की प्रलय तो होती है तो बाकी के देशों की प्रलय नहीं होती इसमें क्या प्रमाण है? इसका उत्तर आपके इस लेख में किन शब्दों ने दिया है। आशा है अब इसको विचार कर इसका उत्तर जैन-समाज देगा।

जैनियों का काल—

जैन शास्त्रों में जो काल का वर्णन है उसमें कल्पित जैन सिद्धान्तों का तो काल ही कर दिया है। आर्य समाज ने जब जैन शास्त्रों के अनेक प्रमाणों से यह सिद्ध कर दिया कि जैन सिद्धान्तानुसार जगत का कर्ता काल है। तथा उस काल में वैदिक ईश्वर के सब गुण मिलते हैं एक चैतन्य गुण नहीं मिलता। देखो पेज २० तथा हमारा पत्र नं० १ तथा प्रायः प्रत्येक पत्र में भी कुछ न कुछ इसका वर्णन आ ही गया होगा। यह काल जैन विद्वानों की जान के लिए बवालेजान हो गया। वास्तव में काल है भी ऐसी ही भयानक चीज। जैन विद्वानों को कभी भी यह आशा न थी कि इस शास्त्रार्थ में हमारा काल से वास्ता पड़ेगा। परन्तु क्या करें विचारे अनजान में काल के फन्दे में आ पड़े। काल के चक्र में पड़े हुओं की जो दयनीय अवस्था होती है वही जैन विद्वानों की इस शास्त्रार्थ में हुई। जैन-समाज ने पेज नं० ३० पत्र नं० २ में लिखा कि जैन सिद्धान्त काल को कर्ता नहीं मानता, अपितु उदासीन कारण मानता हैं। तथा पत्र नं० ३ पेज नं० ४४ पर जैन समाज लिखता है कि कारण को कर्त्ता कहकर आर्यसमाज ने न्याय शास्त्र का गला घोटा है। इन सबका उत्तर आर्य समाज ने अपने पत्र नं० २ पृ० नं० १८ से २० तक में विस्तार पूर्वक दिया है। आनन्द तो यह है कि प्रश्न तो पेज नं० ३० तथा ४४ पर हैं और उनका उत्तर पूर्व ही विद्यमान है। हम उसको पूरा लिख देते हैं ताकि जनता उससे लाभ उठावे।

हमने पूर्व लिखा था कि जैनशास्त्र काल को सृष्टि कर्ता मानते हैं। उसमें आपने कुछ शंकायें की हैं जिससे प्रकट होता है कि आपने उन ग्रन्थों को देखने का कष्ट नहीं किया। अब हम उसको खुलासा करके लिखते हैं। यथा पंचस्तिकाय—

जीवाः पुद्गलकायाः सहसक्रिया भवन्ति न च शेषा।
पुद्गलकारणजीवाः स्कन्धाः खलुकाल करणास्तु ।। (पंचस्तिकाय श्लोक ६८)

इस पर तत्वदीपिका, टीका। प्रदेशान्तर प्राप्तिहेतुः परिस्पदनरूप पर्यायः क्रिया। तत्र सक्रिया बहिरङ्ग साधनेन सहभूताजीवाः। सक्रिया बहिरङ्गसाधने न सह भूताःपुद्गलाः। निष्क्रियमाकाशम्। निष्क्रियो धर्मः, निष्क्रियकालः। जीवानां सक्रियत्वस्य बहिरङ्ग साधनं कर्मनोकर्मोपचयरूपाः पुद्गलाः तदभावान्निः क्रियत्व सिद्धानां पुद्गलानां सक्रियत्वस्य बहिरङ्ग साधनपरिणाम निर्वर्तकः काल इति ने काल कारणाः।

अर्थात् जीव और पुद्गल, (प्रकृति) ये दो पदार्थ दूसरे पदार्थ का निमित्त पाकर क्रिया वाले होते हैं अर्थात् जीव तो पुद्गल के निमित्त से सक्रिय होता है और पुद्गल (प्रकृति) काल के निमित्त से क्रिया वाला होता है। बाकी सब पदार्थ अर्थात् आकाश, काल, धर्म और अधर्म निष्क्रिय हैं। तथाच तत्वार्थ सार अधिकार ३ में भी—

सकालोयन्निमित्ताःस्यु परिणमादि वृत्तयः।
वर्तनालक्षणं त यकथयस्ति विपश्चिताः ।। (श्लोक ४०)

अर्थात् जिसके निमित्त से वस्तुओं में परिणाम क्रिया इत्यादि कार्य हो सकते हैं तथा छोटे बड़े का व्यवहार होता है उसे काल कहते हैं। निष्क्रिय काल वस्तुओं में किस प्रकार क्रिया दे सकता हैं क्योंकि सक्रिय पदार्थ ही दूसरे को क्रिया देता है इसका उत्तर देते हैं।

न चास्य हेतु कर्तृत्वं निष्क्रियस्य विरुध्यते।
यतोनिमित्तमात्रेऽपि हेतु कर्तृत्वमिष्यते ।। (श्लोक ४३)

अर्थात् निमित्त कारण के लिए यह प्रश्न नहीं उठता। निमित्त की अपेक्षा से यह कर्ता कहाता है, अर्थात् क्रिया और परिणाम का यह सहायक है, दीपवत् ॥ तथा हरिवंश पुराण सर्ग ७ श्लोक ५-६ में भी लिखा है। यथा—

> सर्वेषामेव भावानां परिणामादि वृत्तयः ।
> स्वान्तवहिनिमित्तेभ्यः प्रवर्तन्ते समन्ततः ॥ ५ ॥

अर्थात् जितने भी कार्य हैं उनके दो कारण होते हैं एक अन्तरङ्ग दूसरा बहिरङ्ग। सो पदार्थों में जो परिणाम है उसका अन्तरङ्ग कारण तो उनकी शक्ति है और बहिरङ्ग कारण काल है। अब आप बतलाइये कि जैन शास्त्र काल को सृष्टि कर्ता मानते हैं या नहीं ? जबकि काल के निमित्त बिना पुद्गल में क्रिया नहीं हो सकती और जब तक पुद्गल में क्रिया न हो जीव भी निष्क्रिय रहेगा, फिर संसार कैसे बन सकता है ? इसमें तत्वार्थसार के श्लोकों को पढ़ें उसमें आप स्पष्ट देखेंगे कि काल को कर्ता माना है, वहाँ "कर्तृत्वं" शब्द ऐसा स्पष्ट पड़ा है कि जिसका अन्य अर्थ हो ही नहीं सकता। इसलिए सब जैन विद्वानों ने इन श्लोकों के वही अर्थ किये हैं जो हमने ऊपर लिखे हैं। अब जैन विद्वान् विचार करें कि न्याय शास्त्र का गला कौन घोटता है, आपके आचार्य घोटते हैं अथवा हम घोटते हैं ? वास्तव में दोनों में से कोई नहीं घोटता इन जैन विद्वानों का दार्शनिक ज्ञान ही इतना है जिससे इनको निमित्त कारण कर्ता नहीं होता इतनी गहरी बात सूझती है। प्रतीत होता है इन्होंने इन दर्शनों के दर्शन किसी अन्धकारमय स्थान पर बैठकर किये हैं। इसीलिये आपने यहाँ एक प्रश्न और भी कर दिया, वह यह कि यदि परमात्मा काल की तरह कारण है तो बतलाइये कि उसके क्रिया रूप कार्य में विचित्रता क्यों दीखती है ?

उत्तर—

जैन समाज के अधिकारी लोगों ने अपने अच्छे विद्वानों को बुलाने के लिए अनेक प्रयत्न किये परन्तु दुःख है कि इनका परिश्रम सफल न हो सका, इसीलिये इन विद्वानों से कार्य लिया गया। परन्तु इन विद्वानों का शास्त्रार्थ में भाग लेना इनकी अनधिकार चेष्टा थी, भगवन् ? यह प्रश्न जो आपने हमारे ऊपर किया है, यह तो आपके काल के ऊपर भी वैसा ही लागू होता है, बस जो आप उत्तर देंगे वही हमारा भी उत्तर समझ लेना। तथाच इसका उत्तर तो मैं कई बार शास्त्रार्थ में भी दे चुका हूँ। देखो पेज नं० १८।

सिद्धों को उपासना—

जहाँ जैनशास्त्र सृष्टिकर्ता काल को मानते हैं वहाँ कर्म फल प्रदाता भी अपने सिद्धों को मानते हैं, यह हमने अपने पत्र नं० १ पेज नं० ७ में लिखा था, इसका उत्तराभास जैन समाज ने अपने पत्र नं० १ पेज नं० १३ पर दिया था। जब हमने जैन समाज से यह पूछा कि क्या उपासना के फल में आपके सिद्ध अन्यथा सिद्ध हैं तो जैन समाज खामोश हो गया। तथाच यह हमारे पास जैन दर्शन है जो कि जैन शास्त्रार्थ संघ अम्बाला की तरफ से निकलता है। जिसके सुयोग्य सम्पादक जी इस शास्त्रार्थ में सेनापति थे। इसके वर्ष १ अङ्क १३ ता० १६। १। ३४ के अङ्क में दो जैन महानुभावों की मृत्यु का शोक समाचार छपा है, उसमें सम्पादक जी ने लिखा है कि हम आप लोगों के कुटम्बियों के साथ समवेदना प्रकट करते हुए जिनेन्द्र देव से प्रार्थना करते हैं कि वे उनकी आत्माओं को शान्ति प्रदान करें। हम यहां यह जानना चाहते हैं कि क्या यह प्रार्थना मनुष्यों को धोखा देने के लिये है ? अथवा इसका कोई फल है। और यदि कुछ फल है तो जिनेन्द्र देव जी ही तो फल देने वाले हुये। अन्यथा जैनियों को तो यह

प्रार्थना करनी चाहिये थी कि हे जड़ रूपी कारमाण वर्गणाओं ! आप इनकी आत्मा को शान्ति प्रदान करें। आशा है इसमें आगे को सुधार हो जावेगा।

अन्यकर्त्ता—

जैन सिद्धान्तानुसार जिस प्रकार सृष्टि का कर्ता काल है तथा कर्मफलदाता भी अनेक हैं, उसी प्रकार जैन शास्त्रों में ईश्वर को भी कर्ता माना है। जैसाकि हमने अपने पत्र नं० २ पेज नं० २२ में उत्तरपुराण पर्व ४८ श्लोक ७८ के प्रमाण से लिखा था कि सगर के पुत्रों को ईश्वर ने सर्व श्रेष्ठ बनाया था (तदा कारे च वातस्य वेधसाव्यञ्जिता गुणाः) इसी प्रकार गणधरचरित्र में श्रेणिक का वर्णन किया है। इन दोनों प्रमाणों से यह सिद्ध है कि आपके आचार्य ईश्वर को कर्ता मानते थे। इस पर जैन समाज ने लिखा कि यह तो उत्प्रेक्षा अलंकार की दृष्टि से लिखा है। इस पर आर्य समाज ने पेज नं० ६८ पर लिखा कि क्या कोई जैन विद्वान यह सिद्ध कर सकता है कि अभाव भी उत्प्रेक्षा का विधायक हो सकता है। इसका उत्तर जैन समाज ने लिखा कि यहां अभाव मूलक उत्प्रेक्षा है। प्रश्न तो यह था कि क्या अभाव भी उत्प्रेक्षा का मूलक कहीं हो सकता है ? क्योंकि जैन शास्त्रों में वेधस् (ईश्वर) उत्प्रेक्षा का विधायक है न कि उत्प्रेक्षा। जैन विद्वानों की जहाँ व्याकरण के पाण्डित्य की अवस्था आप देख चुके हैं तथा न्याय की हालत भी देख चुके हैं। आप इनके साहित्य की विद्वत्ता का भी नमूना देख लें।

अन्य प्रमाण—

जैन शास्त्रों में जहां तीर्थङ्करों के नाम लिखे हैं उनमें निम्नलिखित नाम भी लिखे हैं, यथा पृ० २२ विश्वयोनि, कारणं, कर्त्ता, भावन्तकः, विश्वभृद्, विश्वसृद्, आदि (जिनवाणीसंग्रह) इन नामों में प्रत्येक नाम जगत कर्त्ता को सिद्ध करता है। तथा भवान्तकः इससे तो प्रलय करने वाला भी सिद्ध हो गया। इस पर जैन समाज ने पेज नं० ३१ पर उत्तर लिखा है कि आदि नाथ भगवान ने प्रजा पालने का प्रयत्न किया था अतः वे विश्वसृट् कहलाये। इसका उत्तर आर्य समाज ने पेज ६८ पर दिया। अर्थात् इनमें से केवल एक शब्द का ही अर्थ करने का साहस किया है। प्रथम तो यह अर्थ ही अशुद्ध है, यदि हम यही मान लें तो भी विश्वभृद् आदि नाम भी इन नामों में आचुके हैं अतः पुनरुक्त दोष होगा। इत्यादि कारणों से यह अर्थ मिथ्या है। अतः यह सिद्ध है कि जैन शास्त्रानुसार भी जगत कर्त्ता कोई चैतन्य है।

प्रश्न नं० ५—

पृथ्वी रची हुई नहीं हमारे द्वारा ग्रहण योग्य परिमाण के न होने से आकाश की तरह।

उत्तर—

इसका उत्तर भी पेज ७२ पर आर्य समाज ने दिया है, तथा यहाँ भी देते हैं, पृथ्वी रची हुई है हमारे द्वारा ग्रहण योग्य परिमाण के होने से, मनुष्य आदि की तरह।

प्रश्न नं० ६—

ईश्वर जगत कर्ता नहीं आधुनिक विज्ञान के प्रतिकूल होने से।

उत्तर—

इसका उत्तर भी पेज नं० ७२ पर दिया गया है। यथा ईश्वर सृष्टि कर्ता है, सत्य ज्ञान के अनुकूल होने से।

प्रश्न नं० ७—

ईश्वर जगत कर्ता नहीं कार्य कारण के विरोध होने से प्रमाण में अमैथुनी सृष्टि।

उत्तर—

इसका उत्तर भी वहीं पेज ७३ की प्रथम पंक्ति में यह दिया है। ईश्वर सृष्टिकर्ता है कार्य कारण की व्याप्ति होने से, प्रमाण में जैनियों की अमैथुनी सृष्टि के समान विरोध न होने से। तथा यहां तो अपवाद है विरोध नहीं।

प्रश्न नं० ८—

ईश्वर जगत कर्ता नहीं जगत के अनादि होने से।

उत्तर—

इसका भी उत्तर पृ० ७२ पर लिखा हुआ है, ईश्वर सृष्टि कर्ता है, सृष्टि अनादि न होने से, जैसा कि सिद्ध किया जा चुका है। जैन समाज ने इन प्रश्नों में केवल प्रतिज्ञायें की हैं, अपने पक्ष की पुष्टि में प्रमाण एक भी नहीं दिया अतः उत्तर भी तद्रूप दिये गये हैं। इन विद्वानों को इतना भी ज्ञान नहीं कि हेतु किसे कहते हैं, तमाम उन बातों को जो कि अभीसाध्य हैं अर्थात् जेरे बहस हैं, उनको ही हेतु बना लिया है। जिनको इतना भी ज्ञान न हो कि सिद्ध वस्तु हेतु बनाई जाती है अथवा साध्य ? उनके आगे इससे अधिक लिखना ऐसा ही था जैसा कि बहरे को पञ्चम स्वर में राग सुनाना।

आधुनिक विज्ञान—

इस शास्त्रार्थ में आधुनिक विज्ञान भी मुख्य बात रही है। जैन समाज भी बार बार आधुनिक विज्ञान की दुहाई देता रहा तो हमने जैनियों के विज्ञान की पोल खोल दी, अर्थात् हमने पूछा कि जैन शास्त्रों का और आधुनिक विज्ञान का तो अन्धेरे और प्रकाश का सम्बन्ध है। अर्थात् जिस प्रकार प्रकाश के आगे अन्धकार नहीं ठहर सकता उसी प्रकार आधुनिक विज्ञान के आगे जैन सिद्धान्त नहीं ठहर सकते। जैसे कि सूर्य से चाँद ऊपर है और चाँद से सूर्य प्रकाशित होता है, तथा सूर्य से चाँद बड़ा है आदि आदि बातें जिनका हमने जैनियों का विचित्र ज्योतिष पुस्तक में विस्तार पूर्वक लिखा है, तथाच दिगम्बर गप्प दीपिका में जो हमने जैनियों की असम्भव बातें दिखलाई हैं वे विज्ञान की तो बात ही क्या है। एक साधारण बुद्धि के सन्मुख भी ठहरने का साहस नहीं कर सकतीं। इन बातों का जैनियों के पास उत्तर ही क्या हो सकता है ? भूगोल तो जैनियों का आधुनिक विज्ञान के सर्वथा अनुकूल ही है तभी तो ८००० मील पृथ्वी की प्रलय जैन शास्त्रों में लिखी है, जिसके लिये मैंने जैन शास्त्रों के अनेक प्रमाण दिये जिनको जैन समाज ने आखिर स्वीकार भी कर लिया। परन्तु फिर भी नहीं मालूम जैनियों को क्या सनक सवार हो जाती है कि आधुनिक विज्ञान के विरुद्ध लिख ही ड़ालते हैं। इस शास्त्रार्थ के अन्तिम पत्र पेज नं० १४३ में लिखते समय ऐसी सनक आ गई। इसलिए जैन विद्वानों ने लिख दिया कि पृथ्वी का आठ हजार मील व्यास आधुनिक पाश्चात्य

खोजों के आधार पर माना गया है। हम जैन विद्वानों से यह जानना चाहते हैं कि पृथ्वी का वह व्यास जो आधुनिक विद्वान (खोज) ने प्रमाणित किया है वह ठीक है अथवा गलत ? यदि कहो ठीक है तो आप इसको मानते क्यों नहीं ? (सम्भव है सर्वज्ञों के क्रोध हो जाने का भय हो) यदि यह झूठा है तो आपने अपनी ही लेखनी से आधुनिक विज्ञान को मिथ्या सिद्ध कर दिया। पुन. प्रश्न नं० ६ (जिनको आपने अनुमान के नाम से लिखा है) में अपने इस आधुनिक विज्ञान को अनुमान का आधार क्यों बनाया ? क्या इस प्रकार की मिथ्या बात को हेतु बनाने से आपने न्याय पर अत्याचार नहीं किया। प्रतीत होता है इन्हीं अत्याचारों के कारण न्याय आप लोगों से कोसों दूर रहने लगा है। रह गया आधुनिक विज्ञान और ईश्वर का विरोध। सो तो आपने अपनी भूल से यह समझ लिया है कि किसी अंग्रेज की किसी बात को लिख देने से ही वह विज्ञान हो जाता है। वास्तव में विज्ञान नाम तत्वज्ञान का है जो प्रत्येक समय ईश्वर की सिद्धि करता है। इतने पर भी आर्य समाज ने जैनियों के परम मान्य अंग्रेजों के कुछ प्रमाण दे दिये थे। उसमें से जैन समाज ने एक के लिए तो यह लिख दिया कि 'कांट" फिलोसफर था, इसलिए उसकी बात गलत है। क्यों न हो क्योंकि फिलासफी से आपकी बेहद दुश्मनी है। इसलिए फिलोसफर की बात कैसे सत्य हो सकती है, खास कर वह बात जो कि जैन सिद्धान्तों के प्रतिकूल हो। दूसरे प्रमाण में जिसमें स्पष्ट सृष्टि और प्रलय का वर्णन है तथा ब्रह्म दिन और ब्रह्म रात्रि का नाम तक भी स्पष्ट है, जैसा कि वेदों में आया है। उसके लिए जैन समाज ने लिखा है कि यह हमारे उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी का वर्णन है। यह बिलकुल ठीक है हमने भी जैन विद्वानों को अनेक बार समझाया कि आपकी उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी हमारी सृष्टि और प्रलय का रूपान्तर है, परन्तु इनकी हठधर्मी इनको मानने भी दे, इस विज्ञान के उत्तर लिखने वाले महानुभाव का यह कर्तव्य है कि वे अपने विद्वानों को उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी को ब्रह्म दिन और ब्रह्म रात्रि मना दें। तथा अपने शास्त्रों में भी इतना सुधार करवा दें। बस सारा मामला तय हो गया। तीसरे प्रमाण के लिये जैन वैज्ञानिक का मत है कि आर्य समाज का अर्थ अशुद्ध है। इसके लिये हम भी उनको नाराज नहीं करना चाहते। यदि इतने मात्र से जैन सिद्धान्तों की पुष्टि होती हो तो हम उनको यह अवसर देना चाहते हैं। आगे आपने अन्य कई अंग्रेजों के नाम लिख कर अपने पक्ष की पुष्टि करने का यत्न किया है। इससे आर्य समाज के सिद्धान्त की क्या हानि हो सकती है। क्योंकि जैन समाज की तरह हमारा सिद्धान्त किसी के कहने पर तो ठहरा हुआ है नहीं जो किसी के कथनमात्र से ही गिर जावे। जैन समाज का एक कर्तव्य और है कि वह इन नवीन सर्वज्ञों से अपनी ज्योतिष तथा भूगोल आदि का समर्थन और करवा लें बस फिर क्या है, सारा संसार जैनी बन जावेगा। जैन समाज ने ईश्वर खण्ड में शिकारी आदि हिंसक जीवों की उत्पत्ति का भी प्रमाण दिया था जिसका उत्तर आर्य समाज ने पेज ११४ तथा पेज १३७ व १३८ पर विस्तार पूर्वक दिया है, पाठक वृन्द वहीं देखें। तथा जैन समाज ने अमैथुनी सृष्टि का उदाहरण देकर कार्य कारण का विरोध दिखलाया जिसका उत्तर आर्य समाज ने पेज १३२ पर दिया था कि यहाँ उत्सर्गापवाद है विरोध नहीं।

एक प्रश्न जैन समाज ने यह भी किया था कि आकाशकाल आदि को कर्ता क्यों न माना जावे ? इसका उत्तर आर्य समाज ने कलम और दवात तथा मकान आदि का शास्त्रार्थ का कर्ता क्यों न माना जाये ? इत्यादि विस्तारपूर्वक उत्तर पेज १३६ पर दिया है।

जैन समाज का एक और सफेद झूठ—

जैन समाज ने अपने अन्तिम पत्र पेज नं० १४६ पर लिखा है कि आज तक आठ पत्र गुजर चुके हैं फिर भी आर्य समाज ईश्वर को जगत कर्ता सिद्ध करने में एक भी वैदिक प्रमाण नहीं दे सका। इससे स्पष्ट सिद्ध है कि ईश्वर को जगत कर्त्ता बतलाना आर्यसमाज का कोरा वितण्डावाद है वैदिक सिद्धान्त नहीं।

समीक्षा—

प्रतीत होता है जैन विद्वानों ने शास्त्रार्थ के समय अपनी आँखें किसी को उधार दे दी थीं तभी आर्य समाज का पत्र नं० ६ पेज नं० ८५, ८६, ८७ नहीं देख सके। भला जिस विषय में तीन पेज लिखे गये हों उसके लिए यह कहना कि एक भी प्रमाण नहीं दिया सफेद झूठ है या नहीं ? इस पर भी मजा यह है कि **वैदिक ईश्वर** यह सुर्खी बड़े मोटे अक्षरों में लिखी हुई विद्यमान है। जैन समाज ने एक और भी प्रश्न बड़ा ही विचित्र किया था जिससे इनकी बुद्धि, का पूरा पता लगता है।

प्रश्न—

ईश्वर ने जगत को किस दिन बनाना आरम्भ किया और कब समाप्त किया, तथा दुनियाँ कहाँ से बनना आरंभ हुई और किस स्थान पर जाकर समाप्त हुई, और कितने समय में किन-किन साधनों से बनकर तैयार हुई।

उत्तर—

जैन समाज के विद्वानों को इतना भी ज्ञान नहीं कि दिन का आधार क्या है। जबकि सूर्य आदि कुछ था ही नहीं क्योंकि उस समय महाप्रलय थी तो किस दिन सृष्टि बनाना आरम्भ किया यह प्रश्न ही आपका कैसे बन गया ? यही अवस्था स्थान आदि की है, स्थानादि सब सृष्टि में होते हैं प्रलय में नहीं होते। कितने समय का उत्तर दिन और रात्री का दृष्टान्त देकर दिया जा चुका है। रह गया साधनों का प्रश्न उसमें जैन समाज में और आर्य समाज में मतभेद नहीं। जिन साधनों से आपके काल ने जगत रच दिया उन्हीं साधनों से ईश्वर ने रच दिया, ईश्वर में ज्ञान का साधन आपके काल से और अधिक है।

जैन विद्वानों से हमारे प्रश्न—

(१) नित्य और अनित्य का क्या लक्षण है। (२) सृष्टि प्रवाह से अनादि है अथवा स्वरूप से। परस्पर नित्य, समुदाय से नित्य आदि निरर्थक शब्द लिखकर समय खराब न करें। अथवा इनको सुगम भाषा में दृष्टान्त आदि देकर स्पष्ट शब्दों में सर्व साधारण जनता को समझावें। (३) जो जो पदार्थ किसी चैतन्य सत्ता से बनते हैं उनका क्या लक्षण है और जो स्वयं बनते हैं उनका क्या लक्षण है। (४) मनुष्य का अथवा पशु पक्षियों का शरीर किसने बनाया क्या उनके माता पिता ने यदि हां तो उनको शरीरों की बनावट का ज्ञान क्यों नहीं। (५) सृष्टि का लक्षण और अर्थ क्या है, प्रमाण सहित सुगम भाषा में दृष्टान्त द्वारा स्पष्ट करें। (६) जब आप लोग आर्य खण्ड का प्रलय मानते हैं जिसमें यह वर्तमान सम्पूर्ण पृथ्वी आ जाती है जिसको हम शास्त्रार्थ में गोपालदास जी वरैया का प्रमाण देकर सिद्ध कर चुके हैं, तो इससे बड़ी पृथ्वी होने में आपके पास क्या प्रमाण है, और यदि आपके कथनानुसार इससे बड़ी पृथ्वी मान भी लीजावे तो आर्य खण्ड की तरह उसका भी प्रलय क्यों नहीं होता। तथा नहीं होने में प्रमाण क्या है। (७) ६ महीने ८ दिन में ६०८ जीव मुक्त हो जावेंगे यह नियम किसने बनाया जीव ने अथवा पुद्गल ने। (८) स्वर्ग, नरक आदि की व्यवस्था का व्यवस्थापक कौन है। (९) इन स्वर्ग आदि में जीवों के रहने का नियम किसने बनाया। (१०) कर्म का और फल का लक्षण क्या है, तथा फल का उद्देश्य क्या है बदला या सुधार। (११) सृष्टि में नियम है इसका नियामक कौन है। इसके नियम—

(१) पितृ नियम, अर्थात् एक वस्तु से उसी के समान जातीय वस्तु उत्पन्न होती है।

(२) परिवर्तन भी नियम पूर्वक होता है।

(३) अवस्था का नियम, बाल अवस्था के पश्चात् ही युवा अवस्था होती है।

(४) चुनाव का नियम, सूर्य, चान्द, तारे आदि यथा स्थान चुने गये हैं।

(५) गति का नियम, संसार की घड़ियों में फरक पड़ सकता है परन्तु इनकी गतियों में फरक नहीं पड़ सकता जहाँ देखो वहीं नियम है।

(१२) जब मनुष्य माँ के गर्भ में पड़ता है तो उनकी आकृति प्रथम मास में मनुष्य जैसी नहीं होती। गाय, खरगोश, सूअर और मनुष्य के बच्चे की आकृति एक समान होती है। पुनः इनमें नियम पूर्वक परिवर्तन कौन करता हैं, क्या आपके इस जड़ पुद्गल को यह ज्ञान है कि इसको मनुष्य बनाना है और इसको खरगोश, और यदि आपका यह जीव इसका कर्त्ता होता तो कोई भी जीव सुअर आदि न बनता क्योंकि कौन जीव अपनी इच्छा से नीचा बनना चाहता है।

(१३) जब आप एक कमल फूल को देखकर यह समझ लेते हैं कि इसका कोई कर्ता नहीं है तो कागज के फूल को देख कर (जो उसकी एक भद्दी सी नकल मात्र है) भी यह क्यों नहीं समझ लेते कि इसका भी कोई कर्ता नहीं है ?

(१४) जब आप चन्द्र सूरज आदि को देख कर भी उसके कर्ता का ज्ञान नहीं कर सकते तो पुराने मकानों को देख कर उनके कर्ता का ज्ञान कैसे कर लेते हो ?

(१५) संसार कुछ थोड़े से पदार्थों का बना हुआ है, इन थोड़े से पदार्थों से अनेक वृक्ष, वनस्पतियाँ, लता, पुष्प आदि तथा भाँति-भाँति के पक्षियों के शरीर और पशु आदि तथा २ अरब मनुष्यों की आकृतियां (शकलें) अलग, २ आवाज अलग २ अंगूठा पृथक २ बना दिये क्या यह आपके जड़ पुद्गल को ज्ञान हो सकता है कि संसार में इस प्रकार की शकल बन चुकी अतः उससे भिन्न प्रकार की शकल बनाऊँ ? तथा आवाज एक दूसरे से न मिले ऐसा प्रबन्ध आपका पुद्गल किस प्रकार कर सकता है। इस जगत को जड़ के आश्रय छोड़ते समय इतना तो विचार लिया होता कि यदि इस जड पुद्गल ने हमारी शकलें एकसी बना दीं तो हमारी क्या दुर्दशा होगी ?

इत्यादि अनेक प्रश्न हमने शास्त्रार्थ में किये थे जिनका कुछ भी उत्तर जैनसमाज न दे सका, उत्तर तो क्या देता इनको छुआ तक भी नहीं। इसलिए स्पष्ट है कि जब जैन समाज का नियमानुसार इस विषय में उत्तर पक्ष था, इस पर जैन समाज प्रतिवादी के किये गये आक्षेपों का उत्तर न दे सका तो उसकी हार होने में किसी को क्या शक रह गया ? बस इस प्रकार इस शास्त्रार्थ में आर्य समाज की शानदार विजय हुई है।

★ ★

एकसौदसवां शास्त्रार्थ–

स्थान : काशी (उत्तर प्रदेश)

दिनांक : १६ नवम्बर १८६९ ई० दिन (मंगलवार)

विषय : मूर्त्ति पूजा

आर्य समाज की ओर से शास्त्रार्थकर्त्ता : श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती

पौराणिकों की ओर से शास्त्रार्थकर्त्ता : १. श्री विशुद्धानन्द सरस्वती
२. श्री बाल शास्त्री

मध्यस्थ : काशी नरेश

नोट :—विशेष जानकारी के लिए इस शास्त्रार्थ की भूमिका देखें।

निवेदक—
"लाजपतराय अग्रवाल"

भूमिका

हम पाठकों को इस काशी के शास्त्रार्थ का (जो कि संवत् १९२६ मि० कार्तिक सुदि १२ मङ्गलवार के दिन "स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी" का काशीस्थ "स्वामी विशुद्धानन्द सरस्वती" तथा "बालशास्त्री" आदि पण्डितों के साथ हुआ था) तात्पर्य सहज में प्रकाशित होने के लिये विदित करता हूं।

इस संवाद में स्वामीजी का पक्ष पाषाणमूर्तिपूजनादिखण्डनविषय और काशीवासी पण्डितजनों का मण्डन विषय था, उनको वेदप्रमाण से मण्डन करना उचित था सो कुछ भी न कर सके, क्योंकि जो कोई भी पाषाणादिमूर्तिपूजनादि में वैदिक प्रमाण होता तो क्यों न कहते और स्वपक्ष को वैदिक प्रमाणों से सिद्ध किये बिना वेदों को छोड़ कर अन्य मनुस्मृति आदि ग्रन्थ वेदों के अनुकूल हैं वा नहीं, इस प्रकरणान्तर में क्यों जा गिरते ? क्योंकि जो पूर्व प्रतिज्ञा को छोड़ के प्रकरणान्तर में जाना है वही पराजय का स्थान है, ऐसे हुए प्रश्चात् भी जिस २ ग्रन्थान्तर में से जो २ पुराण आदि शब्दों से ब्रह्मवैवर्त्तादि ग्रन्थों को सिद्ध करने लगे थे सो भी सिद्ध न कर सके, पश्चात् प्रतिमा शब्द से मूर्त्तिपूजा को सिद्ध करना चाहा था वह भी न हो सका, पुनः पुराण शब्द विशेष्य वा विशेषणवाची है। इसमें स्वामीजी का पक्ष विशेषणवाची और काशीस्थ पण्डितों का पक्ष विशेष्यवाची सिद्ध करना था, इसमें बहुत इधर-उधर के वचन बोले परन्तु सर्वत्र स्वामीजी ने विशेषणवाची, पुराण शब्द को सिद्ध कर दिया और काशीस्थ पण्डित लोग विशेष्यवाची सिद्ध नहीं कर सके। सो आप लोग देखिये कि शास्त्रार्थ की इन बातों से क्या ठीक २ विदित होता है ?

और भी देखने की बात है कि जब माधवाचार्य्य दो पत्रे निकाल के सबके सामने पटक के बोले थे कि यहां पुराण शब्द किस का विशेषण है ? उस पर स्वामीजी ने उस को विशेषणवाची सिद्ध कर दिया परन्तु काशी निवासी पण्डितों से कुछ भी न बन पड़ा, एक बड़ी शोचनीय यह बात उन्होंने की, जो किसी सभ्य मनुष्य के करने योग्य न थी कि ये लोग सभा में काशीराज महाराज और काशीस्थ विद्वानों के सन्मुख असभ्यता का वचन बोले। क्या स्वामीजी के कहने पर भी काशीराज आदि चुप होके बैठे रहें और बुरे वचन बोलने वालों को न रोकें ? क्या स्वामीजी का पांच मिनट दो पत्रों के देखने में लगा के प्रत्युत्तर देना विद्वानों की बात नहीं थी ? और क्या सब से बुरी बात यह नहीं थी कि सब सभा के बीच ताली शब्द लड़कों सदृश किया और ऐसे महा असभ्यता के व्यवहार करने में कोई भी उनको रोकने वाला न हुआ ? और क्या एक दम उठ के चुप होके बगीचे से बाहर निकल जाना और क्या सभा में वा अन्यत्र झूठा हल्ला करना धार्मिक और विद्वानों के आचरण के विरुद्ध नहीं था ?

यह तो हुआ सो हुआ परन्तु एक महा खोटा काम उन्होंने और किया जो सभा के व्यवहार से अत्यन्त विरुद्ध है कि एक पुस्तक स्वामीजी की झूठी निन्दा के लिए काशीराज के छापेखाने में छपाकर प्रसिद्ध किया और चाहा कि उनकी बदनामी करें और करावें परन्तु इतनी झूठी चेष्टा किये पर भी स्वामीजी उनके कर्मों पर ध्यान न देकर वा उपेक्षा करके पुनरपि उनको वेदोक्त उपदेश प्रीति से आज तक बराबर करते ही जाते हैं, और उक्त २६ के संवत् से लेके अब संवत् १९३७ तक छठी वार काशीजी में आके सदा विज्ञापन लगाते जाते हैं कि पुनरपि जो कुछ आप लोगों ने वैदिक प्रमाण वा कोई युक्ति पाषाणादि मूर्त्तिपूजा आदि के सिद्ध करने के लिए पाई हो तो

सभ्यतापूर्वक सभा करके फिर भी कुछ कहो वा सुनो, इस पर भी कुछ नही करते, यह भी कितने निश्चय करने की बात है। परन्तु ठीक है कि जो कोई दृढ़ प्रमाण वा युक्ति काशीस्थ पण्डित लोग पाते अथवा कहीं वेदशास्त्र में प्रमाण होता तो क्या सन्मुख होके अपने पक्ष को सिद्ध करने न लगते और स्वामीजी के सामने न होते ?

इससे यही निश्चित सिद्धान्त जानना चाहिये कि जो इस विषय में स्वामीजी की बात है वही ठीक है। और देखो स्वामीजी की यह बात संवत् १९३६ के विज्ञापन से भी कि जिसमें सभा के होने के अत्युत्तम नियम छपवा के प्रसिद्ध किये थे, सत्य ठहरती है।

उस पर पण्डित ताराचरण भट्टाचार्य ने अनर्थयुक्त विज्ञापन छपवा के प्रसिद्ध किया था, उस पर स्वामीजी के अभिप्राय से युक्त दूसरा विज्ञापन उसके उत्तर में पण्डित भीमसेन शर्मा ने छपवा कर, कि जिसमें स्वामी विशुद्धानन्द सरस्वतीजी और बालशास्त्रीजी से शास्त्रार्थ होने की सूचमा थी प्रसिद्ध किया था, उस पर दोनों में से कोई एक भी शास्त्रार्थ करने में प्रवृत्त न हुआ, क्या अब भी किसी को शङ्का रह सकती है कि जो २ स्वामीजी कहते हैं वह २ सत्य है वा नहीं ? किन्तु निश्चय करके जानना चाहिए कि स्वामीजी की सब बातें वेद और युक्ति के अनुकूल होने से सर्वथा सत्य ही हैं। और जहाँ छान्दोग्य उपनिषद आदि को स्वामीजी ने वेद नाम से कहा है वहाँ २ उन पण्डितों के मत के अनुसार कहा है किन्तु ऐसा स्वामीजी का मत नहीं, स्वामीजी मन्त्रसंहिताओं ही को वेद मानते हैं, क्योंकि जो मन्त्रसंहिता हैं, वे ईश्वरोक्त होने से निर्भ्रान्ति सत्यार्थयुक्त हैं और ब्राह्मणग्रन्थ जीवोक्त अर्थात् ऋषि मुनि आदि विद्वानों के कहे हैं वे भी प्रमाण तो है परन्तु वेदों के अनुकूल होने से प्रमाण और विरुद्धार्थ होने से अप्रमाण हो भी सकते हैं, और मंत्रसंहिता तो किसी के विरुद्धार्थ होने से अप्रमाण कभी नहीं हो सकती, क्योंकि वे [द] तो स्वतः प्रमाण हैं॥

संवत् १९३७)
सन् १८८०)

"प्रबन्धकर्ता, वैदिक यंत्रालय,"
(काशी)

★ ★

शास्त्रार्थ आरम्भ

अथ काशी-शास्त्रार्थः

धर्माधर्मयोर्मध्ये शास्त्रार्थविचारो विदितो भवतु । एको दिगम्बरस्सत्यशास्त्रार्थविद्यानन्दसरस्वती स्वामी गङ्गातटे विहरति । स ऋग्वेदादिसत्यशास्त्रेभ्यो निश्चयं कृत्वैवं वदति—"वेदेषु पाषणादिमूर्त्तिपूजनविधानं शैवशाक्तगाणपत वैष्णवादिसम्प्रदाया रुद्राक्षत्रिपुंड्रादिधारणं च नास्त्येव तस्मादेतत् सर्वं मिथ्यैवास्ति, नाचरणीयं कदाचित्। कुतः ? एतत् वेदविरुद्धाप्रसिद्धाचरणे महत्पापं भवतीतीयं वेदादिषु मर्यादा लिखितास्ति ।"

एक दयानन्द सरस्वती नामक संन्यासी दिगम्बर गङ्गा के तीर विचरते रहते हैं, जो सत्पुरुष और सत्यशास्त्रों के वेत्ता हैं । उन्होंने सम्पूर्ण ऋग्वेदादि का विचार किया है, सो ऐसा सत्य-शास्त्रों को देख निश्चय करके कहते हैं कि "पाषणादि मूर्त्तिपूजन, शैव शाक्त, गाणपत और वैष्णव आदि संप्रदायों और रुद्राक्ष, तुलसी माला, त्रिपुण्ड्रादि धारण का विधान कहीं भी वेदों में नहीं है, इससे ये सब मिथ्या ही हैं, कदापि इनका आचरण न करना चाहिए । क्योंकि वेदविरुद्ध और वेदों में अप्रसिद्ध के आचरण से बड़ा पाप होता है, ऐसी मर्यादा वेदों में लिखी है ।"

एवं हरद्वारमारभ्य गङ्गातटे अन्यत्रापि यत्र कुत्रचित दयानन्दसरस्वती स्वामी खण्डन कुर्वन् सन् काशीमागत्य दुर्गाकुण्डसमीप आनन्दारामे यदा स्थितिं कृतवान् तदा काशीनगरे महान् कोलाहलो जातः । बहुभिः पण्डितैर्वेदादि-पुस्तकानां मध्ये विचारः कृतः, परन्तु क्वापि पाषणादिमूर्त्तिपूजनादि विधानं न लब्धम् ।

इस हेतु से उक्त स्वामीजी हरिद्वार से लेकर सर्वत्र इसका खण्डन करते हुए काशी में आके दुर्गाकुण्ड के समीप आनन्दबाग में स्थित हुए । उनके आने की धूम मची, बहुत से पण्डितों ने वेदों के पुस्तकों में विचार करना आरम्भ किया, परन्तु पाषणादि मूर्त्तिपूजा का विधान कहीं भा किसी को न मिला ।

प्रायेण बहूनां पाषाणपूजनादिष्वाग्रहो महानस्ति, अतः काशीराजमहाराजेन बहून् पण्डितानाहूय पृष्टं किं कर्त्तव्यमिति ? तदा सर्वैर्जनैर्निश्चयः कृतो येन केन प्रकारेण दयानन्दस्वामिना सह शास्त्रार्थं कृत्वा बहुकालात् प्रवृत्तस्याचारस्य स्थापनं यथा भवेत् तथा कर्त्तव्यमेवेति ।

बहुधा करके इसके पूजन में आग्रह बहुतों को है । इससे काशीराज महाराज ने बहुत से पण्डितों को बुलाकर पूछा कि इस विषय में क्या करना चाहिये ? तब सब ने ऐसा निश्चय करके कहा कि किसी प्रकार से दयानन्द सरस्वती स्वामी के साथ शास्त्रार्थ करके बहुकाल से प्रवृत्त आचार को जैसे स्थापन हो सके करना चाहिये ।

पुनः कार्त्तिकशुक्लद्वादश्यामेकोनविंशतिशतषड्विंशतितमे संवत्सरे (१९२६) मङ्गलवासरे महाराजः काशीनरेशो बहुभिः पण्डितैः सह शास्त्रार्थकरणार्थमानन्दारामं यत्र दयानन्दस्वामिना निवासः कृतः तत्रागतः ।

तदा दयानन्दस्वामिना महाराजं प्रत्युक्तम्—वेदानां पुस्तकान्यानीतानि न वा ?

निदान कार्तिक सुदी १२ सं० १९२६ मङ्गलवार को महाराज काशीनरेश बहुत से पण्डितों को साथ लेकर

जब स्वामीजी से शास्त्रार्थ करने के हेतु आए तब दयानन्द स्वामीजी ने काशी महाराज से पूछा कि आप वेदों की पुस्तक ले आए हैं वा नहीं ?

तदा महाराजेनोक्तम्—वेदाः पण्डितानां कण्ठस्थाः सन्ति किं प्रयोजनं पुस्तकानामिति ?

महाराज ने कहा कि—वेद सम्पूर्ण पण्डितों को कण्ठस्थ हैं पुस्तकों का क्या प्रयोजन है ?

तदा दयानन्दस्वामिनोक्तम्—पुस्तकैर्विना पूर्वापरप्रकरणस्य यथावद्विचारस्तु न भवति ।

अस्तु तावत् पुस्तकानि नानीतानि ।

तब दयानन्द सरस्वती जी ने कहा कि पुस्तकों के बिना पूर्वापर प्रकरण का विचार ठीक-ठीक नहीं हो, सकता, भला पुस्तक नहीं लाए तो नहीं सही परन्तु किस विषय पर विचार होगा ?

पण्डितों ने कहा कि—तुम मूर्त्तिपूजा का खण्डन करते हो, हम लोग उसका मण्डन करेंगे।

पुनः स्वामी जी ने कहा कि—जो कोई आप लोगों में मुख्य हो वही एक पण्डित मुझ से संवाद करे ।

तदा पण्डित रघुनाथप्रसादकोटपालेन नियमः कृतो दयानन्दस्वामिना सहैकैकः पण्डितो वदतु न तु युगपदिति ।

पण्डित रघुनाथप्रसाद कोतवाल ने यह नियम किया कि—स्वामी से एक एक पण्डित विचार करे ।

तदादौ ताराचरणनैयायिको विचारार्थमुद्यतः, तं प्रति स्वामिदयानन्देनोक्तम्—युष्माकं वेदानां प्रामाण्यं स्वीकृतमस्ति न वेति ?

पुनः सबसे पहिले ताराचरण नैयायिक स्वामी जी से विचार के हेतु सम्मुख प्रवृत्त हुए ।

स्वामी जी ने उनसे पूछा कि—आप वेदों को प्रमाण मानते हैं वा नहीं ?

तदा ताराचरणेनोक्तम्—सर्वेषां वर्णाश्रमस्थानां वेदेषु प्रामाण्यस्वीकारोऽस्तीति ।

उन्होंने उत्तर दिया कि—जो वर्णाश्रम में स्थित हैं उन सबको वेदों का प्रमाण ही है ।[1]

तदा दयानन्दस्वामिनोक्तम्—वेदे पाषाणादि मूर्त्तिपूजनस्य यत्र प्रमाणं भवेत्तद्दर्शनीयम्, नास्ति चेद्वद नास्तीति ।

इस पर स्वामी जी ने कहा कि—कहीं वेदों में पाषाणादि मूर्तियों के पूजन का प्रमाण है वा नहीं ? यदि हो तो दिखाइये ? और जो नहीं तो कहिये कि नहीं है।

तदा ताराचरणभट्टाचार्येणोक्तम्—वेदेषु प्रमाणमस्ति वा नास्ति परन्तु वेदानामेव प्रामाण्यं नान्येषामिति यो ब्रूयात्तं प्रति किं वदेत ?

पण्डित ताराचरण ने कहा कि—वेदों में प्रमाण है वा नहीं परन्तु जो एक वेदों ही का प्रमाण मानता है औरों का नहीं उसके प्रति क्या कहना चाहिये ?

---

[1] इससे यह समझना कि स्वामी जी भी वर्णाश्रमस्थ हैं, वेदों को मानते हैं।

तदा स्वामिनोक्तम्—अन्यो विचारस्तु पश्चाद् भविष्यति वेदविचार एव मुख्योऽस्ति तस्मात् स एवादौ कर्त्तव्यः, कुतो वेदोक्तकर्मैव मुख्यमस्त्यतः । मनुस्मृत्यादीन्यपि वेद-मूलानि सन्ति तस्मात्तेषामपि प्रामाण्यमस्ति न तु वेद-विरुद्धानां वेदाप्रसिद्धानां चेति ।

इस पर स्वामी जी ने कहा कि—औरों का विचार पीछे होगा, वेदों का विचार मुख्य है, इस निमित्त से इसका विचार पहिले ही करना चाहिए, क्योंकि वेदोक्त ही कर्म्म मुख्य है । और मनुस्मृति आदि भी वेदमूलक हैं इससे इनका भी प्रमाण है, क्योंकि जो जो वेद विरुद्ध और वेदों में अप्रसिद्ध हैं उनका प्रमाण नहीं होता ।

तदा ताराचरणभट्टाचार्येणोक्तम्—मनुस्मृतेः क्वास्ति वेदमूलमिति ?

पण्डित ताराचरण ने कहा कि—मनुस्मृति का वेदों में कहां मूल है ?

स्वामिनोक्तम्—"यद्वै किंचन मनुरवदत्तद् भेषजं भेषजताया" इति सामवेदे[1] ।

इस पर स्वामी जी ने कहा कि—जो जो मनु जी ने कहा है सो सो औषधों का भी औषध है, ऐसा सामवेद के ब्राह्मण में कहा है[2] ।

तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तम्—रचनानुपपत्तेश्च नानुमानमित्यस्य व्याससूत्रस्य किं मूलमस्तीति ?

विशुद्धानन्द स्वामी जी ने कहा कि—रचना की अनुपपत्ति होने से अनुमान-प्रतिपाद्य प्रधान, जगत् का कारण नहीं व्यास जी के इस सूत्र का वेदों में क्या मूल है ?

तदा स्वामिनोक्तम्—अस्य प्रकरणस्योपरि विचारो न कर्त्तव्यं इति ।

इस पर स्वामी जी ने कहा कि—यह प्रकरण से भिन्न बात है इस पर विचार करना न चाहिए ।

पुनर्विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तम्—वदैव त्वं यदि जानासीति ।

फिर विशुद्धानन्द स्वामी ने कहा कि—यदि तुम जानते हो तो अवश्य कहो ।

तदा दयानन्दस्वामिना प्रकरणान्तरे गमनम्भविष्यतीति मत्वा नेदमुक्तम् ।

कदाचित् कण्ठस्थं यस्य न भवेत् स पुस्तकं दृष्ट्वा वदेदिति ।

इस पर स्वामी जी ने यह समझ कर कि—प्रकरणान्तर में वार्त्ता जा रहेगी, इससे न कहा जो कदाचित् किसी को कण्ठ न हो तो पुस्तक देखकर कहा जा सकता है ।

तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तम्—कण्ठस्थं नास्ति चेच्छास्त्रार्थं कर्तुं कथमुद्यतः काशीनगरे चेति ।

तब विशुद्धानन्द स्वामी ने कहा कि—जो कण्ठस्थ नहीं है तो काशी नगर में शास्त्रार्थ करने को क्यों उद्यत हुए ?

---

[1] पण्डितानामेव मतमङ्गीकृत्योक्तमतो नेदं स्वामिनो मतमिति वेद्यम् ।

[2] यह कहना उन पण्डितों के मत के अनुसार ठीक है, परन्तु स्वामी जी तो ब्राह्मण पुस्तकों को वेद नहीं मानते किन्तु मन्त्रभाग ही को वेद मानते हैं ।

तदा स्वामिनोक्तम्—भवतः सर्वं कण्ठस्थं वर्त्तत इति ?

इस पर स्वाजी ने कहा कि—क्या आपको सब कण्ठाग्र है ?

तदाविशुद्धानन्द स्वामिनोक्तम्—मम् सर्वं कण्ठस्थं वर्त्तत इति ।

विशुद्धानन्द स्वामी ने कहा कि—हां हमको [सब] कण्ठस्थ है ।

तदास्वामिनोक्तम्—धर्मस्य किं स्वरूपमिति ?

इस पर स्वामी जी ने कहा कि—कहिये धर्म्म का क्या स्वरूप है ?

तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तम्—वेदप्रतिपाद्यः प्रयोजनवदर्थो धर्म इति ।

विशुद्धानन्द स्वामी ने कहा कि—जो वेद प्रतिपाद्य फल सहित अर्थ है वही धर्म कहलाता है ।

स्वामिनोक्तम्—इदन्तु तव संस्कृतं नास्त्यास्य प्रामाण्यं कण्ठस्थां श्रुतिं स्मृतिं वा वदेति ।

इस पर स्वामी जी ने कहा कि—यह आपका संस्कृत है इसका क्या प्रमाण ? श्रुति स्मृति कहिये ।

तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तम्—"चोदनालक्षणार्थो धर्मः" इति जैमिनिसूत्रमिति * ।

विशुद्धानन्द स्वामी ने कहा कि—जो चोदनालक्षण अर्थ है सो धर्म कहलाता है । यह जैमिनि का सूत्र है ।

तदा स्वामिनोक्तम्—चोदना का, चोदना नाम प्रेरणा तत्रापि श्रुतिर्वा स्मृतिर्वक्तव्या यत्र प्रेरणा भवेत् ।

स्वामीजी ने कहा कि—यह सूत्र है, यहां श्रुति वा स्मृति को कण्ठ से क्यों नहीं कहते ? और चोदना नाम प्रेरणा का है वहां भी श्रुति वा स्मृति कहना चाहिये जहां प्रेरणा होती है ।

तदा विशुद्धानन्दस्वामिना किमपि नोक्तम् ।

तब इसमें विशुद्धानन्द स्वामी ने कुछ भी न कहा ।

तदा स्वामिनोक्तम्—अस्तु तावद्धर्मस्वरूपप्रतिपादिका श्रुतिर्वा स्मृतिस्तु नोक्ता किं च धर्मस्य कति लक्षणानि भवन्ति वदतु भवानिति ?

तब स्वामीजी ने कहा कि—अच्छा आपने धर्म का स्वरूप तो न कहा परन्तु धर्म के कितने लक्षण हैं कहिये ?

तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तम्—एकमेव लक्षणं धर्मस्येति ।

विशुद्धानन्द स्वामी ने कहा कि—धर्म का एक ही लक्षण है ।

तदा स्वामिनोक्तम्—किं च तदिति ?

इस पर स्वामीजी ने कहा कि—वह कैसा है ?

---

*इदन्तु सूत्रमस्ति, नेयं श्रुतिर्वा स्मृतिः, सर्वं मम् कण्टस्थमस्तीति प्रतिज्ञायेदानीं कण्ठस्थं नोच्यत इति प्रतिज्ञाह्यानेस्तस्य कुतो न पराजय इति बोध्यम् ।

तदा विशुद्धानन्दस्वामिना किमपि नोक्तम् ।

तब विशुद्धानन्द स्वामी ने कुछ भी न कहा ।

तदा दयानन्दस्वामिनोक्तम्—धर्मस्य तु दश लक्षणानि सन्ति भवता कथमुक्तमेकमेवेति ?

तब स्वामीजी ने कहा कि—धर्म्म के तो दश लक्षण हैं, आप एक ही क्यों कहते हैं ?

तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तम्—कानि तानि लक्षणानीति ?

तब विशुद्धानन्द स्वामी ने कहा कि—वे कोन से दश लक्षण हैं ?

तदा स्वामिनोक्तम्—

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम् ।।

इति मनुस्मृतेः श्लोकोमस्ति* ।

इस पर स्वामीजी ने मनुस्मृति का यह वचन कहा कि:—धैर्य्य १ क्षमा २ दम ३ चोरी का त्याग ४ शौच ५ इन्द्रियों का निग्रह ६ बुद्धि ७ विद्या का बढ़ाना ८ सत्य ९ और अक्रोध अर्थात् क्रोध का त्याग १०, ये दश धर्म के लक्षण हैं, फिर आप कैसे एक ही लक्षण कहते हैं ?

तदा बालशास्त्रिणोक्तम्—अहं सर्वं धर्म्मशास्त्रं पठितवानिति ।

तदा दयानन्दस्वामिनोक्तम्—त्वमधर्म्मस्य लक्षणानि वदेति ।।

तब बालशास्त्री ने कहा कि—हां हमने सब धर्मशास्त्र देखा है।

इस पर स्वामीजी ने कहा कि—आप अधर्म का लक्षण कहिये ?

तदा बालशास्त्रिणा किमपि नोक्तम् ।

तब बालशास्त्रीजी ने कुछ भी उत्तर न दिया ।

तदा बहुभिर्युगपत् पृष्टम्—प्रतिमा शब्दो वेदे नास्ति किमिति ?

फिर बहुत से पण्डितों ने इक्कट्ठे हल्ला करके पूछा कि वेद में प्रतिमा शब्द है वा नहीं ?

तदा स्वामिनोक्तम्—प्रतिमाशब्दस्त्वस्तीति ।

इस पर स्वामीजी ने कहा कि—प्रतिमा शब्द तो है ।

तदा तैरुक्तम्—क्वास्तीति ?

फिर उन लोगों ने कहा कि—कहां पर है ?

---

* अत्रापि तस्य प्रतिज्ञाहानेर्निग्रहस्थानं बोध्यम् ।

तदा स्वामिनोक्तम्—सामवेदस्य ब्राह्मणे चेति।

इस पर स्वामीजी ने कहा कि सामवेद के ब्राह्मण में है।

तदा तैरुक्तम्—किं च तद्वचनमिति ?

फिर उन लोगों ने कहा कि वह कौन सा बचन है ?

तदा स्वामिनोक्तम्—देवतायतनानि कम्पन्ते दैवत-प्रतिमा हसन्तीत्यादीनि।

इस पर स्वामीजी ने कहा कि यह है—"देवता के स्थान कम्पायमान और प्रतिमा हंसती है इत्यादि*।"

तदा तैरुक्तम्—प्रतिमाशब्दस्तु वेदे* वर्तते भवान् कथं खण्डनं करोति ?

फिर उन लोगों ने कहा कि प्रतिमा शब्द तो वेदों में भी है फिर आप कैसे खण्डन करते हैं ?

तदा स्वामिनोक्तम्—प्रतिमाशब्देनैव पाषणपूजनादेः प्रामाण्यं न भवति, प्रतिमा शब्दस्यार्थः कर्त्तव्य इति।

इस पर स्वामीजी ने कहा कि प्रतिमा शब्द से पाषणादि मूर्त्तिपूजनादि का प्रमाण नहीं हो सकता है, इसलिये प्रतिमा शब्द का अर्थ करना चाहिये इसका क्या अर्थ है ?

तदा तैरुक्तम्—यस्मिन् प्रकरणेऽयं मन्त्रोऽस्ति तस्य कोऽर्थ इति ?

तब उन लोगों ने कहा कि जिस प्रकरण में यह मन्त्र है उस प्रकरण का क्या अर्थ है ?

तदा स्वामिनोक्तम्—अथातोद्भुतशान्ति व्याख्यास्याम इत्युपक्रम्य त्रातारमिन्द्रमित्यादयस्तत्रैव सर्वे मूलमन्त्रा लिखिताः, एतेषां मध्यात् प्रतिमन्त्रेण त्रित्रिसहस्राण्याहुतयः कार्यास्ततो व्याहृतिभिः पञ्चपञ्चाहुतयश्चेति लिखित्वा सामगानं च लिखितम्। अनेनैव कर्म्मणाद्भुतशान्तिर्विहिता। यस्मिन्मन्त्रे प्रतिमाशब्दोऽस्ति स मन्त्रो न मर्त्यलोकविषयोऽपि तु ब्रह्मलोकविषय एव तद्यथा—"स प्राचीं दिशमन्वावर्त्ततेऽथेति" प्राच्या दिशोद्भुतदर्शनशान्तिमुक्त्वा ततो दक्षिणस्याः पश्चिमाया दिशः शान्तिं कथयित्वा उत्तरस्या दिशः शान्तिरुक्ता, ततो भूमेश्चेति मर्त्यलोकस्य प्रकरणं समाप्यान्तरिक्षस्य शान्तिरुक्ता, ततो दिवश्च शान्तिविधानमुक्तम्, ततः परस्य स्वर्गस्य च नाम ब्रह्मलोकस्यैवेति।

इस पर स्वामीजी ने कहा कि यह अर्थ है—अब अद्भुत शान्ति की व्याख्या करते हैं ऐसा प्रारम्भ करके फिर रक्षा करने के लिये, इन्द्र [त्रातारमिन्द्र] इत्यादि सब मूलमन्त्र वहीं सामवेद के ब्राह्मण में लिखे हैं, इनमें से प्रति मन्त्र करके तीन हजार आहुति करनी चाहियें, इसके अनन्तर व्याहृति करके पांच-पांच आहुति करनी चाहियें, ऐसा लिख के सामगान भी करना लिखा है। इस क्रम करके अदभुत शान्ति का विधान किया है। जिस मन्त्र में प्रतिमा शब्द है सो मन्त्र मृत्युलोक विषयक नहीं किन्तु ब्रह्मलोक विषयक है, सो ऐसा है कि 'जब विघ्नकर्त्ता देवता पूर्वदिशा में वर्त्तमान होवे' इत्यादि मन्त्रों से अद्भुतदर्शन की शान्ति कहकर फिर दक्षिणदिशा, पश्चिमदिशा, और

---

* यह वेदवचन नहीं किन्तु सामवेद के षड्विंश ब्राह्मण का है परन्तु वहां भी यह प्रक्षिप्त है क्योंकि वेदों से विरुद्ध है।

* अत्रापि तेषामवेदे ब्राह्मणग्रन्थे वेदबुद्धित्वाद् भ्रान्तिरेवास्तीति वेद्यम्।

उत्तर दिशा, इसके अनन्तर भूमि की शान्ति कहकर मृत्युलोक का प्रकरण समाप्त कर अन्तरिक्ष की शान्ति कहके, इसके अनन्तर स्वर्गलोक फिर परमस्वर्ग अर्थात् ब्रह्मलोक की शान्ति कही है। इस पर सब चुप रहे।

तदा बालशास्त्रिणोक्तम्—यस्यां यस्यां दिशि या या देवता तस्यास्तस्या देवतायाः शान्तिकरणेन दृष्टविघ्नोपशान्तिर्भवतीति।

फिर बालशास्त्री ने कहा कि जिस-जिस दिशा में जो-जो देवता है उस-उस की शान्ति करने से अद्भुत देखने वालों के विघ्न की शान्ति होती है।

तदा स्वामिनोक्तम्—इदं तु सत्यं परन्तु विघ्नदर्शयिता कोऽस्तीति ?

इस पर स्वामीजी ने कहा कि यह सत्य है परन्तु इस प्रकार में विघ्न दिखाने वाला कौन है ?

तदा बालशास्त्रिणोक्तम्—इन्द्रियाणि दर्शयितृणीति।

तब बालशास्त्री ने कहा कि इन्द्रियां दिखाने वाली हैं।

तदा स्वामिनोक्तम्—इन्द्रियाणि तु द्रष्टृणि भवन्ति न तु दर्शयितृणि, परन्तु स प्राचीं दिशमन्वावर्त्ततेऽथेत्यत्र स शब्दवाच्यः कोऽस्तीति ?

इस पर स्वामीजी ने कहा कि इन्द्रियां तो देखने वाली हैं दिखाने वाली नहीं, परन्तु "स प्राचीं दिशमन्वावर्त्ततेऽथेत्यत्र" इत्यादि मन्त्रों में 'स' शब्द का वाच्यार्थ क्या है ?

तदा बालशास्त्रिणा किमपि नोक्तम्।

तब बालशास्त्रीजी ने कुछ न कहा।

तदा शिवसहायेन प्रयागस्थेनोक्तम्—अन्तरिक्षादि गमनं शान्तिकरणस्य फलमनेनोच्यते चेति।

फिर पण्डित शिवसहायजी ने कहा कि अन्तरिक्ष आदि गमन, शान्ति करने से फल इस मन्त्र करके कहा जाता है।

तदा स्वामिनोक्तम्—भवता तत्प्रकरणं दृष्टं किम् ? दृष्टं चेत्तर्हि कस्यापि मन्त्रस्यार्थं वदेति।

इस पर स्वामीजी ने कहा कि आपने वह प्रकरण देखा है तो किसी मन्त्र का अर्थ तो कहिये ?

तदा शिवसहायेन मौनं कृतम्।

तब शिवसहायजी चुप हो रहे।

तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तम्—वेदाः कस्माज्जाता इति ?

फिर विशुद्धानन्द स्वामीजी ने कहा कि वेद किससे उत्पन्न हुए हैं ?

तदा स्वामिनोक्तम्—वेदा ईश्वराज्जाता इति।

इस पर स्वामीजी ने कहा कि वेद ईश्वर से उत्पन्न हुए हैं।

तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तम्—कस्मादीश्वराज्जाताः ?

फिर विशुद्धानन्द स्वामी ने कहा कि किस ईश्वर से ?

किं न्यायशास्त्रोक्ताद्वा योगशास्त्रोक्ताद्वा वेदान्तशास्त्रोक्ताद्वेति ?

क्या न्यायशास्त्र प्रसिद्ध ईश्वर से वा योगशास्त्र प्रसिद्धि ईश्वर से अथवा वेदान्तशास्त्र प्रसिद्ध ईश्वर से ? इत्यादि।

तदा स्वामिनोक्तम्—ईश्वरा बहवो भवन्ति किमिति ?

इस पर स्वामीजी ने कहा कि क्या ईश्वर बहुत से हैं ?

तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तम्—ईश्वरस्त्वेक एव परन्तु वेदाः कीदृग्लक्षणादीश्वराज्जाता इति ?

तब विशुद्धानन्द स्वामीजी ने कहा कि ईश्वर तो एक ही है परन्तु वेद कौन से लक्षण वाले ईश्वर से प्रकाशित भये हैं ?

तदा स्वामिनोक्तम्—सच्चिदानन्दलक्षणादीश्वराद्वेदा जाता इति।

इस पर स्वामीजी ने कहा कि सच्चिदानन्द लक्षण वाले ईश्वर से प्रकाशित भये हैं।

तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तम्—कोऽस्ति सम्बन्धः ? किं प्रतिपाद्यप्रतिपादकभावो वा जन्यजनकभावो वा समवायसम्बन्धो वा स्वस्वामिभावइति तादात्म्यभावो वेति ?

फिर विशुद्धानन्द स्वामीजी ने कहा कि ईश्वर और वेदों से क्या सम्बन्ध है ? क्या प्रतिपाद्यप्रतिपादकभाव वा जन्यजनकभाव अथवा समवायसम्बन्ध वा स्वस्वामिभाव अथवा तादात्म्य सम्बन्ध है ? इत्यादि।

तदा स्वामिनोक्तम्—कार्यकारणभावः सम्बन्धश्चेति।

इस पर स्वामी जी ने कहा कि कार्य्यकारणभाव सम्बन्ध है।

तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तम्—मनो ब्रह्मेत्युपासीत, आदित्यं ब्रह्मेत्युपासीतेति यथा प्रतीकोपासनमुक्तं तथा शालिग्रामपूजनमपि ग्राह्यमिति।

फिर विशुद्धानन्द स्वामी ने कहा कि जैसे मन में ब्रह्मबुद्धि और सूर्य में ब्रह्म बुद्धि करके प्रतीक उपासना कही हैं वैसे ही शालिग्राम के पूजन का ग्रहण करना चाहिए।

तदा स्वामिनोक्तम्—यथा मनो ब्रह्मेत्युपासीत आदित्यं ब्रह्मेत्युपासीतेत्यादिवचनं वेदेषु[1] दृश्यते तथा पाषाणादि ब्रह्मेत्युपासीतेति वचनं क्वापि वेदेषु न दृश्यते, पुनः कथं ग्राह्यम्भवेदिति ?

इस पर स्वामी जी ने कहा कि जैसे "मनो ब्रह्मेत्युपासीत आदित्यं ब्रह्मेत्युपासीत" इत्यादि वचन वेदों[2] में देखने में आते हैं वैसे "पाषाणादि ब्रह्मेत्युपासीत" इत्यादि वचन वेदादि में नहीं देख पड़ता फिर क्योंकर इसका ग्रहण हो सकता है ?

तदा माधवाचार्येणोक्तम्—"उद्बुध्यस्वाग्ने प्रति जागृहि त्वमिष्टापूर्त्ते स ७ सृजेथामयं च···" इति मन्त्रस्थेन पूर्त्तशब्देन कस्य ग्रहणमिति ?

---

[1] इदमपि पण्डितमतानुसारेणोक्तम्, नेदं स्वामिनो मतमिति वेद्यम्।

[2] यह भी उन्हीं पण्डितों का मत है स्वामी जी का नहीं क्योंकि स्वामी जी तो ब्राह्मण पुस्तकों को ईश्वर नहीं मानते।

तब माधवाचार्य्य ने कहा कि "उद्बुध्यस्वाग्ने प्रति जागृहि त्वमिष्टापूर्त्ते स ँ सृजेथामयञ्च" इति, इस मन्त्र में पूर्त्त शब्द से किसका ग्रहण है ?

तदा स्वामिनोक्तम्—वापीकूपतडागारामाणामेव नान्यस्येति ।

इस पर स्वामी जी ने कहा कि वापी, कूप, तड़ाग और आराम का ग्रहण है ।

तदा माधवाचार्य्येणोक्तम्—पाषाणादिमूर्त्तिपूजनमत्र कथं न गृह्यते चेति ?

माधवाचार्य्य ने कहा कि इससे पाषाणादि मूर्तिपूजन का ग्रहण क्यों नहीं होता है ?

तदा स्वामिनोक्तम्—पूर्त्तशब्दस्तु पूर्त्तिवाची वर्त्तते तस्मान्न कदाचित्पाषाणादिमूर्त्तिपूजनग्रहणं सम्भवति । यदि शङ्कास्ति तर्हि निरुक्तमस्य मन्त्रस्य पश्य ब्राह्मणं चेति ।

इस पर स्वामी जी ने कहा कि पूर्त्त शब्द पूर्ति का वाचक है इससे कदाचित् पाषाणादि मूर्त्तिपूजन का ग्रहण नहीं हो सकता यदि शंका हो तो इस मन्त्र का निरुक्त और ब्राह्मण देखिये ।

ततो माधवाचार्य्येणोक्तम्—पुराणशब्दो वेदेष्वस्ति न वेति ?

तब माधवाचार्य्य ने कहा कि पुराण शब्द वेदों में है वा नहीं ?

तदा स्वामिनोक्तम्—पुराणशब्दस्तु बहुषु स्थलेषु वेदेषु दृश्यते परन्तु पुराणशब्देन कदाचिद् ब्रह्मवैवर्त्तादिग्रन्थानां ग्रहणं न भवति, कुतः ? पुराणशब्दस्तु भूतकालवाच्यस्ति सर्वत्र द्रव्यविशेषणं चेति ।

इस पर स्वामी जी ने कहा कि पुराण शब्द तो बहुत सी जगह वेदों में है, परन्तु पुराण शब्द से ब्रह्मवैवर्त्तादिक ग्रन्थों का कदाचित् ग्रहण नहीं हो सकता, क्योंकि पुराण शब्द भूतकालवाची है और सर्वत्र द्रव्य का विशेषण ही होता है ।

तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तम्—"एतस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरस इतिहासः पुराणं श्लोका व्याख्यानान्यनुव्याख्यानानि" इत्यत्र बृहदारण्यकोपनिषदि पठितस्य सर्वस्य प्रामाण्यं वर्त्तते न वेति ?

फिर विशुद्धानन्द स्वामी जी ने कहा कि बृहदारण्यक उपनिषद् के इस मंत्र में कि "एतस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरस इतिहासः पुराणं श्लोका व्याख्यानान्यनुव्याख्यानानीति" यह सब जो पठित है इसका प्रमाण है वा नहीं ।

तदा स्वामिनोक्तम्—अस्त्येव प्रामाण्यमिति ।

इस पर स्वामी जी ने कहा—हां प्रमाण है ।

तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तम्—श्लोकस्यापि प्रामाण्यं चेत्तदा सर्वेषां प्रामाण्यमागतमिति ।

फिर विशुद्धानन्द जी ने कहा कि यदि श्लोक का भी प्रमाण है तो सबका प्रमाण आया ।

तदा स्वामिनोक्तम्—सत्यानामेव श्लोकानां प्रामाण्यं नान्येषामिति ।

इस पर स्वामीजी ने कहा कि सत्य श्लोकों ही का प्रमाण होता है औरों का नहीं ।

तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तम्—अत्र पुराणशब्दः कस्य विशेषणमिति ?

तब विशुद्धानन्द स्वामी जी ने कहा कि यहां पुराण शब्द किसका विशेषण है ?

तदा स्वामिनोक्तम्—पुस्तकमानय पश्चाद्विचारः कर्त्तव्य इति ।

इस पर स्वामी जी ने कहा कि पुस्तक लाइये तब इसका विचार हो ।

तदा माधवाचार्य्येण वेदस्य [1] द्वे पत्रे निस्सारिते, अत्र पुराणशब्दः कस्य विशेषणमित्युक्त्वेति ।

माधवाचार्य ने वेदों के दो पत्रे [2] निकाले, और कहा कि यहां पुराण शब्द किसका विशेषण है ?

तदा स्वामिनोक्तम्—कीदृशमस्ति वचनं पठयतामिति ।

स्वामी जी कहा कि कैसा वचन है पढ़िए ।

तदा माधवाचार्य्येण पाठः कृतस्तत्रेदं वचनमस्ति "ब्राह्मणानीतिहासः पुराणानीति" ।

तब माधवाचार्य्य ने यह पढ़ा 'ब्राह्मणानीतिहासान् पुराणानीति' ।

तदा स्वामिनोक्तम्—पुराणानि ब्राह्मणानि नाम सनातनानीति विशेषणमिति ।

इस पर स्वामी जी ने कहा कि यहां पुराण शब्द ब्राह्मण का विशेषण है अर्थात् पुराने नाम सनातन ब्राह्मण हैं ।

तदा बालशास्त्र्यादिभिरुक्तम्—ब्राह्मणानि नवीनानि भवन्ति किमिति ।

तब बालशास्त्री जी आदि ने कहा कि ब्राह्मण कोई नवीन भी होते हैं ?

तदा स्वामिनोक्तम्—नवीनानि ब्राह्मणानीति कस्यचिच्छङ्कापि माभूदिति विशेणार्थः ।

इस पर स्वामी जी ने कहा कि नवीन ब्राह्मण नहीं हैं, परन्तु ऐसी शंका भी किसी को न हो इसलिए यहां यह विशेषण कहा है ।

तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तम्—इतिहासशब्दव्यवधानेन कथं विशेषणं भवेदिति ?

तब विशुद्धानन्द स्वामी जी ने कहा कि यहां इतिहास शब्द के व्यवधान होने से कैसे विशेषण होगा ?

तदा स्वामिनोक्तम्—अयंनियमोऽस्ति किं व्यवधानाद्विशेषणयोगो न भवेत्सन्निधानादेव भवेदिति ? "अजो नित्यश्शाश्वतोऽयम्पुराणो न" इति दूरस्थस्य देहिनो विशेषणानि गीतायां कथम्भवन्ति ? व्याकरणेऽपि नियमो नास्ति समीपस्थमेव विशेषणं भवेन्न दूरस्थमिति ।

इस पर स्वामी जी ने कहा कि क्या ऐसा नियम है कि व्यवधान से विशेषण नहीं होता और अव्यवधान ही में होता है, क्योंकि [गीता के] "अजोनित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे" इस श्लोक में दूरस्थ देही का भी क्या विशेषण नहीं है ? और कहीं व्याकरणादि में भी यह नियम नहीं किया है कि समीपस्थ ही विशेषण होते हैं दूरस्थ नहीं ।

---

[1] इदमपि पण्डितानां मतम्, नैव स्वामिन इति वेद्यम् ।

[2] यह भी उन्हीं का मत है स्वामी जी का नहीं, क्योंकि ये गृह्यसूत्र के पत्रे थे ।

तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तम्—इतिहासस्यात्र पुराणशब्दो विशेषणं नास्ति तस्मादितिहासो नवीनो ग्राह्यः किमिति ?

तब विशुद्धानन्द स्वामी ने कहा कि यहां इतिहास का तो पुराण शब्द विशेषण नहीं है, इससे क्या इतिहास नवीन ग्रहण करना चाहिए।

तदा स्वामिनोक्तम्—अन्यत्रास्तीतिहासस्य पुराणशब्दो विशेषणं तद्यथा—'इतिहासः पुराणः पञ्चमो वेदानां वेदः' इत्युक्तम् ।

इस पर स्वामी जी ने कहा कि और जगह पर इतिहास का विशेषण पुराण शब्द है सुनिये "इतिहासपुराणः पञ्चमो वेदानां वेदः [1] इत्यादि में कहा है ।

तदा वामनाचार्यादिभिरयं पाठ एव वेदे नास्तीत्युक्तम् ।

तब वामनाचार्य आदिकों ने कहा कि वेदों में यह पाठ ही कहीं भी नहीं है ।

तदा दयानन्दस्वामिनोक्तम्—यदि वेदेऽव्ययम्पाठो [2] न भवेच्चेन्मम पराजयो यद्ययम्पाठो वेदे यथावद्भवेत्तदा भवताम्पराजयश्चेयम्प्रतिज्ञा लेख्येत्युक्तन्तदा सर्वैर्मौनं कृतमिति ।

इस पर स्वामी जी ने कहा कि यदि वेद [3] में यह पाठ न होवे तो हमारा पराजय हो और जो हो तो तुम्हारा पराजय हो यह प्रतिज्ञा लिखो, तब सब चुप हो रहे।

तदा स्वामिनोक्तम्—इदानीं व्याकरणे कल्मसंज्ञा क्वापि लिखिता न वेति ?

इस पर स्वामी जी ने कहा कि व्याकरण जानने वाले इस पर कहें कि व्याकरण कहीं कल्मसंज्ञा करी है वा नहीं ?

तदा बालशास्त्रिणोक्तम्—एकस्मिन् सूत्रे संज्ञा तु न कृता परन्तु महाभाष्यकारेणोपहासः कृत इति

तब बालशास्त्री जी ने कहा कि संज्ञा तो नहीं की है परन्तु एक सूत्र में भाष्यकार ने उपहास किया है ।

तदा स्वामिनोक्तम्—कस्य सूत्रस्य महाभाष्ये संज्ञा तु न कृतोपहासश्चेत्युदाहरणप्रत्युदाहरणपूर्वकं समाधानं वदेति ।

इस पर स्वामी जी ने कहा कि किस सूत्र के महाभाष्य में संज्ञा तो नहीं की और उपहास किया है, यदि जानते हो तो इसके उदाहरण [प्रत्युदाहरण] पूर्वक समाधान कहो ?

बालशास्त्रिणा किमपि नोक्तमन्येनापि चेति ।

तब बालशास्त्री और औरों ने कुछ भी न कहा।

---

[1] [छा० उ० प्रपा० ७ ख० १ प्रवाक् ४ में ऐसा पाठ है ।। पृष्ठ १५ पं० ७ में भी इसी प्रकार पढ़िये । सं० ।]

[2] इदमपि तन्मतमनुसृत्योक्तं नेदं स्वामिनो मतमिति वेदितव्यम् ।

[3] यह उन्हीं पण्डितों के मतानुसार कहा है किन्तु स्वामी जी तो छान्दोग्य उपनिषद् को वेद नहीं मानते ।

तदा माधवाचार्येण द्वे पत्रे वेदस्य[1] निस्सार्य्य सर्वेषां पण्डितानाम्मध्ये प्रक्षिप्ते, अत्र यज्ञसमाप्तौ सत्यां दशमे दिवसे पुराणानां पाठं शृणुयादिति लिखितमंत्र पुराणशब्दः कस्य विशेषणमित्युक्तम् ।

तदा विशुद्धानन्दस्वामिना दयानन्दस्वामिनो हस्ते पत्रे दत्ते ।

मधवाचार्य ने दो पत्रे वेदों[2] के निकाल कर सब पण्डितों के बीच में रख दिये और कहा कि यहां 'यज्ञ के समाप्त होने पर यजमान दशवें दिन पुराणों का पाठ सुने' ऐसा लिखा है । यहां पुराण शब्द किसका विशेषण है ?

स्वामी जी ने कहा कि पढ़ो इसमें किस प्रकार का पाठ है ? जब किसी ने पाठ न किया तब विशुद्धानन्दजी ने पत्रे उठा के स्वामी जी की ओर करके कहा कि तुम ही पढ़ो ।

स्वामी जी ने कहा कि आप ही इसका पाठ कीजिये ।

तब विशुद्धानन्द स्वामी जी ने कहा कि मैं ऐनक के बिना पाठ नहीं कर सकता, ऐसा कहके वे पत्रे उठाकर विशुद्धानन्द स्वामी जी ने दयानन्द स्वामी जी के हाथ में दिए ।

तदा स्वामी पत्रे द्वे गृहीत्वा पञ्चक्षणमात्रं विचारं कृतवान् । तत्रेदं वचनं वर्तते—"दशमे दिवसे यज्ञान्ते पुराणविद्यावेदः, इत्यस्य श्रवणं यजमानः कुर्य्यादिति" ।

इस पर स्वामी जी दोनों पत्रे लेकर विचार करने लगे । [वहां इस प्रकार पाठ था 'यज्ञ समाप्ति पर दसवें दिन यजमान पुराणविद्यावेद का श्रवण करे] इसमें अनुमान है कि ५ पल व्यतीत हुए होंगे कि—

अस्यायमर्थः—पुराणी चासौ विद्या च पुराणविद्या पुराणविद्येव वेदः पुराणविद्यावेद इति नाम ब्रह्मविद्यैव ग्राह्या, कुतः ? एतदन्यत्रर्ग्वेदादीनां श्रवणमुक्तं न चोपनिषदाम् । तस्मादुपनिषदामेव ग्रहणं नान्येषाम् । पुराणविद्यावेदोऽपि ब्रह्मविद्यैव भवितुमर्हति नान्ये नवीना ब्रह्मवैवर्त्तादयो ग्रन्थाश्चेति । यदि ह्येवं पाठो भवेद् ब्रह्मवैवर्त्तादयोऽष्टादशः ग्रन्थाः पुराणानि चेति क्वाप्येव वेदेषु[3] पाठो नास्त्येव तस्मात्कदाचित्तेषां ग्रहणं न भवेदेवेत्यर्थकथनस्येच्छा कृता ।

"पुरानी जो विद्या है उसे पुराणविद्या कहते हैं, और जो पुराणविद्या वेद है वही पुराणविद्या वेद कहाता है । इत्यादि से यहां ब्रह्मविद्या ही का ग्रहण है, क्योंकि पूर्व प्रकरण में ऋग्वेदादि चारों वेद आदि का तो श्रवण कहा है परन्तु उपनिषदों का नहीं कहा, इसलिए यहां उपनिषदों का ही ग्रहण है, औरों का नहीं । पुरानी विद्या वेदों ही की ब्रह्मविद्या है, इससे ब्रह्मवैवर्त्तादि नवीन ग्रन्थों का ग्रहण कभी नहीं कर सकते, क्योंकि जो यहां ऐसा पाठ होता कि ब्रह्मवैवर्त्तादि १८ (अठारह) ग्रन्थ पुराण हैं, सो तो वेद में[4] कहीं ऐसा पाठ नहीं है । इसलिए कदाचित् अठारहों का ग्रहण नहीं हो सकता" कि ज्यों यह उत्तर कहना चाहते थे कि—

---

[1] एते पत्रे तु गृह्यसूत्रस्य भवतामिति ।

[2] पत्रे गृह्यसूत्र के पाठ के थे वेदों के नहीं ।

[3] इदमपि तन्मतमेवास्ति न स्वामिन इति ।

[4] यह पण्डितों के मतानुसार कहा है यह स्वामीजी का मत नहीं है ।

तदा विशुद्धानन्दस्वामी मम विलम्बो भवतीदानीं गच्छामीत्युक्त्वा गमनायोत्थितोऽभूत् । ततः सर्वे पण्डिता उत्थाय कोलाहलं कृत्वा गताः । एवं च तेषां कोलाहलमात्रेण सर्वेषां निश्चयो भविष्यति दयानन्दस्वामिनः पराजयो जात इति ।

अथात्र बुद्धिमद्भिर्विचारः कर्त्तव्यः कस्य जयो जातः कस्य पराजयश्चेति ।

दयानन्दस्वामिनश्चत्वारः पूर्वोक्ताः पूर्वपक्षास्सन्ति । तेषां चतुर्णां प्रामाण्यं नैव वेदेषु निःसृतं पुनस्तस्य पराजयः कथं भवेत् ? पाषाणादिमूर्तिपूजनरचनादिविधायकं वेदवाक्यं सभायामेतैः सर्वैर्नोक्तम् ।

येषां वेदविरुद्धेषु वेदाप्रसिद्धेषु च पाषाणादिमूर्त्तिपूजनादिषु शैवशाक्तवैष्णवादिसंप्रदायादिषु रुद्राक्षतुलसी-काष्ठमालाधारणादिषु त्रिपुण्ड्रोर्ध्वपुण्ड्रादिरचनादिषु नवीनेषु ब्रह्मवैवर्त्तादिग्रन्थेषु च महानाग्रहोऽस्ति तेषामेव पराजयो जात इति तत्थ्यमेवेति ॥

विशुद्धानन्द स्वामी उठ खड़े हुए और कहा कि हमको विलम्ब होता है हम जाते हैं।

तब सब के सब उठ खड़े हुए और कोलाहल करते हुए चले गये, इस अभिप्राय से कि लोगों पर विदित हो कि दयानन्द स्वामी का पराजय [1] हुआ। परन्तु जो दयानन्द स्वामी जी के ४ पूर्वोक्त प्रश्न हैं उनका वेद में तो प्रमाण ही न निकला फिर क्योंकर उनका पराजय हुआ !!

॥ इति ॥

[1] क्या किसी का भी इस शास्त्रार्थ से ऐसा निश्चय हो सकता है कि स्वामी जी का पराजय और काशीस्थ पण्डितों का विजय हुआ ? किन्तु इस शास्त्रार्थ से यह तो ठीक निश्चय होता है कि स्वामीदयान्द सरस्वती जी का विजय हुआ और काशीस्थों का नहीं क्योंकि स्वामी जी का तो वेदोक्त सत्यमत है उसका विजय क्योंकर न होवे ? काशीस्थ पण्डितों का पुराण और तन्त्रोक्तमत जो पाषाणादि मूर्तिपूजादि है उनका पराजय होना कौन रोक सकता है ? यह निश्चय है कि असत्य पक्ष वालों का पराजय और सत्य वालों का सर्वदा विजय होता है ॥

परिशिष्ट

समकालीन पत्र पत्रिकाओं में—

काशी शास्त्रार्थ विषयक उल्लेख

सामग्री संग्रहकर्ता एवं सम्पादक—

डा० भवानीलाल भारतीय, एम०, ए०, पी० एच० डी०
हिन्दी विभाग, गवर्नमेंट कालेज, अजमेर।

पौराणिक मत तथा मूर्तिपूजा के अप्रतिम दुर्ग काशी की पण्डित मण्डली को शास्त्रार्थ समर में पराजित कर निग्रहस्थान पर ले जाने वाले पुण्य श्लोक महर्षि दयानन्द सरस्वती कार्तिक कृष्ण २ वा ३ संवत् १९२६ वि० तदनुसार २२ वा २३ अक्टूबर १८६९ ई० को काशी पधारे थे। प्रथम उन्होंने गोसांईजी के बाग में निवास किया, पुनः अमेठी के राजा के आनन्द बाग में जो दुर्गाकुण्ड पर है, चले गये। काशी की विद्वन्मण्डली से उनका संसार प्रसिद्ध शास्त्रार्थ कार्तिक शुक्ला द्वादशी १९२६ वि० मंगलवार तदनुसार १६ नवम्बर १८६९ ई० को हुआ। उसी वर्ष (वि० सं० १९२६ वि० में) शास्त्रार्थ का विवरण काशी स्थित मुन्शी हरवंशलाल के लाइट प्रेस में छाप कर प्रकाशित हुआ। यह सम्भवतः केवल संस्कृत में ही था।

वैदिक यंत्रालय काशी की स्थापना माघ शुक्ला २ सं० १९३६ वि० को लक्ष्मीकुण्ड पर महाराज विजयनगराधिपति के स्थान पर हुई। मुन्शी बख्तावर सिंह इसके प्रथम प्रबन्धक थे। मुन्शी जी ने अपने मासिक पत्र आर्यदर्पण (जो आर्य समाज का प्रथम मासिक पत्र था) के जनवरी १८८० ई० अंक में काशी शास्त्रार्थ का वह विवरण हिन्दी और उर्दू दोनों भाषाओं में समानान्तर कालमों में प्रकाशित किया जो आज भी वैदिक यंत्रालय द्वारा प्रकाशित काशी शास्त्रार्थ के संस्कृत पाठ के हिन्दी अनुवाद के रूप में प्रकाशित होता है। इसके प्रारम्भ में मुन्शी बख्तावरसिंह ने भूमिका रूप में लिखा—

"हम उस शास्त्रार्थ को जो कि संवत् १९२६ में स्वामी जी और काशी के पण्डितों में महाराजे काशी नरेश के सामने आनन्द बाग में दुर्गाकुण्ड के समीप हुआ था यहाँ लिखते हैं क्योंकि उसके ठीक-ठीक वृत्तान्त को बहुत ही कम लोग जानते हैं। कुछ तो उसको और का और ही समझ गये हैं और कुछ कि जिन्होंने ठीक शास्त्रार्थ को कि जिसको काशी में मुन्शी हरवंशलाल ने लाइट प्रेस में मुद्रित करवा कर प्रकाशित किया था उसको देखा ही नहीं केवल उसी को कि जो 'दयानन्द पराभूति' के नाम से काशी नरेश के यंत्रालय में कुछ का कुछ छापा गया है और

जिसमें कि स्वामी जी की बातों को उनके अभिप्राय से बहुत उलटा प्रकाशित कर दिया है, उसी को ठीक शास्त्रार्थ समझ गये हैं। जब ये लोग स्वामी जी के व्याख्यान सुनते हैं और उनके रचित पुस्तकों को देखते हैं तो उसको इनसे उलटा ही पाकर भ्रम में पड़ जाते हैं और एक बड़ी भारी बात भ्रम में पड़ने की यह भी हुई है कि वह शास्त्रार्थ केवल संस्कृत में ही हुआ था कि जिसको बहुत ही कम लोग समझ सकते थे। तब तो इस समय के बड़े भाग्य से आया समझ कर पोपों ने कुछ का कुछ ही लोगों पर विदित करके अपनी जय प्रसिद्ध कर दी, अब हम इन सब भ्रम की बातों के नाश के लिए उस शास्त्रार्थ को कि जिसको मुन्शी हरिवंशलाल ने संवत् १९२६ में छपवाया था शुद्ध करके और उस पर कितने एक नोट लिखके यहाँ आर्य भाषा और उर्दू में ठीक ठीक प्रकाशित करते हैं। आशा है कि सब सज्जन मनुष्य पक्षपात रहित होकर उनको देखेंगे और स्वामी जी और काशी के पण्डितों की व्यवस्था को ठीक ठीक जान लेवेंगे।''

इस प्रारम्भिक टिप्पणी के पश्चात् उक्त अंक के पृ० १० से लेकर पृ० २० पर्यन्त काशी शास्त्रार्थ का भाषार्थ हिन्दी और उर्दू में छापा है। पृ० २१ से २४ पर्यन्त 'एडीटोरियल नोट्स' शीर्षक एक टिप्पणी और है, यह किञ्चित परिवर्तन के साथ वैदिक यंत्रालय से प्रकाशित काशी शास्त्रार्थ की 'भूमिका' के रूप में ही छपती आ रही है। मुन्शी बख्तावरसिंह ही इस टिप्पणी के लेखक थे और वैदिक यंत्रालय वाले संस्करणों में इस भूमिका के अन्त में जो 'प्रबन्धकर्ता वेदिक यंत्रालय' छापता है यह उक्त मुन्शी जी का ही सूचक है।

बंगाल के सुप्रसिद्ध वैदिकविद्वान् पं० सत्यव्रत सामश्रमी इस शास्त्रार्थ में उपस्थित ही नहीं थे, अपितु दोनों पक्षों की ओर से उन्हें लेखक चुना गया था, यह उनके द्वारा रचित ऐतरेयालोचन[1] ग्रन्थ से ज्ञात होता है। सामश्रमी जी ने इस शास्त्रार्थ का विवरण अपनी संस्कृत पत्रिका 'प्रत्नकम्रनन्दिनी' जिसका अंग्रेजी नाम The Hindu Commentator था, के संख्या २८, दिसम्बर १८६९ (वि० सं० १९२६) के अंक में प्रकाशित किया था। पं० भीमसेन शर्मा के जामाता पं० सत्यव्रत शर्मा, द्विवेदी ने श्री महाराज की एक जीवनी 'श्री १०८ महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी का जीवनचरितम्' शीर्षक १९०३ ई० में वेद प्रकाश यंत्रालय इटावा से प्रकाशित की। इसके पृ० १३७-१४० पर प्रत्नकम्रनन्दिनी में प्रकाशित काशी शास्त्रार्थ के विवरण को संक्षिप्त रूप से उद्धृत किया गया है। भाषानुवाद सहित उक्त विवरण इस प्रकार है—

दयानन्दो नाम साधुः सद्धर्माविर्भावितासद्धर्म परिलोपनेऽहंकृतसंकल्पः।

अनुवाद—दयानन्द सरस्वती स्वामी एक साधु हैं, जिन्होंने सत्यधर्म प्रचार द्वारा असत् निवारण का बीड़ा उठाया है।

स्वामी दयानन्द—**स्वर्गादौइन्द्रादयो देवाः सन्ति न वा ?**

अनुवाद—स्वर्ग में इन्द्रादि देव हैं या नहीं।

विशुद्धानन्द स्वामी—**मंत्रमयी देवताः। [महाराज भ्रूकुञ्चनम्[2]]**

---

[1] "परमहो काश्यामानन्दोद्यान विचारे यत्र वयमास्म मध्यस्थाः विशेषतो वादि प्रतिवादिवचसामनुलेखनेऽहमेक एवोभयपक्षतो नियुक्तः" ऐतरेयालोचनम् पृ० १२७॥

[2] "जब विशुद्धानन्द जी ने केवल मन्त्र मात्र ही को देवता बता दिया तो महाराजे काशी नरेश ने समझा होगा कि प्रतिमा पूजन का तो खण्डन अपनी ही ओर से हो गया। "आर्यदर्पण फरवरी १८८० पृ० ४५ की पाद टिप्पणी॥

अनुवाद—वेदोक्त मंत्र ही देवता है।

स्वा० द०—कथमुपासना ?

अनु०—फिर उपासना किस प्रकार होगी।

वि०—प्रतीकोपासना, शालिग्रामादौ।[1]

अनु०—शालिग्राम आदि मूर्तियों में प्रतीक रूप से।

द०—क्व वेदेलिखितमिदम्।

अनु०—ऐसा वेद में कहाँ लिखा है ?

वि०—एकस्य हि सामवेदस्यैव सहस्रशाखा:, भवता सर्वा एव दृष्टा: ?[2]

अनु०—एक सामवेद की सहस्र शाखायें हैं, क्या आपने सब देखी हैं ?

द०—शृणु शृणु सहस्रवर्त्मासामवेदः सहस्रमार्गकः—

इतितस्यार्थः संहिता तु सर्वत्र शाखासु एका एव।

अनु०—सुनो, सहस्र शाखाओं में सहस्र प्रकार के व्याख्यान किये हैं, परन्तु सब शाखाओं की संहिता तो एक ही है।

वि०—स एव ईश्वरः।[3]

अनु०—वही ईश्वर है।

द०—[उपहसन्] हेः ! स-ए-व-ई-श्वरः। अलमनर्थविचारणेन यत्प्रकरणं तद्वद।

अनु०—(हंस कर) हाँ, वही ईश्वर है, जिस बात का यहाँ सम्बन्ध नहीं, उसका वर्णन करना व्यर्थ है, जो प्रकरण है, वह बोलिये।

---

[1] पहले तो वेदों के मन्त्र मात्र ही को देवता बतलाया अब शालिग्राम आदि को देवता कहने लगे। अच्छा गड़बड़ है। किसको सत्य मानें ?

[2] जब प्रश्न का उत्तर न दे सके तो प्रकरणान्तर इस बात पर दौड़ गये। इससे इनका अभिप्राय यह जान पड़ता है कि मुख न बन्द हो, जो चाहो अन्ड बन्ड करते रहो।

[3] जहाँ कि वेदों के विषय में विशुद्धानन्दजी ने यह पूछा, था कि वेद ईश्वर का क्या सम्बन्ध है ? उस पर स्वामीजी ने कहा कि कार्य कारण सम्बन्ध है। फिर विशुद्धानन्दजी ने कहा कि कार्य कारण सम्बन्ध से वेद नहीं रह सकते। इस पर स्वामीजी ने कहा कि परमेश्वर में जो कुछ भी नहीं रह सकता तो आकाश से किसी वस्तु का सम्बन्ध कैसे हो सकेगा यह कहो ? तो देखिये विशुद्धानन्दजी आकाश ही को ईश्वर बताने लगे। धन्य है ऐसी विचित्र पण्डिताई को। जब पण्डित लोग आकाश को ईश्वर कहें तो फिर अपण्डित ईंट पत्थरों को क्यों न ईश्वर समझें ?

विशेष—अगले पृष्ठ एवं उपरोक्त पाठ में पाठकों से निवेदन है कि अनु० को "**अनुवाद**" तथा स्वा० द० को "**स्वामी दयानन्द सरस्वती**" वि० को "**विशुद्धानन्द सरस्वती**" समझ कर पढ़ें।

वि०—[पृष्ठे दत्त वामहस्तः][१] अरे बाबा, तू अभी कुछ पढ़ा नहीं कुछ दिन पढ़।

अनुवाद—विशुद्धानन्द ने श्रीमहाराज की पीठ पर हाथ कर यह हिन्दी वाक्य कहा।

द०—[हस्तं बलाद् दूरीकृत्य] भवतासर्वं पठितम्।

अनु०—(उनके हाथ को बलात् हटा कर) आपने सब कुछ पढ़ लिया है?

वि०—[प्रहस्य] सर्वम्।

अनु०—(हंस कर) हाँ, सब पढ़ लिया है।

द०—[पुनः प्रत्युपदिश्य] व्याकरणमपि।

अनु०—(उनकी ओर मुख करके) क्या व्याकरण भी?

वि०—तदपि।

अनु०—हाँ, वह भी।

द०—[रक्तेक्षणः] कल्मसंज्ञा कस्य? [गर्जयन्] वद वद!

अनु०—(आँखे लाल कर) कल्म संज्ञा किसकी है? (गरज कर) कहो कहो।

पं० बालशास्त्री[२]—एकस्मिन् सूत्रे संज्ञा तु न कृता किन्तु महाभाष्यकारेणोपहास्यं कृतमिति।[३]

अनु०—एक सूत्र में संज्ञा तो नहीं की है किन्तु महाभाष्यकार ने उपहास किया है।

द०—कस्य सूत्रस्य महाभाष्ये संज्ञा तु न कृता उपहासश्चेदुदाहरणपूर्वकं समाधानं वदेति।

अनु०—किस सूत्र की महाभाष्य में संज्ञा तो नहीं की, उपहास किया है, उदाहरण पूर्वक समाधान कीजिये।

तदा बालशास्त्रिणा किमपि नोक्तमन्येनापि चेति।

अनु०—तब बालशास्त्रीजी ने कुछ नहीं कहा और न किसी अन्य ने ही कुछ उत्तर दिया।

आर्यदर्पण के सम्पादक ने 'एडीटोरियल नोट्स' शीर्षक टिप्पणी दी है जिसका सार यह है कि विशुद्धानन्द, बालशास्त्री आदि काशी के पण्डित एकान्त में सब यही कहते हैं कि जो कुछ स्वामीजी कहते हैं, है सब सत्य, परन्तु

---

[१] यह लो, शास्त्रार्थ तो संस्कृत में हो रहा था, भाषा पर जा कूदे। सभा के बीच ऐसी अयोग्य बात कहना और ऐसा काम अविद्वानों के सदृश करना पण्डितों का कर्म नहीं होता। यहाँ स्पष्ट ज्ञात होता है कि स्वामी विशुद्धानन्दजी से जब उत्तर न बन पड़ा तो क्रोध में आकर ऐसा अनुचित काम किया।

[२] जब व्याकरण जानने की प्रतिज्ञा कर ली तो फिर क्यों आप ही उत्तर न दिया? उस समय स्वामी विशुद्धानन्दजी का चुप रह जाना और स्वामीजी के प्रश्न के उत्तर को पं० बालशास्त्रीजी का उद्यत होना पाठकगण ही विचारें कि क्या प्रसिद्ध करता है?

[३] ये वाक्य वै. यं. से प्रकाशित काशी शास्त्राथ के संस्कृत भाग में भी विद्यमान हैं।—टिप्पणीकर्ता।

क्या करेंजो हम भी ऐसा ही कहने लगें तो सब लोग हमको छोड़ दें, हम से वैर भाव रखने लगें, फिर हम लोगों की जीविका कैसे चले ? आदि।

ब्रह्मसमाज के द्वितीय नेता श्री देवेन्द्र नाथ ठाकुर द्वारा संस्थापित् तथा श्री अक्षय कुमार दत्त द्वारा सम्पादित तत्व बोधिनी पत्रिका (ज्येष्ठ संवत् १७९४ बंगाब्द) ने शास्त्रार्थ के बारे में लिखा वर्त्तमानी काशी नरेश के उद्योग से नाना देशों के पण्डितगणों ने उक्तमत खण्डन करने के अर्थ विचार किया जैसा कि धर्म विचार पुस्तक के पढ़ने से विदित होता है कि "वेद से प्रतिमा पूजन व्यवस्था देकर कोई पण्डित स्वामी दयानन्दजी को नहीं हरा सका, इसलिये स्वामीजी को बड़ा वेदवेत्ता समझना चाहिये।"

रुहेलखण्ड समाचार ने नवम्बर १८६९ के अंक में लिखा—"दयानन्द सरस्वती स्वामी······काशी के पण्डितों को उन्होंने जीत लिया और काशी के पण्डितों ने झूठ ही अपनी जय की धूम मचा दी।" ज्ञान प्रदायिनी पत्रिका लाहौर अप्रैल १८७० ई० ने लिखा—"शास्त्रार्थ में व्यर्थ वितण्डावाद बहुत हुआ और इसमें संदेह नहीं कि प्रतिमा पूजन वेदों से पण्डित सिद्ध न कर सके।"

काशी शास्त्रार्थ भारत के धर्म क्षेत्र में एक अद्भुत क्रान्ति उत्पन्न करने वाला महा समर था जिसमें अविचल ईश्वर-विश्वासी दयानन्द एकमेव परमात्मा के विश्वास पर ही विचार-संग्राम में कूदा था। "शास्त्रार्थ प्रारम्भ होने से पूर्व श्रीमहाराज ने क्षौर कराया, स्नान किया और अपने सुन्दर शरीर पर मृतिका लगाई पुनः पद्मासनस्थ होकर थोड़ी देर परमेश्वर का ध्यान किया और फिर भोजन किया था।" यह विवरण महाराज के जीवन चरित्र में उपलब्ध होता है। ईश्वर का ध्यान किये जाने की बात विशेष रूप से उल्लेखनीय है। पौराणिकों के आसन्न दुर्व्यवहार की आशंका से भयभीत अपने भक्त बलदेव को महाराज ने इन्हीं शब्दों में आश्वस्त किया था—ऐ बलदेव, क्या चिन्ता है, एक मैं हूं, एक ईश्वर है, एक धर्म है और कौन है ?

काशी शास्त्रार्थ की इस प्रथम शताब्दी के स्मरणीय पर्व पर काशी के तत्कालीन कोतवाल रघुनाथ प्रसाद को आर्यसमाज अपनी अशेष श्रद्धाञ्जलि अर्पित करता है जिसने श्री महाराज के लोक कल्याण हेतु समर्पित मूल्यवान् शरीर की रक्षा नहीं की अपितु जो महाराज के गौरव वर्चस्व के प्रति अत्यन्त प्रणतभाव रखता था। साथ ही स्वामीजी के हितेच्छु पं० ज्योतिस्वरूप उदासी, साधु जवाहिरदास उदासी तथा उन अज्ञातनामा परमहंसों का भी आर्य जगत् कृतज्ञ है जो यद्यपि साक्षात् रूप से मूर्तिपूजा का खण्डन करने को उद्यत नहीं थे परन्तु जो श्रीमहाराज को अपने ही वर्ग का सन्यासी समझ कर उनके प्रति अपूर्व सहानुभूति रखते थे।

काशी में जहाँ यह शास्त्र विचार आज से १०० वर्ष पूर्व सम्पन्न हुआ वह स्थान अमेठी के राजा के अधिकार में था। स्व० प्रो० महेशप्रसादजी मौलवी, आलिम फाजिल की प्रेरणा से अमेठी के आर्य नरेश राजा रणञ्जय सिंहजी ने उस स्थान पर एक शिला लेख लगवा दिया है जिस पर निम्न श्लोक अंकित हैं।

शास्त्र-द्वन्द्वांक चन्द्रेऽब्दे वैक्रमे कार्तिके सिते। भौमे भास्वात्तिथौ दिव्ये मूर्तिपूजा विनिर्णये ॥
अमेठ्यानन्द बागेऽस्मिन् काशिराज समापतौ। जनौघे विपुले वादः प्रवृत्तः श्रुतितत्परः ॥
विशुद्धानन्द सुप्रज्ञबालशास्त्र्यादिभिर्बुधैः। शास्त्रार्थमकरोत्सऽकं दयानन्दो यतिर्महान् ॥
भगवान् बख्शभूपाल वचनात्तत्सुतः सुधीः। अलेखयच्छिलालेखं श्रीमान् राजा रणंजयः ॥

॥ इति ॥

एकसौ ग्यारहवां शास्त्रार्थ–

स्थान : गांधी मैदान (दिल्ली)

दिनांक : ३ मार्च सन् १९७४ ई० (सांयकाल)

विषय : क्या मृत्य का समय निश्चित है ?

"मृत्यु का समय निश्चित नहीं है" (वादी) शास्त्रार्थकर्त्ता : श्री ब्रह्मचारी वेदव्रत मीमांसक

मृत्यु का समय निश्चित है" (प्रतिवादी) शास्त्रार्थकर्त्ता : श्री पण्डित ओमप्रकाशजी शास्त्री विद्याभास्कर (खतौली)

संयोजक : श्री दीपचन्द जी आर्य

अध्यक्ष : श्री स्वामी ओमानन्द जी सरस्वती

निर्णायक : १. श्री आचार्य रामानन्दजी शास्त्री (पटना), २. श्री पं० बिहारीलाल जी शास्त्री (बरेली), ३. श्री पं० विद्याभास्कर रुद्रदत्त जी शास्त्री (देहरादून), ४. श्री पं० धर्मदेवजी विद्यामार्तण्ड (ज्वालापुर), ५. श्री अमर स्वामी जी परिव्राजक (गाजियाबाद), ६. श्री पं० शिवकुमार जी शास्त्री (संसद सदस्य), ७. श्री पं० राजेन्द्र जी जिज्ञासु (अबोहर), ८. श्री पं० उदयवीर जी शास्त्री (गाजियाबाद), ९. श्री स्वामी दिव्यानन्द जी सरस्वती (भिलाई), १०. श्री आचार्य वैद्यनाथ जी शास्त्री (बड़ौदा)।

नोट :—१. श्री प्रो० रामसिंह जी आदि अनेकों विद्वानों का समूह इस शास्त्रार्थ में एकत्रित था, श्रोताओं से सारा पण्डाल खचाखच भरा था, जिनके सामने यह अभूतपूर्व शास्त्रार्थ हुआ।

२. शास्त्रार्थ के अन्त में अन्य अनेकों विद्वानों के विचार भी इस विषय पर संग्रहीत किये गये हैं।

"लाजपतराय अग्रवाल"

(सम्पादक)

सम्पादकीय

मान्यवर,

पाठकगण ! इस प्रस्तुत विषय "कालाकाल मृत्यु" पर अनेकों शास्त्रार्थ, विचार-विमर्श, गोष्ठियां आदि हो चुके हैं। इस विषय पर अनेकों विद्वानों की अलग-अलग मान्यताएं हैं। मैंने अन्त में यही विचार किया कि इस विषय से सम्बन्धित प्रस्तुत शास्त्रार्थ के अन्त में सभी विद्वानों के विचारों को प्रमाण सहित प्रकाशित करा दूं। जिससे पाठकगण स्वयं ही निर्णय ले सकें।

मैंने स्वर्गीय पूज्यपाद अमर स्वामी जी महाराज द्वारा हस्तलिखित सामग्री जो प्रस्तुत विषय पर मौजूद थी, उसे भी इसी शास्त्रार्थ के अन्त में प्रकाशित करा दिया है। जिससे इस पर पूर्ण रूप से नीर क्षीर विवेक हो जाता है।

निवेदक :

लाजपतराय अग्रवाल

शास्त्रार्थ से पहले

आर्य समाज नया बांस की ओर से सन् १९७४ ई० में समस्त मतावलम्बियों को शास्त्रार्थ का चैलेन्ज दिया गया, जिस विज्ञापन में शास्त्रार्थ के उचित नियम और मतभेद के मुख्य १६ विषय भी दिए गये उसके पश्चात् भी अनेक बार यह विज्ञापन दिया। मतावलम्बियों की संस्थाओं एवं उनके मुख्य विद्वानों से भी मिला गया। किन्तु किसी ने भी चैलेन्ज को स्वीकार नहीं किया, अतः सन् १९७४ ई० के वार्षिकोत्सव पर आर्य समाज नया बांस द्वारा यह निश्चय किया गया कि आर्यों के मतभेद-विषयक मान्यताओं पर ही शास्त्रार्थ हो जावे। क्योंकि सत्यासत्य निर्णय से अन्यों के समान आर्यों की धारणा भी उदासीन होती जा रही है। तत्पश्चात् "कालाकाल मृत्यु" विषय चुना गया। यह शास्त्रार्थ अनेकों प्रमाणों से भरपूर तथा बड़ा ही रोचक हुआ, शास्त्रार्थ के अन्त में अनेकों विद्वानों द्वारा अपना-अपना निर्णय दिया गया जो शास्त्रार्थ के अन्त में प्रकाशित किया गया है।

"लाजपतराय अग्रवाल"

(सम्पादक)

सम्पादकीय

मान्यवर,

पाठकगण ! इस प्रस्तुत विषय "कालाकाल मृत्यु" पर अनेकों शास्त्रार्थ, विचार-विमर्श, गोष्ठियां आदि हो चुके हैं। इस विषय पर अनेकों विद्वानों की अलग-अलग मान्यताएं हैं। मैंने अन्त में यही विचार किया कि इस विषय से सम्बन्धित प्रस्तुत शास्त्रार्थ के अन्त में सभी विद्वानों के विचारों को प्रमाण सहित प्रकाशित करा दूं। जिससे पाठकगण स्वयं ही निर्णय ले सकें।

मैंने स्वर्गीय पूज्यपाद अमर स्वामी जी महाराज द्वारा हस्तलिखित सामग्री जो प्रस्तुत विषय पर मौजूद थी, उसे भी इसी शास्त्रार्थ के अन्त में प्रकाशित करा दिया है। जिससे इस पर पूर्ण रूप से नीर क्षीर विवेक हो जाता है।

निवेदक :

लाजपतराय अग्रवाल

शास्त्रार्थ से पहले

आर्य समाज नया बांस की ओर से सन् १९७४ ई० में समस्त मतावलम्बियों को शास्त्रार्थ का चैलेञ्ज दिया गया, जिस विज्ञापन में शास्त्रार्थ के उचित नियम और मतभेद के मुख्य १९ विषय भी दिए गये उसके पश्चात् भी अनेक बार यह विज्ञापन दिया। मतावलम्बियों की संस्थाओं एवं उनके मुख्य विद्वानों से भी मिला गया। किन्तु किसी ने भी चैलेञ्ज को स्वीकार नहीं किया, अतः सन् १९७४ ई० के वार्षिकोत्सव पर आर्य समाज नया बांस द्वारा यह निश्चय किया गया कि आर्यों के मतभेद-विषयक मान्यताओं पर ही शास्त्रार्थ हो जाये। क्योंकि सत्यासत्य निर्णय में अन्यों के समान आर्यों की धारणा भी उदासीन होती जा रही है। तत्पश्चात् "कालाकाल मृत्यु" विषय चुना गया। यह शास्त्रार्थ अनेकों प्रमाणों से भरपूर तथा बड़ा ही रोचक हुआ, शास्त्रार्थ के अन्त में अनेकों विद्वानों द्वारा अपना-अपना निर्णय दिया गया जो शास्त्रार्थ के अन्त में प्रकाशित किया गया है।

"लाजपतराय अग्रवाल"

(सम्पादक)

शास्त्रार्थ आरम्भ

शास्त्रार्थ के संयोजक श्री दीपचन्द जी आर्य—

उपस्थित सज्जनों ! यह शास्त्रार्थ निश्चित समयानुसार दिनांक ३ मार्च सन् १९७४ ई० सायंकाल दो घण्टे तक इस निश्चित स्थान गांधी ग्राउन्ड में होना है, वक्ताओं के अपने पक्ष इस प्रकार होंगे। "**मृत्यु का समय निश्चित है**"—**इस पक्ष को लेकर "श्री पं० ओमप्रकाश जी** शास्त्री विद्याभास्कर" **अपना वक्तव्य कहेंगे।**" तथा "**मृत्यु का समय निश्चित नहीं है" इस पक्ष को लेकर "श्री ब्रह्मचारी वेदव्रत जी** मिमांसक अपना **वक्तव्य कहेंगे।**" यह शास्त्रार्थ टेपरिकार्ड होकर **प्रकाशित** किया जायेगा। श्री स्वामी ओमानन्द जी इस शास्त्रार्थ में अध्यक्ष होने थे, वह अभी तक नहीं आ सके हैं, अतः उनके आने तक श्री प्रोफेसर रामसिंह जी "अध्यक्ष" का आसन ग्रहण करेंगे। वक्ताओं से प्रार्थना है कि वे शास्त्रार्थ बड़े ही प्रेमपूर्वक करने की कृपा करें।

शास्त्रार्थ के अध्यक्ष श्री प्रोफेसर रामसिंह जी—

आर्य बन्धुओ ! आज का विषय बड़ा ही मनोरंजक भी है और उपादेय भी है। बहुत अच्छा विषय है। हमें पहले यह जानना चाहिए कि आयु क्या है ? "**जानुषातः मृत्युपर्य्यन्तमायुष्यम्**" जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त जितना समय है, उसको आयु कहते हैं। आजकल लोग कहते हैं कि—"**आपकी आयु क्या है ?**" यह गलत वाक्य है, बल्कि इसकी जगह पूछना चाहिए कि—"**आपकी अवस्था क्या है ?**" जब मनुष्य जीता है तो अवस्था पूछनी चाहिए, देखिये जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त जो (काल) है उसका नाम आयु है। तो कुछ विद्वानों का ऐसा मत है कि आयु निश्चित है, काल निश्चित है, समय पर आयेगा, मृत्यु समय पर होगी, और चली जायेगी, कुछ विद्वान लोग यह कहते हैं कि—"**नही, मनुष्य के अधिकार में है कि वह अपनी आयु को घटा-बढ़ा सकता है**" विद्वानों के ये दो पक्ष हैं। इन दोनों पक्षों के विद्वान् यहां उपस्थित हैं, पहले पक्ष के जो विद्वान हैं श्री ब्र० वेदव्रत जी मीमांसक वे अपना पक्ष "**कि आयु अनिश्चित है**" पन्द्रह मिनट में प्रस्तुत करेंगे ठीक इसी प्रकार दूसरे विद्वान भी पन्द्रह मिनट में उसका उत्तर देकर अपना पक्ष स्थापित् करेंगे—"**कि आयु निश्चित है**" उसके पीछे पांच-पांच मिनट। पहले दस-दस मिनट फिर पांच-पांच मिनट...... .. (बीच में)

शास्त्रार्थ के संयोजक श्री दीपचन्द आर्य—

सज्जनों स्वामी ओमानन्द जी पधार गये हैं और अब वे सभा के "अध्यक्ष" होंगे, मैं उनसे प्रार्थना करता हूं कि वे अपना आसन ग्रहण करें।

नोट—

श्री स्वामी ओमानन्द जी अपना आसन ग्रहण करते हैं, एवं शास्त्रार्थ आरम्भ करने के लिए प्रथम श्री ब्र० वेदव्रत जी मीमांसक को आदेश देते हैं।

श्री ब्रह्मचारी वेदव्रत जी मीमांसक—

ओ३म् विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव यद्भद्रं तन्न आसुव ।। ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः ।। माननीय अध्यक्ष महोदय ! धर्म प्रेमी आर्य बन्धुओं आज के शास्त्रार्थ का विषय है—"**कि आयु निश्चित है अथवा अनिश्चित**" ? मेरा सिद्धान्त है और मेरी प्रतिज्ञा है कि—"**आयु अनिश्चित है**" और इसमें वेदादि शास्त्रों के प्रमाण हैं, वेद में प्रमाण आते हैं—(१) **त्र्यायुषं जमदग्नेः कश्यपस्य त्र्यायुषम् । यद्देवेषु त्र्यायुषं तन्नो अस्तु त्र्यायुषम् ।।** (यजुर्वेद ३-६२) (२) **ब्रह्मचर्यादि-नियमेन मनुष्यैरेतत् त्रिगुणमायुकर्त्तुं शक्यमस्तीति गम्यते ।** अर्थात् ४०० वर्ष तक भी आयु सुखपूर्वक जी सकता है । आगे देखिये—(३) **तत्वायामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदाशास्ते यजमानो हविर्भिरहेड़-मानो वरुणेह बोध्युरुशंस मा न आयुः प्रमोषीः स्वाहा ।** (ऋग्वेद १-२४-११) (४) **व्यभिचारादि-विषयासक्ति-आदिभिरायुर्कदापि न ह्रसनीयम् ।** यह स्वामी दयानन्द का भाष्य है, आयु नाश कदापि न करना चाहिये, और देखिये—(५) **कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः । एवं त्वयि नान्यथेतो अस्ति न कर्म लिप्यते नरे ।।** (यजुर्वेद ४०-२) स्वामी दयानन्द जी महाराज इसका भाष्य करते हैं कि—"**ब्रह्मचर्य्येण विद्यासुशिक्षाप्राप्त्यो-पस्थेन्द्रियादि निग्रहेण वीर्यमुन्नीय अल्पमृत्युध्नन्तु**" फिर आगे कहते हैं कि—"**उपस्थेन्द्रिय के रोकने से पराक्रम को बढ़ाकर अल्प मृत्यु को हटावें**" आगे यजुर्वेद में कहा है—

(६) **इमं जीवेभ्यः परिधिं दधामि** ………… । **शतं जीवन्तु शरदः पुरुचीरन्तर्मृत्युं दधतां पर्वतेन ।।** (यजुर्वेद ३५-१५) (७) **ये पूर्णेन ब्रह्मचर्येण विद्यामधीत्य धर्ममाचरन्ति । तान् मृत्युर्मध्ये नाऽऽप्नोतीति ।** सौ वर्ष तक जी सकते हैं, जो पूर्ण ब्रह्मचर्य से विद्या पढ़कर धर्म का आचरण करते हैं, उनको मृत्यु मध्य में नहीं दबाता। अथर्ववेद में कहा है कि—(८) **आयुश्च रूपं च नाम च कीर्तिश्च प्राणश्चापानश्च चक्षुश्च श्रोत्रञ्च ।** (अथर्ववेद १४-१-२२) यह अथर्ववेद का मन्त्र है स्वामी दयानन्द जी महाराज इसका अर्थ करते हैं कि—"**वीर्यादिरक्षणेन भोजनाच्छादनादिसुनियमेन ब्रह्मचर्य—सुसेवनेन आयुर्बलं कार्यम्**" । इन अच्छे नियमों से उम्र को सदा बढ़ाओ । हे स्त्री पुरुषों ! तुम अपना जीवन बढ़ाओ । आगे मनुस्मृति भी देखिये क्या कहती है—(९) **इहैव स्तं मा वियौष्टम् विश्वमायुर्व्यश्नुतम् । क्रीडन्तौ पुत्रैर्नप्तृभिर्मोदमानोस्वस्तकौ ।।** (मनुस्मृति २-१२१) अर्थात् ! हे स्त्री और पुरुष ! ! ऋतुगामी हो के वीर्य का अधिक नाश न करके सम्पूर्ण आयु जो १०० वर्षों से कम नहीं है, उसको प्राप्त होवो । अब ऋषि दयानन्द जी ने जो प्रमाण लिखे हैं वे प्रस्तुत करता हूं—

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः । चत्वारितस्य बर्द्धन्ते आयुर्विद्यायशोबलम् ।। (मनुस्मृति २-१२१) यह मनुस्मृति का दूसरे अध्याय का १२१वां श्लोक है, इसका अर्थ करते हुये महर्षि दयानन्द जी कहते हैं कि—"जो नम्र सुशील है जो ऐसा नित्य करते हैं उनके बल, आयु, विद्या आदि सदा बढ़ते हैं, जो ऐसा नहीं करते उनके आयु आदि नहीं बढ़ते" और फिर आगे आयु के ह्रास के विषय में लिखते हैं कि—"**अन्यथा वीर्य व्यर्थ जाता दोनों की आयु घट जाती**" (सत्यार्थ प्रकाश चतुर्थ समुल्लास) फिर लिखते हैं—"**जिन पदार्थों से स्वास्थ्य, रोगनाश, बुद्धि, बल, पराक्रम वृद्धि, और आयुर्वृद्धि, होवे उन तण्डुलादि गोधूम फल मूल का भोजन भक्ष्य कहलाता है ।**" (सत्यार्थ प्रकाश दशम समुल्लास) आगे लिखते हैं—"**क्या अत्यन्त भूखे मरने आदि कष्ट सहने को चरित्र कहते हैं ? जो भूखा प्यासा मरना आदि करना ही चरित्र्य है तो बहुत से मनुष्य अकाल या जिनको अन्नादि नहीं मिलते, भूखे मरते हैं**" (सत्यार्थ प्रकाश द्वादश समुल्लास) इस प्रकार जो स्त्री व पुरुष करेंगे उनके उत्तम सन्तान, दीर्घायु, बल, पराक्रम की वृद्धि होती ही रहेगी, इसी से सब सन्तान उत्तम बल, पराक्रम युक्त दीर्घायु धार्मिक हो । आगे देखिए स्वामी दयानन्द जी क्या कहते हैं—

"आभूषणों के धारण कराने से केवल देहाभिमान विषयासक्ति और चोरी आदि का भय तथा मृत्यु का भी सम्भव है। आभूषणों के योग से बालकादिकों का मृत्यु दुष्टों के हाथ से होता है।" (सत्यार्थ प्रकाश तृतीय समुल्लास) महर्षि दयानन्द जी गोकरुणानिधि में लिखते हैं कि—"जिसमें उपकारी प्राणियों की हिंसा अर्थात्—जैसे एक गाय के दूध, घी, बैल, गाय आदि उत्पन्न होने से एक पीढ़ी में ४,७५,६०० मनुष्यों को सुख पहुंचता है, वैसे पशुओं को न तो मारे न मरने दें।" अब इसके बाद मनुस्मृति के प्रमाण भी देखिये—"आचाराल्लभते ह्यायुराचारादीप्सिता प्रजाः।" (मनुस्मृति अध्याय ४, श्लोक १५६) अर्थात्—धर्माचरण ही से दीर्घायु को प्राप्त होता है, और देखिए—

"दुराचारो ही पुरुषो लोके भवति निन्दितः दुखभागी च सततं व्याधितोल्पायुरेव च ॥" (मनुस्मृति अध्याय ४, श्लोक १५७) अर्थात् जो दुष्टाचारी पुरुष होता है वह सर्वत्र व्याधित अल्पायु होता है, आगे कहा है—अभिवादन शीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः। चत्वारी तस्य वृद्धन्ते आयुर्विद्या यशोबलम् ॥" (मनुस्मृति अध्याय २, श्लोक १२१,) यह श्लोक मैंने पहले भी बोला था, अब इसके बाद आयुर्वेद का प्रमाण कहता हूं, ध्यान से सुनिये और नोट करिये—"यदि अकाले मृत्युर्न स्यात् प्रत्याक्षानुमानोपदेशास्याद प्रमाणानि स्युःये प्रमाणभूताः सर्वतन्त्रेषु।" अर्थात्—यदि अकाल में मृत्यु न हो तो प्रत्यक्ष अनुमान आप्तोपदेशयुक्त सब तन्त्रों में प्रमाणभूत हैं, वे सब व्यर्थ हो जायेंगे। आगे देखिये—"वादवस्तुमात्रमेतत् वादं पूतयो मन्यन्ते यदुच्यते न अकालमृत्युरस्तीति।" अर्थात्—अकाल मृत्यु नहीं है, इस कथन को ऋषि लोग कथन मात्र मानते हैं, वास्तव में इसमें कुछ सार या सत्यता नहीं है। और देखिये—"हितोपचारमूलं जीवितमतो विपर्ययो हि मृत्युः।" (चरक-विमानस्थान ३-४१) इसलिए मनुष्य का जीवन हितकारी-चिकित्सा पर है, इसके विपरीत उचित चिकित्सा न होने से अवश्य मृत्यु होती है, और फिर आगे चरक में ही लिखते हैं—"द्विविद्या तु खलु भिषजो भवन्ति अग्निवेश! प्राणानां ह्येके अभिसराः हन्तारोरोगाणां, रोगाणां ह्येके अभिसरो हन्तारः प्राणानामिति।" अर्थात्—हे अग्निवेश! दो प्रकार के वैद्य होते हैं। एक तो प्राणों को प्राप्त कराने वाले और रोगों को मारने वाले और दूसरे वे जो रोगों को लाने वाले और प्राणों को नाश करने वाले होते हैं। ये मैंने आयुर्वेद के प्रमाण दिये हैं, इसके पश्चात आयुर्वेद में एक सुन्दर दृष्टान्त दिया है, जैसे कि एक गाड़ी का धुरा होता है, उसकी आयु निश्चित नहीं कही जा सकती। किन्तु उसके प्रयोक्ता के ऊपर वह आश्रित है, चाहे तो उसको दस वर्षों तक चला सकता है, सदुपयोग करके। यदि वह उसको अव्यवस्थित करता है······एक दिन में समाप्त कर सकता है। इसी प्रकार आयु निश्चित मानते हैं तो हमारे सामने अनेक प्रश्न उपस्थित होते हैं; जिनका समाधान करना बड़ा कठिन हो जाता है। सबसे पहले यह है—यदि हम आयु को निश्चित मानते हैं तो जीव परतन्त्र हो जाता है। और इसके साथ-साथ जीव किसी भी प्रकार का कर्म नहीं कर सकता और ये जो प्रमाण लिखे हुए हैं ये किसी काम के नहीं रहेंगे। और संसार में मनुष्य अनेक प्रकार के प्रयत्न करते हैं जिससे आयु घट जाती है। वो ये निश्चित मान लें कि ये तो समय आने पर मरेंगे ही, हम चाहे जो कुछ करें कुछ आपत्ति नहीं हानि नहीं। इस प्रकार के बहुत से दोष हो जाते हैं। स्वामी दयानन्द जी ने "गोकरुणानिधि" में यह बात लिखी है—"······कि इस प्रकार के पशुओं को न मारें और न मारने दें।"

यदि आयु निश्चित होती है तो लाखों गऊएँ मारी जाती हैं जिनके कारण से बहुत बड़ा अनर्थ होता जा रहा है, और हम यह निश्चित मान लें कि आयु निश्चित है तो उन पशुओं की रक्षा करने की कोई आवश्यकता नहीं। और बहुत सारे कहा करते हैं उनकी प्रवृत्ति को न बिगड़ने देने के लिए हम उससे उनको न मारने के लिए कहते हैं। किन्तु स्वामी जी ने इसको नहीं माना, वास्तव में वहाँ पर गऊ को मारने से ४,७५,६०० मनुष्यों की हानि होती है, और जबकि उस पशु को मार कर खाने से अनुमान है कि लगभग ८० मनुष्यों की एक बार तृप्ति हो

सकती है, इसलिए यह निश्चित सत्य सिद्धान्त है कि प्रत्यक्षादि प्रमाणों के आधार पर ही आयु निश्चित नहीं है इसलिए मेरा यह निश्चित पक्ष है कि—"आयु निश्चित नहीं है" और अगर "आयु निश्चित है" तो ऐसा मानने पर इस प्रकार के बहुत सारे अनर्थ हो जायेंगे।

श्री पण्डित ओम प्रकाश जी शास्त्री विद्याभास्कर—

ओ३म् विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव। यद्भद्रं तन्न आसुव॥ आदरणीय अध्यक्ष महोदय! उपस्थित बहनों और भाईयो!! पहली तो बात यह है कि, मुझे इस शास्त्रार्थ का कोई आभास नहीं था। अचानक दीपचन्द जी की चिट्ठी पहुंची और मैं दूसरे जलसे का प्रोग्राम छोड़कर सीधा चला आया हूं। अगर मुझे यह पहले से आभास होता तो मैं कुछ किताबें भी लाता, कुछ तैयारी करके आता, अब तो कुछ भी मेरे पास नहीं है। मैं सिर्फ आकर बैठ गया हूँ।

श्री दीपचन्द जी आर्य—

शास्त्री जी का यह कहना ठीक नहीं, क्योंकि जनवरी मास से ही शास्त्री जी से पत्रव्यवहार चल रहा था, और १३ दिन पूर्व १८-२-७४ ई० के अपने पत्र में शास्त्री जी ने शास्त्रार्थ की लिखित स्वीकृति पत्र द्वारा दे दी थी।

श्री पण्डित ओम प्रकाश जी शास्त्री विद्याभास्कर—

सज्जनों! कुछ भी हो मैं अब वैदिक सिद्धान्तों के प्रति जितना मेरा अध्ययन है, उसके बूते पर और ब्रह्मचारी जी ने जो प्रमाण संग्रह अभी सुनाया अपने समय में उसको मैंने बड़ी गम्भीरता से पढ़ा हुआ है। और अब भी मैंने बड़े चाव से उसको सुना है। प्रश्न यह है कि—आपने एक बात कही जो मुझे अच्छी सी लगी कि—"अगर मनुष्य को अपनी आयु के घटाने-बढ़ाने का अधिकार न हो तो ये सब प्रमाण जो मैंने अभी आपको सुनाये ये किसी काम के नहीं रहेंगे।" निश्चित रूप से किसी काम के नहीं रहेंगे, जिस दृष्टिकोण से आपने इनको प्रस्तुत किया है, प्रश्न महज ये है कि दर्शनकारों ने कहा कि—"**सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगाः॥**" (योगदर्शन २-१३) मनुष्य जो जन्म प्राप्त करता है, वह अपने पूर्व जन्म के अनुसार इन चीजों को परमेश्वर की व्यवस्था, न्याय की व्यवस्था के द्वारा प्राप्त करता है, योगदर्शनकार महर्षि पतञ्जली मुनि कहते हैं—वो तीन चीजें क्या हैं? कहते हैं—"**सति मूले**" अगर उनका कारण हो, जैसे कारण होते हैं अर्थात् जैसे कर्म होते हैं उसके बदले में परमेश्वर कर्म के फल के रूप में तीन चीजें देता है जाति, जाति का मतलब यह ब्राह्मण, क्षत्रिय नहीं। बल्कि जाति का मतलब योनि विशेष है। तीन प्रकार की योनियां हैं। एक कर्म योनि, एक उभय योनि और एक भोग योनि। इनमें से किसी भी योनि में परमेश्वर उसके कर्मानुसार भेजता है। तो पहली चीज तो पूर्वजन्म के कर्मानुसार परमेश्वर जो देता है वह है जाति! तत्तत् योनि उसको कर्म के अनुसार मिलती है।

दूसरी बात योगदर्शन कहता है कि—आयु "**जात्यायुर्भोगाः**" और तीसरे भोगा-सुखदुःखादि। महर्षि-दयानन्दसरस्वती जी महाराज ने अनेक स्थलों पर कहा है—कि जीवात्मा को जितने भी सुख-दुःख चाहे किसी भी योनि में वह जाता है वो उसके पूर्वकृत कर्मों के अनुसार उसको प्राप्त होते हैं। without any Reasion "विदाउट एनी रीजन" बिना किसी कारण के परमेश्वर उसको सुखी और किसी को दुःखी नहीं करता है। बल्कि उसको ये तीनों चीजें—जाति आयु और भोग ये पूर्वजन्म के कर्मानुसार उसको प्राप्त होते हैं। अब प्रश्न यह रह जाता है कि वह

जाति जिसको आप घटना-बढ़ना कहते हैं घटाई और बढ़ाई जाती है। स्वामी जी से प्रार्थना है मेरी ब्रह्मचारी जी से कि इस प्रश्न पर विचार करें कि घटने और बढ़ने के लिये कोई "स्टैण्डर्ड ऑफ एज ए कामन" और साधारण जो सर्वसाधारण के लिये आयु एक निश्चित आप मानते हैं ऐसी कोई कि जिसको आप घटा लेवें। मान लीजिये कि अगर आप यह निश्चित कर लें कि सब मनुष्यों की एक साधारण 'एज' जो है "कामन एज" वह है १०० साल। मैं मानता नहीं हूं इसको; लेकिन मैं आपसे प्रश्न के लिये कहता हूं सोचिये। अगर १०० साल की उमर को एक आदमी ने संयम और ब्रह्मचर्य और जितने गुण आपने बताये हैं उनके द्वारा अगर वह बढ़ा लेता है तो हम कहेंगे कि उसने १०० साल की जो निश्चित 'एज' को आपने निश्चित मान ली है, इसको बार-बार आप यह कहते हैं कि निश्चित कोई 'एज' नहीं, तो आपने मान ली। जब आप घटाने-बढ़ाने की बात करते हैं तो कहां से घटी और कहां से बढ़ी ? इसके लिये आपको एक स्तर आयु का सामान्य स्तर कायम करना पड़ेगा। मैं इस पर विश्वास नहीं करता हूं। क्योंकि प्रत्येक जीवात्मा के अपने विचित्र और विभिन्न कर्म हैं। जब कर्मों में विभिन्नता और विचित्रता है तो फल कभी एक नहीं हो सकता। इसलिये कोई आयु का स्टैण्डर्ड या पैमाना एक मापदण्ड आप निश्चित नहीं कर सकते। कल्पना कीजिये कि बाजार में एक चीज का कण्ट्रोल रेट १० रुपये है। एक दुकानदार ने ब्लैक किया, एक रुपया ज्यादा ले लिया। उसको पकड़ लिया पुलिस ने। कहा कि तुमने एक रुपये का ब्लैक किया है। यह एक रुपये का ब्लैक जो ज्यादा लिया है इसे नापने का पैमाना वह पुरानी कीमत है जो १० रुपये निश्चित थी और एक आदमी ने जरूरत के मुताबिक आठ आने कम में चीज बेच दी। वह कहता है कि भाई साहब ! मैं तो कण्ट्रोल से आपसे आठ आने कम ले रहा हूं। तो पैमाना हुआ नापने का कि इससे कम और इतनी कम रह गई और इतनी हमने बढ़ा ली। तो आपको पहले यह बताना पड़ेगा कि वह मनुष्य की 'कामन' साधारण आम मनुष्य मात्र की कौन सा 'स्टैण्डर्ड' है 'एज' का कौन सा मापदण्ड और पैमाना है। कौन सा स्तर है AGE 'एज' का ? जिससे कि उसको घटाना और बढ़ाना स्वीकार कर सकें। जब तक इसकी स्थापना नहीं करेंगे इन प्रमाणसंग्रहों से कोई लाभ नहीं होना है। इन प्रमाण-संग्रहों का जो हेतु है वह मैं बताऊँगा। पक्ष की स्थापना पहली यह चीज है कि हमारा दार्शनिक दृष्टिकोण से परमेश्वर की न्याय-व्यवस्था के मुताबिक मैं जहाँ तक समझता हूं अगर योग-दर्शनकार का यह कहना कि······सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगाः' अगर इस बुनियादी असूल पर आप चलें और परमेश्वर की इस न्याय-व्यवस्था को जो स्वामी जी ने हजार जगह स्वीकार किया है कि······कोई भी जीव बिना कर्म के फल प्राप्त नहीं करता है। चाहे वह सुख के रूप में हो और चाहे वह दुःख के रूप में हो'। तो वो ये जितने प्रमाण हैं, ये मनुष्य की स्वतन्त्रता क्योंकि मनुष्य की योनि में आया हुआ जीव अपने आगे के लिये कमाई करता है कर्म की, ये सब वो हैं जो आगे को तुमको अगर दीर्घायुष्य प्राप्त करना है तो इस जन्म में वो कर्म करो कि जिससे तुम्हारा जो विपाक है वह जाति भी उत्तम मिले और कर्म भी, विपाक भी अच्छा मिले, फल भी सुख के रूप में और आयु भी लम्बी मिल जाये। यह जो जन्म आपको मिला है इसमें तो पूर्वजन्म के अनुसार तीनों चीजें निश्चित हो चुकीं। जाति भी, आयु भी और भोग भी। ये तीनों निश्चित जब हो चुकी हैं तो इनको तो भोगना भी पड़ेगा। हम देखते हैं कि एक आदमी बड़ा संयमी है, बड़ा ईमानदार है। लेकिन वह कष्ट पा रहा है उसको भूखा मरना पड़ रहा है, पूछो कि ईमानदार वो था ही इस पर भूखा क्यों मर रहा है ? बेईमान जो है वह पनप रहा है। वह लम्बी उमर पा रहा है। दुःख भी ज्यादा नहीं पा रहा। तो हमारे पास सिवाय इसके क्या जवाब है कि—

"सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगाः" (योगदर्शन २-१३) इसके कर्म ही ऐसे थे पूर्वजन्म के; यह उनकी कमाई को भोग रहा है। काट रहा है। आगे को अगर अच्छे बोयेगा आगे भी अच्छी दशा मिल जायेगी। दुर्गति और सद्गति और दुरवस्था और सदवस्था हर आदमी सदवस्था में आया और हरेक आदमी दुरवस्था में पड़ा हुआ है। वह

अपने पूर्वजन्म के फल को काट रहा है; भोग रहा है। अब जैसे कर्म करेगा जिस ईमानदारी से अब कर्म कर रहा है तो आगे भी सद्गति प्राप्त करेगा और एक आदमी साधन प्राप्त करके बुरे कर्म करता है, अपने धातु को क्षीण करता है शरीर को बर्बाद करता है विषय-भोगों में, बुरी चीजें खाता है, वह अपने विचार-आचार तथा आहार-व्यवहार में अगर गिर गया है तो फल उसको अगले जन्म में परमात्मा जरूर देगा। तो पता यह चला कि इस जन्म में जो भोग हमको प्राप्त हो रहे हैं वो हमारे पूर्वजन्म के कर्म के फल में प्राप्त हो रहे हैं। परमेश्वर उसमें न्यूनाधिक करता नहीं अपनी तरफ से। वेद कहता है --

"याथातथ्यतोर्थान्व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः"। (यजुर्वेद ४०-८) वह परमात्मा तो अपनी शाश्वत प्रजाओं के लिये जो कुछ दे रहा है वह यथा तथा दे रहा है। जैसे हमारे कर्म थे वैसा उसने दे दिया। हमारे अगर बुरे कर्म थे तो बुरी सजा भुगत रहे हैं और अगर अच्छे कर्म थे तो अच्छी सजा भुगत रहे हैं। ये सब हमारे पूर्वजन्म के कर्म के अनुसार हो रहा है। तो पहली बात तो स्वामी जी आपको यह बतानी पड़ेगी कि वह आयु का 'स्टैण्डर्ड' कौन सा है जिससे कि आप घटना-बढ़ना स्वीकार करते हैं? बार-बार आप यह तो कह चुके, अगर आप कोई 'एज' का 'स्टैण्डर्ट' बतायेंगे तो आप वदतो व्याघात दोष में आ जायेंगे। क्योंकि आप खुद यह तफसील करते हैं कि कोई आयु स्थिर नहीं किसी की। जब आप निश्चित नहीं मानते तो आपको बड़ा सोचना पड़ेगा कि किस पैमाने से आप घटना-बढ़ना मानते हैं? वह जवाब मुझे दीजियेगा। दूसरी बात जो मैं आपसे कहने जा रहा हूं कि जितने प्रमाण आपने दिये हैं एकाध बहुत जैसे रथ के पहिये का उदाहरण है। अरे भई! ठीक है रथ का पहिया जो है वह तो जड़ वस्तु है। उसके इस्तेमाल करने में आप आजाद हैं। मेरी यह घड़ी है मैं उठाके इसे अब तोड़ दूं। लेकिन! मनुष्यों और पशुओं की जो योनि है वह खालिस जड़ नहीं है। उसमें एक चेतन जीवात्मा प्रत्येक शरीर के साथ संयुक्त हुआ है और यह संयोग अपने आप मैंने नहीं कर लिया है। मैं आजाद नहीं था। संयोग करने वाला परमात्मा है। और वह जिसको जिस शरीर के अन्दर भेज रहा है यह उसकी व्यवस्था के अधीन हो रहा है। तो आप रथ के पहिये का 'ऐग्जाम्पल' क्या देते हैं। अरे! जड़ वस्तु को तो इसे मैं भी अब तोड़ दूं तो टूट जायेगा। लेखिन मुझे तोड़ना आसान काम नहीं क्योंकि मेरे भोग मेरे साथ हैं। मेरा कहना यह है कि जब तलक मेरा भोग समाप्त नहीं है जो आयु परमेश्वर ने निश्चित की है वह सबकी एक नहीं है। हरेक के पास अपने-अपने कर्म का टिकट है। आप इसे अकाल मृत्यु कहते हैं ना, ये आयुर्वेद के बोल रहे हैं आप प्रमाण, वे मेरे पढ़े हुये हैं। सवाल यह है कि यह तो बिल्कुल ऐसी 'पोजीशन' है कि एक गाड़ी जा रही थी सीधी यहाँ से कलकत्ता को। इसमें हजार आदमी सफर कर रहे हैं। हजार आदमी बैठे हुए हैं। मेरे 'कम्पार्टमेंट' में भी ५० आदमी बैठे हैं। तो अब हरेक का टिकट अपना-अपना रक्खा हुआ है साथ में। यात्रा चल रही है, हमारा किसी का टिकट 'खुर्जे' का था वह खुर्जा उतर गया जिसका 'अलीगढ़' का था वह 'अलीगढ़' उतरेगा : मैं कलकत्ते जा रहा हूं कलकत्ते उतरूंगा। कोई कानपुर उतर रहा है। तो प्रत्येक की यात्रा एक किस्म की नहीं हो सकती क्योंकि प्रत्येक के कर्मों में वैचित्र्य है। तो उसके जीवन का काल भी अलग अलग होगा। फल भी अलग-अलग होंगे। तो जाति और आयु तथा भोग ये तीनों चीजें पूर्वजन्म के कर्म के टिकट के द्वारा यात्रा में हम इस्तेमाल कर रहे हैं। आगे को आप कर्म करेंगे, अच्छे कर्म करेंगे अगला जो जाति आयु भोग मिलेगा वह इससे बेहतर मिलेगा। और दीर्घायुष्य के लिये प्रयत्न करेंगे तो अगले जन्म में आपको दीर्घायुष्य वाला शरीर मिल जायेगा। अगर मान लीजिये कि कर्म आपके ऐसे हैं कि योनि तो खराब मिलनी चाहिये लेकिन आयु लम्बी मिलनी चाहिये।

आयु के लम्बे होने का मतलब कोई सुखी थोड़े ही है। कोढ़ी आदमी को लम्बी आयु दे दी जाय, वो क्यों जीना चाहेगा जी ज्यादा लम्बी उमर तलक? तो दुःख भोगना है तो ऐसे विभिन्न योनियाँ ऐसी हैं जो मनुष्य से

भी ज्यादा लम्बी उमर लेकरके आई हैं। लेकिन वे योनियाँ बेहतर नहीं हैं। कर्म के फल में यही एक गलतफहमी है दिमाग में कि लम्बी उमर होना कोई अच्छी चीज है। मैं कहता हूं लम्बी उमर का प्राप्त करना कोई अच्छी चीज नहीं है। यह अच्छा भी हो सकता है और बुरा भी हो सकता है। अगर लम्बी उमर में दुःख भोगना पड़ जाये कोढ़ी आदमी को, सड़े गले को, अन्धा बहरा होकरके रहना पड़ जाए तो वह लम्बी उमर क्यों चाहेगा ? तो लम्बी उमर होना कोई अच्छी चीज नहीं है। आप उसको अच्छापन समझ रहे हैं। मैं कहता हूं कि ऐसी योनि में भेजेगा—

"सति मूले तद्विपाको जातिः······" जाति का मतलब कौवे की योनि में भेज देगा। खाते रहो सिनक और थूक। लम्बी उमर ले लो। आदमी से ज्यादा लम्बी उमर मिल गई तो उमर लम्बी हो जाना कोई शुभ कर्म का फल थोड़े ही है। बल्कि वो पूर्वजन्म के किये कर्मों में ऐसे कर्म किए हुये हैं कि आयु तो लम्बी भोगे और खावे घृणित पदार्थ चूंकि खा चुका है। उसके संस्कार बन गये थे 'इम्प्रेशन्स'' थे। वो जो सूक्ष्म-शरीर लेकर मरा था उसके रिकार्ड के मुताबिक उसने खोल दे दिया। उसको उमर दे दी लम्बी कि भई ! भोग तू पड़ करके इसमें। तो लम्बी उमर कोई शुभ कर्मों का ही परिणाम थोड़े ही है। कि ब्रह्मचर्य रखे तो जरूर लम्बी उमर जी जायेगा। उमर तो वही जीयेगा, ब्रह्मचारी होने का इतना फल है कि अगर लम्बी उमर सुख के साथ भोगनी है तो ऐसी योनि में जायेगा अगले जन्म कि लम्बी उमर भी भोगे और सुख भी भोगे। और अगर कर्म खराब हैं तो लम्बी उमर में दुःख भी भोगे। (टन् टन्···टन्···)।

श्री ब्रह्मचारी वेदव्रत जी मिमांसक—

जैसा मैंने अपने पक्ष में वेद के प्रमाण दिये हैं वैसा शास्त्री जीं अपने पक्ष की पुष्टि में एक भी प्रमाण नहीं दे रहे। और दूसरी बात······**"सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगाः"** इसके अनुसार उन्होंने आयु को निश्चित मानने का एक कथन किया है। किन्तु "जात्यायुर्भोगाः" में सम्पूर्ण व्यासभाष्य में योगदर्शन में कहीं पर भी नहीं लिखा है कि आयु निश्चित होती है। आयु किस वर्ष, किस मास, किस घड़ी, किस पल, किस मिनट, किस सैकेण्ड में कब क्या होती है, इसका कोई भी प्रमाण नहीं। और फिर इसके पश्चात् 'कौन सी बढ़ती-घटती हैं' ? शास्त्री जी ने यह मेरे से प्रश्न किया। हमने तो यह प्रतिज्ञा नहीं की कि आयु निश्चित है। जो आयु निश्चित मानते हैं उनको यह उत्तर देना पड़ेगा कि वह आयु निश्चित कौन सी है ? वर्षों की संख्या में उनको देना पड़ेगा। हम तो कहते हैं कि आयु निश्चित नहीं है। इसको जितना चाहें आगे कर सकते हैं और समाप्त कर सकते हैं बढ़ा सकते हैं जैसा कि वेद के अनुसार मैंने बतलाया था। अच्छा फिर इसके पश्चात् शास्त्री जी ने जो यह बात बतलाई थी···ब्लैक में, **"एक मूल्य निश्चित हो तब घटना-बढ़ना सम्भव हो सकता है"**। किन्तु ब्लैक के बिना भी घटता-बढ़ता देखा जाता है। कहते हैं कि क्या यह बात है कि अकाल में तुम ऐसा कर रहे हो। यह तो अकाल हो गया है। और इस प्रकार यह अकाल में मर गया है। यह तो बहुत लम्बी उमर वाला है। यह तो अधपाई में मर गया है। यह व्यवहार भी देखा जाता है जहाँ पर कि आयु की कोई सीमा नहीं है। और फिर ईमानदार भी दुःखी होता है यह हेतु उन्होंने दिया है। अब वास्तव में यह ईमानदार दुःखी होने में भाग्य को 'उन्होंने हेतु बनाया है। सूक्ष्म बात कह रहा हूं मैं। तो वास्तव में यह भाग्य ही अभिसाध्य है। जो शास्त्री जी ने साध्य को हेतु बनाकर अपना [पक्ष] सिद्ध करने को चाहा। यह हेत्वाभास है, हेतु नहीं। और फिर—**"याथातथ्यतो अर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः।"** कर्म का फल परमात्मा देता है। इसमें हमारा विरोध नहीं। हमारा तो यह कथन है कि परमात्मा ने कहीं भी आयु की निश्चितता की सीमा नहीं बांधी है। यदि बांधी हो तो कोई प्रमाण देवें। और फिर इसी प्रकार यदि शास्त्री जी आयु निश्चित मानते हैं तो इस प्रश्न का उत्तर देवें—'कोई व्यक्ति किसी की हत्या कर देता है, कोई हत्यारा हत्या कर्म कर देता

है। तो हत्या करके चला जाता है। तो वो वास्तव में उसकी मृत्यु का वही समय था और यदि उसने हत्या की तो उस हत्यारे को दोषी नहीं मानना चाहिए था क्योंकि उसी समय मरने का था। और फिर इसके पश्चात् रथ के पहिये को शास्त्री जी ने कहा है कि रथ का पहिया जड़ है और यह जीवात्मा चेतन है। वास्तव में यह दोनों में समानता है। रथ का पहिया धुरा भी जड़ है। और शरीर भी जड़ है। शरीर को भी संभाल कर आगे ले चलें तो चल सकता है। विष खा लें तो अभी मर सकता है। आयुर्वेद वालों से आप पूछ लीजिये। इस प्रकार यह भी असमंजसता नहीं समानता है। और फिर यदि आयुवृद्धि कोई अच्छी बात न होती तो वेद में आयुवृद्धि के लिए क्यों कहा जाता ?—

"त्र्यायुषं जमदग्ने कश्यपस्य त्र्यायुषम्। यद्देवेषु त्र्यायुषं तन्नो अस्तु त्र्यायुषम्॥" (यजुर्वेद ३-६२) परमात्मा ने कहा है—"कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेत्" (यजुर्वेद ४०-२) अर्थात् जीने की इच्छा करें। और वेद में परमात्मा ने यह आदेश क्यों दिया ? और फिर इसके पश्चात् यदि वेद में कहीं निश्चित प्रमाण आयु का हो तो वो बतलावें। इसके विपरीत हमने प्रमाण दे दिये हैं कि आयु घट-बढ़ सकती है। और अगले जन्म में ही फल मिल सकता है। इसमें कोई प्रमाण नहीं है। अगले जन्म में भी मिल सकता है इस जन्म में भी मिल सकता है, इसलिए शास्त्रीं जी कोई वेद का प्रमाण हो कि मनुष्य की निश्चित आयु होती है। वह कोई प्रमाण हो तो हमारे सामने उपस्थित करें। हाँ ! यह लिखा है कि दाता को इसी जन्म में सुख देता है। और—"परत्रादातुरेव च" (मनुस्मृति ४-१९३) जो दान लेने वाला है दूसरे व्यक्तियों के माध्यम से उसको अगले जन्म में······स्वामी जी ने फिर पूछा है—दान के फल इस जन्म में मिलते हैं कि परजन्म में। स्वामी जी कहते हैं कि सर्वत्र, अर्थात् इस जन्म में भी मिल सकते हैं, और परजन्म में भी मिल सकते हैं।'············(टन् टन् टन्············)

श्री पण्डित ओमप्रकाश जी शास्त्री विद्याभास्कर—

माननीय अध्यक्ष महोदय ! बहनों और भाइयों ! मैंने अपने पूर्व प्रवचन में यह नहीं कहा था कि मैं कोई निश्चित आयु मानता हूं। मैं यह मानता हूं कि यदि सब मनुष्यों की 'कॉमन एज' सब मनुष्यों की सामान्य अवस्था जो है आयु मैं नहीं मानता। और मैंने इसमें हेतु दिया था कि चूंकि मनुष्य प्रत्येक अपने कर्म करने में स्वतन्त्र है और प्रत्येक मनुष्य के कर्म विचित्र और विभिन्न हैं। तो फल कभी एक नहीं हो सकता। आपने इसका कोई उत्तर नहीं दिया कि वो कौन सा आयु का 'स्टैण्डर्ड' है जिससे नाप करके आप कहेंगे कि इस आदमी ने इतनी आयु बढ़ा ली और इतनी घटा ली। आखिर कोई आयु आप निश्चित बताते हो सामान्य मनुष्यों की, वो मुझे आप बताइये और उसका कोई प्रमाण दे दीजिए। मैं खुद कहता हूं कि मनुष्य जो है वो अपनी निश्चित आयु मैं नहीं मानता हूं कोई। आपको निश्चित माननी पड़ेगी जब आप यह कहते हैं कि मनुष्य की कोई निश्चित आयु नहीं। मैंने खुद कहा था कि अगर आप कोई पैमाना बतायेंगे तो आपकी यह प्रतिज्ञा-हानि हो जावेगी और 'वदतो व्याघात' दोष होगा दर्शन की दृष्टि से। अब आप कहते हैं नहीं साहब अकाल-मृत्यु हो जाती है। अकाल मृत्यु ! अकाल मृत्यु क्या होती है ? काल तो सर्वदा रहता है, आप काल को निषेध कैसे कर देंगे ? तो दर्शनकार लिखते हैं··········· कि काल तो सर्वत्र व्यापक है—

"नित्येषु अभावात्" (वै० २-२-६) अनित्येषु भावात् करणे कालाख्येति।" कारण तो जो काल है वो तो हर वक्त रहता है। अरे भाई ! प्रलय हो जावेगी कोई भी नहीं रहेगा तो भी काल है। एक आदमी जिन्दा रहता है तो भी काल है। और जब मर जायेगा तो भी काल है। अ काल, अ के माने 'नेगेटिवली' जब काल न हो। तो

काल तो हर वक्त रहता है। और काल कभी मृत्यु का कारण नहीं होता है। दर्शनकारों ने बड़ा निषेध किया है वात्स्यायन भाष्य में (न्याय-दर्शन में) कि काल किसी के दु:ख का दोष का कारण नहीं होता है। आप इसको देखें न्यायदर्शन के सूत्रों को। और कहते हैं कि फल जो है एक जन्म का एक जन्म में नहीं मिलता है। दर्शनकार कहता है—

"**सद्य: कालान्तरे च फलनिष्पत्ते: संशय:।**" (न्यायदर्शन ४-१-४४) एकदम कर्म कर देने के बाद तुरन्त फल नहीं मिल सकता है तो बाद में उसको मिलेगा। दूसरे जन्म में उसका फल मिलता हे। स्वामी जी महाराज भी लिखते हैं सत्यार्थ-प्रकाश के दशम समुल्लास में·················"**जब शरीर से निकलता है उसी का नाम मृत्यु और शरीर के साथ संयोग होने का नाम जन्म है। जब शरीर छोड़ता तब आकाशवत् वायु में रहता है। क्योंकि "यमेन वायुना" वेद (ऋग्वेद १०-१४-८) में लिखा है कि यम नाम वायु का है; गरुड़ पुराण का कल्पित यम नहीं। इसका विशेष खण्डन-मण्डन ग्यारहवें समुल्लास में लिखेंगे**"। अगर इसके पश्चात् धर्मराज अर्थात् परमेश्वर उस जीवन के पाप-पुण्यानुसार जन्म देता है।—"**सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगा:** (योग दर्शन २-१३) जब मनुष्य के जैसे कर्म होंगे वैसी जाति, वैसी आयु और वैसा भोग उसको मिलेगा और वो कभी सबका समान नहीं हो सकता चूंकि कर्मों में असमानता है इसका जवाब आपको स्वामी जी देना चाहिए। इस पर विचार कीजिये। अकाल में मरने से; अकाल तो कोई मृत्यु होती नहीं हम अकाल मानते कैसे हैं। उसी यात्रा में जो मैंने 'एग्जाम्पल' (उदाहरण) दिया था—यात्रा में एक आदमी से हमारी दोस्ती हो गई बहुत ज्यादा और वो कानपुर में उतरने लगा। हमने कहा—यार! बेमौके उतर रहे हो। हमारी तुम्हारी तो दोस्ती थी कलकत्ते तक साथ चलते। वो कहता है जी मैं क्या करूँ। मेरी तो यात्रा यहीं समाप्त हो रही है। ऐसे ही एक बाप का लड़का मरता है। भाई का भाई मरता है। पति की पत्नी मरती है। पत्नी का पति मरता है। हम उसको पैमाने से समझ लेते हैं कि यह बेमौके की मौत है। अकाल मृत्यु नहीं है। उसको तो उतरना वहीं था उसके कर्म उसका तो टिकट वहीं समाप्त हो जाना था। उसकी यात्रा की मंजिल वहीं खत्म हो रही थी। ऐसी ही जो एक व्यक्ति जन्म के अन्दर २५ साल में मर रहा है एक आदमी ५० साल तक जी रहा है। वो जितनी आयु निश्चित थी उतनी आयु निश्चित भोगकर जा रहा है। यह मेरा ध्यान रखिये बार-बार मुझसे मत पूछियेगा कि मैं मनुष्यों की सामान्य आयु को निश्चित नहीं मानता हूं। हर चीज की अपनी-अपनी जाति, आयु और भोग है। वो उसके मुताबिक उसे भोगेगा। अब आप कहते हैं कि हत्यारे ने मार दिया। ठीक है मार दिया। उसने अपने स्वार्थ के वशीभूत होकर उसको मारा है। इसलिए उसका फल उसको मिलेगा। देखिये एक आदमी मारना भी चाहता है और नहीं मार सकता। वहाँ उसके भोग समाप्ति पर नहीं थे। जहाँ दोनों चीजें आकर मिल जायेंगी। एक जगह पर भोग समाप्ति भी है और एक हत्यारा उसको मारने जा रहा है। हत्यारा तो 'रिस्पांसिबिल' इसलिए होगा कि उसने अपने स्वार्थवश, लोभ के वश में, क्रोध के वश में हीन भावनाओं के वशीभूत हो करके मारा है। लेकिन मारने गया जिसको उसके भोग की समाप्ति भी थी; मर गया वो। और एक आदमी मारना चाहता है लेकिन नहीं मार सका उसको। मार नहीं सका उसके भोग समाप्त नहीं हुए थे। मरता वही है कि जहाँ जीवात्मा की स्वतन्त्रता हत्यारे का काम कर रही है उसकी नियत बिगड़ गई है और उसके भोग भी समाप्ति पर आ गये हैं। वर्ना नहीं मरता वो आदमी; बहुत सारे मारने जाते हैं नहीं मरते। चाकू मारकर चले आये, अधमरा छोड़कर चले आये लेकिन वो जिन्दा रह गया। वो समझते थे मरा छोड़कर आये हैं हम तो। उसके भोग-परिसमाप्ति नहीं हुई। जब तलक उसके भोगों की परिसमाप्ति नहीं है कोई किसी को नहीं मार सकता। अब चूंकि मृत्यु भी दुःख है। अगर वो नहीं आयेगा तो किस कर्म के परिणाम में आया? आप मुझे बताइये कल को कोई दूसरे को किसी को मार दे परमेश्वर की सारी व्यवस्था नष्ट हो जावेगी।

पहिये के तरीके से किसी का गला घोट दो। ठोकर को आप दे·········(टन् टन् टन्·········हो गया) आप तो कठोर हैं ·········।

श्री ब्रह्मचारी वेदव्रत जी मीमांसक—

जैसा कि शास्त्री जी ने कहा है मैं सामान्य रूप से मनुष्य की आयु निश्चित नहीं मानता। सबका समान नहीं मानता। किन्तु प्रश्न यह है कि शास्त्री जी कहते जाते हैं कि कर्मों के अनुसार आयु निश्चित है। और फिर कहते जाते हैं कि मैं सामान्य रूप से नहीं मानता। उन्होंने कर्म के अनुसार तो निश्चित आयु मान ली है और फिर कहते हैं कि नहीं मानता यहव्दतो व्याघात है। और फिर, अकाल मृत्यु का। मैंने अकाल मृत्यु के शब्द का स्वामी जी के सत्यार्थप्रकाश के आधार पर उसका उच्चारण किया है। और यहाँ पर मैंने अकाल मृत्यु का जैसा कि शास्त्री जी ने मेरे शब्द का अर्थ किया उस रूप में नहीं किया और मैं अकाल मृत्यु का अर्थ यह कर रहा हूं कि जो निश्चित काल मानते हैं मरने के सम्बन्ध में उनकी अपेक्षा मैं कह रहा हूं यह अकाल हैं। और शास्त्री जी यहाँ न्यायशास्त्र के अनुसार छल कर गये। काल तो अखण्डित है। काल नहीं होता, यह मैंने कभी नहीं कहा। इसलिए मेरा अर्थ ऐसा शास्त्री जी नहीं कर सकते। और फिर उसके पश्चात् शास्त्री जी ने एक यह युक्ति एक प्रमाण दिया है—

"**सद्यः कालान्तरे फलनिष्पत्तेः संशयः।**" (न्यायदर्शन ४-१-४४) यह न्यायशास्त्र का सूत्र है। और यहाँ पर सूत्र में कहा गया है · "**सद्यः कालान्तरे फलनिष्पत्तेः न संशयः।**" कहते हैं कि यहाँ पर सद्य भी फल मिलता है। कालान्तर में भी फल मिलता है। "**पचति, दोग्धि, वपति, वहति, कर्षति**" वे उदाहरण देते हैं वात्स्यायन, क्या ? ·······"**पचति दोग्धि**"। दूध दोहता है और पकाता है। उसका फल उसी समय होता है। फिर उसके पश्चात् '**वपति वहति**' और उसके पश्चात् जो बीज बोता है खेती आदि करता है उसका फल कालान्तर में चार-छः मास के पश्चात् होता है। इसलिए अग्निहोत्र करने से जो स्वर्ग मिलता है ऐसा प्रश्न आता है तो उसका अग्निहोत्र मिलना हमको फल मिलता दीखता नहीं, वहाँ पर हम क्या करें ? इसका फल तो तुरन्त नहीं मिल रहा है और फिर चार छः मास के पश्चात् एक दो वर्ष के पश्चात् भी नहीं दीखता। इसलिए वहाँ पर संशय है। इसका अभिप्राय है कि यहाँ पर भी कर्मों का फल मिलता है। स्वामी जी ने (पञ्चमहायज्ञ विधि) में लिखा है·········"हे **ईश्वर दयानिधे भवत्कृपया अनेन जपोपासनादिकर्मणा धर्मार्थकाममोक्षाणां सद्यः, सद्यः=समाने दिवि।**"

उसी दिन। जिस समय मैं ईश्वर की प्रार्थना उपासना कर रहा हूं उसी समय मुझे मुक्ति आदि फल मिले। अर्थात् कर्मों का फल यहाँ पर भी मिलता है और हम—**ओ३म् यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते। तया मामद्य मेधयाऽग्ने मेधाविनं कुरु**"॥ (यजुर्वेद ३२-१४) आज ही, अस्मिन्दिवि अद्य। कहने का अभिप्राय यह है कि यहाँ पर किए हुए कर्मों का फल भी मिलता है। और उसके आधार पर हम आयु को घटा-बढ़ा सकते हैं। और वेद में क्या लिखा है······वेद में कहीं आयु का कथन किया हो। सामान्य रूप से ऐसा कहा जाता है कि—"**जीवेम शरदः शतं······भूयश्च शरदः शतम्।**" (यजुर्वेद ३६-२४) उससे भी अधिक बढ़े। किन्तु वेद के ऊपर यह आक्षेप आता है······मेरे ऊपर यह आक्षेप नहीं है जो शास्त्री जी ने किया है······कि मैं बतलाऊँ कि आयु की निश्चित सीमा क्या है ? किसके आधार पर घटता-बढ़ता मानता हूं। यह वेद से पूछें। वेद में लिखा है उसके आधार पर हम कह रहे हैं कि सामान्य-रूप से मनुष्य सौ वर्ष की आयु वाला होता है, उसको बढ़ा सकता है, घटा सकता है, अपने उत्तम निकृष्ट कर्मों के आधार पर। और "**सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगाः**" यह मैंने पहले शास्त्री जी से

प्रश्न किया था कि इसमें आयु की निश्चितता, आयु की अवधि, आयु के परिमाण, आयु की सीमा का कहाँ पर उल्लेख है ? यह मुझे बतलाने का प्रयत्न करें। और हत्यारे को मारने के विषय में उन्होंने यह कहा है कि उसका काल नहीं आया और किसी का काल आया, किसी का काल नहीं आया। जिसका काल आया है और उसकी मृत्यु हो जाती है जिसका नहीं हुआ है उसकी मृत्यु नहीं होती। यह मैंने पहले कहा था कि यहाँ पर अभिसाध्य नहीं हुआ कि उसका काल आया है कि नहीं आया। किन्तु साध्य को ही मान करके उन्होंने उसको सिद्ध करने का प्रयत्न किया यह अनेकान्तिक हेत्वाभास है। मारने पर कभी मर भी जाते हैं नहीं भी मरते हैं। न मारने पर भी मर जाते हैं। इसलिए मारना न मारना यह कारण नहीं हो सकता। और उन्होंने अनेकान्तिक हेत्वाभास बोल गए। और फिर मारने वाला यदि मारता है तो प्रश्न यह होता है कि मारने वाले को यह कैसे पता चला कि उसी घण्टे में, उसी मिनट में, उसी सैकण्ड में मैं उसी मनुष्य को जाकर मारूँ; यह कैसे पता चला ? यदि उसको उसके काल की समाप्ति की अवधि पर ही वो मारता हो तो प्रश्न यह आता है कि मारा उसने परमात्मा की व्यवस्था के अनुसार, उसके कर्मफल के अनुसार इस अवस्था में उसको दोषी नहीं माना जाना चाहिए। क्योंकि उसने परमात्मा के कार्य में सहयोग दिया। इसलिए उसको दोषी माना जाता है दण्ड दिया जाता है, क्यों ? —कि उसको दोषी इसलिए माना जाता है कि उसने अनुचित कर्म किया। जो नहीं मारना चाहिए था उसको मारा। इस प्रकार········
(टन् टन् टन्·············)

श्री पण्डित ओम प्रकाश जी शास्त्री विद्याभास्कर—

अध्यक्ष महोदय ! बहनो और भाइयो ! बड़ी खुशी की बात है कि स्वामी जी ने 'डाइरेक्टली' तो नहीं सीधे लफ्जों में तो नहीं वो जो सामान्य आयु का मेरा प्रश्न था उसका उत्तर जरा दबते-दबते दे दिया। और वो यह दे दिया कि साहब सामान्य आयु जो है वो सौ वर्ष की है अगर यह सच है तो यह तो मिली मिलाई है; सौवर्ष की आयु अगर सामान्य आयु आप मानते हैं तो सौ साल से जो पहले, सौ साल की आयु गर जो निश्चित मानते हैं तो सवाल यह पेश है कि यह सौ साल की आयु जब मिली मिलाई थी तो इसकी प्रार्थना करने की क्या जरूरत थी? ······'**जीवेम शरदः शतम् पश्येम् शरदः शतम्**'। वो तो रहेगी ही। अप्राप्त वस्तु की प्रार्थना की जाती है और जो सामान्य आयु मिली मिलाई है उसके लिए प्रार्थना करने की क्या जरूरत है ? वहाँ तो भक्त प्रार्थना कर रहा है कि हे प्रभु ! मैं सौ साल तक जीना चाहता हूं मुझे सौ साल तक जीने का मेरी आँखों की दृष्टि भी "**पश्येमः शरदः शतम्**" तथा "**शृणुयाम शरदः शतम्**" एवं "**प्रब्रवाम शरदः शतम्**" मेरी इन्द्रियों की शक्ति सौ साल तक बरकरार बनी रहे। कम से कम मैं सौ साल तक जीऊँ और उससे भी ज्यादा लम्बा जी जाऊँ। यह मैं कामना करता हूं ताकि मेरी इस कामना का प्रार्थना का फल मुझे अगले जन्म में भगवान् दे दे। मैं शुभ कर्म करूंगा, एक से अशुभ कर्म करूँगा। और प्रार्थना प्रभु से करूंगा कि मुझे अगला जन्म लम्बी आयु का मिले। यह आयु जो है यह तो मुझे पूर्व जन्म के फल में भोगनी ही है। कम मिलेगी तो कम प्राप्त है। ज्यादा प्राप्त है तो ज्यादा भोगूंगा। उसमें कमोवेशी नहीं होगी। "**सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगाः**" आयु की प्राप्ति के जो कर्म थे वो तो पूर्व-जन्म में कर चुका और कारण जब तलक समाप्त नहीं होता है तब तलक फल भी समाप्त नहीं होता।

यह भी ध्यान रखियेगा। बीज पहले डल जाता है जमीन में तब उसमें से अंकुर उपजकर आता है। जब कारण नष्ट हो जाता है तब जा कर के फल प्राप्त होता है। ऐसे ही पूर्व-जन्म के किये हुए कर्म मृत्यु के बाद वो दब जाते हैं उनका फल परमात्मा अगले जन्म में देता है। और इसमें सूत्र के बारे में आपको जवाब देना चाहिए······"**सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगाः**" जो आधार है मेरे सिद्धान्त का उस पर आप नहीं बोले। तो

यह सौ साल की जो आयु है अगर यह प्राप्त है तो प्रार्थना निकम्मी है वेदों की सारी। आपको यह मानना पड़ेगा। जो जहाँ ऐसे स्थल हैं वो सब निकम्मी प्रार्थनायें हैं सारी। जो प्राप्त है ही उसके लिए······ मैं कहूं भगवान् जी ! दो आँख तो दे रखी हैं दो और दे दीजिये। यह तो वैसी ही प्रार्थना हुई कि दो तो दे रखी हैं दो और दे दीजिए ! नाक दे रखी है, एक और लगा दीजिए के पीछे। यह तो वैसी प्रार्थना है अप्राप्त की वृद्धि के लिए प्रार्थना कर रहे हैं जो मिल चुका वो कर्म के फल में मिला है। अब रह गई एक चीज आप बार-बार कह रहे हैं कि रथ के पहिये की बात बड़ी विचित्र आपने कह दी। रथ का पहिया मैंने आपको कहा वह जड़ वस्तु है चेतन को उसके कर्म के अनुसार यह शरीर भोगने को दिया है तो यह मिला तो तब तलक के लिए यह शरीर जो है वो भोग के लिए मिला है चेष्टा······"चेष्टेन्द्रियार्थाश्रयः शरीरम् ।।" (न्याय दर्शन १-१-११) 'ये सारा शरीर चेष्टा करने का आगे के लिए, कर्म करने को और पिछले फल को भोगने को "भोगापवर्गार्थाश्रयं दृश्यम् शरीरं वा"। (योगदर्शन २-१८) ये सब जो कुछ मिला है यह पिछला भोगने को और आगे कम करने को मिला है। इस जन्म में जो शुभ कर्म करते है उसका फल अगले जन्म में मिलेगा। अशुभ करेंगे तो मिलेगा अब जो भोगना है वो पिछले शुभाशुभ कर्म का भोगना है। उसमें वृद्धि और अविवृद्धि होने का प्रश्न नहीं है। जो निश्चित हो गया वो निश्चित हो गया। आगे के लिए जो आप करना चाहें सो करें। अब आप कहते हैं कि मैंने छल किया है। छल क्या किया है ? मैंने 'इग्जाम्पल' दिये हैं दोनों। एक तो मेरा आप अकाल मृत्यु का अर्थ यह देते हैं कि यह बे-काल मर गया तो काल तो वस्तु है हमेशा साथ रहेगा। एक चाहे साठ साल में मरे ···तो साठ साल की उमर काल आके चिपक गया। एक कहता है पच्चीस साल की उमर में मरा तो काल यहाँ भी रहा तो अकाल कहाँ हुआ ? फिर मैंने उसको 'एग्जाम्पल' देके समझाया कि यात्रा करते हुए जो आदमी जहाँ का उसका टिकट है वहाँ पर उतर जाता है। उसकी यात्रा वहीं समाप्त हो जाती है।

रह गई हत्यारे की बात ! आपने इसको गलत समझ लिया है स्वामी जी। माफ फरमाइयेगा। हत्यारा किसी को मारने जाता है तो अपनी 'इण्डिपेण्डेन्स' का दुरुपयोग कर रहा है स्वतन्त्रता का····· (टन् टन् टन्······) वो अपने स्वार्थ के कारण मार रहा है। इसलिए वो जिम्मेदार है। अगर वो स्वार्थ के प्रति न मारता तो वो जिम्मेदार न होता। वो तो उसके भोग समाप्त हो गये तो मर गया नहीं तो नहीं मरता। मैंने यह भी तो कहा था कि मारने जाता है नहीं मार सकता।······टन् टन् टन्······

श्री ब्रह्मचारी वेदव्रत जी मीमांसक—

शास्त्री जी ने जो मेरे विषय में कहा है कि मैं दबते-दबते स्वर से मैंने सौ वर्ष की आयु मानी है। मैंने नहीं मानी है मेरी प्रतिज्ञा शास्त्री जी को पुनः मैं सुनाना चाहता हूं—"मनुष्य की आयु निश्चित नहीं है। किन्तु मनुष्य अधिक से अधिक आयु तक जीने का प्रयत्न करता है, और करना चाहिए। अप्राप्त वस्तु की प्रार्थना की जाती है यह सत्य है किन्तु प्रश्न यह होता हैं कि शास्त्री जी के पक्ष में जबकि आयु निश्चित है उस अवस्था में जबकि उसके कर्मानुसार निश्चित आयु होती है उस अवस्था में शास्त्री जी के अनुसार वेद-मन्त्रों का पाठ करना सन्ध्या करना इस प्रकार के वेद-मन्त्रों का जप करना सारा का सारा व्यर्थ हो जाता है क्यों ? कि वो तो निश्चित समय पर मरना ही फिर प्रार्थना क्यों ? इसलिए शास्त्री जी के पक्ष में सन्ध्या करना भी दैनिक अत्यन्त दुस्सह हो जाता है। और फिर दूसरी बात शास्त्री जी ने कहा था कि अगले जन्म के लिए प्रार्थना की जा रही है। किन्तु मैं एक मन्त्र उपस्थित कर देता हूं—

"स्तुता मया वरदा वेदमाता प्रचोदयन्तां पावमानी द्विजानाम्। आयुः प्राणं प्रजां पशुं कीर्ति द्रविणं ब्रह्मवर्चसं मह्यं दत्त्वा व्रजत ब्रह्मलोकम्" ॥ (अथर्ववेद १९-७१-१) यहाँ पर "प्रजां पशुं कीर्त्ति द्रविणं ब्रह्मवर्चसं" इतने पदार्थों की प्राप्ति के लिए प्रार्थना की जा रही है। यह अगले जन्म के लिए प्रार्थना नहीं की जाती। और दूसरी बात इसमें एक दोषपूर्ण यह है कि—"उपस्थितं परित्यज्य अनुपस्थितं याचत इति बाधितन्यायः"। जो वर्त्तमान जन्म में जीवित है; वर्त्तमान जीवन के लिए प्रयत्न कर रहा है और आगे के लिए प्रार्थना करेगा, यह सम्भव नहीं हो सकता और फिर, वेद में कहा है—"कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेत्"। जीने की इच्छा करे, सन्नन्त प्रत्यय है, वहाँ पर जीने की इच्छा करे। यदि मनुष्य की निश्चित आयु होती तो जीने की इच्छा कर नही सकता; करना व्यर्थ है वेद व्यर्थ हो जाता। इसीलिए मनुष्य को जीने की इच्छा करनी चाहिए। और प्रार्थना करनी चाहिए। और प्रार्थना केवल व्यर्थ नहीं। अप्राप्त पदार्थ के लिए प्रार्थना होती है। किन्तु प्रार्थना कब सम्भव है? स्वामी-दयानन्दजी ने लिखा है—"अपने पूर्ण पुरुषार्थ के उपरान्त प्रार्थना करनी। और कोई प्रार्थना करता जाये उसके लिए प्रयत्न न करे उसकी प्रार्थना व्यर्थ हो जाती है।" इसीलिए प्रार्थना का अर्थ यह भी होता है उसी के अनुकूल वो प्रार्थना जैसी करता है वैसा प्रयत्न भी करे। प्रयत्न उसी के लिए होता है जो सम्भव हो जो सम्भव न होती, वेद में आज्ञा न होती और प्रार्थना करना व्यर्थ हो जाता। इसीलिए प्रार्थना भी करनी चाहिए; आयु को बढ़ाने आदि के लिए प्रयत्न भी करना चाहिए। और धुरे की बात है। धुरा जैसा धुरे को देने वाला यह कह देता है कि इतने वर्ष तक यह काम करेगा। यदि कोई मनुष्य उसको और भी सुरक्षित रखेगा उससे अधिक समय तक भी उसको बनाये रख सकता है। इसी प्रकार शरीर को भी उत्तम साधनों को अपनाकर आगे अच्छे प्रकार से बढ़ाया जा सकता है। उसका सदुपयोग न करने पर वो भी घट जाता है। इसलिए दोनों उदाहरण समान हैं विषम नहीं। और शास्त्री जी ने कहा कि मेरे ऊपर एक छल नाम का प्रयोग किया है। वास्तव में शास्त्री जी ने छल का ही प्रयोग किया है।

क्योंकि मैंने यह प्रतिज्ञा की थी कि आयु निश्चित नहीं है। और उसका काल शब्द-परक शास्त्री जी ने लेकर छल का प्रयोग किया। मैंने काल नहीं होता ऐसा नहीं कहा। काल खण्डित होता है काल सच्छिद्र होता है ऐसा मैंने नहीं कहा। किन्तु शास्त्री जी ने मेरे ऊपर यह आरोपण किया है कि मानो मैं सच्छिद्रता का वर्णन कर रहा हूं जैसे कि मैंने कोई वर्णमाला का भी अध्ययन न किया हो। किन्तु मैंने ऐसा नहीं कहा। और फिर दूसरी बात यह हो जाती है कि उसके कर्मों के अनुसार मर जाये तो प्रश्न होता है कि इतनी गौवें कट रही हैं वो तो मनुष्यों के सुधार के लिए प्रयत्न करिये, धर्म का प्रचार करिये; गोहत्या बन्द कराने के लिए प्रयत्न न करिये। किन्तु ऐसा नहीं, स्वामी दयानन्द जी ने क्या कहा है—एक गाय मारने से जबकि मांस खाने वाले ८० मनुष्यों की तृप्ति हो सकती है किन्तु उस एक गाय को मारने से अनेक मनुष्यों को जो लाभ होने वाला होता है वह नहीं होता। उनको बचाने से उतना लाभ होता है। यदि बचाने से सम्भव न होता; इतना आर्थिक लाभ स्वामी-दयानन्द जी कभी वर्णित नहीं करते। इसलिए कहते हैं ऐसे पशुओं को न मारना चाहिए। जिस एक गाय के मारने से ४,७५,६०० मनुष्यों को लाभ होता हो यह आर्थिक दृष्टि से लिखा हैं मारने वाले की प्रवृत्तियों के बिगड़ने के भय से नहीं लिखा। और वैसे तो चाहे किसी को धर्म की शिक्षा दे दीजिए किन्तु गौहत्या को निरोध करने का क्या प्रश्न उठता है? इसीलिए स्वामी जी ने जहाँ पर आयु की मृत्यु निश्चित होती है इस विषय को खण्डित करने के लिए यह बहुत बड़ा गोकरुणानिधि लिखकर हमारे सामने ऐसा दृष्टान्त उपस्थित किया कि उनको बचाया जा सकता है और बचाया जाना चाहिए। उससे ही लाभ होता है, कल्याण होता है इसीलिए "नाऽविज्ञाते जलाशये" तो स्वामी जी लिखते हैं सत्यार्थ-प्रकाश में दूसरे समुल्लास में—"बालक अविज्ञात जलाशय में जाकर स्नानादि न करे, क्योंकि जल-जन्तुओं के हानि पहुंचाने से

मर सकता है और डूब कर भी मर सकता है।" जैसा कि मैंने कहा था आभूषणों को धारण करने से चोरादियों के द्वारा बालकादियों की मृत्यु देखी जाती है। इसीलिए आभूषणादि नहीं पहनना चाहिए। इससे क्या सिद्ध होता है कि मनुष्य की मृत्यु किसी भी समय हो सकती है। उसको सुरक्षित करने के लिए मनुष्य को प्रयत्न करना चाहिए। और······(टन् टन् टन् टन्···)

श्री पण्डित ओमप्रकाश जी शास्त्री विद्याभास्कर—

उपस्थित महानुभावो ! स्वामी जी से यह कहना है कि कसाई जब किसी गाय को या आदमी किसी आदमी को कत्ल करता है—मारता है तो वह परमेश्वर की व्यवस्था से भेजा हुआ है। अगर ऐसा होता तब तो शायद आपकी बात सही थी। मैं बार-बार कह रहा हूं कि हर आदमी अपने कर्म में 'रिस्पांसिबल' है जिम्मेदार है जो अपनी स्वतन्त्रता के साथ किसी को मारना चाहता है तो उसमें उसका स्वार्थ है, लोभ है, लालच है, क्रोध है, इन्तकाम है। उसके वशीभूत मारता है। परमेश्वर की व्यवस्था से वो मारने के लिए नहीं भेजा गया। मारने की आजादी तो उसने हासिल करी लेकिन मरने वाले के अगर भोग समाप्त हैं तब तो वो मारने में कामयाब हो जायेगा नहीं तो वो मारने में कामयाब नहीं होगा। आपकी नियत में आप स्वतन्त्र हैं अपने कर्म में, फल भोगने में वो परतन्त्र है। फल देने में आप भी परतन्त्र हैं। आप मारना भी चाहें लेकिन अगर उसकी भोग की परिसमाप्ति नहीं है आपके सारे साधन फेल हो जायेंगे और नहीं मार सकेंगे। और जिसके भोग आ गये समाप्ति पर वो मर जायेगा। इसमें परमेश्वर की तरफ से जल्लाद नहीं बनाया गया। स्वामी जी कहते हैं कि गो-हत्यारों को इसलिए रोको कि अपने स्वार्थ के लिए गौवों को मारते हैं, जानवरों को मारते हैं। इसलिए वो गुनाह करते हैं इस गुनाह को रोकने की कोशिश करो। मेरा बार-बार यह कहना है कि वो—'**सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगाः।**' इसके जवाब में आप क्यों नहीं बोलते कुछ भी। सूत्र को शुरू से बोल रहा हूं इसको 'टच' नहीं करते। आप गम्भीरता से इस पर विचार कीजिए। यह सूत्र जो है यह आज के शास्त्रार्थ का आधार है। इस पर आप बोल नहीं रहे। दूसरी बात कहते हैं 'शरीर को सुरक्षित रक्खे तो लम्बा चल सकता है, लम्बा नहीं चल सकता मैं कहता हूं जब तलक शरीर को यह पहिये को यह पहिया तो लम्बा चल सकता है क्योंकि वो जड़-वस्तु है आप इसे सम्भाल कर रखेंगे।

लेकिन यहाँ तो कर्म की व्यवस्था से जीवात्मा जड़ के साथ मिलाया गया है। खुद आकर नहीं बैठ गया है। न वो आजाद आने में, न रहने में आजाद और न जाने में आजाद। हमें तो यह भी पता नहीं कि हम कैसे दाखिल हो गये इस कोठरी में और कैसे रह रहे हैं, कब निकल कर चले जायेंगे। हमारी 'इण्डिपेण्डेन्स' यहाँ काम ही नहीं कर रही। यह व्यवस्था तो दूसरे के अधीन है जो लाता है, रखता है और ले जाता है। हम लाख कोशिश करें नहीं जाना चाहें ले जायेगा। यह कितना प्रत्यक्ष उदाहरण है। तो फिर यह शरीर का लम्बा, लम्बा नहीं जायेगा। आप अगर अच्छे सुरक्षित रखेंगे तो आप अच्छे तन्दुरुस्त रहेंगे। दुःख कम भोगेंगे। दुःख की अनुभूति कम होगी। आप सन्तोष के साथ रहते हैं एक आदमी है उसमें सन्तोष ही नहीं, लाख कमाता है। एक फकीर है दो रोटी खाकर सन्तोष कर लेता है। उसने दुःख-सुख के 'फीलिंग्स' को तो कम कर दिया मात्रा कम नहीं हुई; 'फीलिंग्स' कम जरूर हो गये। तो अनुभूति कोई सज्जन आदमी अनुभव कम करता है दुःख को उन परिस्थितियों में 'पेशैन्टली' उसको बरदास्त कर जाता है। यह तो आप कर सकते हैं संयम से, त्याग से, तपस्या से, सद्गुणों से, उन प्राप्त दुःखों की अनुभूति में तो कमी कर सकते हैं लम्बाई-चौड़ाई नहीं कर सकते।

मैंने फिर कहा था कि सौ साल की आयु आप 'स्टैण्डर्ड एज' मानते हैं क्या सामान्य ? अबकी आपको जवाब देना पड़ेगा कि सामान्य 'एज' मानते हैं सौ साल की; अगर वो प्राप्त है तो प्रार्थना निकम्मी और अप्राप्त है तो

जीवन सौ साल का है नहीं कुछ भी। कोई आधार नहीं है इसका कि सौ साल की उमर होती है सबकी। अब एक बात आप और कह गये कि साहब—**"स्तुता मया वरदा वेदमाता।"** (अथर्ववेद १९-७१-१) भाई साहब ! मैं आपसे क्षमा चाहता हूं इस मन्त्र का अर्थ; कहना नहीं चाहिये मैं अपने को बहुत तो विद्वान नहीं मानता हूं; विद्यार्थी हूं। लेकिन इस मन्त्र का अर्थ यह है ही नहीं। इसका अर्थ अगर यह है कि यह सब मुझे देकर चले जाओ। **"स्तुता मया वरदा वेदमाता प्रचोदयन्ताम् पावमानी द्विजानाम् आयुः प्राणं प्रजां पशुं कीर्ति द्रविणं ब्रह्मवर्चसम् मह्यं दत्त्वा व्रजत ब्रह्मलोकम्।"** स्वामी जी ! जवाब दीजिएगा कि **'व्रजत'** यह क्रिया किसके लिए है ? कौन जावे ब्रह्मलोक में ? क्या भक्त परमात्मा से कह रहा है कि यह सब चीजें तो आप आ करके मुझे दे दीजिये और देने के बाद में लौट जाइये ब्रह्मलोक में क्या परमात्मा उतरकर आवेगा आप को आयु देने को ? घोड़े देने को, गाय देने को और यह सब देगा आपको **"ब्रह्मवर्चस्"** देगा और फिर उसको आप कहेंगे कि श्रीमान् जी ! आपने बड़ा कष्ट किया, अब आप ब्रह्मलोक में चले जाइयेगा। यह प्रार्थना नहीं है। परमात्मा खुद कह रहा है कि **"स्तुता मया वरदा वेदमाता प्रचोदयन्ताम् पावमानी द्विजानाम्"** ऐ मनुष्यो ! तुम्हें जो वेद का ज्ञान था वो तुम्हें दे दिया है जो ज्ञान की माता है वह तुम्हारे अन्दर ऐसी प्रेरणा करे कि तुम अपने मैटीरियल जितनी प्रापर्टी तुम्हारे पास है तुम्हारी उम्र मेरी भक्ति में गुजार दो। दूसरे के उपकार में लगा दो। अपने प्राणों को दूसरे के उपकार में लगा दो या मेरे नाम पर कुर्बान कर दो। **"आयुः प्राणं प्रजां पशुं कीर्ति द्रविणं"** ये जितनी एषणायें हैं संसार की; **'मह्यं दत्त्वा'** मेरे नाम पर कुर्बान करके, **"व्रजत ब्रह्मलोकम्"** तब तुम मोक्ष का सुख प्राप्त करो। यह तो परमेश्वर आदेश दे रहा है। और आप इसमें भीख मांग रहे हैं। आयु दे जाओ जी प्राण दे जाओ; यह निकम्मी प्रार्थना भगवान से करना मुझे घोड़े दे जाओ जी बैल दे जाओ जी। यही मन्त्र है इसमें। और फिर भगवान् जी से कह दें कि आपने बड़ी कृपा की अब लौट जाइये **"ब्रह्मलोकम् व्रजत।"** इस मन्त्र में **"व्रजत ब्रह्मलोकम्"** यह क्रिया किसके लिए है ? हां ! यह किसके लिए है ! तो देखिये इसको (··· टन् टन् टन्······।)

श्री ब्रह्मचारी वेदव्रत जी मीमांसक—

अब शास्त्री जी ने जो यह कहा है कि गौ-हत्या करने वाला अपने स्वार्थ के कारण से करता है इसीलिए उसका गौहत्या का कार्य बन्द करवाया जाता है उसको दोषादह माना जाता है। किन्तु शास्त्री जी अब भी और और भी विचार करके देख लें। गोकरुणानिधि में स्वामी दयानन्द जी ने आद्योपान्त कहीं भी ऐसा नहीं लिखा है कि गौहत्या करने वाले की दुष्टप्रवृत्ति से छुड़ाने के लिए गौहत्या बन्द करा दी जाय ऐसा कहीं भी नहीं लिखा। स्वामी जी ने ऐसा ही लिखा है कि गौवों की हत्या बन्द करने से बहुत बड़ा अर्थ-लाभ हो जाता है उससे देश और जाति मनुष्यों का उत्थान होता है। इसीलिए गौवों की रक्षा की जा सकती है और की जानी चाहिए। यदि गौओं की रक्षा के लिए प्रयत्न नहीं करवा सकते थे। आज क्या हम उसके लिए प्रयत्न नहीं करें ? क्यों कि अपने आप मरेंगे और उनको बचाने से कोई लाभ नहीं, इसीलिए यह बात नहीं है। स्वार्थ के लिए तो मारता है। किन्तु स्वार्थ के लिए मारने के साथ भी वह अर्थ लाभ से रहित हो जाता है मारने से। इसीलिए गौहत्या को बन्द करने के लिए प्रार्थना करना चाहिए। उसके लिए प्रयत्न करना चाहिए केवल इसीलिए नहीं कि उसकी प्रवृत्ति बिगड़ जाती है, और इसके साथ एक प्रश्न यह होता है कि उसकी आयु निश्चित होने के कारण से वो मर जाती है। और नहीं तो नहीं मरती है। अब उसका एक साधन बन जाता। अब प्रश्न यह है कि परमात्मा ने उस गौ को मरवाने के लिए क्या इस मनुष्य को निश्चित कर रक्खा था कि इस मनुष्य या मनुष्य आकर मारेगा ? यदि आयु को निश्चित मानेंगे तो उसके साथ-

साथ उनके साधनों को भी निश्चित मानना पड़ेगा। ऐसे जैसा कि एक घड़ी खरीद लीजिये। घड़ी वाले से पूछ लीजिये कि घड़ी कितने वक्त चलेगी। वो कहेगा पन्द्रह वर्ष। किन्तु इसके साथ कुछ नियम हैं; इस प्रकार करोगे तो पन्द्रह वर्ष चलेगी। नहीं तो वो घड़ी नहीं चल सकती। इसी प्रकार परमात्मा ने यदि उसकी आयु निश्चित की हो तो उसका खाना-पीना, उसका उठना बैठना, उसके अन्य कर्म सारे निश्चित करेगा। यदि ऐसा करेगा तो वैसा होगा, नहीं तो नहीं होगा। हाँ! यदि दूसरी बात यह है कि जीव परतन्त्र हो जायेगा। जीव की स्वतन्त्रता छीन ली जाती है। अब इसके साथ-साथ यदि परमात्मा साधनों को निश्चित करता है तो किस प्रकार साधनों को निश्चित करता है? कि यही मनुष्य आकर इसी को इसी घण्टे में उसी मिनट में उसी सैकिण्ड में मारेगा। अथवा चाहे जो मारता है। यदि चाहे जो मारता है तो चाहे जिस प्रकार मृत्यु हो जाने में बहुत अन्तर हो जाता है।

एक तो जलकर मर गया उसमें दुःखभिन्न प्रकार का होता है। एक खाकर मर जाता है उसमें भिन्न प्रकार का होता है। एक फांसी लगाकर मर जाता है उसमें भिन्न-भिन्न प्रकार का होता है। दुःखों में भिन्नता होती है। इसीलिए परमात्मा को उसे मारने के लिए साधनों को भी निश्चित करना पड़ेगा और साधनों को निश्चित करता है तो जीवात्मा परतन्त्र हो जाता है। इसीलिये यह पक्ष इनका ठीक नहीं। और फिर············ **"सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगाः"** शास्त्री जी ने अनेक बार इस सूत्र को उपस्थित किया है। ऐसा प्रतीत होता है शास्त्री जी के पास एक ही अमोघ शस्त्र जैसा है यह शस्त्र। मैं यह पूछना चाहता हूँ शास्त्री जी इसमें आयु की सीमा कहाँ पर बतलायी है? आयु की सीमा का कोई भी प्रश्न है? आयु की सीमा का कोई भी प्रश्न नहीं। और आयु को घटाने-बढ़ाने के लिए मैंने बहुत सारे मन्त्र उपस्थित किये और अनेक प्रमाण दिये। इस प्रकार आयु को निश्चित मानने के पक्ष में शास्त्री जी अब भी यदि कोई प्रमाण अब तक भी मिल गया हो और अब तक भी वो दे सकते हैं। वेद का कोई प्रमाण हो कि इसमें आयु निश्चित है दे दें। और फिर हाँ! आयु को निश्चित करने के पक्ष में वो प्रमाण दे दें। और सौ साल के विषय में हम प्रार्थना करते हैं सामान्य रूप से कि सौ साल की आयु निश्चित नहीं है। यदि निश्चित होती तो हम सौ के लिये प्रार्थना नहीं कर सकते। यदि शास्त्री जी मानें—प्रार्थना अगले जन्म के लिये तो वही प्रश्न उपस्थित हो जायेगा—**"उपस्थितं परित्यज्य अनुपस्थितंयाचते इति बाधितन्यायः"**।

और फिर उसके पश्चात् **"स्तुता मया वरदा वेदमाता"** इस मंत्र के अर्थ के विषय में उन्होंने कहा है परमात्मा हमसे कहता है सब कुछ मुझे देकर ब्रह्मलोक को प्राप्त हो जायें। और यहां पर वेदमाता शब्द का क्या अर्थ होगा शास्त्री जी? अब तक भी विचार न किया हो तो फिर पुनः विचार कर लें, शान्ति से देखिये वेदमाता शब्द का अर्थ बहुत सारे लोग यह मानते हैं कि वेदमाता का अर्थ होता है गायत्री। प्रश्न यह होता है कि वेद की माता क्या गायत्री है? क्या गायत्री ने चारों वेदों को उत्पन्न किया है? इसलिये यहाँ वेदमाता का अर्थ ऐसा नहीं है जैसा बहुत सारे लोग मानते हैं। यहाँ पर परमात्मा की और **'व्रजत'** इस पूर्वापर प्रसंग को विचार करके वहाँ पर देखा जायेगा। केवल **'व्रजत'** का अर्थ **'व्रजत'** ही होता है ऐसा नहीं। और कहीं-कहीं पर ण्यन्त क्रियायें होती हैं। उसको भी देखना पड़ता है। इन सबको देखकर उसके पश्चात् यह निश्चित किया जाता है। मन्त्र का पूर्ण अर्थ क्या है? मन्त्र के पूर्ण अर्थ को करना हो तो हम शास्त्रार्थ से अतिरिक्त समय में और बैठकर विचार कर लेते हैं। (·········टन् टन् टन्·········) हमने आठ दस मन्त्र उपस्थित किये हैं। शास्त्री जी को अब भी कोई मन्त्र मिल गया हो तो उपस्थित करें।

श्री पण्डित ओमप्रकाश जी शास्त्री विद्या भास्कर—

सबसे बड़ी बात जो मेरे से पूछी जा रही है—**"उपस्थितं परित्यज्य योऽनुपस्थितं सेवते"** मेरे मित्र! यह दर्शन का विषय है जब तलक दर्शनों का स्वाध्याय नहीं करोगे, इस विषय को आप नहीं समझ सकते। आप मुझे माफ

फरमाइयेगा। वैदिक सिद्धान्तों को वो व्यक्ति न समझ सकता है न 'एक्सप्लेन' कर सकता है जो दर्शनों का स्वाध्याय नहीं करता। न्यायदर्शनकार साफ लिखता है कि इस जन्म में इस कर्म के फल प्राप्त नहीं होते। सूत्र देख लीजिए वात्स्यायन मुनि का—"**न प्रवृत्तिः प्रतिसन्धानाय हीनक्लेशस्य।**" (न्याय दर्शन ४-१-६४) इस सूत्र के भाष्य में "**सर्वाणि पूर्वकर्माणि अन्ते जन्मनि विपच्यन्ते।**" (न्यायदर्शन ४-१-६४) "**सर्वाणि पूर्वकर्माणि अन्ते जन्मनि विपच्यन्ते**" जितने इस जन्म के किये हुए कर्म हैं वे दूसरे जन्म में फलित होकर के आते हैं। वो कर्म जो हैं जिनको आप कहते हैं इस जन्म में मिलते हैं वो हैं। वो कैसे हैं·········वो वे हैं जो कि दूसरे जन्म के हेतु नही हैं। मसलन मैंने रोटी खाई और मेरी भूख मिट गई। ये कर्म हैं क्रियमाण कर्म। मैंने रोटी खाई मेरी भूख मिट गई; मुझे प्यास लगी मैंने पानी पी लिया। ये क्रियमाण ·······लेकिन वो कर्म जिनसे कि "**सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगाः**" जिन पर कि अगला जन्म 'डिपैण्ड' करता है अगली आयु 'डिपैण्ड' करती है। अगले भोग आश्रित होते हैं वे कर्म तो अगले जन्म में ही फलीभूत होंगे। तो इसीलिए न्यायदर्शनकार गौतम मुनि कहता है······ कि यह मैंने अभी आपके सामने पेश किया "**सर्वाणि पूर्वकर्माणि अन्ते जन्मनि विपच्यन्ते**"। जितने भी कर्म हैं इस जन्म के किये हुए वो अगले जन्म में फलीभूत होकर के आते हैं।

आयु वगैरा अब बार-बार आप कहते हैं कि निश्चित बता दीजिये आयु, मैं तो निश्चित मानता ही नहीं कोई 'स्टैण्डर्ड ऑफ एज' मैं तो शुरू से कह रहा हूँ। आपको बतानी पड़ेगी कि वो कौन सा आयु का 'स्टैण्डर्ड' है जिसे आप घटाना-बढ़ाना कहते हैं। अरे भई! ये रबर थी मेरे पास। मैंने कहा कि देखो। ये दो इंच की है मैने बढ़ा ली। अब दो इंच की बढ़ा तो सकता हूँ घटाऊँ कैसे? क्यों भई! बढ़ा तो दी, घटेगी नहीं। तो आपके पास कोई तत्त्व ऐसा होना चाहिए आयु का जो 'कामन' हो। मैं बार-बार कहता हूँ। सामान्य का मतलब साधारण नहीं था। सर्वसाधारण। आप मनुष्यों की आयु का कोई स्तर आपको कायम करना पड़ेगा जिसको आप बढ़ा लें ब्रह्मचारी रह करके और मैं खराब होकर के बिगाड़ लूँ। आप मुझे कहेंगे शास्त्री जी! आप सौ साल की उमर सब मनुष्यों को मिली थी आपने धातुओं की हानि कर ली आप सत्तर साल में मर गये और देखो मैं ब्रह्मचारी रहा हूँ गुरुकुल के अन्दर कितना 'हैल्दी' हूँ और कितना बढ़िया हूँ। मैंने तो गृहस्थाश्रम भी नहीं भोगा और मैं सौ डेढ़ सौ साल तक जी गया हूँ। तो आप १०० साल तक ५० साल तक लम्बे खींच ले गए। और मैं ३० साल नीचे चला गया। यह एक पैमाना हुआ तो सही सौ साल का। जिससे नापा जाए। आयु के घटने-बढ़ने का। मैं शुरू से कह रहा हूँ वो एक 'स्टैण्डर्ड ऑफ एज' बता दीजिए। आप बताते ही नहीं, तो '**सति मूले तद्विपाको**" को नहीं छूते। अब एक बात और कही।

क्यों जी! "**व्रजत**" के अर्थ और क्या हैं जो यह मध्यमपुरुष की क्रिया नहीं है क्या? आप ब्रह्मलोक में चले जाओ। "**व्रजत ब्रह्मलोकम्**"। कहते हैं······ '**ण्यन्त क्रियायें होती हैं**'। होगी·······"**ण्यन्त क्रिया**" मैं तो नहीं लगा रहा। हों भी·······"**ण्यन्त क्रिया**" सीधा अर्थ कर रहा हूँ कि भई! यहाँ पर कहा है·······"**व्रजत ब्रह्मलोकम्**" आयु प्राण प्रजा पशु सब मुझे मेरे नाम पर, और अर्थ भी समझ में आता है तो आयु और प्राण ब्रह्मवर्चस् और पशु और घोड़े माँग रहा है इसी में लगा हुआ है जिसका मन तो वो मोक्ष को क्या प्राप्त करेगा? इन तमाम की 'सैक्रीफाई' कर देगा, बलिदान कर देगा परमेश्वर के नाम पर दूसरे के उपकार में लगा देगा। गऊशालायें खोलता है। अपने धन को गरीबों में बाँट देता है। अपनी सारी आयु जिन्दगी में स्वामी दयानन्द ने अपनी सारी जिन्दगी दूसरों के उपकार में कुर्बान कर दी। अपने ब्रह्मवर्चस् को छोड़कर समाधि के सुख को छोड़कर प्रजा के लिए जमीन पर उतर आया। ऐसे लोग मोक्ष प्राप्त करते हैं। उनको परमात्मा का हुक्म था कि "**व्रजत ब्रह्मलोकम्**" कि सब कुछ कुर्बान कर दो। घर बार कुर्बान कर दिया धन कुर्बान कर दिया प्राण कुर्बान कर दिये ऐसे व्यक्ति जो हैं वो ब्रह्मलोक को प्राप्त होते हैं"

यह "**स्तुता मया वरदा**" का यह अर्थ है। उसमें आयु थोड़े ही माँगी जा रही है। भगवान् जी मेरी आयु लम्बी कर दो। अब बताइये······टन् टन् टन्······)

श्री ब्रह्मचारी वेदव्रत जी मीमांसक—

(एक दो वाक्य ब्रह्मचारी जी अत्यन्त शीघ्रता में घण्टी बजते ही बोल गये जो रिकार्ड न हो सके)······ और दूसरी बात यह है कि दर्शनों का अध्ययन किये बिना ही यह शास्त्रार्थ करने के लिए बैठे नहीं। और शास्त्री जी को मेरा परिचय न हो तो मैं आपको बतला देना चाहता हूँ मैंने छहों शास्त्रों का अध्ययन किया। आर्यसमाज में शायद बहुत थोड़े मनुष्य होंगे जो ६ शास्त्रों का। अपनी ओर से नहीं, उन्होंने कहा है इसलिए बतला रहा हूँ। और दूसरी बात······"**क्लेशमूलः कर्माशयः दृष्टादृष्टजन्मवेदनीयः**" और इसमें महर्षि पतञ्जलि ने अपने शास्त्र में लिखा है······कि मनुष्य जो कर्म करता है उनके कर्मों का फल केवल अगले जन्म में ही नहीं मिलता। अपितु "**क्लेशमूलः कर्माशयः दृष्टादृष्टजन्मवेदनीयः, दृष्टजन्मनि वेदनीयश्च अदृष्टजन्मनि वेदनीयश्च**"। इस प्रकार होता है इसलिए अब के किये कुछ कर्मों का फल अब भी मिल सकता है। ऋषि ने व्यास-भाष्य में एक स्थान पर लिखा –"**सद्यः परिपच्यते पुण्यकर्माशयः पापकर्माशयश्च**"। **नन्दीश्वरवद्वा नहुषवद्वा**॥ (यो० २-१२ भा० द्र०) ओर वो कुछ विचित्र कर्म ऐसे होते हैं जो शीघ्र तुरन्त सद्यः अर्थात् समाने दिने इस प्रकार शीघ्र कुछ कर्मों का फल मिल जाता है इसके आधार पर इस जन्म में भी किये हुए कर्मों का फल मिलता है और अगले जन्म में तो मिलता ही है फिर उसके पश्चात् मनु जी महाराज कहते हैं—"**त्रिष्वप्येतेषु दत्तं हि······दातुर्भवत्यनर्थाय परत्राऽदातुरेव च**" (मनु० ४-१९३) कहते हैं धर्म से प्राप्त हुए धन का उक्त तीनों को दान देना है वह दाता का नाश इसी जन्म में और लेने वाले का नाश परजन्म में करता है। अर्थात् दोनों जन्मों में कर्मों का फल मिलता हैं यह सिद्ध हुआ। स्वामी दयानन्द जी ग्यारहवें समुल्लास में पूछते हैं—"**कि दान से फल इस लोक में मिलते हैं अथवा परलोक में? कहते हैं कि सर्वत्र मिलते हैं। इस लोक में भी और परलोक में भी। इस जन्म में किये हुए कर्मों के आधार पर आयु को घटा-बढ़ा सकते हैं। उसको बढ़ा सकते हैं इतनी शक्ति है**। और फिर क्या उसके साथ शास्त्री जी ने एक वात्स्यायन के सूत्रभाष्य का एक खण्ड दिया है—जहाँ पर क्या लिखा है—"**सर्वाणि पूर्वकर्माणि अन्ते जन्मनि विपच्यन्ते**"। यहाँ पर शास्त्री जी! फिर भी देख लें यदि उन्होंने न देखा हो तो फिर भी देख लें। यहाँ पर वात्स्यायन ने अन्ते "**जन्मनि विपच्यन्ते**" कहा है। "**अग्निमे जन्मनि विपच्यन्ते**" नहीं लिखा। सावधानी से फिर देख लेना। "**सर्वाणि पूर्वकर्माणि हि अन्ते जन्मनि विपच्यन्ते** (न्याय दर्शन ४-१-६४ भा०)" जोकि मुक्ति को प्राप्त करने वाला जन्म होता है जिसके पश्चात् मुक्ति हो जाती है फिर शरीर नहीं मिलता है; वहाँ पर उसके किये हुए कर्मों का फल जो कि शेष रह जाते हैं उन सब का वहीं पर मिल जाता है। यह वात्स्यायन ने लिखा। इसके साथ-साथ महर्षि दयानन्द जी लिखते हैं—

"**जो मुक्ति में पहुँच जाते हैं उनके भी कर्म शेष रह जाते हैं**"। यह ऋषि दयानन्द जी का अमूल्य सिद्धांत है। मैं आपके सामने उपस्थित करके बतला देता हूँ—स्वामी दयानन्द जी उस बात को नहीं मानते हैं कि कर्मों का क्षय हो जाता है मुक्ति में पहुँचने के बाद भी उसके कर्म समान पुण्य समान पाप होते हैं यह ऋग्वेदभाष्य (१-२४-२) में लिखा है—"**महाकल्पान्ते पुनः पापपुण्यतुल्यतया पितरि मातरि च मनुष्यजन्म कारयतीति**"। अर्थात् इसका अर्थ करते हैं—जिससे हम लोग······वाली पृथिवी के बीच में फिर जन्म देता हैं। जिस तरह से ऐसा निश्चय हम लोगों को है कि वह मोक्ष पदवी को पहुँचते हुए जीवों का भी महाकल्प के अन्त में पाप-पुण्य की तुल्यता से पिता, माता, स्त्री आदि के बीच में मनुष्य-जन्म का धारण करता है। इसलिए वात्स्यायन के इस सूत्र-भाष्य का यह अर्थ नहीं हो सकता। अब आयु निश्चितता के विषय में फिर मेरे से पूछा। मैंने कहा कि आयु शास्त्री जी मैंने यह निश्चित किया

था कि आयु निश्चित नहीं है। मैंने आयु निश्चित होने में कोई प्रमाण नहीं माना। इसीलिए आयु को घटा-बढ़ा सकते हैं? क्योंकि आयु निश्चित नहीं हैं। निश्चित होती तो उसको बतला देते, शास्त्री जी निश्चित मान लेते हैं। क्योंकि कर्मों का फल निश्चित होता है। कर्मों का फल निश्चित होता है तो उसको फिर बतलाना पड़ेगा वही प्रश्न आ जायेगा। और "व्रजत" शब्द में उन्होंने यह कहा है यहाँ पर ण्यन्त क्रिया कहाँ पर है? एक मन्त्र में आपको बतला देता हूँ—"तदेजति तन्नैजति तद्दूरे तद्वन्तिके तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः" ॥ (यजुर्वेद ४०-५)

"तदेजति" वह परमात्मा इस सृष्टि को चलाता है। "एजति" में "ण्यन्त" है और "तन्नैजति" वह क्रिया में नहीं आता है। इसी प्रकार "व्रजत" का अभिप्राय "ण्यन्त" है। इसलिये मैंने जो अर्थ किया है वह दोषावह नहीं। और आपने आयु को जैसे कि मैंने प्रतिज्ञा की थी कि आयु निश्चित नहीं है। और यदि शास्त्री जी इस विषय में प्रतिज्ञान्तर करना चाहते हों तो स्पष्ट बतला देवें कि उन्होंने यह कहा है कि मैं निश्चित आयु को नहीं मानता। एक ओर तो वह कर्मों को तो निश्चित मानने को तैयार हैं किन्तु कर्मों के अनुसार फल को निश्चित मानने के लिए मानते तो हैं किन्तु कहने को तैयार नहीं। इसलिये शास्त्री जी इस बात पर विचार करके बतला दें।······ (टन् टन् टन्······)

श्री पण्डित ओम प्रकाश जी शास्त्री विद्याभास्कर—

साहब! दरअसल बात तो यह है अब फँस गये स्वमी जी बड़ा मुश्किल है बचना। यानी कि जिसको कहते हैं कि जो अपने आप ही आ के जाल में फँस गये। अब आप जब मैंने जो कहा कि वो अगले जन्म में होता है पिछले जन्म में नहीं इसमें न्यायदर्शन का सूत्र दिया तो आप गये बचाव में कि यह मोक्ष के बारे में वर्णन है। क्यों जी—अग्रे जन्मनि का अर्थ है मोक्ष में!! क्या मोक्ष में जन्म होता है जीव का? स्वामी जी कहते हैं—जन्म क्या है? कि किन्हीं शरीरों के साथ जीवात्मा का जो संयोग है वह जन्म है और तत्तत् भौतिक शरीरों से पृथक् होने का वियोग होने का नाम मृत्यु है। आप अग्रे जन्मनि का अर्थ कहते हैं— मोक्ष में। तो मोक्ष में क्या जन्म होता है? आप उसे प्रारम्भ कहें, अन्त कहें लेकिन मेरे स्वामी जी महाराज! आदरणीय! यह जन्म नहीं होता है मृत्यु में। जन्म तो होता है भौतिक शरीर के साथ मिलने का जीव का नाम।

लेकिन शरीर का जीवात्मा को मोक्ष-अवस्था में कोई भौतिक शरीर उसकेसाथ नहीं जाता है। वो तो सूक्ष्म-शरीर होता है उसके साथ जो जाता है स्वाभाविक। लेकिन यहाँ जो मैंने सूत्र दिया था न्यायदर्शन का भाष्यकार ने उसमें तो कहा है—'इस जन्म में जो कर्म करता है उसकी फल प्राप्ति जो है वो अगले जन्म में होती है। "अग्रे जन्मनि" का अर्थ मोक्ष नहीं है यहाँ। अब इस पर फिर विचार कीजिए। अब कहते हैं, आप कहते हैं सर्वत्र मिलते हैं स्वामी जी कहते हैं। मैं भी तो कहता हूँ। मैंने कब इन्कार किया इसका। मैं कहता हूँ जैसे रोटी खाई, दान किया उसका फल मिला। किसको मिला? जिसके मुकद्दर में दानदाता से मिलने का अधिकार था, पात्र था। मैंने एक आदमी को भोजन दे दिया। माफ कीजिए या आपने मुझे दे दिया। तो मेरे भोग में सुख मिलना था, मेरी भूख को मिटाना था। आपने अपनी स्वतन्त्रता का सदुपयोग किया, आपने दान दे दिया। तो फल तो मुझे मिल गया जो कि मुझे इस जन्म में पूर्व जन्म का फल मिलना था। आप मुझे फल मिले। मुझे मिल गयी सौ रुपये की सहायता आपने कर दी। आपने जो सौ रुपये देकर दान का शुभ-कर्म किया है इसका फल आपको अगले जन्म में मिलेगा। स्वामी जी जो कहते हैं कि कर्म का फल इसी जन्म में मिलता है या उस जन्म में। आपने मुझे प्रसन्न किया तो मुझे इस जन्म में मिल रहा है फल। कौन सा? जिसे मेरे कर्म-फल में आ रहा था। मैं कहता हूँ कि आप कहते हैं जीवात्मा परतन्त्र हो जावेगा। अगर कोई दूसरे को मार दे······कर दे। मैं खुद कहता हूँ—

फल में निश्चित रूप से हम परतन्त्र हैं। कर्म करने में तो हम आजाद हैं और फल भोगने में हम परतन्त्र हैं इसको तो वैदिक सिद्धान्त मानता है। अब बार-बार आप यों कह देते हैं—"आयु निश्चित मानते हैं शास्त्री जी"। मैं तो नहीं मानता स्वामी जी। मैं तो बहुत देर से शुरू से कह रहा हूँ कि मैं कोई सामान्य आयु का स्तर नहीं मानता हूँ! नहीं मानता हूँ! नहीं मानता हूँ। तीन दफे कहता हूँ। अब के मुझे मत पूछियेगा। आपको बताना पड़ेगा कि वो घटाई-बढ़ाई का स्तर जीवन का कौन सा है सामान्य? जब तलक आप इसे नहीं बतायेंगे, फिर में कहूँगा कि बार-बार कह देते हैं। तो 'सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगा' ये सूत्र जब तक 'स्टैण्ड' कर रहा है खड़ा है तब तलक स्वामी जी! आप इसको छूना नहीं चाहते, चूँकि छूये और आप फँसे। फँस तो गये हैं मगर मुसीबत हुइ। ये छलाती का यो बिच्छू है इसे छुआ तो काटेगा यो! यो काट लेगा कहीं पर रखते ही हाथ। दोनों प्रश्न ऐसे हैं जो शुरू से किये हुए हैं कि न तो 'स्टैण्डर्ड आफ इज' बतायेंगे, सामान्य जिससे कि घटना-बढ़ना मान ले। जब आधार ही आपका नहीं तो बिना बुनियाद की दीवार रेत की काहे खड़ा करना चाहते हो ब्रह्मचारी जी। मकान में अब तलक वैसे ही रहे हो बने बनाये में। बनाने में इसकी बुनियाद पहले चाहती है तब मकान पर ईंट रक्खी जाती है। ये सब चीजें हमारे तजुर्बे में आई हुई हैं। अभी तक आपके तजुर्बे में नही आई हैं। इसलिए पहले आधार ढूंढो जिस पर आप खड़े होते हो। समय आपको बाकी······।

श्री ब्रह्मचारी वेदव्रत जी मीमांसक —

जैसाकि शास्त्री जी ने यह कहा कि मैं निश्चित आयु नहीं मानता हूँ तो फिर प्रश्न वही हो जाता है कि शास्त्री जी की प्रतिज्ञा क्या है? ऐसा प्रतीत होता है कि शास्त्री जी प्रतिज्ञा को छोड़कर चले गए। और फिर उसके पश्चात् वो मैंने जो "**सर्वाणि पूर्वकर्माणि हि अन्ते जन्मनि विपच्यन्ते**।" फिर भी शास्त्री जी को कहना चाहता हूं मेरे पास न्यायदर्शन का वात्स्यायनभाष्य रखा हुआ है और शास्त्री जी चाहें तो फिर भी इसको देख सकते हैं। इसमें '**अग्रिमजन्मनि**' कही भी शब्द नहीं है। शास्त्री जी प्रतिपादन कर जाते हैं—"**अग्रिमे जन्मनि**' के अनुसार। देख लेना और यहाँ पर क्या लिखते हैं वात्स्यायन "**सर्वाणि पूर्वकर्माणि हि अन्ते विपच्यन्ते**"। अर्थात् "**पूर्वकर्माणि अन्ते जन्मनि**" का क्या अभिप्राय है? जो अब जीवात्मा मुक्ति को प्राप्त करने वाला है। इस शरीर के छूटने के पश्चात् मुक्ति मिलने वाली है वह इन जन्मों की अपेक्षा अन्तिम जन्म है। और उसमें उस समय उसके जो शेष कर्म हैं उनका फल उसमें भोग लेता है उनका विपाक हो जाता है यहाँ पर यह कहा है। और शास्त्री जी इसको यह बतला देवें कि "**अग्रिमे**" शब्द कहाँ पर है। यहाँ पर "**अग्रिमे**" शब्द नहीं है। और अन्तिम शब्द है अन्तिम किसको कहेंगे? इसका अन्य अर्थ नहीं हो सकता।

हाँ! फिर इसके साथ इस जन्म में कर्मों का फल मिलता है। इसके विषय में मैंने अनेक प्रमाण दिये— "**क्लेशमूलः कर्माशयो दृष्टादृष्टजन्मवेदनीयः**" यह साक्षात् पतञ्जलि का सूत्र योग दर्शन २-१२ में है। इसमें कहा जा रहा है—"**दृष्टजन्मनि अदृष्टजन्मनि च वेदनीयः**"। अर्थात् इस जन्म में भी कर्मों का फल मिलता है और अगले जन्मों में भी। जैसे कि मैंने कहा था—"**यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते। तया माम् अद्य मेधया अग्ने मेधाविनं कुरु स्वाहा।**" (यजुर्वेद ३२-१४)। तथा—हे ईश्वर दयानिधे! **भवत्कृपया अनेन जपोपासनादिकर्मणा धर्मार्थकाममोक्षाणां सद्यः**" अर्थात् समाने दिवि इसी दिन आज ही मेरे कर्मों का फल मुझे मिले। इसका अभिप्राय यह है कि कर्मों का फल इस जन्म में भी मिल सकता है, इस जन्म में भी मिलता है और अगले जन्म में तो मिलता ही है।

और फिर "**सति मूले**" मैंने जैसा कहा था ना कि बस एक ही शास्त्री जी के पास शस्त्र रह गया है और

वेदादि शास्त्र जो कि हजारों मन्त्रों से परिपूर्ण हैं और अनेक शास्त्र हैं स्वामी दयानन्द जी के अनेक ग्रन्थ हैं। इन ग्रन्थों में से शास्त्री जी को कोई प्रमाण न मिला हो तो अब भी शास्त्री जी ढूँढ लें। एक ही सूत्र से शास्त्री जी ऐसा सोच रहे हैं कि मैं तो सम्पूर्ण युद्ध-क्षेत्र में इस एक ही अस्त्र से युद्ध करूँगा। (इसी बीच कुछ मनचले युवकों की ताली पीटने की आवाज आती है।) वास्तव में बात ऐसी है नहीं। शास्त्री जी को कोई वेद में प्रमाण हो तो वो देने चाहिये। और शास्त्रों में प्रमाण हों तो आयु को घटाने बढ़ाने के खण्डन विषय में प्रमाण देने चाहिए। और "क्लेशमूलः कर्माशयो दृष्टादृष्ट" ये "सति मूलेतद्विपाको जात्यायुर्भोगाः" फिर भी मैं यह पूछ रहा हूँ शास्त्री जी यह बतलाने का प्रयत्न करें इसमें मनुष्य के जीवन की अवधि कर्मों के आधार पर उसको निश्चित अवधि मिली हुई है इसको कोई आगे पीछे सरका नहीं सकता। ऐसा कहाँ पर लिखा हुआ है? अब भी बतलाने का प्रयत्न करें। और मैंने जो वेद के प्रमाण दिये हैं उनके विषय में शास्त्री जी फिर उत्तर देने का प्रयत्न करें। उन सभी मन्त्रों को मैंने वैसे ही नहीं मेरे पास समय व्यर्थ है इसलिए मैंने पढ़ दिया है ऐसा नहीं। स्वामी जी ने भाष्य किया है महर्षि दयानन्द जी ने। और वो वेद-मन्त्र हैं उसका क्या अर्थ होगा जिसमें आयु को बढ़ाने के लिए प्रार्थना की गई है और घटने से बचाने के लिये प्रार्थना की गई है।······(अभी जो ताली की आवाज आई थी उसके विषय में अध्यक्ष महोदय स्वामी ओमानन्द जी ने व्यवस्था दी मेरी प्रार्थना है कोई सज्जन हथेली आदि न पीटे।)······और "अन्ते जन्मनि" का अर्थ करते हुए शास्त्री जी प्रसंगान्तर चले गए। शास्त्री जी से मैं अनुरोध करूँगा कि अपने प्रसंग पर ही हम रहें जिससे कि हम किसी निश्चित सिद्धान्त का निर्णय कर सकें।······

श्री पण्डित ओम प्रकाश जी शास्त्री विद्याभास्कर—

न्यायदर्शन "प्रेत्य भावादनन्तरं फलम् तस्मिन्" वात्स्यायन भाष्य को देखिये—वो लिखते हैं कि मरने के बाद ही जो कर्मों का फल है वो मरने के बाद ही जीव को प्राप्त होता है। "प्रेत्य-भावादनन्तरं फलं तस्मिन्" उस जीव को कर्मों के फल इस जन्म के होते हैं वो कब मिलते हैं? कि "प्रेत्य-भावादनन्तरं" मरने के बाद प्राप्त होते हैं। "सद्यः कालान्तरे च फलनिष्पत्तेः संशयः" (न्याय दर्शन ४-१-४४) जब एकदम कर्म के किये हुए का फल तुरन्त नहीं मिल सकता, मिल सकता हो इसमें संशय है। आगे—"न सद्यः कालान्तरोपभोग्यत्वात्। (न्यायदर्शन ४-१-४५) क्योंकि जीवात्मा के जितने भी कर्म हैं वो अगले जन्म में फल देने के लायक बनते हैं जैसे कि कर्म एक दफे किये हुए जैसे कि मैंने उदाहरण दिया था। बीज पहले नष्ट हो जाता है फिर उसमें अंकुर उपजता है। तो पहले जो है कर्म करता है मृत्यु प्राप्त कर लेता है तो अगले जन्म में उसका फल प्राप्त होता है। यही न्यायदर्शन में वात्स्यायन भाष्य कहता है इस सूत्र पर—"न सद्यः कालन्तरोपभोग्यत्वात्" एकदम किसी के कर्म का फल तुरन्त नहीं मिलता है। अब कहते हैं जैसे खाना पकाया। खाना पकाने की जो क्रिया है जरा ध्यान दीजियेगा इस बात पर—मैंने एक आदमी से पूछा—खाना पक रहा है। तो "पक रहा" क्रिया कब तलक चलेगी जब तलक कि पक करके तैयार न हो जाये। जब तक क्रिया की प्रारम्भता नहीं हुई, कि जी! बनेगा भई! भोजन बन गया है कि नहीं? अभी बनेगा। तो अब बनेगा बाद में और कहा कि बन रहा है तो पता चला कि अभी क्रिया चल रही है फल नहीं आया।

जब खाना बन चुका तो हमने भूतकाल का प्रयोग किया कि बन गया। तो क्रिया जो है वो तब तलक चलती रही जब तलक कि फल की समाप्ति न हो। विपाक किसे कहते हैं? वो भोजन का जो विपाक है वो तब है जब क्रिया पकाने की पूरी समाप्त हो जाए। फल पर जाकर समाप्त होती है विपाक पर। ऐसे ही किये हुए कर्म का वो जो आप उसको कहते हैं न मिलता है सद्यः कहने का मतलब है कि जब तलक फल पर वो क्रिया समाप्त नहीं हो

जाती तब तलक वो क्रिया चल रही है। अभी कर्म का फल पूरा नहीं मिला है। तो जब तलक कि जीवात्मा को कर्म का फल पूरा नहीं मिल जाता तब तलक हम समझते हैं उन कर्मों का फल अभी समाप्त नहीं हुआ। "सद्यः" का अर्थ है कि उन कर्मों का फल मिलेगा जरूर, जरूर मिलेगा। "सद्यः" का मतलब यह तो नही कि आपने कहा कि जो मुझे मोक्ष अभी मिल जाए तो मोक्ष में तो मरना पड़ेगा। मोक्ष में "**सद्यः**······**दयानिधे ! भवत्कृपया अनेन जपोपासनादिकर्मणा धर्मार्थकाममोक्षाणां सद्यः सिद्धिर्भवेन्नः।**" इसका मतलब यह है कि आप अभी मरना चाह रहे हैं; जल्दी से मोक्ष मिल जाए। क्योंकि बिना मरे तो मोक्ष नहीं मिलता। तो "**सद्यः**" का मतलब "ऐटवन्स" मरजाना तो नहीं है। "**सद्यः**" का मतलब है कि जितनी जल्दी से जल्दी में आहिस्ता-आहिस्ता घूमता हुआ मैं पहुँचूं मैं जल्दी से मोक्ष का अधिकारी बन जाऊं। "**सद्यः**" का मतलब है कि आप सिफारिश करने को बैठे हुए हैं कि भगवान् जी ! मुझे मारो और जल्दी से मैं प्रार्थना करने बैठा हूँ मुझे मोक्ष में पहुंचा दो। "**सद्यः**" का मतलब 'ऐटवन्स' नहीं है। बल्कि जितनी जल्दी मेरे कर्मों का फल मुझे मिले और मैं दुःख-कर्मों से छूटूं और मोक्ष को प्राप्त करूँ। यह है वहाँ उसका अर्थ।

अब आप कहते हैं "**अग्रे-अग्रे जन्मनि**' तो है उसका सीधा अर्थ है तो मैंने आपके······का भी जवाब दे दिया। सर्वत्र मिलते हैं उसको मैं पहले······अब आप बार बार यूँ कहते हैं कि मुझे बड़ी मुश्किल ये है कि मैं बार-बार शुरू से यूँ कह रहा हूँ कि मैं कोई एक सामान्य आयु का पैमाना नहीं मानता हूं। प्रत्येक जीव के कर्म अलग-अलग हैं। और वो मुझे भी पता नहीं अपने कर्मों का फल कितनी आयु में ले करके आया हूं। क्योंकि मैं तो कर्मफल भोगने में परतन्त्र हूँ। मुझे तो इस शरीर में कैसे आया मैं बार-बार हूँ मैं इस शरीर में कैसे आया हूँ ? कैसे रह रहा हूँ ? कब निकलूंगा ? कैसे निकलूंगा ? कहाँ निकलूंगा ? मुझे पता ही नहीं इसका। तो मैं जब इस मामले में स्वतन्त्र ही नहीं हूँ तो पता चला कि इन तीनों चीजों में मैं परतन्त्र हूँ। न तो मैं इस शरीर से निकलने में आजाद, न रहने में आजाद। मुझे एक आदमी मिला अभी एक दफे कि मैं दो दफे कोशिश कर चुका हूँ जहर खाकर मैं नहीं मरा। नहीं मरा तो उसके भोग समाप्ति में नहीं थे। तो न तो मैं मरने में आजाद न रहने का मुझे पता; न जाने का पता; ये तीनों चीजें जो हैं ये परमेश्वर की न्यायव्यवस्था से चलती हैं। और फल में मुझे प्राप्त होती हैं। जीवात्मा फल में परतन्त्र है। जब फल में परतन्त्र है और "**सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगाः।**"

यह फिर वही आ गया मैं ये तीनों चीजें फल में प्राप्त होती हैं और फल में जीवात्मा परतन्त्र है स्वामी जी कहते हैं। तो आप कर्म करके फल को कैसे बदल सकते हैं ? जो परमेश्वर ने दण्ड-व्यवस्था कायम कर दी उसको आप बदल नहीं सकते। आप कहेंगे कि तो बीमारी में दवाई कैसे खा लूं ? अगर आपको दवाई से फायदा होना होगा आपके दुःख नहीं होगा तो दवाई आपको फायदा करेगी। दुःख की परिसमाप्ति में आपने निमित्त पैदा कर दिया, क्रियमाण कर्म किया। और अगर आपको दुःख भोगना है तो दवाई मिलेगी नहीं। एक बार मेरे बड़ी जोर का लखनऊ के अन्दर पेट में दर्द हुआ। चूर्ण मेरे कण्डी में रक्खा है। और मैं ढूंढूं बार-बार कण्डी में हाथ ही ना आवे। सारी रात तड़पता रहा और सुबह को चलना चाहूं कि कण्डी में सामने ही चूर्ण की शीशी पड़ी हुई है। सारी रात मुझे चूर्ण नहीं मिला। मैं समझ गया कि हे प्रभु ! तूने मुझे किसी कर्म का फल देना था। मैं सारी बुद्धि आँखें मेरी काम नहीं कर रहीं, मैं हाथ मारता हूं वो चीज नहीं मयस्सर हो रही। मेरे जन्म के कर्म में दुःख था फल में। मैं उसमें आजाद नहीं था। तो "**सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगाः**" जिन तीन चीजों में आप परतन्त्र हैं निश्चित परतन्त्र हैं उसमें कोई बदल नहीं कर सकते। (**टन् टन् टन्**······)।

श्री ब्रह्मचारी वेदव्रत जी मीमांसक—

मैंने जैसा कहा था कि मनुष्य अपने कर्मों के आधार पर इस जन्म में अपनी आयु को घटा-बढ़ा सकता है। उसमें फिर शास्त्री जी ने "**सद्यः**" का अर्थ इसी समय नहीं ऐसा कहा है। और यह मैं स्वामी जी का सत्यार्थ-प्रकाश का सातवें समुल्लास में जो मन्त्र का अर्थ किया है '**यां मेधां**' उसके मन्त्र के अर्थ को पढ़कर सुना देता हूँ—"**हे अग्ने! अर्थात् प्रकाशस्वरूप परमेश्वर आपकी कृपा से जिस बुद्धि की उपासना विद्वान्, ज्ञानी और योगी लोग करते हैं उसी बुद्धि से युक्त हमको इसी वर्तमान समय में बुद्धिमान् आप कीजिए**"। वर्तमान समय में अर्थात् जिस समय प्रार्थना कर रहा है उस समय उसी क्षण। और फिर आगे लिखते हैं—"**हे ईश्वर दयानिधे! भवत्कृपया अनेन जपोपासनादि-कर्मणा धर्मार्थकाममोक्षाणां सद्यः**"—इसका अर्थ करते हुए लिखते हैं "**और मोक्ष में जो सब दुःखों से छूटकर आनन्द में रहना है इन चार पदार्थों की सिद्धि हमको शीघ्र प्राप्त हो**"। अब इसके साथ "**सर्वाणि कर्माणि अन्ते जन्मनि विपच्यन्ते**" फिर वही प्रश्न आ गया कि "**सर्वाणि कर्माणि अन्ते जन्मनि विपच्यन्ते**"।

यहाँ पर अन्तिम जन्म लिखा है। अब शास्त्री जी बतला दें कि इस समय हमारा जो यह जन्म है इसके पश्चात् जो जन्म मिलने वाला है क्या उसको अन्तिम कह सकते हैं? कोई भी बुद्धिमान् कह सकता है। अन्तिम उसको कहते हैं जिसके परे कुछ न हो। अर्थात् फिर आगे जन्म न हो और उसके पश्चात् तो उस शरीर के छूटने के पश्चात् तो मुक्ति मिल सकती है। उस जन्म का वर्णन है। यह नहीं कि वर्तमान से अगले जन्म में फल मिले उसका अगले ऐसा कहीं भी नहीं। और इसके पश्चात्। और शास्त्री जी ने जो बीज का जब तक बीज नहीं गलता तब तक फल नहीं देता ऐसा जो कहा है यह विषम दृष्टान्त है। क्योंकि बीज के लिए उपादान कारण की आवश्यकता होती है, बीज उपादान कारण है। उसका कार्य फल है। इसी प्रकार से कार्य-कारण का सम्बन्ध यहाँ पर नहीं है, इसलिए विषम दृष्टान्त है। और आगे शास्त्री जी ने यह जो बात कही है कि मरने से मोक्ष मिलता है यह किसी शास्त्र का प्रमाण हो, किसी उपनिषद् का प्रमाण हो कि मरने से मोक्ष मिलता है तो मेरा जहाँ तक विचार है मैं ऐसा कह तो नहीं सकूँगा कि यहाँ पर जितने भी लोग हैं वो सारे के सारे अभी मरना चाहेंगे, जो सभा-स्थल पर बैठे हैं। मरने से मोक्ष किसी को नहीं मिलता। मरने से मोक्ष मिलता है मैंने कहीं नहीं कहा। मरने से मोक्ष नहीं मिलता। मोक्ष तो जैसा शास्त्रों में लिखा है उसी प्रकार क्लेशों के कट जाने से मिलता है। और फिर इसके पश्चात् शास्त्री जी ने वही विषम दृष्टान्त फिर दिया कि क्या? विष खाने से एक नहीं मरा। और विष खाने से यदि सभी न मरते तो हम मान लेते, विष खाने से मर भी जाते हैं नहीं भी मरते हैं। न खाने से मर जाते हैं और मर भी जाते हैं।

इसीलिए अनैकान्तिक दृष्टान्त है और हेत्वाभास है। मानते क्या हैं? कि विष खाने से नहीं मरा। यह किस कारण से? भाग्य से भाग्य को हेतु देकर उसी को सिद्ध करना चाहते हैं यह अनैकान्तिक दोष है। इसके साथ और आयुर्वेद व्यर्थ जाता। आयुर्वेद में आयु को बढ़ाने के लिए मृत्यु से बचने के लिये अनेक प्रकार की चिकित्साओं का वर्णन है। अनेक प्रकार के रोगों को मृत्यु से बचने के लिए चिकित्सा करने का विधान है और वहाँ पर रसायन के आधार पर जीवन को बढ़ाने के लिए और आयु को बढ़ाने के लिए मृत्यु से बचाने के लिए भी विधान है। इसीलिए और जीव कर्मफल भोगने में परतन्त्र है। यदि वह आयु को घटाने-बढ़ाने लग जाये फिर वो कर्मफल में स्वतन्त्र हो जायेगा। यह जो विचार है कि यह ठीक नहीं। जीव तो कर्म करने में स्वतन्त्र है और फल भोगने में परतन्त्र है। इसका अर्थ यह नहीं है कि वो कर्म करने में परतन्त्र हो जाए। कर्म करने में स्वतन्त्र है। और जब जैसा कर्म कर चुकता है वह चाहे उचित करे या अनुचित करे उसका उसके करने के पश्चात् जिस समय कर्म कर चुकता है उसके पश्चात् परमात्मा फल देता है। इसीलिए कर्म-सिद्धांत में कोई दोष नहीं आ सकता।......

मैंने यह कहा था कि इस जन्म के कर्मों का फल इस जन्म में भी मिलता है। यह सूत्र मैंने उपस्थित किया था—"**दृष्टादृष्टजन्मवेदनीयः**"। अब इसको शास्त्री जी अच्छे प्रकार से विचार करके उत्तर देवें। इस जन्म के किये हुए कर्मों का फल इसमें मिलने का यह प्रतिपादन करता है कि नहीं करता है? और दूसरा—"**सद्यः कालान्तरे फल निष्पत्तेः संशयः**" वहाँ पर गौतम ऋषि यह पूछ रहे हैं कि हमें अग्निहोत्र के फल में सन्देह है और अन्य कर्मों के विषय में तो हमें पता है क्योंकि "**सद्यः**" अर्थात् इस जन्म में भी कुछ कर्म फल देते हैं। फिर उसके पश्चात् कालान्तरे= कुछ समय पश्चात् फल देते हैं। किन्तु अग्निहोत्र करने से स्वर्ग का जो फल है, वह हमारे देखने में नहीं आ रहा। इसीलिए हमें उसी में सन्देह है। और इसी विषय को तो हम मानते हैं "**सद्यः कालान्तरे फलनिष्पत्तेः' सद्यः**" और कालान्तर में फल मिलता है इसमें हमें कोई सन्देह नहीं। और महर्षिदयानन्द जी ने लिखा है—**कि इस जन्म के** (टन् टन् टन्···) "हाँ···परत्रादात्र एव च। **तो इस प्रकार परजन्म में भी कर्मों का फल मिलता है**"। मिलता है तो आयु को घटा-बढ़ा सकते हैं।

श्री पण्डित ओमप्रकाश जी शास्त्री विद्याभास्कर—

उपस्थित महानुभावो! मैंने जिस सूत्र का वर्णन किया था यह मेरे पास भाष्य है—"**न सद्यः कालान्तरोपभोग्यत्वात् स्वर्गफलं श्रूयते**"। स्वर्ग जो है कर्म का फल है सुना जाता है। "**सद्यः भिन्नस्मिन् देहे भेदात् उत्पद्यते**।" वो उस देह को छोड़ने के बाद उसी देह से ही प्राप्त होता है। "**न सद्यः ग्रामादिकानाम् आरम्भफलमिति**।" यह कर्म का जो फल है वह दूसरे ही जन्म में प्राप्त होता है। यह भाष्यकार वात्स्यायन मुनि लिखते हैं भाष्य में। दूसरा जो मैंने सूत्र प्रस्तुत किये थे—'**न' कर्मणा अन्यधर्मत्वादति प्रसक्तेश्च**" किसी दूसरे के किये कर्म का फल दूसरे को प्राप्त नहीं होता है! यानी मुझे जो दुःख प्राप्त होते हैं। मेरे ही कर्म के फल से प्राप्त होते हैं। मैं करूँ कर्म और खावे भीम और पचे दुर्योधन के यह कैसे हो सकता है? खाऊँ तो मैं और पेट आपका भर जाये यह नहीं हो सकता। जो कर्म करेगा उसी को उसका फल मिलेगा। अन्य के किये कर्म के द्वारा कोई किसी को न दुःख दे सकता है न सुख दे सकता है। मुझे भी सुख तब प्राप्त होता है किसी से किए हुए जब मेरे भोग में होता है। नहीं तो नहीं प्राप्त होता। अब रह गई एक चीज···कि "**सती मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगाः**" में क्यों स्वामी जी! आयु तो आप घटा-बढ़ा लेंगे, क्यों जी! फिर जाति ने क्या द्वेष किया है? जाति ने क्या दोष किया है? फिर जाति भी घट-बढ़ जायेगी। एक मेंढक जो है सूअर बन जावेगा। सूअर मेंढक बन जावेगा। आदमी गधा बन जावेगा, गधा आदमी बन जाएगा। क्योंकि उसमें घटत-बढ़त हो गई। कभी उन्नति में जायेगा, तो कभी अवनति में जायेगा। आप अगर आयु को 'चैंजेबल' मानते हैं परिवर्तन मानते हैं, तो आपको जाति को भी परिवर्तनशील मानना पड़ेगा और फिर भोग को भी परिवर्तनशील मानना पड़ेगा। तीनों चीजें परिवर्तनीय हो जायेंगी। और वो मुतफय्यर हो जायेंगी। परिवर्तनशील होंगी। तो आप क्या आयु के साथ-साथ क्या जाति को भी बदलना मानते हैं क्या? कि मनुष्य के जन्म में आवे और फिर वो चाहे तो मुझे हाथी जैसी ताकत चाहिए सूंड लम्बी नाक चाहिए तो मैं हाथी बन जाऊँ, क्या यह सम्भव है? अगर परमेश्वर के दिए हुए कर्मफल की तीन चीजों में कोई परिवर्तन नहीं है, मेरा तो कहना है परिवर्तन नहीं होता है। आयु का स्तर फिर मैं पूछ रहा हूँ, आप कौन से पैमाने से मापकर कहते हैं घटी और बढ़ी। यह मैं शुरू से पूछ रहा हूँ, जब आठ बजे शुरू किया था शास्त्रार्थ। आप आयु का पैमाना बताइये जिससे नापकर आप घटना-बढ़ना कहते हैं। रह गई वो चीज—"**आयुः प्राणं प्रजां पशुं कीर्त्तिम्**॥" (अथर्ववेद १९-७१-१)

और "**सद्यः**" का अर्थ मैंने बताया है। मैंने यह नहीं कहा था आप सब मर जाइये। यह मैंने नहीं कहा था। मैंने कहा था "**सद्यः**" का अर्थ हुआ 'ऐटवन्स' तो कोई मोक्ष में जाना चाहता है जी अच्छा मैं चला जाऊँगा मैं। अरे जो

स्वर्ग के लिए हजारों रुपया खर्च करके तीर्थ यात्रा करते हैं उसकी छाती पर चक्कू रखकर कहो कि तुम्हें स्वर्ग में पहुँचाता हूँ, क्योंकि मरने के बाद स्वर्गवासी सारे ही हो जाते हैं। स्वर्गवास तो हो ही जाता है। लेकिन कोई मरना नहीं चाहता। ऐसे मोक्ष वगैरा को "सद्य" का मतलब है कि जल्दी से जल्दी मैं मोक्ष को प्राप्त होऊँ, आवागमन के चक्र से छूटूं। इसी 'सैन्स' में "सद्यः" का यह काम जल्दी से जल्दी कर दीजिये। इसका मतलब यह थोड़े ही है कि आज आपने 'एप्लीकेशन' दी और अभी आपके सब काम हो जावें। वो चलेगा कायदे के साथ व्यवस्था के मुताबिक जो नियमानुसार व्यवस्था है उसके मुताबिक चलेगा। आप तो लिखेंगे कृपा करके मेरे प्रार्थना-पत्र को जल्दी से जल्दी स्वीकार करके इस काम को यथा-शीघ्र करा दीजिये। तो यही प्रार्थना में आप कहते हैं—सद्यः जल्दी से जल्दी मेरी प्रार्थना स्वीकार हो जाये। इसका सद्यः का मतलब है कि इसी वक्त हो जावे? यह नहीं है। मैं जो बीज बो रहा हूं इसका फल मुझे जल्दी से जल्दी मिले। और कौन सी चीज चाहता हूँ? उपासनादि कर्म करने से यह मोक्षादि चाहता हूँ यह मुझे जल्दी से जल्दी मिले। अर्थात् मैं आवागमन के चक्र से जल्दी से जल्दी छूटूं। यही भावना है। सद्यः का मतलब यह नहीं कि अभी मिल जाये वरना ऐसा हो सकता है कि व्यवस्था ही मुश्किल हो जाये।

आप बार-बार लिखते हैं कि आप आज ही ला दीजिये मुझे सीमेण्ट का कट्टा। वो कहते हैं मिलेगा तब जब बाकायदा सब कागजों में घूम-घाम कर आयेगा। ऐसे ही जब व्यवस्था परमेश्वर की न्याय की है इसके मुताबिक—माँगने में तो आप स्वतन्त्र हैं आप चाहें कुछ भी माँग लें, लेकिन देने वाला भी तो स्वतन्त्र है आपके कर्म के फल देने में। आप जो कुछ माँगें आपको मिलता जाए यह कैसे हो सकता है? अगर आपके कर्म अच्छे नहीं हैं और आप करके यूं कहवें कि मुझे लखपति बना दो और मुझे मोक्ष प्रदान कर दो तो सभी कह सकते हैं धन दो हमें लेकिन मिलेगा तो उसको जिसके कर्म अच्छे होंगे। उसको फल मिलेगा अगले जन्म में। मोक्ष का सुख भी मरने के बाद। स्वर्ग का सुख जो भोग रहे हो पिछले जन्म के मुताबिक और अब जो कर्म करोगे उसके मुताबिक अगले जन्म में नरक और स्वर्ग दोनों मिलेगा। आप यूँ चाहो कि—मैंने कर्म तो पहले जन्म में बुरे किए हुए थे और नरक भोग रहा हूँ। यह मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ मुझे स्वर्ग दे दो। क्या आपको स्वर्ग मिल जाएगा? आपके भोग बदल जायेंगे? न तो विपाक बदलता है, मेरा कहना है। और न आयु बदलती है और न जाति बदलती है। और अगर आप आयु को बदलना मान लेंगे तो आपको विपाक भी बदलना मानना पड़ेगा। और आपको जाति भी बदलनी माननी पड़ेगी। और फिर परमेश्वर के न्याय में बड़ी गड़बड़ रहेगी। परमेश्वर ने तो कहा कि मैंने इसको मनुष्य की योनि बनाई इसने जाति बदल ली। तब परमेश्वर की व्यवस्था टूट गई। क्या परमेश्वर के ज्ञान में नही था कि यह अपनी बदल लेगा योनि को, जाति को बदल लेगा। (टन्.........टन्.........टन्) विपाक को बदल लेगा तो सजा देने का फायदा क्या हुआ?

श्री ब्रह्मचारी वेदव्रतजी मीमांसक—

अभी तक मैंने समझा था शास्त्री जी अकेले हैं अब तो दुकेले भी हो गए। "सद्यः कालान्तरे"—यह भी सूत्र मिल गया शास्त्री जी को। इसके साथ मैंने यह कहा कि—"सद्यः कालान्तरे फलनिष्पत्तेः" उसमें "सद्यः" और कालान्तर में फल निष्पत्ति को माना गया है कि इस जन्म में भी कर्मों का फल मिलता है। और इसके लिए मैंने एक सूत्र बतलाया था—"दृष्टादृष्टजन्मवेदनीयः"। यहाँ पर सूत्र में पतंजलि स्पष्ट कह रहे हैं कि "दृष्टादृष्टजन्मवेदनीयः"। (योगदर्शन २-१२) दृष्टजन्म में अदृष्टजन्म में वेदनीय है। अर्थात् इस जन्म में भी कर्मों का फल मिलता है इसको बाधित नहीं किया जा सकता। इसको असत्य नहीं किया जा सकता। यदि इस जन्म के कर्मों का फल इस जन्म में न मिले तो भोजन भी कोई न करे। क्योंकि पिछले जन्म के आधार पर तो हम बिना भोजन जीवित रहेंगे ही। और विद्या भी न पढ़े। क्योंकि विद्या पढ़ने से कोई लाभ नहीं होगा। पिछले जन्म में जो कुछ होना है होगा। यह इस प्रकार का व्यवहार करेंगे तो संसार में एक दिन भी व्यवहार नहीं चल सकता। इससे क्या सिद्ध होता है कि इस जन्म में किए

कर्मों का भी फल इस जन्म में भी मिलता है। और दूसरा शास्त्री जी ने एक प्रश्न उठाया, नया प्रश्न—**"अन्य के कर्म का फल अन्य को नहीं मिलता।"**

अब ! फल का अर्थ क्या मानते हैं ? विचित्र बात है। प्रत्येक क्रिया के परिणाम को फल नहीं कहा जा सकता। और यह भी देखा जाता है कि अन्य के किये हुए कर्म का प्रभाव अन्य के किये हुए कर्म का फल हमको मिलता हो। यदि अन्य के किए हुए कर्म का फल अन्य को न मिले, तो संसार का व्यवहार नहीं चलेगा एक व्यक्ति दुष्ट काम करता है उसका परिणाम अन्यों को भोगना पड़ता है किन्तु इतनी बात है कि परमात्मा कर्म का फल उसी को देता है जो कर्म करता है। और जीव कर्म करने में स्वतन्त्र है। इसलिये दूसरों को सुख-दुःख भी दे सकता है। यदि दूसरों को सुख-दुःख न दे सकते होते तो हमारा शान्तिपाठ के अन्त में "ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः" इसका क्या अर्थ है ? हे परमात्मा ! आध्यात्मिक आधिदैविक और आधिभौतिक इन तीन दुःखों से हमको मुक्त कर दीजिये। हम इन तीन दुःखों से दूर हो जायें। क्या है जी ! हमको पिछले जन्म के पाप-पुण्य के कर्म के अनुसार दुःख तो मिलेंगे ही फिर प्रार्थना करना व्यर्थ। ऐसा नहीं। प्रार्थना करने का अभिप्राय यह है कि दुख दूर हो सकते हैं और इसी प्रकार प्रार्थना करनी चाहिए। आप्तपुरुषों ने माना है महर्षि-दयानन्द जी ने यही माना है। इस प्रकार परमात्मा से प्रार्थना करे। तीन दुःखों से छुड़ा दे हम दुःखों से मुक्त हो जांय। इसलिए प्रार्थना करनी चाहिए। और अन्य के किये हुए कर्मों का फल अन्य को भी मिलता है इसलिए परमात्मा ने हमें साधन दिये हैं कि हम उनसे बच जायें और उनसे बचकर आगे के लिए हम प्रयत्न कर सकें। यदि हम पिछले जन्म के अनुसार जो कुछ हो जाए वो मिलने लग जाये तो हम यहाँ पर बैठे-बैठे ही चक्रवर्ती राजा बन जाएँ। तो आज तो ऐसा कोई भी नहीं बन सकता।

इसलिए पिछले जन्म के कर्मानुसार ही मिलता है ऐसी बात नहीं इस जन्म के कर्मों के अनुसार भी मिलता है। और शास्त्री जी ने जो यह कहा है कि "जात्यायुर्भोगा" और इसके जाति का अर्थ किया है शास्त्री जी ने जाति जैसे गाय है, घोड़ा है। अब मुझे यह पता नहीं कि शास्त्री जी यह अर्थ कहाँ से ले आए ? यह व्यास-भाष्य का तो है नहीं। "जन्मायुर्भोगाः" महर्षि-व्यास ने इसका अर्थ किया है इसीलिए "जात्यायुर्भोगाः" का अर्थ यह घोड़ा, यह पशु गाय आदि यह नहीं है। और इसीलिए हम 'जात्यायुर्भोगाः" का यह प्रश्न उठाते हुए उन्होंने कहा है कि जाति यदि आयु में परिवर्तन होता हो तो आयु घट-बढ़ सकती हो तो जाति में भी हो जाए। हम तो कहते हैं कि आयु निश्चित नहीं है और यह वेद के आधार पर कहा जा सकता हैं और शास्त्री जी अब तक ऐसा प्रमाण दे देते या अब भी दे दें कि आयु निश्चित है तो हम इस बात के लिए विचार करते। मनुष्य की आयु की परिधि होती है परिणाम होता है, सीमा होती है, ऐसा हम कहते। वेद में लिखा है आप कह दीजिए—वेद अप्रमाण है तो फिर उस अवस्था में हम फिर विचार करेंगे। आप वेद के दिय हुए प्रमाण को तो काट नहीं सकते और आप युक्ति लड़ाते जा रहे हैं। इस युक्ति से कार्य नहीं चलेगा। यह अनुमान तभी प्रमाण होता है जबकि प्रत्यक्ष और आगम शब्द के अनुकूल जो अनुमान होता है वह प्रामाण्य होता वही न्याय होता है जो प्रत्यक्ष और आगम के प्रमाण के विरुद्ध तर्क होते हैं, अनुमान होते हैं, वात्स्यायन भाष्य के आधार पर वो अनुमान नहीं होता। (······टन् टन् टन्······)

श्री पण्डित ओम प्रकाश जी शास्त्री विद्याभास्कर—

अब एक बात आ गई है कि आया इसी जन्म में कर्म का फल मिलता है या आगे मिलता है। आपको याद होगा मैंने कहा था कि कुछ क्रियामाण कर्म ऐसे हैं जिनका फल इस जन्म में मिलता है। जैसे मैंने रोटी खाई तो मेरी भूख मिट गई। प्यास लगी मैंने अभी गिलास में पानी पिया प्यास मिट गई। यह क्रियमाण कर्म जो है यह तो यहीं समाप्त हो जाते हैं। लेकिन जो जिन कर्मों पर अगली मेरी जाति और मेरी आयु और मेरा विपाक फल जो है भाग

वो 'डिपेण्ड' करता है। "सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगाः" उसके फल में यह तीनों चीजें प्राप्त होती हैं उन कर्मों का फल इस जन्म में नहीं मिलता। आप कहते हैं कि अगर आप यह मानते हैं कि साहब ! दूसरों के किये हुए कर्म का फल हो जाता है तो एक आदमी ने चोरी की लेकिन उसे चोरी करने के बाद में पकड़ा ही नहीं गया और एक आदमी ऐसा हुआ कि उसने चोरी नहीं की विचारा वह पकड़ा गया। और एक ऐसा आदमी था जिसने चोरी की और पकड़ा गया। यह व्यवस्था जो हो रही है दण्ड की, यह किसके द्वारा हो रही है। आया कि एक आदमी ने चोरी की और उसे कर्म का फल तो मिला ही नहीं। मरते वक्त तक उसको कोई सजा नहीं हुई वह फरार रहा।············तो उसको तो-सजा मिली ही नहीं। और एक आदमी बिना चोरी किए पकड़ा गया। उसको जो सजा मिल गई तीन महीने की और छः महीने की और दुःख पा रहा है।

यह किस कर्म का फल मिल रहा है उसको ? जरा बताइये तो जब बेचारे ने चोरी ही नहीं की। इन दोनों में व्यवस्था किसकी काम कर रही है ? जाहिर है·········जिसने अब चोरी करी है लेकिन पकड़ा नहीं गया है उसका वो जो है बीज सुरक्षित हो गया। अगले जन्म में उसका फल भोगेगा। लेकिन जिसने इस जन्म में कोई चोरी नहीं करी उसको बेकसूर पुलिस ने पकड़कर जेलखाने में डाल दिया। तो कहा जाएगा············भाई ! अब तो नहीं करी लेकिन पहले जन्म में की होगी। एक मुल्ला जी नमाज पढ़ते हुए पकड़े गए। मुसलमान सारे मोहल्ले के चिल्ला-कर बोले···साहब ! यह तो बड़ा हुकुम बड़ी खुराफात हुई, नमाज पढ़ने वाला पकड़ा जा रहा है। देखो। मस्जिद में मुल्ला जी पकड़ लिए। उससे कहा थानेदार ने—बेवकूफ हो रहे हो। अरे ! नमाज पढ़ने वाले तो और भी हैं वह तो चोरी करके फरार हैं इसका वारंट निकला हुआ है मैंने तो उसको पकड़ा है। अब तो यह नमाज पढ़ रहा है लेकिन पकड़ा जा रहा है इसकी चोरी पर जो पहले की हुई थी। ठीक ऐसे ही जिस आदमी ने इस जन्म में चोरी की और गिरफ्तार नहीं हो सका वह बच गया है फिर सजा पाएगा और जिसने अब सजा पा रहा है बिना कर्म किये वह पहले जन्म की सजा पा रहा है। यही न्याय-व्यवस्था है परमात्मा की। अब मैंने जो प्रश्न किया था उसका कोई उत्तर नहीं आपके पास कि अगर आयु जदलने वाली है तो जाति भी बदली जाएगी और अगर जाति का अर्थ योनि-विशेष नहीं है तो कृपा करके बताइए यहाँ जाति का अर्थ क्या है ? क्या ये लुहार लौर चमार ये जातियाँ हैं ? जाति का मतलब है·········जन्मना जायते जातिः' जो 'अनचेंजेबल' अपरिवर्तनशील जो परिवर्तनशील नहीं है। जो जन्म से मरण पर्यन्त जो बनी रहे वो जाति। स्वामी जी के शब्द हैं·········जाति किसे कहते हैं ? जन्म से लेकर मरण पर्यन्त बनी रहे। बाल सफेद हो गए लेकिन मनुष्य से बदला नहीं हुआ कुछ भी हूँ मनुष्य ही।

किसी के बाल उड़ जाएँ खोपड़ी के तो मनुष्य तो है ना। जन्म से मरण पर्यन्त और चीजें 'चेंज' हो सकती हैं झुरी पड़ जाय, दांत टूट जायें, बहरा हो जाये। लेकिन जाति जन्म से मरण पर्यन्त बनी रहती है। वो योनि तीन प्रकार की होती है शास्त्रकार कहते हैं·········एक कर्म योनि, आदि सृष्टि में अमैथुनी-जगत् में मनुष्य पैदा एक मनुष्य-योनि में जीव आ गए हैं और जो मनुष्य-योनि में कर्मों की सजा भुगतने को जाते हैं भोगयोनियों में वो पशुपक्षी आदि·········। इन तीनों को ही जाति कहा जाता है। आपने यह कैसे कह दिया कि जाति के यह अर्थ नहीं अगर आयु परिवर्तनशील है तो क्या जाति भी परिवर्तनशील है ? और परमात्मा के दिए हुए फल में भी आप परिवर्तन कर सकते हैं ? अगर एक को भी परिवर्तनशील मानेंगे घटना-बढ़ना तो तीनों को परिवर्तनशील मानना पड़ेगा। और अगर दो परिवर्तनशील नहीं हैं आयु भी परिवर्तनशील नहीं होगी, यह निश्चित सिद्धान्त है। ····· सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगाः।" फिर वही ले आया हूँ मैं आपके सामने, अब आप इस पर सोचिए। और फिर अब बताइए कि वो कौन सा पैमाना है ? जिससे नापते हैं। मैं हर दफे याद दिला दूँगा आपको वो पैमाना कौन सा है ? जिससे घटना-बढ़ना नापते हैं ? मैं तो कोई आयु निश्चित मानता नहीं हूँ। (टन् टन् टन्·········) आप बताइए कौन सी है वा। (टन् टन् टन्·········)

श्री ब्रह्मचारी वेदव्रत जी मीमांसक—

जैसा कि शास्त्री जी ने कहा है कि हम पिछले जन्म के कारण से पिछले जन्म के कर्म के आधार पर हम जीवित रह सकते हैं। मैं यह पूछना चाहता हूँ कि यदि कोई भोजन नहीं करता, क्या पिछले जन्मों के कर्मों के आधार पर जीवित बना रहेगा ? कोई भी शास्त्रकार मानने को तैयार नहीं। "अन्नं वै प्राणिनां प्राणः" कहते हैं'''अन्न के आधार पर ही मनुष्य जीवित रह सकता है। यदि अन्न खाना बन्द कर दें, चाहे कैसे भी कर्म हों जीवित रह नहीं सकता।

इसलिए अन्नादि के कारण से शरीर को जीवित रखा जाता है। पिछले कर्म के होने पर भी केवल पिछले कर्मों के कारण ही जीवित रह सकता है यह लोक व्यवहार में कहीं भी नहीं देखा जाता है। और फिर अन्य के कर्मों का फल अन्यों को मिलता है ऐसा हम मान लें, ऐसा ना माने तो लोक-व्यवहार भी चल नहीं सकता। दूसरी बात प्रत्येक कर्म का फल नहीं मिलता। प्रत्येक चेष्टा का परिणाम जो है वह कर्म का फल नहीं होता। और अन्य के किए कर्म का फल अन्य को मिलता है यह लोक में जीवों के कर्मों का होता है परमात्मा की ओर से जो फल दिया जाता है वह कर्त्ता को ही दिया जाता है। किन्तु जीव स्वतन्त्र है। इसीलिए चाहे किसी भी प्रकार का कर्म कर सकता है। वह दूसरों को सुख और दुःख भी दे सकता है। मनुष्य का यही कर्त्तव्य है, सांख्यशास्त्र में सबसे पहला सूत्र महर्षि कपिल जी पढ़ते हैं—"अथ त्रिविधदुःखात्यन्तनिवृत्तिरत्यन्तपुरुषार्थः" (सांख्य दर्शन १-१)

अर्थात् मनुष्य को तीन प्रकार के दुःखों से छूटने के लिए अत्यन्त पुरुषार्थ करना चाहिए। तीन प्रकार के दुःख कौन से हैं ? तो कहना पड़ेगा कि आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक। तो हम दुखों से मनुष्य दुःखी हो जाता है। उनमें पशु-पक्षी प्राणियों से भी होता है। शत्रु आदि से भी होता है। उन दुःखों से छूटने के लिए मनुष्य को प्रयत्न करना पड़ता है। परमात्मा ने हाथ-पैर आदि इसीलिए दिये हैं। इसीलिए मनुष्य को दूसरों के द्वारा जो दुःख-सुख मिलते हैं, उनको दूर करने, उनसे उन दुःखों को दूर करने के लिए प्रयत्न करना पड़ेगा। करना पड़ता है। और दूसरी बात यदि दूसरे मनुष्य भी हमें सुख-दुःख न दे सकें तो संसार में व्यवहार न चलें। यदि माता हमारा उपकार करती है। पिता हमारा उपकार करता है। गुरु उपकार करता है। वैद्य उपकार करता है। राजा उपकार करता है। अनेक प्रकार के उपकार देखने में आते हैं। इसीलिए दूसरों के द्वारा उपकार भी होता है। और शास्त्र में विधान किया है—दान करें, परोपकार करें। स्वामी जी महाराज दाता के विषय में कहते हैं—जो अपने तन, मन, धन को दूसरों के उपकार के लिए अर्पित कर देते हैं वो दाता होते हैं। कहने का अभिप्राय यह है—मनुष्य दूसरों को सुख भी दे सकता है और दुःख भी दे सकता है। इसमें शास्त्र का एक सूत्र है—'अकर्तुरपि फलोपभोगो अन्नाद्यवत्।" (सांख्य दर्शन १-१०५)

जैसा कि एक मनुष्य किसी को दान दे सकता है तो उसको सुख हो गया और किसी का छीन लेता है तो उसको दुःख हो गया। किन्तु प्रत्येक परिणाम को कर्म का फल नहीं माना जाता। यदि प्रत्येक कर्म के परिणाम को कर्म का फल मान लें तो एक दोष यह आ जायेगा—एक व्यक्ति एक निरपराधी की हत्या करके दस लाख रुपये को छीनकर ले जाता है। भाग जाता है। यदि उसको कर्म का फल मान लें यह दोष आ जाएगा कि किसी की हत्या करने से दस लाख रुपया फल मिलता है। ऐसा मानना पड़ेगा। किन्तु प्रत्येक कर्म को फल नहीं कह सकते। और कर्म के फल को भोगने में जीवात्मा परतन्त्र है। यह हम भी मानते हैं। आप भी मानते हैं। किन्तु जीवात्मा फिर कुछ नया कर्म नहीं कर सकता। यदि परमात्मा के कर्मफल का यह अर्थ मान लिया जाए कि जीवात्मा कर्म करना ही छोड़ दे फिर तो वो कर्म करना क्या रहा ? जीवात्मा कुछ भी नहीं कर सकता। जीवात्मा कर्म करने में स्वतन्त्र है। वह चाहे जो कर

सकता है। किन्तु कर्म कर चुकने के पश्चात उसका फल भोगना पड़ता है। और शास्त्री जी ने जाति के विषय में कहते हुए कहा है। "जात्यायुर्भोगा:" का अर्थ मैंने कहा है—व्यास के भाष्य के आधार पर मैंने बतलाया है।

जाति का अर्थ महर्षि व्यास ने—"जन्म" लिखा है। वहाँ पर जाति का अर्थ घोड़ा, गधा नहीं लिखा। शास्त्री जी प्रसंगान्तर चले गए। करने लगे वो न्यायशास्त्र का जातिपरक। वह यहाँ पर नहीं, जाति का अभिप्राय यहाँ पर महर्षिव्यास ने जन्म ही लिखा है। और फिर तीन योनियों का प्रसंग ले आए, ये तीन योनियों का विचार करने का प्रश्न नहीं। अब आप यह बतलाइए कि वेद में लिखा है कि मनुष्य अपनी आयु को बढ़ावे तो किन कर्मों के आधार पर? वर्तमान कर्मों के आधार पर आयु को घटाना-बढ़ाना लिखा है। इसलिए शास्त्री जी वेद के विषय में प्रश्न करें कि वेद में आयु को बढ़ाने के लिए परमात्मा ने ऐसे मन्त्रों को क्यों रखा? शास्त्री जी के पास यदि कोई प्रमाण हो, निश्चित आयु हो जिसके विषय में शास्त्री जी चर्चा कर रहे हैं कोई निश्चित है और मेरा कहना है निश्चित नहीं है।

यदि निश्चित न हो मेरा पक्ष निश्चित है और शास्त्री जी का पक्ष यदि निश्चित न हो तो शास्त्रार्थ का विषय फिर निर्णय कर लें। इसलिए मैं फिर पूछना चाहता हूँ यदि मनुष्य की आयु को घंटे, मास, दिन, पल, घड़ी, सैकिण्ड आदि में कहीं बतलाया गया हो तो फिर उसका वेद प्रमाण दे दें। मैंने वेद के अनेक मन्त्र प्रमाण रूप में द दिए हैं कि मनुष्य अपने सत्कर्मों के आधार पर (उत्तम कर्मों के आधार पर) अपनी आयु को घटा-बढ़ा सकता है। (···टन् टन् टन्···)

श्री पण्डित ओमप्रकाश जी शास्त्री विद्याभास्कर—

स्वामी जी महाराज! सत्यार्थ-प्रकाश के ग्यारहवें समुल्लास की उन पंक्तियों को देखिए। किस प्रकार दूसरों को सुख-दुःख हानि-लाभ पहुँचाया होता है वैसा उसका फल विना शरीर धारण किए नहीं होता। दूसरा पूर्वजन्म के पाप-पुण्यों के बिना किसी को सुख-दुःख की प्राप्ति इस जन्म में क्योंकर होवे। जब पूर्व जन्म के पाप-पुण्यानुसार न होवे तो परमेश्वर अन्यायकारी और बिना भोग के नाश के समान कर्म का फल हो जावे। इस जन्म के किए कर्म का फल अगर पुनर्जन्म न देकर के दिया जावे तो परमेश्वर की न्यायव्यवस्था बिगड़ जावे। और लिखते हैं—जो पूर्वजन्म को नहीं मानोगे तो परमेश्वर पक्षपाती हो जायगा क्योंकि बिना पाप के दारिद्रय आदि दुःख और बिना पूर्व संचित पुण्य के राजा, धनाढ्यता और निर्बुद्धिता उनको क्यों दी? और पूर्व-जन्म के पाप-पुण्य के अनुसार सुख-दुःख के देने से परमेश्वर न्यायकारी यथावत् रहता है। यह परमेश्वर की न्याय व्यवस्था है कि अगले जन्म में जो कुछ उसको देना है वह इस जन्म के कर्म के अनुसार दिया जाता है। और अब भी है दुनिया में भी बहुत स्थान पर यही कहते हैं, अरे भाई! अपने कर्म मत बिगाड़ो आगे का क्यों अपना जन्म बिगाड़ते हो? इसका मतलब है कि यहाँ के किए हुए कर्मों का फल, अब वार-बार आप कहते हैं—मैं खुद स्वीकार करता हूँ फिर याद रखिये। मैं खुद कहता हूँ कि भोजन का यह जो आपने 'एग्जाम्पल' दिया प्यास लगी भूख लगेगी तो मैं रोटी नहीं खाऊँगा तो कष्ट हो जाएगा, फलाना हो जाएगा। मैं खुद कहता हूँ—शरीर की रक्षा के लिए आप कर्म करने में स्वतन्त्र हैं, लेकिन फल भोगने में परतन्त्र हैं। तो क्रियामाण कर्म का फल तो आपको मिलेगा। प्यास लगी। पानी पिया तो आपकी प्यास बुझ गई। कर्म किया क्रियमाण और फल भी मिल गया। आप आंख मींचकर चलने लगे। देख उधर को रहे थे टकरा गये किसी साइकिल वाले से, तो चोट लग गई। असावधानी का फल मिल गया। लेकिन जिनके पाप-पुण्य के कर्म हैं, जिनका कि अगले जन्म में फल मिलता है, जिनके द्वारा तीन चीजें मिलती हैं, उसको ध्यान रखिए। यानी भूख को तृप्ति वो कर्म नहीं है भूख का लगना जिससे कि अगला जन्म बनता हो। हां! भूख लगने पर एक आदमी मांस खाता है तो भूख मिट गई मांस खाने से भी। लेकिन

मांस खाने के रूप में जो पाप-कर्म किया उसकी सजा भुगतेगा। ये कर्म हैं वो जिससे कि अगला जन्म बनता है, जाति, भोग और आयु। अब कहते हैं कि जाति का अर्थ यहाँ गधे, घोड़े मनुष्य नहीं; जन्म है। तो मैं भी तो यही कहता हूँ कि जाति वो है जो जन्म से लेकर मरण पर्यन्त बनी रहे। और जन्म का क्या मतलब होता है साहब ! आप उसे जन्म कहते हैं मैं पुनर्जन्म कह देता हूँ। फिर क्या आपत्ति ?

अगला (नेक्स्ट बर्थ) अगला जन्म अब वो किसी भी योनि में हो सकता है। उसके मैंने तीन बताए थे या तो मनुष्य-योनि में जाएगा उभय योनि में या भोग-योनि में जाएगा और तीसरी योनि में वो है कर्म-योनि जो आदि-सृष्टि में होती है। यही सांख्य मानता है, यही स्वामी जी मानते हैं जब तक जीव के पाप-पुण्य बराबर न हों तब तक सामान्य मनुष्य योनि नहीं मिलेगी; पुण्य अधिक तो धनाढ्य आदि फलों को पाएगा, पाप अधिक तो उसको भोगने को पशु-योनि में जाएगा। जब समान हो जाएगा, फल भोग करके फिर मनुष्य योनि में आ जाएगा। और मोक्ष ! जब तक खाली पुण्यों की संचित पूंजी नहीं होती तब तक कोई मोक्ष में नहीं जाता है। यह व्यवस्था ठीक ही है। तो कर्म का फल तो अगले जन्म में ही मिलना है, इस जन्म में मिलना ही नहीं है। और मैंने आपको कहा कि इनमें से अगर एक चीज को भी आपने घटना-बढ़ना मान लिया तो आपको विपाक को भी मानना पड़ेगा। फल को भी मानना पड़ेगा। आयु को मान लिया तो भोग भी बदलेगा, जाति भी बदलेगी और अगर दोनों ही नहीं बदलते तो यह भी नहीं बदलेंगे।

अब फिर बार-बार आप कह देते हैं साहब ! वो निश्चित बता दीजिए उम्र कौन सी है आयु ? अरे बाबा ! मैं तो शुरू से कह रहा हूँ कि मैं नहीं मानता। कोई निश्चित आयु नहीं यह तो आपको बताना पड़ेगा कि हमने निश्चित आयु में से यह घटाई और बढ़ाई। आप इनको क्या नहीं बोलते बार बार। मैं फिर कहता हूँ कृपा करके और मत बोलिएगा आप अपने समय में यही बताइए केवल दो बात 'सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगाः' में अगर आयु परिवर्तनशील हैं तो भोग और जाति भी क्या परिवर्तनीय है ? एक प्रश्न। दूसरा प्रश्न यह है कि वह कौन सा आयु का सामान्य स्तर है, सारे मनुष्यों का एक, जिससे कि घटाया-बढ़ाया जाता है आयु को वो 'एज' का मापदण्ड बताइए। जब तक आप यह नहीं बतायेंगे तो घटना-बढ़ना देखिए बिना हवा के लाठी चला रहे हैं हवा में बुनियाद है नहीं कोई भी। "**स्वपक्षस्थापनाहीन परपक्षस्य दूषयितृ—वितण्डा**"। (न्याय दर्शन १-२-३) यह "**वितण्डा**" है। अपने पक्ष की स्थापना करें पहले। भई यह पैमाना ऐसा है इससे मैंने इतनी उमर बढ़ा ली। और इससे इतनी घटा ली। यह गृहस्थी था उसकी उमर घट गई और मैं ब्रह्मचारी था मेरी बढ़ गई। भई ! इतनी उमर मैंने बढ़ा ली अपनी, आप बताओ कितनी कहाँ से बढ़ाई आपने और इसने कहाँ से घटा दी। वो कौन-सा पैमाना है जिससे घटना-बढ़ना नापूं मैं, उसको आप बताते नहीं और जो समय बाकी था आपका ·····(टन् टन् टन्·····)

श्री ब्रह्मचारी वेदव्रत जी मीमांसक—

अब प्रश्न यह है कि शास्त्री जी किस पक्ष को लेकर बोल रहे होंगे अब भीवि चार करके मुझे बतला दें अब तक न विचार किया हो तो। विचार किया हो तो बतला दें। यहाँ पर तो शस्त्रार्थ का विषय चल रहा है······किया "**आयु निश्चित है अथवा आयु अनिश्चित है**"। और मेरा यह पक्ष है कि आयु अनिश्चित है। अब शास्त्री जी का इन दोनों में से कौन-सा पक्ष है वो विचार कर अब भी बतला दें। और दूसरी बात यह है कि और इस जन्म में भी कर्मों का फल मिलता है। ऐसा मैंने अनेक प्रमाणों से सिद्ध करने का प्रयत्न किया। '**दृष्टादृष्टजन्मवेदनीयः**' इस जन्म में किए कर्मों का फल इस जन्म में भी मिलता है। "**सद्यः कालान्तरे फलनिष्पत्तेः**" इस सूत्र से भी सिद्ध होता है और व्यास-भाष्य में लिखा है कि—"**सद्यः परिपच्यते नन्दीश्वरवद्वा नहुषवद्वा**" फिर इसके पश्चात् "**परत्रादातुरेव च**"

फिर यमनियमादिथों का फल महर्षि-पतञ्जलि ने और यास्क ने उनका फल यहाँ पर किए कर्मों का यहाँ पर मिलना भी साक्षात लिखा हुआ है। इसलिए यहाँ पर किए हुए कर्मों के आधार पर हम यहाँ कर्मफल मिलता है ऐसा सिद्ध कर सकते हैं। और फिर उसके पश्चात् जाति का अर्थ जन्म मात्र है वहाँ पर जाति का अर्थ जैसा कि न्यायशास्त्र में लिखा है कि वो नहीं है जैसा कि बाद में शास्त्री जी ने इसको मान लिया यह ठीक है। और फिर तीन योनियों का यहाँ पर प्रसंग ले आए। और यह विषयान्तर हो गया इसलिए तीन योनियों की बात फिर यहाँ पर शास्त्री जी आगे न उठायें। और फिर बदलने की बात कह दी और हम कहते हैं कि जाति बदलती है नहीं, इस विषय को हम नहीं कहते। हम तो कहते हैं कि आयु बदलती है और जाति और आयु में एक बदल जाए एक नहीं बदले या बदले इस विषय पर हम नहीं कह रहे। यदि हम आयु को स्थिर मानते हैं तो आप यह प्रश्न करते हैं आप तो आयु को स्थिर मानते हैं और कहते हैं कि बदलता है, बदलती नहीं यह क्या बात है? हम इसको नहीं कहते आयु जो स्थिर मानता है उसके विषय में कहना पड़ेगा कि इस प्रकार आप इसको मानते हैं इसको नहीं मानते। हमने आयु को स्थिर नहीं माना। इसलिए यह दोष हमारे ऊपर नहीं रहा। अब फिर पिछले कर्मों का फल उसके आधार पर आयु निश्चित होती है ऐसा शास्त्री जी मानते भी हैं और फिर एक पक्ष में हम सामान्य रूप से नहीं मानते। अब तक मुझे यह नहीं समझ में आया कि शास्त्री जी कहना क्या चाहते हैं? और पिछले जन्म के कर्मों के आधार पर तो आयु निश्चित भी मान रहे हैं फिर भी ऊपर से कहते जा रहे हैं कि यहाँ पर "**स्वपक्षस्थापनाहीनो**", क्या है वह सूत्र '**वितण्डा**"। सूत्र को शास्त्री जी लागू तो मेरे ऊपर कर गए, फिर भी शास्त्री जी विचार करके देख लें कि सूत्र के अर्थ को कौन अपने ऊपर घटा रहा है? और इस प्रकार शास्त्री जी शब्द के कहने मात्र से अपने पक्ष को सिद्ध कर सकेंगे ऐसा नहीं है? और मेरा पक्ष यही है कि आयु स्थिर नहीं है। आयु को हम वर्तमान जन्म के कर्मों के फल के आधार पर घटा-बढ़ा सकते हैं। जहां मनुष्य स्वतन्त्र कर्म करने, स्वतन्त्र कर्म का फल मिलने से मनुष्य आयु को घटा-बढ़ा सकता है। इसमें शास्त्री जी का यह पक्ष न हो और कोई पक्ष हो तो वो बतला दें। हम और शास्त्री जी यही पक्ष मानकर शास्त्रार्थ करें आज। शास्त्रार्थ का निश्चय इसी को लेकर हुआ है कि "**आयु निश्चित है अथवा अनिश्चित है**" इसी विषय में शास्त्रार्थ होगा।

श्री पण्डित ओमप्रकाश जी शास्त्री विद्याभास्कर—

आपने पूछा आपका पक्ष क्या है? इतनी देर से बोलते रहे। सारी रात कथा सुन ली और यह नहीं पता चला कि मरा कौन रात को। दो घण्टे होने को आए और शास्त्रार्थ हो रहा है और अब तक मेरे पक्ष का ही नहीं पता चला तो आप खण्डन मेरा किस बात का कर रहे हैं? यानी कमाल है! यानी मेरे पक्ष का अब तक इनको यह ही नहीं पता चला कि मैं किस पक्ष का प्रतिपादन कर रहा हूँ। और खण्डन कर रहे हैं इतनी देर से मेरा। है यह कोई बात? हां, जिसका खण्डन होना है और यह पता नहीं कि मैं किस बात का खण्डन कर रहा है। मेरा खण्डन हो रहा है, पक्ष का नहीं। यह भी वकील हैं साहब! क्या करा जाए! मेरे मित्र! मैं आपको बता चुका हूँ कि मैं आपकी बहुत बातों से जब सहमत होता हूँ तो मैं इन्साफ के साथ सहमत होता हूँ। मैं खुद कहता हूँ कि कुछ कर्म ऐसे हैं जिनका फल तुरन्त मिल जाता है। पानी पिया प्यास बुझ गई। मैं खुद कहता हूँ कौन कहता है नहीं मानता। मैं मान रहा हूँ मेरे मित्र! भूख लगी भोजन किया भूख मिट गई। असावधानी से चला ठोकर लगी खून निकल आया, दर्द हुआ हाय निकल गई। कष्ट मिल गया। मैं कब मना करता हूँ। लेकिन ये सब क्रियमाण कर्म हैं, इन कर्मों की तो सजा मुझे अभी यहीं मिल गई। मैं मेहनत नहीं करूँगा फेल हो जाऊँगा; ये मेरे क्रियमाण कर्म हैं। जो जीवन की यात्रा के लिए अपेक्षित हैं। शरीर को साफ सुथरा रक्खेंगे, दण्ड बैठक लगायेंगे, तन्दुरुस्त रहेंगे आप। अब मेरी ६५ साल की उमर है। मैं तन्दुरुस्ती अपनी सम्भाल कर रखता हूँ तो रहता हूँ। तो क्या कहा जाएगा। लेकिन मेरी उमर नहीं बढ़

रही। मेरा स्वास्थ्य बढ़ रहा है। मैं तन्दुरुस्ती के साथ अपने जीवन को व्यतीत करना चाहता हूँ जब तलक मैं जिन्दा रहूँ। "**पश्येम् शरदः शतम जीवेम शरदः शतम्, शृणु याम शरदः शतम्**" का अर्थ यही है मेरे कान बहरे न हो जाएँ भगवान्, जब तलक मैं जीऊँ। मैं तो सौ साल जीना चाहता हूं। हे प्रभु ! मेरी वाणी लड़खड़ा न जाए, मेरे हाथों में धड़कन न हो जाए, मैं चल सकूँ मैं तो चाहता ही यह हूं कि यह तो इस जन्म में फल मैं अपने क्रियमाण कर्म का प्राप्त कर सकता हूँ। लेकिन जिन कर्मों के नतीजे में अलग जन्म मिलने वाला है, अगली आयु मिलने वाली है, अगले भोग मिलने वाले हैं। भाई ! वो तो इस जन्म में किए कर्मों का फल अगले जन्म में ही मिलना है। जब जन्म ही नहीं मिलेगा तो फल कहाँ से देंगे ? आप कहीं पूछें कि यह आदमी अन्धा क्यों पैदा हुआ जन्म से ? माँ के पेट से आप इसका क्या जवाब देंगे ? एक बच्चा माँ के पेट से जन्म का अन्धा पैदा हुआ। मैं पूछता हूँ यह जन्म का अन्धा क्यों पैदा हुआ ? आप कहेंगे अब माँ-बाप से तो शरीर बनता है माँ बाप की गलती से फल नहीं मिलता। फल में अन्धा क्यों बना ? उसको, कोई इस जन्म में तो कर्म किया नहीं उसने अभी तलक। यह जन्म में पैदा हुआ और अन्धा बच्चा पैदा हुआ। किस कर्म से अन्धा हुआ ? आपके पास सिवाय इसके कोई जवाब नहीं, मुसलमान, ईसाई से जब शास्त्रार्थ करते हैं आवागमन पर कि पूर्वजन्म के कर्मों से यह अन्धा पैदा हुआ। तो पूर्वजन्म का फल मिला भोग में। अन्धा पैदा हुआ। सारे जीवन दुःख पाएगा अन्धेपन का। और आयु भी निश्चित हो गई है। क्या निश्चित हुई है ? वो सामान्य सबकी एक नहीं है मैं बार-बार कहता हूँ। मेरी अलग आपकी अलग उसकी अलग। मरूँगा तब जब वो भोग की परिसमाप्ति और आयु की परिसमाप्ति हो जाएगी। आयु सबकी पृथक्-पृथक् है। वो क्या है कितनी है यह मुझे पता नहीं। मैं तो खुद कहना चाहता हूँ आप बता दीजिए ना आपके पास तो निश्चित आयु है कोई सी जिससे आप घटायें बढ़ायें। आप क्यों नहीं बतलाते घटाने-बढ़ाने वाली आयु का स्तर कौन सा है ? मैं बार-बार कहता हूँ और मैं फिर कहता हूँ स्वामी जी महाराज ! ब्रह्मचारी जी महाराज ! आप दोनों बातों को बताइए। आपके पक्ष का तो मुझे पता है ना। अब किस से घटती-बढ़ती है। वही तो कह रहा हूँ। वह कौन सा स्तर है जिससे आप घटना-बढ़ना मानते हैं ? शुरू से पूछ रहा हूँ आठ बजे से और यह दस बजकर दो मिनट हो गये। भई ! अब तक इस सवाल का जवाब नहीं मिला। न "**सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगाः**" में एक चीज परिवर्तनशील, तो और क्यों नहीं परिवर्तनशील और दूसरा यह मैंने कहा कि वो स्तर कौन-सा है ? जिससे घटना-बढ़ना आप पैमाना जान जाएँ जिससे आप नापते हैं। अन्त तक आप न इसका जवाब दे सके हैं और न दे सकेंगे। ओ३म् शान्तिः।

श्री ब्रह्मचारी वेदव्रत जी मीमांसक—

शास्त्रीजी ने जो······के विषय में कहा है कि वैसे सीधा तो नहीं कहते हैं फिर भी उन्होंने मान ही लिया है कि पहले कर्मों के अनुसार आयु निश्चित है। और इसी का मैंने प्रतिवाद किया है कि आयु निश्चित नहीं है और यदि शास्त्री जी यह पूछें कि किसकी अपेक्षा आप घटना-बढ़ना मानते हैं तो इसका एक समाधान है कि शास्त्री जी का जो कथन है इसको मानते हैं कि आयु स्थिर है। उनके लिए कहते हैं कि आयु सिद्ध कहना है वह ठीक नहीं है आयु को अपने कर्मों के आधार पर मनुष्य घटा-बढ़ा सकता है। इसमें वेदादि 'सत्यशास्त्रों के अनेक प्रमाण मैंने आपके सामने दिए हैं इसी प्रकार शास्त्री जी कोई तो एक वेद का प्रमाण अब तक देते, अब तो शास्त्रार्थ समाप्ति की ओर है। इसीलिए अब तक शास्त्री जी वेद का प्रमाण नहीं दे सके और एक वेद का प्रमाण नहीं भी दे सकेंगे। और दूसरा प्रत्येक मनुष्य की आयु भिन्न-भिन्न है। प्रत्येक मनुष्य की आयु भिन्न-भिन्न है या नहीं यह मैंने नहीं पूछा। लेकिन शास्त्री जी भिन्न-भिन्न कहते हैं तो वे बतला दें कि भिन्न-भिन्न किसकी कितनी-कितनी आयु है। कहीं पर लिखा है वेद के मन्त्रों में। यह भी बतला देते, और दूसरी बात यह है पानी पीने से फल मिलता है भोजन करने से फल मिलता है मैं यह पूछना चाहता हूँ आयुर्वेद में औषधि खाने से औषधि पीने से आयु बढ़ने के

लिए जो लिखा है, क्या आप उसको नहीं मानते ? शास्त्री जी ऐसा कर रहे हैं मानो हम अर्धजरतीय न्याय को लेकर चलेंगे यह अर्धजरतीय न्याय माना जाता है । कुछ कर्मों को तो मानते हैं आयु को बढ़ाने वालों को नहीं मानते। शास्त्री जी के पास यह क्या प्रमाण है। पानी पीने का तो फल मिल जाता है और आयुर्वेद की औषधि का फल नहीं मिलता। इसीलिए यह पक्ष ठीक नहीं। और फिर शास्त्री जी "**मन्त्रायुर्वेदवत् प्रामाण्यम् ।**" (न्यायदर्शन २-१-६८) अच्छा फिर इसके ये हैं कि शास्त्री जी शरीर को स्वस्थ इसलिए बनाना चाहते हैं कि आयु को चाहे घटे-बढ़े चाहे कुछ भी करें, हम केवल व्यायाम करने से ठीक कर दें, नहीं। स्वामी जी ने आर्यसमाज के दस नियमों में छठा नियम यह लिखा है संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्योद्देश्य है अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति शारीरिक उन्नति का क्या अर्थ है कि स्वस्थ रहकर हम दीर्घायु जीवित रहकर संसार का अधिक से अधिक उपकार करें। संसार को स्वस्थ बनाने के, दीर्घजीवी बनाने के लिए प्रयत्न करें। यदि दीर्घजीवी रखने के लिए प्रयत्न न करे तो कोई भी कार्य नहीं चल सकता। "**धर्मार्थकाममोक्षाणाम् आरोग्यं मूलमुत्तमम्**' '**रोगा: सद्यापहर्त्तारो आयुषो जीवितस्य च ।**"

इस प्रकार रोग आयु को नष्ट कर देते हैं। रोगों को दूर करने के लिए आयुर्वेद की औषधि आदियों का प्रयोग करना सदाचारादि का प्रयोग करना यह आवश्यक इसलिए''' कि इस जन्म के लिये कर्मों का फल यहाँ पर भी मिलता है। मैंने अनेक प्रमाण दिये "**परत्रादातुरेव च**" दान का फल भी इस लोक-परलोक दोनों स्थानों पर मिलता है, और यम-नियमादियों का फल भी इस जन्म में मिलता है। इसी प्रकार मैंने यह कहा—"**दृष्टादृष्टजन्मवेदनीय:**', किन्तु शास्त्री जी ने एक भी प्रमाण ऐसा नहीं दिया है कि इस जन्म के किये हुए कर्मों का फल इस जन्म में नहीं मिलता। जिससे आयु घट-बढ़ सके ऐसा कोई भी प्रमाण उन्होंने नहीं दिया। इससे क्या सिद्ध होता है कि इस जन्म के किये हुए कर्मों के आधार पर हम आयु को घटा बढ़ा सकते हैं। और फिर जन्मान्ध उत्पन्न हो जाता है उसका क्या कारण है? मैं कहता हूँ जन्मान्ध होने के अनेक कारण हो सकते हैं। उसके माता.पिता हो सकते हैं और भी कोई कारण हो सकता है। इसीलिए जन्मान्ध हो सकता है। यदि ऐसा न होता तो हम संसार में जो भी जिस प्रकार का कार्य करते हैं उसको दण्ड देना आदि नहीं मान सकते। और दण्ड देते हैं। कोई अनुचित कार्य करता है उसको दण्ड देते हैं। और इस प्रकार मनुष्य स्वतन्त्र होने के कारण से चाहे जो कर्म कर सकता है। '**आततायिनमायान्तं हन्यादेव अविचारयन्**" (मनुस्मृति ८-३५०) । महर्षि दयानन्द जी कहते हैं—"**जो निरपराधी को मारता है, हत्या करता है, उसको हानि पहुँचा देता है उसको बिना विचार पहले मारे और मारने के पश्चात् फिर विचार करें**"। कहने का अभिप्राय यह है कि अनेक प्रकार के कर्मकरते हैं। अनेक प्रकार के कर्मों को न करे आयुर्वेद के अनुसार किसी की आयु आदि बढ़े और जीवन उत्तम बने सन्तान भी उत्तम बने। इसीलिए महर्षि लोगों ने—**ऊनषोडशवर्षायामप्राप्त''''' तस्मादत्यन्तबालायां गर्भाधानं न कारयेत्**"। सुश्रुत संहिताशरीर स्थान अध्याय १०)इस प्रकार उत्तम संतान के लिए आयुर्वेद में कथन किया गया है। इसलिए जन्मान्ध आदि से माता-पिता आदिऔर अनेक प्रकार के कारण हो सकते हैं। यहाँ केवल पिछले जन्म के कर्म को नहीं माना जा सकता। यदि कोई हमको मार दे और हमारी मृत्यु हो जाय किसी की मृत्यु हो जाय, हम वहाँ पर चुपचाप बैठे रहें, यह तो पिछले जन्म के कारण हुआ है। यदि आज ऐसा मानने लग जायें आज का शासन एक दिन नहीं चलेगा। लोक-व्यवहार एक दिन नहीं चलेगा। और कभी हमको कोई हानि पहुँचा देता है वह यह मानता है कि पिछले जन्म के कर्म का फल है तो वह भी अपनी सुरक्षा के लिए प्रयत्न करता है। वह भी उसका प्रतिकार करने का प्रयत्न करता है। उसको दण्ड देने का प्रयत्न करता है। इसलिए इस जन्म के किये हुए कर्मों का फल यहां पर मिलता है। इसके आधार पर आयु को हम घटा-बढ़ा सकते हैं। इससे यह सिद्ध हो गया; वेदादि प्रमाणों से मैंने सिद्ध करने का प्रयत्न किया। ओ३म् ।।

श्री पण्डित ओमप्रकाश जी शास्त्री विद्या भास्कर—

स्वामी जी महाराज! अगर इस जन्म का कर्म का फल इसी जन्म में मिल जाता है तो अगला जन्म कौन निश्चित करता है। अगर इस जन्म में किए कर्मों का फल इसी जन्म में समाप्त हो जाता है मिल जाता है जीव को तो अगला जन्म परमात्मा किसी को विभिन्न योनियों में क्यों देता है? इसका उत्तर? इस जन्म का फल अगर इसी जन्म में मिल जाता है तो अगला जन्म किस आधार पर देता है? मैं कहता हूँ कि परमेश्वर की न्याय-व्यवस्था यही है कि···**"याथातथ्यतो अर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः"** (यजुर्वेद—४०-८) इस जन्म में शरीर से लेकर—दुःख-सुख और मेरे अनुकूल और प्रतिकूल परिस्थितियों और मेरे आयु और मेरे फल या भोग जो हैं वो जितना मेरे जीवन में इस वक्त चल रहा है यह मेरे पूर्व जन्म के **"याथातथ्यतः"** वेद का ही मन्त्र बोल रहा हूँ।

"याथातथ्यतो अर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः। अपनी शाश्वत प्रजाओं को जो कुछ उसने दे दिया है केवल मनुष्य को ही नहीं चींटी से लेकर हाथी तलक उसमें छोटे और बड़े जितने प्राणीमात्र हैं वो उसने **याथातथ्यतः** जैसे थे वैसा किया है, जैसे कर्म थे वैसा किया है। तो इस जन्म में तो मैं पिछले जन्म के फल भोग रहा हूँ किये हुए कर्म के स्वाभाविक बात है कि अगला जन्म जो मिलेगा वो इस जन्म के किये कर्मों का फल मिलेगा। यह तो एक प्रत्यक्ष सिद्ध बात है इसमें प्रमाण की बात क्या? तो आप बार-बार प्रमाण की बात करते हो तो मैंने यही··· **"याथातथ्यतो अर्थान् व्यदधात्"**। मैं जो कह रहा हूँ फिर वहीं आइये। जब तलक आप यह नहीं साबित करेंगे कि इस जन्म के अन्दर जो भोग मुझे मिल रहे हैं वो कौन से कर्म के फल हैं। एक जन्म का अन्धा बच्चा पैदा हुआ। मेरा प्रश्न था बताइये कि वह जन्म का अन्धा क्यों पैदा हुआ? मैं······था और मेरा बच्चा अन्धा पैदा हो गया। क्यों पैदा हो गया आप मुझे उसमें साधन नहीं बतलाइयेगा; कारण बतलाइयेगा। साधन को नहीं पूछता मैं। मैं कारण पूछता हूँ कारण। (······काज) मैं उसका सबक पूछता हूँ हेतु। तो आप मुझे वो बताइयेगा कि किस वजह से वह अन्धा हुआ? आपको वजह बताने में सिवाय इसके और क्या जवाब नहीं होगा कि इस जन्म में पूर्वजन्म में कुछ ऐसे कर्म किये थे इस जीव ने कि इसकी सजा में आया है। और हम पुनर्जन्म के सिद्धान्त में कहते भी हैं कि इस जन्म के अन्दर मनुष्य जिन इन्द्रियों को 'मिसयूज' करता है गलत इस्तेमाल करता है परमात्मा दण्ड में उन हथियारों को छीन लेता है।

अगर आँखों का दुरुपयोग करता हूँ अगले जन्म से परमात्मा अन्धा पैदा कर देता है। मैं जुबान का दुरुपयोग करता हूँ अगले जन्म में गूंगा बना देता है। मैं हाथ-पैरों से कुत्सित कर्म करता हूँ लंगड़ा लूला पैदा कर देता है। यही न्याय-व्यवस्था है परमात्मा की। ऋषि बार-बार कहते हैं—इस जीवन में अगले जन्म में जितने सुख-दुःख जीवात्मा को प्राप्त होते हैं वो परमेश्वर उसके ही कर्म के देता है जो परिणाम में देता है। अगर वो सारे कर्मों की दो ही व्यवस्था हो सकती है। या तो इस जन्म में फल समाप्त हो जाय उसका। अगर इसी जन्म में मिलते हैं तो फिर अगला जन्म नहीं होगा मेरा, और अगर अगले जन्म में मिलते हैं तो इस जन्म में उन कर्मों का फल नहीं मिल सकता जिनकी वजह से अगला जन्म परमात्मा ने देना है। और अगर उनको देखोगे दोनों बातों को तो फिर आवा-गमन का सिद्धान्त तो खत्म हो जायेगा। फिर आप किसी मुसलमान को ईसाई को यह नहीं कह सकेंगे कि आवागमन कोई चीज होती है। आपको आवागमन के सिद्धान्त को छोड़ना पड़ेगा। क्योंकि अगर उसका कारण नहीं हो तो कार्य कहाँ से आ जायेगा **"कारणाभावात् कार्याभावः।"** जितने कारण थे अगले जन्म के वो तो आपने इस जन्म में भोग लिये। अब अगला जन्म किस वजह से देगा परमात्मा। उसका कारण क्या होगा इसीलिए कारणकार्य की व्यवस्था परमात्मा की न्यायव्यवस्था······**"याथातथ्यतो"** अर्थात् वेद का श्रुत का यह वाक्य और दर्शनों के सारे सूत्र जो हैं

वो इस बात को साबित करते हैं कि "सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगाः"। प्राणियों की योनियों में जाने वाले जीव को जितने भी भोग मिलते हैं आयु मिलती है और जाति उसकी योनि-विशेष को जो जीव गया है वो इसके कारण की वजह से गया है जो उसके कर्म थे। मौजूद थे जिसके फल में भेजा गया है। अगर आयु परिवर्तनशील है तो आपको जाति परिवर्तनशील माननी पड़ेगी, भोग परिवर्तनशील मानने पड़ेंगे।

तीसरी बात मैंने यह कही थी आप अभी तलक भी कोई आयु का स्तर नही बता सके हैं। सामान्य स्तर, जिसके कि घटने-बढ़ने को नापा जा सके। वो कौन सा आयु का स्तर था ? यह मैं आठ बजे से लेकर के दस बजे करके दस मिनट हो गई हैं अपनी (टर्न) मैं बार-बार पूछता रहा हूँ आप क्यों नहीं बताते उस स्तर को ? आप कहते हैं, आप बताइये। आप निश्चित मानिये। मैं तो कोई निश्चित 'ऐज' नहीं मानता हूँ। मैं तो कहता हूं प्रत्येक जीव के अपने-अपने कर्म हैं, कोई सामान्य आयु का स्तर नहीं बनाया जा सकता। मेरे कर्मों का फल जितनी आयु का है। जितने भोग हैं और जो योनि मुझे मिली है उसमें भगवान् की दया से आंखें भी ठीक मिलीं, कान-नाक सब ठीक मिले हैं तो मेरे पूर्व कर्म का फल है। और अगर मेरा बच्चा इससे हीन पैदा होता है तो अपने कर्म के अनुसार सुख भोग भी भोगेगा आयु भोगेगा और······लंगड़ा भी पैदा हो जाये अन्धा पैदा हो जाता है तो वो अपने-अपने कर्म को······ ···मेरे ही घर में तीन बच्चों में समान नहीं हो सकते। क्योंकि तीनों बच्चे समान कर्म करके नहीं आए।

एक घर में दो बच्चे आराम से सो रहे हैं, रजाई में पड़े हुये, एक बच्चा बम्बई में सिनेमा के दफ्तर में भीख माँगता फिर रहा है। फ़ुटपाथों पर धक्के खाता फिर रहा है। और रेलवे स्टेशन की बैंच पर सो रहा है। माँ-बाप दोनों बराबर मिले। लेकिन उसके भोग तो उसको······ ··। वह अपने कर्म की सजा भुगत रहा है·········ठोकर खा रहा है। एक आदमी घर पर बैठा हुकूमत कर रहा है। एक जेलखाने में पड़ा है अपने पूर्व जन्म के कारण सजा भुगत रहा है और कहते हैं जो। बिना कसूर पकड़ा गया। मैंने कहा। कि जिसने चोरी नहीं की, वह पकड़ा जा रहा है, क्यों ? और जिसने चोरी की वह सारे जीवन भर नहीं पकड़ा गया और मर भी गया फरार हालत में। उसके कर्म नहीं थे उसको सजा क्यों मिल रही है। इसका जवाब आपने दिया कोई ? स्वामी जी ! प्रमाणों की झड़ी लगा देना आसान काम है लेकिन दार्शनिक विषयों पर अधिकारपूर्वक बोलना और बात है। (टन् टन् टन्·········)

*

नोट—इस प्रकार यह शास्त्रार्थ शान्तिपूर्वक समाप्त हुआ। अब आगे इसी विषय पर अनेकों विद्वानों के अपने-अपने विचार पढ़िये। तथा इस शास्त्रार्थ में भी काफी प्रश्न ऐसे रह गए थे, जिनका विस्तारपूर्वक उत्तर नहीं मिल पाया था। उनको भी दिया जा रहा है। ताकि विषय का **"नीर क्षीर विवेक"** पूर्णतया सामने आ सके।

—निवेदक

"सम्पादक"

श्री ओमप्रकाश जी शास्त्री तथा ब्र० वेदव्रत जी मीमांसक को दिनांक २४-५-७४ को निम्न-लिखित पत्र दिया गया था। ब्र० वेदव्रत जी ने तो पत्र के अनुसार शास्त्रार्थ में से श्री शास्त्री जी के कुछ प्रश्नों के उत्तर भेज दिये थे, किन्तु शास्त्री जी को अनेक पत्र देने पर अब उनका विशेष वक्तव्य आया है जो हमारे पत्र दिनांक २४-५-७४ के अनुसार नहीं। अपितु स्वतन्त्रता से नए प्रश्न भी किए हुए हैं फिर भी वक्तव्य प्रकाशित किया जा रहा है। श्री शास्त्री जी को उनके वक्तव्य आने से पूर्व ब्र० वेदव्रत जी के आए हुए प्रश्नोत्तर भी भेज दिए गए थे।

दिनांक २४-५-७४

प्रश्नकर्ता—**श्री पण्डित ओमप्रकाशजी शास्त्री विद्याभास्कर**

उत्तरदाता—**श्री ब्रह्मचारी वेदव्रतजी मीमांसक**

माननीय

सादर नमस्ते।

सेवा में निवेदन है कि तीन मार्च को हुआ शास्त्रार्थ इस पत्र के साथ भेज रहा हूँ। इसके टाइप होने तक बहुत परिश्रम करना पड़ा है। शास्त्रार्थ में सीमित समय मिलने के कारण विपक्षी के सब प्रश्नों के उत्तर सम्भव नहीं होते, अतः सत्यासत्य निर्णयार्थ यह उचित समझा गया है दोनों पक्ष के विद्वानों को अपने विपक्षी के शेष प्रश्नों का उत्तर देने का अवसर दिया जावे। अतः आपके पास शास्त्रार्थ की कापी भेजी जा रही है, आप अपने विपक्षी की जिन बातों का उत्तर देना चाहें उन-उन के शब्दों को इस कापी से लेकर साथ प्रश्न शब्द लिखकर पुनः अपना उत्तर लिखकर भेज दें। वह भी इस शास्त्रार्थ में बढ़ा दिया जावेगा। कोई नया प्रश्न विपक्षी पर न करें, केवल उत्तर देने की कृपा करें। शास्त्रार्थ के समय घोषणा की गई थी कि शास्त्रार्थ छपाया जावेगा अतः अनेक महानुभावों के पत्र आ रहे हैं। पूरी आशा है आप पूरा सहयोग प्रदान करेंगे।

—भवदीय

—दीपचन्द आर्य

संयोजक, शास्त्रार्थ-समिति, आर्यसमाज नयाबाँस, दिल्ली-६ कृपया पत्र प्राप्ति की सूचना अवश्य भेज।

★

श्री पं० ओमप्रकाश जी शास्त्री के प्रश्नों का उत्तर

—ब्र० वेदव्रत मीमांसक

श्री पण्डित ओमप्रकाश जी शास्त्री विद्याभास्कर—

प्रश्न—महर्षि-दयानन्द-सरस्वती जी महाराज ने अनेक स्थलों पर कहा है कि जीवात्मा को जितने भी सुख-दुःख किसी भी योनि में वह जाता है वो उसके पूर्वकृत कर्मों के अनुसार उसको प्राप्त होते हैं। **"विदाउट एनी रीजन"** बिना किसी कारण परमेश्वर उसको सुखी और किसी को दुःखी नहीं करता है।

श्री ब्रह्मचारी वेदव्रत जी मीमांसक—

उत्तर—यह ठीक है कि परमात्मा बिना पाप व पुण्य के किसी को सुखी व दुःखी नहीं करता है। किन्तु जीव स्वतन्त्र होने से बिना पाप-पुण्य के भी किसी को भी सुख-दुःख देते हैं। इसी से ही जीवों के पाप-पुण्य बनते हैं। महर्षि ने अनेक स्थलों पर दुःख के तीन कारण—आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक लिखे हैं।

श्री पण्डित ओमप्रकाश जी शास्त्री विद्याभास्कर—

प्रश्न—'आपको पहले यह बताना पड़ेगा कि वह मनुष्य की **"कॉमन"** साधारण आम मनुष्यमात्र की कौन-सा **"स्टैण्डर्ड एज"** का कौन सा मापदण्ड और पैमाना है। कौन सा स्तर है **"एज"** का जिससे उसको घटाना-बढ़ाना स्वीकार कर सकें जब तक इसकी स्थापना नहीं करेंगे इन प्रमाण-संग्रहों से लाभ नहीं है।'

श्री ब्रह्मचारी वेदव्रत जी मीमांसक—

उत्तर—आयु का सामान्य स्तर अर्थात् निश्चित आयु मानकर ही घटना-बढ़ना हो सकता है। यह कहना आपका ठीक नहीं किन्तु देखा इसके विपरीत जाता है। यथा कपड़ा मिल में से बनकर निकलता है उसके पश्चात् कोई उसको थोड़े काल में कोई अधिक काल में नष्ट करता है। किन्तु मिल वालों ने उसकी कोई आयु निश्चित नहीं की हुई है। यदि आयु का काल निश्चित मान लिया जाय तो फिर घटने-बढ़ने का प्रश्न ही नहीं उठता। किन्तु आपने ऐसा एक भी प्रमाण नहीं दिया जिससे सिद्ध हो कि आयु का काल निश्चित है। इसके विरुद्ध आयु घटने-बढ़ने से वेदादि सच्छास्त्रों के अनेकों प्रमाण मैंने दिये हैं आप भी इन प्रमाणों को स्वीकार कर रहे हैं। अतः उन प्रमाणों को निरर्थक कहना कदापि उचित नहीं। यह आक्षेप आपने मुझ पर नहीं वेदादि सच्छास्त्रों पर किया है।

श्री पण्डित ओमप्रकाश जी शास्त्री विद्याभास्कर—

प्रश्न—'मनुष्य के जैसे कर्म होंगे वैसी जाति, वैसा आयु और वैसा भोग उसको मिलेगा और वे कभी सबके समान नहीं हो सकते, चूंकि कर्मों में असमानता है। इसका जवाब आपको स्वामी जी ! देना चाहिये।'

श्री ब्रह्मचारी वेदव्रत जी मीमांसक—

उत्तर—आयु निश्चित है इसकी सिद्धि में कोई प्रमाण आपने नहीं दिया। युक्ति से भी आयु निश्चित नहीं हो सकती क्योंकि अन्तः करण शरीर आदि जीव के अधीन हैं। जीव स्वतन्त्र है अतः आयु का काल निश्चित करना असम्भव है यह आपका आक्षेप उस पर है जो सबकी आयु समान मान ले। मेरी प्रतिज्ञा यह नहीं है कि सब की आयु समान है। मेरी तो प्रतिज्ञा है कि मनुष्य की आयु अनिश्चित है।

श्री पण्डित ओमप्रकाश जी शास्त्री विद्याभास्कर—

प्रश्न—'और कहते हैं कि फल जो है एक जन्म में नहीं मिलता है······' इत्यादि—

श्री ब्रह्मचारी वेदव्रत जी मीमांसक—

उत्तर—इस जन्म में किये कर्मों का फल अगले जन्म में ही मिलता है। किसी कर्म का फल इस जन्म में नहीं मिलता ऐसा न तो सूत्र में है और न ही भाष्य में। यह शास्त्री जी की कल्पना है। वैदिक सिद्धान्त तो यही है कि किन्हीं कर्मों का फल इस जन्म में भी मिलता है, किन्ही का परजन्म में। इसको **"क्लेशमूलः कर्माशयः दृष्टादृष्टजन्म-वेदनीयः"** द्वारा महर्षि-पतंजलि ने व्यक्त किया है। शास्त्री जी ने ऋषि-दयानन्द का वाक्य उद्धृत किया है यह दशम समुल्लास में कहीं भी नहीं है। नवम समुल्लास में इस प्रकार है—मनुष्य का जीव पश्वादि में, पशु आदि का मनुष्यादि के शरीर में आता जाता है वा नहीं ?' इस प्रसंग में है। **"इस जन्म में किए हुए कर्मों का फल अगले जन्म में ही मिलता है इस जन्म में नहीं"** ऐसा इस वाक्य में स्वामी जी ने कहीं नहीं लिखा है।

श्री पण्डित ओमप्रकाश जी शास्त्री विद्याभास्कर—

प्रश्न—'आप मुझे बताइये कल को कोई दूसरे किसी को मार दे परमेश्वर की सारी व्यवस्था ही नष्ट हो जायेगी।'

श्री ब्रह्मचारी वेदव्रत जी मीमांसक—

उत्तर—परमेश्वर की यह व्यवस्था है कि जीव अपने किये कर्मों का फल भोगें। कर्म करने में स्वतन्त्र होने से जीव कर्म करता है। जीव की स्वतन्त्रता को छीनकर निष्कर्मा, निश्चेष्ट बनाना ईश्वर की व्यवस्था नहीं है। यदि ऐसा हो तो शरीर, इन्द्रिय और मन आदि व्यर्थ हो जावें। व्यवस्था का अर्थ कर्म करने में परतन्त्रता नहीं है। कर्म कर चुकने के पश्चात् ही फल मिलेगा। परमात्मा जीव के कर्म-स्वातन्त्र्य को रोकता नहीं। और ऐसा वेदादि-शास्त्रों में कहीं नहीं लिखा कि कोई जीव किसी को नहीं मार सकता। दूसरे को सुख-दुःख दिये बिना पाप-पुण्य की व्यवस्था ही नहीं बनती। पूरे शास्त्रार्थ में शास्त्री जी ने वेदादि-शास्त्रों का एक भी प्रमाण **"परमात्मा आयु निश्चित करता है"** इस विषयक नहीं दिया। पुनः व्यवस्था नष्ट होने की बात का कोई आधार ही नहीं है।

श्री पण्डित ओमप्रकाश जी शास्त्री विद्याभास्कर—

प्रश्न—'सौ साल की आयु अगर जो निश्चित मानते हैं तो सवाल यह पेश है कि सौ साल की आयु जब मिली मिलाई थी तो इसकी प्रार्थना करने की क्या जरूरत थी ? तब तो यह सौ साल की जो आयु है और यह प्राप्त है तो

प्रार्थना निकम्मी है वेदों की सारी। आपको यह मानना पड़ेगा जो जहाँ ऐसे स्थल हैं वो सब निकम्मी प्रार्थनायें हैं सारी।

श्री ब्रह्मचारी वेदव्रत जी मीमाँसक—

उत्तर—शास्त्री जी के मतानुसार इस जन्म की आयु पिछले कर्मों के अनुसार निश्चित है तो शास्त्री जी का **"जीवेम शरदः शतम्"** के द्वारा सौ साल की आयु की प्रार्थना करना निरर्थक है। अतः शास्त्री जी का कथन ही विपरीत है। मैं तो सौ साल की आयु निश्चित मानता ही नहीं। यह आक्षेप तो शास्त्री जी पर ही आता है क्योंकि आप आयु निश्चित मानते हैं और इस वेद-मन्त्र से प्रार्थना भी करते हैं। हम तो आयु का घटना-बढ़ना मानते हैं। अतः हमारे मतानुसार प्रार्थना करना निरर्थक नहीं।

श्री पण्डित ओमप्रकाश जी शास्त्री विद्याभास्कर—

प्रश्न—बीज पहले गल जाता है जमीन में तब उसमें से अंकुर उपजकर आता है जब कारण नष्ट होता है तब जाकर फल प्राप्त होता है। ऐसे ही पूर्व जन्म में किये हुये कर्म मृत्यु के बाद दब जाते हैं उनका फल परमात्मा अगले जन्म में देता है।'

श्री ब्रह्मचारी वेदव्रत जी मीमांसक—

उत्तर—शास्त्री जी को शास्त्रों का गम्भीर ज्ञान होता तो ऐसी त्रुटि नहीं करते। युक्तिपूर्वक बात करते। क्योंकि कारण के नष्ट होने पर तो कार्य का सम्भव ही नहीं है। यथा—**"कारणाऽभावात् कार्याभावः"** क्योंकि-- **"कारणभावात् कार्यभावः।"** तो फिर शास्त्री जी ने यह कैसे माना कि जब कारण नष्ट होता है तब जाकर के फल प्राप्त होता है। यदि कारण के नष्ट होने पर कार्य होता तो बिना कारण कार्य हो जाता। और कारणकार्यभाव का सम्बन्ध व्यर्थ हो जाता। यह जो बीज के गलने पर अंकुर का उपजना लिखा है यह भी विषम दृष्टान्त है। क्योंकि धागे से वस्त्र निर्माण होता है। धागा कारण है और वस्त्र कार्य है। शास्त्री जी के कथनानुसार धागा गल जाये तब वस्त्र बनना चाहिए किन्तु धागे के गलने पर वस्त्र नहीं बनता। कार्य के लिए कारण का विकृत होना, गलना नियम नहीं बीज और अंकुर का उपादान कारण और कार्य सम्बन्ध है। किन्तु कर्म और कर्मफल में ऐसा सम्बन्ध नहीं है। इसलिए इस जन्म के बहुत कर्मों का फल इस जन्म में भी मिल जाता है।

श्री पंडित ओमप्रकाश जीं शास्त्री विद्याभास्कर

प्रश्न—'अब रह गई एक चीज आप बार-बार कहते हैं कि रथ के पहिये की बात बड़ी विचित्र आपने कह दी। रथ का पहिया मैंने आपको कहा वह जड़-वस्तु है चेतन को उसके कर्म के अनुसार यह शरीर भोगने के लिए मिला है।

श्री ब्रह्मचारी वेदव्रत जीं मीमांसक

उत्तर—शास्त्री जी सोचिये, हमारा दृष्टान्त विषम नहीं है। शरीर जड़ है, धुरा जड़ है। शरीर को चलाने वाला चेतन है, धुरे को उपयोग करने वाला भी चेतन है इसलिए समता है। यदि आप यह कहें कि शरीर के संचालन में भोग कारण है तो धुरे का उपयोग भी भोग ही है। यह शास्त्री जी के पक्षानुसार है। बिना पिछले कर्म धुरा

भी नहीं मिल सकता अतः शरीर धुरे के समान और धुरा शरीर के समान है।

श्री पण्डित ओमप्रकाश जी शास्त्री विद्याभास्कर

प्रश्न--शरीर जो है वह भोग के लिए मिला है। **'चेष्टार्थाश्रयशरीरम्'** यह सारा शरीर चेष्टा करने को आगे के लिए कर्म करने को और पिछले भल भोगने को **'भोगापवर्गार्थंम् दृश्य् शरीरं वा'** ये सब जो कुछ मिला है ये पिछला भोगने को और आगे करने को मिला है। इस जन्म में जो कुछ कर्म करते हैं उनका फल अगले जन्म में मिलेगा।

श्री ब्रह्मचारी वेदव्रत जी मीमांसक—

(उत्तर) शास्त्री जी ने इस जन्म में किये कर्मों का अगले जन्म में फल मिलेगा। इसमें नहीं मिलता यह प्रतिज्ञा करके इसमें दो सूत्र प्रमाणरूप में उपस्थित किये। इन दोनों सूत्रों में एक भी शब्द ऐसा नहीं है जो यह कह दे कि इस जन्म में किये किसी कर्म का फल इसमें नहीं मिलता। इस प्रसंग का सूत्रों से कोई सम्वन्ध नहीं। इसलिये शास्त्री जी की यह प्रतिज्ञा प्रतिज्ञामात्र है। हेतुरहित होने से अमान्य है। इससे विरुद्ध इस जन्म में भी कुछ कर्मों का फल मिलता है। इसके सम्बन्ध में मैंने पूर्वत्र अनेक आर्ष-वचन दिए हैं। उसका कोई समाधान नहीं किया, करते तो पता चलता।

श्री पण्डित ओमप्रकाश जी शास्त्री विद्याभास्कर—

प्रश्न—'यात्रा करते हुए जो आदमी जहाँ कि उसका टिकट है वहाँ पर उतर जाता है उसकी यात्रा वहीं पर समाप्त होती है।

उत्तर—श्री ब्रह्मचारी वेदव्रत जी मीमांसक—शास्त्री जी ने जो दृष्टान्त दिया वह निश्चित आयु के प्रमाण देने पर ही घट सकता है। किन्तु परमात्मा आयु का दिन निश्चित करता है इस पूरे शास्त्रार्थ में एक भी प्रमाण नहीं दिया। और यह दृष्टान्त विषम है। यात्री टिकट के अनुसार विशिष्ट कारणवश पूर्व विशिष्ट स्थान से पहले भी उतर जाता है। और पैसे देकर टिकट को बढ़वा भी लेता है। अतः आयु घटती-बढ़ती है।

प्रश्न—श्री पंडित ओमप्रकाश जी शास्त्री विद्याभास्कर—'जिसके भोग आ गए समाप्ति पर वह मर जाएगा।' (पृ० ३२)

उत्तर—श्री ब्रह्मचारी वेदव्रत जी मीमांसक—यह साध्यसमहेत्वाभाससयुक्त होने से निग्रह स्थान है।

प्रश्न—श्री पंडित ओमप्रकाश जी शास्त्री विद्याभास्कर—'पहिया तो लम्बा चल सकता है क्योंकि वह जड़वस्तु है।' (पृ० ३२)

उत्तर—श्री ब्रह्मचारी वेदव्रत जी मीमांसक—इसका समाधान दे चुके हैं। शास्त्री जी ! महर्षि चरक ने ज्ञान पूर्वक सोच-समझकर शरीर की समता के लिये इस दृष्टान्त को दिया है। आज तक किसी ने भी नहीं कहा कि महर्षि का दृष्टान्त विषम है मैंने समता सिद्ध की है। उसको समझ लीजिये। कोई दोष तो शास्त्री जी ने सिद्ध किया नहीं।

प्रश्न—श्री पण्डित ओमप्रकाश जी शास्त्री विद्याभास्कर—'कोई आधार नहीं इसका कि सौ साल की उमर होती है सबकी।' (पृ० ३३)

उत्तर—श्री ब्रह्मचारी वेदव्रत जी मीमांसक—शास्त्री जी का यहआक्षेप उस पर होगा जो सब मनुष्यों की १०० वर्ष की आयु मानता है।

प्रश्न—श्री पण्डित ओमप्रकाश जी शास्त्री विद्याभास्कर—'वो कर्म जो हैं जिनको आप कहते हैं कि इस जन्म में मिलते हैं, वो हैं—जो कि दूसरे जन्म के हेतु नहीं हैं। मसलन मैंने रोटी खाई, मेरी भूख भग गई। ये कर्म हैं क्रियमाण कर्म।' (पृ० ३७)

उत्तर—श्री ब्रह्मचारी वेदव्रत जी मीमांसक—शास्त्री जी ने जो यह कहा रोटी खाना, पानी पीना क्रियमाण कर्म हैं। किन्तु महर्षि दयानन्द ने तो क्रियमाण सभी कर्मों को कहा है—"**जो वर्तमान में किया जाता है सो क्रियमाण कर्म** कहाता है।"

प्रश्न—श्री पण्डित ओमप्रकाश जी शास्त्री विद्याभास्कर—'आप बार-बार कहते हैं कि निश्चित बता दीजिये आयु। मैं तो निश्चित मानता ही नहीं कोई Standard of Age। मैं तो शुरू से कह रहा हूँ आपको बतानी पड़ेगी कि वो कौन सा आयु का Standard है जिसे आप घटाना-बढ़ाना कहते हैं।' (पृ० ३७)

उत्तर—श्री ब्रह्मचारी वेदव्रत जी मीमांसक—शास्त्रीजी का यह कथन ठीक नहीं क्योंकि शास्त्री जी ने 'सति मूले तद्विपाको···' सूत्र के द्वारा आयु को निश्चित सिद्ध करने का प्रयास किया है। अब आप यह कह रहे हैं कि मैं तो आयु निश्चित नहीं मानता। मैं भी नहीं मानता हूँ, आप भी नहीं मानते हो और वेद में भी नहीं है तो फिर आपका शास्त्रार्थ निरर्थक है। शास्त्रार्थ का विषय ही यह था कि आप आयु निश्चित मानते हैं उस प्रतिज्ञा को आप छोड़ बैठे, यह निग्रहस्थान है।

प्रश्न—श्री पण्डित ओमप्रकाश जी शास्त्री विद्याभास्कर—"सति मूले तद्विपाको······" आप इसको छूना नहीं चाहते।' (पृ० ३७)

उत्तर—श्री ब्रह्मचारी वेदव्रत जी मीमांसक—मैंने अनेक बार इस सूत्र के सम्बन्ध में पूछा। इस सूत्र में अथवा भाष्य में आयु की इयत्ता कहां लिखी है? किन्तु नहीं बताया। अतः सूत्र का जाप क्या सिद्ध करेगा? सूत्र का वास्तविक अर्थ यह है कि जब तक अविद्या बनी रहेगी तब तक कर्माशय का फल जाति, आयु व भोग के रूप में मिलेगा। इस सूत्र के प्रामाणिक व्यास-भाष्य में आयु को घण्टे, वर्षादि में बिल्कुल भी निश्चित नहीं किया गया।

प्रश्न—श्री पण्डित ओमप्रकाश जी शास्त्री विद्याभास्कर—'जो परमेश्वर ने दण्ड-व्यवस्था कायम कर दी उसको आप बदल नहीं सकते।' (पृ०४७)

उत्तर—श्री ब्रह्मचारी वेदव्रत जी मीमांसक—दण्ड-व्यवस्था का यह अर्थ नहीं कि जीव स्वतन्त्रता से कर्म करना छोड़ दे। दण्ड-व्यवस्था में स्वतन्त्रता का हनन नहीं। आपने दण्ड रूप में आयु का समय निश्चित परमात्मा करता है ऐसा एक भी प्रमाण नहीं दिया।

प्रश्न—श्री पण्डित ओमप्रकाश जी शास्त्री विद्याभास्कर—'एक बार लखनऊ में मेरे पेट में बड़े जोर का दर्द हुआ। चूर्ण मेरी कण्डी में रखा हुआ है और मैं ढूंढूं बार-बार कण्डी में हाथ ही न जावे।' (पृ० ४७)

टिप्पणी—१. "आर्योद्देश्यरत्नमाला" में द्रष्टव्य है।

उत्तर—श्री ब्रह्मचारी वेदव्रत जी मीमांसक—शास्त्री जी ! आपके मतानुसार आपका दर्द पूर्व कर्मानुसार था अत: मिलने के लिये आपका चेष्टा करना आपके सिद्धान्तानुसार व्यर्थ था। भोग बदलता ही नहीं है। आपको दु.ख हुआ भाग्य से, भाग्यसाध्य है, कण्डी में हाथ का न जाना हेतु है, हेतु अभी सिद्ध नहीं है, साध्य है। अतः साध्यसमहेत्वाभास होने से निग्रह-स्थान है। कभी कण्डी में हाथ जाता भी है कभी नहीं भी जाता, अत: अनैकान्तिक हेत्वाभास भी है।

प्रश्न—श्री पण्डित ओमप्रकाश जी शास्त्री विद्याभास्कर— 'आपको याद होगा मैंने कहा था कुछ क्रियमाण कर्म ऐसे हैं जिनका फल इस जन्म में मिलता है। जब मैंने रोटी खाई मेरी भूख भग गई।' (पृ० ५४)

उत्तर—श्री ब्रह्मचारी वेदव्रत जी मीमांसक—पहले तो कहते थे किसी का नहीं मिलता अब कहते हैं कुछ का मिलता है। जादू वो जो सर चढ़कर बोले। सत्य छुपाने से नहीं छुपता। शास्त्री जी इतना और कह देते एक व्यक्ति ने विष खाया वह मर गया बात स्पष्ट हो जाती।

प्रश्न—श्री पण्डित ओमप्रकाश जी शास्त्री विद्याभास्कर—'लेकिन ये सब क्रियमाण कर्म हैं। इन कर्मों की वो सजा मुझे अभी यहीं मिल गई।' (पृ० ५४)

उत्तर—श्री ब्रह्मचारी वेदव्रत जी, मीमांसक—वर्तमान में किए जाने वाले समस्त कर्म क्रियमाण कहाते हैं। क्रियमाण का अर्थ किया जाने वाला। प्रत्येक कर्म पहले क्रियमाण होता है। ऐसा कोई कर्म नहीं जो क्रियमाण न होता हो तो आपके लिये कोई कर्म पुनर्जन्म कारक होगा ही नहीं। आपने आवागमन के सिद्धान्त को सर्वथा खण्डित कर दिया। इस्लाम के सिद्धान्त में और आपके प्रतिपाद्य सिद्धान्त में क्या अन्तर है? आपके मतानुसार यह जो शरीर है पूर्वकृत कर्मों की सजा भोगने के लिए मिला है तो वर्तमान कर्मों की सजा यह कैसे भोग रहा है। इनको भोगने का सामर्थ्य इसमें कैसे व कहां से आया?

प्रश्न—श्री पण्डित ओमप्रकाश जी शास्त्री विद्याभास्कर—"दो घण्टे होने को आए और शास्त्रार्थ हो रहा है और अब तक मेरे पक्ष का ही पता नहीं। पता नहीं चला तो आप खण्डन मेरा किस बात का कर रहे हैं?" (पृ० ६३)

उत्तर—श्री ब्रह्मचारी वेदव्रत जी मीमांसक—'शास्त्री जी! यह विद्वान् का कर्तव्य है कि अपने पक्ष को पंच अवयवों सहित उपस्थित करे। अब तक आपने यह नहीं किया। मैं आपके किस पक्ष का खण्डन करता जबकि आपका कुछ पक्ष ही नहीं। जो पूर्व निश्चित हुआ था उसके अनुसार मैं अपने पक्ष की स्थापना और आपके पक्ष का खण्डन कर रहा हूँ। और आपकी वितण्डा से अपने पक्ष का उद्धार कर रहा हूँ। क्या आप इतना नहीं जानते कि आपने पक्ष रखा नहीं जकड़े गए। पक्ष ध्वस्त कर दिया जाएगा। इस बात का आपको अच्छे प्रकार से ज्ञात है। इसलिए अब तक पक्ष नहीं रखा और न आगे ही रखेंगे। जब वादी ने आपके ऊपर आक्षेप किया उस समय आपका कर्त्तव्य होता है कि उसका समाधान करें। किन्तु आपने पक्ष का उद्धार तो किया नहीं इसके स्थान पर आपने परपक्ष पर आक्षेप किया। इससे आप मतानुग्रह निग्रहस्थान पर आ गये।

प्रश्न—श्री पण्डित ओमप्रकाश जी शास्त्री विद्याभास्कर—"पश्येम शरदः शतम्"......का अर्थ यही है कि मेरे कान बहरे न हो जाएँ भगवान् जब तक मैं जीऊँ मैं सौ साल जीना चाहता हूँ। हे प्रभु! मेरी वाणी लड़खड़ा न जाय, मेरे हाथों में......न हो जाय मैं चल सकूं......।"

उत्तर—श्री ब्रह्मचारी वेदव्रत जी मीमांसक—शास्त्री जी ! आप तो अब तक गाय, घोड़े, ब्रह्मवर्चस् कीर्ति आदि की प्रार्थना को निकम्मी कहते रहे अब स्वयं ही मांगने लग गये, यह क्या हुआ ? अब तक तो इस प्रार्थना को अगले जन्म के लिए कहते थे अब तो इसी जन्म की आँख, नाक, कान, हाथ, पैर वा सौ साल जीने की प्रार्थना कर रहे हैं। आपका ही कथन है—'उमर लम्बी हो जाना कोई शुभ कर्मों का फल थोड़े ही है। मैं कहता हूँ 'लम्बी उमर का प्राप्त करना कोई अच्छी चीज नहीं है।' आप वेद-मन्त्र द्वारा दीर्घायुष्य की प्रार्थना कर रहे हैं। यदि आपकी आयु पूर्वजन्मकृत कर्मानुसार निश्चित हो चुकी तो आपकी प्रार्थना व्यर्थ है। यदि निश्चित नहीं तो आपकी प्रतिज्ञा खण्डित हुई '**उभयतो पाशा रज्जुः**'। आपने ही अपनी प्रतिज्ञा का खण्डन किया।

प्रश्न—श्री पण्डित ओमप्रकाश जी शास्त्री विद्याभास्कर—'स्वामी जी महाराज ! अगर इस जन्म का कर्म का फल इसी जन्म में मिलता है तो अगला जन्म कौन निश्चित करता है ?' (पृ० ६७)

उत्तर—श्री ब्रह्मचारी वेदव्रत जी मीमांसक—मैंने तो आद्योपान्त अपने वक्तव्य में यह कहीं भी नहीं कहा कि इस जन्म के कर्म का फल इसी जन्म में मिलता है। जब मैंने ऐसा कहा ही नहीं मेरे सिर पर यह क्यों मंढा जा रहा है। तब मेरे पक्ष के नाम पर अवैदिक सिद्धान्त का आरोपण करके उसका खण्डन करना न्याय शास्त्रानुसार छल है। वाग्जाल मात्र है। मैंने तो सप्रमाण यह कहा है कि इस जन्म के किये बहुत कर्मों का फल यहाँ भी मिलता है शेष का तो अगले में ही मिलेगा।

प्रश्न—श्री पण्डित ओमप्रकाश जी शास्त्री विद्याभास्कर—'इस जन्म में तो मैं पिछले जन्म के फल भोग रहा हूं'''कि अगला जन्म जो मिलेगा वह इस जन्म के किये कर्मों का फल मिलेगा। यह तो एक प्रत्यक्ष सिद्ध बात है इसमें प्रमाण की बात क्या ?'—(पृ० ७०)

उत्तर—श्री ब्रह्मचारी वेदव्रत जी मीमांसक—इससे सुस्पष्ट है कि शास्त्री जी को प्रत्यक्ष का लक्षण नहीं पता है। यह प्रत्यक्ष के लक्षण में नहीं घटती। यह तो आपकी कल्पना मात्र है।

प्रश्न—श्री पण्डित ओमप्रकाश जी शास्त्री विद्याभास्कर—'अगर आयु परिवर्तनशील है तो आपको जाति परिवर्तनशील माननी पड़ेगी, भोग परिवर्तनशील मानने पड़ेंगे।' (पृ० ७०)

उत्तर—श्री ब्रह्मचारी वेदव्रत जी मीमांसक—आयु निश्चित नहीं है यह मेरी प्रतिज्ञा है। आयु बदलने की बात आपने कल्पित की, मेरी तो प्रतिज्ञा नहीं है। इस सूत्र से भी निश्चित नहीं है।

प्रश्न—श्री पण्डित ओमप्रकाश जी शास्त्री विद्याभास्कर—'उसके कर्म नहीं थे उसको सजा क्यों मिल रही है इसका जवाब आपने दिया कोई ?' (पृ० ७०)

उत्तर—श्री ब्रह्मचारी वेदव्रत जी मीमांसक—जो दुःख भोगा जा रहा है यह अपने ही कर्मों का फल भोगा जा रहा है यह बात अभी साध्य है। क्योंकि शास्त्रों में दुःख के तीन कारण आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक लिखे हैं। इसलिए जीव के स्वतन्त्र होने से दूसरों को दुःख-सुख देते हैं इसीलिए स्वतन्त्रता से सुख-दुःख देने के कारण दण्ड और पारितोषिक का विधान है।

प्रश्न—श्री पण्डित ओमप्रकाश जी शास्त्री विद्याभास्कर—'आप कहेंगे कि तो बीमारी में दवाई कैसे खाऊँ अगर आपको दवाई से फायदा होना होगा आपको दुःख नहीं होगा तो वह दवाई आपको फायदा करेगी दुःख की समाप्ति में अपने निमित्त पैदा कर लिया क्रियमाण कर्म का।' (पृ० ३८)

उत्तर—श्री ब्रह्मचारी वेदव्रत जी मीमांसक—तो आपके कथनानुसार औषध लेना न लेना समान है क्योंकि जो होना है वह किसी भी प्रकार होकर रहेगा, होगा वही जो राम रच राखा।

श्री पं० ओमप्रकाश जी शास्त्री द्वारा दिया गया विशेष वक्तव्य

इस शास्त्रार्थ में मुख्य दो ही प्रश्न थे। एक तो यह कि क्या मनुष्य अपनी आयु स्वयं घटा या बढ़ा सकता है? और क्या अकाल मृत्यु सम्भव है? मेरे विचार में दोनों ही बातें असम्भव हैं। क्योंकि उक्त दोनों ही बातें युक्ति, तर्क तथा सिद्धान्त-विरुद्ध हैं। अतएव उक्त शास्त्रार्थ में मैंने एतद्विषयक जो मौलिक प्रश्न उठाये थे, उनका कोई भी स्पष्ट उत्तर श्री मीमांसक पं० वेदव्रत जी शास्त्रार्थ के अन्त तक नहीं दे सके।

मेरे द्वारा एतद् विषय-सम्बन्धी जो मुख्य प्रश्न उठाये गये थे—वे इस प्रकार थे—१. क्या मनुष्य-जाति की आप कोई सामान्य आयु निश्चित मानते हैं? २. यदि आप निश्चित मानते हैं, तो कितनी? ३. यदि निश्चित नहीं मानते, तो फिर आयु घटी या बढ़ी इसका आपके पास मापदण्ड क्या है? ४. जीवों को जो भी योनि मिलती है, वह उसके पूर्वजन्म से कृत कर्मों के आधार पर फलस्वरूप मिलती है, या नहीं? ५. और किसी भी योनि में गये जीव को जो जन्म, आयु तथा सुख-दुःख रूप फल-प्राप्ति होती है, वह उसके पूर्वजन्मों में किए कर्मों तथा संस्कारों के अनुसार परमेश्वर देता है? या नहीं? ६. यदि नहीं, तो फिर किस हेतु से जाति, आयु तथा भोगों में भेद, संसार में नजर आता है? और किसके निमित्त से? ७. यदि मनुष्य अपनी आयु बढ़ाने में स्वतन्त्र है, तो फिर मृत्यु को असम्भव क्यों न माना जावे? वह कौन-सी अवधि है, जहाँ आयु बढ़ाने की मनुष्य की शक्ति समाप्त हो जाती हैं, और स्वतन्त्रता भी। क्योंकि प्रत्येक मनुष्य का मरना अनिवार्य है। यदि कोई ऐसी अवधि है, तो वह क्यों है?

मुझे खेद के साथ लिखना पड़ता है, कि उपरिलिखित सभी प्रश्नों पर ब्रह्मचारी जी ने गम्भीरता से विचार नहीं किया। सारे शास्त्रार्थ को पढ़ लेने के बाद भी पाठकों को उपर्युक्त प्रश्नों का कोई स्पष्ट उत्तर पढ़ने को नहीं मिलेगा। उदाहरण के रूप में श्री ब्रह्मचारी जी अन्त तक प्राणियों और विशेषतः मनुष्यों की कोई निश्चित सामान्य आयु की अवधि नहीं बता सके—जिससे आयु का घटना या बढ़ना नापा जा सके। अथवा उससे कम या अधिक में अकाल मृत्यु समझी जावे। इस प्रकार उनके पक्ष का आधार ही समाप्त हो गया। क्योंकि स्वतन्त्रता से घटाई या बढ़ाई गई आयु का ज्ञान उस मनुष्य को अवश्य होना चाहिए, जो स्वयं अपनी स्वतन्त्रता से आयु को घटा-बढ़ा रहा है। जैसे एक मील की यात्रा करने वाला व्यक्ति ४ फर्लांग चलने के बाद जानता है, कि मैंने आधा मार्ग तय कर लिया है। आधा मार्ग और चलना है परन्तु यह स्पष्ट है कि कोई भी मनुष्य अपनी जीवन-यात्रा की मंजिल कितनी तय कर चुका है और कितनी अभी शेष है, नहीं बता सकता है। कम-से-कम उन्हें तो बतानी चाहिए थी जो घटाने या बढ़ाने पर विश्वास करते हैं।

इसके विपरीत मैंने योगदर्शन के "**सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगाः।**" इस सूत्र के अनुसार बार-बार यह बताने का प्रयत्न किया कि प्राणियों को जो अगला जन्म अर्थात् योनि-विशेष, आयु तथा सुख-दुःख रूप भोग प्राप्त होते हैं, वह तत्तद् जीवों के पूर्व मानव-देहों द्वारा कृत कर्मों के हेतु से प्राप्त होते हैं। जिनका प्रदाता स्वयं न जीव होता है और न स्वयं उसके कर्ममात्र, जैसा कि जैन-सिद्धान्त है। अपितु ईश्वर, जीवों के पूर्वजन्म के किये कर्मों तथा संस्कारों जिन्हें शास्त्रकार ने धर्माधर्म नाम से वर्णित किया है, के अनुसार उक्त तीन वस्तुएँ फल रूप में देता है। इसकी पुष्टि में न्यायदर्शन के निम्नलिखित सूत्र वात्स्यायनभाष्य सहित विचारणीय हैं—

१. **पूर्वकृतफलानुबन्धात्तदुत्पत्तिः ॥** (न्याय० ३-२-६३) इस सूत्र पर वात्स्यायन भाष्य—

"**पूर्वशरीरे या प्रवृत्तिर्वाग्बुद्धिशरीरराम्भलक्षणा तत्पूर्वकृतं कर्मोक्तं तस्य फलं तज्जनितौ धर्माधर्मौ तत्फलस्यानुबन्ध आत्मसमवेतस्यावस्थानं तेन प्रयुक्तेभ्यो भूतेभ्यस्तस्य शरीरस्योत्पत्तिः न स्वतन्त्रेभ्य इति।**" **इत्यादि जिसका अर्थ यह है कि—**

"पूर्व शरीर में किये कर्मों के फलानुबन्ध से देह की उत्पत्ति होती है। अर्थात् धर्म और अधर्म रूप अदृष्ट से प्रेरित पंचभूतों से शरीर की उत्पत्ति होती है, स्वतन्त्र भूतों से नहीं।" इसी बात को महर्षि दयानन्द ने भी सत्यार्थ-प्रकाश में निम्नलिखित पंक्तियों में संपुष्ट किया है।

(१) **प्रश्न**—ईश्वर ने किन्हीं जीवों को···इत्यादि···

उत्तर—पक्षपात नहीं आता क्योंकि उन जीवों के पूर्व-सृष्टि में किये हुए "**कर्मानुसार व्यवस्था करने से**"। जो कर्म विना जन्म देता, तो पक्षपात आता॥ (सत्यार्थ-प्रकाश समुल्लास ८ पृष्ठ ३०५)

(२) "वैसे ही जगत् में विचित्र सुख-दुःखादि की घटती-बढ़ती देख के पूर्वजन्म का अनुमान क्यों नहीं जान लेते॥" (स० प्र० पृ० ३४१)

अर्थात् पूर्वजन्म के कर्मानुसार ही इस जन्म में सुख-दुःखादि की कमोवेशी संसार में नजर आती है।

इसी बात की पुष्टि में अगला पैरा—

"और जो पूर्वजन्म को न मानोगे, तो परमेश्वर पक्षपाती हो जाता है। क्योंकि बिना पाप के दारिद्र्यादि दुःख और बिना पूर्व-संचित पुण्य के राज्य धनाढ्यता और बुद्धि उसको क्यों दी? और "**पूर्वजन्म के पाप-पुण्य के अनुसार दुःख-सुख के देने से**" परमेश्वर न्यायकारी यथावत् रहता है।

उसके आगे पृ० ३४२ पर पुनः ऋषि लिखते हैं—

(३) **प्रश्न**—परमात्मा ने प्रथम ही से जिसके लिए जितना देना विचारा है, उतना देता और जितना काम करना है, उतना करता है।

उत्तर- उसका (ईश्वर का) विचार **जीवों के कर्मानुसार होता है** अन्यथा नहीं।

(४) इसके आगे पृ० ३४३ पर पुनः महर्षि लिखते हैं—

"देखो एक जीव विद्वान्, पुण्यात्मा, श्रीमान्"···इत्यादि पैरा की अन्तिम पंक्तियाँ—

"इत्यादि **जीवों को विना पुण्य-पाप के सुख-दुःख होने से परमेश्वर पर दोष** आता है।"

(५) पुनः इसी बात की पुष्टि सत्यार्थ-प्रकाश पृ० ३४४ के प्रथम पैरा की अन्तिम पंक्तियों में महर्षि ने निम्न शब्दों में की है—

इसलिए पूर्वजन्म के पुण्य के अनुसार वर्त्तमान जन्म, और **वर्त्तमान तथा पूर्वजन्म के कर्मानुसार भविष्यत् जन्म**

होते हैं।

महर्षि के इस वाक्य से दो बातें स्पष्ट हो गईं—

(१) एक तो यह कि वर्त्तमान जन्म पूर्वजन्म के पुण्य-पाप के अनुसार होता है।

(२) और दूसरी यह कि भविष्यत् जन्म भी वर्त्तमान जन्म में किये कर्मानुसार तथा पूर्वजन्मों के उन संचित कर्मों के अनुसार फलस्वरूप मिलते हैं, जिनके फल अभी भोगने शेष हैं। अर्थात् जो अभी मनुष्य या मनुष्येतर योनियों में भोगने हैं।

(६) इसके आगे महर्षि इसी पृष्ठ ३४४ पर अंकित दूसरे प्रश्न के उत्तर में लिखते हैं—

उत्तर—"हाँ! आता जाता है। क्योंकि जब पाप बढ़ जाता है, पुण्य न्यून होता है, तब मनुष्य का जीव पश्वादि नीच शरीर और जब धर्म अधिक तथा अधर्म न्यून होता है, तब "देव" अर्थात् विद्वानों का शरीर मिलता और जब पुण्य-पाप बराबर होता है, तब साधारण मनुष्य-जन्म होता है। इसमें भी पुण्य-पाप के उत्तम, मध्यम और निकृष्ट होने से मनुष्यादि में भी उत्तम, मध्यम, निकृष्ट शरीरादि सामग्री वाले होते हैं। और जब अधिक पाप का फल पश्वादि शरीर में भोग लिया है, पुनः पाप-पुण्य के तुल्य रहने से मनुष्य शरीर में आता और पुण्य के फल भोगकर फिर भी मध्यस्थ मनुष्य के शरीर में आता है। इसके आगे पृष्ठ ३४५ की पंक्ति ३ में महर्षि लिखते हैं—"पश्चात् **धर्मराज अर्थात् परमेश्वर उस जीव के पाप-पुण्यानुसारे जन्म देता है।"**

उपरिलिखित सत्यार्थ-प्रकाश के विस्तृत उद्धरण मुझे इसलिए देने पड़े, क्योंकि श्री ब्रह्मचारी जी ने अपने वक्तव्य ९ तथा १० (शास्त्रार्थ) में मेरे द्वारा योगदर्शन के **"सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगाः"** (२।१३) सूत्र के उत्तर में **"जाति"** शब्द का अर्थ मनुष्यादि योनियाँ न मानकर व्यास-भाष्य के अनुसार **"जन्म"** किया। मेरी दृष्टि में **"जन्म"** तथा **"योनि"** में कोई अन्तर नहीं। दोनों ही शब्दों से एक ही भाव निकलता है। प्रमाण के लिए व्यास-भाष्य पर वृत्तिकार श्री भोजदेव जी ने अपनी वृत्ति में **"जातिमनुष्यत्वादिः"** वाक्य से मेरे मत की पुष्टि की है। अब प्रश्न यह रह जाता है कि उक्त तीनों वस्तुएँ जाति, आयु तथा भोग (सुख-दुःखादि) इसी वर्तमान जन्म में किये कर्मों के विपाक में इसी जीवन में मिलते हैं या पूर्वजन्मों में किये कर्मानुसार? इस प्रश्न का समाधान योगदर्शन के इसी सूत्र पर भाष्य करते हुए स्वयं महर्षि-व्यास ने निम्न शब्दों में किया है—

"तत्रेदं विचार्यते-किमेकं कर्मैकस्य जन्मनः कारणमथैकं कर्मानेकं जन्माऽऽक्षिपति। द्वितीया विचारणीया—किमनेकं कर्मानेकं जन्म निवर्त्तयति। अथानेकं कर्मैकं जन्म निवर्त्तयति इति। न तावदेकं कर्मैकस्य जन्मनः कारणम्। कस्मात्—अनादिकालप्रचितस्यासंख्येयस्यावशिष्टस्य कर्मणः साम्प्रतिकस्य च फलक्रमानियमादनाश्वासो लोकस्य प्रसक्तः। स चानिष्टः, इति। न चैकं कर्मानेकस्य जन्मनः कारणम्। कस्मात्—अनेकेषु कर्मसु एकैकमेव कर्मानेकस्य जन्मनः कारण-मित्यवशिष्टस्य विपाककालाभावः प्रसक्तः स चाप्यनिष्टः इति। न चानेकं कर्मानेकस्य जन्मनः कारणम्। कस्मात्—तदनेकं जन्म युगपन्न संभवति इति क्रमेणैव वाच्यम्। तथा च पूर्वदोषानुषङ्गः।"

"तस्माज्जन्मप्रायणान्तरे कृतः पुण्यापुण्य कर्माशयप्रचयो विचित्रः प्रधानोपसर्जनभावेनावस्थितः प्रायेणाभि-व्यक्त एक प्रघट्टकेन मरणं प्रसाध्य संमूर्छित एकमेव जन्म करोति। तच्च जन्म तेनैव कर्मणा लब्धायुष्कं भवति। तस्मिन्नायुषि तेनैव कर्मणा भोगः संपद्यते इति। असौ कर्माशयो जन्मायुर्भोगहेतुत्वात् त्रिविपाकोऽभिधीयत इति। अत एकभविकः कर्माशयः उक्तः।

पाठकों की सुविधा के लिए उपरिलिखित संस्कृत-सन्दभ का शब्दश: हिन्दी-अनुवाद नीचे दिया जाता है—

"इस विषय में यह विचार किया जाता है, कि क्या एक कर्म एक ही जन्म का कारण होता है। अथवा एक कर्म अनेक जन्म देता है? द्वितीय विचारणीय विषय यह है कि क्या अनेक कर्म अनेक जन्मों में वर्त्तते हैं। अथवा अनेक कर्म एक जन्म वर्त्तते हैं? एक कर्म एक जन्म का कारण है, यह भी सिद्धान्त नहीं है? क्योंकि कर्मों के फल भोगने में क्रम का नियम नहीं है। अर्थात् प्रथम किया हुआ प्रथम, और उसके पश्चात् किया हुआ, उसके पश्चात्, और उसके भी पश्चात् किया हुआ उसके पश्चात्, इस प्रकार भोगें। क्योंकि इस विचार से कि न जाने कब फल आयेगा? वर्त्तमान काल में मनुष्यों को विश्वास न होने से उत्तम कर्म करने का उत्साह भी न हो, और यह अनिष्ट है। और पुन: यदि क्रम से भोगें तो अनादिकाल से संचित हुये असंख्येय कर्म अवशिष्ट रहे हुओं का कब भोग होवे? अत: यह भी इष्ट नहीं। इस हेतु एक कर्म एक जन्म का कारण नहीं हो सकता। और यह भी नहीं है कि एक कर्म, अनेक जन्मों का कारण हो। क्योंकि—अनेक कर्मों में से एक ही कर्म अनेक जन्मों का कारण हो, तो शेष रहे हुये कर्मों का फल भोगने के लिये काल कहाँ से आयेगा? अर्थात् उसका अभाव रहेगा। और यह भी नहीं है कि अनेक कर्म अनेक जन्मों के कारण हों। क्योंकि अनेक जन्म एक साथ संभव नहीं। क्रम से ही कहो, तो उसी प्रकार दोष-प्रसंग आता है।

अब आगे महर्षि व्यास सत्य-सिद्धान्त निम्न शब्दों में प्रकट करते हैं

"इस कारण जन्म से लेकर मरण पर्यन्त बीच में किये हुए पुण्य-पाप रूप कर्म और उनकी वासना की उत्पत्ति में विचित्रता है। कर्म, प्रधान रूप" और "उपसर्जन रूप" इन दो भेदों से रहते हैं। **मरने पर उनकी प्रकटता होती है।** "प्रधान" कर्म वह कहलाते हैं; जिनके संस्कार ऐसे बलवान् हों कि मरने पर सबसे **प्रथम उन्हीं के फल वाली योनि प्राप्त हो।** और जो मरने पर तत्काल फल देने में समर्थ न हो, वह "उपसर्जन कर्म कहलाते हैं। मृत्यु पाकर एक शरीर के द्वारा मूर्छित से हुए एक ही जन्म करते हैं। **वह जन्म उन्हीं के कर्मों से आयु को लाभ कराने वाला होता है।** उस आयु **में उन्हीं कर्मों द्वारा भोग प्राप्त होता है।** इसलिये वह "कर्माशय" जन्म, आयु और भोग का हेतु होने से "त्रिविपाक" तीन फलों वाले कहे जाते हैं। अतएव यह एक जन्म का कर्माशय कहा गया[1]।"

इस प्रकार मूल सूत्र "**सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगा:।**" पर भाष्य करते हुये महर्षि व्यास ने सिद्धान्त रूप से निम्न बातें सिद्ध कही हैं—

१. प्रत्येक जीव के कर्मों में विचित्रता है। अत: फलों में भी विचित्रता (विभिन्नता) रहेगी। वासनाएं भी विभिन्न होती हैं और उनका परिणाम भी विभिन्न होता है।

२. कर्म, "**प्रधानरूप**" तथा "**उपसर्जन रूप**" से दो प्रकार के होते है। ये दो प्रकार के कर्म ही जीव के अगले जन्मों के कारण होते हैं।

३. इन दोनों प्रकार के कर्मों के फल मृत्यु के पश्चात् जीवों को प्राप्त होते हैं। प्रथम प्रधान रूप के इसी जीवन के तुरन्त बाद पहिले पुनर्जन्म में और दूसरे "**उपसर्जन रूप कर्म**" के अन्य भविष्यत् जन्मों में। परन्तु दोनों प्रकार के ही कर्मों का फल[2] मरणोपरान्त अगले जन्मों में मिलता है।

टिप्पणी—१. इस पर पूर्वापर विचार परिशिष्ट में पढ़िये। (सम्पादक)

२. यह केवल त्रिविपाक का नियम है, एक-विपाक, द्विविपाक का नहीं। (सम्पादक)

४. यह कर्माशय ही "त्रिविपाक" नाम से जाति, आयु तथा भोग रूप में जीव को मरणोपरान्त मिलता है। अर्थात् इस जन्म में किये गए कर्मों के अनुसार अगले जन्मरूपों में योनियां, आयु तथा दुःख-सुखादि भोग प्राप्त होता है।

५. इस सूत्र में आया "जाति" शब्द योनि-वाचक ही है।

इस स्थिति में मेरा यह पक्ष सिद्ध होता है कि इस सूत्र के आधार पर जीवों की योनि, आयु तथा भोग पूर्वकृत कर्मों के अनुसार ही प्राप्त होते हैं और उनका कारण जीव के कर्म और वासनाएं हैं। परन्तु निमित्त परमात्मा स्वयं है जो—"**याथातथ्यतोऽर्थान्व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः**" (यजुर्वेद)

इस वेदमन्त्र[1]-भाग के "**यथा कर्म तथा फलम्**" के अनुसार जीवों को देते हैं। जीव कर्म करने में किंचित् स्वतन्त्र है। फल भोगने में सर्वथा[2] परतन्त्र है। किंचित् स्वतन्त्र होने का भाव यह है कि जिन कर्मों का भोग से अर्थात् फल से सम्बन्ध है, उनमें परतन्त्र है परन्तु शरीर के द्वारा चेष्टादि कर्म करने में स्वतन्त्र है। अतः जीव की यह स्वतन्त्रताकृत कर्मों के अनुसार प्रभु द्वारा प्रदत्त फलों अर्थात् जाति, आयु तथा भोगों में परिवर्तन करने में अक्षम[3] है, परतन्त्र है। अतएव मैंने उक्त शास्त्रार्थ में अनेक स्थलों पर उक्त तीनों वस्तुओं को अपरिवर्तनशील सिद्ध किया है। जैसे मनुष्य इस जन्म में प्राप्त योनि को नहीं बदल सकता; चूंकि वह परमेश्वर द्वारा यथा तथा रूप में निश्चित करके दी गई है। वैसे ही आयु तथा सुख-दुःखादि भोग भी यथा तथा रूप में परमेश्वर द्वारा निश्चित तथा अपरिवर्तनीय हैं। यह स्पष्ट सिद्ध है। इन स्पष्ट बातों पर भी श्री ब्रह्मचारी जी ने गम्भीरता से विचार नहीं किया। सम्प्रति एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न रह जाता है।

जिसकी ओर श्री अध्यक्ष महोदय ने भी अपने अन्तिम वक्तव्य में ध्यान दिलाया है। वह प्रश्न यह है कि यदि जीवों की आयु पूर्वजन्म-कृत कर्मों के फल रूप में निश्चित है, तो वह कितनी है? यह प्रश्न श्री ब्रह्मचारी जी ने भी उठाया है। यद्यपि इसका उत्तर शास्त्रार्थ के वक्तव्यों में कई स्थलों पर मेरे द्वारा दिया जा चुका है। फिर भी विशेष स्पष्टीकरण के लिए निम्नलिखित पंक्तियों में अपना उत्तर दे रहा हूँ—

उत्तर—चूंकि जीव अल्पज्ञ है। अतः वह उसके पूर्वकृत कर्म तथा वासनाओं के साथ-साथ उनके फलरूप में प्राप्त उक्त तीनों "**जात्यायुर्भोगाः**" को नहीं जान सकता। उसे न तो इस जन्म से पूर्व हुए अनेक जन्मजन्मान्तरों का ही ज्ञान सम्भव है, और न भविष्य जन्मों का ही। और न इसी जन्म में प्राप्तव्य भोगों का ही ज्ञान संभव है। अर्थात् उसे कल कौन सा दुःख या सुख आने वाला है, और कितना? यह प्रायः उसके ज्ञान से बाहर है। यद्यपि सुख-दुःखादि सभी निश्चित हैं। इसी प्रकार से प्रत्येक जीव के कर्मानुसार जो निश्चित आयु उसे प्राप्त हुई हैं। उसे उसका भी कोई ज्ञान संभव नहीं। अतएव उसका परिगणन नहीं किया जा सकता।

हाँ—जैसे सुख-दुःखादि के आने पर हम समझ लते हैं, कि यह हमारे ही किन्ही कर्मों का फल में मिलने निश्चित थे। इसी प्रकार मृत्यु के आने पर हम समझ लेते हैं, कि मृत्यु का निश्चित "**काल**" आ गया। अतएव "**अकाल मृत्यु**"

टिप्पणी—१. इस वेदमन्त्र का यथार्थ भी परिशिष्ट में देखिये (सम्पादक)

२. इस विषय में ऋषि-मान्यता भिन्न है।

३. सुख-दुख के भोग में भी जीव परिवर्तन करता है। देखिये परिशिष्ट में। (सम्पादक)

जैसी कोई मृत्यु संभव नहीं। जैसे मैं शास्त्रार्थ में कह चुका हूँ कि यह मृत्यु-काल सबका पृथक्-पृथक् है। जिसे घटाना या बढ़ाना मनुष्य के ज्ञान तथा शक्ति दोनों से परे है। जहाँ तक इस जन्म में किये जाने वाले क्रियमाण कर्मों का सम्बन्ध है; वे दो प्रकार के होते हैं। एक तो वह जो प्रारब्ध द्वारा प्राप्त शरीर आदि के मृत्युपर्यन्त रक्षण, भरण तथा पोषणादि के लिए किये जाते हैं। जैसे खाना, पीना, चलना, सोना, देखना, सुनना आदि······दूसरे वह कर्म होते हैं जो पुण्य-पाप रूप में अगले जन्म के कारण बनते हैं। जैसे भोजन, और भोजन करने की क्रिया जीवन-यापन के लिए आवश्यक है अतः भोजन तथा भोजन की क्रिया अगले जन्म के कारण नहीं होते। परन्तु जो भोजन मैं कर रहा हूँ, यदि वह भोजन वेद-विरुद्ध है और उसकी प्राप्ति के साधन तथा प्रयत्न अधर्म तथा पापयुक्त हैं तो उनका ही फल अगले जन्म-जन्मान्तरों में प्रभु की व्यवस्थानुसार मुझे मिलेगा। इसी प्रकार से शुभ कर्मों की स्थिति है। यद्यपि उक्त दोनों प्रकार के कर्म, इस जीवन में किये जाने के कारण **"क्रियमाण कर्म"** ही कहलाते हैं। परन्तु इनमें से पुण्य-पाप रूप से किए गये कर्मों का फल अगले जन्मों में मिलता है। यही बात योगदर्शन के उपर्युक्त व्यास-भाष्य से भी सिद्ध होती है। श्री ब्रह्मचारी जी ने 'इस जन्म के कर्मों का फल इस जन्म में भी मिल जाता है' इसके लिए निम्नलिखित प्रमाण शास्त्रार्थ में उपस्थित किये हैं। यद्यपि उनका समाधान मेरे द्वारा शास्त्रार्थ में यथास्थान किया जा चुका है, तथापि विषय के स्पष्टीकरण के लिए उस पर पुनः विचार किया जा रहा है।

प्रमाण—

१. **"हे ईश्वर दयानिधे···"** आदि सन्ध्या-स्थित प्रार्थना-वाक्य में आया **"सद्यः"** शब्द।

२. **"यां मेधां देवगणाः···"** मन्त्र में आया **"अद्य"** शब्द।

मेरा उत्तर—उपर्युक्त प्रमाणों में आये **"सद्यः"** तथा **"अद्य"** शब्दों से इस जन्म के कर्मों का फल इसी जीवन में मिल जाता है, यह सिद्ध नहीं होता। चूँकि श्री ब्रह्मचारी जी ने **"सद्यः"** का अर्थ तत्काल तथा **"अद्य"** का अर्थ **"आज"** किया है। यद्यपि शब्दार्थ की दृष्टि से यह शब्दार्थ ठीक है। परन्तु सैद्धान्तिक दृष्टि से यह अर्थ अनुपयुक्त है। क्योंकि उक्त सन्ध्या-वाक्य में प्रार्थना द्वारा जिन धर्मार्थ काम मोक्षादि की याचना की जा रही है, वह तत्काल प्राप्तव्य ही नहीं है। क्योंकि उक्त चारों ही वस्तुएँ मनुष्यों को शुभ-कर्मों के फलस्वरूप प्राप्त होती हैं। केवल प्रार्थना करने मात्र से न किसी को मिली है, और न मिल सकती है। यह ही बात **"मेधा"** के बारे में भी है। यदि केवल प्रार्थना मात्र से उक्त वस्तुएँ "तत्काल" मिल जाया करतीं तो, इससे सरल मोक्ष प्राप्त करने का साधन और क्या होता? कम से कम वे व्यक्ति जो प्रातः सन्ध्या में इस वाक्य को बोलते, वह **"सद्यः"** मोक्ष प्राप्त कर लेते और सायंकाल की संध्या से भी बच जाते। इस पर वादी यह प्रश्न कर सकता है, कि "फिर तो सभी प्रार्थनाएँ व्यर्थ हो गयीं? हाँ—मुझे यह कहने में कोई संकोच नहीं कि बिना शुभ कर्म किये, केवल इस प्रकार की प्रार्थनायें वस्तुतः व्यर्थ हैं। क्योंकि महर्षि दयानन्द की दृष्टि में **"प्रार्थना"** किन्हीं वस्तुओं को मांग लेना मात्र नहीं है। महर्षि ने अपने लघु-ग्रन्थ **"आर्योद्देश्य रत्न माला"** में **"प्रार्थना"** तथा **"प्रार्थना का फल"** की जो परिभाषायें की हैं वह विचारणीय हैं—

परिभाषायें—

१. **प्रार्थना**—अपने पूर्ण पुरुषार्थ के उपरान्त उत्तम कर्मों की सिद्धि के लिए, परमेश्वर अथवा किसी सामर्थ्यवान् व्यक्ति से सहायता लेने, का नाम **"प्रार्थना"** है।

टिप्पणी—१. यह महर्षि दयानन्द के वेद-भाष्य के विरुद्ध है। देखिये परिशिष्ट में। (सम्पादक)

प्रार्थना का फल—"अभिमान का नाश, आत्मा में आर्द्रता, गुणग्रहण में प्रीति तथा अत्यन्त पुरुषार्थ का होना **"प्रार्थना"** का फल कहलाता है।

महर्षि की उपर्युक्त प्रार्थना-परिभाषा से वह स्पष्ट हो गया कि प्रार्थना करने का किसी भी व्यक्ति को तब तक अधिकार नहीं है, जब तक वह स्वयं शुभ कर्मों के करने में अपना पूर्ण पुरुषार्थ का प्रयोग न कर चुका हो। पहली परिभाषा में आये **"उत्तम कर्मों की सिद्धि के लिए"** इस शब्द ने एक बात और स्पष्ट कर दी, कि प्रार्थना उत्तम कर्मों की सिद्धि में परमश्वर की सहायता मात्र प्राप्त करने के लिए की जाती है न कि किन्हीं वस्तुओं की प्राप्ति के लिये। तद्यपि वह कभी तत्काल प्राप्त नहीं होती। इसका आशय स्पष्ट है कि धर्मार्थ, काम, मोक्ष आदि सभी इस जन्म के शुभ कर्मों के फलस्वरूप पुनर्जन्मों में, अथवा केवल पुण्य कर्मों के फल में मोक्ष की प्राप्ति के रूप में प्राप्त होते हैं। अतः **"सद्यः"** तथा **"अद्य"** शब्दों के जो अर्थ तत्काल तथा आज ही श्री ब्रह्मचारी जी ने किये हैं, वे अशुद्ध हैं।

"प्रार्थना के फल" से भी इसी सिद्धान्त की पुष्टि होती है। अर्थात् प्रार्थना का फल किन्हीं वस्तुओं की प्राप्ति नहीं। अपितु अभिमानादि जैसे दुर्गुणों के नाश शुभ गुण-कर्मों में प्रीति तथा शुभकर्मों के लिए अत्यन्त पुरुषार्थ होना है। इसमें भी कर्मों की प्रधानता है। केवल **"प्रार्थना"** शब्दोच्चारण मात्र से तत्काल याचित वस्तु प्राप्त होने की नहीं। अतः फल-प्राप्ति के लिए कर्म ही प्रधान है। यह सिद्ध हो गया। इसके अतिरिक्त एक मन्त्र और श्री ब्रह्मचारीजी ने अपने पक्ष में प्रस्तुत किया था। मंत्र यह है—

"स्तुता मया वरदा वेदमाता प्रचोदयन्ताम्, पावमानी द्विजानां आयुःप्राणं प्रजां पशुं कीर्त्तिम् द्रविणं ब्रह्मवर्चसं मह्यं दत्त्वा व्रजत ब्रह्मलोकम्"। (अथर्ववेद) इस मन्त्र के सम्बन्ध में यद्यपि शास्त्रार्थ वक्तव्य सं० 4 में मैं पर्याप्त रूप से अपने विचार प्रकट कर चुका हूँ। तथापि श्री ब्रह्मचारी जी के भ्रम-निवारणार्थ कुछ और लिखना अनिवार्य है, जो निम्न पंक्तियों में प्रस्तुत है—मेरे भाव को समझने के लिए इस मन्त्र के सम्बन्ध में निम्नलिखित प्रश्न विचारणीय हैं—(१) इस मन्त्र का देवता तथा कर्त्ता कौन है? (2) इस मन्त्र में आई **"व्रजत"** क्रिया किसके लिये है? (३) यदि यह क्रिया **"ण्यन्त"** क्रिया है तो क्या आयु, प्राण, प्रजा और पशु आदि सांसारिक कामनाओं वाला व्यक्ति मोक्ष का अधिकारी हो सकता है?

मेरी उक्त मंत्र के सम्बन्ध में यह स्पष्ट सम्मति है कि इस मन्त्र में आगत **"व्रजत"** क्रिया से **"ण्यन्तक्रिया"** नहीं है। किसी क्रिया का ण्यन्त हो जाना व्याकरण की दृष्टि से असम्भव है, ऐसा मैं नहीं मानता। परन्तु उसके प्रयोग से यदि अर्थ का अनर्थ ही होने लगे तो ण्यन्तक्रिया-परक अर्थ करना अनुचित है। मेरी सम्मति में इस मन्त्र का कर्त्ता स्वयं ईश्वर है जिसे देवता के रूप में **"गायत्री"** अर्थात् गायन्तं त्रायते – इति गायत्री। यहाँ गायत्री शब्द से ईश्वर लिया जायेगा जैसा कि महर्षि-दयानन्द ने **"इसलिए ईश्वर का नाम गायत्री है।"** यह ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका ग्रन्थ-प्रामाण्य विषय में लिखा है। मन्त्र के ऊपर अंकित किया है। इस प्रकार मन्त्र के कर्त्ता का बोध हो जाने पर मन्त्र का अर्थ स्पष्ट हो जाता है। जिससे न सिद्धान्त की हानि ही होती है जैसी कि ण्यन्त क्रिया बनाने से होती थी। इस प्रक्रिया से मन्त्र का अर्थ निम्न प्रकार होगा—

अर्थ—परमेश्वर कहता है, कि हे मनुष्यो! मुझ ईश्वर ने ज्ञान के प्रकाशक वेदों का यथार्थ रूप में वर्णन या उपदेश कर दिया है। मेरा यह वेदज्ञान तुम्हारे लिये शुभकर्म-ज्ञान में सहायक है, और द्विजों (अर्थात् जो उपनीत मेरे सामीप्य में आने के व्रती हैं) उन्हें पवित्र करने वाला है, वह वेदज्ञान तुम्हें प्रेरित करे कि तुम अपने आयु, प्राण, प्रजा, पशु, कीर्त्ति, एश्वर्य तथा ब्रह्मवर्चस् आदि सभी वस्तुओं को मेरे नाम पर बलिदान करके अर्थात् परोपकरादि कर्मों में

त्याग करके मोक्ष को प्राप्त करो। इस मन्त्र का यह अर्थ युक्ति तथा सिद्धान्त सम्मत है। क्योंकि जब तक उक्त सांसारिक पदार्थों की इच्छा तथा उनकी प्राप्ति की वासना वर्तमान है, तब तक कोई मानव मोक्षाधिकारी नहीं बन सकता। वेद के "**तेन त्यक्तेन भुंजीथाः मा गृधः कस्य स्विद् धनम्**" इस आदेश का भी यह ही भाव है; कि मनुष्य को सांसारिक ऐश्वर्यों को त्यागपूर्वक ही भोगना चाहिये, उनका पूर्ण त्याग किये बिना मुक्ति सम्भव नहीं। अतः श्री ब्रह्मचारी जी द्वारा किये गये अर्थ का मैंने अपने शास्त्रार्थ वक्तव्य सं० 4 में खण्डन किया था।

श्री ब्रह्मचारी जी ने अपने विशेष वक्तव्य के पृष्ठ ७ पर शास्त्रार्थ पृ० २४ पर प्रदर्शित किसी निराधार प्रश्न को लिखकर उस पर विशेष रूप से लिखा है। जहाँ तक मेरी स्मृति है, ऐसा मैंने कहीं नहीं कहा है कि सभी क्रियमाण कर्मों की सजा मुझे अभी नहीं मिल गयी चूंकि यह मेरा पक्ष ही नहीं है। इस सम्बन्ध में मेरी जो सम्मति है, वह मैं ऊपर विस्तार से प्रकट कर चुका हूँ फिर भी अन्त में मुझे एक बात विशेष रूप से कहनी है—एक तो यह कि शास्त्रार्थों में हेत्वाभास, निग्रहस्थान आदि पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग प्रायः वक्ता या तो अपनी योग्यता की धाक बिठाने के लिये करता है अथवा उन पारिभाषिक शब्दों को लेकर मूल-विषय से प्रतिपक्षी को हटाने के लिये करता है। ताकि उसका सारा समय इन्हीं बातों में लग जाये और असली विषय पर न वह किये प्रश्नों का उत्तर दे सके और न नये आक्षेप कर सके—अतएव इस शास्त्रार्थ में श्री ब्रह्मचारी जी जो इस प्रकार के शब्द बोलते रहे मैंने जानबूझकर उपेक्षित किया—और मूल-विषय से हटाने के उनके प्रयत्न को खण्डित कर दिया है। "शमित्योम्"

श्री पं० ओमप्रकाश जी शास्त्री के प्रश्नों का उत्तर

ब्रह्मचारी वेदव्रत मीमाँसक द्वारा

श्री शास्त्री जी ने आयु का घटना-बढ़ना असम्भव माना है परन्तु यह मान्यता वेद, ऋषि और प्रत्यक्षादि प्रमाणों के विरुद्ध होने से सर्वथा मिथ्या है। जैसे—"**अन्यथा वीर्य व्यर्थ जाता दोनों की आयु घट जाती**" (सत्यार्थ-प्रकाश ४ समु० पृ० ७२)। "**अखण्डित ब्रह्मचर्य सेवन से तीसरे उत्तम ब्रह्मचर्य का सेवन कर पूर्ण अर्थात् चार सौ वर्ष पर्यन्त आयु को बढ़ावें**" (सत्यार्थ प्रकाश तृतीय समु० पृ० ३३)। इन प्रमाणों से आयु का घटना-बढ़ना न मानना काल्पनिक है, यह स्पष्ट है। सात प्रश्नों के उत्तर—

(१-२) मैं मनुष्य-जाति की कोई सामान्य आयु नहीं मानता।

(३) आयु के निश्चित मानने पर तो आयु का घटना-बढ़ना बनता ही नहीं। निश्चित होना और घटना-बढ़ना परस्पर विरोधी हैं। घटना-बढ़ना हम ही नहीं कहते किन्तु वेद, मनुस्मृति, आयुर्वेद और ऋषि-दयानन्द आदि सब ऋषियों का मन्तव्य है। एवं प्रत्यक्षादि प्रमाण भी यही सिद्ध करते हैं। यथा विषपान से व्यक्तियों की मृत्यु होती है। एक दूसरे की अपेक्षा से ही आयु का न्यूनाधिक होना ही आयु का घटना-बढ़ना है। यथा एक ही वस्त्र सुरक्षित रखने पर अधिक काल चलता है।

(४) योनि पूर्वकृत कर्मों के आधार पर मिलती है। किन्तु निश्चित आयु नहीं मिलती। यदि आपके मन्तव्यानुसार आयु भी निश्चित है तो इसमें वेदादि-सच्छास्त्रों का कोई प्रमाण नहीं। बिना प्रमाण कोई बात मानने योग्य नहीं होती। शास्त्रानुसार आयु की अनिश्चितता सिद्ध है जिसके विषय में शास्त्रार्थ के प्रारम्भ में मैंने अनेक प्रमाण दिये हैं जिनको आपने छुआ तक नहीं।

(५-६) केवल सुख-दुख परमेश्वर ही नहीं देता, स्वतन्त्र होने से मनुष्य भी देते हैं और मनुष्य स्वयं अपने कर्मों से भी सुख-दुःख प्राप्त करते हैं। जो मनुष्य विद्या के लिये पुरुषार्थ करता है उसको विद्या से सुख प्राप्त होता है।

(७) जैसे चरक में लिखा है गाड़ी का धुरा सुरक्षित रखने पर अधिक काल तक चलता किन्तु अनन्त काल तक नहीं चलता नष्ट अवश्य होता है। इसी प्रकार शरीर भी है।

विशेष नोट—इस लेख में सत्यार्थ-प्रकाश के प्रमाणों की जो पृष्ठ-संख्या अंकित की गई है, वह सभी आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, कमलानगर दिल्ली-७ द्वारा दयानन्दाब्द १४५ में प्रकाशित स्थूलाक्षर वाले सत्यार्थप्रकाश से दी गई है।

"सम्पादक"

आयु की अवधि अनिश्चित आयु पक्ष वालों से पूछना निराधार है क्योंकि अनिश्चित शब्द से ही स्पष्ट है कि ईश्वर ने कोई क्षणादि में प्राणी की आयु निश्चित नहीं की है। निश्चित आयु तो उनको बतलानी चाहिए जो प्रत्येक प्राणी की आयु जन्म-समय में ही निश्चित की हुई मानते हैं। अत: यह अत्यन्त विपरीत है कि स्वयं आयु को निश्चित मानना और आयु की निश्चित अवधि अनिश्चित पक्ष वालों से पूछना। एक ८० वर्ष का बूढ़ा भी यह जानता है कि मेरी आयु कम हो चुकी है। परंतु उस बूढ़े को यह ज्ञान नितान्त नहीं है कि मेरी आयु कितनी है। अत: यह मान्यता अनुचित है कि घटने-बढ़ने का परिज्ञान उसी को होता है जो मील के ज्ञाता की भाँति आयु की अवधि को जानता है। जिस प्रकार एक नये वस्त्र को लेकर किसी ने अग्नि में डाल दिया और वह वस्त्र जल गया। उस वस्त्र को देखने वाला यह जानता है कि इस वस्त्र की आयु घट गई और यह नहीं जलता तो अधिक समय तक चलता। परंतु इस ज्ञान के होने पर भी कि यह न जलता तो अधिक समय तक रहता। वह यह नहीं जानता कि निश्चित रूप से इतने मिनट घण्टे दिन ही रहता। जीव भी कर्मों के फलों का दाता है ऐसा ऋषि-दयानन्द ने सत्यार्थ-प्रकाश में लिखा है—**"भला अनेक विधि कर्मों का कर्त्ता प्राणियों को फलों का दाता धार्मिक न्यायाधीश विद्वान् कर्मों में नहीं फंसता न प्रपंची होता है तो परमेश्वर अनन्त सामर्थ्य वाला प्रपंची और दुखी क्यों न होगा?"** (सत्यार्थ-प्रकाश द्वादश समु० पृष्ठ० ५८६) अत. यह मान्यता वेद और ऋषियों के मन्तव्य से विरुद्ध है कि केवल कर्मों का फल ईश्वर ही देता है।

पूर्वकृत न्यायदर्शन ३-२-६३ सूत्र में आयु निश्चित है यह नहीं कहा गया किन्तु पूर्वकृत कर्मानुसार उत्पत्ति का कथन है अत: इस सूत्र से आयु निश्चित है इसको सिद्ध करना पूर्णत: मिथ्या है।

१. सत्यार्थ-प्रकाश ८ समु० में आयु निश्चित है यह नहीं कहा गया है किन्तु जीवों का जन्म पूर्वकृत कर्मानुसार ईश्वर करता है इस बात का कथन है। इससे आयु निश्चित सिद्ध करना लेख के साथ व्यर्थ की खैंचातानी है। क्योंकि ऋषि के वेदभाष्य, सत्यार्थ-प्रकाशादि ग्रंथों में आयु के घटने-बढ़ने का स्पष्ट विधान है। यदि ऋषि यह मानते कि आयु निश्चित है तो बार-बार ब्रह्मचर्य से आयु का बढ़ना और व्यभिचारादि से घटना कभी न लिखते।

२. यहाँ पर ऋषि ने आयु निश्चित होने की कोई चर्चा नहीं की। जो मनुष्य पूर्वजन्म को नहीं मानते उनको समझाया है। मनुष्यादि प्राणियों की शरीर, बुद्धि आदि वस्तु पूर्वजन्म के कर्मों के कारण से भिन्न-भिन्न हैं। अत: ईश्वर बिना कारण के किसी को मनुष्यादि शरीर नहीं देता। यह बात पूर्व बतलाई जा चुकी है कि सुख-दुख जीव भी देता है और अन्याय से भी देता है। ऋषि ने अनेकस्थलों पर राजा तथा कर्मचारियों को अन्यायी सिद्ध किया है। यदि समस्त सुख-दु:ख ईश्वर ही देता है तो एक घोड़े को जो कि ६ मनुष्यों को ही ले जा सकता है उसे तांगे में जोड़कर १२ वा १५ मनुष्य बैठाकर और उसके न चलने पर डण्डों से मारकर चलाने पर जो दु:ख पाता है, वह भी ईश्वर-प्रदत्त मानना पड़ेगा। जो गौ को मार-मार कर खा रहे हैं उनके मरने पर जो मनुष्यों को दु:ख होता है तथा गौ को दु:ख मिलता है वह भी ईश्वर-प्रदत्त कर्म का फल मानना पड़ेगा। ऋषि दयानन्द ने गौ के बचाने के लिए महान् प्रयास किया है। यदि आयु निश्चित मानते तो वे कभी भी नहीं कहते कि गौ को मारकर खाने में लगभग अस्सी मनुष्य तृप्त होते हैं और उसी गौ की पीढ़ी में लाखों मनुष्य तृप्त होते हैं। जब ईश्वर ने आयु निश्चित कर दी थी तो चाहे गौ को कसाई मारे चाहे और कोई मारे अथवा रोगी होकर मरे परन्तु मृत्यु उसी मिनट में होगी पीढ़ी बन ही नहीं सकती। पीढ़ी तो उसी पक्ष में बन सकती जिसमें आयु को अनिश्चित माना जाय। अत. शास्त्री जी जिस ऋषि के प्रमाण आप अपनी पुष्टि में दे रहे हैं उनके प्रमाण आपके पक्ष का खण्डन करते हैं।

इसी प्रकार से सभी सत्यार्थ-प्रकाश के दिए उदाहरणों में भी समझ लेना चाहिए कि किसी भी वाक्य में ऋषि ने आयु निश्चित का कथन नहीं किया। किन्तु घटने-बढ़ने का अनेकों स्थलों पर किया है। अत: समस्त प्रकरणों से यह

सिद्ध किया है कि परमात्मा बिना कर्म के मनुष्यादि योनि और दुःखादि नहीं देता। परन्तु इस बात का निषेध कहीं नहीं किया कि बिना कर्म के कोई मनुष्य किसी भी प्राणी को मार नहीं सकता अथवा मरते हुए को बचा नहीं सकता। "सति मूले तद्विपाको" सूत्र में और उसके भाष्य में कहीं नहीं लिखा है कि वर्तमान जन्म में जितनी भी आयु या जो भी सुख-दुःख प्राप्त हो रहे हैं वे सब पूर्वजन्म के फल हैं। किन्तु सूत्रार्थ व्यासभाष्य में निम्न है—

"सत्सु क्लेशेषु कर्माशयो विपाकारम्भी भवति नोच्छिन्नक्लेशमूलः"

अर्थ—अविद्यादि क्लेशों के नष्ट होने पर कर्माशय फल को देने वाला होता है। अविद्यादि क्लेशों के नष्ट होने पर कर्माशय फल का देने वाला नहीं होता। अर्थात् जाति (जन्म), आयु और भोग रूपी विपाक का कारण अविद्या के रहने पर कर्माशय होता है। अविद्या के नहीं होने पर जाति (जन्म), आयु और भोग नहीं मिलते मुक्ति हो जाती है। जाति का अर्थ व्यास जी ने अगले सूत्र में जन्म किया है, जो संगत है। उस सूत्र भाष्य में भी जन्म के विषय में विशेष चर्चा की गई है। न्यायदर्शन (१-१-२) में भी जन्म का आदि कारण अविद्या को माना है। मिथ्या ज्ञान के नष्ट होने पर जन्म से छुटकारा और मुक्ति की प्राप्ति मानी है। इस सूत्र का प्रयोजन उपरिलिखित ही है। जो लोग इस सूत्र के अर्थ से निश्चित आयु सिद्ध करते हैं वह नितान्त प्रकरण विरुद्ध, काल्पनिक और खैंचातानी है। शास्त्री जी ने व्यासभाष्य का तात्पर्य यह लगाया है कि इस जन्म में किये कर्म केवल अगले ही जन्म में फल देते हैं यह व्यासभाष्य के विरुद्ध है। यथा—

"दृष्टजन्मवेदनीयस्त्वेकविपाकारम्भी भोगहेतुत्वात् द्विविपाकारम्भी वा आयुर्भोगहेतुत्वात्" अर्थात्—इस वर्तमान जन्म में फल देने वाला कर्माशय एक फल को देने वाला होता है भोग का कारण होने से अथवा दो फलों का देने वाला होता है भोग और आयु का हेतु होने से अथवा दो फलों का देने वाला होता है भोग और आयु का हेतु होने से। यहाँ स्पष्ट व्यास जी ने वर्तमान जन्म के कर्मों से वर्तमान जन्म को भोग और आयु रूपी फल माने हैं। इस व्यासभाष्य से स्पष्ट है कि आयु निश्चित नहीं है क्योंकि आयु और भोग को इसी जन्म में देने वाले कर्म व्यास जी ने स्पष्ट रूप से स्वीकार किये हैं। इस व्यासभाष्य को शास्त्री जी ने छुआ नहीं क्योंकि इससे उनके पक्ष का खण्डन होता है। यथा— "क्लेशमूलः कर्माशयो दृष्टादृष्टजन्मवेदनीयः"। (योगदर्शन २/१२) इस सूत्र में स्पष्ट रूप से वर्णन है कि इस जन्म में भी फल देने वाले कर्म होते हैं।

व्यासभाष्य—"**तत्र पुण्यापुण्यकर्माशयः काम-लोभ-मोह-क्रोध-मनसः दृष्टजन्मवेदनीयश्चादृष्टजन्मवेदनीयश्च। तत्र संवेगेन मन्त्रतपः समाधिभिर्निर्वर्तितः ईश्वर-देवता-महर्षि-महानुभावानामाराधनाद्वा यः परिनिष्पन्नः स सद्यः परिपच्यते पुण्यकर्माशयः**" इससे "**दृष्टजन्मवेदनीय**" और "**सद्यः परिपच्यते**" इन शब्दों से इसी जन्म में किये कर्मों का फल मिलना नितान्त सिद्ध है। योगदर्शन इस जन्म में किए कर्मों का फल इसी जन्म में मिलने का पदे पदे निर्देश कर रहा है। यथा—"ईश्वर-प्राणधानाद्वा" व्यासभाष्य—(**तदभिधानमात्रादपि योगिन आसन्नतमः समाधिलाभः समाधिफलं च भवतीति**) इस व्यासभाष्य से इसी जन्म में समाधि-लाभ और समाधि-फल स्पष्ट है। इसी प्रकार से यम-नियमादि का फल भी समझ लेना चाहिए। शास्त्री जी ने व्यास-भाष्य का (**तेनैव कर्मणा लब्धायुष्कं भवति**) का जो यह जो तात्पर्य निकाला है कि जन्म-समय ही आयु और भोग निश्चित हो जाते हैं। यह इस वाक्य का अर्थ नहीं। यह तात्पर्य हमारे द्वारा ऊपर लिखे व्यासभाष्य के विरुद्ध भी है। इस वाक्य का यह अभिप्राय है कि जब तक अविद्या बनी रहेगी तब तक कर्माशय आयु और भोग भी देता रहेगा।

"याथातथ्यतो···" मन्त्रखण्ड का अर्थ शास्त्रीजी ने ऋषि-दयानन्द से भिन्न किया है। ऋषि ने तो वेद-विद्या का उपदेश ईश्वर ने किया है यह अर्थ किया है। शास्त्रीजी के किये अर्थ से भी आयु निश्चित सिद्ध नहीं हो सकती।

क्योंकि शास्त्रीजी भी यहाँ मानते हैं कि (परन्तु शरीर के द्वारा चेष्टादि कर्म करने में जीव स्वतन्त्र है।) जब जीव कर्म करने में स्वतन्त्र हैं तो हाथ से या शस्त्र से किसी भी प्राणी को मार सकता है। और अपने आपको भी मार सकता है। अतः ईश्वर के आयु निश्चित करने से भी आयु निश्चित नहीं हो सकती। और इसमें यह भी दोष आता है कि परमात्मा यदि आयु निश्चित करे तो उसका खाना-पीना, आचार-व्यवहार आदि सभी क्रियाओं को भी निश्चित करना पड़ेगा। उससे जीव पराधीन हो जायेगा। ऐसी अवस्था में कर्मों के फलों का भोक्ता भी ईश्वर ही होगा। यह बात महर्षि के मन्तव्य के विरुद्ध है अतः माननीय नहीं।

आयु निश्चित है इसको ईश्वर जानता है। यह तो शास्त्री जी की प्रतिज्ञा मात्र है। इसमें कोई प्रमाण नहीं दिया। लक्षण प्रमाण से वस्तु की सिद्धि होती है, कथन मात्र से नहीं। अनिश्चित मानने वालों से तो यह पूछना कि बतलाओ कितनी घट गई कितनी बढ़ गई और स्वयं ईश्वर के ऊपर मंढ़कर पीछा छुड़ा लिया कि उसको ईश्वर जानता है। यह न्याय-विरुद्ध है। विपरीत खान-पान इत्यादि से मृत्यु और अनुकूल से जीव-रक्षा तथा आयुवृद्धि आयुर्वेद स्पष्ट रूप में मानता है। अतः शास्त्री जी का यह कहना कि खान-पान से और अनुकूल वा प्रतिकूल आचार व्यवहार से आयु घटती बढ़ती नहीं, निराधार है। वेदादि सच्छास्त्रों और प्रत्यक्षादि प्रमाणों के विरुद्ध है।

'यां मेधां' मन्त्र में 'अद्य' और सन्ध्या में **सद्यः'** इन शब्दों का ऋषि ने सद्यः का शीघ्र और अद्य का इस वर्तमान जन्म में यह अर्थ किया है। शास्त्री जी अद्य और "**सद्यः**' शब्द का अगले जन्म में फल मिलना अर्थ मानते हैं जो कि शब्दार्थ, लेखक और प्रकरण के प्रतिकूल है। **'स्तुता मया वरदा'** मन्त्र में की गई आयु, प्राण, प्रजा और पशु आदि ऐश्वर्य की प्रार्थना मोक्ष की विरोधी नहीं है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चारों की प्राप्ति के लिए ऋषि द्वारा भी प्रार्थना बहुत जगह की गई है। अतः णिजन्त क्रिया मानने में कोई दोष नहीं आता। एवं "**यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः**' में एक धर्म अभ्युदय और निःश्रेयस दोनों का साधन है। यदि इन दोनों में विरोध होता तो ऐसा उल्लेख नहीं मिलता। आयु, ब्रह्मवर्चस् आदि मुक्ति के साधन हैं जैसा कि ऋषि ने यजुर्वेदभाष्य (४०/११) ग्रंथ में लिखा है—

"सम्भूत्याऽमृतमश्नुते" सम्भूत्या शरीरेन्द्रियान्तःकरणरूपयोत्पन्नया कार्य-रूपयाधर्म्ये प्रवर्त्त यित्वा सृष्ट्या सहामृतं मोक्षम् अश्नुते प्राप्नोति।

अर्थ—शरीर, इन्द्रिय, अन्तःकरण रूप उत्पन्न होने वाली कार्यरूप, धर्मकार्य में प्रवृत्त कराने वाली सृष्टि के सहयोग से (अमृतं) मोक्ष-सुख को (अश्नुते) प्राप्त होता है। यहाँ स्पष्ट ही शरीर को मुक्ति का साधन स्वीकार किया है। एवं "**तेन त्यक्तेन भुंजीथाः**" में भी त्यागपूर्वक धनादि के उपभोग का विधान है।

शास्त्री जी ने हेत्वाभास, निग्रहस्थान आदि का प्रयोग प्रतिपक्षी पर अपना प्रभाव जमाने के लिए तथा उसको विषय से हटाने के लिए माना है। शास्त्री जी की यह मान्यता न्यायदर्शन के विपरीत है। क्योंकि न्यायदर्शन में यह स्वीकार किया गया है कि हेत्वाभास आदि दोषों के प्रयोग होने पर सत्यासत्य का निर्णय कभी नहीं हो अकता। क्योंकि हेतु ही किसी अर्थ की सिद्धि में साधक होते हैं। हेत्वाभास किसी अर्थ को सिद्ध नहीं करते। अतः जो हेत्वाभास का प्रयोग करता है वह निग्रहस्थान में आ जाता है। निग्रहस्थान पराजय है, उसको शास्त्रार्थ में बताना आवश्यक है। जो कोई किसी पर हेत्वाभास का गलत आरोप लगाये तो विपक्षी को उसका निराकरण करना चाहिए। शास्त्री जी ने शास्त्रार्थ के समय अनेक बार हेत्वाभास, छल, प्रतिज्ञा-संन्यास आदि का प्रयोग किया है। अतः वे इन दोषों को ढकने के लिए ऐसी बातें लिखते हैं। यह सत्य है कि जब तक हेत्वाभासादि दोषों से रहित होकर न्यायशास्त्रानुसार वाद न किया जाये तब तक सत्यासत्य का निर्णय कभी नहीं हो सकता। जिन नियमों के आधार पर सत्यासत्य का निर्णय होता

है उन्हीं का शास्त्री जी खण्डन करते हैं। यदि हेत्वाभास आदि न्यायोक्त नियमों को शास्त्रार्थ में न बतलाया जाये तो सौ वर्ष तक शास्त्रार्थ होता रहे तब भी सत्यासत्य का निर्णय नहीं हो सकता। अतः इन नियमों का कोई महत्त्व न बताना और हानिकारक कहना वक्ता के पक्षपात और उसके पक्ष की निर्बलता का पूर्ण रूप से सूचक है। अतः ऐसी शास्त्र-विरुद्ध बातों को कभी स्वीकार नहीं करना चाहिए।

मैंने उपर्युक्त लेख में शास्त्री जी के सम्पूर्ण वक्तव्य की प्रत्येक बात का उत्तर दे दिया है। किन्तु शास्त्री जी ने मेरे द्वारा दिए गये अनेक प्रमाणों और युक्तियों का कोई भी उत्तर नहीं दिया।

प्रस्तुत शास्त्रार्थ पर विद्वानों के निर्णय

(१) शास्त्रार्थ पुस्तिका प्राप्त हुई। मैंने ध्यान से पुस्तक का अध्ययन किया। मेरी सम्मति में श्री ब्रह्मचारी जी का प्रमाण और तर्क प्रबल प्रतीत हुआ। श्री पं० ओमप्रकाश शास्त्री जी इसके खण्डन में न तो कोई वेदमन्त्र अथवा ऋषि दयानन्द का भाष्य ही उद्धृत कर सके जिससे उनका पक्ष पुष्ट प्रतीत हो। अपितु आरम्भ से लेकर अन्त तक केवल एक ही बात को बारम्बार दोहराते रहे। श्री शास्त्री जी को कोई वेदमन्त्र अथवा महर्षि स्वामी दयानन्द का कोई वाक्य अपने पक्ष में देना चाहिए। किन्तु कहीं पर भी उन्होंने कोई वेद-प्रमाण अपने पक्ष की पुष्टि में उद्धृत नहीं किया। वे केवल थोथी युक्तियों पर ही अवलम्बित रहे।

मेरी सम्मति में ब्रह्मचारी जी का पक्ष ही वैदिक है, वही ऋषि दयानन्द को भी मान्य था।

—आचार्य रामानन्द शास्त्री
(उपप्रधान—आर्य-प्रतिनिधि सभा, बिहार)

(२) श्री पं० ओमप्रकाश जी व **श्री मीमांसक ब्रह्मचारी** जी का शास्त्रार्थ निर्णयार्थ मिला। शास्त्रार्थ को पूरा पढ़ने से पता लगता है कि ओमप्रकाश जी श्री ब्रह्मचारी जी के प्रस्तुत प्रमाणों से पराभूत हो गये हैं। श्री ब्रह्मचारी जी ने प्रमाणों से वैदिक तर्कों से अपना पक्ष कि—**'आयु घट सकती है''** सिद्ध कर दिया है।

—बिहारी लाल शास्त्री
(बरेली)
१४-५-७५

(३) आपकी भेजी पुस्तिका उपलब्ध कर मुझे बड़ा हर्ष हुआ है। विवादास्पद एवं विध वैदिक सिद्धांतों पर यदा कदा ऊहापोहात्मक वाद-प्रतियोगिताओं का होना आर्यजगत् के शुभलक्षण गिने जाने चाहिए। इन प्रतियोगिताओं से आर्यजनों में जहाँ स्वाध्याय की अभिरुचि जागेगी। साथ ही शास्त्र-मन्थन से सुविज्ञ जनों को नवनीत सा मथितार्थ भी हस्तगत हो सकेगा। आपने सम्मति मांगी है अतः अधोलिखित पंक्ति दे मैं स्वसम्मति प्रस्तुत कर रहा हूँ। मेरी सम्मति में दोनों योद्धा वाक्-समर में खूब खेले हैं। श्री ब्रह्मचारी जी की प्रमाण-शरवृष्टि को देखकर कुछ

सहमते हुए श्री शास्त्रीजी ने अब यह आभास करा दिया था कि वे इस वादसभा में अपने शस्त्रास्त्रों से सज्जित होकर नहीं आये हैं (यद्यपि टिप्पणी द्वारा आपने इस कथन का प्रत्याख्यान कर दिया है) फिर भी शास्त्री जी ने युक्ति-वाद की ढाल पर प्रमाण शर-वृष्टि को रोकने का प्रयास किया है। इसमें संदेह नहीं कि ब्रह्मचारी जी ने जो प्रमाण माला प्रस्तुत की है उसमें सर्वथा स्पष्ट है कि आयु बढ़ती और घटती भी है किन्तु श्री शास्त्री जी यह कहकर कि 'जिस दृष्टिकोण से आपने वे प्रमाण प्रस्तुत किये हैं; ये निश्चित किसी काम के नहीं हैं' प्रमाणों की नितान्त उपेक्षा की है। केवल उपेक्षा ही नहीं अपितु 'पश्येम शरदः शतम्' इत्यादि प्रार्थनाओं के सम्बन्ध में यह कहकर कि—"**यह मैं कामना करता हूँ ताकि मेरी इस कामना का प्रार्थना का फल मुझे अगले जन्म में मिले**" श्री शास्त्री जी ने अपने पक्ष की लघुता प्रकट की है। कोई आर्ष-प्रमाण प्रस्तुत करना चाहिए था अपने कथन की पुष्टि में। इस प्रसंग में आपने कल्पना का बल लगाया है और एकमात्र '**सति मूले**......' को ही केन्द्रबिन्दु बनाकर समस्त प्रमाणों को उसके चतुर्दिक् घुमाया है। अच्छा होता यदि श्री शास्त्री जी किसी वेद-मन्त्र को जो स्वतः प्रमाणभूत है, केन्द्र-बिन्दु बनाकर दर्शन-शास्त्रों को उसके चतुर्दिक् घूमता दिखाते।

— **वि० भा० रुद्रदत्त शास्त्री**

देहरादून १०-६-७५

(४) शास्त्रार्थ की प्रतियाँ मुझे प्राप्त हुई और उनको मैंने बड़ी प्रसन्नता से पढ़ा है। खेद है कि समयाभाव और कुछ अस्वस्थता के कारण मैं न्यायाधीश की तरह निर्णय देने की स्थिति में नहीं हूँ तथापि मैं दोनों पक्षों के प्रमाणों और युक्तियों को पढ़ने पर ब्रह्मचारी वेदव्रत जी के इस विचार से सहमत हूँ कि आयु को पूर्व से निश्चित मान लेना, जिसको बढ़ाया नहीं जा सकता, ठीक नहीं है। उन्होंने अपने पक्ष के समर्थन में जो "**त्र्यायुषं जमदग्नेः कश्यपस्य**"—"**कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषे**......(महर्षि-दयानन्द भाष्यसहित)। '**इमं जीवेभ्यः परिधिं दधामि**......।' '**शतं जीवन्तु**......।' इत्यादि प्रमाण दिये हैं उसके अतिरिक्त भी '**मृत्योः पदं योपयन्तो यदैत—प्रतरं दधाना।**" "**प्राञ्चो अगाम नृतये हसाय द्राघीय आयुः प्रतरं दधानाः।**' इत्यादि वेदमन्त्र, अन्यच्च "**अभिवादन शीलस्य०**" '**आचाराल्लभते ह्यायुः**' इत्यादि अनेक प्रमाण हैं।

मान्य ओमप्रकाश जी शास्त्री अपनी स्थिति को स्पष्ट नहीं कर सके और न उसके समर्थन में कोई वेदमन्त्र ही प्रस्तुत कर सके, ऐसा मुझे प्रतीत होता है। निष्पक्षपात विचारक स्वयं परिणाम निकालें।

—**धर्मदेव विद्यामार्त्तण्ड**

ज्वालापुर २१-६-७५

(५) मैंने आपका भेजा हुआ शास्त्रार्थ एक यात्रा में आद्योपान्त पढ़ा। विचार था कि समय मिलने पर आपके इच्छित प्रकार से अपनी सम्मति लिखूं किन्तु समय नहीं निकल सका और अभी निकट भविष्य में आशा भी नहीं। विधिवत् निर्णय भेजना कठिन है। श्री ब्रह्मचारी जी का पक्ष युक्ति और प्रमाणों से प्रबल रहा है यह स्पष्ट है।

—**शिवकुमार शास्त्री**

नई दिल्ली ४-७-८५

(६) श्री मीमांसक जी व श्री पं० ओमप्रकाश जी शास्त्री के मध्य हुये शास्त्रार्थ को मैंने पढ़ा। श्री मीमांसक जी ने प्रबल युक्तियों से व वेदशास्त्र एवं ऋषिकृत ग्रन्थों के प्रमाण देकर अपने पक्ष को योग्यता से रखा है। श्रीयुत

मीमांसक जी ने श्री पं० ओमप्रकाश जी शास्त्री के सब तर्कों व प्रमाणों का बड़ी योग्यता से उत्तर दिया। आदरणीय श्री शास्त्री जी मान्य मीमांसक जी के प्रमाणों व युक्तियों को काटने में असमर्थ रहे हैं। मेरी सम्मति में मान्य श्री पं० ओम-प्रकाश जी शास्त्री का पक्ष निर्बल है। इस शास्त्रार्थ के प्रकाशन से सब स्वाध्यायशील प्रेमियों को लाभ होगा। श्री लाला दीपचन्द जी को इसके प्रकाशन के लिए बधाई देता हूं।

—राजेन्द्र 'जिज्ञासु'
अबोहर
२७-६-७५

(७) मैंने आपके द्वारा भेजी पुस्तिका पढ़ी। ब्रह्मचारी वेदव्रत जी तथा शास्त्रार्थ महारथी पं० ओमप्रकाश शास्त्री के विचार पढ़े। ब्रह्मचारी जी ने वेद, ऋषि-दयानन्दकृत सत्यार्थ-प्रकाश, चरक ऋषि के मन्तव्यों को प्रस्तुत करके आयु घटती-बढ़ती है ऐसी मान्यता स्थापित की। शास्त्री जी को इन मन्तव्यों को खण्डन करके अपना मन्तव्य दर्शन तथा वेद के उद्धरण रखकर प्रस्तुत करना चाहिए था, परन्तु उन्होंने समस्त समय में केवल ऋषि-पतंजलि का एक प्रमाण देकर अपने विचार ही रखने का प्रयत्न किया। चूंकि जब तक वह वेद का कोई उद्धरण न दें तब तक उनके विचारों की प्रमाणिता कैसे की जावे। अस्तु इस दृष्टि से ब्रह्मचारी जी का दृष्टिकोण सत्य प्रतीत होता है। और मैं भी यह मानने में समर्थ हुआ कि शुभकर्मों से आयु बढ़ती है और अशुभ कर्मों से आयु क्षीण होती है। मैं इस परिणाम पर पहुँचा कि ब्रह्मचारी जी का पक्ष सत्य है तथा युक्तिसंगत है।

—दिव्यानन्द सरस्वती
भिलाई
१२-७-७५

प्राणियों की आयु निश्चित है वा अनिश्चित ?

परमेश्वर सर्वज्ञ, सर्वव्यापक और अन्तर्यामी है, अतः ईश्वर के ज्ञान में सभी प्राणियों की आयु निश्चित है। उसको क्षण-क्षण का सदा वर्त्तमान रूप से बोध है। इसके विपरीत जीव अल्पज्ञ है। अतः जीव नहीं जान सकता कि इसकी आयु का परिमाण कितना है? इस सम्बन्ध में हम दोनों प्रकार के लिये कुछ प्रमाण आगे प्रस्तुत करते हैं। विज्ञ जन इन पर विचार करें और यथोचित का ग्रहण करके लाभ उठावें। ईश्वर के ज्ञान में आयु निश्चित है इस विषय में कुछ प्रमाण आगे देखिये—

(क) प्रैतु वाजी············मा पाद्यायुषः पुरा॥ (यजुर्वेद ११। ४६)

पदार्थः —(मा) (पादि) गच्छ (आयुषः) **नियतवर्षाज्जीवनात्** (पुरा) पूर्वम्·········॥

अन्वयः—आयुः पुरा या प्रैतु [पुरीष्यमग्निं भरन्]मा पादि। इतस्ततो मा गच्छ॥

भाषापदार्थ—घोड़े के समान (आयुषः) नियत वर्षों की अवस्था से (पुरा) पहले (मा) नहीं (प्रैतु) मरे। (यहां प्रैतु का भाव पादि है।)

भावार्थः—मनुष्याः [विषयलोलुपतात्यागेन ब्रह्मचर्येण[1]] पूर्णजीवन धृत्वा [अग्न्यादिपदार्थविज्ञानाद् धर्म्यम्] व्यवहारमुन्नयेयुः ॥

भावार्थ—[राजा आदि मनुष्यों को योग्य है कि अपनी सन्तानों को विषयों की लोलुपता से छुड़ा के ब्रह्मचर्य के साथ पूर्ण अवस्था को धारण कर अग्नि आदि पदार्थों के विज्ञान से धर्मयुक्त व्यवहार को उन्नत करावे।]

(ख) **इमामगृभ्णन् रशनामृतस्य पूर्वऽआयुषि**······॥ (यजुर्वेद २२। २)॥

पदार्थः—(इमाम्) (गृभ्णन्) गृह्णीयुः (रशनाम्) व्यापिकां रज्जुमिव (ऋतस्य) सत्यस्य कारणस्य (पूर्वे) पूर्वस्मिन् (आयुषि) प्राणधारणे······॥

अन्वयः—हे मनुष्याः [**या ऋतस्य सरमारपन्त्याबभूव यामिमामृतस्य रशनां विदथेषु पूर्व आयुषि कव्या अगृभ्णन् साऽस्मिन् सुते नः सामन्तबिभूव पूर्व आयुषि**······।

भाषापदार्थ—(**ऋतस्य**) सत्य कारण की (**रशनाम्**) व्याप्त होने वाली डोर के **समान** यज्ञादिकों (**पूर्वे**) पहली (आयुषि) प्राण धारण करने हारी आयुर्दा के निमित्त (**कव्या**) कवि मेधावी जन (अगृभ्णन्) ग्रहण करें।

भावार्थः—**यथा रशनया बद्धाः प्राणिन इतस्ततः पलायितुं न शक्नुवन्ति तथा युक्तया धृतमा युरकाले न पलायते ॥**

भावार्थः—जैसे डोर से बंधे हुए प्राणी इधर-उधर भाग नहीं सकते वैसे युक्ति से धारण की हुई **आयु ठीक समय के बिना नहीं भाग जाती ॥**

(ग) **त्वं च सोम न वशी जीवातुं न मरामहे प्रियस्तोत्रोकनस्पतिः** ॥ (ऋग्वेद १ मण्डल, ९१ सूक्त, मन्त्र ६)

पदार्थः—(त्वं) (च) **समुच्चये** (सोम)······(नः) **अस्माकं**···(जीवातुम्) जीवनम् (न) **निषेधार्थे (मरामहे) अकालमृत्युं क्षणभंगदेहं प्राप्नुयाम**······॥

अन्वयः—हे सोम······(नो) **अस्माकम्** (जीवातुम्)······**तदेतद्द्वयं विज्ञाय** वयं **सद्यो न मरामहे ॥**

भाषा-पदार्थ—हम लोग इस व्यवस्था से इन दोनों को जानकर शीघ्र (न) (मरामहे) **अकाल मृत्यु और अनायास मृत्यु न पावें ॥**

भावार्थः—ये मनुष्या ईश्वराज्ञा······ते **पूर्णायुषः प्राप्नुवन्ति।**

भावार्थ—जो मनुष्य ईश्वर-आज्ञापालन करने हारे वे **पूरी आयु पाते हैं।**

---

१. श्री सिद्धान्ती जी का लेख ज्यों का त्यों प्रकाशित किया गया है। [ ] कोष्ठक में दिया गया अंश वाक्य पूरा देने के लिये ऋषि-भाष्यानुसार बढ़ाया गया है। —संयोजक

(घ) इमं जीवेभ्यः परिधि दधामि मैषां नु गादपरः······शतं जीवन्तु शरदः पुरूचीरन्तर्मृत्युं दधतां पर्वतेन ॥
(यजुर्वेद ३५ । १५)

पदार्थः—(इमम्) प्रत्यक्षम् (जीवेभ्यः) प्राणधारकेभ्यः स्थावरशरीरेभ्यश्च (परिधिम्) मर्यादाम् (दधामि) व्यवस्थापयामि (मा) (एषाम्) जीवानाम् (नु) सद्यः (अगात्) प्राप्नुयात्·········(शतम्) (जीवन्तु) शरदः (पुरूचीः) याः पुरूणि बहूनि वर्षाण्यचन्ति ताः (अन्तः) मध्ये (मृत्युम्) (दधताम्) धारयन्तु (पर्वतेन) ज्ञानेन ब्रह्मचर्य्यादिना वा ॥

भाषा-पदार्थ—हे परमेश्वर इन जीवों के लिये (परिधिम्) मर्यादा को (दधामि) स्थापित करता हूँ, इस प्रकार आचरण करते हुये आप लोग (पुरूचीः) बहुत वर्षों के सम्बन्धी (शतम्) सौ (शरदः) ऋतुपर्यन्त (जीवन्तु) जीओ (पर्वतेन) ज्ञान वा ब्रह्मचर्य आदि से (मृत्युम्) को (अन्तः) मध्य में (दधताम्) धारण धरो ॥

भावार्थः—हे मनुष्याः ! ये परमेश्वरेण व्यवस्थापितां [धर्माचरणं कार्यमधर्माचरणं त्याज्यमिति] मर्यादा नोल्लंघन्ते अन्यायेन परपदार्थान् न स्वीकुर्वन्ति ते ऽरोगाः शन्तश्शतं वर्षाणि जीवितुं शक्नुवन्ति नेतर ईश्वराज्ञाभंक्तारः, ये पूर्णेन ब्रह्मचर्य्येण विद्या अधीत्य धर्ममाचरन्ति तान् मृत्युर्मध्ये नाप्नोति ।

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो लोग परमेश्वर के नियत किया है कि धर्म का आचरण करना और अधर्म का आचरण छोड़ना चाहिये, उस मर्यादा को उल्लंघन नहीं करते। [अन्याय से पर-पदार्थों का स्वीकार नहीं करते।] वे सौ वर्ष तक जी सकते हैं। ईश्वर की आज्ञा को भंग करने वाले दूसरे लोग नहीं जो पूर्ण ब्रह्मचर्य से विद्या पढ़के धर्म का आचरण करते हैं उनको मृत्यु मध्य में नहीं दबाता ॥

(ङ) स पर्यगात्······कविर्मनीषी······समाभ्यः ॥ यजु० ४० । ८ ॥

पदार्थ—(सः) वह (परि अगात्) सर्वव्यापक है। (कविः) सर्वज्ञ (मनीषी) सकल जीवों की मनोवृत्तियों को जानने वाला है।

(च) जैसे—(ईश्वरभावः) = परमेश्वर सबके ऊपर दयाभाव करके पितृवत् वर्तमान पक्षपातछोड़कर धर्माधर्म करने वालों को यथायोग्य सुख-दुःख फल देना और अपने सर्वज्ञता आदि साधनों से सबका अन्तर्यामी होकर सबके अच्छे बुरे कर्मों को यथावत् देखता है ॥ [संस्कारविधि, गृहाश्रम प्रकरण (क्षत्रियवर्णन, गीता-श्लोक)]

(छ) **(प्रश्न)** जीव स्वतन्त्र है वा परतन्त्र ?

(उत्तर) अपने कर्तव्य कर्मों में स्वतन्त्र और ईश्वर की व्यवस्था में परतन्त्र है।

(प्रश्न) स्वतन्त्र किसको कहते हैं ?

(उत्तर) जिसके अधीन शरीर, प्राण, इन्द्रिय और अन्तःकरणादि हों जो स्वतन्त्र न हो तो उसको पाप-पुण्य का फल प्राप्त कभी नहीं हो सकता [क्योंकि जैसे भृत्य, स्वामी और सेना अध्यक्ष की आज्ञा अथवा प्रेरणा से युद्ध में अनेक पुरुषों को मार के अपराधी नहीं होते वैसे परमेश्वर की प्रेरणा और अधीनता से काम सिद्ध हो तो जीव को पाप वा पुण्य न लगे] उस फल का भावी प्रेरक परमेश्वर होवे। नरक, स्वर्ग अर्थात् सुख-दुःख की प्राप्ति भी परमेश्वर को होवे जैसे किसी मनुष्य ने शस्त्रविशेष से किसी को मार डाला तो वही मारने वाला पकड़ा जाता है और वही दण्ड पाता

है। शस्त्र नहीं। वैसे ही पराधीन जीव पाप-पुण्य का भागी नहीं हो सकता। इसलिए अपने सामर्थ्य-अनुकूल कर्म करने में जीव स्वतन्त्र परन्तु जब वह पाप कर चुकता है तब ईश्वर की व्यवस्था में पराधीन होकर पाप के फल भोगता है। इसलिये कर्म करने में जीव स्वतन्त्र और पाप दुःखरूप फल भोगने में परतन्त्र होता है।

(सत्यार्थ प्रकाश सप्तम समुल्लास)

(ज) **सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगाः ।।** (पातंजल-योगदर्शन, साधनपाद, सूत्र १३) इस सूत्र पर महर्षि-व्यास ने अपने भाष्य में लिखा है—

"**तद्विपाकस्यैव देशकालनिमित्ताऽनवधारणादियं कर्मगतिर्विचित्रा दुर्विज्ञाना चेति।**" अर्थात् त्रिविध विपाक। कारण: कर्म = कर्माशय = संस्कार = वासना = प्रारब्धरूप फल (जाति, आयु और भोग त्रिविधरूप) के देशकाल के निमित्त के अनिश्चित अनिर्णीत होने के कारण कर्म की गति दुर्विज्ञाना, विचित्र और जानने में अति कठिन है। इसी स्थान पर श्री वाचस्पति मिश्र कहते हैं। कर्म का फल सुख-दुःखरूप भोग कहलाता है। त्रिविधविपाक फल भोग ही है। उसमें जाति और आयु सहचारी रूप से रहते हैं। जाति का अर्थ जीवों की विशिष्ट योनि और आयु शब्द से तत्तद् योनि का जीवनकाल होता है।

(झ) जीव स्वरूप से चेतन है, अतः स्वभाव से 'ज्ञ' = ज्ञान वाला है, परन्तु अल्पज्ञ है। जीव का ज्ञान परमावधि तक बढ़ने पर भी सीमित रहता है।

अब प्रश्न यह उठता है कि क्या जीव की आयु नहीं बढ़ सकती ?

(ञ) **अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः ।**
चत्वारि तस्य वर्द्धन्त आयुर्विद्यायशोबलम् ।। (मनु० २।१२१)

अर्थात् जो सदा नम्र, सुशील, विद्वान् और वृद्धों की सेवा करता है उसकी आयु, विद्या, कीर्त्ति, और बल सदा बढ़ते हैं और जो ऐसा नहीं करते उनके आयु आदि चारों नहीं बढ़ते ।। (सत्यार्थ प्रकाश, ३ समुल्लास)

(ट) **दुराचारो हि पुरुषो लोके भवति निन्दितः ।**
दुःखभागी च सततं व्याधितो अल्पायुरेव च ।। मनु० ४।१५७।।

अर्थ—जो दुराचारी पुरुष है वह संसार में सज्जनों के मध्य में निन्दा को प्राप्त हो **दुःखभागी निरन्तर** व्याधियुक्त होकर **अल्पायु** को भी भोगने वाला होता है ।। (सत्यार्थ प्रकाश, ४ समुल्लास)

(ठ) ब्रह्मचर्य आदि के पालन से आयु की वृद्धि होती है और सदाचार के त्याग से आयु घटती है ।।

उपर्युक्त प्रमाणों से पता चलता है कि आयु बढ़ती और घटती रहती है इसमें सन्देह नहीं है। परन्तु यहाँ विचारणीय विषय यह है कि इन ऊपर के वचनों में "**आयु**" शब्द का प्रयोग है। आयु भोग का प्रमुख साधक है और दुःख शब्द भी आया है। आयु और दुःख भोग के साध्य हैं और फल हैं। फल का ज्ञान केवल ईश्वर ही सर्वज्ञता से जानता है। अल्पज्ञ होने से मनुष्य नहीं जान सकता। मनुष्य नहीं कह सकता कि मेरी आयु का परिमाण कितना है और दुःखरूप फल कितना है। अतः यह सिद्ध होता कि फल = भोग को मनुष्य नहीं जान सकता। इसलिए मनुष्य की आयु

जीव के ज्ञान में अनिश्चित है ।।

उपर्युक्त "सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगाः" योगदर्शन के प्रमाण से भी यह पूर्णरूप से प्रकट होता है । अन्य ऊपर दिये गये वेद-प्रमाणों के पढ़ने से आयु के परिमाण का बोध जीव को हो ही नहीं सकता ।। इति ।।

सम्राट् प्रेस, पहाड़ी धीरज, देहली-७

निवेदक

—जगदेवसिंह सिद्धान्ती शास्त्री

३०-६-१९७५

(९) पुस्तक पढ़ने से यह स्पष्ट हो गया कि इस चर्चा से कोई विशेष लाभ नहीं है। क्योंकि विषय पर विचार नाममात्र हुआ है । प्रमाण एवं युक्तियों पर विद्वत्तापूर्ण विचार होना था और इतने समय में पूर्ण विचार हो भी क्या सकता है। विषय दार्शनिक है । न्यून से न्यून एक सप्ताह दोनों पक्ष के अनेक नेता अपने लिखित विचार सप्रमाण व्यक्त करें और वह चर्चा प्रकाशित की जाये तब स्थायी लाभ हो सकता है । श्री वेदव्रत जी ने प्रमाण पर्याप्त उपस्थित किये किन्तु उनको क्रमबद्ध अपने विषय पर संयुक्त न कर सके। इसी पुस्तक के पृष्ठ २८ पर आयु को सौ वर्ष मानकर भी इसी पुस्तक के पृ० ७३ पर यह कह दिया कि आयु निश्चित नहीं हो सकती ऐसा विरोधाभास बहुधा है। तथा श्री शास्त्री ओम्प्रकाश जी ने तो योगदर्शन का एक सूत्र 'सति मूले.........' पर स्वामी दर्शनानन्द जी एवं पं० रामचन्द्र देहलवी जी की युक्तियों पर ही सारा समय बिता दिया। अस्तु मेरा मत मनुष्यायु शतवर्ष है यदि आयु निश्चित नहीं तो उसका साधनों से न्यूनाधिक कहना व्यर्थ है ।

—स्वामी रामेश्वरानन्द

घरौंडा (करनाल)

२५-६-७५

(१०) आपका पत्र मिला, प्रसन्नता हुई । आपके विचारों, पत्रों तथा कामों से जो आप कर रहे हैं मैं बहुत ही प्रभावित होता हूँ। चाहे मेरे विचारों और लेखों को आप महत्त्व न दें। मेरे पास इतना समय नहीं कि मैं चारों वेदों के २० हजार मन्त्रों का पारायण कर सकूं । परन्तु बुद्धि और तर्क से यह निश्चित है कि वेद में भी ऐसा ही मिलेगा और है। इसमें कोई सन्देह की बात नहीं है। मैं जो प्रमाण आपको भेजना चाहता था उसे भेज रहा हूँ जो कि निम्नलिखित है । **"एकस्मिन् शतायुः परिमितकालः । शतावध्यागन्तको मृत्युः । नाऽकाले म्रियते कश्चित्"** । यह लेख महर्षि दयानन्द की 'चतुर्वेद विषयसूची' के मुखपृष्ठ पर अपने हाथ से लिखा हुआ है आप परोपकारिणी सभा में देख सकते हैं। इससे यह तो सिद्ध है कि स्वामी जी अकाल मृत्यु नहीं मानते थे और यह उन्होंने वेद का प्रमाण ही लिखा ज्ञात होता है यदि आप वेदों में आयु निश्चित न मानें तो आपको यह मानना होगा कि स्वामी जी वेदों के विरोधी थे, जो कि असंभव है। आप इस लेख को ज्यों का त्यों स्वामी जी के नाम से मेरा भेजा हुआ बोल कर विशेषांक में अवश्य छापें।

आर्यसमाज, भिवानी

—फूलचन्द शर्मा 'निडर'

२६-६-७५

(११) मैंने 'आयु निश्चित है अथवा अनिश्चित' इस विषय के शास्त्रार्थ की मुद्रित पाण्डुलिपि को पढ़ा।

नोट १—प्रथम तीन लेखों पर विचार इस पुस्तक के प्राक्कथन में किया गया है ।

नोट २—यह निर्णय अप्रासङ्गिक होने से उचित नहीं ।

संयोजक

शास्त्रार्थ के विषयानुरूप स्तर, शैली तर्कणा-प्रकार और शब्द-प्रयोग का अभाव मुझे खटका। परन्तु विषय और उसके उद्देश्य को सिद्ध करने वाले अनुरूप प्रयत्न एवं सिद्धान्तस्थिति पर दृढ़ रहने और उसकी रक्षा में जागरूक रहकर बुद्धि-शक्ति का प्रयोग करने में श्री ब्रह्मचारी वेदव्रत का कार्य प्रशंसनीय है। दर्शनविज्ञान के अध्ययन को जो कि शास्त्रार्थ-कला का आधार है उच्चस्तर पर चालू रखने की आवश्यकता है। प्रमाण में दिये गये सूत्रों और उन पर हुई चर्चा से वह उच्चाध्ययन[२] नहीं झलका। फिर भी विचार करने के बाद मेरा मत है कि इस शास्त्रार्थ में विजयश्री श्री ब्रह्मचारी वेदव्रत को प्राप्त होती है।

—आचार्य वैद्यनाथ शास्त्री
(बड़ौदा)
८-७-७५

(१२) मानव योनि में जीवों का आधान शतवर्ष से अधिक नहीं

—रामशंकर गुप्त, सिद्धान्त शास्त्री
(प्रधान-आर्य समाज जलेसर उ० प्र०)

"आर्य साहित्य प्रचार ट्रस्ट-दिल्ली" द्वारा प्रकाशित "कालाकाल मृत्यु शास्त्रार्थ" (विशेषांक) मँगाया और उसका ध्यानपूर्वक अवलोकन किया गया। इस विशेषांक में जो भी प्रमाण, पक्ष और विपक्ष द्वारा प्रस्तुत किये गये हैं उनके अवलोकन करने से अपने विचार में "महाशय ओम्प्रकाश जी शास्त्री का कथन वेदानुकूल तथा तर्कसंगत प्रतीत होता है। भले ही वह अपने कथन की पुष्टि में वेदों के मन्त्र प्रस्तुत नहीं कर सके" जिसका स्पष्टीकरण उन्होंने शास्त्रार्थ स्थल पर इस प्रकार से किया है कि आदरणीय अध्यक्ष महोदय एवं उपस्थित बहनों और भाइयों! पहली तो बात यह है कि मुझे इस शास्त्रार्थ का कोई आभास नहीं था। अचानक महाशय दीपचन्द जी की चिट्ठी पहुंची और मैं दूसरे जलसे का प्रोग्राम छोड़कर सीधा चला आया हूँ। अगर मुझे यह पहले से आभास होता तो मैं कुछ किताबें भी लाता; कुछ भी मेरे पास नहीं है सिर्फ आकर बैठ गया हूँ। इस विशेषांक के अन्त में महाशय जगदेव सिंह जी व स्वामी रामेश्वरानन्द जी व महाशय फूलसिंह शर्मा "निडर" के पत्र भी दिये हैं और इन पत्रों का खण्डन इस विशेषांक के प्रारम्भ में "प्राक्कथन" नामी अध्याय में महाशय दीपचन्द जी आर्य ने किया है। स्वामी रामेश्वरानन्द जी के पत्र का खण्डन करते हुए महाशय दीपचन्द जी आर्य लिखते हैं कि शत वर्ष की आयु का ज्ञान परमात्मा किस समय निश्चित करता है? यह बात भी अवश्य विचारणीय है। यदि मनुष्य जन्म समय करता है तो यह बात यथार्थ नहीं क्योंकि प्रत्येक शरीर का सामर्थ्य आयुर्वेदानुसार उस समय शत वर्ष होना सम्भव नहीं। यदि यह कहा जाए कि मनुष्य योनि गर्भ समय ही के पश्चात् ही प्रारम्भ हो जाती है उस समय परमात्मा प्रत्येक की आयु शत वर्ष निश्चित करता है तो यह मान्यता शास्त्र के निम्न वचन के विरुद्ध है। इसके आगे संस्कारविधि के गर्भाधान संस्कार प्रकरण में दिये हुए सुश्रुत संहिता के शरीर स्थान का एक श्लोक देकर आगे वह लिखते हैं कि उक्त प्रमाण के अनुसार प्रत्येक मनुष्य की शत वर्ष आयु असम्भव है। आगे चलकर दूसरे पैरा में वह लिखते हैं कि यदि अनेक कारणों को मानकर प्रत्येक जीव की शत वर्ष आयु कही जाए तो इतने अधिक कारण लिखने पड़ेंगे कि जिनकी गणना असम्भव है ऐसी अवस्था में शत वर्ष आयु का निश्चित कहना उचित नहीं होगा। महाशय दीपचन्द जी आर्य का ऐसा लिखना वेद विरुद्ध है। हम वेद प्रमाणों से अपने इस लेख में यह सिद्ध करते हैं कि परम पिता परमात्मा सृष्टि की आदि में जब अमैथुनी सृष्टि द्वारा मानवों को उत्पन्न करता है तभी वह प्रत्येक मानवीय जीव का आधान काल शत वर्ष का निश्चित कर देता है। पाठकगण उस! परमपिता परमात्मा ने गत प्रलय के पश्चात् इस वर्तमान सृष्टि को पूर्व सृष्टि के समान आज

से १९७२९४९०७६ वर्ष पूर्व रचा जैसा कि वेद कहता है कि—

सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथा पूर्वमकल्पयत्। दिवञ्च पृथिवीञ्चान्तरिक्षमथो स्वः ॥३७॥ (ऋग्वेद १०।१९०।३७) अर्थात् ईश्वर ने जिस प्रकार से पूर्व कल्प में अर्थात् पूर्व सृष्टि में जैसा रचा था ठीक उसी प्रकार उसने इस वर्तमान कल्प में भी सूर्य, चन्द्र, आकाश और पृथिवी, अन्तरिक्ष तथा प्रकाश व समस्त प्रकार के पदार्थ रचे इसी प्रकार अगले कल्प में भी रचेगा। ईश्वर ने भौतिक और स्थावर सृष्टि रचना के पश्चात् जंगम प्राणियों की सृष्टि की जैसा कि वेद कहता है—**द्रप्सश्च स्कन्द पृथिवीमनु द्यामिमं च योनिमनु यश्च पूर्वः। समानं योनिमनु संचरन्तं द्रप्सं जुहोम्यनु सप्त होत्राः ॥ २८ ॥** (अथर्व: १८।४।२८) अर्थात् संसार में मोह करने वाला जीव द्युलोक और पृथिवी लोक के उत्पन्न हो चुकने पर मनुष्यादि योनियों को प्राप्त होता है जो कि नित्य है। कर्मानुसार योनियों को प्राप्त हुए मोह करनेवाले जीवों को रस, रक्त मांस, मेद, अस्थि, मज्जा और शुक्र रूप सात शरीर अवयवों, अङ्गों के प्रति मैं ईश्वर छोड़ता हूँ। आदि सृष्टि मैं अमैथुनी सृष्टि द्वारा मानव कैसे उत्पन्न होता है कितना बड़ा होता है इत्यादि के विषय में वेद कहता है—**ते अज्येष्ठा अकनिष्ठास उद्भिदोऽमध्यमासो महसा नि वावृधुः। सुजातासो जनुषा पृश्निमातरो दिवो मर्या आ नो अच्छा जिगातन ॥६॥** (ऋग्वेद ५।५९।६.) तथा **अज्येष्ठासो अकनिष्ठास एते सम्भ्रातरो वावृधुः सौभगाय। युवा पिता स्वपा रुद्र एषां सुदुघा पृश्निः सुदिना मरुद्भ्यः ॥५॥** (ऋग्वेद ५।६०।५) अर्थात् वे सृष्टि के आरम्भ में उत्पन्न होने वाले मनुष्य वनस्पति आदि की भांति उत्पन्न हुए और उनमें ज्येष्ठ, कनिष्ठ और मझला न था, सब समान थे, वे तेज से बढ़े, उत्कृष्ट जन्मा वे लोग जन्म से प्रकृति माता वाले तथा प्रकाशमय ईश्वर के पुत्र सबकी अपेक्षा उत्कृष्ट थे। सर्गारम्भ में उत्पन्न मानव, ज्येष्ठ, कनिष्ठ रहित होते हैं, यह भाई कल्याण के लिये एक समान बढ़ते हैं, सदा युवा सदा श्रेष्ठकर्मा पापियों को रुलाने वाला शक्तिशाली ईश्वर इनका पिता है और सब मनोरथों को पूर्ण करने वाली पृथिवी इनकी माता है। ईश्वर सर्गारम्भ में अमैथुनी सृष्टि द्वारा मानवीय योनि में जीवों को लाते समय उनको उपदेश देते हुए घोषणा करता है कि— **जीवतां ज्योतिरभ्येह्यर्वाङा त्वा हरामि शतशारदाय। अवमुञ्चन् मृत्यु पाशानशस्तिं द्राघीय आयुः प्रतरं ते दधामि ॥२॥** (अथर्व० ८।२।२) अर्थात् हे पुरुष! तू प्राणधारण करने वाले जीते जागते लोगों की ज्योति, प्रकाश और कांति को धारण कर, तुझको मैं ईश्वर शत वर्ष की आयु भोगने के लिए इस जीव लोक में अर्थात् पृथिवी पर लाता हूँ और मृत्यु के बन्धनों को और निंदा जनक अपकीर्ति और अप्रशंसनीय, निन्दनीय गत से दूर रहने का उपदेश करता हूँ। तुझे उत्कृष्ट दीर्घ आयु प्रदान करता हूँ।

उद्यानं ते पुरुष नावयानं जीवातुं ते दक्षतातिं कृणोमि। आ हि रोहेममृतं सुखं रथमथ जिर्विर्विदथमा वदासि ॥६॥ (अथर्व ८।१।६) अर्थात् हे मानव जीव! मनुष्य तेरी! ऊपर की गति हो, तू अपने जीवन में ऊपर उठ, नीचे को मत गिर, तेरे जीवन को भी मैं बल से युक्त करता हूँ, तू इस अमृत रूप सौ वर्ष के जीवन से युक्त रमण साधन भोग के आयतन रूप इस देह को सुख पूर्वक निश्चय से धारण कर और तू जीर्ण होकर बुढ़ापे में भी अपने जीवन के ज्ञान मय अनुभव का सर्वत्र उपदेश कर। **उत्त्वा मृत्योरपीपरं संधमन्तु वयोधसः। मा त्वा व्यस्तकेश्यो मात्वाघरुदो रुदन् ॥ १९ ॥** (अथर्व० ८।१।१९) अर्थात्—हे पुरुष मैं ईश्वर मृत्यु के पास से तुझको ऊपर करता हूँ। अन्न; आयु का धारण और प्रदान करने वाले लोग तुझको पुष्टि करें, स्त्रियें बाल खोल कर तेरे लिए न रोया करें और बुरी तरह से रोने वाले बन्धु भी तेरे लिए न रोवें, तू पूर्ण आयु होकर वृद्धावस्था में शरीर त्याग, जिससे किसी के विलाप, दुख का तू कारण न हो। **शतं जीव शरदो वर्धमानः शतं हेमन्ताञ्छतमु वसन्तान्। शतमिन्द्राग्नी सविता बृहस्पतिः शतायुषा हविषेमं पुनर्दुः ॥४॥** (ऋग्वेद १०।१६१।४) अर्थात्—हे मनुष्य तू बढ़ता हुआ सौ वर्ष तक जीव धारण कर। सौ हेमन्तों और सौ वसन्तों तक भी जो इन्द्र, अग्नि, सूर्य, प्राण जठर, सविता, बृहस्पति, उत्पादक

शक्तियां, वीर्य और इस देह का पालक रक्त, ओज धातु सौ वर्ष के जीवन देने के साधन बल से इसको पुनः शक्ति प्रदान करे। **इमं जीवेभ्यः परिधिं दधामि मैषांनु गादपरोऽअर्थमेतम्। शतं जीवन्तु शरदः पुरूचीरन्तर्मृत्युं दधतां पर्वतेन ।। १५ ।।** (यजु० ३५।१५) अर्थात् मैं ईश्वर जीवों के लिए इस मर्यादा को स्थापित करता हूँ। इन जीवों के मध्य कोई भी पूर्ण आयु से पूर्व गमन न करे। यह सब यज्ञानुकूल होते हुए सौ वर्ष तक जीवित रहें।

उपरोक्त वेद मन्त्रों के अलावा और भी वेद मन्त्र ऋग्वेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद से शत वर्ष की आयु के सम्बन्ध में दिये जा सकते हैं किन्तु हम लेख के लम्बा होने के कारण उनको इस लेख में नहीं दे रहे हैं। जिज्ञासु पाठकगण उनको वेदों में देख लें। शत वर्ष से अधिक मानव आयु बतलाने वाला चारों वेदों में से कोई भी वेद मन्त्र नहीं है। महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज ने भी मानवों की शत वर्ष की पूर्ण आयु मानी है। इस प्रकार से पाठकगण देखगे कि आदि सृष्टि अर्थात् सर्गारम्भ में अमैथुनी सृष्टि होती है और अमैथुनी सृष्टि द्वारा उत्पन्न मानवीय योनि में उन्हीं जीवों को ईश्वर लाता है जिनके गत सृष्टि में किये हुए अच्छे बुरे कर्मों का कर्म फल प्रलयकाल आने तक भोगकर उनके कर्म पूर्णतः क्षय को प्राप्त हो चुके हैं और कोई भी कर्म फल भोगने को शेष नहीं रहा है, इसलिए आदि सृष्टि में अमैथुनी सृष्टि द्वारा उत्पन्न समस्त मानवीय जीव फल के भोगने से रहित और सब केवल मात्र कर्म करने वाले सब एक समान होते हैं, इसलिए इसको केवल मात्र कर्म योनि कहा जाता है और ये कर्मयोगी मानव समान बढ़ते हैं उनमें न कोई छोटा न कोई बड़ा न मझला और न कोई अल्प आयु वाला न दीर्घ आयु वाला होता है। सब ही मानवों की एक समान शत वर्ष की आयु होती है और वे सब मानवीय जीव सौ वर्ष से प्रथम देह त्याग नहीं करते और न सौ वर्ष से अधिक देह धारण कर सकते हैं अर्थात् शत वर्ष की ईश्वर प्रदत्त पूर्ण आयु को भोगकर ही देह त्याग करते हैं जैसाकि उपरोक्त यजुर्वेद के मन्त्र ३५-१५ में ईश्वर ने विधान किया है। यह ईश्वरी नियम है इसको कोई भी जीव-सहित-मानव शरीर तोड़ नहीं सकता चाहे वह कितना बड़ा योगी संन्यासी और ब्रह्मचारी हो अथवा कितना ही भोगी कामी हो जैसा कि वेद कहता है—

न यस्येन्द्रो वरुणो न मित्रो व्रतमर्यमा न मिनन्ति रुद्रः। नारातयस्तमिदं स्वस्ति हुवे देवं सवितारं नमोभिः ।।९।। (ऋग्वेद २।३८।९) अर्थात् हे मनुष्यो ! जिस जगदीश्वर के नियम को सूर्य और बिजली न जल न वायु न जीव न शत्रु जन नष्ट करते हैं उस इस सुखरूप समस्त जगत् के उत्पन्न करने वाले दाता परमात्मा की सत्कर्मों से जैसे मैं उपासना करता हूँ तुम भी प्रशंसा करो। "**भावार्थ**"—इस संसार में कोई पदार्थ ईश्वर के तुल्य नहीं है तो अधिक कैसे हो और कोई भी इसके नियम को तोड़ नहीं सकता है। "**न ता मिनन्ति मायिनो न धीरा व्रता देवानां प्रथमा ध्रुवाणि। न रोदसी अद्रुहा वेद्याभिर्न पर्वता निनमे तस्थिवांसः ।।१।।** (ऋग्वेद ३।५६।१) अर्थात् हे मनुष्यो ! ईश्वर ने यथार्थवादी विद्वानों के जो आदि में वर्तमान अखण्डित उत्तम कर्म उपदेश किये व रचे गये उनको निन्दित बुद्धि वाले नहीं नाश करते। ध्यान करने वाले श्रेष्ठ पुरुष नहीं नाश करते हैं। अन्तरिक्ष और पृथिवी नहीं नाश करते हैं। द्रोह से से रहित अध्यापक और उपदेशक नहीं नाश करते हैं। जानने के योग्य प्रजाओं के साथ नवने के योग्य स्थान में स्थित हुए पर्वत नहीं नाश करते हैं उनको जान के आप आचरण करें। "**भावार्थ**"—किसी का भी सामर्थ्य नहीं है कि जो ईश्वर के नियमों का उल्लंघन करे। पाठक गण ! सर्गारम्भ में ही एक दम से अमैथुनी सृष्टि हो चुकने के पश्चात् तुरन्त एक साथ अमैथुनी सृष्टि का क्रम समाप्त हो जाता है और उसके बजाय मैथुनी सृष्टि का क्रम चालू हो जाता है जो कि प्रलय काल आने तक चलता रहता है। मैथुनी सृष्टि के सम्बन्ध में वेद कहता है कि— **प्रथमेन प्रमारेण त्रेधा विष्वङ् वि गच्छति। अद एकेन गच्छत्यद एकेन गच्छतीहैकेन निषेवते ।।३३।।** (अथर्ववेद (११।८।३३) अर्थात्—प्रथम प्राण छूट जाने पर (कल्प की आदि में प्रारम्भिक अमैथुनी सृष्टि द्वारा उत्पन्न) मानव जीवों के शरीर से जीव निकल जाने के पश्चात् मानवों का सूक्ष्म लिंग शरीरवान जीव तीन प्रकार से नाना योनियों में

जाता है। उस उत्तम लोक अर्थात् मोक्ष को एक प्रकार के उत्तम कर्म से प्राप्त होता है, उस नरक अर्थात् तिर्यक् योनि को भी एक विशेष प्रकार के पाप कर्म से प्राप्त होता है। इस मानव शरीर में एक विशेष प्रकार के अपने कर्म फल भोगने को पुनः आता है। आ यो। **धर्माणिप्रथमः ससाद ततो वपूंषि कृणुषे पुरूणि। धास्युर्योनिं प्रथम आ विवेशा यो वाचमनुदितां चिकेत** ।।२४।। (अथर्ववेद ५।१।२) अर्थात्—हे जीव उन कर्मों से तू नाना प्रकार के शरीर धारण करता है और देह धारण की इच्छा से प्रथम गर्भ में प्रविष्ट होता है और वही तू बिना उपदेश की हुई वाणी को अपने पूर्व संस्कारों को जानता है। **आदिन्म तृराविशद्यास्वा शुचिर्हिंस्यमानउर्विया विवावृधे। अनु यत्पूर्वा अरुहत्सनाजुवो नि नव्यसीष्ववंरासु धावते** ।। ।।५।। (ऋग्वेद १।१४१।५) अर्थात् वह जीव माताओं के गर्भ में प्रथम प्रविष्ट होता है और अनन्तर जिसके बीच में वह किसी प्रकार भी पीड़ित न होता हुआ बहुत अच्छी प्रकार से शुद्ध रक्त से सिक्त होकर अग्नि के समान विशेष रूप से वृद्धि को प्राप्त होता है। वह जीवात्मा सनातन काल से चला आया पूर्व की माताओं को प्राप्त होकर जिस प्रकार बीज रूप में स्थित होकर अनुकूल स्थिति में जन्म प्राप्त करता रहा ठीक उसी प्रकार अब के काल में विद्यमान नये काल में अब की माताओं में भी उसी रीति से नियम पूर्वक जन्म लेता है।

पाठकगण! उपर्युक्त वेदों के प्रमाणों से यह पूर्णतया सिद्ध है कि परमात्मा ने मानव शरीर में जीवों के आधान काल की अवधि शत वर्ष रखी है। यहां पर यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि अब मैथुनी सृष्टि द्वारा उत्पन्न सभी मानवों की एक समान शत वर्ष की आयु क्यों नहीं होती इसका उत्तर यह है कि आदि सृष्टि में अमैथुनी सृष्टि द्वारा उत्पन्न सभी मानव कर्म-फल से रहित उत्पन्न होते हैं इसलिये सभी मानवों की एक समान आयु शत वर्ष की परमात्मा नियत कर देता है। इसके विपरीत मैथुनी सृष्टि द्वारा उत्पन्न मानव जीव अपने गत शरीर में किये हुए कर्म बन्धनों के साथ उत्पन्न होता है इसलिये मैथुनी मानव-सृष्टि भोग और कर्म उभय योनि कहलाती है कि जिसमें जीव अपने गत शरीर में किये हुए कर्मों का फल भी भोगता है और नवीन कर्म भी करता है। और प्रत्येक मानवीय जीव के कर्म एक समान होते नहीं हैं, भिन्न-भिन्न होते हैं अतः परमात्मा जिस जीव का जैसा कर्म होता है उस कर्म के अनुसार उस जीव को वैसी योनि प्रदान करता है और योनि प्रदान करते समय ही उस जीव का उसमें आधान काल भी निश्चित कर देता है। मानव योनि में परमात्मा जीवों के कर्मानुसार किन्हीं जीवों का शत वर्ष का किन्हीं जीवों का शत वर्ष से कम और किन्हीं जीवों का शत वर्ष के भीतर कम बढ़ किसी का कुछ किसी का कुछ आधान-काल मातृ-गर्भ में प्रवेश होते समय ही निर्धारित कर देता है जिसको परमात्मा ही जानता है जीव नहीं जान सकता। जिस जीव का जिस योनि में जितना आधान-काल कर्मानुसार परमात्मा निर्धारित कर देता है वह जीव उतने ही काल तक उस योनि में रहता है न कम न अधिक। इस बात का ज्ञान इस प्रकार से होता है कि एक माता के उदर से एक ही समय में दो सन्तानें उत्पन्न होती हैं और उत्पन्न होकर एक-समान पालित पोषित होकर बड़ी होती हैं, उनमें से एक सन्तान पहिले मर जाती है तथा दूसरी सन्तान उससे अधिक आयु भोगकर मरती है। इससे मानना पड़ता है कि मैथुनी मानव सृष्टि में प्रत्येक मानवीय जीव का मानव योनि में आधान-काल उसके कर्मानुसार भिन्न-भिन्न होता है, किसी का कम किसी का अधिक। कहा जाता है कि योग-साधन और ब्रह्मचर्य धारण करने से और वेदानुकूल आचरण करने से मानव जीव वर्तमान प्राप्त मानव योनि में अपना आधान-काल बढ़ा लेता है और इसके विपरीत विषय-वासना में फंसकर अपना आधान-काल घटा लेता है। परन्तु यह कथन प्रत्यक्ष प्रमाणों से सिद्ध नहीं होता है। इस सम्बन्ध में हम दो प्रत्यक्ष प्रमाण पाठकों के सम्मुख रखते हैं जिसमें एक प्रमाण जगद्गुरु स्वामी शंकराचार्य जी महाराज का तथा दूसरा महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज का है।

जगद्गुरु स्वामी शंकराचार्य जी महाराज ने बालकाल में ही गृह का त्याग करके संन्यासाश्रम में प्रवेश किया। बालकाल से लेकर मरण पर्यन्त अखण्ड बाल ब्रह्मचारी रहकर योगाभ्यास और ईश्वरोपासना आदि वैदिक कर्म करते

रहे किन्तु उनकी आयु बढ़ी नहीं और ईश्वर निर्धारित शत वर्ष से पूर्व ही तीस-बत्तीस वर्ष की अवस्था में उनका देहपात हो गया। इसी प्रकार जगद्गुरु महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज ने भी बालावस्था में गृह का त्याग करके संन्यासाश्रम में प्रवेश किया और बालकाल से लेकर मरण पर्यन्त अखण्ड बाल ब्रह्मचारी रहकर योगाभ्यास तथा वेदमंत्रों से ईश्वरोपासना, प्रार्थना करते रहे और वैदिक धर्म प्रचार और प्रसार में लीन रहे किन्तु उनकी भी आयु बढ़ी नहीं और ईश्वर निर्धारित शत वर्ष से पूर्व ही उनसठ वर्ष की अवस्था में उनका देहपात हो गया।

यहाँ पर लोग-बाग यह कह सकते हैं कि उनकी मृत्यु विष दिये जाने के कारण हुई थी यदि विष न दिया जाता तो वह सौ वर्ष से भी अधिक जीवित रहते। इस विषय में हमारा निवेदन है कि महर्षि की मृत्यु का कारण समय ही था विष नहीं, यदि विष कारण होता तो इससे पहिले भी अनेकों बार उनको विष दिया गया वह विष के कारण तभी मृत्यु को प्राप्त हो जाते लेकिन हुए नहीं इससे मानना पड़ता है समय ही कारण था विष नहीं। जब उनका समय ही आया तब ही विष ने कार्य किया और पहिले के विष बेकार रहे। इसके विपरीत पाठक गण देखेंगे कि श्रीयुत मण्डन मिश्र एक गृहस्थ थे जिन्होंने कभी ब्रह्मचर्य धारण किया नहीं और न योगाभ्यास ही किया किन्तु फिर भी वह जगद्गुरु स्वामी शंकराचार्य जी महाराज के पश्चात् स्वर्गवासी हुए। इसी प्रकार से जगद्गुरु महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज का बाल कालीन मुस्लिम मित्र इब्राहीम एक गृहस्थ था, जीवन भर भोग विलास में फंसा रहा, कभी ब्रह्मचर्य धारण किया नहीं, वेद मंत्रों से ईश्वरोपासना प्रार्थना की नहीं, फिर भी वह महर्षि के पश्चात् बहुत वर्ष बाद स्वर्गवासी हुआ। इन उपरोक्त घटनाओं से दिनकर की भाँति सिद्ध है कि योगाभ्यास और ब्रह्मचर्य धारण करने से और वेद मन्त्रों से ईश्वरोपासना प्रार्थना करने से जीव का प्राप्त वर्तमान मानव योनि में आधान काल बढ़ता नहीं है और न भोग विलास तथा अब्रह्मचर्य से जीव का प्राप्त वर्तमान मानव योनि में आधार काल घटता है। जीवन मरण तो एक मात्र परमात्मा के ही हाथ में है जीव के हाथ में नहीं चाहे वह कितना बड़ा योगी अथवा कितना बड़ा भोगी हो। पाठक गण! यह बात बिल्कुल सत्य है कि वेदानुकूल आचरण करने से और ब्रह्मचर्य और योगाभ्यास धारण करने से और वेद-मंत्रों द्वारा ईश्वरोपासना, प्रार्थना करने से जीवात्मा शुद्ध पवित्र और निर्मल होता है जिसके कारण उसको पुनः मानव योनि ही प्राप्त होती है। जीवात्मा हर प्राप्त मानव योनि में यदि वेदानुकूल आचरण करता रहे और योगाभ्यास करता रहे तो तीन चार बार में ही उसको मुक्ति प्राप्त हो जाती है जिस से वह जीवन मरण अर्थात् देह धारण और त्याग के चक्कर में नहीं फंसता और एक निश्चित काल तक स्वच्छन्द परमपिता परमात्मा में आनन्दपूर्वक विचरण करता है। ऋग्वेद में आये हुए **"त्रीण्यायूंषि"** (३।१७।३) वाले मंत्र का और यजुर्वेद में आये हुए **"त्र्यायुषं जमदग्ने"** (३।६२) वाले मंत्र का यही अभिप्राय और अर्थ है कि परमपिता परमात्मा हमें बाल, युवा और वृद्धावस्था से युक्त शत वर्ष की पूर्ण आयु तीन बार अथवा चार बार प्रदान करे। वर्तमान प्राप्त मानव शरीर में ही तीन सौ वर्ष की अथवा चार सौ वर्ष की आयु का होना सर्वथा असम्भव और वेद-विरुद्ध है।

जिन महाशयों की यह धारणा है कि वेद-मंत्रों द्वारा ईश्वरोपासना और प्रार्थना करने से तथा ब्रह्मचर्य धारण करने से और योगाभ्यास करने से प्राप्त वर्तमान मानव योनि में ही जीवों का आधान काल अर्थात् आयु बढ़कर तीन सौ या चार सौ वर्ष की हो जाती है वह गहरे अन्धकार में है। उनको स्मरण रखना चाहिये कि मानव योनि एक कर्म योनि है जिसमें जीव कर्म करने को ईश्वरी व्यवस्था से आता है। बिना शरीर के जीव कर्म कर नहीं सकता। जीव को कर्म करने के हेतु पुष्टि और बलिष्ठ शरीर की आवश्यकता होती है जीर्ण-शीर्ण शरीर की नहीं शतवर्ष पूर्ण होने तक मानव शरीर जीर्ण शीर्ण होकर कर्म करने के योग्य रहता नहीं है, तो क्या परमात्मा इतना भी नहीं जानता और मूर्खतापूर्ण कार्य करता है कि एक जीर्ण-शीर्ण हुए शरीर में ही जीविका आधान काल बढ़ा दे। परमात्मा सर्वज्ञ

और पूर्ण ज्ञानी है वह ऐसी मूर्खता का कार्य कदापि नहीं कर सकता। वह तो प्राप्त वर्तमान योनि में जिस जीव का गुण कर्म और स्वभाव वेदानुकूल होता है उसको पुनः नवीन मानव योनि बाल युवा और वृद्धावस्था से युक्त पूर्ण शतवर्ष आयुवाली प्रदान करता है। जो मानव शत वर्ष की पूर्ण आयु भोग कर देह त्याग करते हैं उनकी **"काल मृत्यु"** कही जाती है और जो शत वर्ष से पूर्व जीव देह त्याग करते हैं उनकी "अकाल मृत्यु" कही जाती है। यही **"कालाकाल मृत्यु"** का रहस्य है।

अमर स्वामी जी महाराज द्वारा विशेष वक्तव्य—

"कौन कहता है कि आयु घट-बढ़ नहीं सकती?"

अकाल मृत्यु नहीं होती और आयु घट-बढ़ नहीं सकती, ऐसा कहने वाले लोग—कल्पनाओं के आधार पर ही अपने मन्तव्यों का भवन खड़ा करते हैं, वेदादि सत्यशास्त्रों के नाम पर उनके पास योग दर्शन का एक सूत्र ही परम प्रमाण है वह सूत्र है— **"सतिमूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगाः"** इस सूत्र का मनमाना अर्थ उन लोगों ने यह लगा रक्खा है कि—पूर्व जन्म के शुभाशुभ कर्मों के अनुसार प्रत्येक जीव को जाति-जन्म, आयु और भोग, परमेश्वर की ओर से निश्चित मिलते हैं। जन्म लेकर कोई चाहे कुछ भी करे परन्तु जाति, आयु और भोग इन तीनों में लेश मात्र भी परिवर्तन नहीं हो सकता है—**"लिखना लिखी ललाट में, छटी रात के अंक। राई घटै न तिल बढ़ै, रह रे जीव निशंक।।"** तथा **"दादू दुनिया बावरी, फिरि फिरि मांगत सोन। लिखने वाला लिख गया, मेटन वाला कौन? ।।"** आदि-आदि भावुक व्यक्तियों के वचन हैं, जब किसी घर में किसी बहुत अधिक प्यारे व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है तब कुछ सम्बन्धी तथा अड़ोस पड़ोस के लोग, रोने वाले, मृतक के सम्बन्धियों को धैर्य धारण करने की सम्मति देते हुए कहते हैं कि—जो कुछ हो गया वह तो हो गया, रोने धोने से वह वापिस नहीं आ सकता है। इसलिए रोना छोड़कर सब हिम्मत बांधो और जो लोग जीवित हैं उन्हीं पर सन्तोष करो। उसी समय कोई-कोई यह भी कहते हैं कि—यह तो होना ही था, होनहार को कोई टाल नहीं सकता, वह तुम्हारे पास इतने ही समय के लिए आया था, जो जितने दिनों के लिए आया है वह उतने दिन ही रहेगा। उसकी उतनी ही आयु थी, आयु को कौन बढ़ा सकता है? आदि-२।। यदि कोई व्यक्ति दुर्घटना (accident) से मर जाता है तो लोग कहते हैं कि जिसकी जिस तरह और जहां मृत्यु होनी भगवान ने निश्चित की है उसकी वहां ही और उस ही तरह मृत्यु होती है, उसमें कुछ भी अन्तर पड़ नहीं सकता, आदि-आदि। इसी प्रकार भोग के लिए कहते हैं कि—जिसका जहां-जहाँ, जितना-जितना अन्न, जल बिखरा हुआ है, वहां वहां से उतना-उतना उसको भोगना ही है, अर्थात् दाने-दाने पर मुहर है। साधारण व्यक्ति ही नहीं बल्कि कई उपदेशक भी इस प्रकार की भोली-भोली बातें कहते हैं कि **तुलसी जस भवितव्यता, तैसी मिले सहाय। आप न आवै ताहि पै, ताहि तहां ले जाये।।"** मैं उन उपदेशकों को पूछता रहता हूं कि दाने-दाने पर ही मुहर है या बकरा, मछली, कबूतर, चिड़िया पर भी है? तो **"तेरी भी चुप और मेरी भी चुप"** पूछा जाता है कि जब प्रत्येक प्राणी की मृत्यु निश्चित है कि—उस समय उस स्थान पर ही होगी, तो यह भी निश्चित है कि नहीं? कि तलवार, छुरा, गोली, काहे से मृत्यु होगी? और यह भी निश्चित है कि नहीं? कि—किस व्यक्ति के हाथ से किसकी मृत्यु होगी? इस पर बहुत कुछ पूछा जा सकता है। पर मैं पूछने की अपेक्षा यहां कुछ बताना अधिक उपयुक्त समझता हूँ, इसलिए वेद के प्रमाण तथा संस्कारविधि के प्रमाण देता हूं। वेद मन्त्रों पर भी महर्षि दयानन्द जी का भाष्य है, इनसे वेद और महर्षि दयानन्द जी, दोनों के प्रमाण साथ-साथ देखने को मिलेंगे। हमारे लिए तो वेद भी प्रमाण है और महर्षि दयानन्द जी भी! यह लेख विद्वानों तथा अन्य स्वाध्यायशीलों के लिए लिखा जा रहा है, इस लेख में दिये गये प्रमाणों को विचार पूर्वक विचारशील सज्जन देखें, और फिर निश्चय करें कि—**"अकाल मृत्यु होती है वा नहीं?"**

तथा "आयु निश्चित है या नहीं ?" मैं इस लेख में केवल प्रमाण ही उद्धृत करूंगा, विस्तार में नहीं जाऊँगा, पाठक गण प्रमाणों को देखें और विचारें। आप प्रथम जो प्रमाण महर्षि दयानन्द जी महाराज द्वारा "संस्कार विधि" में प्रयुक्त हुए हैं उनको देखिये—

संस्कार विधि में विद्यमान कुछ प्रमाण—

(१) "देवा न आयुः प्रतिरन्तु जीवने"···)यजुर्वेद २५-१५) स्वस्तिवाचन में २५वां मन्त्र, (२) "जीवेम शरदः शतम्"···(यजुर्वेद (३६-२४) शान्ति प्रकारण में, (३ —"ओ३म् अग्न आंयूषि पवस···" (ऋग्वेद, ६-६६-१६) सामान्य प्रकरण में, (४) —"ऊनषोडवर्षायाम प्राप्तः पंचविंशतिम् । यथा धत्ते प्रमाण गर्भ, कुक्षिस्त स विपद्यते ॥ जातो वानचिरं जीवेत् जीवेद्वा दुर्बलेन्द्रिय । तस्मादत्यन्तबालायां, गर्भाधानं न कारयेत ॥ (सुश्रुत-शरीर स्थाप) गर्भाधान प्रकरण में, (५) 'यत्ते सुसीमे०······**जीवेम शरदः शतम्**'। (पारस्कर गृह्यसूत्र) गर्भाधान प्रकरण में, (६) "प्रजामस्यै जरदष्टिं कृणोमि ··।" (मन्त्र ब्राह्मण) सीमन्तोन्नयन में, (७) "प्रते ददामि०······आयुस्मान गुप्तो देवताभिः शतं जीव शरदो लोके अस्मिन्" ॥ (आश्वलायन गृह्यसूत्र) जातकर्म सस्कार में, (८) "त्वा आयुषा आष्युमन्तं करोमि ·· ··" (पारस्कार गृह्यसूत्र)।

नोट—इस प्रकार का पाठ यहां आठ बार और आया है इस प्रकार ये १६ प्रमाण हुए।

(१७) "ओम् इदमाज्यमिदमन्नमिदमायुरिदम मृतम्······' (मन्त्र ब्राह्मण और गोभिल (गृहसूत्र) जातकर्म सस्कार में)। (१८) "शतं शरदो जीवसे·····ओं अश्मा भव परशुर्भव हिरण्यमस्तृतं भव" ॥ (आश्वलायन) (१९) "वेदो वै पुत्रनामासि स जीव शरदः शतम्······॥" (जातकर्म संस्कार में), (२०) "त्र्यायुषं जमदग्नेः कश्यपस्य त्र्यायुषम्··· "यद्देवेषु त्र्यायुषं तन्नो अस्तु त्र्यायुषम् ॥ (यजु० ३।६२) जातकर्म संस्कार में, (२१) "ओम् वेद ते हृदयं······पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतं शृणुयाम शरदः शतम" ॥ (पारस्कर) जातकर्म संस्कार में, (२२) ओं इन्द्राग्नी शर्ममयच्छत०······यथायं न प्रमीयते पुत्रो जनि अधि। (मन्त्र ब्राह्मण) जातकर्म संस्कार में, (२३) "संवत्सरस्त्वायुषे जरायै परिददाम्यसौ" ॥७७॥ (मन्त्र ब्राह्मण) जातकर्म संस्कार में, (२४) "अंगादंगात् सं भवसि हृदयादधि जायसे। प्राणं ते प्राणेन सन्दधामि, जीव ते यावदायुम् ॥८॥ (मन्त्र ब्राह्मण) जातकर्म संस्कार में, (२५) अङ्गादङ्गात् स भवसि हृदयादधि जायसे। वेदो वै पुत्र नामासि स जीव शरदः शतम् ॥९॥ (२६) अश्मा भव परशुर्भव हिरण्यमस्तृतं भव। आत्मासि पुत्र मा मृथाः स जीव शरदः शतम् ॥१०॥ (मन्त्र ब्राह्मण) जातकर्म संस्कार में, (२७) इमं जीवेभ्यः परिधिं ददामि, मैषां नु गादपरोअर्थमेतत्। शतं जीवन्तः शरदः पुरूचीस्तिरो मृत्युं दधतां पर्वतेन॥ (अथर्व० १२।२।२३) जातकर्म संस्कार में। (२८) आशीर्वाद—हे बालक! "त्वमायुष्मान् वर्चस्वी, तेजस्वी श्रीमान् भूयाः"। (आर्यभाषा में)"हे बालक"(तू)आयुष्मान् विद्यावान्, धर्मात्मा, यशस्वी, पुरुषार्थी प्रतापी, परोपकारी, श्रीमान् हो॥ (नामकरण संस्कार के अन्त में) (२९) "संवत्सरस्त्वायुषे जरायै परिददातु असौ" ॥ (नामकरण संस्कार में), (३०)"ओं इन्द्राग्नी मे शर्म यच्छतं' प्रजायै मे प्रजापती। यथायं न प्रमीयेत् पुत्रो जनित्र्या अधि॥ (मन्त्रब्राह्मण) निष्क्रमणसंस्कार में, (३१) "अङ्गादङ्गात्०····· आत्मा वै पुत्र नामासि स जीव शरदः शतम्" ॥१॥ (३२) प्राजापतेष्ट्वा हिङ्कारेण जिघ्रामि; सहस्रायुषा ऽसौ जीव शरद शतम् ॥१॥ (३३) गवां त्वा हिङ्कारेणेव जिघ्रामि। सहस्रावा ऽसौ जीव शरदः शतम् (पारस्कर गृह्यसूत्र निष्क्रमणसंस्कार में, (३४) "अस्मे प्रयन्धि० अस्मे शतशरदो जीवसे···" (पारस्कर गृह्यसूत्र निष्क्रमणसंस्कार में, (३५) "तच्चक्षुर्देवहितं ···जीवेम शरदः शतम्···" (यजु० ३६।४) निष्क्रमण संस्कार में, (३६)

आशीर्वाद—"त्वं जीव शरदः शतं वर्धमानः" (निष्क्रमण संस्कार के अन्त में) (३७) ओं त्वमन्नपतिरन्नादो वर्धमानो भूयाः। (अन्नप्राशन संस्कार में) (३८) ओं अदितिः श्मश्रु वपत्वाप उदन्तु वर्चसा। चिकित्सतु प्रजापति, दीर्घायुत्वाय वर्चसे ॥ (पारस्कर गृह्यसूत्र) चूड़ाकर्म संस्कार में,(३९)"ओ३म् सविता प्रसूता दैव्या आप उन्दन्तु ते तनूं। दीर्घायुत्वाय वर्चसे ॥ पारस्कर गृह्यसूत्र) चूड़ाकर्म संस्कार में, (४०) "ओ३म् शिवो नामासि स्वधितिस्ते पिता नमस्ते अस्तु मा माहिंसीः" ॥ (यजुर्वेद, ३-६३) चूड़ाकर्म संस्कार में, (४१) "ओ३म् निवर्त्तमाम्यायुषेऽन्नाद्याय प्रजननाय, रायस्पोषाय सुप्रजास्त्वाय, सुवीर्याय" ॥ (यजुर्वेद) चूड़ाकर्म संस्कार में, (४२) "ओ३म् येनधाता बृहस्पतेरग्नेरिन्द्रस्य चायुषेऽवपन्। तेन त आयुषेवयामिसुश्लोक्याय स्वस्तये" ॥ (आश्वलायन गृह्यसूत्र) चूड़ाकर्म संस्कार में, (४३) "ओ३म् येन भूयश्च······तेन त आयुषे वपामि·········" ॥ (आश्वलायन गृह्यसूत्र) चूड़ाकर्म संस्कार में, (४४) "येनपूषा·········तेन ते वपामि ब्रह्मणा जीवातवे जीवनाम दीर्घायुष्ट्वाय वर्चसे" ॥ (मन्त्र ब्राह्मण १-६-७) चूड़ाकर्म संस्कार में, (४५) "ओ३म् येन भूरिश्चरादिवं ·········तेन ते वपामि ब्रह्मणा जीवातवे जीवनाय सुश्लोक्याय स्वस्तये" ॥ (पारस्कर गृह्य सूत्र) चूड़ा कर्म संस्कार में, (४६) "ओ३म त्र्यायुषं······" (यजुर्वेद, ३-६२), (४७) "ओ३म् यत् क्षुरेण······ शुन्धिशिरो मास्मायुः प्रमोषी" ॥ (आश्वलायन गृह्यसूत्र, १-१७-१५) चूड़ा कर्म संस्कार में, (४८)" "ओ३म् त्वं जीवः शरदः शतं वर्धमानः" ॥ (४९) ओ३म् येनेन्द्राय बृहस्पतिर्वासः पर्यदधादमृतम्। तेन त्वापरिदधाम्या युषे दीर्घायुत्वाय बलाय वर्चसे" ॥ (पारस्कर गृहसूत्र) उपनयन संस्कार में, (५०) "ओ३म् यज्ञोपवीत परमं पवित्रं······ आयुष्यं······" ॥ (पारस्कर गृह्यसूत्र) उपपयन संस्कार में (५१) "ओ३म् त्वं जीव शरदः शतं वर्धमानः, आयुष्मान तेजस्वी वर्चस्वी भूयाः" ॥ उपनयन संस्कार में, (५२) "ओ३म् अग्नेसमिध ·········अहमायुषा धया······" ॥ (पारस्कर गृह्यसूत्र) वेदारम्भ संस्कार में, । (५३)—"ओं आयुर्दा अग्नेस्यायुर्मे देहि" ॥२॥ उपनयन संस्कार में आचार्य का आशीर्वाद, (५४)—"आयुष्मान् विद्यावान् भव सौम्य" ॥ वेदारम्भ संस्कार में (५५) "अभिवादनशीलस्य, नित्यं वृद्धोपसेविनः"। चत्वारि तस्य वर्धन्त, आयुर्विद्यायशोबलम् ॥ (मनुस्मृति अध्याय २, श्लोक १२१) वेदारम्भ संस्कार के पीछे (५६) "ओं परिधास्यै यशोधास्यै, दीर्घायुत्वाय जरदष्टिरस्मि। शतं च जीवाभिशरदः पुरुची, रायस्पोषमभिसंव्यपिष्ये" ॥ (पारस्कर गृह्यसूत्र) समावर्तन संस्कार में, (५७) रूपसत्व-गुणोपेता, धनवन्तो यशस्विनः। पर्याप्तभोगाधर्मिष्ठा, जीवन्ति च शतं समाः ॥ (मनुस्मृति अध्याय ३ श्लोक ४०) ॥

इस पर महर्षि दयानन्द सरस्वती जी का किया अर्थ वे पुत्र व कन्या सुन्दर रूप बल पराक्रम शुद्ध बुद्धिमानादि उत्तमगुणयुक्त, पुण्यकीर्तिमान् और पूर्ण भोग के भोक्ता अतिशय धर्मात्मा होकर सौ वर्ष तक जीते हैं। (विवाह संस्कार के प्रमाणों में)(५८)"ओं जरां गच्छ शतं च जीव शरदः सुवर्चारयिं च। पुत्राननुसं व्ययस्वायुष्मतीदं परिधत्स्ववासः ॥ (पारस्कर गृह्यसूत्र) (१।४ १२) विवाह संस्कार में कन्या को वस्त्र देते हुए, (५९) "ओं या अकृन्तन्नवयन्० तास्त्वा देवीर्जरसे संव्ययस्वायुष्मतीदं परिधत्स्व वासः" ॥ (पारस्कर गृह्यसूत्र १।४।१३) (वर वधू को वस्त्र देता हुआ बोलता है) (६०) "ओं परिधास्यै यशोधास्यै, दीर्घायुत्वाय जरदष्टिरस्मि। शतं च जीवामि शरदः"। (पारस्कर गृह्यसूत्र) विवाह संस्कार में वरवस्त्र धारण करते समय बोलता है), (६१) "ओं गृभ्णामि ते सौभगत्वाय हस्तं मया पत्या जरदष्टिर्यथासः"। (ऋग्वेद १०।८५।३६ ॥) (विवाह संस्कार में पाणिग्रहण के समय वर बोलता है) महर्षि का अर्थ--(जरदष्टिः) जरावस्था को प्राप्त। (६२) "ममेयमस्तु पोष्या० शं जीव शरदः शतम्" ॥ (अथर्ववेद १४।१।५२) (विवाह संस्कार में पाणिग्रहण करता हुआ वर बोलता है)।

इस पर ऋषि का अर्थ देखिये—"मया पत्या" मुझ पति के साथ "शतम्" सौ "शरदः" शरद ऋतु अर्थात् शत वर्ष पर्यन्त "शं-जीव" सुख पूर्वक जीवन धारण कर। (६३) "ओ३म् प्रेभोऽहमस्मि·········पुत्रान् विन्दावहै बहून्। ते सन्तुजरदष्टयः·········पश्येम शरदः शतम् जीवेम् शरदः शतम् श्रृणुयाम शरदः शतम् ॥७॥ (पारस्कर

गृह्यसूत्र) इसे विवाह संस्कार के अन्तर्गत शिलारोहण से पहले वर बोलता है। इस पर ऋषि का भाष्य देखिये—"**बहून पुत्रान् विन्दावह**" बहुत पुत्रों को प्राप्त होवे, 'ते' वे पुत्र "**जरदृष्ट्य:**" जरावस्था के अन्त तक जीवनयुक्त "**सन्तु**" रहें। "**शतम्**" सौ '**शरद:**" शरदऋतु अर्थात् शतवर्ष पर्यन्त एक दूसरे को प्रेम की दृष्टि से "**पश्येम**' देखते रहें। "**शतं शरद:**" सौ वर्ष पर्यन्त आनन्द से "**जीवेम**" जीते रहें और '**शतं शरद:**" सौ वर्ष पर्यन्त प्रिय वचनों को सुनते रहें। (६४) लाजाहोम के दूसरे मन्त्र में कहा है—"**आयुष्मानस्तु मे पतिः**" मेरा पति बड़ी आयु वाला होवे, ऐसा वधु कहती है कि - मेरे पति की आयु बड़ी हो, वह लम्बी आयु वाला हो। (पारस्कर गृह्य सूत्र १-६-२) विवाह संस्कार में सूर्य दर्शन करते हुए वर बोलता है, (६५) "**ओ३म् तच्चक्षुर्देवहितं········पश्येम शरद:शतम् जीवेम शरद: शतम् शृणुयाम शरद: शतं प्रब्रवाम शरद: शतम् दीनः स्याम शरद: शतं भूयश्च शरद: शतात्**"॥ (यजुर्वेद—३६-१४), (६६) "**ओ३म् ध्रुवमसि········ मयापत्या प्रजावती संजीव शरद: शतम्**"। (पारस्कर गृह्यसूत्र, १-८-१६) विवाह संस्कार में ध्रुव दर्शन कराते समय इसे वर बोलता है। इस पर ऋषि का भाष्य देखिये—"**मया**" मुझ "**पत्या**" पति के साथ "**प्रजावती**" बहुत उत्तम प्रजायुक्त होकर सौ वर्ष पर्यन्त आनन्दपूर्वक जीवन धारण कर। पत्नी भी इसी प्रकार कहे कि—आप मुझ पत्नी के साथ उत्तम प्रजायुक्त होकर सौ वर्ष पर्यन्त जीवें। (६७) **इहैव स्तं मा वियौष्टं विश्वमायुर्व्यश्नुतम्**॥ (अथर्ववेद, १४।१।२२) गृहस्थाश्रम के आरम्भ में दूसरा मन्त्र है। (६८) "**इहेमाविन्द्र संनुद० विश्वमायुर्व्यश्नुताम्**॥" अथर्व १४।२।२६ (गृहाश्रम के आरम्भ में) ऋषिभाष्य (एनो) ये (पति-पत्नी) दोनों स्वस्तकौ सुत्रयुक्त होके (विश्वम्) सम्पूर्ण सौ वर्ष पर्यन्त (आयु:) आयु को (व्यश्नुताम्) प्राप्त होवें। (६९) '**प्र बुध्यस्व सुबुधा**" **बुध्यमान दीर्घायुत्वाय शतशारदाय**। **गृहान् गच्छ गृहपत्नी यथासो दीर्घं ते आयुः सविता कृणोतु**॥ ऋषि भाष्य—हे पत्नी! तू (**शतशारदाय**) शतवर्ष पर्यन्त (**दीर्घायुत्वाय**) दीर्घ काल जीने के लिए (**सुबुधा**) उत्तम बुद्धि युक्त (**बुध्यमाना**) सज्ञान होकर (**गृहान्**) मेरे घरों को (**गच्छ**) प्राप्त हो और (**गृहपत्नी**) मुझ घर के स्वामी की स्त्री (**यथा**) जैसे (ते) तेरा (**दीर्घम्**) दीर्घ काल पर्यन्त (**आयु:**) जीवन (**प्राप्त:**) होवे वैसे (**प्रबुध्यस्व**) प्रकृष्ट ज्ञान और उत्तम व्यवहार को यथावत् जान। यहां महर्षि दयानन्द जी महाराज के भाष्य में भी स्पष्ट है कि—उत्तम ज्ञान और उत्तम व्यवहारों से आयु सौ वर्ष तक हो सकती है उत्तम ज्ञान और उत्तम व्यवहारों के विना घट जायगी। (७०) **कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः**॥ यजुर्वेद अ० ४० मन्त्र २ (गृहाश्रम प्रकरण में) सन्ध्या में भी—"**जीवेम शरद: शतम्**" यह प्रार्थना दिन में दो बार की जाती है। (७१) **नवशस्येष्टि** और **संवत्सरेष्टि** में भी—**ओं यन्मे किंचित०** आदि मन्त्र में भी—"**जीवतः शरद: शतम्**" पाठ है। (७२) **आचारोल्लभते ह्यायुराचादूरीप्सितः प्रजाः**॥ मनु० ४।१५६ ऋषि—धर्माचरण से ही दीर्घायु उत्तम प्रजा और अक्षय धन को मनुष्य प्राप्त होता है। (७३) **दुराचारो हि पुरुषो लोके भवति निन्दितः। दुःख भागी च सततं, व्याधितोऽल्पायुरेव च**॥ मनु० ४।१५७ ऋषि—जो दुराचारी पुरुष होता है वह सर्वत्र निन्दित दुःखभागी और व्याधि से अल्पायु हो जाता है। (७४) **सर्वलक्षणहीनोऽपि, यः सदाचारवान् स। श्रद्धानोऽनुसूयश्च शतं वर्षाणि जीवति**"। (मनुस्मृति, ४-१५८) इस पर ऋषि की टीका देखिये—जो सब अच्छे लक्षणों से हीन भी होकर सदाचार युक्त सत्य में श्रद्धा और निन्दा आदि दोष रहित होता है, वह सुख से सौ वर्ष पर्यन्त जीता है। ये मैंने ७४ प्रमाण केवल महर्षि दयानन्द जी महाराज द्वारा रचित "**संस्कार विधि**" में से दिये हैं, लेख के अन्तिम भाग में कुछ मन्त्रों तथा श्लोकों पर ऋषि के ही अर्थ मैंने दिये हैं, उनसे सारे लेख तथा उसमें दिये गये प्रमाणों से भाव स्पष्ट हो गया है, सार यह है कि—उचित ज्ञान और उचित व्यवहारों, आचरणों से आयु बढ़ सकती है, और अज्ञान तथा अनुचित आहार-व्यवहार, से आयु घट सकती है, अब आप वेदों के प्रमाण देखिये जो इस बात के पोषक हैं कि—"**आयु घट बढ़ सकती है**"—

ऋग्वेद के प्रमाण—

(१) "**उतत्या मे यशसा·········**" (ऋग्वेद मण्डल १ सूक्त १२२, मन्त्र ४) अर्थात् हे मनुष्यो! जैसे

सुन्दर शिक्षा से लोगों की आयुर्दा को तुम बढ़ाओ वैसे हम भी तुम्हारी आयुर्दा की उन्नति करें। (२) "आपो"······(मण्डल ४ सूक्त २ मन्त्र १२) अर्थात् जीवन की बुद्धि का शासन करते हैं। (३) "ऋस्या हि गुरुधः······" (मण्डल ४ सूक्त २३ मन्त्र ८) अर्थात् जीवन के उपायों का उपदेश देता है, उसका जिससे गुरु के सदृश सत्कार करो। वह अवस्था के विद्वानों को प्राप्त होता है। (४) अब आयुर्वेद के लक्षण देखिये—"आ युर्हिताहितं व्याधेर्निदानं तथा। विद्यते यत्र विद्वद्भिः स आयुर्वेद उच्यते"॥ अर्थात् आयु का हित और अहित, रोगों का निदान जहां हो, विद्वानों के द्वारा उसको आयुर्वेद कहा गया है॥ (५) "ऋग्वेद मण्डल ५ सूक्त ६० मन्त्र ८" में कहा है—मनुष्यों को योग्य है कि, सदा यथार्थ वक्ता, विद्वानों के साथ मिलकर विद्या, अवस्था (आयु) और बुद्धि को बढ़ाकर औषधि के सदृश आहार और विहार को करके उत्तम आचरण सर्वदा करें॥ (६) "ऋग्वेद मण्डल ६, सूक्त ११, मन्त्र ४" में कहा हैं—जिस प्रकार से पांच प्राण शरीर को धारण करते हैं, वैसे ही नियमित आहार और विहार करने वाले जन शरीर की अतिकाल पर्यन्त रक्षा करते हैं, वैसे ही विद्वानों के उपदेश विद्या को अति काल पर्यन्त स्थिर होने वाली कहते हैं॥

(७) "ऋग्वेद मण्डल ६ सूक्त ६७ मन्त्र ६" में कहा है कि—"आयोः" जीवन को बढ़ाता है। अर्थात्—हे मनुष्यो! जो अध्यापक और उपदेशक प्रतिदिन सूर्य के समान विद्या व्यवहार को सम्यक् प्रकाशित कर राज्य, धन और "आयु को बढाते" हैं, सबको सुख की धारणा कराते, जिनको प्राप्त होकर सब जन विद्वान् होते हैं, उनका संग निरन्तर करो॥ (८) "त्र्यम्बकं यजामहे·········मृत्योर्मुक्षीय मामतात्', (ऋग्वेद मण्डल ७ सूक्त ५९ मन्त्र १२) में कहा है कि—मुझको मृत्यु से छुड़ाओ अमृत से नहीं। (९) "ऋग्वेद मण्डल १० सूक्त १८ मन्त्र १ से ४ तक" इसमें कहा है कि—"परं मृत्यो अनुपरेहि पन्थाम्······" अर्थात् हे मारने वाले काल मृत्यु! तू अन्य मार्ग से जा, जो तेरा मार्ग है·········इन्द्रियों को नष्ट मत कर और न हमारे प्राणों को नष्ट कर। (भाष्य—श्री स्वामी ब्रह्ममुनि जी कृत) आगे देखिये—"न, प्रजां मा रीरिषः मोत वीरान्" हमारी प्रजा को मत मार और हमारे वीरों को मत मार। (अमर स्वामी जी द्वारा भाष्य,) (१०) "मृत्योः पदं योपयन्तः" मृत्यु के कारण, अज्ञान विषय सेवन को विलुप्त करते हुए अर्थात् त्यागते हुए "यत्" जिससे "द्राघीयः प्रतरम् आयुः दधाना एत" अति दीर्घकाल तक प्रकृष्टतर स्वास्थ्यपूर्ण जीवन को धारण करते हुए संसार में यात्रा करो। (११) श्री स्वामी ब्रह्ममुनि जी कहते हैं कि—मुमुक्ष जन मृत्यु के कारण रूप अज्ञान और विषय सेवन को त्यागते हैं, और स्वास्थ्यपूर्ण लम्बी आयु को प्राप्त करते हैं। (१२) "इमे जीवा विमृते···" (ऋग्वेद मण्डल १० सूक्त १८ मन्त्र ३) इसमें "इमे जीवाः" वे हम सब जीवन धारण करते हुए "मृतेः विआववृत्रन् मरण धर्मों—मृत्यु के कारणों से पृथक वियुक्त होवें "अद्य" इस जीवन में द्राघीयः प्रतरम् आयुः दधानाः" दीर्घ काल पर्यन्त स्वास्थ्यपूर्ण जीवन धारण करते हुए। (श्री स्वामी ब्रह्ममुनि कृत भाष्य)। (१३) "ऋग्वेद मण्डल १० सूक्त १८ मन्त्र ३" पर ही स्वामी ब्रह्ममुनि जी लिखते हैं कि—जो जीव मृत्य के कारण अज्ञान व्यसन सेवन से अलग हो जाते हैं; वे अपने जीवन में परमात्मा की कल्याणकारी स्तुति करते हुए "दीर्घ काल तक" स्वास्थ्यपूर्ण आयु प्राप्त करते हैं, और जीवन का विनोद-हर्ष श्रेष्ठ मार्ग पर चलते हुए लिया करते हैं। (१४) "इमं जीवेभ्यः परिधिं दधाणि······" (ऋग्वेद मण्डल १० सूक्त १८ मन्त्र ४) इसका भाष्य करते हुए श्री स्वामी ब्रह्ममुनि जी लिखते हैं कि—"पुरूचीः शतम् शरदः जीवन्तु" अर्थात् बहुत सुख प्राप्त कराने वाली सौ सदियों तक जीवित रहे। पूर्ण करने के साधन वाले ब्रह्मचर्य रूप पर्वत के द्वारा मृत्यु को अन्तर्हित लुप्त करें अर्थात् नष्ट करें। (१५) "भावार्थ" अर्थात् परमात्मा दीर्घ जीवन चाहने वाले मुमुक्षु जनों के लिए नियत्त परिधि बनाता है, कोई भी मुमुक्षु उसमें रहकर शीघ्र मृत्यु का ग्रास नहीं बनता है। किन्तु सौ या बहुत वर्षों तक वे जीते हैं। ब्रह्मचर्य रूप पर्वत को मृत्यु लांघ नहीं सकती हैं। ऐसा स्वामी ब्रह्ममुनि जी

का कथन है। (१६) **मोषुण: सोम मृत्यवेपरादाः"** (ऋग्वेद मण्डल १० सूक्त ५९ मन्त्र ४) अर्थात् "**मा—उ—सु नः मृत्यवे परादाः**" हमें शीघ्र मृत्यु के लिए मत छोड़। स्वामी ब्रह्ममुनि जी इसका भावार्थ करते हुए कहते हैं कि —मनुष्य को ऐसा आचरण करना चाहिये कि जिससे शीघ्र मृत्यु न हो। (१७) "**अमुनीते मनोअस्मासु**······" (ऋग्वेद मण्डल १० सूक्त ५९ मन्त्र ५) अर्थात् "**जीदातवे**" चिरकाल तक जीने के लिए "**नः आयुः सु प्रतिर**" हमारी आयु को सुखरूप में बढ़ा। (१८) "**श्री स्वामी ब्रह्ममुनि जी द्वारा भावार्थ**" संयम के द्वारा परमात्मा की उपासना प्रार्थना करने वाले मनुष्य के प्राणों को परमात्मा बढ़ाता है। और अन्तःकरण तो विकसित करता है। सुखरूप-दीर्घ जीवन प्रदान करता है, इन्द्रियों में देखने की शक्ति बनाये रखता है, तथा आत्मतेज को भी देता है ॥५॥ (१९) "**अयंमातायं पितायं जीवातरागमत्**" (ऋग्वेद मण्डल १० सूक्त ६० मन्त्र ७) अर्थात्। "**अयं जीवातुः आगमत्**" यह (वैध) जीवन देने वाला आया है। "**श्री स्वामी ब्रह्ममुनि जी द्वारा भावार्थ**-चिकित्सक माता के समान स्नेह करता हुआ पिता के समान पालन करता हुआ उस (रोगी) के जीवन के लिए चिकित्सा करे ॥७॥ (२०) **यथेयं पृथिवी महीं**······" (ऋग्वेद मण्डल १० सूक्त ६० मन्त्र ९) में कहा है कि—वैद्य को रोगी के जीवित रहने का यत्न करना चाहिये ॥ (२१) "**यथादयम्**······" (ऋग्वेद मण्डल १० सूक्त ६० मन्त्र १०) अर्थात्—"**सुबन्धो मन जीवातवे आभरम्**" अर्थात् सुष्ट बन्धने वाले (रोगी) कुमार के मन को जीने के लिए ले आया हूं, "**न मृत्यवे**" मृत्यु के लिए नहीं अर्थात् मृत्यु के कारण को दूर कर दिया है। (२२)—"**मुंचामित्वा हविषा जीवनाय कमज्ञात यक्ष्मादुत राजयक्ष्मात्**" (ऋग्वेद मण्डल १० सूक्त १६१ मन्त्र १) अर्थात् हे रोगी "**त्वा**" तुझे "**अज्ञात यक्ष्मात्**" प्रकट न होने वाले "**उत**" और "**राज्य यक्ष्मात्**" प्रकट राजयक्षमा (तपेदिक) से "**कंजीवनाय**" सुख सहित जीने हेतु "**मुंचामि**" मुक्त करता हूं अर्थात् छुड़ाता हूं। (**अमर स्वामी**) यहां हविषा-हवन में डाली गई औषधियों से आहुति देने से प्रयोजन है (**अमर स्वामी**), (२३)—"**श्री पण्डित बिहारीलाल जी शास्त्री, काव्यतीर्थ लिखते हैं**"—(ऋग्वेद मण्डल १० सूक्त १६१ मन्त्र २) यदि "**क्षितायुः यदि वा परा इति**" यदि किसी रोगी की जीवन शक्ति नष्ट हो गयी है, यदि वह सीमा से भी परे हो गया है, "**यदि मृत्योः अन्तिकं-मनति एव**" यदि वह मृत्यु के सन्निकट चला गया है तो भी "**तम् निऋतेः उपस्थात् आहरामि**" उसको भारी कष्टप्रद रोग के पंजे से मुक्त कराऊं तथा "**एनं**" उसे "**शत शारदाय**" सौ वर्ष के जीवन हेतु "**अस्यार्षम्**" बल सम्पन्न करूं। (२४)—"**सहस्त्राक्षरेण शतशारदेन, शतायुषा हविषाहार्ष मेनम्। शतं यथेमंशरदोनयातीन्द्रो विश्वस्य दुरितस्य पारम्** ॥ (ऋग्वेद मण्डल १० सूक्त १६१ मन्त्र ३) अर्थात् मैं "**एनम्**" इस रोगी को "**सहस्त्राक्षरेण** सहस्त्र गुण युक्त "**शत शारदेन**" सौ वर्ष तक जिवित रखने में समर्थ "**हविषा**" औषधि से (हवन की आहुति से—अमर स्वामी) "**अहार्षम्**" रोग से छुड़ाऊं "**यथा इन्द्रः**" जिससे प्राण "**शरदः शतम्**" सैकड़ों वर्ष (सौ वर्ष के लगभग—अमर स्वामी)—"**विश्वस्य दुरितस्य पारम्**" सभी दुखों से पार "**नयाति**" उसे पहुंचा दें। (२५)—"**श्री पण्डित बिहारी लाल जी शास्त्री काव्यतीर्थ द्वारा भावार्थ**—सहस्त्र गुणों वाली—सौ वर्ष जीवित रखने वाली—औषधि से रोगी—रोग मुक्त हो सकता है और दुखों से मुक्ति पा सकता है ॥३॥ (२६)—"**शतं जीव शरदो वर्धमानः, शतं हेमन्ताच्छतमं बसन्तात् शतमिन्द्राग्नि सविता बृहस्पतिः शतायुषा हवियेमं पुर्नदुः**" (ऋग्वेद मण्डल १० सूक्त १६१ मन्त्र ४) "**पदार्थ**"—हे मानव! तू "**वर्धमानः**" बढ़ता हुआ "**शतं शरदः जीव**" सौ वर्ष तक जिये "**शतं हेमन्तात्**" सौ हेमन्त (मार्गशीर्ष और पौष—अमर स्वामी) तथा (शतम् फाल्गुण—अमर स्वामी) "**इन्द्र अग्नि**" सूर्य वा अग्नि या प्राण एवं आहार (जठराग्नि) "**सविता बृहस्पतिः**" उत्पादक वीर्य और इस देह का पालन करने वाला रक्त "**शतायुषा हविषा**" सौ वर्षों तक जीने के साधन या बल से "**एनम् पुनः दुः**" इसे पुनः शक्ति दें। अब "**भावार्थ**" भी देखिये—हे मानव तू वृद्धि पाता हुआ सौ वर्ष तक जीवन धारण कर। सौ हेमन्त, सौ बसन्त तक जिवित रह। सूर्य और अग्नि या प्राण एवं जाठर

उत्पादक वीर्य और इस देह का पालन रक्त सौ वर्षों तक जीवित रहने के साधन तथा बल से इसे शक्ति दे। (२७)—"ऋग्वेद मण्डल १० सूक्त १६१ मन्त्र ५" का भाष्य करते हुए श्री पण्डित बिहारी लाल जी शास्त्री काव्यतीर्थ लिखते हैं कि—समस्त अंग युक्त तेरी चक्षु इत्यादि इन्द्रियां व सम्पूर्ण आयु तुझे प्रदान करूं ॥५॥ अब आप अथर्ववेद के वह प्रमाण देखिये जो इस पक्ष के पोषक हैं।

अथर्ववेद के प्रमाण—

(१)—"**परित्वारो हितंवर्णो**......" (अथर्ववेद काण्ड १ सूक्त २२ मन्त्र ३) इसमें "**दीर्घायुत्वाय**" लम्बी आयु के लिए "**दधमसि**" पुष्ट करते है। (२)—"**ये देवा दिविष्ठ ये पृथिव्या**......" (अथर्ववेद काण्ड १ सूक्त ३० मन्त्र ३) अर्थात् "देवाः" हे देवो, विद्वानों! "**अस्मै**" इस पुरुष के लिए "**आयुः कृणुत**" आयु दो (यह पुरुष) "अन्यान् शतम् मृत्यून्" अन्य सौ मृत्युओं को "**परिवृणक्तो**" दूर हटाओ। स्पष्ट है कि मृत्यु को हटाया जा सकता है। यहां पर अन्य मृत्यु या अकाल मृत्यु सौ बताये गये हैं। (३)—"**नैनं रक्षांसि न पिशाचाः**......" (अथर्ववेद काण्ड १ सूक्त ३५ मन्त्र २) अर्थात् "**यः बिभर्ति दाक्षायनणम् हिरण्यम्**" जो मनुष्य धारण करता है बल के बढ़ाने वाले सैनिको, "**सः मनुष्येषु कृणुति दीर्घमृआयुः**" वह मनुष्यों में (अपने आपको) दीर्घायु=लम्बी आयु वाला बनाता है। (४)—"**अथर्ववेद काण्ड २ सूक्त ४ मन्त्र १**" "**दीर्घायुत्वाय**" लम्बी आयु के लिए "**वयं जङ्गिऽम् मणिग् भ्रिमः**" हम जङ्गऽमणि को धारण करें। (५)—"**कृत्या दूषिरयम्**......" (अथर्ववेद काण्ड २ सूक्त ४ मन्त्र ६) अर्थात् "**प्राण आंयूषि तारिषत्**" परमेश्वर हमारी आयुओं को बढ़ने वाली बनावें।

(६)—"**आयुर्दा अग्ने जरसं वृणानो**......" (अथर्ववेद काण्ड २ सूक्त १३ मन्त्र १) अर्थात् हे पूजनीय परमेश्वर! तुम आयु को देने वाले हो, यह ब्रह्मचारी "**घृत प्रतीकः**" घृत के समान स्निग्ध "**घृतपुष्टः**" घी द्वारा पुष्ट घृतं **मधुचार, गव्यम् पीत्वा**" घृत, गौ का दूध और मधु पीकर "**आयु को प्राप्त करें**"। (७)—"**जरामृत्यु कृणुत दीर्घमायुः**......" (अथर्ववेद काण्ड २ सूक्त १३ मन्त्र २) हे विद्वानो आप इस ब्रह्मचारी को वस्त्रों से ढांप दीजिये, अर्थात् वस्त्र धारण कराइये, हमारे लिये इसको बुढ़ापे में मरने वाला अर्थात् दीर्घायु करो। (८)—"**परीदं वासो अधिथा स्वस्तये......शतं च जीव शरदः पुरुची......मुप संव्ययस्व**" (अथर्ववेद काण्ड २, सूक्त १३ मन्त्र ३) इस मन्त्र में सौ शरद ऋतुओं तक जीने वाला हो, ऐसा उपदेश ब्रह्मचारी के लिए किया गया है। (९)—**प्राणपानौ मृत्योर्मा पातम्**......" (अथर्ववेद काण्ड २, सूक्त १६ मन्त्र १) अर्थात् प्राण और अपान दोनों मुझको मृत्यु से बचावें। (१०)—"**द्यावा पृथिवी उपश्रुत्वा मा पातम्**......" (अथर्ववेद काण्ड २, सूक्त १६ मन्त्र २) अर्थात् आकाश और पृथिवी दोनों पूर्ण श्रवण शक्ति के साथ मुझको (मृत्यु से) बचावें। (११)—"**सूर्यचक्षषा मा पाहि**" (अथर्ववेद काण्ड २ सूक्त १६ मन्त्र ३) अर्थात् सूर्य चक्षु सहित मेरी (मृत्यु से) रक्षा करे। (१२)—"**अग्ने वैश्वानर विश्वर्मा देवैः पाहि**" (मन्त्र ४) हे चलाने वाले पूजनीय परमेश्वर! तुम सारी इन्द्रियों या विद्वानों के साथ मेरी (मृत्यु से) रक्षा करिये।

(१३)—"**विश्वम्भर विश्वेन भरसा पाहि स्वाहाः**" (मन्त्र ५) हे सर्व पोषक परमेश्वर! सम्पूर्ण पोषक शक्ति से (मृत्यु से) मेरी रक्षा करिये। (१४)—"**आयुरसि आयुर्मेदाः**" (सूक्त १७ मन्त्र ४) अर्थात् हे परमेश्वर आप आयु हो, मुझे भी (लम्बी) आयु दीजिये। (१५)—"**तुभ्यमेव जरिमन् वर्धतामयमेम मन्ये मृत्यवोहिसिषुः शतं ये**" (सूक्त २८ मन्त्र १) अर्थात् हे (जरिमन्) स्तुति योग्य परमेश्वर! (तुभ्यम्) तेरा शासन मानने के लिए (एक) निश्चय (अयम् वर्धताम्) यह पुरुष बढ़े (ये अन्ये शतम् मृत्यवः) ये जो अन्य सौ (अकाल मृत्यु हैं)

वे (इमम् माहिंसिषु) इस पुरुष को न मारें। (१६)—"मित्र एवं वरुणो रिशादां जरा मृत्युम् कृणुताम् संविदानौ" सूक्त २८ मन्त्र २) मित्र और वरुण (प्राण और अपान) (एनम् जरा मृत्युम् कृणुताम्) इस पुरुष को बुढ़ापे में मरने वाला करें (बनावें)। (१७)—"त्वमीशिषे पशुनां पार्थिवानां उत जाता उतवा ये जनित्राः। मे मं प्राणो हासीन्मो अपानो मित्रा बधिषु मों अमित्राः॥ (सूक्त २८ मन्त्र ३) अर्थात् हे परमेश्वर (त्वम्) तुम (पार्थिवानाम्) पृथिवी पर के (पशूनाम्) जीवों के (ईशिषे) स्वामी हो (ये जाताः उत वाजनित्राः) जो उत्पन्न हो चुके हैं, और जो उत्पन्न होंगे (इमम्) प्राणः मो आ उपान् मा हासीत् (इस पुरुष को प्राण और अपान न त्यागें (इमम् मित्रा मो मा उ अमित्राः म वधिषु) इसको मित्र और अमित्र न मारें अर्थात् वध न करें॥

(१८)—द्यौष्ट्वा पिता पृथिवी माता, जरामृत्युं कृणुतां संविदाने। यथा जीवा अदितेरुपस्थे, प्राणापानाभ्यां गुपितः शतंहिमाः॥ (सूक्त २८ मन्त्र ३)—हे पुरुषार्थी पुरुषः (द्यौ पिता पृथिवी माता जरा मृत्युंकृणुतां संविदाने। द्यौ=सूर्यलोक पालनकर्तापिता के समान तथा पृथिवी माता के समान दोनों तुमको जरामृत्युम्, बुढ़ापे में मरने वाला करें। (यथा अदितेः) जिससे अखण्ड परमेश्वर वा अदीन प्रकृति की गोद में (इमम्) इस तुझ पुरुष को (प्राणपानाभ्याम् गुपितः) प्राण और अपान द्वारा रक्षा किया हुआ तू शतम्हिमाः जीवाः) सौ हेमन्त ऋतुओं तक जीता रहे"॥ (१९)—इम मग्नआयुषे वर्चसे नय प्रियं रेतो प्रियं देतोवरुण मित्र राजन्॥ सुक्त २८ मन्त्र ५) हे अग्ने! (इमम्) इस पुरुष को (आयुषे) आयु बढ़ाने के लिये और (वर्चसे) तेज आदि के लिये (प्रियम्) प्रसन्न करने वाला (रेतः) वीर्यवा सामर्थ्य (नय) प्राप्त करा॥

(२०)—"पार्थिवस्यरसेदेवा······" (सूक्त २९ मन्त्र १) हे व्यवहार कुशल महात्माओ! (अस्मै) इस पुरुष के लिये (आयुष्यम्) आयु बढ़ाने वाला (वर्च) तेज (आ) सब ओर से (धात्=धत्तात्) दीजिये॥ (२१)—आयुरस्मै धेहि जातवेदः, प्रजांत्वष्टरधिनिधेह्यस्मै। राय स्पोष सवितरा सुवास्मै, शतंजीवाति शरदस्तवायम्॥ (सूक्त २९ मन्त्र २) (जातवेदः) हे प्राणियों को जानने वाले परमेश्वर। (अस्मै) इस (जीव) को (आयुः) आयु (धेहि) दीजिये······(तव) तेरा (सेवक) (अयम्) यह (शतम्) सौ (शरदः) शरद ऋतुओं तक (जीवाति) जीता रहे। (२२)—इन्द्र एतां सस्टेज (सूक्त २९ मन्त्र ७) (त्वम्) तू (सुवर्चाः) अच्छी कान्ति वाला होकर (शरदः) बहुत शरद ऋतुओं तक (जीवित) रह। (२३)—काण्ड ३ सूक्त ५ मन्त्र ३। यं निदधुर्वनस्पतौ···" (अथर्ववेद काण्ड ३ सूक्त ५ मन्त्र ३) (तम्) उसे (परमेश्वर) को (अस्मभ्यम्) हमारे लिये (देवाः) तेजस्वी महात्मा पुरुष (आयुषा सह) साथ बड़ी आयु के साथ (भर्तवे) हमारे पोषण करने के लिए (ददतु) दान करें॥ (२४)···सोमस्य पर्णःस···(मन्त्र ४) मैं (तम्) उस (परमेश्वर को) (शवशारदाय) सौ शरद ऋतु तक (दीर्घायुत्वाय) बड़ी आयु के लिये। (प्रियासम्) प्रसन्न करूं अर्थात् उसकी आज्ञाओं का पालन करूं।

(२५)—(मन्त्र ५) तू (नः) हमारे लिये (आयुष्मतीम्) बड़ी आयु पाने वाली (प्रजाम्) प्रजा को (रायः) धन की (पोषेण) बढ़ती के साथ (संसृज) संयुक्त कर। (२६)—"आयभगन्त संवत्सरः······" (सूक्त १० मन्त्र ८) (नः) हमारे (आयुष्मतीम्) बड़ी आयु तक जीने वाली (प्रजाम्) प्रजा को (रायः) धन की (पोषेणः) बढ़ती के साथ (संसृज) संयुक्त कर॥ (२७)—मुंचामि त्वा हविषा जीवनाय, कमज्ञात यक्ष्मादुत राज यक्ष्मात्। सूक्त ११ मन्त्र १) वैद्य कहता है (मुंचामित्वा) छुड़ाता हूं तुझको (हविषा) हवन में औषधि की आहुति द्वारा

(जीवनाय) जीवित रहने के लिये (अज्ञात यक्ष्मात्) जो पहचानी नहीं गई ऐसी यक्ष्मा से (उत राजयक्ष्मात्) और राज यक्ष्मा से ॥ (२८)—"यदिक्षितायुर्यदिवापरेतो......" (मन्त्र २) (यदि) चाहे (यह) (क्षितायुः) टूटी आयु वाला (यदिवापरेतः) अथवा अंग भंग है (यदि) चाहे (मृत्योः अन्तिकम्) मृत्यु के समीप (एव) ही (नीतः=नि-ईतः) आ चुका हैं (तम्) उसको (निर्ऋतेः) महामारी की (उपस्थात्) गोद से (आहरामि) लिये आता हूं (एनम् शतशारदाय+जीवनाय) इसको सौ शरद ऋतुओं तक जीने के लिये (अस्पार्षम्) में प्रबल किया है।

(२९)—"सहस्त्राक्षेण शत वीर्येण शतायुषा हविषाहार्ष मेनम्। इन्द्रो यथैनं शरदो नयात्यति विश्वस्य दुरितस्या पारम्॥ (अथर्ववेद मण्डल ३ सूक्त ११ मन्त्र ३) अर्थात् (सहस्त्राक्षेणा शत वीर्येण) असंख्य देखने की शक्तियों, असंख्य बलों वाली (शतायुषा) सौ वर्ष की आयु वाला (हविषा एनम् आहार्षम्) उत्तम हवि द्वारा इस मनुष्य को मैंने उभारा है, (यथा इन्द्र एनम्) जिससे ऐश्वर्यशाली पुरुष इस शरीरधारी (विश्वास्य दुरितस्य पारम् अति अतीत्य) सारे कष्टों से पार निकाल कर (शरदः) सौ शरद ऋतुओं तक (नयाति) ले जावे[१]। (३०)—"शतं जीव शरदो वर्धमानः शतं हेमन्तान्छतमु वसन्तान्। शतं न इन्द्रो अग्निः सविता बृहस्पतिः शतायुषा हविषा हार्षमेनम्॥ (सूत्र ११, मन्त्र ४) (वर्धमानः 'त्वं' शतं शरदः शतम् हेमन्तान् उ शतम् वसन्तान् जीव) हे मनुष्य! तू बढ़ती करता हुआ सौ शरद ऋतुओं तक सौ हेमन्त ऋतुओं तक और सौ वसन्त ऋतुओं तक जीता रह। (इन्द्रः अग्नि, सविता, बृहस्पतिः) एश्वर्य शाली, प्रकाश स्वरूप सर्वोत्पादक और बड़ों बड़ों का भी पति परमात्मा तुझको सौ वर्ष देवे, मैं इस तेरे जीव को सौ वर्ष की आयु देने वाले हवि (रूप औषधि) द्वारा रोग या मृत्यु से निकाल लाया हूं॥

(३१)—"प्रविशतं" प्राणापानावनड्वाहाविव व्रजम्। वन्ये यन्तु मृत्यवो या ना हुरीतराऽछतम्॥ (मन्त्र ५) अर्थात् प्राण और अपान दोनों इस शरीर में प्रवेश करते रहें जैसे रथ में चलने वाले दो बैल गौशाला में प्रवेश करते हैं, अन्य दूसरे मृत्यु (अकाल मृत्यु) उलटे चले जावें, (यन् इतरान् शतम् आहु......) जिन अन्य अकाल मृत्युओं को सौ प्रकार का कहा जाता है[२]। (३२)—"इहैवस्तं प्राणापानौ माप गातमितो युवम्। शरीर मस्याङ्गनि जरसे वहतं पुनः" (मन्त्र ६) अर्थात् हे प्राण और अपान् तुम दोनों यहां (इस शरीर में) ही रहो, इससे दूर मत जाओ इस प्राणी=मनुष्य के शरीर और इसके अंगों को बुढ़ापे के लिए ले चलो अर्थात् वृद्धावस्था से पहले यह न मरे॥ (३३)—"जरायैत्वा परिददामि जरायै नि धुवामित्वा। जरात्वा भद्रानेष्ट व्यन्ये यन्तु मृत्यवो यावाहुरिजराऽञ्छतम्॥ (मन्त्र ७) मैं तुझको बुढ़ापे के लिए देता हूं अर्थात् बुढ़ापे के लिए तुझको सावधान करता हूं (ऐसे काम कर जिनसे) बुढ़ापा तुझको सुख दे (दुःख न दे) दूसरे मृत्यु सारे दूर हो जावें जिन अन्यों को सौ (अकाल) मृत्यु कहा जाता हैं।

(३४)—"अभित्वा जरिमाहित, गामुक्षणामिव रज्जवा। यस्त्वा मृत्यु रभ्यदत्त, जायमानं सु पाशया॥ (मन्त्र ८) अर्थात् बुढ़ापे ने तो जन्मते ही अपने अच्छे बन्धन से बांध लिया है, जैसे बलवान गौ को तथा बैल को

टिप्पणी—

(१)...यहां सौ शरद ऋतु वाला अर्थ "शतायुषा" शब्द के आधार पर लिया गया है॥

(२)—"एक सौ एक मृत्यु हैं" इनमें सौ अकाल मृत्यु हैं॥

—"अमर स्वामी सरस्वती'

रस्सी से ! (बांध लिया जाता है) तेरे उस (मृत्यु) को बृहस्पति परमात्मा वा महान् विद्वान् गुरु ने सत्य के दोनों हाथों से छुड़ा दिया है । गीता में कहा है—"**देहिनोऽस्मिन् यथा देहे कौमारं यौवनंजरा । तथा देहान्तर प्राप्ति धीरिस्तत्र न मुह्यति**" ॥ अर्थात् जीवात्मा के इस शरीर में जिस प्रकार कुमारावस्था, यौवन और बुढ़ापा आता है उस ही प्रकार फिर मृत्यु होकर दूसरा शरीर प्राप्त होता है। आगे कहा है देखिये गीता में ही—"**जातस्यहि ध्रुवोमृत्यु ध्रुवं जन्म मृतस्य च**" अर्थात् जो जन्मा है निश्चय ही उसकी मृत्यु अवश्य होगी। और जो मरता है—उसका जन्म भी अवश्य होगा। अभिप्राय यह है कि, शरीर के उत्पन्न होते ही समझ लीजिये कि शरीर के साथ बुढ़ापा भी बंधा हुआ है, और मृत्यु भी , दोनों ही अवश्यम्भावी हैं परन्तु विद्वान लोग ऐसे उपाय बताते हैं कि, बुढ़ापा भी और मृत्यु भी अकाल में अर्थात् जवानी ही में समय (लगभग एक सौ वर्ष) से **पहिले** न आ दबावे ॥

(३५)—"**ऋतेन स्थूराणामपि**······" (सूक्त १२ मन्त्र ६)—**मातेरिषन्नुप सत्तारो गृहाणां शलिशतं जीवेम शरदः सर्व वीरा**" अर्थात् इस (शाला) घर में रहने वाले हम सब हानि न उठायें तथा हम सारे अपने वीरों सहित सौ वर्ष तक जियें ॥

(३६)—"**विदेना जरसाद्तन विरवमग्ने अरात्याः त्यहं सर्वेण पाप्माना विक्ष्मेणसमायुषा**" (सूत्र ३१ मन्त्र १)—अर्थात् देवाः—विद्वान् बुढ़ापे से परे रहते हैं, तथा पूजनीय धर्मात्मा=कन्जूसों से परे रहता है। मैं प्रत्येक पाप से परे रहूं, मैं यक्ष्मा से परे रहूं और पूरी आयु से मिला रहूं ॥

नोट :—इस सूक्त में ११ मन्त्र हैं प्रत्येक मन्त्र में "**समायुषा**" पाठ है, इस ११ बार में यहां "**मैं आयु के साथ मिला रहूं**" यह माना है। और यह "**आयुष्काम**" सूक्त है यहाँ पण्डित राजाराम जी ने इसको "**कल्याण और दीर्घ जीवन के लिए**" बताया है। श्री पण्डित क्षेमकरण दास त्रिवेदी जी ने "**आयुर्वर्धनाधिपोदेश**" आयु बढ़ाने का उपदेश कहा है। (**अमर स्वामी**) ॥

(३७)—"**आयुष्मतामायुष्मतां प्राणो न जीव मा मृथाः**······ **सूक्त ३१ मन्त्र ८**" अर्थात् लम्बी आयु वाले और आयु बढ़ाने वाले (विद्वानों) के (दिये) प्राणों से तू जीता रह, मत मरे॥

(३८)—"**प्राणेण प्राणातां प्राणेहैव भव मा मृथाः**······**मन्त्र ९**" अर्थात् बलवान प्राण वालों के प्राण से तू प्राण ले यहां ही रह, मत मरे॥

(३९)—"**उदयुषा समायुषो दोषधीनां रसेन**······**मन्त्र १०**" अर्थात् (आयुषा) जीवन के साथ (उत्) उद्भव उन्मत हो (आयुषा) लम्बी आयु के साथ (सम्=सम्भव) पराक्रमी हो (**औषधीनाम् रसेन**) औषधियों और खाद्य पदार्थों के रसों द्वारा तू बलवान और आयुष्मान हो ॥

(४०)—"**दिविजात**······**शंख आयुष्प्रतरणो मणिः**······**काण्ड ४ 'सूक्त १० मन्त्र ४**" अर्थात् शंख हमारी आयु बढ़ाने वाला हैं।

(४१)—"**हिरण्यानामेको**······**प्रण आयूंसितारिषत्**······**मन्त्र ६**" अर्थात् हमारी आयुओं को प्रकर्षेण बढ़ावें ।।

(४२)—"**देवानांमस्थि**······" (मन्त्र ७) हे मनुष्य ! मैं तुझे परमेश्वर के साथ बांधता हूं (**बध्नाम्यायुषेवर्चसे बलाय दीर्घा युत्वायशतशारदायकार्शन स्त्वाभिरक्षतु**) आपके लिए, तेज के लिए, बल के लिए, बहुत

बड़े जीवन के लिए, सौ शरद ऋतुओं के लिए (कार्शनः) अनेक सुवर्णादि धनों और प्रकाशों वाला परमेश्वर तुझको सब प्रकार पालन-रक्षण करे।,

(४३)—"अति तराणि मृत्युम्······अथर्ववेद काण्ड ४ सूक्त ३५ के मन्त्र १ से ५ तक" यह वाक्य "अति तराणि मृत्युम्" पांच बार आया है, अर्थ इसका यह है, कि—मुझको अकाल मृत्यु न मारे, मैं मृत्यु से पार होऊँ, मैं मृत्यु से तर जाऊँ आदि-आदि।

(४४)—"यस्त्वा पिवति जीवति······ अथर्ववेद काण्ड ५ सूक्त ५ मन्त्र २" अर्थात् जो तुझको पीता है वह जीता है।। इस सूक्त की देवता लाख है। इस पांचवें सूक्त में लाख के महान गुणों का वर्णन हैं। और लाख इस सूक्त में छः प्रकार की बतलाई हैं, (१)—अक्ष, (२)—खदिर=खैर की, (३)—धावा—धाय की, (४)—बड़ की, (५)—ढाक की और (६) पीपल की, आयुर्वेद में "लाक्षा"—लाख के बहुत गुण बतलाये हैं, कींकर (बबूल) और······का गौंद भी इसी जाति में है।

वात के अनेकानेक रोगों का नाश करने के लिए लाक्षादि तेल बनाया जाता है, मैं आयुर्वेद के आधार पर लाख और गोंद के गुणों और प्रयोगों पर एक पुस्तक लिख सकता हूं, यहाँ केवल इतना ही लिखना प्रयाप्त है कि—लाख और गोंद अनेकों रोगों का नाश करते और आयु को बढ़ाते हैं।

(४५)—"उदायुरुद्बलमुत्······काण्ड ५ सूक्त ९ मन्त्र ८" मेरी आयु उत्तम, उन्नत, मेरा बल, मेरी क्रिया, किये हुए कर्म और करने योग्य कर्म, मेरी बुद्धि, मेरी इन्द्रियां सब बढ़ें अर्थात् उन्नति करें। आयु के रक्षक, आयु वाले पिता, आयु वाली माता, मेरी और आपकी रक्षा करें। कोई मेरी आयु को हानि न पहुंचावे।।

(४६)—"नव प्राणान्नवभि सम्मिमीते दीर्घत्वायं शत शारदाय······सूक्त २८ मन्त्र १" मैं नौ प्राणों को शरीर के नौ द्वारों के साथ मिलाता हूं, लम्बी आयु के लिए, सौ शरद ऋतुओं के लिए! प्राणायाम से प्राणों को वश में करके सारी इन्द्रियों शरीर के नौ द्वारों (दो कान, दो आंख, दो नासिका, के छिद्र एक मुख, एक मल द्वार और एक मूत्रद्वार) को रोग रहित करता हूं, इससे आयु सौ वर्ष और इससे अधिक भी हो सकती है। तथा हो जाती है। मनुस्मृति में कहा है—"दह्यन्ते ध्याय माणाना धातूनां यथा मलाः। तथेन्द्रियाणां दह्यन्ते दोषाः प्राणस्य निग्रहात।। अर्थात् जैसे धोंकनी से अग्नि में सर्व सोना, लोहा आदि धातुओं के मल जल जाते हैं, वैसे ही प्राणायाम से इन्द्रियों के दोष नष्ट हो जाते हैं,।। प्राणायाम से आयुवृद्धि का होना सर्व शास्त्र सम्मत है।

(४७)—"आयुषां जमदग्ने'। कश्यपश्यत्रायुषम्। त्रेधामृतस्य चक्षणं त्रीण्यायूंषि तेकरम्।। सूक्त २८ मन्त्र २।। जमदग्नि का जो तीन गुण आयु है, कश्यप का जो तीन गुण आयु है, तीन प्रकार का जो अमृत का दर्शन है, ये तीनों आयु मैंने तेरे लिए किये हैं।

(४८)—"यत्ते माता यत् ते पिता, जामिभ्राता च सर्जतः। प्रत्येक सेवस्व भेषजंजरदृष्टि कृणोमित्वा।।५।। (अथर्ववेद सूक्त ३० मन्त्र ५) अर्थात् तेरे माता पिता बहिन और भाई जो औषधि तैयार करते हैं,

---

टिप्पणी :—

(१) यह मन्त्र यजुर्वेद अध्याय ३ के मन्त्र ६२ में कुछ भेद से मौजूद है, वहां ऋषि दयानन्द जी लिखते हैं कि—तीन सौ से अधिक, चार सौ वर्ष तक मनुष्य की आयु हो सकती है। "जमदग्नि" का अर्थ "तेजस्वी" और "कश्यप" का अर्थ "दीर्घदर्शी" है।।

उसको प्रयत्न पूर्वक सेवन कर, मैं तुझको बुढ़ापे तक जीने वाला बनाता हूं ।। आयुर्वेद का सिद्धान्त है कि—"यस्य देशस्य यो जन्तुस्तज्जं तस्यौषधंहितम्' जो प्राणी जिस देश में जन्मा है उस ही देश की उत्पन्न हुई औषधि उसके लिए लाभ देने वाली होती है। इसलिए यह कहा है कि—तेरे माता-पिता, भाई-बहिन जो औषधि जानते बनाते और प्रयोग करते हैं उससे आयु बढ़ सकती है।

(४९)—"दूतो यमस्य मानुगा अधि जीव पुरा ऐहि······" मन्त्र ६, अर्थात् मृत्यु की ओर मत जा, जीवितों के स्थानों में आ, अर्थात् बड़ी आयु प्राप्त कर, बुढ़ापे से पहले मत मर ।।

(५०)—"माबिभेर्न मरिस्यसि जरदृष्टिं कृणोमि त्वा। निबोचमहं यक्ष्ममङ्गेभ्यो अङ्ग ज्वरं तब ।।८।। (अथर्ववेद सूक्त ३० मन्त्र ८) अर्थात् मत डर ! तू नहीं मरेगा मैं तुझे बुढ़ापे तक जीने वाला बनाता हूं। मैंने तेरे अंगों में से यक्ष्मा आदि को निकाल दिया है।

(५१)—"उदेहि मृत्योर्गम्भीरात् कृष्णाचितातमस्परि" मन्त्र ११ ।। तू मृत्यु और अन्धकार से पृथक होकर ऊपर उठ ।।

(५२)—"अभयंमित्रा वरुणा विहास्तु नो र्अचिसा त्त्रिणोमुदतं प्रतीचः। मा ज्ञातारं मा प्रतिष्ठां विन्दत मिथो विघ्नाना उपयन्तु मृत्युम् ।। (अथर्ववेद मण्डल ६ सूक्त ३२ मन्त्र ३) ।। मित्र और वरुण, प्राण और अपान या दिन और रात मुझको अभय करें। हमको खाने वालों (मारने वालों) को उलटा हटा दें। हमको मारने वाले न अपने जानने वालों को और न किसी निवास को पावें प्रत्युत आपस में लड़-लड़ कर मर जावें अर्थात् उनकी आयु घट जावे ।।

(५३)—"अग्ने सांत पतस्याह मायुमे पद्मारं भे······" सूक्त ७६ मन्त्र २, मैं ताप गुण वाले अग्नि के प्राप्ति योग्य गुण को आपको बढ़ाने के लिए आरम्भ करता हूं। (अग्निहोत्र करता हूं) ।।

(५४)—"यो अस्य समिधं वेद क्षत्रिपेण समाहितम्। नाभि द्वारे पदं निदधाति स मृत्यवे ।।३।। (सूक्त ७६ मन्त्र ३) अर्थात् जो मनुष्य रक्षा करने वालों द्वारा सुरक्षित समिधा को देखता हैं, वह (अकाल) मृत्यु के मार्ग में पैर नहीं रखता हैं।

(५५)—"नैनघ्नन्ति पर्याविणोपसन्नां अवगच्छति। अग्नेर्यः क्षत्रियो विद्वान्नमि गृहस्त्रातिआयुषे ।।४।। (सूक्त ७६ मन्त्र ४) ।। अर्थात् चारों ओर फिरते रहने वाले (बटमार) इसको नहीं मारते हैं। वह मरे हुओं (फँसे हुओं) की ओर नही जाता है। जो क्षत्रिय जानता हुआ दीर्घ आयु के लिए अग्नि को ग्रहण करता हैं।

(५६)—"उपप्रिय पनिपतम्······दीर्घमायुः कृणोतु मे" (अथर्ववेद मण्डल ७ सूक्त ३२ मन्त्र १) अर्थात् वह परमेश्वर मेरी आयु लम्बी करें।

(५७)—"संक्रामतं माजहीन······सतम्जीवं शरदः वर्धमानः······" मन्त्र २ ।। अर्थात् बढ़ता हुआ तू सो शरद ऋतुओं तक जीता रह ।।

(५८)—"अग्ने तपस्तप्या मह······आयुष्मन्तः सुमेधसः" ।।२।। (अथर्ववेद मण्डल ७ सूक्त ६१ मन्त्र २) अर्थात् हम बड़ी आयु और बड़ी बुद्धि वाले बनें ।।

इस प्रकार यह केवल अथर्ववेद के ५८ प्रमाण इस बात पर हुए कि—"आयु घट-बढ़ सकती है"। अब आप यजुर्वेद के भी कुछ प्रमाणों का अवलोकन करिये—मैं यहां मुख्य-मुख्य प्रमाणों को ही उद्धृत कर रहा हूं। अगर सभी ग्रन्थों से इस विषय पर प्रमाण संग्रह करने लगूं तो एक अच्छा-खासा ग्रन्थ तैयार हो सकता है।

यजुर्वेद के प्रमाण—

(१)—"**सा विश्वायु**······" (यजुर्वेद अध्याय १ मन्त्र ४) इस पर महर्षि दयानन्द का भाष्य देखिये—

"हे (**विष्णो**) आप जिस (**वेद**) वाणी का धारण करते हैं, वह पूर्ण आयु की देने वाली है; स्पष्ट है कि—परमेश्वर की वाणी (वेद) अपूर्ण आयु अर्थात् अकाल मृत्यु से बचाती और पूर्ण आयु को देती है। अब आप महर्षि का दिया हुआ भावार्थ भी देखिये—

भावार्थ—तीन प्रकार की वाणी होती हैं अर्थात् प्रथम (वह) जो कि—ब्रह्मचर्य में पूर्ण विद्या पढ़ने वा पूर्ण आयु होने के लिये सेवन की जाती है॥

(२)—"**धान्यमसि······दीर्घामनु प्रसितिमायुषे धाम्**······" (यजुर्वेद अध्याय १ मन्त्र २०) **महर्षि भाष्य**— हे मनुष्यो! मैं पुरोहित······दीधान्) बहुत दिनों तक (**प्रसितिम्**) अत्युत्तम सुख बन्धन युक्त (**आयुष**) पूर्ण आयु के भोगने के लिए (यज्ञ को) (**धाम**) धारण करता हूं वैसे ही तुम भी उक्त प्रयोजन के लिए उस (यज्ञ) को नित्य धारण करो।

भावार्थ—जो यज्ञ से शुद्ध किये हुए—अन्न, जल और पवन आदि पदार्थ हैं उन सबकी शुद्धि, बल, और दृढ़ दीर्घ आयु के लिये सम होते हैं। स्पष्ट है कि—यज्ञ से शुद्ध हुए पदार्थ=लम्बी आयु देते और आयु छोटी होने तथा अकाल मृत्यु से बचाते हैं। (अमर स्वामी)

(३)—"**यजुर्वेद अ० १ मन्त्र २२**" **जनयत्यैत्वा** (ऋषि भाष्य) (**इदम्**) यह संस्कार किया हुआ। हवि (अग्नेः) अग्नि के बीच में छोड़ा जाता है। (**इदम्**) यह विस्तार को प्राप्त होकर (**अग्नीवोमयोः**) अग्नि और सोम के बीच पहुंचकर—(**इषे**) अन्न आदि पदार्थों के उत्पन्न करने के लिए होता है और जो (**विश्वायुः**) बहुत सुख देने (**धर्मः**) यज्ञ (**अति**) है उसका जैसे मैं अनेक प्रकार विस्तार—करता हूं वैसे (**त्वा**) उसको हे पुरुषो! तुम भी (**उरु पृथस्व**) विस्तृत करो। इस ही मन्त्र का ऋषि दयानन्द का ही दूसरा अर्थ—हे मनुष्यो! जैसे मैं जो (**विश्वायुः**) पूर्ण आयु तथा (**उर प्रथा**) बहुत सुख देने वाला (**धर्मः**) यज्ञ (**असि**) है (**त्वा**) उस यज्ञ को (**जनयत्यै**) राज्य लक्ष्मी तथा (**इषे**) अन्न आदि पदार्थों के उत्पन्न करने के लिए (**संयौमि**) संयुक्त करता हूँ तथा उसकी सिद्धि के लिये (**इदम्**) यह (**अग्नेः**) अग्नि के बीच में और (इदम्) यह (**अग्नीषोमयो**) अग्नि और सोम के बीच में संस्कार किया हुआ हवि—(**सं वयामि**) छोड़ता हूं वैसे तुम भी यज्ञ को (**उरुप्रथस्व**) विस्तार को प्राप्त करो जिस कारण यह (**अग्निः**) भौतिक अग्नि (**ते**) तुम्हारे (**त्वचम्**) शरीर को (**माहिंसीत्**) रोगों से नष्ट न करे······आदि। स्पष्ट है कि—शरीर—रोगों से अकाल में नष्ट हो सकता है और यज्ञ विस्तार से शरीर को अकाल में नष्ट होने से बचाया जा सकता हैं (**अमर स्वामी**) इस मन्त्र के भावार्थ में महर्षि जी लिखते हैं—

भावार्थ—मनुष्यों को इस प्रकार का यज्ञ करना चाहिये कि—जिससे पूर्ण लक्ष्मी "**सकल आयु**" अन्न आदि पदार्थ रोग नाश और—सब सुखों का विस्तार हो।

(४)—"यजुर्वेद अ० २ मन्त्र ६—"घृताच्यसि" [(नाम्ना)] (ध्रुवा) स्थिर सुखों का—(घृताची) आयु के निमित्त की देने वाली विद्या (असि) होती है आदि स्पष्ट है कि—विद्या आयु के निमित्त को देने वाली होती है अर्थात् आयु का निमित्त अर्थात् कारण कोई होता है। (अमर स्वामी)

(५)—"यजु० अ० २ मन्त्र २७"—(ऋषि भाष्य) "अग्ने गृहपते० शतंहिमाः सूर्यस्या वृत मन्वा-वर्त्ते······"—(सूर्यस्य) आप और विद्वान के (आव्रतम्) वर्तमान अर्थात् जिनमें अच्छी प्रकार रात्रि वा दिन होते हैं उसमें (शतंहिमाः) सौ वर्ष वा सौ से अधिक भी वर्त्तें।

भावार्थ—सौ वर्ष जीवें, तथा जितेन्द्रियता से सौ सौ वर्ष से अधिक भी सुख पूर्वक जीवन भोगें।

(६)—"यजु० अ० ३ मन्त्र १७" (ऋषि भाष्य) "तनूपाऽअग्नेऽसि०" आप जैसे (आयुर्दाः) सबको आयु के देने वाले (असि) हैं वैसे (मे) मेरे लिये (आयुः) पूर्ण आयु अर्थात् सौ वर्ष तक जीवन (देहि) दीजिये।

भावार्थ—परमेश्वर ने······शरीर के आयु निमित्त विद्या का प्रकाश और सब अंगों की पूर्णता रची है, आदि।

(७)..."यजु० अ० ३ मन्त्र १८" (ऋषि भाष्य) "इन्धाना स्वा···"(वयस्वन्तः) प्रशंसनीय पूर्ण अवस्था (आयु) युक्त (त्वा) आपका (इन्धानाः)उपदेश श्रवण करते हुए हम लोग (शतम्) सौ वर्ष तक वा सौ से अधिक (हिमाः) हेमन्त ऋतु युक्त (समिधीमहि) अच्छे प्रकार प्रकाश--करें वा जीवें। (वयस्वन्तः) पूर्ण अवस्था युक्त······हम लोग (शतम्) सौ वर्ष पर्यन्त (हिमाः) हेमन्त ऋतु युक्त (समिधो महि) जीवें।

भावार्थ—उत्तम सुखों को प्राप्त होकर सौ वर्ष जीना चाहिये।

(८)—"यजु० अ० ३ मन्त्र ५४—आनऽएतु मनु०" (ऋषि भाष्य) (मनः) जो स्मरण करने वाला चित्र (ज्योख्) निरन्तर (सूर्यम्) परमेश्वर सूर्य, लोक वा प्राण को (दृशे) देखने वा (क्रत्वे) उत्तम विद्या वा उत्तम कर्मों की स्मृति वा (जीवसे) सौ वर्ष से अधिक जीने (च) और अन्य शुभकर्मों के अनुष्ठान के लिये वह (नः) हम लोगों को (पुनः) बार-बार जन्म-जन्म में (आ) सब प्रकार से (एतु) प्राप्त हो।

(९)—"यजु० अ० ३ मन्त्र ६०—त्र्यम्बकं यजामहे०······" (······मृत्योर्मुक्षीयमाऽमृतात्०) ऋषि भाष्य (मृत्योः) प्राण वा शरीर के वियोग से (मुक्षीय) छूट जावें। (अमृतात)

भावार्थ—"हम लोग पूर्ण आयु को भोग कर शरीर को छोड़ कर ······स्पष्ट है कि—अपूर्ण आयु में अर्थात् अकाल मृत्यु में न मरें। अपूर्ण आयु तथा अकाल में भी मृत्यु हो सकतीं हैं पर कामना यह है कि—वह न हो। —(अमर स्वामी)

(१०)—"यजु० अ० ३ मन्त्र ६२—त्र्यायुषं जमदग्नेः कश्यपस्य त्र्यायुषं। यद्देवेषु त्र्यायुषंतन्नोऽस्तु त्र्यायुषम्॥ (ऋषि भाष्य)—(त्र्यायुषम्) तीन सौ वर्ष से आयु को (नः) हम लोगों को प्राप्त कीजिए॥ (प्राप्त कराइये—अमर स्वामी)।

भावार्थ—(त्र्यायुषम्) इस पद की चार बार आवृत्ति हो मैंने तीन सौ वर्ष से अधिक—चार सौ वर्ष पर्यन्त भी आयु का ग्रहण किया है। इसकी प्राप्ति के लिये—परमेश्वर की प्रार्थना करके और अपना पुरुषार्थ

करना उचित हैं सो प्रार्थना इस प्रकार करनी चाहिये...हे जगदीश्वर ! आपकी कृपा से "जैसे विद्वान् लोग विद्या धर्म और परोपकार के अनुष्ठान से आनन्द पूर्वक तीन सौ वर्ष पर्यन्त आयु को भोगते हैं" वैसे ही तीन प्रकार के ताप से शरीर, मन बुद्धि चित्त अहंकार रूप अन्तः करण इन्द्रिय और प्राण आदि को सुख करने वाले विद्या, विज्ञान सहित "आयु को हम लोग प्राप्त होकर तीन सौ या चार सौ वर्ष पर्यन्त सुखपूर्वक भोगें" ।।

(११)—"यजु० अ० ३ मन्त्र ६३"—शिवो नामासि० (ऋषि भाष्य) "आप (मा) मुझे (मा) मत (हिं सीः) अल्पमृत्यु (अकाल मृत्यु) से युक्त कीजिये । मुझको अल्पमृत्यु=अकाल मृत्यु से युक्त न कीजिये । अर्थात् मैं अकाल मृत्यु से न मरूं (अमर स्वामी)

ऋषि ने संगति लगाते हुए लिखा—"तीन सौ वर्ष अवश्य—आयु का सम्पादन करना और धर्म से आयु आदि पदार्थों के ग्रहण का वर्णन किया हैं ।

(१२) —"यजुर्वेद अध्याय ४ मन्त्र १, एदमगन्म......" ऋषि भाष्य—(एनम्) इस यजमान वा प्राणी मात्र को (मा हिं सीः) कभी मत मार ।।१।।

यहाँ "कभी मत मार" का स्पष्ट अर्थ हैं कि—योनि की आयु से पहिले=(अकाल मृत्यु से) मत मारो । यहां भी स्पष्ट हैं कि—अल्प आयु में भी मनुष्यादि प्राणी मर सकते हैं । पर ऐसे प्रयत्न होने चाहिये कि—अल्पायु में कोई कभी न मरे । (अमर स्वामी) ।

(१३)—"भोगों में घटना बढ़ना—यजु० अ० ४ मन्त्र ३ "महीनां पयोऽसि०" इस मन्त्र में—चक्षुर्दाऽअसि चक्षुर्मेदेहि) आंखों में देखने की शक्ति मांगी गई है यदि सब शक्तियां उतनी ही रहती है जितनी भाग्य वा प्रारब्ध में होती है तो और क्यों मांगी गई है ? स्पष्ट है कि—मिल सकती हैं और शक्तियां घट बढ़ सकती हैं। (अमर स्वामी) ।

(१४)—"यजु० अ० ४ मन्त्र २३ । समख्ये देव्या......" ऋषि भाष्य—(मा मे आयुः प्रमोषीः) मेरे जीवन को नाश न करे । उस (जीवन=आयु) को मैं अविद्या से नष्ट न करूं ।

भावार्थ—"विद्या को ग्रहण कर उमर को बढ़ा और विद्यादि उत्तम उत्तम गुणों में अपने सन्तान और वीरों को सम्पादन करके सदा सुखी रहें ।।

(१५)—"यजु० अ० ४ मन्त्र २५—"अभित्यं देवं......" ऋषि भाष्य—(प्रजाः) मनुष्यादि (अणु प्राणन्तु) आयु का भोग करें । आयु का भोग तो सब ही करते हैं यहां प्रयोजन यह है कि—पूरी आयु का भोग करें अर्थात् सौ वर्ष वा इससे भी अधिक जीवें । (अमर स्वामी)

(१६)="यजु० अ० ४ मन्त्र २७) । "मित्रो नऽएहि......" ऋषि भाष्य—जैसे वे शत्रु लोग (तान्) (मा दमन्) वहां वैसे ही सम्यक् प्रीति) से परस्पर मिल के बनी उन (वा) तुम लोगों की हिंसा करने में समर्थ (मा दमन्) वहां वैसे ही ... ।।२७।। यदि आयु निश्चित हैं और—घट बढ़ नहीं सकती, तो कोई किसी की हिंसा कैसे करता हैं ? (अमर स्वामी)

(१७)—"यजुर्वेद अध्याय ५ मन्त्र ५ आपतये त्वा..." (ऋषि भाष्य) में (ओजः) पराक्रम स्वरूप वाली (अभिशस्तिपाः) हिंसा से रक्षा का निमित्त (हिंसा) निश्चित नहीं है, हो भी सकती है और यत्न से

हिंसा रोकी भी जा सकती है, इससे यह कहना कि—अमुक का इस प्रकार ही मरना निश्चित था यह वेद विरुद्ध···है। (अमर स्वामी)।

(१८)—"यजु० अ० ५ मन्त्र १७—देवश्रुतो······" ऋषि भाष्य—(आयुः) आयु को (मा निर्वादिष्टम्) नष्ट न करें॥ आयु नष्ट भी की जा सकती है। यह स्पष्ट है। (अमर स्वामी)।

(१९)—"यजु० अ० ५ मन्त्र ३४—"मित्रस्य······" ऋषि भाष्य—(मा) मुझको (हिंसिष्ट)। नष्ट मत कीजिये, आयु निश्चित है तो कोई किसी को कदापि नष्ट नहीं कर सकता है। (अमर स्वामी)

(२०)—यजु० अ० ६ मन्त्र ३—याते धामानि······" ऋषि भाष्य—"(क्षत्रम्) राज्य और धनुर्वेद वेत्ता क्षत्रियों को (दृंह) उन्नति दे (आयुः) अपनी अवस्था को (बृंह) बढ़ा अर्थात् बृह्मचर्य और राजधर्म से दृढ़ कर तथा (प्रजाम्) अपने सन्तान वा रक्षा करने योग्य प्रजाजनों को (बृंह) उन्नति दे॥३॥

भावार्थ—"कोई भी जन विज्ञान सेना और जीवन अर्थात् अवस्था सन्तान और प्रजा की रक्षा के विना अच्छी उन्नति (नहीं) कर सकता है।

(२१)—"यजु० अ० ७ मन्त्र २८—"आत्मने में······" ऋषि भाष्य—"हे (वर्चोदाः) बल देने वाले (मे) मेरे (आयुषे) जीवन के लिये (वर्चसे) रोग छुड़ाने वाले औषध को (पवस्व) प्राप्त कीजिये।

(२२)—"यजु० अ० ७ मन्त्र ४७। अग्नयेत्वा······" ऋषि भाष्य—"उस (दात्रे) दानशील विद्वान का (आयुः) बहुत काल पर्यन्त जीवन (एधि) बढ़ाइये और (प्रतिग्रहीत्रे) विद्या ग्रहण करने वाले (मह्यम्) मुझ विद्यार्थी के लिये (मयः) सुख बढ़ाइये।

"उसे (दात्रे) विद्या देने वाले विद्वान् के लिये (प्राणः) योग विद्या का बल (एधि) प्राप्त कराइये और (प्रतिग्रहीत्रे) विद्या ग्रहण करने वाले (मह्यम्) मेरे लिये (वयः) तीनों अवस्था [१ बाल अवस्था २ युवा अवस्था ३ वृद्धावस्था (अमर स्वामी)] (कौमारं यौवनं जराः—"गीता") का सुख प्राप्त कीजिये। (कराइये (अमर स्वामी)। उस (दात्रे) पूर्ण विद्या देने वाले महाविद्वान के अर्थ (त्वक्) सरदी गरमी के स्पर्श का सुख (एधि) बढ़ाइये।······ "उस (दात्रे) ब्रह्म विद्या देने वाले महाविद्वान् के लिये (हयः) ब्रह्म ज्ञान की वृद्धि (एधि) कीजिये और (प्रतिग्रहीत्रे) मोक्ष विद्या के ग्रहण करने वाले (मह्यम्) मेरे लिए (वयः) तीनों अवस्था (बालकपन युवावस्था और वृद्धावस्था) के सुख को प्रात कीजिये अथवा कराइये—(अमर स्वामी)। इस मन्त्र में आयु और योग दोनों बढ़ सकते हैं यह बताया गया है।

भावार्थ—बृह्मचर्य धर्म से—शरीर की पुष्टि, "मन की सन्तुष्टि" और विद्या की वृद्धि, को प्राप्त होकर और विवाह किये हुए जो पुरुष हों वे यत्न के साथ गर्भ को रखें कि—जिससे वह दस महीने के पहिले गिर न जाय, क्योंकि जो गर्भ दस महीने से अधिक दिनों का होता है वह प्रायः बल और बुद्धि देने वाला होता हैं और जो इससे पहले होता है वह वैसा नहीं होता॥२८॥ यह स्पष्ट है कि—गर्भस्थ बालक की भी आयु निश्चित नहीं है सुरक्षा से उसकी आयु बढ़ सकती है और उपेक्षा से बीच में ही वह नष्ट हो सकता है (अमर स्वामी)।

(२३)—"यजु० अ० ८ मन्त्र ६२—"यज्ञस्यदोहोविततः······"—ऋषि भाष्य—(सः) वह आप सूर्य के प्रकाश में यज्ञ करने वाले गृहस्थ तू उस यज्ञ को (धुक्ष्व) परिपूर्ण कर, जो (मे) मेरी (प्रजायाम्) प्रजा में

(विश्वम्) सब (महि) महान् (रायः) धनादि पदार्थों की (पोषम्) समृद्धि को वा (आयुः) जीवन को बार-बार विस्तारता है उसको मैं (स्वाहा) सत्ययुक्त प्रक्रिया से (अशीय) प्राप्त होऊं ।।६२।।

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि—सदा यज्ञ का आरम्भ और समाप्ति को करें और संसार के जीव को अत्यन्त सुख पहुंचावें ।।६२।। इस मन्त्र से स्पष्ट है कि—यज्ञ से आयु भी बढ़ती है और सुख भोग में भी वृद्धि होती है।

(२४)—"**यजु० अ० ६ मन्त्र ६। "अप्स्वन्तर मृतम्**······" **ऋषि भाष्य**—(अप्सु) प्राण के (अन्तः) मध्य में (**अमृतम्**) मरणधर्म रहित कारण और (अप्सु) जलों के मध्य—अल्प मृत्यु से छुड़ाने वाला (**भेषजम्**) रोग निवारक औषध के समान गुण हैं।······ इस मन्त्र में बताया है कि—जल में अल्प मृत्यु—"अकाल मृत्यु से छुड़ाने वाले औषध के समान गुण हैं। स्पष्ट है कि—अकाल मृत्यु भी होती हैं।। औषधियों द्वारा अकाल मृत्यु को रोका जा सकता है (**अमर स्वामी**)।

(२५)—"**भोग भी बदल और बढ़ सकते हैं। देखिये "यजुर्वेद अध्याय ६ मन्त्र ७"** के भावार्थ में ऋषि दयानन्द जी लिखते हैं "**जो एक समष्टि वायु, प्राण**, अपान, व्यान, उदान, समान, नाग, कूर्म कृकल, देवदत्त और धनंजय (**दश**) बारहवां मन तथा इसके साथ श्रोत्र आदि दस इन्द्रिय और पाँच सूक्ष्म भूत ये सब २७ (**सत्ताईस**) पदार्थ ईश्वर ने इस जगत में पहिले रचे हैं। जो पुरुष इनके गुण कर्म और स्वभाव को ठींक-ठीक जान और यथा योग्य कार्यों में संयुक्त करके अपनी-अपनी ही स्त्री के साथ क्रीड़ा करते हैं वे सम्पूर्ण ऐश्वर्य को संचित कर राज्य के योग्य होते हैं। स्पष्ट है कि—अच्छे बुरे प्रयोगों से "**भोग भी घट बढ़ सकते हैं**"।

(२६)—**यजु० अ० ११ मन्त्र ४६ प्रैत बाजी**······" **ऋषि भाष्य**—(**आयुषः**) नियत वर्षों की अवस्था से (**पुरा**) पहिले (**मा**) न (**प्रैतु**) मरे ! नियत वर्षों की अवस्था से पहले न मरे ।।

प्रश्न —इस मन्त्र में तो आयु के वर्ष नियत कहे गये हैं, तो क्या अकाल मृत्यु का इस मन्त्र से खण्डन नहीं होता है ?

उत्तर—नहीं-नहीं कदापि नहीं। अकाल मृत्यु न मानने वाले तो यह मानते हैं कि—जिसकी जितनी आयु परमेश्वर ने निश्चय की है उससे एक पल भी पहिले वह मर ही नहीं सकता हैं ऐसी मान्यता वालों के लिये तो (**आयुषः पुरा मा प्रैतु**) "आयु से या नियत वर्षों से पहिले न मरे यह वेद वचन व्यर्थ हो जायगा। वास्तविकता यह है कि—वेद का प्रत्येक वाक्य बुद्धि पूर्वक है कोई भी वेद वचन व्यर्थ नहीं है। पहिले प्राणी मर सकता है इस ही लिये कहा है कि—"**पहिले न मरे।**"

प्रश्न—आपके विचार में "**आयुषः पुरा या प्रैतु**" की सार्थकता क्या है ? और वेद में इस वाक्य का प्रयोग क्यों हुआ है ?

उत्तर—प्रत्येक जीव के कर्मो के आधार पर उसके अगले जन्म के लिये जाति अर्थात् योनि का निश्चय होता है कि—यह जीव मनुष्य, पशु, पक्षी, कृमि कीट, सर्पादि में से किस योनि में जायगा ? प्रत्येक योनि के साथ आयु और भोग बंधे हुए हैं यथा मनुष्य की आयु लगभग सौ वर्ष, हाथी, घोड़ा बैल, कुत्ता आदि सबकी पृथक-पृथक आयु के माप हैं उनमें बालकपन जवानी और बुढ़ापा ("कौमार यौवनंजरा"—गीता) यह तीन अवस्थायें होती हैं, । (इस लेख की संख्या में ऋषि दयानन्द की ऋषि दृष्टि मिले संकेत पढ़िए) इनके पीछे

मृत्यु होनी चाहिये । वेद में ही आदेश है—"मा पुरा जरसो मृथा" प्रयोजन यह है कि—"जीवेम शरदः शतम्" कहते ही नहीं रहना चाहिये किन्तु नियत सौ वर्ष से पूर्व नहीं मरना चाहिये । महर्षि द्वारा इस मन्त्र के भावार्थ से भी यह ही भाव स्पष्ट और पुष्ट होता है उसको पढ़िये वह इस प्रकार है—

भावार्थ—"राजा आदि, मनुष्यों को योग्य है कि—अपने "सन्तान को विषयों की लोलुपता से छुड़ा के ब्रह्मचर्य के साथ पूर्ण अवस्था (आयु) को धारण कर" अग्नि आदि पदार्थों के विज्ञान से धर्मयुक्त व्यवहार की उन्नति करावें ।।

(२७)—"यजुर्वेद अध्याय १२ मन्त्र ३२—प्रेदग्ने ज्योतिष्मान्······" ऋषि भाष्य—(तन्वा, प्रजाः मा हिंसीः) शरीर से पालने योग्य प्राणियों को मत मारिये ।।३२।।

भावार्थ—हे राजन् ! आप किसी "अनपराधी प्राणी को न मारें ।। "विशेष"—जब कोई निश्चित समय से पहिले नहीं मर सकता तो यह मन्त्र तथा इसका उपदेश व्यर्थ हो जायगा अतः स्पष्ट है कि...मारने से कोई भी मर सकता है न मारा जाय तो बच सकता है । अतः "आयु घट बढ़ सकती है" ।

(२८)—"यजु० अ० १२ मन्त्र ४०—पुनरूर्जा ······" ऋषि भाष्य—"आप (इषायुषा नः) अन्न और आयु जीवन के साथ हम लोगों को बढ़ाइये ।।४०।।

(२९)—"यजुर्वेद, अ० १२—" इस मन्त्र में (आयुषः) के अर्थ में ऋषि ने अन्न को जीवन का साधन बताया है ।

(३०)—"यजु० अ० १२ मन्त्र १००—"दीर्घायुस्तऽओषधे०······" ऋषिभाष्य—"तू (दीर्घायुः) अधिक अवस्था वाला हो । (दीर्घायुः) बड़ी अवस्था वाला होकर तू बहुत अंकुरों से युक्त औषधि है उसको सेवन करके सुखी हो ।

भावार्थ—हे मनुष्यों ! तुम लोग ओषधियों के सेवन से अधिक अवस्था वाले होओ और धर्म का आचरण करने हारे होकर सब मनुष्यों को औषधियों के सेवन से दीर्घ अवस्था वाले करो ।।

(३१)—"यजु० अ० १३ मन्त्र ४२ आदित्यं गर्भं······" ऋषि भाष्य—(शतायुषम् कृणुहि) सौ वर्ष की अवस्था वाले सन्तान को कीजिये ।

भावार्थ—"रोग रहित होकर सौ वर्ष की अवस्था वाले सन्तान को उत्पन्न करो" ।

(३२)—"यजु० अ० १३ मन्त्र ४३—अजस्रमिन्दु मरुम्······" (गां मा हिंसीः) गौ को मत मारो । जब आयु को घटाया ही नहीं जा सकता तो न मारने का उपदेश व्यर्थ हुआ । स्पष्ट है कि—"मारा भी जा सकता है और बचाया भी जा सकता है" ।

(३३)—"यजु० अ० १३ मन्त्र ४८—इमं मा हिंसीः······" ऋषि भाष्य—"इमं मा हिंसीः एक शफम् पशुम्" हे राजन् ! तू (वाजिनेषु) संग्राम के कामों में इस एक खुर युक्त घोड़े आदि पशु को मत मार ।

भावार्थ—"मनुष्यों को उचित है कि एक खुर वाले घोड़े आदि "पशुओं और उपकारक वन के पशुओं को भी कभी न मारें जिनके मारने से जगत की हानि और न मारने से सब का उपकार होता हो उनका सदैव पालन पोषण करें और जो हानिकारक पशु हों उनको मारें ।।४८।। स्पष्ट है—"मारा और बचाया जा सकता है" ।

(३४)—"यजु० अ० १३ मन्त्र ४९—इमं साहस्रम्......" ऋषि भाष्य—"इस असंख्य सुखों का साधन असंख्य दूध की धाराओं के निमित्त अनेक प्रकार से पालन के योग्य कुंए के समान रक्षा करने हारे वीर्य—सेचक बैल और घी को पूर्ण करती हुई नहीं मारने योग्य "गौ" को मत मार ॥ यहां भी स्पष्ट है कि—"मारा और बचाया जा सकता है" ॥

(३५)—"यजुर्वेद अध्याय १३ मन्त्र ५०—"इममूर्णायुम्......" ऋषि भाष्य—(इममूर्णायुम् द्विपदम्, चतुष्पदम्)—ऊन देने वाले भेड़ आदि दो पैर वाले मनुष्यादि और चार पैर वाले गौ आदि को (मा हिंसीः) मत मारो।

(३६)—"यजु० अ० १४ मन्त्र ८—प्राणम्मे पाहि......" (प्राणम् में पाहि) मेरे प्राणों की रक्षा करो। क्या यह व्यर्थ है ?

(३७)—"यजु० अ० १४ मन्त्र १७—आयुर्मे पाहि......" (आयुर्मे पाहि, प्राणम् में पाहि)—मेरी आयु की रक्षा करो मेरे प्राणों की रक्षा करो। (जो समय पर नष्ट होने निश्चित हैं उनकी रक्षा के लिये प्रार्थना सर्वथा व्यर्थ है। फिर यह प्रार्थना वेद में क्यों है ? स्पष्ट है कि—"आयु घट बढ़ सकती है"।

(३८)—"यजु० अ० १४ मन्त्र २१—मूर्धासि०......" ऋषि भाष्य—(आयुषे त्वा०) आयु के लिये तुमको ग्रहण करता हूं।

(३९)—"यजु० अ० १५ मन्त्र १५—अयं पुरो हरिकेशः......" (ते नोऽवन्तु ते ते नो मृडयन्तु) वह हमारी रक्षा करें वह हमको सुख दें। जब आयु भी निश्चित है और भोग भी निश्चित है और अनिवार्य है तब यह कामना करने की आज्ञा वेद में क्यों है ?

(४०)—यह ही प्रार्थना यजुर्वेद के उसी अध्याय मन्त्र १६.१७-१८ और १९ में भी है।

(४१)—"यजु० अ० १६ मन्त्र १५—मा नो महान्तम्......" ऋषि भाष्य—महान् पुरुषों, छोटे पुरुषो, गर्भाधान—करने वाले, गर्भ को, पालन करने हारे पिता, माता, तथा स्त्री आदि के शरीरों को न मारने की प्रार्थना है। जब निश्चित आयु निश्चित समय से पहिले कोई न मर सकता है और न मारा जा सकता है तो यह प्रार्थना क्यों ?

भावार्थ—योद्धा लोगों को चाहिए कि—युद्ध के समय वृद्धों, बालकों, युद्ध से हटने वालों, जवानों गर्भों, योद्धाओं के माता पितरों, सबकी स्त्रियों, युद्ध के देखने वा प्रबन्ध करने वालों और दूतों को न मारें, । किन्तु शत्रुओं के सम्बन्धी मनुष्यों को सदा वश में रक्खें ॥१५॥ अकाल मृत्यु न मानने वालों को पूछो कि—जो निश्चित समय से पहिले मर ही नहीं सकते और निश्चित समय के पीछे बच नहीं सकते, उनके विषय में यह सब व्यर्थ ही कहा गया है!

(४२)—""यजु० अ० १६ मन्त्र १६—मानस्तोके तनये......" ऋषि भाष्य—सेनापति से यह प्रार्थना है कि—तू हमारे तत्काल उत्पन्न हुए सन्तान, पांच वर्ष से ऊपर अवस्था वाले बालक, हमारी आयु हमारी अवस्था, हमारी गौ, भेड़, बकरी, हमारे घोड़े, हाथी, ऊंट मत मार। हमारे वीरों, को मत मार ॥१६॥

भावार्थ—राजपुरुषों को चाहिए कि—अपने वा प्रजा के बालकों, कुमार, गौ, घोड़े आदि वीर उपकारी जीवों की कभी हत्या न करें, और बाल्यावस्था में विवाह कर—व्यभिचार से अवस्था (आयु की हानि भी न

करें) गौ आदि पशु, दूध आदि पदार्थों को देने से जो सबका उपकार करते हैं उससे उनकी सदैव वृद्धि करें ।।१६।। इन सब मन्त्रों से अकाल मृत्यु स्पष्ट सिद्ध हो रही हैं ।

(४३)—"यजु० अ० १६ मन्त्र ४०—नमः शङ्गवे······ऋषि भाष्य—"दूर पर शत्रुओं को बांधने वा मारने वाले को अन्न देवें । दुष्टों को मारने और दुष्टों का अत्यन्त निर्मूल करने हारे को भी अन्नादि देवे । स्पष्ट है कि--(मारा भी जा सकता है और बचाया भी जा सकता है" ।)

(४४)—"यजु० अ० १६ मन्त्र ६४, ६५, ६६ में—तेनो अवन्तु ते नो मृडयन्तु······" पाठ है वह हमारी रक्षा करें वह हमको सुख देवें ।।

(४५)—"यजु० अ० १८ मन्त्र ६—ऋतं च मेऽमृतं च······" ऋषि भाष्य—(मे जीवातुः च मे दीर्घायुत्वम्) "मेरा—जिससे जीते हैं वह जो जिलाता है वह व्यवहार और पथ्य भोजन मेरा अधिक आयु का होना ब्रह्मचर्य और इन्द्रियों को अपने वश में रखना आदि कर्म" ।। इस मन्त्र में महर्षि ने ब्रह्मचर्य, इन्द्रियों को रखना तथा पथ्य भोजन आदि को लम्बी आयु का साधन बताया है ।

(४६)—"यजुर्वेद अ० १८ मन्त्र ३६—पयः पृथिव्यां······" ।

भावार्थ—"जो मनुष्य जल आदि पदार्थों से युक्त पृथिवी आदि से उत्तम अन्न और रसों का संग्रह करके खाते और पीते हैं वे नीरोग होकर सब दिशाओं में कार्य को सिद्ध कर तथा जा आ सकते और "बहुत आयु वाले होते हैं" ।

(४७)—"यजु० अ० १८ मन्त्र ४६—तत्त्वा यामि······" ऋषि भाष्य—(मा न आयुः प्रमोषीः) उस हमारी आयु को मत चोर (मत घटा) ।

भावार्थ—"स्त्री पुरुषों को ब्रह्मचर्य त्याग, अयोग्य आहार विहार, व्यभिचार, अत्यन्त विषयासक्ति, आदि "खोटे कामों से आयु का नाश कभी न करना चाहिये" ।।४६।।

(४८)—"यजु० अ० १८ मन्त्र ५१—अग्नि युनज्मि······" ऋषि भाष्य—मैं आयु की व्याप्ति से बड़े हुए शुद्ध गुणों में प्रसिद्ध होने वाले, अच्छे प्रकार रक्षा करने में परिपूर्ण अग्नि को बलदायक घी आदि सुगन्धित पदार्थों से युक्त करता हूं ।।

(४९)—"यजु० अ० १८ मन्त्र ५३—मा मा हिंसी ······" मुझको मत मारो ।

(५०)—"यजु० अ० १८ मन्त्र २४—दिवो मूर्द्धासि······" ऋषि भाष्य—हे विद्वान् ! जो आप प्रकाश अर्थात् प्रताप के शिर के समान पृथिवी के बन्धन के समान, जलों और औषधियों के रस के समान—"पूर्ण सौ वर्ष जीने वाले" और कीर्त्ति युक्त हैं ।।

भावार्थ—"जो मनुष्य न्यायवान् सहनशील औषधि का सेवन करने और आहार विहार से यथायोग्य रहने वाला इन्द्रियों को वश में रखता है "वह सौ वर्ष की अवस्था वाला होता है" ।।५४।।

(५१)—"यजु० अ० १९ मन्त्र ३७—पुनन्तु मा पितरः······ ऋषि भाष्य—"पितामह पिताओं के पिता अतीव शुद्धानन्द युक्त शतवर्ष पर्यन्त आयु से मुझको पवित्राचरण युक्त करे । सुन्दर एश्वर्य के दाता वा

शान्तियुक्त पितामहों के पिता पवित्र धर्माचरण युक्त सौ वर्ष पर्यन्त आयु से मुझको पवित्र करें जिससे में सम्पूर्ण जीवन को प्राप्त होऊं ॥३७॥

(५२)—"यजु० अध्याय १९ मन्त्र ३८—अग्न आयूंषि······" हे विद्वान् ! आप हमारे आयु (दीर्घो) को पवित्र करें।

भावार्थ—"पिता आदि लोग अपने सन्तानों में दीर्घ आयु पराक्रम और शुभ इच्छा का धारण कराके अपने सन्तानों को दुष्टों के संग से रोक और श्रेष्ठों के संग में प्रवृत्त कराके धार्मिक चिरंजीवी (लम्बी आयु वाला) करें ॥

(५३)—"यजु० अ० १९ मन्त्र ६०—ये अग्निष्वात्ता०······" भावार्थ—मनुष्यों को परमेश्वर से ऐसी प्रार्थना करनी चाहिये कि—हे परमेश्वर ! जो अग्नि आदि की पदार्थ विद्या को यथार्थ जानके प्रवृत्त करते और जो ज्ञान में तृप्त विद्वान् अपने ही पदार्थ के भोग से सन्तुष्ट रहते हैं "उनके शरीरों को दीर्घायु कीजिये ॥६०॥

(५४)—"यजु० अ० १९ मन्त्र ९३—अङ्गान्यात्मन्······" ऋषि भाष्य—योग को धारण करते हुए जन सौ वर्ष पर्यन्त जीवन का धारण करते हैं ॥

(५५)—"यजु० अ० २० मन्त्र १—क्षत्रस्य योनिरसि······" ऋषि भाष्य—"तुझको कोई भी न मारे तू मुझको न मारे" ॥

(५६)—"यजु० अ० २१ के मन्त्र १२ से २८ तक १७ मन्त्रों में १७ बार (वयोदधुः) वाक्य आया है जिसका महर्षि दयानन्द जी ने "आयु बढ़ाने हारे वस्तु को धारण करें", (बलम् वयः दधुः) बल और जीवन को धारण करें" अर्थ किया है ॥

(५७)—"तेजोऽसि शुक्रममृतमायुष्पाऽआयुर्मेपाहि"—(यजुर्वेद अध्याय २२ मन्त्र १)—हे विद्वान ! तुम स्व स्वरूप से विनाश रहित (शुक्रम) वीर्य और (तेजः) प्रकाश के समान जो (आयुष्पाः) आयुर्दा की रक्षा करने वाला (असि) है सो तू अपनी दीर्घ आयुर्दा करके (मे आयु पाहि) मेरी "आयु की रक्षा कर"।

(५८)—"मधवे स्वाहा माधवाय स्वाहा······मन्त्र ३१"।

भावार्थ—जो मनुष्य प्रतिदिन अग्निहोत्र आदि यज्ञ और अपनी प्रकृति के योग्य आहार और विहार आदि को करते हैं वे नीरोग होकर बहुत जीने वाले होते हैं ॥३१॥

(५९)—"युंजन्ति ब्रध्नमरुषम्······(यजुर्वेद अध्याय २३ मन्त्र ५)—जो पुरुष (परि) सब ओर से (तस्थुषः) स्थावर जीवों को (चरन्तम्) प्राप्त होते हुए बिजली के समान वर्तमान् (अरुषम्) प्राणियों के मर्मस्थल जिनमें पीड़ा होनेसे– प्राण का वियोग शीघ्र हो जाता है उन स्थानों की रक्षा करने के लिये स्थिर होते हुए ॥

(६०)—"दधिक्राणो प्रकारिषम्······मन्त्र ३२—(नः आयूंषि तारिषत्) हमारे आयुओं को उनकी अवधि के पार पहुंचाओ ॥

भावार्थ—पढ़ाने और उपदेश करने हारे—कुमार और कुमारियों को पूरे ब्रह्मचर्य के सेवन से पण्डित पण्डिता कर उनको शरीर और आत्मा के बल के लिये प्रवृत्त करा के बहुत आयु वाले और अति युद्ध करने में कुशल बनावें ॥३२॥

(६१)—"आनो भद्राक्रतवो······" (यजुर्वेद अध्याय २५ मन्त्र १४)—(आयुवः) जिनकी अवस्था (आयु) नष्ट नहीं होती।

(६२)—"देवानां भद्रा सुमति ऋजूयताम्······मन्त्र २५"—अर्थात् (देवान आयुः प्रतिरन्तु जीवसे) "विद्वान् हमको जीने के लिये जिससे प्राण का धारण होता है उस आयुर्दा को पूरी भुगावें वैसे तुम्हारे प्रति बर्ताव रक्खें।।

भावार्थ—सब मनुष्यों को चाहिये कि—पूर्ण शास्त्र वेत्ता विद्वानों के समीप से उत्तम बुद्धियों को पाकर ब्रह्मचर्य आश्रम से आयु को बढ़ाके सदैव धार्मिक जनों के साथ मित्रता रक्खें ।।१५।।

(६३)—"भद्रंकर्णेभि श्रणुयाम देवा······मन्त्र २१"—(स्थिरै अंगैः) दृढ़ अवयवों से (तनूभिः) शरीरों से (यत् देवहितम् आयुः) जो विद्वानों के लिए सुखकारी अवस्था (आयुः) हैं उसको (विअशेमहि) अच्छे प्रकार प्राप्त हो।।

भावार्थ—जो मनुष्य विद्वानों के साथ से विद्वान् होकर सत्य सुनें सत्य देखें और जगदीश्वर की स्तुति करें तो वे बहुत अवस्था वाले हो।।२१।।

(६४)—"सतमिन्नु शरदो अन्ति देवा यत्रा नश्चक्रा जरसं तनूनाम। पुत्रासो यत्र पितरो भवन्ति मानो रीरिषतायुर्गन्तोः ।।२२।। "यजुर्वेद अध्याय २५ मन्त्र २२"—हे (देवाः) विद्वानो! आपके (अन्ति) समीप स्थित (नः) हम लोगों के (यत्र) जिस व्यवहारमें (तनूनाम्) शरीरों की (जरसम्) वृद्धावस्था और (शतम्) सौ (शरदः) वर्ष पूरे हों उस व्यवहार को (नु) शीघ्र (चक्र) करो (यत्र) जहाँ (पुत्रासः) बुढ़ापे के दुःखों से रक्षा करने वाले (पुत्र) लड़के—(इत्) ही (पितरः) पिता के समान वर्तमान (भवन्ति) होते हैं उस (नः) हम लोगों की (गन्तोः) चाल और (आयुः) अवस्था को (मध्या) पूरी अवस्था भोगने के बीच (मारीरिषत्) मत करो।।

भावार्थ—मनुष्यों को सदा दीर्घकाल अर्थात् अड़तालीस वर्ष प्रमाणे ब्रह्मचर्य सेवना चाहिये। जिससे पिता आदि के विद्यमान होते ही लड़के भी पिता हो जावें अर्थात् उनके भी लड़के हो जावें। और "जब सौ वर्ष आयु बीते तभी शरीरों की वृद्धावस्था होवे"। जो ब्रह्मचर्य के साथ कम से कम पच्चीस वर्ष व्यतीत होवें उससे पीछें भी अति मैथुन करके "जो लोग वीर्य का नाश करते हैं तो वे रोग सहित निर्बुद्धि होके अधिक अवस्था वाले कभी नहीं होते" ।।२२।।

(६५)—"न वा उ एतन्म्रियसे······यजुर्वेद अध्याय २५ मन्त्र ४४"—हे विद्वान् यदि (एतत्) इस पूर्वोक्त विज्ञान को पाते हो तो तुम न मरते हो (नवैरिष्यसि) ना ही मारते हो।

(६६)—"अमुत्र भूयादध यद्यमस्य······यजुर्वेद अध्याय २७ मन्त्र ९" ।।

भावार्थ—वे ही श्रेष्ठ अध्यापक और उपदेशक हैं जो इस लोक और परलोक में सुख होने के लिए सब को अच्छी शिक्षा करें, जिससे ब्रह्मचर्यादि कर्मों का सेवन कर मनुष्य अल्पावस्था में मृत्यु और आनन्द की हानि कौ न प्राप्त होवें ।।९।। (अवस्था—आयु) (अमर स्वामी) ।।

(६७)—"होता यक्षद्दैवा होतारा······" (यजुर्वेद अध्याय २८ मन्त्र ७)।

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे श्रेष्ठ वैद्य रोगियों पर कृपा कर औषधि आदि के उपाय से रोगों को निवृत्त कर ऐश्वर्य और आयुर्दा को बढ़ाते हैं, वैसे तुम लोग सब प्राणियों में मित्रता की वृत्ति कर सबके सुख और "अवस्था" को बढ़ाओ ॥७॥

(६८)—"होता यक्षद्वनस्पतिम्······भगस वयोधसम्—(यजुर्वेद अध्याय २८ मन्त्र ३३)—अर्थात् सेवने योग्य एश्वर्य "अवस्था" के धारक······ ॥

(६९)—"होता यक्षत स्वाहा······" (यजुर्वेद अध्याय २८ मन्त्र ३४)—"कविम् वयोद्यासम्" अर्थात् बुद्धिमान मनोहर " "अवस्था" को ध्यान करने हारे······" ॥

(७०)—"देवं बर्हिर्वयोधसम्······" (यजुर्वेद अध्याय २८ मन्त्र ३५) अर्थात् (वयः) जीवन को (इन्द्रम्) जीव में (दधत्) धारण करता हुआ······" ॥

(७१)—"देवीर्द्वारो वयोधसम्······(यजुर्वेद अध्याय २१ मन्त्र ३६) अर्थात् जीवन के आधार ॥

भावार्थ—जो घर समुहे द्वार वाले जिनमें सब ओर से वायु आवे, ऐसे हैं, उनमें निवास करने से "अवस्था" पवित्रता, बल और नीरोगता बढ़ती है, इसलिए बहुत द्वारों वाले बड़े-बड़े घर बनाने चाहिये।

(७२)—"देवी उषा सानवता······वयोधसम्" ॥ (यजुर्वेद अध्याय २८ मन्त्र ३७)—अर्थात् जीवन को धारण करने वाले······यहां ३३ से मन्त्र ४५ तक "वयोधसम्" शब्द १३ बार आया है।

(७३)—यहां मन्त्र ४६ में दो बार "वयोधसम्" शब्द है, जिसका अर्थ महर्षि दयानन्द जी ने जीवन को बढ़ाने हारे किया है

(७४)—"स्वादुषम् सदः पितरो वयोधाः······" यजुर्वेद अध्याय २९ मन्त्र ४६) यहां (स्वादुषम्सदः) भोजन के योग्य अन्नादि पदार्थों को सम्यक सेवने वाले (वयोधाः) अर्थात् अधिक अवस्था युक्त ॥

भावार्थ—उन्हीं का सदा विजय, राज्य श्री, प्रतिष्ठा बढ़ी "अवस्था" बल और विद्या होती है, जो अपने अधिष्ठाता, प्राप्त सत्यवादी सज्जनों की शिक्षा में स्थित होते हैं ॥४६॥

(७५)—"त्वन्नो अग्ने तवदेव······" (यजुर्वेद अध्याय ३४ मन्त्र १३)।

भावार्थ—जो मनुष्य ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभावों और आज्ञा की अनुकूलता में वर्तमान हैं, और जिनकी ईश्वर और विद्वान लोग निरन्तर रक्षा करने वाले हैं, वे लक्ष्मी "दीर्घावस्था" और सन्तानों से रहित कभी नही होते ॥१३॥

(७६)—"आयुष्यंम् वर्चस्यम्······" (यजुर्वेद अध्याय ३४ मन्त्र ५०) अर्थात्—(आयुष्यम्) जीवन के लिए हितकारी (वर्चस्यम्) अध्ययन के उपयोगी ॥

भावार्थ—जो मनुष्य अपने तुल्य सबको जानते और विद्वानों के साथ विचार कर सत्यासत्य का निर्णय करते हैं, वे "दीर्घावस्था" पूर्ण विद्याओं, समग्र ऐश्वर्य और विजय को प्राप्त होते हैं।

(७७)—"न तद्रक्षांसि न पिशाचा ·····" (यजुर्वेद अध्याय ३४ मन्त्र ५१)—अर्थात् जो मनुष्य (एतत् द्राक्षायणाम्) इस चतुर को प्राप्त होने योग्य, (हिरण्यम् बिभर्ति) तेजस्वरूप ब्रह्मचर्य को धारण वा पोषण करता है,

[सोना पहनता, सोने के आभूषण धारण करता या सोने की भष्म खाता है— अमर स्वामी] तथा (सः देवेषु दीर्घम् आयुः कृणुते) वह देवों (विद्वानों) में अधिक "अवस्था" को प्राप्त होता है। (सः मनुष्येषु दीर्घम् आयुः कृणुते) वह मनुष्यों में बड़ी "अवस्था" को प्राप्त करता है।

भावार्थ—जो प्रथम अवस्था में बड़े धर्मयुक्त ब्रह्मचर्य से पूर्ण विद्या पढ़ते हैं, उनको न कोई चोर चुरा सकता है और न ही उनको कोई भार होता है। जो विद्वान् इस प्रकार धर्मयुक्त कर्म के साथ वर्त्तते हैं, वे देवों-विद्वानों में और मनुष्यों में बड़ी "अवस्था" को प्राप्त हो के निरन्तर आनन्दित होते और दूसरों को आनन्दित करते हैं ॥५१॥

(७८)—**"यदा बन्धन् दाक्षायण······"** (यजुर्वेद अध्याय ३४ मन्त्र ५२) अर्थात् (मे) मेरे लिए (**यत्**) जिस (**हिरण्यम्**) सत्यासत्य प्रकाशक विज्ञान का [सोने के आभूषण का—"**अमर स्वामी**"] "**आ बन्धनन्**" निबन्धन न करें, (**तत्शत शरदाय आवहनाभि**) उसको मैं सौ वर्ष तक जीवन के लिए नियत करता हूं। हे विद्वान लोगो! जैसे मैं (**युष्मान्**) तुम लोगों को प्राप्त होके (**जरदृष्टिः असम्**) पूर्ण "**अवस्था**" (आयु) को व्याप्त होने वाला होऊं, वैसा तुम लोग मेरे लिए उपदेश करो।

भावार्थ—एक ओर बड़ी सेना और एक ओर एक विद्या ही विजय देने वाली होती है, जो लोग बहुत काल तक ब्रह्मचर्य धारण करके विद्वानों से विद्या और सुशिक्षा को ग्रहण कर उसके अनुकूल वर्तते हैं वे थोड़ी "**अवस्था**" (आयु) वाले कभी नहीं होते ॥५२॥

(७९)—**"सप्त ऋषयः प्रति हिता शरीरे······"** (यजुर्वेद अध्याय ३४ मन्त्र ५५)

भावार्थ—यदि प्राण और अपान भी सो जावें तो मरण का ही सम्भव करना अर्थात् समझना चाहिये ॥५५॥

(८०)—**"परं मृत्यो अनुपरेहि पन्थाम्······"** (यजुर्वेद अध्याय ३५ मन्त्र ७) उस (**पन्थाम् मृत्यो परा इहि**) मार्ग को मृत्यु दूर जावे······मृत्यु (**नः**) हमारी प्रजा को न मारें और वीर पुरुषों को भी न मारे तू (**प्रजाम् आ रीरिषः**) सन्तानादि को मत मार वा (**विषयादि**) से नष्ट मत कर, मेरे विचार में "**विषयादि**" नहीं बल्कि "**विष**" आदि होना चाहिये—"**अमर स्वामी**") तथा (**उत्**) और (**वीरान्**) विद्या और शरीर के बल से युक्त वीर पुरुषों को (**मा**) मत नष्ट कर॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि—जीवन पर्यन्त विद्वानों के मार्ग से चल के उत्तम "**अवस्था**" को प्राप्त हों, और ब्रह्मचर्य के बिना स्वयंवर विवाह करके कभी न्यून "**अवस्था**" (आयु) की प्रजा सन्तानों को उत्पन्न न करें और न इन सन्तानों को ब्रह्मचर्य के अनुष्ठान से अलग रक्खें ॥७॥

(८१)—**यजुर्वेद अध्याय ३५ के मन्त्र १४ का भावार्थ**—जैसे सूर्य को देखते हुए दीर्घावस्था वाले धर्मात्माजन सुख को प्राप्त होते हैं वैसे ही धर्मात्मा······॥

(८२)—**"इमं जीवेभ्य परिधिं ददामि······शतं जीवन्त शरदः पुरुची ···"** ॥१५॥ (यजुर्वेद अध्याय ३५ मन्त्र १५) अर्थात् "**इमं जीवेभ्यः परिधिम्** "**दधामि**" इस प्रकार जीवों के लिए इस मर्यादा को व्यवस्थित करता हूं, इस प्रकार आचरण करते हुए आप लोग—**पुरुची शतम् शरदः जीवन्तु**) बहुत वर्षों के सम्बन्धी सौ शरद ऋतुओं भर जीवो। (**पर्वतेन मृत्युम् अन्त दधताम्**) ज्ञान वा ब्रह्मचर्यादि (के पत्थर) से "**मृत्यु को दबाओ**" अर्थात् दूर करो ॥१५॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो लोग, (परमेश्वर ने नियत किया कि—"**धर्म का आचरण करना और अधर्म का आचरण छोड़ना चाहिये**") इस मर्यादा को उल्लंघन नहीं करते, तथा अन्याय से दूसरे के पदार्थों को नहीं लेते वे निरोग होकर "**सौ वर्ष तक जीवित रह सकते हैं**" और ईश्वराज्ञा विरोधि नहीं। जो पूर्ण ब्रह्मचर्य से विद्या पढ़ धर्म का आचरण करते हैं, उनको "**मृत्यु मध्य में नहीं दबाता**" अर्थात् उनकी "**अकाल मृत्यु**" नहीं होती—"**अमर स्वामी**" ॥

(८३)—"**अग्न आंयूषिपवस**······" मन्त्र १६, अर्थात्—हे (**अग्ने**) परमेश्वर वा विद्वान् ! आप (**आंयूषिऽपवसे**) अन्नादि पदार्थों—अवस्थाओं (आयुओं) को पवित्र करते हैं, (**नः कर्ज्जन् च**) हमारे बल और (**इषम् आ सुव**) विज्ञान को अच्छे प्रकार उत्पन्न कीजिये, तथा (**दुच्छुनाम आरे बाधस्व**) दुष्ट कुत्तों के तुल्य दुष्ट सिंहक प्राणियों अर्थात् "**मनुष्यों को**" (**अमर स्वामी**) ताड़ना विशेष दीजिये। (दूर कर दीजिये, मार दीजिये)—"**अमर स्वामी**" ॥

भावार्थ—जो मनुष्य दुष्टों का आचरण और संग छोड़ के परमेश्वर और आप्त सत्यवादी विद्वान की सेवा करते हैं वे धनधान्य से युक्त हुए "**दीर्घ अवस्था**" वाले होते हैं ॥१६॥

(८४)—"**आयुष्मान अग्ने**······यजुर्वेद अध्याय ३५ मन्त्र १७" अर्थात् (**आयुष्मान एधिः**) बहुत अवस्था वाले आप लोग (**एधि**) हुजिये। (**मधुचार गव्यम्**) मधुर सुन्दर गो के (**घृतम्** पीत्वा) घृत को पीकर (**पुत्रम् पितेव**) पुत्र की पिता जैसे वैसे (**स्वाहा**) सत्य क्रिया से (**इमाम् अभि रक्षतात्**) इन प्रजास्थ मनुष्यों की प्रत्यक्ष रक्षा कीजिये ॥१७॥

(८५)—"**द्रते दृहंमा ज्योक्ते** ·····" (यजुर्वेद अध्याय ३६ मन्त्र १८) अर्थात विद्वान् वा परमेश्वर ! जिससे हम (**ते संदृषि ज्योक जीव्यासम्**) आपके सम्यक् देखने वा ज्ञान में निरन्तर जीवें (**ते संदृषि ज्योक् जीव्यासम्**) आपके समान दृष्टि विषय में निरन्तर जीवन व्यतीत करें, उस जीवन विषय में (**मा दृहं**) मुझको दृढ़ कीजिये ॥

भावार्थ—मनुष्यों को योग्य है कि ईश्वर की आज्ञा पालने और युक्त आहार विहार से सौ वर्ष तक जीवन का उपाय करे ॥ अर्थात् (सौ वर्ष तक जीने का उपाय हो सकता है—"**अमर स्वामी**") ॥

(८६)—"**तच्चक्षुर्देव हितम्**······" (यजुर्वेद अध्याय ३६ मन्त्र २४), अर्थात् (**तत् शतम् शरदः पश्येम**) उस चेतन स्वरूप ब्रह्म को आप सौ वर्ष तक देखें (**शतम् शःरदः जीवेम्**) सौ वर्ष तक प्राणों को धारण करें, अर्थात् जीवें (**शतम् शरदः पश्येम**) सौ वर्ष पर्यन्त शास्त्रों वा मंगल वचनों को सुनें, (**शतम् शरदः**) सौ वर्ष तक (**प्रब्रवाम्** पढ़ावें वा उपदेश करें (**शतम् शरदः अदीनाः स्याम**) सौ वर्ष पर्यन्त दीनता रहित हों। (**च शतात् शरदः भूयः**) और सौ वर्ष से अधिक भी देखें, जीवें, सुनें, पढ़ें, उपदेश करें और अदीन रहें ॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! आपकी कृपा और आपके विज्ञान से आपकी रचना को देखते हुए आपके साथ युक्त निरोग और सावधान हुए हम लोग समस्त इन्द्रियों से युक्त सौ वर्ष (और) सौ वर्ष से भी अधिक जीवें, सत्य शास्त्रों और आपके गुणों को सुनें, वेदादि सत्य शास्त्रों को पढ़ावें सत्य का उपदेश करें, कभी किसी वस्तु के बिना पराधीन न हों, सदैव स्वतन्त्र हुए निरन्तर आनन्द भोगें और दूसरों को आनन्दित करें ॥२४॥

नोटः—इस प्रकार मैंने ऋषि दयानन्द जी कृत ग्रन्थों के तथा वेदों के अनेकों प्रमाणों को देकर बताया कि—"**आयु घट भी सकती है तथा बढ़ भी सकती है** ॥ "**अमर स्वामी**"

आयु के अन्य निश्चित आधारों पर विचार

शास्त्रार्थ का विषय था कि "क्या आयु का समय निश्चित है" ? इस विषय में श्री पं० रुद्रदत्त जी शास्त्री तथा पं० उदयवीर जी शास्त्री तथा श्री अमर स्वामी जी का जो निर्णय प्राप्त हुआ, वह यही है कि आयु का काल निश्चित नहीं है। किन्तु श्री पं० रुद्रदत्त जी शास्त्री आयु की निश्चितता प्राणों की निश्चित श्वास-संख्या में मानते हैं। प्रथम जब उनका निर्णय आया तो यह मान्यता स्पष्ट नहीं लिखी थी। कुछ अस्पष्ट बातें भी उस निर्णय में थीं। उन्होंने अन्त में स्वयं भी लिखा था "यदि आवश्यक हो तो लिखें मैं विस्तार में भी प्रस्तुत कर सकूंगा।" तदनुसार कुछ बातों को स्पष्ट करने के लिए उनसे प्रार्थना की। उन्होंने प्रार्थना को स्वीकार कर तद्विषयक अपना विस्तृत लेख भेज दिया। पुनः उनके लेख के उत्तर में उनको पत्र दिया गया। उनका विस्तृत लेख और हमारा भेजा हुआ उस लेख का उत्तर नीचे अविकल रूप में छापा जा रहा है। हमारे उत्तर के पश्चात् उनका कोई पत्र अभी तक नहीं मिला है। किन्तु हमारे पत्र देने के पश्चात् अब उनकी मान्यता से मिलता जुलता लेख श्री पं० उदयवीर जी शास्त्री का आया है। यद्यपि उसको इस पुस्तक में छापने का समय निकालने में बहुत कठिनता होगी किन्तु श्री पं० उदयवीर जी शास्त्री का निर्णय अवश्य छापा जाये यही उचित समझा गया। अतः श्री पं० रुद्रदत्त जी शास्त्री का लेख भी छाप दिया गया है।

श्री पं० उदयवीर जी शास्त्री आयु की निश्चितता कर्मों की कुछ सीमित संख्या के फल भोगने में मानते हैं। किन्तु उन्होंने इस अपनी मान्यता में कोई वेदादि सच्छास्त्रों का प्रमाण प्रस्तुत नहीं किया है। प्रतिज्ञा मात्र से कोई भी मान्यता सिद्ध नहीं होती। उन्होंने योगदर्शन के सूत्र के व्यास-भाष्य का अध्ययन करने पर उनकी यह मान्यता कहीं भी दृष्टिगोचर नहीं होती। श्री व्यास जी ने सूत्रार्थ में यह लिखा है कि जाति अर्थात् जन्म किस योनि में और किस माता-पिता के यहाँ होना चाहिए यह प्रधानभूत कर्मों के अनुसार होता है। किन्तु इस जन्म के कर्मानुसार ही अगले जन्म के आयुकाल और भोग निश्चित होते हैं या अगले जन्म में कुछ निश्चित संख्या के कर्माशयों का उपभोग ही होता है, ऐसा व्यास जी ने बिल्कुल नहीं लिखा। उनका अविकल लेख नीचे छापा गया है। उनका निर्णय जहां विचारणीय देखा, वहां नीचे टिप्पणी में दर्शा दिया गया है।

—"संयोजक"

श्री पण्डित रुद्रदत्त जी शास्त्री के विचार—

आपका दूसरा पत्र मिल गया है, मेरी यह धारणा है कि—"काल मृत्यु" एवं "अकाल मृत्यु" ये शब्द सापेक्ष है। इन दोनों शब्दों में विरोधाभास है विरोध नहीं। जो व्यक्ति आयु को प्राणात्मक रूप में प्रस्तुत करते हैं वे यदि कहें कि "आयु निश्चित" है तो उनका यह कथन अविचारित अनर्गल नहीं है। किन्तु जो आयु को कालात्मक रूप में प्रस्तुत करते हैं वे यदि कहें कि आयु घटती और बढ़ती है तो उनका यह कथन अलीक नहीं है। इस परिप्रेक्ष्य में यदि निगम एवं आगम के प्रमाणों को देखें तो उभयात्मक किंच विरोधाभासात्मक प्रमाणों की संगति ठीक-ठीक लगती दीख रही है। दोनों अपने-अपने ढंग से अपना अपना विवेचन करते हैं। "सति मूले तद्वि···

······"यह प्रमाण देकर यदि वादी कहे कि आयु निश्चित है और जब जाति भोग निश्चित हैं तो आयु निश्चित क्यों नहीं ? वादी का यह कथन बड़े महत्त्व का है। पर है सब सापेक्ष ही, अपने दृष्टिकोण से वह देख रहा है और दूसरे के दृष्टिकोण का ध्यान नहीं रखता। दूसरी ओर प्रतिवादी स्पष्ट प्रमाण प्रस्तुत करते हुए दर्शाता है कि—"पश्येम शरद······जीवेम शरदः शतम्······भूयश्च शरदः शतात्······अभिवादनशीलस्य···" आदि-आदि तो वह अपने स्थान पर अडिग है, सत्य है। फिर भी यह कहना अनुचित न होगा कि प्रतिवादी जिस दृष्टिकोण से ऊपर जो कुछ कह रहा है वही सर्वथा एकमात्र सत्य नहीं है, उसको भी वादी के दृष्टिकोण को समझाने का मधुर प्रयास करना आवश्यक था। खेद है कि जो विषय विमर्श की अपेक्षा रखता था उसे वाद का या विवाद का लक्ष्य बनाया गया है। ऐसे विषय विवादास्पद नहीं होते तो विमर्शापेक्षी होते हैं।

ऐसे विषयों को बहुधा सरयन्यो कहकर महर्षि श्री चरक जी ने मन्त्र प्रस्तुत किया है। "चत्वारि शृङ्गा त्रयो अस्य पादा······" इस मन्त्र को यज्ञ-परक भी लगाया गया है और महाभाष्य में श्री महर्षि पतञ्जलि जी इसे व्याकरण परक समझते हैं तो यह विरोधात्मक वर्णन नहीं है अपितु दृष्टि-भेद से पृथक् पृथक् विषय का वर्णन किया गया है। अच्छा यही क्यों ? आत्मा को अगर अमर कहा जाता है पर साथ ही "जन्ममृत्यु जराव्याधी-दुःखदोषानुदर्शनम्" भी कहा जाता है, सूर्य का अस्त होना क्या ? और सूर्य का उदय क्या ? परन्तु दृष्टिभेद से कभी उदय और अस्त न होने वाले सूर्य का उदय-अस्त स्वीकार कर लिया जाता है। ये विरोधात्मक नहीं विरोधाऽभास मात्र है, विवादास्पद नहीं विमर्शात्मक हैं। इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए महर्षि मनु जी महाराज कहते है—"श्रुति द्वैधं तु यत्र स्यात् तत्र धर्मावुभौ स्मृतौ ॥" श्रुति में यदि कहीं द्वैध दीखे तो उसे विरोध न समझकर धर्म ही समझने का प्रयास करे। सम्यक् तथा ऊहापोह करे तत्त्वदर्शियों से पूछे और यथार्थता को अवगत करे, पर अल्पबुद्धि के कारण कुतर्क द्वारा अश्रद्धा का भाजन न बने। इतना समझ लेने के अनन्तर यदि कोई अपनी प्रतिज्ञा सिद्धि में धुरा का दृष्टान्त देता है तो ठीक ही देता है। यदि यह स्वनामधन्य श्री दर्शनानन्द जी महाराज की युक्ति का अवलम्बन न कर निम्न दृष्टान्त प्रस्तुत करता तो और भी स्पष्ट हो जाता कि—किसी व्यक्ति को १५ सेर आटा दिया गया अब यह उसके हाथ में है कि बुद्धिमत्तापूर्वक उस आटे को अपने उपयोग में ले। यदि वह आधा सेर प्रतिदिन के व्यय से उपयोग में लावे तो १ महीना पर्यन्त आटे का उपभोग कर सकता है और यदि प्रमाद करता है तो १५ दिन में भी समाप्त कर सकता है। जो व्यक्ति विषय-वासनाओं में पड़कर प्राणों का अधिक व्यय कर देगा वह अपनी काल-सीमा को कम कर लेगा किन्तु जो प्राणायाम, ब्रह्मचर्यादि से प्राणों का व्यय कम करेगा वह काल-सीमा को बढ़ा लेगा।

अवश्य बढ़ा लेगा पर आत्मा तो उतने का उतना ही रहेगा, न बढ़ेगा, न घटेगा। जिसे प्राण-रूपेण आयु का कथन अभीष्ट है उसके मन में आयु न घटेगी न बढ़ेगी निश्चित रहेगी किन्तु जो काल रूप में आयु को स्वीकार करता है उसके मत में आयु बढ़ेगी भी और घटेगी भी। विरोध कुछ नहीं केवल तिल की ओट में ताड़ छिप गया है। इस प्रकार "सति मूले······" आदि आगमों का भी अपलाप नहीं किया जावेगा और स्वतः प्रमाण वेद की श्रुतियों के सम्बन्ध में भी ऊलजलूल कल्पना भी न करनी पड़ेगी कि ये प्रार्थनाएँ अगले जन्म के लिए की गयी हैं। आपके अनुरोध पर यह थोड़ा सा विचार प्रस्तुत किया है इस सम्बन्ध में आप जैसा उचित समझें विद्वज्जनों से भी परामर्श कर लें। परमेश्वर आपके इस ज्ञान-यज्ञ को उत्तरोत्तर संवर्द्धन पर आशीष प्रदान करें।

—"रुद्रदत्त शास्त्री"

उपर्युक्त लेख का निम्न उत्तर दिया गया—

पत्रोत्तर मिला, धन्यवाद।

जन्म-समय आयु की प्राण-संख्या निश्चित होती है। जो कमती ज्यादा नहीं होती। समय का निश्चय नहीं होता। इस मान्यता में भी प्रमाण आवश्यक है। हमें तो यह मान्यता भी ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों में कहीं मिली नहीं। अतः इसके लिए भी कोई आर्ष-प्रमाण अवश्य देना चाहिए आयु का अर्थ तो इतना मात्र है जीवनकाल—अर्थात् जन्म से मृत्युपर्यन्त के समय को आयु कहते हैं। अर्थात् अमुक व्यक्ति की इतनी आयु हुई वह आयु का समय निश्चित था या अनिश्चित यह विचारणीय है। आयु शब्द का अर्थ प्राणों की निश्चित संख्या नहीं है। जीवन-काल है। योगदर्शन में **"सति मूले तद्विपाको"** सूत्र के भाष्य में भी प्राण-संख्या निश्चित होती है ऐसा बिलकुल नहीं लिखा एवं आयुर्वेद के चरक और सुश्रुत ग्रन्थों में भी आयु का आधार ओज माना है। ओज समाप्त होने पर मनुष्य मर जाता है। ऐसा अनेक स्थानों पर स्पष्ट लिखा है। जब तक मनुष्य श्वास लेता है तब तक जीवन है। इससे तो यह सिद्ध है कि श्वास प्रश्वास का लेने वाला अब नहीं जी रहा। इससे प्राणों की निश्चित संख्या सिद्ध नहीं होती। शास्त्रार्थ का विषय भी यही था कि—**"क्या आयु का समय निश्चित है?"** आप और पं० वेदव्रत जी आयु का समय निश्चित नहीं मानते। किन्तु बहुत से व्यक्ति मानते हैं। अतः यह विषय विवादास्पद नहीं ऐसा क्योंकर कहा जा सकता है यहां जो श्रुति द्वैध आदि के दृष्टान्त आपने दिए हैं वह नहीं लगते। **"सति मूले ताद्विपाको"** का सूत्रार्थ वेद की मान्यता का आभास मात्र भी विरोधी नही उससे पहले **"क्लेशमूलः कर्माशयो दृष्टादृष्ट-जन्म-वेदनीयः"** हैं जिसको श्री व्यास जी ने इस सूत्र के भाष्य में भी लिखा है जिसका अर्थ है—कर्माशय इसी जन्म में और परजन्म में भी फल देता है। इस सूत्र का सत्यार्थ श्री ब्रह्मचारी जी ने व्यासभाष्य के अनुसार बहुत खोलकर अपने कथनों में समझाया है।

श्री पं० ओमप्रकाश जी शास्त्री आयु का समय निश्चित मानते हैं। यह उनको सिद्ध करना था ऐसा शास्त्रार्थ के पूर्व कहा गया था उन्होंने भी पूरे शास्त्रार्थ में इसके लिए ही प्रयत्न भी किया उन्होंने स्पष्ट कहा कि प्रत्येक मनुष्य के कर्म एक जैसे नहीं अतः आयु का समय एक नहीं हो सकता, इत्यादि। अतः शास्त्रार्थ का जो विषय था उस पर आपकी सम्मति जो पूर्व आई थी वह प्रकाशित कर दी जाएगी जिन ३-४ वाक्यों में कुछ स्पष्टीकरण आपने इस पत्रोत्तर में भेजा है, उसका सारांश यह है कि—**"प्राण-संख्या निश्चित है काल नहीं"**। ब्रह्मचारी वेदव्रत से पहले बात हुई थी वह प्राणसंख्या भी निश्चित नहीं मानते। यदि आपकी मान्यता सम्मति में प्रकाशित की जायेगी तो यह विषय से बाहर हो जायेगी क्योंकि शास्त्रार्थ का विषय तो काल-विषयक था उसमें तो आपकी सम्मति इस पत्रोत्तर में भी स्पष्ट यही है कि काल निश्चित नही। प्राणों की संख्या निश्चित है यह दूसरा विषय है। यदि प्राणों की संख्या निश्चित है इसको भी आप शास्त्रार्थ में प्रकाशित कराना चाहते हैं तो इस विषय को सप्रमाण लिखकर भेज दें इसको शास्त्रार्थ में उत्तर के साथ छाप दिया जायेगा। अन्यथा चाहे कुछ विलम्ब के साथ इस विषयक अपने विचार भेज दें वह **"दयानन्द सन्देश"** के अगले अंक में छाप देंगे।

(दिनांक ५-७-७५)

"दीपचन्द आर्य"
(संयोजक)

–आयु (जीवनकाल) निश्चित अथवा अनिश्चित–

"उदयवीर शास्त्री" सन्यास आश्रम, (गाजियाबाद)

पिछले दिनों "आर्यसमाज नया बांस" दिल्ली में एक शास्त्रार्थ [शास्त्रीय चर्चा] का आयोजन हुआ। इसके आयोजक थे—श्री लाला दीपचन्द आर्य। चर्चा का विषय था—जीवन काल (आयु) निश्चित है, अथवा अनिश्चित है, अर्थात् उसे घटाया-बढ़ाया जा सकता है या नहीं ? इस प्रकार एक पक्ष था—जीवन काल निश्चित है, इसे अल्प मात्रा में भी घटाया-बढ़ाया नहीं जा सकता ? दूसरा पक्ष था—जीवनकाल अनिश्चित है, इसे घटाया-बढ़ाया जा सकता है। पहले पक्ष के प्रवक्ता थे—पं० ओमप्रकाश शास्त्री, खतौली निवासी। दूसरे पक्ष के प्रवक्ता थे—ब्र० वेदव्रत जी। इस चर्चा-सभा की अध्यक्षता—श्री स्वामी ओमानन्द जी सरस्वती, आचार्य-गुरुकुल झज्जर, ने की। दोनों पक्षों के प्रवक्ता आर्यसमाज के सिद्धान्तों को मानने वाले हैं। इस चर्चा के परिणाम पर पहुंचने के लिए उक्त स्थिति को दृष्टि से ओझल करना उपयुक्त न होगा। किसी भी पक्ष की सिद्ध प्रमाणों द्वारा की जाती हैं, उसमें तर्क का सहयोग रहता है। चर्चा का प्रस्तुत विषय ऐसा है, जिसमें प्रत्यक्ष प्रमाण का उपयोग संभव नहीं। इसलिए अनुमान और शब्द-प्रमाण का अवलम्बन ही अभिमत पक्ष का साधक माना जाना चाहिए[१]। इस चर्चा के यथार्थ परिणाम पर पहुंचने के लिए इस स्थिति को दृष्टि से ओझल करना न होगा कि उभय पक्ष के प्रवक्ताओं ने अपने पक्ष की सिद्धि व पुष्टि के लिए आर्यसमाज के मान्य ग्रन्थों से प्रमाणों का उपयोग कहां तक किया है ?

सभाध्यक्ष के निर्देशानुसार प्रथम ब्र० वेदव्रत जी ने अपने पक्ष की स्थापना की। इनका पक्ष था—आयुमान (जीवनकाल) अनिश्चित है, इसे घटाया-बढ़ाया जा सकता है। अपने पक्ष को स्थापित करते हुए ब्रह्मचारी जी ने अनेक मान्य ग्रन्थों से ऐसे प्रमाण प्रस्तुत किए, जिनमें आयु के घटने-बढ़ने का स्पष्ट निर्देश है। इन मान्य ग्रन्थों में वेद, महर्षि-दयानन्द कृत वेदभाष्य, मनुस्मृति, आयुर्वेद [चरक विमान स्थान] गोकरुणानिधि, सत्यार्थ-प्रकाश के अनेक स्थल आदि। इनमें प्राचीन आर्ष-ग्रन्थों के अनेक उल्लेख इतने स्पष्ट हैं जिनमें आयु के बढ़ने-घटने का निर्देश है। उदाहरण के लिए मनु के सन्दर्भ—"अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः। **चत्वारि तस्य वर्द्धन्ते आयुर्विद्यायशोबलम्**" ॥ २। १२१ ॥ इसमें आयु के बढ़ने का स्पष्ट निर्देश है। इसके अतिरिक्त मनुस्मृति में अन्यत्र लेख है—"**आचाराल्लभते ह्यायुः.........**" ॥ धर्माचरण से आयु का लाभ होता है। इसमें आयु के बढ़ने-घटने का स्पष्ट संकेत है। इसके विपरीत दुराचारी पुरुष के विषय में बताया है—वह अल्पायु हो जाता है—"**दुराचारो हि पुरुषो लोके भवति निन्दितः। दुःखभागी च सततं व्याधितोऽल्पायुरेव च** [४। १५७] यहां दुराचारी पुरुष के अल्पायु हो जाने का स्पष्ट निर्देश है। इसके अनन्तर श्री ओमप्रकाश जी शास्त्री ने अपने पक्ष को स्थापित करते हुए जो कहा, उसका सार इतना है—

नोट (१)—मनुष्य की मृत्यु अथवा जीवन-रक्षा जिन-जिन कारणों से होती है, उनमें से अनेक कारणों को मनुष्य प्रत्यक्ष रूप से देखता और जानता है। यथा-प्रचण्ड अग्नि, भयंकर जलधारा, तलवार आदि का प्रहार एवं विषपान आदि आयु को नष्ट कर देते हैं। एवं अन्न, जल, औषधादि जीवन की रक्षा करते हैं। अतः मनुष्य जीवन को नष्ट करने वाले कारणों से बचकर जीवन-रक्षा के साधनों का अवलम्बन करता है। इस विषयक यह बातें प्रत्यक्ष प्रमाण से सिद्ध हैं। अनुमान प्रत्यक्ष के आश्रित ही होता है। जो अनुमान प्रत्यक्ष आश्रित नहीं वह अनुमान (अन्वीक्षा) की कोटि में नहीं आता, यह बात सप्रमाण श्री निडरजी के लेख के उत्तर में इस पुस्तक में लिखी गई है।

—"संयोजक"

(१) योगदर्शन के "**सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगाः**" इस सूत्र के अनुसार चालू जीवन में आत्मा को जो देह मानव, पशु, पक्षी आदि प्राप्त होता है—वह पूर्वजन्म के कर्मों के अनुसार है। जिस योनि में आत्मा आया अथवा जो देह उसे प्राप्त हुआ उसे उसी जीवन में बदला नहीं जा सकता, वह निश्चित है, इसी प्रकार इस देह के साथ पूर्व-कर्मानुसार जो आयु है वह भी निश्चित है उसे बदला या घटाया-बढ़ाया नहीं जा सकता। इसी प्रकार सुख.दुःखरूप भोग भी पूर्व-कर्मानुसार निश्चित हैं। (२) प्रत्येक आत्मा के कर्म भिन्न एवं विविध होने से सबकी आयु समान नहीं होती। कर्मानुसार सबकी आयु निश्चित है, पर उसी कारण अलग-अलग है, कोई दीर्घायु कोई अल्पायु। यह आत्मा की संसार-यात्रा, रेल यात्रा, के समान है। जीवन का प्रारम्भ पहला स्टेशन है, जिसका कर्म-रूप टिकट जहां तक का है, वह वहीं उत्तर जाता है। (३) यदि आयु घटती-बढ़ती हो तो उसका नियत मापदण्ड क्या है ? जहां से घटना-बढ़ना कहा जा सके। (४) जिन प्रमाणों में आयु के घटने बढ़ने का निर्देश प्रस्तुत किया गया है, वह सब चालू जीवन के लिए न होकर आगे मिलने वाले जीवन के विषय में हो सकता है। इस जीवन का सदाचार अगले जीवन में दीर्घायु प्रदान करेगा, कदाचार अल्पायु। इस प्रकार शास्त्रीय दृष्टि से आयु का निश्चित होना प्रमाणित होता है। इन दोनों प्रवक्ताओं के अपने प्रारम्भिक प्रवचनों के अनन्तर अपने-अपने पर्याय में जो आक्षेप और समाधान दोनों ओर से प्रस्तुत किए गए हैं, उनमें प्रायः उन्हीं बातों का पिष्टपेषण होता रहा है, जो प्रथम कही जा चुकी हैं[१]। इस चर्चा के विवरण को ध्यानपूर्वक देखते हुए जिस परिणाम पर पहुंचा जा सकता है, वह इस प्रकार समझना चाहिए—

(१) शास्त्री जी ने अपने समस्त प्रवचन में आर्यसमाज के मान्य-ग्रन्थों से ऐसा कोई प्रमाण प्रस्तुत नहीं किया, जिसमें आयु के निश्चित होने का स्पष्ट निर्देश हो। जबकि ब्रह्मचारी जी ने अपने पक्ष के अनेक निर्दिष्ट प्रमाण प्रस्तुत किए हैं। (२) मनुस्मृति तथा सत्यार्थ प्रकाश आदि में जो आयु के वृद्धि एवं ह्रास विषयक स्पष्ट निर्देश हैं, वे सब चालू जीवन के विषय में न होकर भविष्यत् में मिलने वाले अगले जीवनों के विषय में हो सकते हैं। शास्त्री जी की इस निराधार कल्पना का कोई स्पष्ट समाधान ब्रह्मचारी जी ने न कर अपने प्रवचनों में हैं उसकी उपेक्षा-सी की है[२]। जबकि स्पष्ट है कि ऐसे लेख चालू जीवन के लिए हैं। (३) शास्त्री जी ने प्रारम्भ से अन्त तक अपने समस्त प्रवचनों में योगदर्शन के—"**सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगाः**" इस सूत्र पर अधिक बल दिया है। उनके प्रवचन का जो विवरण मेरे सामने हैं, उसमें सूत्रार्थ स्पष्ट नहीं है। वैरागियों वाला अर्थ कर अपने अभिप्रेत को बार-बार दुहराया गया है। प्रसंगानुसार स्पष्ट सूत्रार्थ समझने के लिए इससे पहले सूत्र को देखना आवश्यक है। वह है—"**क्लेशमूलः कर्माशयो दृष्टादृष्टजन्मवेदनीय**" यहां "**कर्माशय**" पद का अर्थ है—कर्मजनित संस्कार जो शुभ-अशुभ कर्म किए जाते है उनके धर्म-अधर्मरूप संस्कारों का ढेर "**कर्माशय**" है। इस कर्माशय का मूल क्लेश है "**क्लेश**" पद योग में पारिभाषिक है, इसका तात्पर्य है—अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेश। सूत्रार्थ हुआ—कर्मजनित संस्कारों की जड़ अविद्या आदि क्लेश हैं, उन संस्कारों का सुख-दुखरूप फल चालू जन्म तथा आगे आने वाले जन्मों में भोगा जाता है। अब अगला सूत्र आता है—

टिप्पणी—(१) शास्त्रार्थ-अध्ययन से पता चलता है कि श्री ब्रह्मचारी जी ने पक्ष में प्रमाण और तर्क देने के साथ-साथ श्री शास्त्री जी के समस्त आक्षेपों का उत्तर दिया है किन्तु श्री शास्त्री जी ने कुछ आक्षेपों के उत्तर देने का असफल प्रयत्न किया है। —"**संयोजक**"

(२) शास्त्रार्थ अध्ययन से पता चलता है इस विषयक विस्तृत प्रश्नोत्तर इस शास्त्रार्थ में विद्यमान हैं। ब्रह्मचारी जी ने अपने उत्तरों में शास्त्री जी की उपर्युक्त मान्यता का पूर्णतः खण्डन कर दिया है। —"**संयोजक**"

"सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगाः ।" यहां **"तद्विपाकः"** पद में **"तत्"** सर्वनाम पूर्व-सूत्र के **"कर्माशय"** पद का परामर्श करता है । अर्थ हुआ— धर्म-अधर्मरूप संस्कारों का विपाक—फल, सुख-दुःखरूप परिणाम—**"मूले सति भवति"** नान्यथा-अविद्या आदि मूल के रहते हुए होता है, अन्यथा नहीं हो सकता । तात्पर्य है—कर्माशय फल तभी देता है जब उसके मूल अविद्या आदि विद्यमान हों । यदि किसी को विवेकख्याति हो जाय तो आत्मा में विद्यमान कर्माशय फल देने में असमर्थ हो जाता है । तब अविद्या आदि मूल के रहते हुए कर्माशय का जो विपाक होता है, उसके तीन रूप हैं—जाति, आयु और भोग । प्रसंग में तात्पर्य यह हुआ, कि आयु कर्माशय का फल है । अनादिकाल से सञ्चित उस संस्कार-राशि में से अगले प्राप्तव्य जन्म के लिए विशिष्ट संस्कार समूह जो अपेक्षणीय है—संकलित किया जाता है । इस संकलन से जीवात्मा का कोई हाथ नहीं; यह सब परमात्मा की व्यवस्था के अनुसार हुआ करता है । इसका लेखा-जोखा वही जानता है ।

इस संकलित कर्माशय को **"प्रारब्ध"** कर्म कहा जाता है । इसका अर्थ है—वह कर्माशय—जिससे चालू जीवन प्रारम्भ होता है । इसीसे उसका नाम **"प्रारब्ध"** है । इससे केवल इनना पता लगता है, कि वे प्रारब्ध कर्म निर्धारित हैं, सीमित हैं । इसको दोनों पक्ष स्वीकार करते हैं । वे कर्म कितने काल में भोगे जाते हैं, इसे परमात्मा के सिवाय कोई साधारण जन[1] नहीं जानता, न जान सकता है । इस स्तर पर आकर एक पक्ष का कहना है, उनके भोगे जाने का काल निश्चित है । उसी को जीवनकाल अथवा आयु कहा जाता है, इसलिए आयु का काल निश्चित मानना चाहिए ।

दूसरे पक्ष का कहना है—उन सीमित कर्मों को परस्पर की अपेक्षा से न्यून अथवा अधिक काल में भोगा जा सकता है । यदि जीवन संयम से बिताया जाय, तो वे ही कर्म अधिक समय में भोगे जायेंगे, यदि जीवन संयम का नहीं है, अफरातफरी से उन्हें भोगा जाता है तो वे जल्दी समाप्त हो जायेंगे[2]। इस प्रकार एक जीवनकाल को प्रारम्भ करने वाले सीमित कर्म भी भोगे जाने की विधि के भिन्न होने से उनके भोगकाल में न्यूनाधिकता संभव है । इसी के अनुसार आयुकाल को अनिश्चित माना जाना चाहिए ।

ऐसी स्थिति में योगदर्शन के प्रस्तुत सूत्र के अनुसार—**"आयुकाल"** निश्चित या अनिश्चित है ऐसे किसी एक पक्ष का निश्चय नहीं होता[3]। (४) आयु-मान की न्यूनाधिकता परस्परापेक्षित होने से शास्त्री जी का वह

टिप्पणी—(१) पं० जी का साधारण जन लिखने का तात्पर्य यह प्रतीत होता है कि योगी एवं ऋषि जानते हैं यह मान्यता युक्तियुक्त प्रतीत नहीं होती ।

(२) दूसरा पक्ष अर्थात् श्री ब्रह्मचारी जी पूर्वजन्म से कुछ सीमित कर्मों के उपभोग ही अगले जन्म में होते हैं ऐसा नहीं मानते ।

(३) **"सति मूले·········"** सूत्र का अर्थ करते हुए पं० जी ने कर्माशय का फल जाति आयु और भोग केवल परजन्म में मिलना किया है । किन्तु इसके पूर्व का सूत्रार्थ करते हुए इस जन्म और परजन्म में मिलना किया है अतः (सति मूले) क. क्रिया उनका सूत्रार्थ पूर्वसूत्र की मान्यता के विरुद्ध है । एवं पं० जी का किया अर्थ योगदर्शन में भी विरोध दर्शाता है । जबकि व्यास-भाष्य में किए अर्थ से कोई विरोध नहीं आता । पं० जी ने अपने किए सूत्रार्थ के आधार पर आयुकाल निश्चित है अथवा अनिश्चित ? ऐसे किसी एक पक्ष का निश्चय नहीं होना लिखा है । उनकी यह बात योगदर्शन की मान्यता के विरुद्ध है । क्योंकि वहां कर्माशय का फल इस जन्म और परजन्म में स्वीकार किए हैं जिससे आयु की अनिश्चितता सिद्ध है । श्री पं० जी ने भी अपने लेख के अन्तिम भाग में लिखा है—**"वस्तुतः व्यक्ति के आयुकाल का रहस्य उसकी जीवनचर्या में निहित है"** ऐसा लिखकर उन्होंने आयु की अनिश्चितता को स्वीकार कर लिया है । इस सूत्र के व्यासभाष्यानुसार अर्थ को श्री ब्रह्मचारी जी ने पुस्तक के पृष्ठ ७९, ८० में अच्छी तरह खोलकर समझाया है । —**"संयोजक"**

आम्रेडित यह तर्क निराधार हो जाता है—आयु के न्यूनाधिक होने के लिए कोई निश्चित मापदण्ड होना चाहिए। वस्तुतः व्यक्ति के आयुकाल का रहस्य उसकी जीवनचर्या में निहित है। इसको चाहे जैसा समझ लें, कोई अन्तर नहीं पड़ता, प्राचीन आचार्यों ने आयु को घटने-बढ़ने का जो उल्लेख किया है; उसका आधार यही है।

शास्त्रीय रहस्य एवं उसके सामञ्जस्य की पद्धति को उपेक्षित कर जो इस प्रकार की चर्चा चलाई जाती है, उन्हें काक-दन्त परीक्षा के समान ही समझना चाहिए[1] ॥

आयु, प्राण व कर्म निश्चित नहीं

—"स्वामी सत्यपति"

आयु शब्द की सिद्धि—

आयु शब्द दो प्रकार का है। एक उकारान्त और दूसरा सकारान्त। उणादि कोष में "छन्दसीणः" ।।१।२ सूत्र है। इससे उकारान्त आयु शब्द की व्युत्पत्ति बतलाते हुए महर्षि दयानन्द ने **"एति प्राप्नोति सर्वानिति आयुः जीवन कालः"** अर्थ किया है। **"एतेर्णिच्च"** ।। उणादि २।११६ इस सूत्र से सकारान्त आयु शब्द की व्युत्पत्ति करते हुए **"ईयते प्राप्यते यत्तत् आयुः जीवनं वा"** अर्थ किया है। आयुर्वेद के प्रसिद्ध ग्रन्थ चरकसंहिता में दो स्थानों में आयु शब्द के विषय में लिखा है। १—**शरीरेन्द्रियसत्त्वात्मसंयोगो धारि जीवितम्। नित्यगश्चानुबन्धश्च पर्यायैरायुरुच्यते ॥** (सू० स्था० १।४२) **अर्थात्**—शरीर, इन्द्रिय, मन और आत्मा का संयोग आयु कहा जाता है। धारि, जीवितम्, नित्यगः और अनुबन्ध इस आयु के पर्याय हैं। २—**आयुश्चेतनानुवृत्तिर्जीवितमनुबन्धो धारिचेत्येकोऽर्थः।** (सूत्रस्थान ३०।२२) **अर्थात्**—आयु, चेतनानुवृत्ति, जीवितम्, अनुबन्ध धारि ये समानार्थक हैं। जन्म से लेकर मरणपर्यन्त के काल को आयु कहा गया है। उणादिकोश में इसी दृष्टि से महर्षि दयानन्द ने आयु का अर्थ "जीवनकालः जीवनम्" किया है। यजुर्वेद के "आयुर्मे पाहि" १४।१७ मन्त्रार्थ के प्रसंग में आयु शब्द का अर्थ "जीवनम्" किया है। **"सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगाः"** ।। योगदर्शन २।१३।। **अर्थात्**—अविद्या रूपी मल के विद्यमान रहने पर उस कर्मसमुदाय का विपाक होता है और वह जाति, आयु, भोग के रूप में होता है।

पूर्वापर प्रसङ्ग देखने पर यह स्पष्ट होता है कि इस सूत्र के द्वारा सूत्रकार यह बतलाना चाहता है कि जब तक अविद्या बनी रहती है तब तक कर्म का विपाक (फल) होता है। किन्तु अविद्या के न रहने पर इसका विपाक नहीं होता। मुख्य रूप से अविद्या के रहते हुए कर्म का विपाक बतलाना सूत्रकार को अभीष्ट है। "जात्यायुर्भोगाः" कहकर सूत्रकार ने सामान्य रूप से विपाक (फल) के स्वरूप को बतलाया है। आयु शब्द के द्वारा आयु की इयत्ता बतलाना न सूत्रकार को इष्ट है और न ही उसका कोई प्रसङ्ग है। यदि सूत्रकार को आयु की सीमा निर्धारित करनी होती तो उसका संकेत किसी सीमावाचक शब्द से करते। ठीक इसके विरुद्ध भाष्कार व्यास ने लिखा है कि—

टिप्पणी—(१) शास्त्रों में इस विषयक नाममात्र का भी असामञ्जस्य नहीं है। अतः इस शास्त्रार्थ को काकदन्त परीक्षा के समान कहना अयुक्त है। जिस मान्यता में दो पक्षों में परस्पर-विरोध हो, उसका वादी-प्रतिवादी होकर निर्णय करना चाहिए, ऐसा महर्षि-गौतम एवं दयानन्द आदि का सिद्धान्त है। इस विषय में भी दो विरोधी पक्ष हैं अतः निर्णय करना आवश्यक है।

—"संयोजक"

"दृष्टजन्मवेदनीयस्त्वेकविपाकारम्भी भोगहेतुत्वात् द्विविपाकारम्भी वा आयुर्भोगहेतुत्वात्" । योगदर्शन २।१३ ।। अर्थात्—वर्तमान जन्म में किए कर्म जो इसी जन्म में फल देने वाले होते हैं एक वे हैं जो भोग को देते हैं दूसरे वे हैं जो आयु और भोग दोनों को देते हैं। इससे यह सिद्ध नहीं होता है कि पूर्व जन्म में कृत कर्मानुसार इस जन्म की आयु निश्चित होती हो अपितु आयु की निश्चितता का खण्डन होता है। क्योंकि प्रत्येक कर्म के अनुसार आयु का ह्रास व वृद्धि होती रहती है। लोक में देखा जाता है कि पौष्टिक आहार एवं ब्रह्मचर्य के न होने पर शरीर में क्षीणता और रहने पर वृद्धि होती रहती है।

"सूत्रपठित जाति, आयु तथा भोग" शब्दों पर विचार—जब तक अविद्या बनी रहती है तब तक जन्म होता रहेगा, इसी बात को जाति शब्द बतलाता है। जाति शब्द का अर्थ महर्षि व्यास ने जन्म ही किया है। "ते जन्मायुर्भोगाः" [२।१४ पर व्यासभाष्य] जन्म लेने के पश्चात् कर्म करने अथवा सुख-दुखादि भोगने के लिए काल की अपेक्षा रहती है क्योंकि बिना काल के न कर्म होंगे न ही भोग होगा। इसी बात को स्पष्ट करने के लिए सूत्रकार ने आयु शब्द को पढ़ा है। आयु जन्म से लेकर मरण पर्यन्त रहने वाला काल है। यह पूर्व लिख आये हैं। भोग का अर्थ सुख-दुख है। यहाँ सूत्रकार को सुख-दुख भी वही अभिप्रेत है जो उसने पाप-पुण्य किये हों और उसी के अनुसार न्यायसङ्गत प्राप्त हों। जैसे किसी ने चोरी की हो, राजा ने उसकी चोरी के अनुरूप दण्ड दिया हो। अथवा किसी ने विद्यादानादि पुण्य कार्य किया हो, उसको उसी के अनुरूप पारितोषिक दिया हो वह "भोग" कहा जायेगा। इसके विरुद्ध चोरी किसी ने की हो और भूल से दण्ड मिला हो किसी और को। पुण्य किसी ने किया हो भूल से पारितोषिक मिला हो किसी अन्य को। सूत्रानुसार इस प्रकार के सुख-दुःख को भोग नहीं माना जायेगा, क्योंकि जीव कर्म करने में स्वतन्त्र है अल्पज्ञता, पक्षपात एवं अज्ञानवश कर्ता से भिन्न को भी सुख-दुख दे सकता है।

प्रश्न—क्या जो भी सुख-दुःख जीव को प्राप्त होता है वह सब कर्म का फल नहीं है?

उत्तर—नहीं। कर्मफल वही होता है जो कर्मानुसार होता है। जो न्यूनाधिक होता है वह कर्मफल नहीं हो सकता। कर्मफलप्रदाता ईश्वर है जो कर्मानुसार अन्यूनाधिक देता है, जिसमें भूलचूक का किञ्चित् भी अवकाश नहीं होता। दूसरा कर्मफलदाता मनुष्य भी होता है। जैसा कि माता, पिता, आचार्य, राजा, न्यायाधीशादि। मनुष्य की ओर से जो कर्मफल दिया जाता है वह कहीं कर्मानुसार होता है और कहीं अज्ञान एवं पक्षपात आदि से न्यून अथवा अधिक भी होता है। इतना ही नहीं कहीं बिना कर्म के व्यक्ति को सुख वा दुःख प्राप्त होते हैं। जैसा कि आधुनिक न्यायालयों में कहीं कहीं दोषी छूट जाता है निर्दोष पकड़ा जाता है और दण्डित किया जाता है। निरपराध गौ, भेड़, बकरी आदि को मारकर उनका मांस खाया जाता है। इसी को वेदादि शास्त्रों में पाप एवं अन्याय अथवा अधर्म कहा गया है।

प्रश्न—सूत्र में आयु शब्द क्यों पढ़ा गया है?

उत्तर—आयु शब्द पढ़ा हो तो आपको क्या आपत्ति है? यह आपका प्रश्न ऐसा ही है जैसा कि काशी-शास्त्रार्थ में महर्षि दयानन्द से पौराणिक पण्डितों का यह प्रश्न है कि **"वेदों में प्रतिमा शब्द है कि नहीं?"** प्रतिमा शब्द से क्या पौराणिक यह सिद्ध कर पाये कि **"वेदों में मूर्ति पूजा"**? क्या आप आयु शब्द को दिखाकर यह सिद्ध करना चाहेंगे कि आयु निश्चित होती है? क्या आप यह नहीं जानते कि आयु से आयु की इयत्ता नहीं अभिप्रेत है? देखिये महर्षि ने यजुर्वेद के १४।१७ मन्त्र का **"आयुर्मे पाहि"** अर्थ क्या किया है?—**"आयुर्मे पाहि......"** ।। अर्थ—"**(आयुः)** जीवनम्......"

भावार्थ—स्त्री पुरुषस्य पुरुषः स्त्रियाश्च यथाऽयुरादीनां वृद्धिः स्यात्तथैव नित्यमाचरेत् ।

अर्थ—जिससे पुरुष की आयु आदि की वृद्धि हो वैसा आचरण स्त्री और जिससे स्त्री की आयु की वृद्धि हो वैसा आचरण नित्य करें ।। यहाँ आयु का अर्थ जीवन किया गया है । जीवन का अर्थ जीवनकाल अभिप्रेत है न कि जीवन की इयत्ता । यदि कुछ क्षण के लिए यह मान भी लें कि आयु शब्द से आयु की इयत्ता निर्धारित होती है तो प्रश्न होगा कि जब आयु निर्धारित है तो महर्षि ने उसकी वृद्धि के लिए प्रयत्न करने का विधान क्यों किया ? क्या यह वदतो व्याघात नहीं होगा । क्या आप्तपुरुषों का परस्पर विरुद्ध लेख और वह भी एक ही मन्त्रार्थ में हो सकता है ?

प्रश्न—निश्चित समय पर मरने अथवा आयु को निश्चित मानने का विचार कहाँ से उत्पन्न हुआ ?

उत्तर—इसके कई कारण हैं जिनमें से तीन कारख प्रमुख हैं। (१) अल्पज्ञ लोगों की काल्पनिक मान्यता। (२) विषय का सूक्ष्म होना। (३) वेदादि शास्त्रों को ठीक-ठीक नहीं समझना . इनमें से एक-एक का स्पष्टीकरण निम्न किया जाता है—

(१) अल्पज्ञ लोगों की काल्पनिक मान्यता—एक युवक जो समर्थ है। वृद्ध माता-पिता का एक मात्र आधार है। वह किसी दुर्घटना में मर जाता है। परिवार के लोग रोते हैं, उनको सान्त्वना देने के लिए लोग कहते हैं कि "उसको दो दिन का खेल दिखाकर मरना था सो मर गया, रोने से क्या होगा ? जितने दिन रहना था, जितने दिन का उसका दाना-पानी था उतने दिन तक रहा। अपना भोग पूरा करके चला गया, ये सब ईश्वर की ओर से हैं। हमारे हाथ में कुछ नहीं। वही देता है, वही लेता है" आदि आदि। इन बातों को सुनकर अड़ौसी-पड़ौसी भी हाँ में हां मिलाकर कहते हैं कि बात ठीक है। इन बातों को सुनकर मनुष्य को कुछ सान्त्वना की प्रतीति भी होती है। इसी प्रकार बात फैल जाती है। सब लोग विद्वान् होते नहीं। सभी में सत्यासत्य को विचारने की शक्ति नहीं रहती। अतः यही विचार मन में बैठ जाता है। यहाँ तक मन में घर कर लेता है कि लोग इसको सिद्धान्त मान लेते हैं। ऐसा ही लिखते हैं। पूर्वाग्रहजनित इन विचारों की प्रामाणिकता एवं पुष्टि के लिए वेदादि शास्त्रों के वाक्यों को जोड़-तोड़कर पढ़ते हैं लिखते हैं और प्रचार भी करते हैं।

(२) विषय का सूक्ष्म होना—कर्म एवं कर्मफल का स्वरूप अति सूक्ष्म है। अतः अत्यन्त श्रमसाध्य है। जब मनुष्य कर्म एवं कर्मफल के स्वरूप को ठीक-ठीक नहीं जान सकें तो यह समझने लगे कि **"इस अतिसूक्ष्म एवं व्यर्थ के विषय में क्यों पड़ें ?"** यह भी समझने लगे कि **"जन्म-मरण, हानि-लाभ जो कुछ हो रहा है सब ईश्वर की ओर से है और निश्चित है।"**

(३) वेदादि शास्त्रों को ठीक-ठीक न समझना—वेदादि शास्त्रों के ठीक-ठीक न समझने से इस सूक्ष्म विषय को नहीं जान सके। ऋषि दयानन्द ने लिखा है कि किसी भी जीव को बिना कर्म के ईश्वर फल नहीं देता। ईश्वर के इस नियम को लोगों ने मानव-समाज के साथ जोड़ लिया—इसी के अनुसार चोरी एवं हत्या को ईश्वर की ओर से मान लिया। वे कहते हैं कि **"चोर डाकू आदि द्वारा जो कुछ दुःख आदि प्राप्त हो रहा है यह सब कर्मों का फल है और ईश्वर की ओर से दिया जा रहा है"**। यह किसी कर्म का फल है। इसी प्रकार संसार में होने वाले जीवों के द्वारा किये गये चोरी-जारी, हत्या, दुर्घटना, अन्याय आदि से जनित दुखों को ईश्वर प्रदत्त-फल मान लिया। ऋषि का अभिप्राय यह था कि ईश्वर बिना कर्म के किसी को फल नहीं देता। परन्तु मनुष्य-समाज में तो बिना

कर्म के भी नाना प्रकार के कष्ट दिये जाते हैं। जैसे निरपराध गौ, भेड़, बकरी आदि प्राणियों को मारकर खा लेना आदि आदि। अब आयु के सम्बन्ध में विभिन्न-मत और उनकी समीक्षा देखिये—

१. **प्रथम पक्ष**—परमेश्वर प्रत्येक प्राणी की आयु जन्म के साथ निश्चित कर देता है जिसके अनुसार प्रत्येक प्राणी को जन्म से लेकर पूर्व निश्चय के अनुसार उतने ही वर्ष, मास, दिन, घड़ी, फल, क्षण तक जीवित रहकर मरना पड़ता है जिसको कोई भी अन्यथा नहीं कर सकता। न तो उससे पूर्व मर सकता है न ही उसके पश्चात् जीवित रह सकता है। न उससे पूर्व ही उसको कोई मार सकता है न ही कोई उसके पश्चात् जीवित ही रह सकता है।

समीक्षा—इसकी पुष्टि मे वेदादि शास्त्रों का प्रमाण न होने से यह पक्ष अप्रामाणिक है एवं अव्यावहारिक है। इस पक्ष को मानने से अनेक दोष उपस्थित होंगे जो कि असमाधेय होंगे। कुछ दोष उदाहरणार्थ नीचे उपस्थित किये जाते हैं—

१. **जीव कर्म करने में स्वतन्त्र नहीं रहेगा**—जैसे कोई किसी को मारना चाहेगा अथवा बचाना चाहेगा तो न मार सकेगा न बचा सकेगा। यदि यह कहा जाये कि "मारने के लिए एवं बचाने के लिए प्रयत्न कर सकता है चाहे न मारे चाहे न बचावे" यह वेद एवं शास्त्रविरुद्ध है क्योंकि अन्यायकारियों को दण्ड देकर प्राणों से वियुक्त करने का वेदादि शास्त्रों में आदेश है और अन्यों के प्राणों की रक्षा करने का विधान है।

२. **अनवस्था दोष भी होगा**—जैसा कि किसी ने किसी को प्राणों से वियुक्त किया। तब इस पक्ष के अनुसार चोर के द्वारा धनवान् की मृत्यु लिखी होनी चाहिये। तब प्रश्न होगा कि जैसा इस जन्म में कोई किसी को दुःख नहीं दे सकता। इसका अर्थ यह होगा कि धनी के किसी पूर्व कर्म के अनुसार चोर के द्वारा धनी के कर्म का फल मिल गया। तब प्रश्न होगा कि पूर्वजन्म में धनी ने बिना अपराध के किसी को दण्ड कैसे दिया होगा? क्योंकि सबको अपने कर्म से फल मिलना चाहिए। यदि कहा जाये कि "पूर्व से पूर्वजन्म में किसी ने दुष्कर्म किया होगा जिसका फल पूर्वजन्म में धनी द्वारा फल मिल गया होगा" इस पक्ष में स्वतन्त्रता से कर्म की उत्पत्ति ही नहीं होगी। यह अनवस्था होगी। कर्म-फल व्यवस्था में इस अनवस्था दोष का कोई समाधान नहीं होगा।

३. **वेदादि-शास्त्रों में दण्ड-व्यवस्था है**—वह तब ही सम्भव है कि जब कोई किसी को बिना कर्म के स्वतन्त्रता से दुःख देवे। जब कोई किसी को बिना कर्म के दुःख नहीं दे सकता तो दण्ड-व्यवस्था व्यर्थ होगी। ऊपर एक मन्त्र (यजु० १६।२१) उपस्थित किया गया है। इस प्रकार के मन्त्र वेदों में बहुत हैं।

४. इस पक्ष के अनुसार व्यायाम, प्राणायाम, पौष्टिक आहार, सन्ध्या, यज्ञ, ब्रह्मचर्य आदि का कोई मूल्य नहीं रहेगा।

५. सम्पूर्ण आयुर्वेद इस पक्ष में व्यर्थ होगा। चिकित्सा शास्त्र का कोई अर्थ नहीं रहेगा।

६. पाप-पुण्य की व्यवस्था भी नहीं बन सकती।

७. जो कोई जिस किसी को दुःख अथवा सुख देता है तो वह भी परमात्मा की ओर से उस प्राणी का कर्मफल होगा। तब प्रश्न होगा कि सुख-दुःख देने वाले को क्या पता कि किसको कितना सुख अथवा दुःख देना है। ज्ञान के बिना उचित फल भी नहीं दे सकता है। यदि ज्ञान है कि कितना फल देना है तो प्रश्न उपस्थित होगा कि

वह ज्ञान किसने दिया ? यदि यह कहा जाये कि परमात्मा ने दिया है तो उसका परमात्मा की ओर से और जीवों की ओर से कर्मकर्त्ता को पारितोषिक मिलना चाहिये। यदि यह कहा जाये कि "दुःख देने वाले ने अनाधिकारचेष्टा की इसलिये उसको दण्ड दिया जाना चाहिये" तो आक्षेप होगा कि कर्मानुसार उसने किस आधार पर दण्ड दिया ? यदि कर्मानुसार है तो परमात्मा की ओर से हुआ। यदि कर्मानुसार नहीं तो बिना पाप के दण्ड मिला। इस रूप में कोई किसी का उपकार भी नहीं कर सकता। क्योंकि सुख-दुःख अपने कर्मानुसार होगा अथवा न्यूनाधिक, दोनों पक्षों में पूर्वोक्त दोष होगा।

८. "जीवेम शरद शतम्" आदि प्रार्थनायें निरर्थक होंगीं। यदि यह कहा जाये कि "प्रार्थना अगले जन्म के लिये मानी जायेगी" तो यह "उपस्थितं परित्यज्य अनुपस्थितं याचत इति बाधित न्यायः" के समान हो जायेगा और इसमें वेद का अथवा किसी शास्त्र का प्रमाण नहीं कि आयुवर्धक ब्रह्मचर्य आदि कर्म इस जन्म में किये जायें और आयु अगले जन्म में बढ़े।

९. "कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः"। (यजुर्वेद ४०।२) मनुष्य वेदोक्त कर्म करता हुआ सौ वर्ष जीने की इच्छा करे यह वेद की आज्ञा है। जीने की इच्छा तब ही सम्भव है जबकि जीना सम्भव हो। जन्म के साथ ही यदि आयु निश्चित हो गई हो तो उसके लिये प्रार्थना का विधान व्यर्थ होगा और वेद वदतो व्याघात दोष से दूषित होगा। इससे स्पष्ट है कि—"आयु निश्चित नहीं है"। आयु को निश्चित मानना वेद-विरुद्ध तथा प्रमाण-विरुद्ध है।

द्वितीय पक्ष—प्रत्येक मनुष्य की सौ वर्ष आयु परमेश्वर निश्चित करता है, उसको मनुष्य घटा, बढ़ा सकता है ?

समीक्षा—इस पक्ष में वेद अथवा वेदानुकूल किसी शास्त्र का कोई प्रमाण नहीं है। यदि निश्चित है तो किस आधार पर ? यदि "जीवेम शरदः शतं" को प्रमाण मानते हो तो "भूयश्च शरदः शतात्" से उसका खण्डन भी होगा। यदि सौ वर्ष की आयु निश्चित है तो घटना-बढ़ना कैसे ? यदि घटना-बढ़ना है तो निश्चित कैसे ? यह तो "वदतो व्याघात" होगा। यदि सबकी आयु सौ वर्ष की निश्चित है तो सबके कर्म समान मानने पड़ेंगे। यदि कर्म समान हों तो साधन भी समान होंगे। साधन, खान-पान, आचार-विचार और दूसरों के साथ सब चेष्टायें निश्चित एवं नियन्त्रित माननी पड़ेंगी जिससे सौ वर्ष तक जीवन चलाया जा सके। यदि ऐसा होगा तो जीव पराधीन होगा क्योंकि जीव निश्चित कर्म से भिन्न कुछ भी नहीं कर सकेगा। यह कथन प्रतिज्ञा मात्र होगा। यदि चार नवजात शिशुओं के शरीरों की परीक्षा करके देखा जाये तो पता चलेगा कि सौ वर्ष तक जीवित रहने की शक्ति समान रूप से सबकी सिद्ध नहीं होगी। लोक में ठीक सौ वर्ष तक न एक क्षण न्यून न अधिक जीवित रहने वाले कितने हैं सम्भव है एक भी नहीं होगा तब परमात्मा का सौ वर्ष निश्चित करना किस प्रकार ? जब यह पक्ष ही अव्यावहारिक है तो परमात्मा का सौ वर्ष की आयु को निश्चित करने का क्या प्रयोजन हो सकता है ? यदि सौ वर्ष निश्चित करता है तो आयुर्वेद—"ऊनषोडश वर्षायामप्राप्तः पञ्चविंशतिम्। यद्याधत्ते पुमान् गर्भं कुक्षिस्थः स विपद्यते।। जातो वा न चिरं जीवेद् जीवेद् वा दुर्बलेन्द्रियः। तस्मादत्यन्तबालायां गर्भाधानं न कारयेत्।। अर्थात्—सोलह वर्ष से न्यून अवस्था की स्त्री में २५ वर्ष से कम अवस्था का पुरुष यदि गर्भाधान करता है तो वह गर्भ उदर में ही बिगड़ जाता है और जो उत्पन्न भी हो तो अधिक नहीं जीवे अथवा कदाचित् जीवे तो उसके अत्यन्त दुर्बल शरीर और इन्द्रिय हों। इसलिये अत्यन्त बाला अर्थात् सोलह वर्ष की अवस्था से न्यून अवस्था की स्त्री में कभी गर्भाधान नहीं

करना चाहिये। इस प्रमाण के अनुसार यह स्पष्ट है कि इस अवस्था में जन्म लेने वाला सौ वर्ष तक जीवित नहीं रहेगा, तब परमेश्वर का निश्चित करना कैसे होगा? चाहे गर्भ-धारण करने से पूर्व निश्चित हो चाहे गर्भ-धारण करने के समय, चाहे गर्भ-धारण करने के पश्चात्, अथवा जन्म लेने के पश्चात्, चारों अवस्थाओं में निश्चित करना सम्भव नहीं। क्योंकि उस गर्भ का सामर्थ्य नहीं कि वह सौ वर्ष तक बना रहे। सत्यार्थ-प्रकाश के तृतीय समुल्लास में महर्षि-दयानन्द जी ने लिखा है कि—"जो पुरुष २४ वर्ष तक ब्रह्मचर्य का पालन करता है उसकी ७० वा ८० वर्ष की आयु होती है" इससे सिद्ध होता है कि १०० वर्ष की आयु को निश्चित मानना ऋषि की मान्यता के विरुद्ध है। अतः अग्राह्य है।

तृतीय पक्ष—(प्रश्न) जिस प्राणी के जितने कर्म हों उनके अनुसार परमात्मा जन्म के साथ ही आयु निश्चित करता है। इस कारण प्राणी उस आयु को घटा भी सकता है और बढ़ा भी सकता है। प्रत्येक के कर्म भिन्न-भिन्न है अतः प्रत्येक की आयु भिन्न-भिन्न है। जैसे—किसी के कर्म सौ वर्ष आयु प्राप्त करने योग्य हों तो सौ वर्ष की आयु होगी किसी के २० वर्ष की आयु प्राप्त करने के हों तो उसकी २० वर्ष की आयु होगी, आदि।

समीक्षा—कर्मों के आधार पर आयु को निश्चित मानने में वेदादि-शास्त्रों का कोई प्रमाण नहीं है। यदि निश्चित है तो घटना, बढ़ना कैसे ? घटना, बढ़ना है तो निश्चितता का क्या अर्थ ? निश्चित भी है और घटना, बढ़ना भी ! यह तो "वदतो व्याघात" दोष है। यदि कर्मानुसार आयु निश्चित है तो ईश्वर की ओर से साधन भी निश्चित होंगे। साधन निश्चित होने पर जीव पराधीन होगा। इस प्रकार इस पक्ष में भी दोष हैं।

चतुर्थ पक्ष—(प्रश्न) ईश्वर कर्मों को निश्चित करता है। तदनुसार जब तक वे कर्म नहीं भोगे जायेंगे अर्थात् ईश्वर द्वारा निश्चित कर्मों का फल नहीं भोगा जायेगा तब तक प्राणी मर नहीं सकता और भोगने के पश्चात् जीवित भी नहीं रहेगा।

समीक्षा—भोगने योग्य कर्मों की संख्या ईश्वर पूर्व ही निश्चित करता हो उसको भोगने से पूर्व प्राणी नहीं मर सकता हो और भोगने के पश्चात् जीवित ही नहीं रह सकता हो इस विषय में वेद का अथवा आर्ष-ग्रन्थों का कोई प्रमाण नहीं है। किन्तु इसके विरुद्ध अनेक प्रमाण हैं। उनमें से कुछ शास्त्रार्थ[1] में दिये गये हैं वहीं पढ़ लेवें। यहाँ एक प्रमाण दिया जाता है। "स्तेनानां पतये नमः" ॥ (यजुर्वेद १६।२०) अन्याय से परधन लेने हारे प्राणियों को और उनके नेता को वज्र से मारें। कर्म समाप्त होने पर मर ही जायेगा। तब वेद-विहित दण्ड व्यर्थ होगा। कर्मों को निश्चित करने पर कर्म समाप्ति पर उसको मरवाने का प्रबन्ध ईश्वर को ही करना पड़ेगा। इसमें यह दोष भी आयेगा कि कर्म ईश्वराधीन होने से ईश्वर को ही भोगना पड़ेगा। इसके अनुसार गौओं की हत्या निश्चित होने से उनकी रक्षा के लिये ऋषि-दयानन्द आदि का प्रयत्न व्यर्थ सिद्ध होगा। वेदादि-प्रमाणों के विरुद्ध होने से यह पक्ष अमान्य है।

पञ्चम पक्ष—(प्रश्न) ईश्वर श्वासों की संख्या निश्चित करता है जब प्राणी जन्म लेता है तब ईश्वर श्वासों की संख्या निश्चित करता है। इनको पूर्ण किये बिना कोई भी प्राणी नहीं मर सकता। श्वासों की समाप्ति होने पर जीवित भी नहीं रह सकता, यदि इन श्वासों को सावधानी से व्यय करेगा तो दीर्घकाल तक जीवित रहेगा। असावधानी से व्यय करेगा तो शीघ्र मर जायेगा। यथा किसी ने किसी को १००) सौ रुपये दिये। संयम से व्यय

नोट—(१) इसी विशेषांक में द्रष्टव्य हैं। —"सम्पादक"

करने पर उन रुपयों से १० दस दिन तक काम चला सकता है जबकि असंयम से व्यय करने पर ८ दिन तक में ही समाप्त हो जाते हैं। दिन घटे, बढ़े प्रतीत होते हैं परन्तु रुपये न घटे न बढ़े उतने ही हैं।

समीक्षा—श्वासों को आयु के रूप में वेदादि-शास्त्रों में कहीं भी स्वीकार नहीं किया गया है। इसके विरुद्ध ऋषि ने लिखा है कि "आयुर्जीवनकाल:" यह पूर्व लिख आये हैं। यदि अभ्युपगम सिद्धान्तानुसार श्वासों की संख्या को आयु मान लिया जाये तो ठीक नहीं है। क्योंकि जीव कर्म करने में स्वतन्त्र है। इसलिये वह अज्ञान, स्वार्थ आदि से मनुष्यादि प्राणियों को मार सकता है। इस स्थिति में श्वासों की संख्या का निर्धारण करना अयुक्त है। इस पक्षानुसार परमेश्वर ने किसी को निश्चित संख्या में कुछ श्वास दिये। वह व्यक्ति आत्महत्या करता है। अथवा उसको कोई मार देता है उस समय उसके श्वासों की संख्या पूर्ण नहीं हुई तो ईश्वर की ओर से श्वासों को निश्चित करना व्यर्थ हुआ। इससे पूर्व लिखित पक्ष में उद्भावित दोष भी इस पक्ष में आते हैं। अतः यह पक्ष अयुक्त है।

षष्ठ पक्ष—(प्रश्न) परमेश्वर के ज्ञान में आयु निश्चित है और जीव के ज्ञान में अनिश्चित है।

समीक्षा—यह प्रतिज्ञा अप्रासङ्गिक है। क्योंकि प्रश्न है आयु की निश्चितता तथा अनिश्चितता का और उत्तर है परमेश्वर के ज्ञान में निश्चितता एवं जीव के ज्ञान में अनिश्चितता का! आप सीधा यह क्यों नहीं कहते कि आयु निश्चित है? क्योंकि जब ईश्वर के ज्ञान में निश्चित है तो निश्चित ही हुआ। उसके साथ मनुष्य के ज्ञान की बात क्यों जोड़ते हैं? आप ने मान लिया कि आयु निश्चित है किन्तु वेद और आर्ष-शास्त्रों में आयु की अनिश्चितता को बतलाने वाले बहुत प्रमाण हैं—

१. **ओ३म् तत्त्वायामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदाशास्ते यजमानो हविर्भिः।**
अहेडमानो वरुणेह बोध्युरुशंसमान आयुः प्रमोषीः स्वाहा॥ (यजु० १८। ४६)

२. **अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः।**
चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयुर्विद्यायशोबलम्॥ (मनुस्मृति)

३. **"अन्यथा वीर्य व्यर्थ जाता दोनों की आयु घट जाती है"।** (सत्यार्थ-प्रकाश ४ समु०)

और भी प्रमाणों को देखना चाहें तो शास्त्रार्थ[1] में देखें। इस प्रकार आयु के सम्बन्ध में विद्यमान अनेक पक्षों को उपस्थित करके उनकी समीक्षा की गई है। इससे सुतरां स्पष्ट हो गया है कि—"**आयु अनिश्चित है**"। अब इस पक्ष पर किये जाने वाले कुछ आक्षेपों का समाधान किया जाता है।

आक्षेप—घटना, बढ़ना सापेक्षिक शब्द है। जब तक कोई स्थिर बिन्दु नहीं होगा तब तक घटना और बढ़ना संभव नहीं है। अतः यदि घटती-बढ़ती हो तो बतलाना होगा कि कहाँ से घटती है और कहाँ से बढ़ती है?

समाधान—जन्म से लेकर मरणपर्यन्त जीवनकाल का नाम आयु है। वही काल घटता-बढ़ता है। जैसे कि एक पाँच वर्ष का बालक पानी में डूब रहा है उसकी बचने की कोई सम्भावना नहीं है। किसी दूसरे मनुष्य ने उसको डूबने से बचा लिया है। अब वह बालक अनेक वर्ष तक जीवित रहता है, तो अभी-अभी मरने की अपेक्षा जीवनकाल बढ़ गया है। ऐसी घटना संसार में प्रायः होती रहती हैं। उदाहरणतः देखिये—एक पच्चीस वर्ष का

नोट—(१) इसी विशेषांक में।

स्वस्थ्य मनुष्य है। उसको किसी शत्रु ने मार डाला। यदि यह शत्रु से न मरता अथवा किसी दुर्घटना से न मरता तो यह २५ वर्ष का मनुष्य और भी जीवित रहता इस मृत्यु से इसका जीवन काल न्यून हो गया है। इसी कारण से महर्षि-दयान्द ने गौ के जीवनकाल को बढ़ाने के लिये महान प्रयास किया था। यदि गौ की आयु निश्चित होती तो ऋषि उनको बचाने का प्रयास न करते। स्थिर बिन्दु के बिना भी घटना-बढ़ना देखा जाता है। जैसे देवदत्त ने एक घड़ी बनाई और उसको यज्ञदत्त ने ले लिया। यज्ञदत्त उस घड़ी के चलाने वा रक्षा करने, तोड़ने फोड़ने में स्वतंत्र है। वह उस घड़ी को अभी-अभी तोड़ सकता है और उसे बीस वर्ष भी चला सकता है। इस प्रकार से जीव इस शरीर के मारने, रक्षा करने आदि कार्यों में स्वतंत्र है। ऐसी अवस्था में देवदत्त घड़ी की आयु निश्चित नहीं कर सकता। उस घड़ी को यज्ञदत्त लेकर उसी समय तोड़-फोड़ देता है तो उसकी आयु घट गई जो कि निश्चित नहीं थीं। यदि उस घड़ी में पूर्व की अपेक्षा उत्तम पुर्जे डालकर अधिक समय तक चलाता है, तो आयु बढ़ गई। यह अनिश्चित में से बढ़ी है क्योंकि घड़ी बनाने वाले देवदत्त ने घड़ी की आयु निश्चित नहीं की थी।

आक्षेप—जब आयु निश्चित नहीं है तो कोई भी मनुष्य जब चाहे तभी किसी प्राणी को बिना दोष के भी मार सकता है। यह तो ईश्वर की सृष्टि में अन्याय हो गया।

समाधान—जीव कर्म करने में स्वतंत्र है। जब चाहे तब वह किसी को मार सकता है और किसी की रक्षा कर सकता है। यह अन्याय ईश्वर की आज्ञा से नहीं हुआ किन्तु जीव की इच्छा से हुआ हैं। ऐसे कर्म अज्ञान, अन्याय और स्वार्थ से प्रतिदिन होते रहते हैं। ईश्वर सदा न्याय ही करता है और मनुष्य कभी न्याय अथवा अन्याय भी करता है।

आक्षेप—मरने वाले को बिना कर्म किये दुःखफल क्यों मिला ?

समाधान—यह दुःख कर्म का फल नहीं है किन्तु अन्याय से दुःख दिया गया है। यदि कर्म का फल मान लिया जाये तो मारने वाले को पारितोषिक मिलना चाहिये, क्योंकि उसने कर्मानुसार ईश्वर की आज्ञा का पालन किया है। ईश्वर की आज्ञा का पालन करना धर्म कहाता है। इसको कर्मफल मानने पर इस कर्म का प्रेरक ईश्वर ही माना जायेगा। तब ईश्वर को ही इस कर्म का फल मिलना चाहिये मारने वाले को नहीं। इसलिये आयु को निश्चित मानना समस्त सुख-दुःखों को ईश्वर-प्रदत्त कर्मफल समझना वेदानुकूल ग्रन्थ तथा प्रत्यक्ष प्रमाण के विरुद्ध है।

आक्षेप—यदि आयु निश्चित नहीं होगी तो जिस किसी प्राणी को कोई मार देगा वह पुनर्जन्म लेगा। उस जन्म में भी कोई मार डालेगा। इस प्रकार उस जीव को कर्मफल भोग का अवसर ही नहीं मिलेगा। यह बहुत बड़ी अव्यवस्था होगी।

समाधान—यह केवल संभावना मात्र है कि किसी को कोई जन्म लेते ही मारता रहेगा और कर्मफल-भोग की व्यवस्था नहीं बनेगी। संभावना संभावना ही है प्रमाण नहीं होगी। इसके विरुद्ध गौ आदि उपकारी जीवों की रक्षा का विधान है। असंभव का विधान नहीं होता।

आयु को निश्चित न मानने वालों से कुछ प्रश्न

—फूलचन्द्र शर्मा "निडर", (भिवानी)

जो व्यक्ति आयु को निश्चित नहीं मानते अथवा अकाल मृत्यु मानते हैं वे कृपया निम्नोक्त प्रश्नों का उत्तर दें—

१. **क ईं वेद सुते सचा पिबन्तं कद्वयोदधे ।
अयं यः पुरो विभिनत्त्योजसा मन्दानः शिप्रयन्धसः ।।** (सामवेद, तृतीय खण्ड, १८वां अध्याय मन्त्र, सं० १६६६)

पदार्थ—(कः) प्रजापति परमेश्वर (ईं) इसको (वेद) जानता है। (सुते) उत्पन्न हुए संसार में (सचा) शरीर और इन्द्रियों के साथ (पिबंतं) उपभोग करते हुए (कत्) कितनी (वयः) आयु (दधे) धारण करता है। (अयं) यह (यः) जो (पुरः) शरीर रूपी नगरी (विभिनत्ति) भेदन करता है। मृत्यु कर देता है (ओजसा) अपने ओज से (मन्दानः) आनन्दमय (शिप्री) द्यौ और पृथ्वी का स्वामी (अन्धसः) अन्धकार को भिन्न-भिन्न करने वाला।

भावार्थ—यह जीव इस संसार में शरीर और इन्द्रियों के साथ कितनी आयु तक उपभोग करता है जिसको द्यौ और पृथ्वी का स्वामी आनन्दस्वरूप परमेश्वर ही जानता है और वही अपनी सामर्थ्य से समय पर उसकी मृत्यु करता है। इस मन्त्र का जो अर्थ हमने दिया है। विपक्षी यदि इसे ठीक मानते हैं तो इसमें आयु का निश्चित होना सिद्ध है और इसे गलत मानते हैं तो इसका दूसरा[1] अर्थ करके दिखाएँ।

२—योगदर्शन के **"सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगाः"** इस सूत्र[2] का स्पष्ट यह अभिप्राय है कि पूर्वजन्म के कर्मों से फल रूप में जाति (मनुष्य, पशु, पक्षी आदि) भोग (न्यूनाधिक सुख-दुःख) तथा आयु (कितने समय तक) ये तीन चीजें ईश्वर देता है और ये तीनों ही निश्चित होती हैं। परन्तु हमारे विपक्षी कहते हैं कि इनमें जाति तो बदलती नहीं। परन्तु भोग और आयु घट-बढ़ सकते हैं। हम उनसे कहना चाहते हैं और पूछना चाहते हैं कि जब एक ही सूत्र में और एक ही साथ स्पष्ट रूप से यह कहा गया है कि जीव को कर्मों के फल रूप में ये तीन चीजें मिलती हैं तो फिर विपक्षी इनमें भेद किस आधार पर करते हैं कि केवल एक जाति तो बदलती नहीं, पर भोग और आयु न्यूनाधिक हो सकते हैं? वे स्यात् जाति का भी बदलना मानते, परन्तु जन्म से मृत्यु पर्यन्त जाति का बदलना तो प्रत्यक्ष में असम्भव है, इसलिए उन्होंने भोग और आयु का घटना-बढ़ना मान लिया क्योंकि ये दोनों न्यूनाधिक देखने में आते हैं।

३—विपक्षी कहते हैं कि भोग और आयु जीव अपने स्वयं[3] बनाते हैं। इस पर हम उनसे पूछना चाहते हैं कि—

टिप्पणी।—१. इस मन्त्रार्थ पर पृथक से समीक्षा पढ़िये।

२. इस सूत्र की सप्रसंग व्याख्या पृथक की गयी है, वहाँ देखिये।

३. भोग और आयु जीव स्वयं नहीं बनाता, यह उसके कर्मों का फल है। पूर्वजन्म के कर्मफल के साथ इस वर्त्तमान जन्म के कर्मों के फलों का भी संयोग होने से आयु घट या बढ़ जाती है। —"सम्पादक"

(क) अपना भोग और आयु मनुष्य का जीव ही स्वयं बनाता है या पशु आदि का भी ? (ख) यदि पशु आदि के भोग आयु उतने ही रहते हैं जितने ईश्वर निश्चित करता है। पर मनुष्य के ये दोनों घटते-बढ़ते रहते हैं तो मानना होगा कि इस विषयक (भोग और आयु के देने में) मनुष्य और पशु आदि के बारे में ईश्वर का नियम एक नहीं है, तो हम उनसे पूछेंगे कि क्या एक ही विषय में ईश्वर के दो नियम[1] हो सकते हैं ? (ग) यदि विपक्षी कहें कि मनुष्य और पशु आदि के लिए इस विषय (भोग और आयु) में एक ही नियम है तो हम उनसे पूछेंगे कि—(१) उनके विचार से मनुष्य तो शराबादि पीकर और व्यभिचारादि करके अपनी आयु को घटाता है और प्राणायाम आदि करके तथा ब्रह्मचर्यादि का पालन करके अपनी आयु को बढ़ाता है पर कोई पशु (कुत्ता, गधा आदि) न तो शराब पीता और न ही प्राणायामादि करता है तो उनकी तो आयु उतनी ही रहेगी ना जितनी कि ईश्वर ने उन्हें दी है ? (२) पशु आदि की आयु उतनी ही रहती है जितनी कि ईश्वर निश्चित करता है। इसमें "सत्यार्थ-प्रकाश" में लिखा ऋषि का यह प्रमाण भी है जो कि ऋषि ने लिखा है कि—"मनुष्य-योनि में जब पाप अधिक बढ़ जाते हैं तब ईश्वर जीव को यथायोग्य भोगयोनियों में भेज देता है और यहाँ (भोग-योनि में) जब पाप और पुण्य बराबर रह जाते हैं तब पुनः उस जीव को साधारण मनुष्य-योनि में भेज देता है"। इससे सिद्ध हुआ कि भोग-योनियों का भोग और आयु निश्चित होता है। इस प्रकार मनुष्य और पशु आदि के बारे में उनकी मान्यता के अनुसार ईश्वर के नियमों में भेद मानना पड़ेगा। जो कि सर्वथा असंभव है।

३—मनुष्यों के भोग और आयु बदलते हैं इस पर हमारे आक्षेप भी देखिये—(क) यदि मनुष्य के आयु और भोग बदलते तो "सति मूले······" में सूत्रकार यह कदापि न कहता कि "जात्यायुर्भोगाः" वरन् यह कहता कि "सति मूले तद्विपाको जातिरेव"। क्योंकि जब आयु और भोग बदल सकते हैं तो इन दोनों का लिखना व्यर्थ था। अतः कर्म के विपाक में जाति आयु और भोग तीनों का लिखना ही यह सिद्ध करता है कि ये तीनों ही निश्चित[2] होते हैं। (ख) सूत्रकार जब यह कहता है कि कर्म-फल में जाति, आयु, तथा भोग ये तीन मिलते हैं तो विपक्षी अपनी ओर से यह क्यों और कैसे कह रहा है कि जाति तो निश्चित रहती है ? पर आयु और भोग बदलते रहते हैं ?

४—जो बच्चा पैदा ही अंधा होता है और एक वर्ष या छः मास का होकर मर जाता है उसका यह भोग (अंधा पैदा होना) और आयु (छः मास या एक वर्ष में ही मर जाना) निश्चित थे या नहीं ? विपक्षी का उत्तर—निश्चित[3] थे। इस पर हमारा प्रश्न—आपके इस कथन से मनुष्यों में भी इस बारे में ईश्वर के दो नियम हैं। अर्थात् उनकी (मनुष्यों की) कुछ आयु तक तो आयु और भोग निश्चित होते हैं पर आगे चलकर मनुष्य के कर्मानुसार उनमें घटा-बढ़ी चलती रहती है। तो हमारा फिर प्रश्न है कि—मनुष्य की कितनी (पांच वर्ष, दश वर्ष, १५ वर्ष, आदि) आयु तक आयु निश्चित होती है ? और यहां जितनी आयु आप बताएं उसे हम ठीक न मानें या हम उससे न्यूनाधिक आयु मानें तो आप इसमें क्या आपत्ति करेंगे और क्यों ? यदि आप यहां यह कहें कि किसी का छोटी आयु में मर जाना या उसके शरीर में कोई विकार होना (अंधा, काना, लूला, लंगड़ा पैदा होना) यह उनके (बच्चों के)

टिप्पणी—१. ये दो नियम समझने की भूल है पशु-योनि को विपक्षी भी भोग योनि मानता है। परन्तु मनुष्य शुभाशुभ कर्म करने में स्वतन्त्र है।

२. यह सूत्रार्थ योगदर्शनकार तथा भाष्यकार व्यास मुनि के अभिप्राय से सर्वथा विरुद्ध है। देखिये परिशिष्ट में सूत्रार्थ।

३. यह कथन भी काल्पनिक है। क्योंकि विपक्ष ने ऐसा कहीं नहीं माना। —"सम्पादक"

माता-पिता का दोष होता है कि उन्होंने गर्भाधान ठीक प्रकार से नहीं किया होगा। तो इस पर निम्नलिखित आक्षेप आयेंगे—

(क) अपराध तो करें माता-पिता और फल भोगे बालक ऐसा अन्याय[1] ईश्वर के राज्य में नहीं हो सकता। (ख) यह अपराध (गर्भाधान ठीक न करना) माता-पिता ने जान बूझकर किया होता है या उनसे अनजाने (बिना इच्छा के) होता है? कोई माता-पिता जान-बूझकर ऐसा अपराध नहीं कर सकते जिससे उनका बालक विकलांग हो और शीघ्र मर जाए। और यदि उनके बिना जाने ऐसा अपराध[2] उनसे होता है तो केवल ईश्वर ही एक रह जाता है जो उस गर्भ में से ऐसे बच्चे को भेजता है जिसे विकलांग होना हो। और शीघ्र मरना हो तथा उन माता-पिता को भी उनके कर्मों का फल ऐसा मिले जो उनके विकलांग बालक पैदा हो और वह शीघ्र मरे। (ग) यहां हम विपक्षी से यह भी पूछना चाहेंगे कि विकृत गर्भाधान से विकृत बालक का पैदा होना और उसका शीघ्र मर जाना विपक्षी का यह फार्मूला आगे क्यों नहीं चलता? अर्थात् जितनी भी (२० वर्ष ४० वर्ष ५० वर्ष, ६०, ७०, ८० या १०० वर्ष) जिसकी आयु होती है उस सारी की सारी आयु का धारण अच्छे-बुरे गर्भाधान को ही क्यों न माना जाए?

५—आजकल न कोई वसु ब्रह्मचारी होता, न रुद्र, न आदित्य, फिर भी अनेक ६०, ८०, ८०, ६० वर्ष की आयु तक जीते रहते हैं इसका क्या कारण है? मेरी आयु अब ८० वर्ष की हो गई है और दूसरे लोग मेरा स्वास्थ्य भी अच्छा बताते हैं। कहते हैं कि मैं स्यात् १०० वर्ष तक जी जाऊं। ६० वर्ष तक तो जीने की पक्की ही आशा है। परन्तु मैं स्वयं कहता हूं कि मैं अपने पूर्व जन्म के संस्कारों से आर्य बना और भगवत् कृपा तथा अपने पूर्व कर्मों से अब तक जी रहा हूं और पुराने रिवाज के अनुसार १४ वर्ष की आयु में मेरा विवाह हो गया था, १६वर्ष की आयु में मैं आर्य बना और १८ वर्ष की आयु में मेरी धर्म-पत्नी के पहला लड़का भी हो गया था। अर्थात् न मैं वसु ब्रह्मचारी हूं, न रुद्र, फिर आदित्य का तो प्रश्न ही नहीं। अतः आयु प्रत्येक जीव की उसके कर्मानुसार ईश्वर निश्चित करता है। उसमें क्षण मात्र की भी घटा-बढ़ी नहीं हो सकती। किसकी कितनी आयु निश्चित होती है उसे ईश्वर ही जानता[3] है जीव उसे न जानता है, न जान सकता है।

टिप्पणी—(१) जीव कर्म करने में स्वतन्त्र है, अतः अन्यायादि दोष कर सकता है। यह सर्वजन प्रत्यक्ष प्रत्यक्ष है। का अपलाप करना सर्वथा अनुपयुक्त है।

(२) बिना जाने यदि अपराध हो जाता है तो क्या वह दोषावह नहीं होता? माता-पिता की अनजाने में की गई गलती भी सन्तान को अवश्य भुगतनी पड़ती है। जैसे सुश्रुत में धन्वन्तरी जी कहते हैं—"जातो वा न चिरञ्जीवेज् जीवेद्वा दुर्बलेन्द्रियः।" अनजाने किया दुष्कर्म भी फल अवश्य देता है जैसे—कोई बिना जाने मद्य पी लेता है, अथवा गोहत्या कर देता है क्या वह पापी नहीं होगा? वेद में अनजाने पाप-कर्म के लिए भी प्रायश्चित की प्रार्थना की गयी है। यथा—

यद् विद्वांसो यदविद्वांस एनांसि चकृमा वयम्।
यूयं नस्तस्मान्मुञ्चत विश्वेदेवाः सजोषसः॥ (अथर्व० ६। ११५।१),

(३) बिना प्रमाण के कोई मान्यता प्रतिज्ञामात्र से सिद्ध नहीं होती। **"आयु निश्चित होती है,"** इसमें लेखक ने एक भी शास्त्रीय प्रमाण नहीं दिया है। इसके विपरीत आयु घटने-बढ़ने के पर्याप्त प्रमाण मिलते हैं। और कोई व्यक्ति अग्नि में गिरकर भी बच जाता है, इसका आशय यह नहीं कि अग्नि उसे जलाती नहीं। **"सम्पादक"**

६—अकाल मृत्यु मानने वाले छकड़े का उदाहरण देते हैं कि छकड़ा ऊंचे-नीचे में असावधानी से चलेगा और उसके पहियों में तेल आदि न दिया जाएगा तो वह शीघ्र टूटेगा और यदि उसे सावधानी से चलाया जाएगा, उसके पहियों में तेलादि दिया जायेगा तो वह अधिक समय तक चलेगा, विपक्षियों के इस छकड़े के उदाहरण पर हमें हंसी आती है और हमें यह कहना पड़ता है कि उनका यह उदाहरण[1] मनुष्य की मृत्यु के सम्बन्ध में बालकों जैसा भी नहीं है। क्योंकि छकड़ा अकेला एक जड़ पदार्थ होता है। जबकि मनुष्य शरीर (जड़) और जीव (चेतन) दो का संयोग है। और छकड़े की मृत्यु उसके स्वयं टूटने से कही जाएगी। पर मनुष्य की मृत्यु उसके शरीर से जीव के पृथक् होने पर कही जाती है। ऋषि ने भी लिखा है कि जीव का शरीर के साथ संयोग का नाम जन्म और जीव का शरीर से पृथक् हो जाने का नाम मृत्यु है। देखिये "उदाहरण" एक पहलवान है बड़ा तकड़ा शरीर जिसके शरीर में कोई विकार नहीं। उसकी २५ वर्ष की आयु है। परन्तु उसका जीव निकल गया, वह मर गया। और एक मनुष्य जिसकी आँख फूटी हुई है। एक हाथ नहीं है कुल शरीर हैं, पर उसका जीव नहीं निकला है वह ८० वर्ष की आयु तक जी रहा है मरा नहीं है। यह नित्य देखने में आता है।

७—अकाल मृत्यु मानने वाले कहते हैं कि जो दुर्घटना से मरता है, पानी में डूबकर या सांप आदि के काटने से मरता है ऐसी सब अकाल मृत्यु होती हैं। इस पर हम उनसे पूछना चाहते हैं कि वे कोई सकाल मृत्यु भी मानते हैं या नहीं ? उनका उत्तर हाँ जो घर में बीमार होकर बुखार आदि के कारण मरते हैं, वह सकाल मृत्यु होती है, तो इस पर हम कहेंगे कि वह भी अकाल मृत्यु क्यों नहीं ? आप कहेंगे कि पानी में नहीं डूबता, सांप नहीं काटता या दुर्घटना नहीं होती तो नहीं मरता, तो हम भी बीमारी से मरने वालों के लिए यह कहेंगे कि इसका ठीक इलाज नहीं होने पाया। यदि कलकत्ता बम्बई से बढ़िया डाक्टर आ जाता तो यह अवश्य बच जाता या इसे विलायत ले जाया जाता इलाज के लिए तो अवश्य जी जाता। इससे मरने के कारण में तो भेद कहा जा सकता है कि एक दुर्घटना से मरा दूसरा बीमार पड़कर मरा। पर यह कैसे कहा जा सकता है कि दुर्घटना से मरने वाले की तो अकाल मृत्यु होती है और बीमारी से मरने वाले की सकाल[2] मृत्यु होती है ?

८—मृत्यु को निश्चित मानने पर उसमें घटा-बढ़ी मानने वालों से हम पूछना चाहते हैं कि—(क) आयु और भोग को निश्चित मानकर उसमें घटा-बढ़ी होना माना ही नहीं जा सकता। क्योंकि जिनमें घटा-बढ़ी हो गई तो वे निश्चित कहां रहे ? और यदि निश्चित हैं तो उनमें घटा-बढ़ी कैसे होगी ? इसके अतिरिक्त इस पर एक यह भी आक्षेप आयेगा कि जिस समय ईश्वर किसी की आयु और भोग निश्चित करता है उस समय वह यह जानता है या नहीं कि ये आयु और भोग घट-बढ़ भी सकते हैं ? यदि नहीं जानता तो ये घट-बढ़ भी सकते थे, और यदि उसका घटना-बढ़ना जानकर भी निश्चित करता है तो उसे ईश्वर नहीं कहा जा सकता, क्योंकि ऐसा कोई मूर्ख व्यक्ति ही कर सकता है ईश्वर कदापि नहीं। (ख) निश्चित मृत्यु से पहले मरना मानने वालों से हम पूछना चाहते हैं कि मरने की जो शेष जाति आयु और भोग बच गये वे उसको कब कहाँ और कैसे मिलेंगे ? यदि इस प्रकार का यह उत्तर

टिप्पणी—(१) यह उदाहरण असंगत नहीं है। इसकी संगति शास्त्रार्थ वाले भाग में द्रष्टव्य है।

(२) ऋषि दयानन्द ने ऋ० १। ६१। ६ मन्त्र के भाष्य में स्पष्ट रूप से अकाल मृत्यु को माना है। यह मन्त्र इस पुस्तक में परिशिष्ट में देखा जा सकता है। आप्त पुरुषों तथा परमाप्त वेद-ज्ञानप्रदाता परमेश्वर का वचन प्रामाणिक होता है। परन्तु आपने सकाल मृत्यु ही होती है, इसमें एक भी प्रमाण नहीं दिया। और यदि ईश्वर के ज्ञान में मनुष्य की आयु निश्चित होती तो आयु बढ़ाने वाले वेद के प्रमाण सब मिथ्या हो जाते हैं। "सम्पादक"

दिया जाए कि आगे दूसरे जन्म में वह व्यक्ति इसी जाति में जन्म लेकर उसकी आयु के बचे हुए समय तक उन्हीं पिछले जन्म के बचे भोगों को भोगकर मर जाएगा, तो इस पर हमारा यह आक्षेप होगा कि मान लो वह व्यक्ति जो पिछले जन्म में ४० वर्ष का मर गया और आयु थी उसकी ५० वर्ष की, तो हम कहेंगे कि वह व्यक्ति यदि पिछले जन्म में ही पूरी आयु (५० वर्ष) भोग कर मरता तो उसे वे दुःख-सुख भोगने पड़ते जो ४० और ५० वर्ष के बीच की आयु में भोगे जाते हैं जिनका दूसरे जन्म में (जन्म से १० वर्ष तक की आयु में) भोगा जाना सर्वथा असम्भव है। क्योंकि ४० वर्ष आयु में किसी के घर में आग लग जाने से जो दुःख होता है और करोड़ों रु० के लाभ से जो सुख होता है वैसा या वही दुःख-सुख १ वर्ष के बालक को होना कैसे माना जाएगा? (ग) निश्चित आयु के पश्चात् मरना मानने वालों से हम पूछना चाहेंगे कि किसी ४० वर्ष तक जीने वाले की आयु ५० वर्ष हो गई (इसका कारण चाहे कोई भी हो) तो इन बढ़े हुए १० वर्षों में जो जाति और भोग उसे मिले हुए हैं वे उनके कौन से कर्म के फल हैं। और यह १० वर्ष की अधिक आयु उसे कौन से कर्मों के आधार[१] पर दी जाती है? यदि बिना किसी कर्म के भी जाति आयु और भोग ईश्वर किसी को देता तो ऐसा अंधेर जिसके राज्य में हो वह ईश्वर कहलाने योग्य नहीं है। अतः ऐसा कभी नहीं हो सकता। स० प्र० के ११ वें समुल्लास में ऋषि का लेख देखो कि यदि किसी को बिना कर्म के फल दिये जायें तो ईश्वर में "अकृताभ्यागम" का दोष आयेगा। एक ही मौत पर अनेकों के सुख-दुःख निर्भर होते हैं, इस पर देखिए उदाहरण—एक व्यक्ति है जिसकी अब ५० वर्ष की आयु है उसके माता-पिता की आयु ७० वर्ष की है जो कि आज से आगे ५ वर्ष में पूरे होंगे। उनके इस बेटे की आयु भी ७० वर्ष की है जो कि आज से आगे २० वर्ष में पूरे होंगे। अब यदि बेटे की अकाल मृत्यु न हो तो उसके माता-पिता उसके मरने से १५ वर्ष पूर्व मर जायेंगे। अतः उन्हें बेटे की मौत का दुःख नहीं देखना पड़ेगा। और यदि उनका बेटा अकाल मृत्यु से आज ही मर जाता है तो उसके माता-पिता को बेटे की मौत का दुःख देखना होगा। ऐसी अवस्था में बताया जाए कि उन माँ-बाप को बेटे की मौत का दुःख देखना था या नहीं? यदि नहीं तो वे इस दुःख को क्यों देख रहे हैं और यदि उन्हें यह दुःख देखना ही था तो यह अकाल मृत्यु कैसे हुई? यहाँ ऋषि के लिखे इन शब्दों का ध्यान रहे कि ईश्वर जीव को जैसे और जितने कर्म करता है वैसे और उतने ही फल देता है। यह सिद्धान्त[२] तभी पूरा हो सकता है जब कि जिस आयु में जो फल भोगना हो वह फल उसी आयु में भुगाया जाए, वरना कदापि नहीं। यहाँ पर कुछ और उदाहरण भी हम देना चाहते हैं—(अ) एक विलायती कुत्ता जो नरम-नरम गद्दों पर सोता है। घंटी बजाकर नौकर से चाय मंगाता है और मोटर में बैठकर मेमों के मुंह को चाटता है। दूसरा खरसला कुत्ता जो गलियों में डंडे खाता फिरता है उन दोनों को ये भिन्न-भिन्न प्रकार के भोग अपने आप अनायास मिल गए या उनके भिन्न-भिन्न कर्मों के फल उन्हें ईश्वर ने दिये हैं। यदि आप इन्हें अनायास मिलना कहें तो क्या स्वामी जी के इस उदाहरण को आप नहीं मानते कि एक बालक राजा की रानी के गर्भ में आता है

टिप्पणी—(१) लेखक ने यह प्रश्न निश्चित आयु मानने वालों से किया है, क्या लेखक निश्चित आयु नहीं मानते? क्या वे अपनी प्रतिज्ञा भी भूल गये? और वर्तमान जन्म के कर्मों के फलस्वरूप आयु घटती-बढ़ती है, निराधार नहीं, इसमें वेद का प्रमाण परिशिष्ट में द्रष्टव्य है।

(२) ऋषि के सिद्धांत को ठीक-ठाक न जानने से ही यह भ्रान्ति हुई है। ऋषि के लेख में फल भोगने में जीव ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका में कुछ पराधीन माना है। यह लेख पृथक् से द्रष्टव्य है। और जीव सुकर्मों से सुख को बढ़ा लेता है, और दुष्कर्मों से प्राप्त होने वाले सुखों को भी रोक देता है। यह भी पृथक् सप्रमाण देखिए॥

—**"सम्पादक"**

दूसरा जंगल में किसी भिखारिन के पेट से जन्म लेता है। एक जब दूध पीना चाहता है तो उसे नौकर-चाकर दौड़कर मिसरी मिला दूध पिलाते हैं इत्यादि। और दूसरे को दूध के बदले में थपेड़े मिलते हैं वह आर्त स्वर से रोता है इत्यादि। अब दूसरा उदाहरण देखिये—(आ)—एक कोढ़ी जिसके हाथों और पांवों की अंगुलियाँ गल चुकी हैं। जगह-जगह उसके शरीर से कोढ़ चू रहा है और वह नित्य पटड़ी पर बैठा आने-जाने वालों से दयनीय दशा में पुकार-पुकार कर पैसे मांगता है। क्या उसने अपना यह भोग इसी जन्म में स्वयं ही बनाया है? यदि आप ऐसा मानते हैं कि ऐसा कोढ़ी अपना ऐसा भोग स्वयं इसी जन्म में बनाता है तो हम यह कहने में संकोच नहीं करेंगे कि आपको महामूर्खों या पागलों[1] के हस्पताल में भेजना चाहिए।

६. यदि ब्रह्मचर्य आदि से आयु बढ़ती है तो—(क) ब्रह्मचर्य के व्रत से पहले तक की आयु कौन देता है? और उतनी ही क्यों देता है उससे न्यूनाधिक क्यों नहीं? (ख) कोई ब्रह्मचारी, ब्रह्मचर्य का व्रत लेता है उसी दिन से उसकी आयु उस ब्रह्मचर्य के हिसाब से बढ़ जाती है या ज्यों-ज्यों ब्रह्मचर्य आगे चलता है, उसके हिसाब से बढ़ती रहती है? (ग) यदि ब्रह्मचर्य के हिसाब से ब्रह्मचर्य के साथ-साथ आयु भी बढ़ती चलती है तो यदि कोई अपने ब्रह्मचर्य को बीच में तोड़ दे तो उसकी तब तक की बढ़ी हुई आयु घटेगी या उतनी ही (जो बढ़ चुकी है) रहेगी? (घ) यदि आयु[2] का निर्णय ब्रह्मचर्य की समाप्ति पर होता है तो तब तक जो आयु होती है उसका आधार क्या है? महर्षि दयानन्द से भी अधिक कोई ब्रह्मचारी हुआ क्या? (ङ) तो आदित्य ब्रह्मचर्य के अनुसार उनकी ४०० वर्ष की आयु क्यों न हुई? वे ५६ वर्ष की आयु में कैसे चले गए? (च) अजमेर में अपने निर्वाण के समय महर्षि ने जो यह कहा था कि "ईश्वर तेरी यही इच्छा है। तेरी इच्छा पूर्ण हो" क्या निश्चित आयु का होना सिद्ध नहीं होता? अतः मैं विपक्षियों के इस आक्षेप के उत्तर में कि—यदि आयु निश्चित हो तो जो वेदों में ईश्वर से अधिक आयु तथा बढ़िया भोगों के लिए प्रार्थनाएँ आती हैं वे सब झूठी हो जाएँ हमें उन्हें बताना चाहते हैं कि आशीर्वाद और प्रार्थना सबकी सब होती ही झूठी हैं। ईश्वर कभी किसी की प्रार्थना और आशीर्वाद को नहीं सुनता। वह तो सबको यथा योग्य का फल देता है। हां जो प्रार्थना करता और आशीर्वाद देता है उसकी प्रार्थना[3] करने और आशीर्वाद देने मात्र का फल अवश्य ईश्वर देता है। ईश्वर किसी की प्रार्थना या आशीर्वाद को सुनने लगे तो ईश्वर की कोई भी न्याय-व्यवस्था नहीं चल सकती। ईश्वर के प्रत्येक काम में समय अवश्य निश्चित होता है। सृष्टि और प्रलय चार अरब बत्तीस करोड़ वर्ष ही रहेगी?

टिप्पणी—१. लेखक की यह शिष्ट भाषा नहीं है। सिद्धांत विमर्श में ऐसे शब्दों का प्रयोग नहीं करना चाहिए। और विपक्ष की मान्यता को भी समझना चाहिए। विपक्ष का पक्ष यह है कि "पूर्वजन्म कृत कर्मों के फल के साथ-साथ वर्तमान जन्म के कर्मों का भी फल मनुष्य प्राप्त करता है"।

२. लेखक ऋषि दयानन्द के लेख को प्रमाण रूप में भी उद्धृत कर रहे हैं और उन्हीं के दूसरे लेखों को स्वीकार नहीं करते, यह उचित नहीं। किस जीव को किस समय किस कर्म का फल मिल रहा है? यह कर्म-मीमांसा करना सरल नहीं है। इसीलिए व्यास मुनि ने (२। १३) में इसे विचित्र तथा दुर्बोध्य लिखा है। पुनरपि शास्त्रीय प्रमाणों तथा आप्त वचनों से लेखक का पक्ष सिद्ध नहीं होता।

३. ईश्वर की प्रार्थनादि का क्या फल होता है? यह सत्यार्थ-प्रकाश में द्रष्टव्य है। निरर्थक प्रार्थनादि का तो फल नहीं मिलता, परन्तु सच्ची का मिलता है। अपार उत्साह, शक्ति का मिलना, परन्तु अभिमान का नाश, बुद्धि-वृद्धि, ज्ञानवृद्धि आदि ईश्वर-प्रार्थना के फल हैं। अतः प्रार्थनाएँ झूठी होती हैं, यह कथन ठीक नहीं।

"सम्पादक"

१ दिन भी न्यूनाधिक नहीं। चांद सूरज और पृथ्वी तथा आकाश में घूमने वाले अनेक खगोलों का नियमानुसार और समयानुसार घूमना। वर्षों में मासों का घटना बढ़ना तथा मासों में तिथियों का घटना-बढ़ना इत्यादि सब समयानुसार ही होता है। उसके किसी भी काम में क्षण भर के समय की भी घटा-बढ़ी नहीं हो सकती। फिर आयु जैसे महा समय को ईश्वर निश्चित न करें या उसके निश्चित किए में घटा-बढ़ी हो सके यह कहना ही मूर्खता का काम है। क्या ऐसा कभी हो सकता है कि जीव को ईश्वर केवल योनि मात्र दे दे और आयु और भोग[१] उसे न दे। यदि ऐसा हो तो इसका मतलब यह होगा कि कोई कभी तक जीये और उस समय में वह कैसे ही सुख-दुःख भोगे। यह एक पागलपने की बात है और इससे आर्यसमाज का यह सिद्धान्त भी गिरता है कि "जीव कर्म करने में स्वतन्त्र है और फल भोगने में परतन्त्र है"। क्योंकि आयु भी जीव के कर्मों का एक फल है अतः उसे (आयु को) ईश्वर देता है और "वह (आयु) निश्चित होती है"।

—मानव की आयु विषयक सत्यविचार—

—**"राजवीर शास्त्री"**

मानव की आयु को निश्चित मानने वाले इस बात का स्पष्ट रूप से विरोध करते हैं कि इस जन्म के कर्मों का फल इस जन्म में भी मिलता है। परन्तु उनकी यह मान्यता वेद-विरुद्ध, शास्त्र-विरुद्ध तथा प्रत्यक्ष-विरुद्ध भी है। इसमें वेदादि-शास्त्रों के प्रमाण देखिए—

(१) असुर्या नाम ते लोकाऽ अन्धेन तमसावृताः।
ताँस्ते प्रेत्यापि गच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः॥ (यजु० ४०। ३)

अर्थ—जो (**लोकाः**) लोग (**अन्धेन**) अन्धकाररूप (**तमसा**) अज्ञान के आवरण से (**आवृता**) सब ओर से ढके हुए (**ये, के, च**) और जो कोई (**आत्महनाः**) आत्मा के विरुद्ध आचरण करनेहारे (**जनाः**) मनुष्य हैं (**ते**) वे (**असुर्याः**) अपने प्राण-पोषण में तत्पर, अविद्या आदि दोषों से युक्त लोगों एवं सम्बन्धियों के सदृश पापकर्म करने वाले (**नाम**) प्रसिद्ध है (**ते**) वे (**प्रेत्य**) मरने के पीछे (**अपि**) और जीते हुए भी (**तान्**) उन दुःख अज्ञान-रूप अन्धकार से युक्त भोगों को (**गच्छन्ति**) प्राप्त होते हैं। (महर्षि-दयानन्दभाष्य)

इस मन्त्र में "**प्रेत्य**" तथा "**अपि**" पद ध्यान देने योग्य हैं जिससे स्पष्ट है कि वर्तमान जन्म के पाप-कर्मों का फल इस जन्म में भी प्राप्त होता है। इस मन्त्र के भावार्थ में ऋषि-दयानन्द जी लिखते है— "**ये च**·········

टिप्पणी—(१) लेखक को विपक्ष के पक्ष को पहले समझने का प्रयास करना चाहिए। पूर्वजन्म के कर्मों का फल (आयु व भोग) इस जन्म में नहीं मिलता, यदि यह मान्यता उनकी हो तो लेखक का आक्षेप उचित था। परन्तु पूर्वजन्म के कर्मों के फल साथ-साथ इस जन्म के कर्मफल भी जुड़ जाते हैं, और वे भी सब नहीं, यह विपक्ष की मान्यता है, इस पर लेखक का आक्षेप नहीं बन पाता। और आयुवृद्धि तथा भोगवृद्धि का भी समय है, असीमित नहीं।

—"**सम्पादक**"

आर्याः सौभाग्यवन्तोऽखिलजगत् पवित्रयन्त इहाऽमुत्राऽतुलं सुखमश्नुवते" और जो दुष्ट मनुष्यों से भिन्न आर्य-पुरुष हैं, वे सौभाग्यशाली जन इस जगत् को पवित्र करते हुए इस लोक तथा परलोक में अनुपम सुख को प्राप्त करते हैं ॥

(२) कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छत ँ समाः ॥ (यजु० ४० । २)

इस मन्त्र की व्याख्या यथा भावार्थ दोनों ही द्रष्टव्य हैं। ऋषिवर लिखते हैं—मनुष्य (इह) इस संसार में (कर्माणि) धर्मयुक्त, वेदोक्त, निष्काम कर्मों को (कुर्वन्नेव) करता हुआ ही (शतम्) सौ (समाः) वर्ष (जिजीविषेत) जीने की इच्छा करे ॥

भावार्थ—"मनुष्या आलस्यं विहाय.........शुभानि कर्माणि कुर्वन्तोऽशुभानि त्यजन्तो ब्रह्मचर्येण विद्यासुशिक्षे प्राप्योपस्थेन्द्रियनिग्रहेण वीर्यमुन्नीयाऽल्पमृत्युं घ्नन्तु, युक्ताहारविहारेण च शतवार्षिकमायुः प्राप्नुवन्तु। यथा यथा मनुष्याः सुकर्मसु चेष्टन्ते, तथा तथेव पापकर्मतो बुद्धिनिवर्त्तते विद्याऽऽयुः सुशीलता च वर्धंते ॥ अर्थात् मनुष्य लोभ और आलस्य को छोड़कर......शुभकर्मों को करते हुए और अशुभ कर्मों को छोड़ते हुए, ब्रह्मचर्य के द्वारा विद्या और उत्तम शिक्षा को प्राप्त करके उपस्थ-इन्द्रिय के संयम से वीर्य को बढ़ाकर "अल्पआयु में मृत्यु को हटावें" और युक्ताहार-विहार से सौ वर्ष की आयु को प्राप्त करें। जैसे-जैसे मनुष्य श्रेष्ठकर्मों की ओर बढ़ते हैं, वैसे-वैसे पापकर्मों से उनकी बुद्धि हटने लगती है। जिसका फल यह होता है कि—"बुद्धि, आयु और सुशीलता आदि गुणों की वृद्धि होती है।" यहां महर्षि ने ब्रह्मचर्य-पालन, युक्ताहार-विहार तथा शुभकर्मों से आयु की वृद्धि मानी है। और अल्पायु में मृत्यु से बचने का उपाय बताया है।

(३) त्र्यायुषं जमदग्नेः कश्यपस्य त्र्यायुषम्। यद्देवेषु त्र्यायुषं तन्नोऽअस्तु त्र्यायुषम् ॥ (यजु० ३ । ६२)

इस मन्त्र का देवता रुद्र=ईश्वर है। इसमें ईश्वर से प्रार्थना की गई है—"हे रुद्र—जगदीश्वर! आपकी कृपा से (यत्) जैसी और जितनी (देवेषु) विद्वानों में (त्र्यायुषम् बाल्य, यौवन, वार्धक्य, ये सुख देने वाली अवस्थायें हैं (जमदग्ने) जगत् के द्रष्टा एवं ज्ञाता (त्र्यायुषम्) ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, इन तीन गुणों से युक्त सुखप्रद आयु (कश्यपश्य) आप आदित्य ईश्वर की व्यवस्था से प्राप्त (त्र्यायुषम्) विद्या, शिक्षा, और परोपकार इन तीन गुणों से युक्त जो आयु है (तत्) वैसी और उतनी ही (त्र्यायुषम्) पूर्वोक्त तीनों गुणों वाली आयु (नः) हमें प्राप्त हो" ॥ (महर्षि दयानन्दभाष्यम्)

अर्थात् हे जगदीश्वर! आपके अनुग्रह से हमारे प्राण आदि अन्तःकरण और आँखादि सब इन्द्रियों की तीन सौ वर्ष तक उमर बनी रहे (यद्देवेषु) सौ जैसी विद्वानों के बीच में विद्यादि शुभगुण और आनन्दयुक्त उमर होती है (तन्नो अस्तु) वैसी ही हम लोगों की भी हो तथा (त्र्यायुषं जमदग्ने०) इत्यादि उपदेश से यह भी माना जाता है कि मनुष्य ब्रह्मचर्यादि उत्तम-नियमों से त्रिगुण, चतुर्गुण आयु कर सकता है अर्थात् "चार सौ वर्ष तक भी सुखपूर्वक जी सकता है"। (ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका वेद-संज्ञाविचार) इस मन्त्र में श्रेष्ठकर्मों से आयु-वृद्धि करने का स्पष्ट उपदेश है। जिससे सिद्ध होता है कि वर्तमान जन्म के कर्मों का फल भी इसी जन्म में मिलता है।

(४) शुद्ध अन्न जल के सेवन से आयु बढ़ती है—

दीर्घामनु प्रसितिमायुषे धां देवो वः सविता० ॥ (यजु० १ । २०) इस मन्त्र भाग की व्याख्या में महर्षि लिखते हैं—"जो यह यज्ञ से शुद्ध किया हुआ (धान्यम्) पुष्टिकारक रोग-नाशक एवं स्वादिष्टतम होने से सुखकारक

अन्न है, और जो यज्ञ से शुद्ध किया हुआ (पयः) शुद्ध अन्न और जल है, वह···—(दीर्घम्) दीर्घ (प्रसितिम्) दृढ़ (आयुषे) पूर्ण आयु की वृद्धि से सुखभोग के लिए······धारण करो।

(५) संयम करने से आयु बढ़ती है—

"शतं हिमाः सूर्यस्यावृतमन्वावर्ते ॥" (यजु० २। २७) इस मन्त्र की व्याख्या में महर्षि ने शतपथ का प्रमाण दिया है—"भूयांसि शताद् वर्षेभ्यः पुरुषो जीविति" (श० १। ७। ४। २६) देकर लिखा है—सौ वर्ष तक जीव और जितेन्द्रियता से सौ वर्ष से अधिक भी सुखपूर्वक जीवन का उपभोग करें।

(६) "आयुर्दा ऽ अग्ने ऽ स्यायुर्मे देहि ॥ (यजु० ३। १७) इस मन्त्र की व्याख्या करते हुए महर्षि **(आर्याभिविनय २।३३ में)** लिखते हैं—"हे सर्वरक्षकेश्वराग्ने ! तू हमारे शरीर का रक्षक है, सो शरीर को कृपा से पालन कर। हे महावैद्य ! आप आयु (उमर) को बढ़ाने वाले हो, मुझको सुखरूप उत्तमायु दीजिए।

(७) आयु-वृद्धि के वर्तमान जन्म के कारण—

"मा म ऽ आयुः प्रमोषीः" (यजु० ४। २३)

भावार्थ—सब मनुष्य शुद्धकर्म और बुद्धि से वाग्विद्या और विद्युद् विद्या को ग्रहण करके आयु को बढ़ाकर······सदा सुखी रहें ॥

(८) **"वर्चोदा वर्चषे पवस्वायुषे मे ॥"** (यजु० ७। २८) इस मन्त्र में कहा है—हे विद्वान पुरुष ! तू दीर्घ-आयु और उसके लिए रोगापहारी औषध का स्वयं प्राप्त कर।

(९) **"मा न आयु प्रमोषीः"** (ऋ० १। २४। ११)

भावार्थ—सर्वदा ईश्वर की आज्ञा-पालन और उसके रचे हुए जो सूर्यादि पदार्थ हैं, उनके गुणों को जानकर उनसे उपकार लेके अपनी उमर निरन्तर बढ़ानी चाहिए।

(१०) **"मा नो मध्य रीरिषतायुर्गन्तोः"** ॥ (ऋ० १। ८९। ९) इस मन्त्र में कहा है—विद्वान् पुरुष शुभाचरण से आयु को बीच में ही नष्ट न होने देवें। और शुभकर्मों से आयु को बढ़ावें।

(११) **"देवा न आयु प्रतिरन्तु जीवसे"** ॥ (ऋ० १। ८९। २) विद्वान् लोग ब्रह्मचर्यादि की सुशिक्षा से हमारी आयु को बढ़ावें।

(१२) **मा नस्तोके तनये मा आयुषि** ॥ (यजु० १६। १६)

भावार्थ—बाल्यावस्था में विवाह करके व्यभिचार से आयु की हिंसा न करें।

(१३) **"भूयश्च शरदः शतात्"** ॥ (यजु० ३६। २४) उसी परमेश्वर की आज्ञापालन और कृपा से सौ वर्षों के उपरान्त भी देखें, जीवें, सुनें, सुनावें और स्वतन्त्र रहें। (पञ्चमहायज्ञ०)

(१४) "ज्योक् ते संदृशि जीव्यासम्" ॥ (यजु० ३६ । १९)

भावार्थ—मनुष्य ईश्वर की आज्ञा का पालन और युक्त आहार-विहार से सौ वर्ष पर्यन्त जीवें ॥

(१५) "तन्म ऽ आ बध्नामि शतशारदायायुष्माञ्जरदष्टिर्यथासम् ॥ (यजु० ३४ । ५२)

भावार्थ—जो दीर्घब्रह्मचर्यपूर्वक विद्वानों से विद्या और सुशिक्षा को ग्रहण करके तदनुकूल वर्त्ताव करते हैं, वे अल्पायु कभी नहीं होते ।

(१६) **ब्रह्मचर्य के पालन से आयु बढ़ती है—**

"यो बिभर्ति दाक्षायणं हिरण्यं स देवेषु कृणुते । दीर्घमायुः स मनुष्येषु कृणुते दीर्घमायुः"
(यजु० ३४ । ५१)

अर्थ—जो (हि) निश्चय से (एतत्) उस (दाक्षायणम्) दक्ष—चतुरंजन से प्राप्त करने योग (हिरण्यम्) ज्योतिर्मय ब्रह्मचर्य को (बिभर्त्ति) धारण करता है (सः) वह (देवेषु) विद्वानों में (दीर्घम्) लम्बी (आयुः) आयु को (कृणुते) प्राप्त करता है (सः) वह (मनुष्येषु) मननशील मनुष्यो में (दीर्घम्) लम्बी (आयुः) आयु को (कृणुते) प्राप्त करता है ॥ (महर्षिकृतभाष्यम्)

(१७) **अकालमृत्यु-विषयक मन्त्र तथा ऋषि-दयानन्द की व्याख्या—**

"त्वं च सोम नो वशो जीवातुं न मरामहे । प्रियस्तोत्रो वनस्पतिः ॥ (ऋ० १ । ९१ । ६)

हे (सोम) सत्कर्मसु प्रेरकप्रेरको वा यतः (त्वम्) अयम् (च) समुच्चये (नः) अस्माकम् (जीवातुम्) जीवनम् (वशः) वशित्वगुणप्रापकः (प्रियस्तोत्रः) प्रियं प्रति प्रियकारि स्तोत्रं गुणस्तवनं यस्य सः (वनस्पतिः) सम्भक्तस्य पदार्थसमूहस्य जङ्गलस्य वा पालकः श्रेष्ठतमो वा भवसि भवति वा, तदेतद् द्वयं विज्ञाय वयं सद्यः (न) निषेधार्थे (मरामहे) "अकालमृत्युं क्षणभंगदेहे प्राप्नुयाम्" ॥

भाषार्थ—हे (साम्) श्रेष्ठ कामों में प्रेरणा देने वाले परमेश्वर अथवा जो श्रेष्ठ कामों में प्रेरणा देता है, (त्वम्) सो आप और यह (नः) हम लोगों के (जीवातुम्) जीवन को (वशः) वश होने के गुणों को प्राप्त कराने वाले (प्रियस्तोत्र) जिसके गुणों की स्तुति प्रिय के प्रति प्रिय करने वाली है, वह (वनस्पतिः) सेवनीय पदार्थों का पालक अथवा यह सोम जङ्गली ओषधियों में श्रेष्ठतम है, इन दोनों को जानकर हम लोग शीघ्र (न मरामहे) "क्षणभंगुर देह में अकालमृत्यु न प्राप्त करें" ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालंकार है। जो मनुष्य ईश्वर की आज्ञापालन करनेहारे विद्वानों और औषधियों का सेवन करते हैं, वे पूर्ण आयु को प्राप्त करते हैं ॥

टिप्पणी—(१) महर्षि ने स० प्र० में द्वादश समुल्लास में जैनियों के मत का खण्डन करते हुए लिखा है "जो भूखा प्यासा मरना ही चरित्र है तो बहुत से मनुष्य अकाल वा जिनको अन्नादि नहीं मिलते, भूखे मरते हैं, वे शुद्ध होकर" अतः अन्नादि के न मिलने पर भी मनुष्यों की मृत्यु होती है ॥ "सम्पादक"

(१८) अग्न ऽआयूᳬषि पवस ऽ आ सुवोर्जमिषं च नः । आरे बाधस्व दुच्छुनाम् ॥ (यजु० ३५। १६)

इस मन्त्र के भावार्थ में महर्षि लिखते हैं—"जो मनुष्य दुष्ट आचरण और दुष्टों के संग को छोड़कर परमेश्वर और आप्त विद्वानों की सेवा करते हैं, वे धन-धान्य से युक्त होकर दीर्घायु होते हैं" ॥

(१९) उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते देवान् यज्ञेन वर्धय ।
आयुः प्राणं प्रजां पशून् कीर्त्ति यजमानं च वर्धय ॥ (अथर्व० १९।६३।१)

इस मन्त्र में वर्त्तमान जन्म की आयु, पशु, प्रजा, कीर्ति और यजमान को बढ़ाने का स्पष्ट निर्देश है।

(२०) स्तुता मया वरदा वेदमाता प्रचोदयन्तां पावमानी द्विजानाम् ।
आयुः प्राणं प्रजां पशुं कीर्त्तिं द्रविणं ब्रह्मवर्चसम् । मह्यं दत्त्वा व्रजत ब्रह्मलोकम् ॥
(अथर्व० १९।७१।१)

इस मन्त्र का अर्थ करते हुए श्री पं० क्षेमकरणदास जी त्रिवेदी लिखते हैं—पदार्थ—(वरदा) वर देने वाली (वेदमाता) ज्ञान की माता वेदवाणी (मया) मुझसे (स्तुता) स्तुति की गयी है (पावमानीम्) शुद्ध करने वाले (परमात्मा) को बताने वाली [वेदवाणी] को (द्विजानाम्) द्विजों [ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों] में (प्रचोदयन्ताम्) आगे बढ़ावें [हे विद्वानों] (आयुः) जीवन (प्राणम्) प्राण [आत्मबल] (प्रजाम्) प्रजा (पशुम्) पशु (कीर्त्तिम्) कीर्त्ति (द्रविणम्) धन और (ब्रह्मवर्चसम्) वेदाभ्यास का तेज (मह्यम्) मुझको (दत्त्वा) देकर [हमें] (ब्रह्मलोकम्) ब्रह्मलोक [वेदज्ञों के समाज] में (व्रजत) पहुंचाओ ॥

इस मन्त्र के अर्थ में वर्त्तमान जन्म की आयु के लिये प्रार्थना विद्वानों से की गई है और "व्रजत" क्रिया को ण्यन्त मानकर ही अर्थ किया गया है। इस मन्त्र पर "कालाकाल-शास्त्रार्थ" में संवाद होता रहा है, अतः मन्त्रार्थ का मनन करके सत्यासत्य का निर्णय करना चाहिये।

मन्त्रार्थों पर विचार—

क्या परमात्मा के द्वारा आयु निश्चित की जाती है ?

"क ईं वेद सुते सचा पिबन्तं कद्वयोदधे । अयं यः पुरो विभिनत्त्योजसा मन्दानः शिप्र्यन्धसः" ॥ ऋग्वेद के (मण्डल ८ सू० ३३ मं० ७ में) इस मन्त्र का अर्थ इस प्रकार किया है—(अयं) यह (यः) जो (शिप्री) सुमुख सेनाध्यक्ष (अन्धसः) अन्न आदि भोग्य पदार्थों से (सुते) उत्पन्न रस से (मन्दानः) तृप्त हो उत्पन्न बल से बली बनकर (ओजसा) प्रराक्रम के द्वारा (पुरः) शत्रुओं व शत्रुभूत दुर्भावनाओं की दुर्ग-रचनाओं को (वि-भिनत्ति) नष्ट-भ्रष्ट कर डालता है (ईं) उसको कौन जानता है (सचा) साथ ही (पिबन्तं) पिया हुआ (वयः) प्राण (कत्) कितना है, यह भी कौन जानता है ? (श्री पं० आर्यमुनि तथा श्री पं० शिवशंकर कृत भाष्य से)

अथर्ववेद—(का० २० सू० ५७ मं० ११) में मन्त्र का अर्थ इस प्रकार है—(कः) कौन (सचा) नित्य मेल के साथ (सुते) तत्त्व-रस (पिबन्तम्) पीते हुए (ईम्) प्राप्तियोग्य [सेनापति] को (वेद) जानता है ? (कत्)

कितना (वयः) जीवन-सामर्थ्य [पराक्रम] (दधे) वह रखता है ? (अयं) यह (यः) जो (शिप्री) दृढ़ जबड़े वाला (अन्धसः) अन्न का (मन्दानः) आनन्द देने वाला [वीर] (ओजसा) बल से (पुरः) दुर्गों को (विभिनत्ति) तोड़ देता है ।
(श्री क्षेमकरणदास त्रिवेदीकृत भाष्य से)

सामवेद—(मन्त्रसंख्या १६६६, उत्तरार्चिक खं० ३ अ० १८) में मन्त्रार्थ इस प्रकार किया है—(कः) प्रजापति परमेश्वर (ईग्) इसको (वेद) जानता है (सुते) उत्पन्न संसार में (सचा) शरीर और इन्द्रियों के साथ (पिबन्तम्) उपभोग करते हुए (कत्) कितनी (वयः) आयु (दधे) धारण करता है (अयं) यह (यः) जो (पुरः) नगरी या समूह को (विभिनत्ति) भेदन करता है (ओजसा) अपने ओज से (मन्दानः) सुखस्वरूप (शिप्री) द्यौ और पृथिवी-लोक का स्वामी (अन्धसः) अन्धकार की । (श्री आचार्य वैद्यनाथ कृत भाष्य से)

नोट—सामवेद के ही (पूर्वार्चिक मण्डल सं० २६७, अ० ३ मं० ५) मन्त्र का अर्थ श्री वैद्यनाथ जी शास्त्री ने पूर्ववत् ही किया है ।

समीक्षा—"कालाकालमृत्यु" शास्त्रार्थ में निश्चित आयु के पक्ष को मानने वाले एक भी वैदिक प्रमाण नहीं दे सके । और अब दूसरे लेखक प्रमाण देने लगे हैं, वे भी ऋषि दयानन्द कृत वेद-भाष्य के प्रमाण न देकर अनृषिकृत वेदभाष्यों का सहारा ढूंढ़ते फिरते हैं । श्री पं० फूलचन्द्र जी शर्मा ने भी उपर्युक्त एक ऐसा ही वेद-मन्त्र रूप प्रमाण में प्रस्तुत किया है । उनसे हमारा विनम्र निवेदन है कि वाद के नियम के अनुसार प्रमाण तथा युक्ति से स्वपक्ष का मण्डन तथा परपक्ष के प्रमाणों का खण्डन भी करना चाहिए । परन्तु उन्होंने किसी भी विपक्ष के प्रमाण पर विचार नहीं किया है । जबकि (ऋ० १।६१।६) मन्त्र के भाष्य में ऋषि दयानन्द ने "अकालमृत्यु" को स्पष्ट स्वीकार किया है और (यजु० ४०।३) मन्त्र-भाष्य में वर्त्तमान जन्म के कर्मों का फल वर्तमान जन्म में भी मिलना माना है जो ऋषि के लेखों को प्रमाण मानते हैं और उन्हें आप्त पुरुष मानते हैं, उन्हें ऋषि के भाष्य पर भी अवश्य विचार करना चाहिये । लेखक ने जो यह मन्त्र प्रस्तुत किया है उस पर ऋषिकृत भाष्य नहीं मिलता, जो यथार्थ निर्णय करा सके । और विद्वानों के भाष्य हमने ऊपर उद्धृत किये हैं । इन भाष्यों में तीन विद्वानों ने समस्त मन्त्र का अर्थ सेनापति-परक किया है, तथा एक विद्वान् के अर्थ को लेखक ने स्वपक्ष में अपनाया है । इस मन्त्रार्थ में हमें कतिपय दोष दिखायी देते हैं । जैसे—मन्त्र का देवता "इन्द्र" है । यद्यपि इन्द्र के जीवात्मा, परमात्मा, सूर्य, सेनापति आदि अनेक अर्थ होते हैं । परन्तु प्रसङ्ग के अन्तर्गत होकर एक ही अर्थ का प्रतिपादन हो सकता है । क्योंकि देवता मन्त्र का प्रतिपाद्य विषय होता है, अतः "इन्द्र" का जो भी अर्थ समस्त मन्त्रार्थ से संगत हो, वही करना चाहिये । श्री पं० शिवशंकर आदि विद्वानों ने समस्त मन्त्र का अर्थ सेनापति परक करके इस नियम का पालन किया है । परन्तु श्री आचार्य वैद्यनाथ जी शास्त्री के मन्त्रार्थ में यह संगति नहीं है । मन्त्र का पूर्वार्द्ध यदि जीवात्मा-परक है तो उत्तरार्द्ध परमात्मा-परक किया है । और उत्तरार्द्ध भाग में "विभिनत्ति" एक ही क्रिया है, इसका कर्त्ता परमात्मा माना है और "वयो दधे" का कर्त्ता जीवात्मा, यह वेदभाष्य की पद्धति के विपरीत होने से ठीक नहीं । और लेखक द्वारा उद्धृत मन्त्रार्थ में "वयो दधे"=कितनी आयु धारण करता है ? आया है, इस पर विचार करने से भी लेखक का पक्ष सिद्ध नहीं होता । क्योंकि जीव जो कर्म करता है, और तदनुसार जो आयु तथा भोग प्राप्त करता है, वह सब ईश्वर जानता ही है । परन्तु पहले से नहीं । देखिये इसमें ऋषि का प्रमाण "जीवों के कर्म की अपेक्षा से त्रिकालज्ञता ईश्वर में है, स्वतः नहीं । जैसे स्वतन्त्रता से जीव करता है, वैसे ही सर्वज्ञता से ईश्वर जानता है ।" (सत्यार्थ प्रकाश सप्तम समुल्लास)

इससे स्पष्ट है कि जीव जो कर्म कर चुका अथवा करना चाहता है, उसे ईश्वर सर्वज्ञता से जानता है, परन्तु भविष्य में जीव क्या करेगा ? इसे ईश्वर पहले से ही जानता है, यह सत्य नहीं । इसी प्रकार कृत कर्मों का क्या-क्या

फल जीवों को देना है ? यह ईश्वर जानता है, परन्तु भविष्य के कर्मों को नहीं। पूर्व-जन्म के कर्मों के अनुसार जन्म, आयु, भोग ईश्वर की व्यवस्था से मिलते हैं, और वे कर्म (२। १३) योग-भाष्य के अनुसार जन्म, आयु तथा भोग देने से त्रिविपाक कहलाते हैं। परन्तु जो दृष्टवेदनीय कर्म=वर्त्तमान जन्म के कर्म हैं वे "द्विविपाक"=आयु, भोग के कारण अथवा "एक विपाक"=केवल भोग देने वाले भी होते हैं। और "अदृष्टजन्मवेदनीय" कर्मों के फल में भी निश्चितता नहीं है। इसमें प्रमाण देखिये—"**धीरे-धीरे अधर्म कर्त्ता के सुखों को रोकता हुआ सुख के मूलों को काट देता है**" पश्चात् अधर्मी दुःख ही दुःख भोगता है। (सं० वि० गृहाश्रम०) यहाँ अधर्मी जिन सुखों को रोकता है, क्या वे ईश्वर-प्रदत्त नहीं है ? यदि ईश्वरीय व्यवस्था से प्राप्त सुख-दुःख रोके जा सकते हैं, तो आयु का निश्चित होना कैसे सम्भव है ? और ऋषि दयानन्द ने इस सत्य रहस्य को समझकर लिखा है—"**जीव कर्म करने में स्वाधीन और पापों के फल भोगने में कुछ पराधीन भी है**"। (ऋ० भू० वेदोक्त) यहाँ "**कुछ पराधीन**" शब्द विशेष ध्यान देने योग्य है। अतः मनुष्य की आयु का निर्धारण करना किसी प्रकार से भी सम्भव नहीं है।

(१) श्री निडर जी की भांति जलेसर (एटा) निवासी श्री रामशंकर गुप्त ने भी आयु के निर्धारण विषय पर लेखनी[1] उठायी है। परन्तु दोनों में महान् अन्तर है। श्री निडर जी शास्त्रीय बातों पर मनन करते हैं, ऋषि दयानन्द के वचनों पर दृढ़ आस्था भी रखते हैं। परन्तु गुप्त जी की दशा तो विचित्र ही है। स्वयं वेदादि शास्त्रों से अनभिज्ञ होकर ऋषि दयानन्द के लेख का भी खण्डन करने को निराधार उद्यत रहते हैं। शिष्ट-भाषा तो मानो जानते ही नहीं हैं, ऐसे व्यक्तियों को समझाना सरल बात नहीं है गुप्त जी ने "**मधुरलोक**" (मासिक पत्रिका) में इस विषय में लेख लिखा है, उसका हमें मई १९८२ का ही अंक मिला है, उसमें जो प्रमाण लेखक ने चाणक्यनीति तथा महाभारत के दिये हैं, उन पर तो यहाँ विचार नहीं किया जा सकता। क्योंकि उनकी प्रामाणिकता निर्भ्रान्त नहीं है। परन्तु वेद तथा दर्शनों के प्रमाण अवश्य विचारणीय हैं। योगदर्शन के "**सति मूले तद्विपाको०**" सूत्र पर परिशिष्ट भाग से सप्रसङ्ग विस्तृत विश्लेषण किया गया है। उसको बार-बार लिखना उचित नहीं। अतः सूत्र व्याख्या वहीं द्रष्टव्य है। मन्त्रार्थों पर विचार तथा समीक्षा निम्न प्रकार है—

समिक्षा—श्री गुप्त जी भी जब वेदों को निर्भ्रान्त और ईश्वरीय ज्ञान मानते हैं, तो वेदों के परस्पर विरोध का परिहार भी उन्हें करना चाहिये। यदि परपक्ष के वैदिक प्रमाणों को लेखक बिना विचारे ही छोड़ देता है, तो यह वेदों पर परस्पर विरोध का ही आक्षेप करना मात्र है। लेखक ने अपने विपक्ष के किसी भी प्रमाण पर लेख में विचार नहीं किया है। हमारा उनसे विनम्र निवेदन है कि ऋ० १। ९१। ६ मन्त्र के भाष्य में ऋषि दयानन्द ने बहुत ही स्पष्ट रूप से अकाल मृत्यु को स्वीकार किया है। और ऋषि ने यजु० ४०। ३ मन्त्र के भाष्य में वर्त्तमान जन्म के कर्मों का फल वर्त्तमान जन्म में भी स्वीकार किया है, जिससे आयु का घटना-बढ़ना सिद्ध होता है। इसी प्रकार और भी प्रमाण दिये गये हैं, उन पर भी विचार करके तब अपनी मान्यता को स्पष्ट करना चाहिये। लेखक ने वेदों के ये मन्त्र उद्धृत किये हैं—

(१) "**सर्वो वै तत्र जीविति गौरश्वः पुरुषः पशुः। यत्रेदं ब्रह्म क्रियते परिधिर्जीवनाय कम्**"॥ (अथर्व० ८। २। २५) इस मन्त्र में "सुख से जीने के लिए ब्रह्म ने परिधि नियत की है" इससे लेखक ने आयु को निश्चित माना है। परन्तु मन्त्र से यह बात सिद्ध नहीं होती कि मन्त्र में आयु को निश्चित माना है। परमेश्वर सुख से जीने की परिधियां तो निश्चित करता ही है। समस्त धर्मशास्त्र क्या है ? ईश्वरीय धर्मसंयत परिधियों की ही

टिप्पणी—(१) प्रस्तुत ग्रन्थ में श्री गुप्त जी का लेख विस्तारपूर्वक आया है, आप देखें, पृष्ठ नं० ५०० से ५०५ पर।

"**सम्पादक**"

व्याख्या कर रहा है—ऐसा धर्माचरण करोगे तो सुखी रहोगे, अधर्माचरण करोगे तो दुःख पाओगे। और जो जीव जन्म लेता है, उसकी मृत्यु अवश्य होती है, ईश्वरीय आज्ञाओं का पालन दुःखनाशक है, ईश्वर से विमुख जीव दुःखसागर में ही गोता लगाते रहते हैं, इत्यादि ईश्वरीय परिधियां ही हैं।

(२) "उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं विमध्यमं श्रथाय० ॥ (ऋ० १। २४। १५)

(३) "उदुत्तमं मुमुग्धिनो विपाशं मध्यमं चृत०" ॥ (ऋ० १। २५। २१) इन दोनों मन्त्रों में उत्तम, मध्यम, तथा अधम त्रिविध दुःख पाश के बन्धन से छूटकर अदिति अर्थात् मोक्ष-सुख को प्राप्त करने की प्रार्थना की गई है। इन मन्त्रों पर महर्षि का भी भाष्य उपलब्ध होता है परन्तु लेखक ने उत्तम, मध्यम, निकृष्ट योनियां अर्थ किया है। जब मन्त्र में स्पष्ट रूप से विशेष्यपद "पाशम्" पठित है, तो विशेषण विशेष्यभाव को न समझकर योनियाँ अर्थ करना और उनसे मुक्ति को प्रार्थना मानकर जहां वेदार्थ से अनभिज्ञता प्रकट की है, वहां स्वपक्ष का खण्डन कर बैठे। धन्य है गुप्त जी ! आपको, जो पूर्वापर का भी ध्यान नहीं रहा। आपके अनुसार सब योनियों की आयु निश्चित है, उनसे समय से पूर्व मोक्ष कैसे हो सकता है ? और मनुष्य से भिन्न अधम-योनियों में मोक्ष की प्रार्थना कैसे सम्भव है ? क्या अपनी मिथ्या मान्यता के नशे में भूल गए कि मैं उन्मत्तवत् क्या लिखने लगा हूं ? जो व्यक्ति साभिमान कर रहा है "दोनों महान् आत्माओं (श्री स्वामी दर्शनानन्द जी और श्री स्वामी दयानन्द जी) जिनके पैर की धोवन के बराबर भी आपकी और वेदव्रत जी की योग्यता नहीं है।" (मधुरलोक २७ पृ०) क्या उसे अपनी दयनीय दशा पर भी ध्यान नहीं आया कि मैं वेदों के नाम पर मिथ्या, भ्रान्त व्याख्या करके वेद और ऋषि दयानन्द के सत्य सिद्धान्तों का उपहास कर रहा हूं ? और हम तो उन ब्रह्मा से लेकर जैमिनि पर्यन्त ऋषियों के प्रमाणों से ही अपने पक्ष की पुष्टि कर रहें हैं जिन्हें ऋषि दयानन्द तथा समस्त उनके अनुयायी मानते हैं। यदि आपमें लेशमात्र भी हिम्मत है अथवा ज्ञान-विज्ञान का स्वाभिमान है, तो उनका सप्रमाण खण्डन कीजिए। और "सति मूले" सूत्र तथा व्यासभाष्य से आपकी तो बात ही क्या है, कोई भी निष्पक्ष विद्वान् आयु को निश्चित सिद्ध नहीं कर सकता यह हमारा खुला चैलेंज हैं। और जब वेद से आपका पक्ष सिद्ध नहीं होता तो वेद प्रतिकूल किसी भी ग्रन्थ का प्रमाण कैसे माना जा सकता है ? लेखक की कुछ अन्य मिथ्या मान्यतायें भी हैं जैसे—वर्तमान जन्म के कर्मों का फल, इस जन्म में नहीं मिलता अगली योनियों में मिलता है। ब्रह्मचर्य का पालन, सदाचारादि शिक्षाओं का फल भी इस जन्म में नहीं मिलता "मानव-योनि में जीवों का आधान शतवर्ष से अधिक नहीं," इत्यादि मान्यताओं का उत्तर इस पुस्तक में यथास्थान दिया गया है, अतः उनका पिष्टपेषण करना उचित नहीं। और मानव की शतवर्ष से अधिक आयु का न मानना प्रत्यक्ष के भी विरुद्ध है, क्योंकि वर्तमान में भी शतवर्ष से अधिक के मनुष्य देखे जाते हैं। ऐसी विकलांग, भ्रान्त, मिथ्या, काल्पनिक मान्यताओं से ग्रस्त व्यक्ति यदि ऋषि दयानन्द के विषय में भी यह कहता है कि उनकी वेदानुकूल बातों को ही मानता हूँ अन्यों को नहीं, तो भी क्या आश्चर्य है ? और जब ऋषि की मान्यतायें भी लेखक के विचार से सन्दिग्ध हैं, तो उनका लेखक प्रमाण भी क्यों देते हैं ? क्या यह अर्धजरतीय न्याय के तुल्य निन्दनीय नहीं है ? और "श्रीयुत स्वामी ओ३म् प्रेमी चतुर्थाश्रमी, गुरुकुल होशंगाबाद (मध्य प्रदेश)" ने एक लेख भेजा है, जिसका शीर्षक है—"क्या आयु की समाप्ति का समय निश्चित नहीं है ?" हम उनके समस्त लेख को न छापकर प्रमुख आक्षेपों का ही यहां उत्तर प्रकाशित कर रहे हैं ?

(१) (प्रश्न)—जब तक कोई आधारभूत सामान्य जीवन-काल निश्चित न हो, तब तक घटना-बढ़ना किस प्रकार से माना जायेगा ? (उत्तर)—इस प्रश्न का उत्तर शास्त्रार्थ में ५१ पृष्ठ ४६६ पर है तथा श्री स्वामी सत्यपति जी के लेख में उत्तर दिया है। अतः वहीं द्रष्टव्य है।

(२) (प्रश्न)—ब्रह्मचर्यमय महान् जीवन धारण करने वाले महर्षि-दयानन्द आदि का दीर्घजीवन क्यों नहीं हुआ ? यदि ब्रह्मचर्य पालन से आयु बढ़ जाती हैं तो इनकी क्यों नहीं बढ़ी ? (उत्तर)—ब्रह्मचर्य का पालन करने से आयु बढ़ती है, इसमें वेद-शास्त्रों के अनेक प्रमाण है, जो प्रमाण-भाग में देखे जा सकते हैं। इसमें विशेष रूप से "त्र्यायुषं जमदग्ने···" तथा "यो बिभर्ति दाक्षायणं हिरण्यं" ये दो मन्त्र विशेष द्रष्टव्य हैं। ईश्वरोक्त निर्भ्रान्त ज्ञान है। हम भ्रान्तिग्रस्त हो सकते हैं, वेद में भ्रान्ति नहीं। ऋषि दयानन्द, स्वामी शंकराचार्यादि की मृत्यु जल्दी क्यों हुई ? इसमें उनकी मृत्यु के विशेष कारण बने। प्रायः आक्षेपकर्त्ता के मन में यह भ्रान्ति है कि—कर्मों का फल और जीवों को सुख-दुख ईश्वर ही देता है। परन्तु माता, पिता, आचार्य तथा राजादि भी कर्मफल देते हैं। जीव भी अपने सुख-दुख को घटा-बढ़ा लेते हैं। आधिभौतिक दुःखों में दूसरे जीवों से भी अन्याय, द्वेषादि के कारण सुख-दुःख मिलता है इस विषय में भी प्रमाणभाग में "दूसरे जीवों से भी सुख दुःख मिलते हैं", लेख पठनीय है तथा "ईश्वर तेरी इच्छा पूर्ण हो" ऋषि का यह वाक्य भी निश्चित आयु सिद्ध नहीं करता। यह तो सर्वनियन्ता सर्वशक्तिमान् परमेश्वर को आत्मसमर्पण उसमें दृढ़ आस्था का ही परिचायक[1] है। और अप्राप्त वस्तु की प्राप्ति की अभिलाषा को इच्छा कहते हैं। परमेश्वर के लिए ईश्वर की इच्छा पूर्ण होने का दूसरा भाव भी क्या हो सकता है ? प्रथम तो कोई अप्राप्य वस्तु ही नहीं है और क्या ईश्वर की इच्छा ऋषि की मृत्यु से पूर्व अपूर्ण ही थी। अतः ऐसी अन्यथा भावनायें करना निरर्थक ही हैं।

(३) (प्रश्न)—कई नवयुवक अचानक बिना किसी दुर्घटनादि के भी मर जाते हैं, क्या उनकी मृत्यु का समय वह निश्चित नहीं होता ? (उत्तर)—अल्पावस्था में भी मृत्यु के अनेक कारण हो सकते हैं। जैसे कोई ऐसा आन्तरिक रोग हो गया जिसका हमें पता ही न लग सका। अथवा आयुर्वेद के अनुसार स्त्री-पुरुष का अल्पावस्था में संयोग होना "जातो वा न चिरं जीवेत्" मृत्यु का कारण हो जाता है। अथवा किसी अभक्ष्य पदार्थ को अनजाने में खा लेने से मृत्यु हो सकती हैं। अथवा शरीर में किसी तत्व की कमी भी इसका कारण हो सकती है। आयुर्वेद में सैंकड़ों कारणों से मृत्यु का होना लिखा है। बिना कारण के कार्य कैसे हो सकता है ? इसीलिए कारणों का अनुसन्धान तो अवश्य करना चाहिए। परन्तु उनकी आयु इतनी ही निश्चित थी, इस कथन में कोई प्रमाण न होने से सचाई नहीं है। और महर्षि ने मृत्यु के अनेक कारणों का परिगणन किया हैं जैसे—"नाविज्ञाते जलाशये" अर्थात् अज्ञात जलाशय में स्नान न करे। अज्ञात गम्भीर जल में जल-जन्तु वा अन्य पदार्थ से दुःख और डूबकर मरने का भी भय होता है। और बच्चों को आभूषणादि भी धारण न करायें, क्योंकि उनसे चोरादि के द्वारा मृत्यु का भय रहता है। और स्वार्थी व्यक्ति स्वार्थवश होकर अन्याय से सज्जनों को दुःख देते हैं और मृत्यु का भी कारण बन जाते हैं। इसलिए ऐसे चौरादि से जो राजा प्रजा की रक्षा नहीं करता वह मृतक तुल्य ही होता है मनु जी

टिप्पणी—१. और महर्षि-दयानन्द ने सत्यार्थ-प्रकाश में एक स्थान पर लिखा है कि—(प्रश्न)—परमेश्वर क्या चाहता है ? सबकी भलाई और सबके लिए सुख चाहता है।" (स० प्र० ७ समु०)॥ अतः सबका भला करना ही ईश्वर की इच्छा पूर्ण करना है। महर्षि ने भी जीवन के अन्तिम समय में वही भाव प्रकट किए थे। यही उनके जीवन का सार था। और महर्षि ने ईश्वरीय इच्छा को स्वयं स्पष्ट करते हुए लिखा है कि (प्रश्न)—ईश्वर में इच्छा है वा नहीं ? (उत्तर)—वैसी इच्छा नहीं। क्योंकि इच्छा भी अप्राप्त, उत्तम और जिसकी प्राप्ति से सुख विशेष होवे, तो ईश्वर में इच्छा हो सके, न उससे कोई पदार्थ न कोई उससे उत्तम और पूर्ण सुखयुक्त होने से सुख की अभिलाषा भी नहीं है। इसलिए ईश्वर में इच्छा का तो सम्भव नहीं, किन्तु ईक्षण अर्थात् सब प्रकार की विद्या का दर्शन और सब सृष्टि का करना चाहता है, वह ईक्षण है। (सत्यार्थ प्रकाश समुल्लास—सात)

लिखते हैं—"विक्रोशन्त्यो यस्य राष्ट्राद्ध्रियन्ते दस्युभिः प्रजाः। सम्पश्यतः सभृत्यस्य मृतः स न तु जीवति"॥ (मनु०) अर्थात् जिस भृत्य सहित देखते हुए राजा के राज्य में से डाकू लोग रोती विलाप करती प्रजा के पदार्थ और प्राणों को हरते रहते हैं, वह जानो भृत्य, अमात्य सहित मृतक है, जीता नहीं। (स० प्र० ६ समु०) इसलिए दुर्जन व्यक्तियों के कारण भी जीवों को अन्याय से जो सुख-दुःख दिया जाता है, उसे कर्मों का फल नहीं कहा जा सकता। अन्यथा महर्षि मनु दुष्ट-जनों को दण्ड देने का विधान नहीं करते। महर्षि दयानन्द ब्रह्मचारी थे, इसमें किसी प्रकार का सन्देह न होते हुए भी स्वार्थी, कुलक्षणी व्यक्ति उनकी अकाल मृत्यु के ही कारण बन गये, अन्यथा उनका जीवन दीर्घजीवी अवश्य होता।

विपक्ष का एक मात्र सबल तथा बार-बार उद्धृत

"योगदर्शन के सूत्र पर विचार"

मानव की आयु निश्चित मानने वाले प्रायः योगदर्शन के ((२।१३) "सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगाः" सूत्र को बार-बार उद्धृत करते रहे हैं। उनके मत-अनुसार मानव की जाति=जन्म आयु तथा भोग का निमित्त पूर्व जन्म सञ्चित कर्माशय है। परमेश्वर पूर्वजन्म के कर्मानुरूप जन्म, आयु तथा भोगों का निर्धारण कर देता है और जीव उस निश्चित जन्म को पाकर निश्चित आयु तथा भोगों को भोगता रहता है। जीव का यह सामर्थ्य नहीं है कि वह परमेश्वर द्वारा निर्धारित आयु एवं भोगों में परिवर्तन अथवा परिवर्धन कर सके। परन्तु उन्होंने इस सूत्र के रहस्य को नहीं समझा है। यह तो उभय पक्षसम्मत है कि जीवों को मुख्य रूप से कर्मफल परमेश्वर की व्यवस्था से मिलता है। और यह भी निश्चित है कि प्रत्येक जीव का जन्म पूर्वजन्मों के फलोन्मुख कर्मानुरूप ही होता है। यदि यह सर्वमान्य है तो एक ही सूत्र में कहे जन्म की भांति आयु तथा भोग को निश्चित क्यों नहीं माना जाता ? यह ही निश्चित आयु मानने वालों का महातर्क है। किन्तु सूत्र-शैली को यदि समझा जाता तो इस शंका का सर्वथा समाधान मिल जाता। उदाहरणस्वरूप वैशेषिक दर्शन के "क्रियागुणवत् समवायिकारणमिति द्रव्यलक्षणम्" (अ० १ अ० १ सूत्र १५) सूत्र के अर्थ पर विचार कीजिए। इस सूत्र में कहा है कि जिसमें क्रिया, गुण, संयोग, वियोग होने का स्वभाव पाया जावे, उसे द्रव्य माना है। पृथिवी, जल, तेज, वायु, मन और आत्मा ये छः द्रव्य परिच्छिन्न होने से क्रिया और गुणवाले हैं। इनमें तो सूत्रार्थ सर्वांश में संगत हो जाता है परन्तु जो द्रव्य विभु-व्यापक हैं, वे संयोग-वियोग के स्वभाव से रहित हैं और व्यापक होने से क्रियावान् भी नहीं है, ऐसे आकाश, काल, दिशा और परमात्मा हैं इनमें सूत्र का एक अंश ही (गुणवान्) संगत होता है, तभी इन्हें भी द्रव्य माना गया है। इस सूत्र शैली को समझने के लिए महावैयाकरण महर्षि पतञ्जलि ने दो नियमों का महाभाष्य में उल्लेख किया है—(१) "प्रत्येकं वाक्यपरिसमाप्तिः"। (२) "समुदाये वाक्यपरिसमाप्तिः"॥ अर्थात् वाक्यगत क्रिया की समाप्ति कहीं प्रत्येक के साथ होती है और कहीं समुदाय में होती है जैसे—"देवदत्तब्रह्मदत्तयज्ञदत्ता भोज्यन्ताम्" ऐसा किसी ने वाक्य बोला। इसमें भुजि क्रिया का सम्बन्ध प्रत्येक के साथ है। देवदत्तादि में प्रत्येक को भोजन करना है। परन्तु दूसरा वाक्य है "गर्गाः शतं दण्डयन्ताम" यहां समस्त गर्गों पर सौ रुपए जुर्माना किया गया है प्रत्येक गर्ग पर नहीं। इसी प्रकार सूत्र गत पद कहीं समुदाय में चरितार्थ होते हैं और कहीं पृथक्-पृथक्। द्रव्यके लक्षण से भी ये नियम स्पष्ट हो रहे हैं। अब यदि कोई ऐसा ही दुराग्रह करने लगे कि सूत्र में गुणवान और क्रियावान् को ही द्रव्य कहा है, जिसमें ये दोनों लक्षण लक्षित हों वही द्रव्य होता है, तो

आकाशादि में द्रव्य का लक्षण न घट सके। ठीक इसी प्रकार योग दर्शन के सूत्र पर भी ध्यान देना चाहिए। यद्यपि सूत्र में कर्माशय के कारण ही जाति (जन्म) आयु तथा भोग की प्राप्ति माना हैं। सूत्र में पूर्वजन्म का कहीं भी निर्देश नहीं है। क्योंकि जन्म की प्राप्ति तो पूर्वजन्मकृत कर्माशय पर ही आश्रित हो सकती है। अतः आयु तथा भोग की प्राप्ति भी पूर्वजन्मकृत कर्माशय पर ही आश्रित क्यों नहीं मानी जाये ? यही विवाद का विषय है। इस विवाद का निर्णय सूत्रशैलि तथा ऋषियों की व्याख्या से ही हो सकता है। सूत्रशैलि के अनुसार सूत्रगत समस्त पदों में भी समानता नहीं होती, उनमें भी कहीं समुदाय रूप में तथा कहीं पृथक्-पृथक् रूप में संगति लगती है, जैसा कि ऊपर स्पष्ट किया गया है। और इस सूत्र की महर्षि व्यासकृत व्याख्या भी मिलती है, जिसका निष्पक्ष अनुशीलन करने से समाधान मिल जाता है।

महर्षिव्यासकृत-सूत्रव्याख्या—

(क) **"स च विपाकस्त्रिविधो जातिरायुर्भोग इति"**। अर्थ—अविद्यादि क्लेशमूलक कर्माशय के तीन प्रकार के फल होते हैं—जाति, आयु तथा भोग। (ख) **"तच्च जन्म तेनैव कर्मणा लब्धायुष्कं**[१] **भवति। तस्मिन्नायुषि तेनैव कर्मणा भोगः सम्पद्यते इति। असौ कर्माशयो जन्मायुर्भोगहेतुत्वात् त्रिविपाकोऽभिधीयत 'इति' अत एक-भविकः कर्माशय उक्त इति"**। अर्थ—कर्माशय तीन प्रकार का होता है। उसमें अदृष्ट-जन्म वेदनीय कर्माशय का प्रथम फल कथन करते हैं। जिस कर्माशय के अनुरूप जन्म मिला है, उसी कर्म से आयु तथा उस आयु में उसी कर्म से भोग सम्पन्न होता है। यह कर्माशय जन्म, आयु तथा भोग का हेतु होने से त्रिविपाक वाला कहा जाता है। इसलिए यह कर्माशय एकजन्म देने वाला कहाता है। (ग) **"दृष्टजन्म-वेदनीयस्त्वेकविपाकारम्भी भोगहेतुत्वाद्, द्विविपाकारम्भी वाऽऽयुर्भोगहेतुत्वाद् नन्दीश्वरवन्नहुषवद्वा इति"**। अर्थ—परन्तु जो कर्माशय दृष्टजन्मवेदनीय=वर्तमान जन्म में ही फल देने वाला होता है, वह एकविपाकारम्भी=केवल एक भोग रूप फल देने वाला होता है, केवल भोग का हेतु होने से और द्विपाकारम्भी भी होता है, आयु और भोग दोनों का हेतु होने से नन्दीश्वर[२] की भाँति अथवा नहुष की भांति। (घ) **"यस्त्वसावेकभविकः कर्माशय, सः नियतविपाकश्चानियतविपाकश्च।"** और जो एकभविककर्माशय (**अदृष्टजन्मवेदनीय**) कहा गया है, वह नियत फलवाला और अनियत फलवाला भी होता है। (ङ) **"तत्र दृष्टजन्मवेदनीयस्य नियतविपाकस्यैवायं नियमो न त्वदृष्टजन्मवेदनीयस्यानियतविपाकस्य"**। उनमें दृष्टजन्म में फल देने वाला कर्माशय नियत फल देने वाला होता है। और **"अदृष्टजन्मवेदनीय"** कर्माशय का फल नियत नहीं होता है।

व्यास-भाष्य का सार—(१) कर्माशय के प्रथम दो भेद हैं **"दृष्टजन्मवेदनीय"** और **"अदृष्टजन्मवेदनीय"** (२) **"अदृष्टजन्मवेदनीय"**—कर्माशय जन्म, आयु, तथा भोग का कारण होने से त्रिविपाक कहलाता है। और यह अनियत फल वाला होने से आयु व भोग का निर्धारण नही कर सकता। (३) और **"दृष्टजन्मवेदनीय"** कर्माशय नियत फल देता है। (४) **"दृष्टजन्मवेदनीय"** कर्माशय के भी दो भेद हैं—केवल भोग का कारण होने से अथवा आयु और भोग का कारण होने से। (५) इसलिए वर्तमान जन्म में आयु और भोग पूर्वजन्मकृत कर्माशय के फल के साथ-साथ वर्तमान के कर्मों का फल (आयु व भोग) भी अवश्य मिलता है। उसमें वर्तमान के कर्मों का

टिप्पणी—१. पूर्वपक्ष के व्यक्ति इसी व्याख्या पर बल देते रहते हैं। उन्हें सूत्रभाष्य का अग्रिम पाठ भी पढ़ना चाहिए।

२. इनका स्पष्टीकरण आगे किया गया है। —"सम्पादक"

(अदृष्टजन्मवेदनीय) नियत फल होने से अवश्य प्राप्ति होती है। और "यो ह्यदृष्टजन्मवेदनीयोऽनियतविपाकस्तस्य त्रयी गतिः" इस व्यासभाष्य के अनुसार "अदृष्टजन्मवेदनीय" कर्माशय की तीन प्रकार गति होती है (क) अविपक्व कर्माशय का नाश,[1] (ख) प्रधान कर्म के साथ अंकुरित रहना (ग) और प्रधान कर्म से अभिभूत होकर चिरकाल तक पड़े रहना। इस सूत्र के व्यास-भाष्य से स्पष्ट है कि आयु और भोग का पूर्वजन्म के कर्माशय से ही निर्धारण कदापि नहीं हो सकता है। पूर्वोक्त व्यास-भाष्य की सूत्रकार के साथ भी संगति है—महर्षि शब्द का अर्थ है कि जो यथार्थ द्रष्टा तथा आप्तपुरुष है। वे निर्भ्रान्त सूत्रार्थ का ही कथन करते हैं और ऋषियों के वचनों में परस्पर विरोध भी नहीं हो सकता है। इसी तथ्य के अनुरूप महर्षि व्यास की व्याख्या सूत्रकार महर्षि पतञ्जलि के सर्वथा अनुरूप ही हैं उसमें परस्पर कहीं भी विरोध नहीं है। महर्षि व्यास ने जैसे कर्माशय को "दृष्टजन्मवेदनीय" और "अदृष्यजन्मवेदनीय" दो प्रकार का माना है, वैसे ही का सूत्रकार भी मानते हैं, देखिए—"क्लेशमूलः कर्माशयो दृष्टादृष्टजन्मवेदनीयः"॥ (योग० २। १२) अर्थात् जीवों का कर्माशय अविद्यादिक्लेशों के कारण ही फल देता है। और यह दो प्रकार का है—एक दृष्ट=वर्तमान जन्म में फल देने वाला और दूसरा अदृष्ट=अग्रिमजन्मों में फल देने वाला। यदि वर्तमान जन्म में पूर्वजन्म के कर्माशय से ही आयु व भोगों का निर्धारण हो जाता है, तब तो सूत्र में "दृष्टजन्मवेदनीय" शब्द निरर्थक हो जाता हैं। और इस सूत्र की व्याख्या में व्यास ऋषि ने इस बात को और भी अधिक स्पष्ट करते हुए लिखा है देखिये जो निम्न प्रकार है—

"तत्र तीव्रसंवेगेन मन्त्रतपःसमाधिभिर्निर्वर्त्तित ईश्वरदेवतामहर्षिमहानुभावानामाराधनाद्वा यः परिनिष्पन्नः स सद्यः परिपच्यते पुण्यकर्माशय इति तथा तीव्रक्लेशेन भीतव्याधिकृतपणेषु विश्वासोपगतेषु वा महानुभावेषु कृतः **पुनः** पुनरपकारः स चापि पापकर्माशयः सद्य एव परिपच्यते। यथा नन्दीश्वरः कुमारो मनुष्यपरिणामं हित्वा **देवत्वेन परिणतः।** तथा नहुषोऽपि देवानामिन्द्रः स्वकं परिणामं हित्वा तिर्यक्त्वेन परिणत इति। तत्र नारकाणां **नास्ति दृष्टजन्मवेदनीयः कर्माशयः"**॥ अर्थात् मन्त्र, तप, समाधि के द्वारा सिद्ध और ईश्वर, देवता, महर्षि महानुभावों की आराधना से सिद्ध हुआ पुण्य कर्माशय तुरन्त फल देने वाला होता है और घोर अविद्यादि क्लेशों से ग्रस्त भयभीत रोगी अनुकम्पा करने योग्य अथवा विश्वसनीय तथा तपस्वी प्राणियों के प्रति किया गया पापकर्म तुरन्त फल देता है। जैसे—पुण्यकर्मों के कारण 'नन्दीश्वर कुमार" मनुष्यता से ऊपर उठकर देवत्व को प्राप्त हो गया और पापकर्मों के कारण देवों का राजा "नहुष" अपने देवत्व को छोड़कर कुटिल कर्म करने वाला बन गया। इतनी सुस्पष्ट व्याख्या को भी जो नहीं समझ सके, उसे कौन समझा सकता है? महर्षि व्यास ने "सति मूले०" (२। १३) सूत्र की व्याख्या में अनियतविपाक वाले पूर्वजन्म के फलों को अनिश्चित बताते हुए स्पष्ट लिखा है—"**तदिविपाकस्यैव देशकाल-निमित्तानवधारणाद् इयं कर्मगतिश्चित्रा दुर्विज्ञानाचेति**"। अर्थात् कर्माशय का फल देश, काल तथा निमित्त से निश्चित न होने के कारण यह कर्मगति विचित्र और दुर्बोध्य है।

वर्त्तमान जन्म के कर्मों का फल वर्त्तमान जन्म में भी मिलता है

(१) महर्षि-दयानन्द ने मनुस्मृति के निम्नलिखित श्लोक का अर्थ करते हुए लिखा है—"**नाधर्मश्चरितो लोके सद्यः फलति गौरिव। शनैरावर्त्तमानस्तु कर्त्तुर्मूलानि कृन्तति**"॥ (मनु०) अर्थ—मनुष्य निश्चय करके जाने

टिप्पणी—१. यह मोक्ष के अधिकारी योगियों का ही होता। और यहां नाश का अभिप्राय दग्धबीजवत् होने से फलोन्मुख न होना है॥

कि इस संसार में जैसे गाय की सेवा का फल दूध आदि शीघ्र नहीं होता, वैसे ही किये हुये अधर्म का फल भी शीघ्र नहीं होता, किन्तु धीरे-धीरे "अधर्म-कर्त्ता के सुखों को रोकता" हुआ सुख के "मूलों को काट देता है," पश्चात् अधर्मी दुःख ही दुःख भोगता है। (संस्कार० गृहाश्रम) (२) "हिंसारतश्च यो नित्यं नेहासौ सुखमेधते" ।। अर्थ—जो सदा हिंसा में अर्थात् वैर में प्रवृत्त रहता है, वह इस लोक और परलोक अर्थात् परजन्म में सुख को कभी नहीं प्राप्त हो सकता ।। (संस्कार गृहाश्रम०) (३) इन पाँच महायज्ञों का फल यह है कि—ब्रह्मयज्ञ से करने से विद्या, शिक्षा, धर्म, सभ्यतादि शुभगुणों की वृद्धि, अग्निहोत्र से वायु, वृष्टि जल की शुद्धि होकर वृष्टि द्वारा संसार को सुख प्राप्त होना···। (स० प्र० चतुर्थ० समु०) (४) "अधर्मेणैधते तावत्ततो भद्राणि पश्यति। ततः सपत्नाञ्जयति समूलस्तु विनश्यति" ।। (मनु०) जब अधर्मात्मा मनुष्य धर्म की मर्यादा छोड़ ···प्रथम बढ़ता है, पश्चात् धनादि ऐश्वर्य से खान, पान, वस्त्र, आभूषण, यान, स्थान, मान, प्रतिष्ठा को प्राप्त होता है। अन्याय से शत्रुओं को भी जीतता है, पश्चात् शीघ्र नष्ट हो जाता है। (५) अपने दुष्ट-कर्मों के साथ ही दुःखसागर में डूबते हैं। वे तो डूबते ही हैं, परन्तु दाताओं को साथ डुबा लेते हैं ।। (स० प्र० चतुर्थ० समु०) (६) "त्रिष्वप्येतेषु दत्तं हि विधिनाप्यर्जितं धनम्। दातुर्भवत्यनर्थाय परत्रादातुरेव च" ।। (मनु०) जो धर्म से प्राप्त हुये धन का उक्त तीनों को (अतपस्वी, अनधीयान, और प्रतिग्रहरुचि) देना है, वह दानदाता का नाश इसी जन्म और लेने वाले का नाश परजन्म में करता है। (स०प्र०चतुर्थ०समु०) (७) जो-जो पराधीन कर्म हो, उस-उसका प्रयत्न से त्याग और जो-जो स्वाधीन कर्म हो उस-उसका प्रयत्न के साथ सेवन करे। क्योंकि जो-जो पराधीनता है वह-वह सब दुःख··· ···।' (स० प्र० चतुर्थ०) (८) जो दुष्टाचारी पुरुष है, वह अधिक जियेगा वो अधिक-अधिक पाप करके नीच-नीच गति अर्थात् अधिक-अधिक दुःख को प्राप्त होता जायेगा। (स० प्र० षष्ठ० समु०) (९) क्रोधजों में बिना अपराध दण्ड देना, कठोर वचन बोलना, और धनादि का अन्याय में खर्च करना, ये तीन······बड़े दुःखदायक दोष हैं ।। (स० प्र० षष्ठ० समु०) (१०) जिस··· ···राजा के राज्य में डाकू लोग रोती विलाप करती प्रजा के पदार्थ और प्राणों को हरते हैं, वह जानो भृत्य अमात्य सहित मृतक है, जीता नहीं और महादुःख का पाने वाला है। (स० प्र० ६ समु०) (११) 'जो राजा मोह से, अविचार से अपने राज्य को दुर्बल करता है, वह राज्य और अपने बन्धुसहित "जीवन से पूर्व ही शीघ्र नष्ट भ्रष्ट हो" जाता है (स० प्र० ६ समु०) (१२) जो राजा ·····बुरे व्यसनों में फंसता है, वह शरीर से भी रहित हो जाता है ।। (स० प्र० ६ समु०) (१३) मैं सत्यभाषणरूप स्तुति करने वाले मनुष्य को सनातन ज्ञानादि धन को देता हूं ।। (स० प्र० सप्तम समु०) (१४) प्रश्न—दान के फल यहाँ होते हैं वा परलोक में ? उत्तर—सर्वत्र होते हैं ।। (स० प्र० ११ समु०) (१५) धर्म का स्वरूप बताते हुये वैशेषिक दर्शन में लिखा है—"यतोऽभ्युदय-निःश्रेयससिद्धिः स धर्मः।" (वै० १।१।२) इसकी व्याख्या में महर्षि-दयानन्द लिखते हैं—"जिसके आचरण करने से संसार में उत्तम सुख और निःश्रेयस अर्थात् मोक्ष-सुख की प्राप्ति होती है, उसी का नाम "धर्म" है। (ऋ० भू० वेदोक्त०) इससे भी स्पष्ट है कि धर्माचरण अथवा शुभकर्मों के अनुष्ठान का फल वर्त्तमान जन्म में भी मिलता है। (१६) मनु ने (६।८० में) लिखा है कि संन्यासी सब में समता तथा निस्स्पृह रहकर इस लोक तथा परलोक में सुख प्राप्त करता है। (१७) और मनु ने (८।७५ में) झूठी साक्षी देने वाले के विषय में कहा है कि वह इस जन्म तथा परजन्म के सुखों से हीन हो जाता है। (१८) और मनु ने (८।३०७ में) कहा है कि जो राजा प्रजा की रक्षा न करके कर (राजस्व) लेता है वह "सद्यो नरकं व्रजेत्" शीघ्र ही दुःख को प्राप्त करता है। (१९) और मनु ने (८।३७२ में) व्यभिचारी स्त्री-पुरुषों को दण्ड का विधान करते हुये लिखा है कि राजा व्यभिचारी पुरुष को दहकते हुये लोहे के पलंग पर गिरवाकर मरवा देवे और (८।३७१ के अनुसार) व्यभिचारिणी स्त्री को सबके सम्मुख कुत्तों से कटवाकर मरवा देवें। क्या यह वर्त्तमान जन्म के कर्मों का ही फल नहीं है ? (२०) (९।२५ में) मनु ने कहा है कि स्त्री-पुरुष के धर्म इस लोक और परलोक में सुख देने वाले हैं। (२१) (५।४५) इस

मनु के प्रमाण से दूसरों को दुःख देने वाला व्यक्ति इस लोक तथा परलोक में कहीं सुख प्राप्त नहीं करता है। (२२) मनु के (२।१।२) प्रमाण से वैदिक-संस्कारों के अनुष्ठान से इस जन्म तथा परजन्म में पवित्रता तथा दोष का नाश होता है। (२३) मनु के (२।१४३) प्रमाण से वेद न पढ़ने वाला द्विज जीवनकाल में ही शूद्र हो जाता है।

—आयु-वृद्धि तथा ह्रास के कुछ कारण—

(१)—"आचाराल्लभते ह्यायुराचारादीप्सिता प्रजाः" ॥ अर्थ—धर्माचरण ही से दीर्घायु, उत्तम प्रजा और अक्षयधन को मनुष्य प्राप्त करता है। (संस्कार० गृहाश्रम०) (२)—"दुराचारो हि पुरुषो लोके भवति निन्दितः"। "दुःखभागी च सततं व्याधितोऽल्पायुरेव च" ॥ अर्थ—और जो दुष्टाचारी पुरुष होता है, वह सर्वत्र निन्दित, दुःखभागी और व्याधि से अल्पायु सदा हो जाता है ॥ (सं० वि० गृहाश्रम०) (३)—"सर्वलक्षणहीनोऽपि यः सदाचारवान्नरः। श्रद्दधानोऽनसूयश्च शतं वर्षाणि जीवति" ॥ अर्थ—जो सब अच्छे लक्षणों से हीन भी होकर सदाचारयुक्त सत्य में श्रद्धा और निन्दा आदि दोषरहित होता है, वह सुख से सौ वर्ष पर्यन्त जीता है। (सं० वि० गृहाश्रम०) (४)—अन्यथा वीर्य व्यर्थ जाता, दोनों की आयु घट जाती है और अनेक प्रकार के रोग होते हैं। (स० प्र० चतुर्थ० समु०) (५)—बाल-विवाह से आयु का नाश अर्थात् सोलह वर्ष से न्यून आयु वाली स्त्री में अगर पच्चीस वर्ष से न्यून आयु वाला पुरुष गर्भ की स्थापना करे तो उससे······उत्पन्न हो तो चिरकाल तक न जीवे वा जीवे तो दुर्बलेन्द्रिय हो। (स० प्र० चतुर्थ० समु०) (६)—'इसलिये मिथ्याभाषणादिरूप अधर्म को छोड़ जो धर्माचार अर्थात् ब्रह्मचर्य जितेन्द्रियता से पूर्ण आयु और धर्माचार से उत्तम प्रजा तथा अक्षयधन को प्राप्त होता है।' (स० प्र० चतुर्थ० समु०) (७)—और महाव्यभिचार बढ़कर सब रोगी, निर्बल, और अल्पायु होकर शीघ्र-शीघ्र मर जायें।······और महाव्यभिचार बढ़कर सब रोगी, निर्बल और अल्पायु होकर कुलों के कुल नष्ट हो जायें।' स० प्र० चतुर्थ० समु०) (८)—(४।१३४ में) मनु कहते हैं—परस्त्री-गमन के समान आयु को घटाने वाला दूसरा कोई कर्म नहीं है। (९)—(४।४१ में) मनु ने लिखा है कि जो पुरुष रजस्वला स्त्री से सम्भोग करता है, उसकी आयु आदि घट जाती है। और (४।४२ के अनुसार) रजस्वला के साथ सम्भोग न करने वाले की आयु आदि बढ़ जाती है। (१०)—(मनु के ४।१३/१४ अनुसार) वेदोक्त कर्मों का आचरण करने से सुख, आयु और यश बढ़ जाते हैं। (११)—(३।३९/४० में) मनु ने स्पष्ट कहा है कि ब्राह्मादि प्रथम चार प्रकार के विवाह होने से दीर्घजीवी पुत्र पैदा होते हैं।

दूसरे जीवों के कारण भी जीवात्मा को सुख-दुःख प्राप्त होता है

(१)—"यदि नात्मनि पुत्रेषु च चेत् पुत्रेषु नप्तृषु। न त्वेवन्तु कृतोऽधर्मः कर्त्तुर्भवति निष्फलः ॥ अर्थ—यदि अधर्म का फल कर्त्ता की विद्यमानता में न हो तो पुत्री और पुत्रों के समय न हो तो नातियों के समय में अवश्य प्राप्त होता है। किन्तु यह कभी नहीं हो सकता कि कर्त्ता का किया हुआ कर्म निष्फल होवे ॥ (संस्कार० गृहाश्रम०) (२)—"सह नाववतु सह नौ भुनक्तु······"। इसकी व्याख्या करते हुवे महर्षि लिखते हैं—जिस परमात्मा का यह "ओ३म्" नाम है, उसकी कृपा और अपने धर्मयुक्त पुरुषार्थ से हमारे शरीर, मन

और आत्मा का त्रिविध दुःख जो कि अपने और दूसरे से होता हैं नष्ट हो जावे। (सं० वि० गृहाश्रम०) (३) "ओं नमो ब्रह्मणे......"। इस मन्त्र की व्याख्या में महर्षि लिखते हैं—इस संसार में तीन प्रकार के दुःख हैं—"आध्यात्मिक" जो आत्मा और शरीर में अविद्या, राग, द्वेष, मूर्खता और ज्वर पीड़ादि होते हैं। दूसरा "आधिभौतिक" जो शत्रु, व्याघ्र और सर्पादि से प्राप्त होता है। तीसरा "आधिदैविक" अर्थात् जो अतिवृष्टि, अतिशीत, अतिउष्णता, मन और इन्द्रियों की अशान्ति से होता है। इन तीन प्रकार के क्लेशों से आप हम लोगों को दूर करके कल्याणकारक कर्मों में सदा प्रवृत्त रखिये ॥ (स० प्र० प्रथम० समु०) (४)—जहां ऐसे पुरुष अध्यापक, उपदेशक, गुरु, और माननीय होते हैं वहाँ अविद्या, अधर्म, असभ्यता, कलह, विरोध, और फूट बढ़के दुःख ही बढ़ता जाता है। (स० प्र० चतुर्थ० समु०) (५)—जब संन्यासी एक वेदोक्त धर्म के उपदेश से परस्पर प्रीति उत्पन्न करायेगा, तो लाखों मनुष्यों को बचा देगा। (स० प्र० पञ्चम० समु०) (६)—स्वतन्त्र राजा प्रजा का नाश करता है। (स० प्र० षष्ठ० समु०) (७) —"एक अपराधी डाकू को छोड़ देने से सहस्रों धर्मात्मा पुरुषों को दुःख देना है। (स० प्र० ७ समु०) (८)—राजा......धर्मात्माओं के सुख की रक्षा करता, भुगाता, डाकू आदि से बचाकर उनको सुख में रखता है। (स० प्र० ११ समु०)। (९)—जो ग्रन्थ वेद-बाह्य कुत्सित पुरुषों के बनाये संसार को दुःख-सागर में डुबाने वाले है वे सब निष्फल, असत्य, अन्धकाररूप, इस लोक और परलोक में दुःखदायक है। (स० प्र० ११ समु०)। (१०)—उसी दुष्ट-दुर्योधन गोत्र हत्यारे, स्वदेश विनाशक, नीच के दुष्ट मार्ग में आर्यलोग अब तक भी चलकर दुःख बढ़ा रहे हैं। (स० प्र० १० समु०) (११)—जब से विदेशी मांसाहार ......गौ आदि पशुओं के मारने वाले, मद्यपानी-राज्याधिकारी हुये हैं, तब से क्रमशः आर्यों के दुःख की बढ़ती होती जाती है। (१२)—सांख्यदर्शन में "अथ त्रिविधदुःखात्यन्तनिवृत्तिरत्यन्तपुरुषार्थः" (सांख्य १।१) कहकर जो दुःखों से तीन भाग (आध्यात्मिक आधिदैविक, और आधिभौतिक) किये हैं, उनमें दूसरे प्राणियों से मिलने वाले दुःखों को ही आधिभौतिक कहा गया है। और यदि जीवों को मिलने वाले समस्त दुःख ईश्वरीय-व्यवस्था से ही हों, अन्य जीवों से नहीं, तब दुःखों की निवृत्ति करना ही सम्भव न होने से सूत्रकार का कथन ही निरर्थक हो जाये। ऋषि ने स्पष्ट लिखा है—(क) "सब जीव कर्म करने में स्वाधीन और पापों के फल भोगने में कुछ पराधीन भी हैं।" (ऋ० भा० वेदोक्त०) (ख) "फल देने में ईश्वर स्वतन्त्र और जीव किञ्चित् वर्त्तमान और कर्म में स्वतन्त्र है।" (स० प्र० सप्तम० समु०) यहां महर्षि के "कुछ" और "किञ्चित" शब्द विशेष ध्यान देने योग्य हैं। क्योंकि जीवात्मा ईश्वर-प्रदत्त सुखों व दुःखों में भी शुभाशुभ-कर्मों से वृद्धि अथवा न्यूनता कर सकता है। और कर्म करने में पूर्ण स्वतन्त्र होने से दूसरे जीवों को सुख, दुख भी दे सकता है। अन्यथा परोपकार करनादि बातें आकाशकुसुमवत् ही मानी जायेंगी। (१३)—मनु ने (७।९४ में) लिखा है कि जो भृत्य युद्ध में पलायन कर जाता है, उसे राजा का दुष्कृत=पाप प्राप्त होता है। और ७।९५ में लिखा है कि उस पलायन करने वाले का पुण्य राजा को मिल जाता है। (१४)—मनुस्मृति (८।१८) में अधर्म के चार भाग किये हैं—उनमें एक भाग अधर्म के कर्त्ता को एक भाग साक्षी को, एक भाग सभासद को और एक भाग राजा को प्राप्त होता है। (१५)—(९।१३८) में) मनु कहते हैं कि पुत्र को पुत्र इसीलिये कहते हैं कि वह माता-पिता को दुःखों से बचाता है॥

शास्त्रार्थ-सम्बद्ध कतिपय-प्रमाणों पर विचार—

"यथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः॥" (यजु० ४०।८) इस शास्त्रार्थ में पूर्वपक्षी ने इस मन्त्र भाग को इसलिये उद्धृत किया है कि परमात्मा जीवों को "यथा कर्म तथा फलम्" कर्मानुसार फल देते हैं। यद्यपि इस मान्यता से किसी का भी विरोध नहीं है, पुनरपि इस मन्त्र से यह मान्यता सिद्ध नहीं होती। महर्षि-दयानन्द ने इसका अर्थ इस प्रकार किया है—"वह परमात्मा (शाश्वतीभ्यः) सनातन अनादिस्वरूप वाली, अपने

स्वरूप की दृष्टि से उत्पत्ति और विनाश से रहित (समाभ्यः) प्रजा के लिये (याथातथ्यतः) यथार्थता से (अर्थान्) वेद के द्वारा सब पदार्थों का (व्यदधात्) अच्छी तरह से उपदेश करता है (यजुर्वेद भाष्य-भास्कर) ॥

क्या शस्त्र, विषादि से अकाल में मृत्यु नहीं होती ?—

मृत्यु का समय निश्चित माननेवालों का यह कथन प्रत्यक्ष-विरुद्ध है कि यदि मृत्यु का समय नहीं आया है तो उसे न तो कोई शस्त्रादि से मार सकता है, और ना ही अग्नि आदि उसकी मृत्यु के कारण बन सकते हैं। इस विषय में विद्युत् का सम्पर्क करके तुरन्त परिणाम देखा जा सकता है। और विषादि के भक्षण से भी मृत्यु हो जाती है। इस विषय में वात्स्यायनमुनि लिखते हैं—"**यथा विषयोगात् पयो विषमिति बुध्यमानो नोपादत्ते। अनुपाददानो मरणदुःखं नाप्नोति**"॥ (न्याय० ४। १। ५५ वात्सयायन भाष्य) अर्थात् विष के सम्पर्क से दूध भी विष हो जाता है, ऐसा जानने वाला विषमिश्रित दूध को नहीं ग्रहण करता है। और उस दूध को ग्रहण=पान न करने से मृत्यु-दुःख को नहीं प्राप्त करता है। इससे स्पष्ट है कि विषादि से असमय में भी मृत्यु होती है। "**सर्वाणि पूर्वकर्माणिः०**"—इस प्रमाण का शुद्धपाठ तथा प्रसङ्ग इस प्रकार है—"**पूर्वजन्मनिवृत्तो पुनर्जन्म न भवतीत्युच्यते, न तू कर्मविपाकप्रतिसंवेदनं प्रत्याख्यायते। सर्वाणि पूर्वकर्माणि ह्यन्ते जन्मनि विपच्यन्त इति**"॥ (न्याय० ४/१ ६४ वात्सयायन भाष्य) पाठक इस शुद्ध पाठ तथा प्रसङ्ग से भलीभांति ज्ञान कर सकते हैं कि पूर्वपक्षी ने इसे उद्धृत करके छल का ही आश्रय लिया है और "**अग्रिमे**" पाठ-भेद स्वयं करके पर-पक्ष का दूषण निरर्थक ही किया है। यथार्थ में यहां जन्म-परम्परा के उच्छेद होने से पूर्वजन्म को ही अन्तिम जन्म माना है और उसी में कर्मों का फल माना है, अगले जन्म में नहीं। क्योंकि मोक्ष-प्राप्ति होने पर जन्म-मरण मोक्षावधि में नहीं होते।

न्यायदर्शनकार ने कर्म फल की प्राप्ति वर्त्तमान जन्म में भी मानी है यथा—

इससे पूर्व पूर्वपक्षी ने एक तर्क यह भी दिया है कि "**प्रेत्यभावग्दनन्तरं फलं तस्मिन्**" अर्थात् जीवों को कर्मों का फल मरने के बाद ही प्राप्त होता है। बीज पहले नष्ट हो जाता है, फिर उसमें अंकुर उपजता है। तो पहले जो कर्म करता है, वह मरणोत्तर अगले जन्म में ही फल प्राप्त करता है। इसका उत्तर यह है (१)—यह मान्यता वेद, योगदर्शन, मनुस्मृति आदि शास्त्रों तथा ऋषि-दयानन्द के लेख से विरुद्ध होने से माननीय नहीं हो सकती। इसमें प्रमाण पृथक् से परिशिष्ट में देखे जा सकते हैं। (२)—और यह मान्यता न्यायदर्शन के भी विरुद्ध है। फल का लक्षण दर्शनकार ने यह किया है—"**प्रवृत्तिदोषजनितोऽर्थः फलम्**" (न्याय० १। १। २०) अर्थात् धर्माधर्मरूप प्रवृत्ति से और रागद्वेषादि दोषों से जो अर्थ=सुख-दुःखरूप भोग प्राप्त होता है, वह फल कहलाता है। और यह फल इन्द्रिय सहित शरीरादि के होने पर ही सम्भव है। यहां वर्त्तमान जन्म, अथवा अगला जन्म, इसका कोई भी निर्देश नहीं किया है। (३)—और "**सद्यः कालान्तरे च फलनिस्पत्तेः संशयः**" (न्या० ४। १। ४४) सूत्र में दर्शनकार ने "**पचति दोग्धि**" का तथा "**कृषति, वपति**" इत्यादि कर्मो का वर्त्तमान जन्म में ही फल मानकर अग्निहोत्रादि के फल में संशय दिखाया है। और "**न सद्यः कालान्तरोपभोग्यत्वात्**" (न्याय० ४। १। ४५) सूत्र में अग्निहोत्र का फल कालान्तर में माना है। और इस सूत्र पर भाष्यकार ने स्वर्गादि फल देहान्तर में मानकर भी "**ग्रामादिकामानामारम्भफलमिति**" लिख कर स्पष्ट लिखा है—"**ग्रामकामो यजेत**" इत्यादि यज्ञों का फल "**सद्यः**" =शीघ्र वर्त्तमान जन्म में ही स्वीकार किया है। (४) और बीज के ध्वस्त होने पर अंकुर होने का उदाहरण भी ठीक नहीं है। न्यायदर्शन में इसका स्वयं खण्डन करते हुये लिखा है—"**कारणान्तरेऽनिष्पत्ति हेतुविनाशात्**" (न्याय० ४। १ ४६) जब कारण का नाश ही हो जाता है, तो उससे फल नहीं उत्पन्न हो सकता है। क्योंकि विनष्ट कारण से कुछ भी उत्पन्न नहीं हो सकता। फिर बीज से अंकुर तथा यज्ञादि से स्वर्गादि प्राप्ति कैसे होती

है ? इसका समाधान (न्याय० ४ । १ । ४७) में यह दिया है—जैसे फल चाहने वाला वृक्ष के मूल को प्रथम सींचता है, वह सेचन रूप जल पृथिवी के परमाणुओं से संयुक्त होकर पार्थिव अग्नि से पकाया हुआ रस को उत्पन्न करता है, और वह रस पाकविशेष को प्राप्त होकर पत्र, पुष्प, फलादि को उत्पन्न करता है । ठीक इसी प्रकार जीवों की प्रवृत्ति से धर्माधर्मरूप संस्कार उत्पन्न होता है, और ये संस्कार फलप्राप्ति के योग वातावरण स्थानादि को प्राप्त करके सुख-दुःखरूप फलों को प्राप्त कराते हैं । इस प्रकार बीज-ध्वस्त की बात यहां कदापि मान्य नहीं हो सकती ।

"सद्यः" पद का यथार्थ—

व्याकरण के अनुसार "सद्यः" पद "समान" शब्द से "द्य" प्रत्यय और समान को सादेश कालविशेष में (अ० ५ । ३ । २२) सूत्र से निपातन से निष्पन्न होता है । "समानेऽहनि सद्यः" । व्याकरण के अनुसार "सद्यः" शब्द का अर्थ है उसी दिन । इस शब्द का "परजन्म" अर्थ तो कदापि नही हो सकता । और महर्षि-दयानन्द ने इस शब्द का अन्यत्र अर्थ इस प्रकार किया है—"सद्यः=क्षिप्रम्" (ऋ० ४।७।१०) । "सद्यः=शीघ्रमेव" (ऋ० ५।३।२२) "सद्यः=तूर्णम्" (ऋ० १।१२२।१४) इन अर्थों से स्पष्ट है कि "सद्यः" पद का अर्थ तुरन्त (एटवंस) नहीं है, तो परजन्म भी कदापि नहीं हो सकता । वर्त्तमान जन्म में ही उस प्रार्थनोपासना का फल मानना पड़ेगा । जैसे ऋषि ने लिखा कि प्रार्थना करने से अभिमान का नाश, उत्साह व आत्म-बल का बढ़नादि फल होते हैं, वैसे "यां मेधाम्०" मन्त्र में तथा "हे ईश्वर ! दयानिधे०" इत्यादि महर्षि-लिखित वाक्य की प्रार्थना का फल वर्त्तमान जन्म में भी फल मानना अनुचित नहीं है ॥

एक सौ बारहवां शास्त्रार्थ –

स्थान : जम्मू (कश्मीर) राज दरबार

दिनांक : १८ मार्च १८९२ ई०

विषय : क्या मूर्तिपूजा वेदोक्त है ?

आर्य समाज की ओर से शास्त्रार्थ कर्त्ता : महात्मा हंसराज जी, तथा स्वामी अच्युतानन्द जी सरस्वती

सनातन धर्म की ओर से शास्त्रार्थकर्त्ता : बाबा ब्रह्मानन्द सरस्वती

प्रधान : महाराजा प्रताप सिंह जी

आर्य समाज की ओर से उपस्थित अन्य विद्वान : (१) मास्टर दुर्गा प्रसाद जी,
(२) स्वामी पूर्णानन्द जी,
(३) लाला जीवन दास जी,
(४) लाला पृथिवी सिंह जी बी० ए०,

सनातन धर्म की ओर से उपस्थित अन्य विद्वान : पण्डित श्री कृष्ण शास्त्री तथा अन्य अनेकों दिग्गज विद्वान !

नोट :—राय भागमल एवं खान बहादुर गुलाम महीउद्दीन खां साहिब तथा कौंसिल के अन्य सदस्य एवं अन्य सरकारी अधिकारी व कर्मचारीगण ।

विशेष :—यह शास्त्रार्थ सामग्री "महात्मा हंसराज ग्रन्थावली" से ली गई है ।

"सम्पादक"

शास्त्रार्थ से पहले

आर्यसमाज-द्वेषी बाबा ब्रह्मानन्द फरवरी २८ को जम्मू पहुंचा। वहां अपने व्याख्यानों में उसने अपने स्वभाव के अनुसार पापी पेट के लिए ऋषि दयानन्द जी वा आर्यसमाज के विरुद्ध विषवमन करना आरम्भ किया। वहां के जागरूक आर्यों ने इसका विरोध किया। वे महाराजा के पास गए। महाराजा प्रतापसिंह[1] ने कहा कि सत्य-असत्य के निर्णय के लिए आर्य तथा सनातनी पण्डित हमारे सामने शास्त्रार्थ करें। महाराजा साहब के इस आदेशानुसार आर्यसमाज लाहौर को तार दिया गया। तार के पहुंचते ही लाहौर से स्वामी अच्युतानन्द, महात्मा हंसराज, स्वामी पूर्णानन्द (पण्डित पूर्णानन्द जी उपदेशक), मास्टर दुर्गाप्रसाद जी, लाला जीवनदास, लाला पृथिवी सिंह जी बी० ए० वा कई अन्य सज्जन १८ मार्च की प्रातः जम्मू पधारे। ये सब महाराजा प्रतापसिंह के अतिथि बने। भोजन के पश्चात् इन सबको लेने के लिए सरकारी हाथी आ गए। इनपर बैठकर ये सब आर्य विद्वान् महाराजा के दरबार में पहुंचे। सबका परिचय हो चुका तो महाराजा साहब ने विभिन्न धार्मिक विषयों पर आर्य मनीषियों से वार्तालाप किया। महाराजा साहब ने कहा कि शास्त्रार्थ आज तीसरे पहर होगा। तदनुसार हाथियों पर आसीन होकर आर्य विद्वान् "**दरबार हाल**" पहुँचे, जहां शास्त्रार्थ का आयोजन किया गया। महाराजा साहब के भाई तथा अन्य कई सामन्त वहां उपस्थित थे। राय भागमल तथा कौंसिल के अन्य सदस्य, जम्मू के अनेक पण्डित तथा नगर के श्रोता भारी संख्या में वहां उपस्थित थे।

पौराणिकों ने मध्यस्थ का प्रश्न उठाया। इसपर लाला जीवनदास ने कहा कि मध्यस्थ की नियुक्ति कठिन है। कारण यह कि जिसे हम मध्यस्थ मानेंगे, उसे पौराणिक मण्डली नहीं मानेगी, अतः यह विवाद छोड़ दीजिये।

विशेष—

मैंने[2] इस विषय में महात्मा अमर स्वामी जी महाराज के मुख से अनेकों बार वार्तालाप के मध्य सुना था कि शास्त्रार्थ मूर्ति पूजापर, महात्मा हंसराज जी का जम्मू महाराज की अध्यक्षता में हुआ था वह अवश्य छपना चाहिए। परन्तु उसका विवरण मुझे कहीं भी प्राप्त नहीं हुआ, अब इस सामग्री को "**महात्मा हंसराज ग्रन्थावली**" में पाकर मुझे अत्यन्त प्रसन्नता हुई, तथा पूज्य अमर स्वामी जी की इच्छानुसार इस ग्रन्थ में उद्धृत किया जा रहा है।

टिप्पणी—

१. धर्मवीर पण्डित लेखराम जी तथा श्री मास्टर लक्ष्मण जी दोनों ने अपने-अपने ऋषि-जीवनचरित्र में इस शास्त्रार्थ पर दो-दो तीन पंक्तियां लिखी हैं। तत्कालीन महाराजा प्रतापसिंह आगे चलकर महात्मा हंसराज जी के भक्त बन गए।

२. लाजपत राय अग्रवाल।

शास्त्रार्थ आरम्भ

श्री स्वामी अच्युतानन्द जी सरस्वती—

इसके पश्चात् प्रतिमा-पूजन पर शास्त्रार्थ आरम्भ हुआ। स्वामी अच्युतानन्द जी ने वैदिक पक्ष प्रस्तुत करते हुए यजुर्वेद के दो मन्त्रों का उच्चारण किया—

(१)—न तस्य प्रतिमाऽअस्ति यस्य नाम महद्यशः। हिरण्यगर्भऽइत्येष मा मा हिँ सीदित्येषा यस्मान्न जातऽइत्येषः ॥[1]

(२)—स पर्य्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरँ शुद्धमपापविद्धम्। कविर्मनीषी परिभूः स्वयंभूर्याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः ॥[2]

इनसे सिद्ध किया कि वेदों में पाषाण-पूजा कहीं भी नहीं है।

नोट—

पौराणिक पण्डितों से इन प्रमाणों का तो खण्डन न हो सका, वे ब्राह्मण, वेद तथा उपनिषदों को एक सिद्ध करने में लग गए। यह अप्रासांगिक विषय बीच में घसीट लिया गया। इसपर महात्मा हंसराज जी ने कहा कि "पौराणिक पण्डित हमारे द्वारा प्रमाणस्वरूप उपस्थित किए गए वेदमन्त्रों का ऋषि दयानन्द प्रणीत अर्थ नहीं झुठला सके तो उनके लिए यह आवश्यक है कि वे चारों वेद-संहिताओं में से कोई-सा मन्त्र अपने पक्ष की पुष्टि में प्रस्तुत करें।" हिज हाईनेस, महाराजा प्रतापसिंह ने भी महात्मा जी की बात की पुष्टि करते हुए कहा कि "यदि चारों वेदों में मूर्ति-पूजा के समर्थन में कोई मन्त्र है तो लाओ!" इसपर पण्डित लोगों ने बहुत हाथ-पैर मारे, परन्तु विफल रहे।

जम्मू निवासी एक पौराणिक पण्डित—

"अर्चत प्रार्चत प्रियमेधासो अर्चत। अर्चन्तु पुत्रका उत पुरं न धृष्ण्वर्चत" ॥[3]

श्री महाराजा प्रताप सिंहजी—

इसका भाषा में अर्थ करो।

नोट—

वह पण्डित इसका अर्थ न कर पाया। उससे लेकर वही मन्त्र दूसरे पण्डित को दिया गया, परन्तु वह भी इसका अर्थ करने में असमर्थ रहा। फिर तीसरे पण्डित को दिया गया। लगता था कि वह अर्थ कुछ समझता तो है, परन्तु वह उलझन में पड़ गया। इस मन्त्र से प्रयोजन तो सिद्ध नहीं होता था। कहे तो क्या कहे? फिर

टिप्पणी—

१. यजुर्वेद अध्याय ३२ मन्त्र ३,

२. यजुर्वेद अध्याय ४० मन्त्र ८,

३. ऋग्वेद ८-६९-८,

यही मन्त्र आर्यों को दिया गया। इसका अर्थ पौराणिकों के प्रयोजनों से कोसों दूर था। तत्पश्चात महात्मा हंसराज जी उठे। इसी मन्त्र को पढ़ा। इसके एक-एक शब्द का अर्थ किया।

श्री महात्मा हंसराज जी—

"हे विद्वानो ! तुम उस परमात्मा की पूजा-सत्कार करो। पुत्रो ! भौतिक संसार को जिसमें तुम रहते हो, मत पूजो !"

नोट—

महात्मा हंसराज जी ने इसकी व्याख्या करते हुए कहा कि "यदि आप "पुरं" शब्द के अर्थ "**प्रतिमा**" करो, जैसा कि हठ किया जा रहा है, तो भी इसका अर्थ यही होगा कि प्रतिमा मत पूजो, क्योंकि शब्द "न" "अर्चत" के साथ पड़ा है।"

सभी पौराणिक पण्डित शब्द "न" से इन्कार कर गए कि यह मन्त्र में नहीं है। इस पर महात्मा हंसराज जी ने वेद-संहिता महाराजा साहब के हाथ में देकर मन्त्र में "न" शब्द दिखा दिया। महाराजा प्रतापसिंह जी ने देखकर कहा कि मन्त्र में "न" शब्द अवश्य है।

इसपर हठी पण्डितों ने कहा कि "**यह मुद्रण-दोष है।**"

श्री महाराजा प्रताप सिंह जी—

कल वेदों के और संस्करण लावें।

नोट—

फिर महामण्डल के श्री कृष्ण शास्त्री ने उठकर एक लम्बा-चौड़ा भाषण दिया, परन्तु वेद का एक भी मन्त्र प्रस्तुत न कर सका। उत्सव दूसरे दिन भी रक्खा गया, परन्तु पौराणिक पण्डित शास्त्रार्थ का साहस न कर सके। उसी स्थान पर स्वामी अच्युतानन्द, महात्मा दुर्गाप्रसाद, महात्मा हंसराज, स्वामी पूर्णानन्द जी के आर्य धर्म पर सारगर्भित प्रभावशाली व्याख्यान हुए, जिससे सारे जम्मू नगर में आर्य धर्म की धूम मच गई।[1] सायं साढ़े तीन बजे आर्य लोग पुस्तकें लेकर शास्त्रार्थ के स्थल पर पहुंच गए। महाराजा साहब, उनके दो भाई, राय भागमल्ल व खानबहादुर गुलाम महीउद्दीन खाँ साहिब तथा कौंसिल के अन्य सदस्य एवं अधिकारी-कर्मचारी वहाँ पधारे। श्री कृष्ण शास्त्री ने साकार-निराकार पर बहुत समय तक भाषण दिया। आर्यों ने समय माँगा कि हमें अब उत्तर देने दें। कहा गया कि अगले दिन समय दिया जावेगा। फिर श्री कृष्ण शास्त्री जी ने कुछ कहना आरम्भ कर दिया। इस पर आर्यों ने निवेदन किया कि समय नष्ट नहीं होना चाहिए, कलवाले वेदमन्त्र पर विचार करना चाहिए। इस पर कहा गया कि उस मन्त्र में "न" शब्द तो है, परन्तु इसका अर्थ 'नहीं' न होकर जैसा (सरीखा) है। श्री कृष्ण शास्त्री जी ने इस पर भी बहुत समय लिया।

महात्मा हंसराज जी ने उठकर पुनः इसके अर्थ किये। पण्डितों ने विवाद करते हुए कई दुर्वचन मुख से निकाले। लाला जीवनदास जी ने महाराजा साहब से कहा कि "हम तो आपसे न्याय चाहते हैं। जिस समय हमें बुलाया गया था, तब कहा गया कि बाबा ब्रह्मानन्द का कथन है कि कोई संस्कृत जानने वाला आर्य हो तो उसके साथ शास्त्रार्थ करेगा। डॉक्टर जगन्नाथ जी[2] संस्कृत नहीं जानते, अतः शास्त्रार्थ न हो पाया। अब दरबार में महाराजा साहब संस्कृत में ही शास्त्रार्थ करवा लें।"

टिप्पणी—

१. "**आर्यगजट**" (फीरोज़पुर छावनी), मार्च २४ सन् १८९२, पृ० ७-८,

२. जम्मू के कोई आर्य सज्जन जिन्होंने ब्रह्मानन्द को शास्त्रार्थ के लिए ललकारा।

इस बात का उत्तर था कि "जब मेरे शिष्य ही बहुत हैं तो मैं क्यों शास्त्रार्थ करूँ ? मेरे किसी शिष्य से शास्त्रार्थ हो सकता है।"[1]

आर्यों ने महाराजा को दर्शाना था कि ब्रह्मानन्द संस्कृत में शास्त्रार्थ नहीं कर सकता। आर्यों ने यहाँ तक कह दिया कि बाबा जी संस्कृत बोलकर ही दिखा दें। इसी बीच एक व्यक्ति ने अंग्रेजी में प्रतिमा-पूजन के पक्ष में भाषण देना आरम्भ कर दिया। यह भाषण सम्भवतः ब्रह्मानन्द का लिखा हुआ था।[2] इसमें कहा गया कि "बिना मूर्ति के पूजा हो ही नहीं सकती। ईसाई लोग ईसा को मानते हैं, पारसी अग्निपूजा करते हैं, मुसलमान कब्र को पूजते हैं, आदि-आदि। यह आर्यों का जो नया मत निकला है, यह ठीक नहीं, क्योंकि यह मूर्तिपूजा का खण्डन करता है।" इसका उत्तर महात्मा हंसराज जी ने अंग्रेजी में देना आरम्भ किया। आपने कहा, "आर्यावर्त्त में प्राचीन काल में मूर्तिपूजा नहीं थी। महात्मा बुद्ध ने जब एकता का उपदेश दिया तथा सब लोगों को समान बताया तो उसका मत बहुत फैल गया, परन्तु बुद्ध की मृत्यु के पश्चात् तो महात्मा बुद्ध के चेलों ने बुद्ध की ही मूर्तियाँ बना लीं, क्योंकि उनकी शिक्षा में ईश्वर के विषय में कुछ नहीं बताया गया। होते-होते एक की अनेक मूर्तियाँ बन गईं। इस प्रकार सब देशों से मूर्त्तियाँ निकली हैं (खुदाई में)। आर्यावर्त्त में तभी से पतन आरम्भ हुआ है। मुसलमानों का सम्भवतः १/८ आठवाँ भाग ही कब्र-पूजा करता है। मुहम्मद साहब की शिक्षा में तो कब्र-पूजा है नहीं। अतः जैसा कि कहा गया है, इससे भी मूर्ति-पूजा का पक्ष सिद्ध नहीं होता।"

इतना कहा ही था कि पौराणिक चिल्लाए कि इस प्रकार तो हिन्दू धर्म कुछ भी न हुआ। मुहम्मद साहब का नाम लेकर वेदों की हानि की गई है। आर्यों ने करबद्ध निवेदन किया कि इसमें वेदों की किसी प्रकार की भी हानि नहीं है। यह तो आपके वक्ता का उत्तर देने के लिए ही कहा गया है महाराजा साहब से कहा गया कि राय भागमल्ल अंग्रेजी समझते हैं। वह बतायें कि इससे क्या वेदों की हानि हुई है ? क्या महात्मा हंसराज जी की भावना अथवा उद्देश्य वेदों की हानि करना है ? राय भागमल्ल जी ने अपने संक्षिप्त भाषण में कहा, "ऐसी कोई बात नहीं। ऐसा सोचा भी नहीं जा सकता।" इस पर पौराणिक पण्डितों ने अवसर का लाभ उठाकर शोर मचाना आरम्भ कर दिया। महात्मा हंसराज जी को अपना भाषण बन्द करना पड़ा।

अब ब्रह्मानन्द बाबा ने अंग्रेजी में भाषण देना आरम्भ किया। उसकी सहायता के लिए पीछे पण्डित गोपाल शास्त्री बैठे। आर्यों ने कहा कि शास्त्री जी को वहाँ से हटाया जावे। ब्रह्मानन्द जी ने पुनः अंग्रेजी में बोलना आरम्भ किया। उनको आर्यों ने टोका और कहा, "अब संस्कृत में बोलकर दिखाएँ।"

महाराजा साहब के सामने भरे दरबार में आर्यों ने ब्रह्मानन्द की गत बना दी।

लाला जीवनदास जी ने महाराजा साहब से फिर कहा, "हम कुछ ही घण्टों में सूचना पाकर यहाँ उपस्थित हो गए। आगे भी यदि फिर कभी पण्डितों से सरकार शास्त्रार्थ कराना चाहें तो आप आज्ञा दीजिये, आर्य विद्वान् उपस्थित हो जावेंगे।"[3] ओ३म् शम् !!

टिप्पणी—

१. ब्रह्मानन्द संस्कृत का विद्वान् न था। वह स्वामी अच्युतानन्द तथा पूर्णानन्द जी के सामने कैसे आता ?

२. ब्रह्मानन्द ११-१२ वर्ष पूर्व भी जम्मू आया था। तब साधुवेश में नहीं था। यह सम्भवतः वकील भी रहा। आर्यानाथालय पर एक अभियोग में यह कोर्ट में उन्हीं दिनों १८९२ ई० में पेश हुआ था।

३. दूसरे दिन का वृत्तान्त एक अप्रैल १८९२ ई० के "आर्यगजट" पृष्ठ ६-७ पर छपा था।

नोट—

(१) इस प्रकार इस ग्रन्थ का यह भाग-४ यहां एक सौ बारहवें शास्त्रार्थ पर ही समाप्त होता है। शेष शास्त्रार्थ सामग्री अगले (भाग-५) में आयेगी, जो इस शृंखला का अन्तिम भाग होगा।

पांचवें भाग के लिए पूर्ण जानकारी हेतु आप प्रकाशन से सम्पर्क स्थापित करें।

—निवेदक
"लाजपत राय अग्रवाल"

(२) इस प्रकाशन में वैदिक एवं शोधपूर्ण ग्रन्थों को विक्रय विभाग में रखा गया है। जो नाम मात्र लाभ की दृष्टि से विक्रय किए जाते हैं। इसके लिए आप प्रकाशन से बृहद सूची पत्र मंगायें !

धन्यवाद !!

पता—
"प्रबन्धक"
अमर स्वामी प्रकाशन विभाग
१०५८, विवेकानन्द नगर, गाजियाबाद (उत्तर प्रदेश)
पिन०—२०१००१